



परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

कारण-कार्यनियम

(नियमसार प्रवचन, भाग-३)

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री नियमसार पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
गाथा ५६ से ९५ और कलश ७६ से १२६ पर
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)
अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. श्री परमागम प्रकाशन समिति
श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

परम पूज्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसारजी नामक शास्त्र अध्यात्म प्रधान द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सत्शास्त्रों में से एक सर्वोत्कृष्ट तथा चारित्र प्रधान श्रेष्ठतम शास्त्र है।

परम भट्टारक शासननायक श्री महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अन्य केवली तथा श्रुतकेवली कथित आगम और अध्यात्म विद्या का संकलन चार अनुयोग के असंख्य शास्त्रों में अनेक आचार्यों-मुनिभगवन्तों द्वारा सम्पन्न हुआ है। सनातन दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में कलिकाल सर्वज्ञ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्थान अजोड़ है। लगभग चौरासी पाहुड़ शास्त्रों की भेंट आपश्री ने प्रदान की है, तथापि अभी मात्र १२-१५ ही उपलब्ध हो सके हैं।

उन उपलब्ध सत्शास्त्रों में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार जैसे उत्तमोत्तम परमागमों में हजारों शास्त्रों का सार समाहित हो जाता है। जैसे समयसार में शुद्धनय से नौ तत्त्वों का निरूपण किया है, वैसे नियमसार में शुद्धनय से ही जीव-अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण इत्यादि विषयों का वर्णन है।

वर्तमान में उपलब्ध भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के उत्कृष्ट परमागमों में अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिये रचित सर्वोत्कृष्ट श्री समयसारजी में दृष्टिप्रधान कथन से शुद्धात्मा का स्वरूप समझाया है। दिव्यध्वनि के सार श्री प्रवचनसारजी में ज्ञानप्रधान कथन से वही स्वरूप वर्णन किया है। श्री नियमसारजी में चारित्र अधिकार की मुख्यता से उसी स्वरूप का वर्णन है। वीतरागता प्रगट करने के प्रयोजन से दृष्टि-ज्ञान-चारित्र के आश्रयभूत शुद्धात्मा का ही वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है।

श्री नियमसारजी की तो आचार्यदेव ने स्वयं के जीवन की सन्ध्याकाल में निज भावना के निमित्त से रचना की होने से कारणपरमात्मा का बहुत ही घोलन किया है।

इस असाधारण परमागम की टीका भावी तीर्थाधिनाथ अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक भावलिंगी मुनिराज श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। जिनके मुख में से परमागमरूपी मकरन्द झरता है, ऐसे मुनिराज कहते हैं कि गुण के धारक गणधरों से रचित तथा श्रुतधरों की परम्परा से भली प्रकार से व्यक्त किये गये इस परमागम के सार की पुष्टरुचि से यह टीका सहज रची गयी है। टीकाकार ने श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए आध्यात्मिक भावों को स्वानुभूति से प्रमाण करके, परमपारिणामिकभाव में रहे हुए अन्तर रहस्यों को खोला है।

श्री नियमसार भरतक्षेत्र के उत्तमोत्तम शास्त्रों में से एक होने पर भी प्राभूतत्रय की समानता में इसकी प्रसिद्ध बहुत कम है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी विक्रम संवत् १९७२ में नियमसार की भूमिका में सत्य ही लिखते हैं कि 'आज तक श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पंचास्तिकाय संग्रह, प्रवचनसार, और समयसार, ये तीन रत्न ही बहुत प्रसिद्ध हैं। खेद की बात है कि उनके जैसा,

तथापि कितने ही अंशों में उनसे भी अधिक ऐसा नियमसार रत्न है, उसकी प्रसिद्धि इतनी कम है कि कोई कोई तो उसका नाम भी नहीं जानते।'

नियमसार अर्थात् भागवत् शास्त्र (गाथा १८७)। श्रुतपरम्परा में शास्त्रों का प्रणयन शिष्यों को सम्बोधन के लिए अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य से किया जाता है परन्तु इस ग्रन्थाधिराज की रचना आचार्यश्री ने अपने दैनिक पाठ के लिए की होनी चाहिए, क्योंकि आचार्यश्री की ग्रन्थ की अन्तिम उक्ति द्वारा स्पष्ट होता है कि 'णियभावणाणिमित्तं' अर्थात् निजभावना के अर्थ / निमित्त से पूर्वापर दोषों से रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने नियमसार नाम का शास्त्र रचा है।

नियमसार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षारहित शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप। इस ग्रन्थ में पर्याय की मुख्यता से कथन होने पर भी भावलिंगी सन्तों की दृष्टि तो उसके कारण पर ही रहा करती है।

भव्य जीवों को भाग्योदय से इस नियमसार कृति पर तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखनेवाले महासमर्थ मुनिराजश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हुए, जो वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। इस शास्त्रजी में १८७ गाथाओं में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्न अनुसार बारह विभागों में प्रस्तुत किया गया है।

- | | |
|-------------------------------|------------------------------------|
| १. जीव अधिकार | ७. परम आलोचना अधिकार |
| २. अजीव अधिकार | ८. शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार |
| ३. शुद्धभाव अधिकार | ९. परम समाधि अधिकार |
| ४. व्यवहारचारित्र अधिकार | १०. परमभक्ति अधिकार |
| ५. परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार | ११. परम आवश्यक अधिकार |
| ६. निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार | १२. शुद्धोपयोग अधिकार |

व्यवहारचारित्र और परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार : संक्षिप्त परिचय

श्रमण श्रेष्ठ १०८ आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव प्राकृत भाषा में १८७ गाथा प्रमाण चारित्र प्रधान नियमसार (नियमसार पाहुड़) प्राकृत की रचना की है। जबकि मूल शास्त्रजी के हार्द को आत्मसात करनेवाले परमागमरूपी मकरन्द जिनके मुख में से झरता है, ऐसे काव्य कौविद १०८ श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज के वरदहस्त से तात्पर्यवृत्ति नामक टीकास्वरूप गद्य-पद्यात्मक कलश काव्यरूप मुनिदशा को दर्शानेवाले मानो कि महाकाव्य का ही सूत्रपात हुआ हो, ऐसा कहा जा सकता है। ३११ कलश-काव्यों में अपनी तत्त्वरस की भावना को बल प्रदान करनेवाले दूसरे आचार्य मुनि भगवन्तों की मौलिक कृतियों में से प्राकृत-संस्कृत गाथा-कलश-श्लोकों के लगभग ८७ सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए टीकाकार ने नियमसार ग्रन्थाधिराज को सर्व भोग्य बना दिया है।

यहाँ प्रकरण के अनुरूप चौथे व्यवहारचारित्र अधिकार की तथा पाँचवें परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार की विशेष नोंध ली जाती है।

शुद्धभाव अधिकार की ५४ वीं गाथा में ही आचार्यश्री चारित्र का स्वरूप कहने की प्रतिज्ञा करते हुए लिखा है कि 'इससे कहूँगा मैं चरण को व्यवहार और निश्चय से' इसीलिए गाथा क्रमांक ५६ से ७६ तक कुल २१ गाथाओं में व्यवहारचारित्र प्रकरण में पाँच व्रतरूप, पाँच समितिरूप और तीन गुप्तिरूप तेरह प्रकार के चारित्र की विस्तार से चर्चा की है। जिससे मुनि जीवन का बाह्य अलौकिक स्वरूप सुस्पष्ट होता है। तत्पश्चात् क्रम से पाँच गाथाओं में पाँच परमेष्ठी के स्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है।

इस व्यवहारचारित्र अधिकार की गद्य टीका में टीकाकर्ता ने इक्कीस श्लोकों की रचना की है तथा अन्य ३२ सन्दर्भ दिये हैं।

आगे जाकर निश्चयचारित्र के अन्तर्गत परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार शुरू होता है। इस अधिकार की शुरुआत की पाँच गाथाओं को टीकाकार ने पंच रत्नरूप गाथाएँ, ऐसा कहकर पुकारा है, जिन गाथाओं में नारकादि, गुणस्थानादि, बालकादि, रागादि और क्रोधादि भावों का निश्चय से आत्मा कर्ता, कारियता, अनुमन्ता (अनुमोदक) तथा कारण नहीं है, ऐसा समझाया गया है। इस प्रकरण के पश्चात् एक गाथा में यह बात स्पष्ट की गयी है कि 'उक्त भावना से जो मध्यस्थभाव की उत्पत्ति होती है, उसे निश्चयचारित्र कहा जाता है।' तत्पश्चात् प्रतिक्रमण की विस्तार से चर्चा शुरू होती है, जिसमें वचन की रचना छोड़कर, रागादि भावों को निवारकर और जो जीव आत्मा को ध्याता है, उस जीव को प्रतिक्रमण होता है। इसी प्रकार संक्षिप्त में देखे तो विराधना-आराधना; अनाचार-आचार; उन्मार्ग-जिनमार्ग; शल्य-निःशल्य; अगुप्ति-गुप्ति; आर्त-रौद्रध्यान / धर्मध्यान-शुक्लध्यान ऐसे विषयांशों का आश्रय लेकर प्रतिक्रमण की विस्तार से व्याख्या की गयी है।

इस प्रकार इस अधिकार का मूल प्रतिपाद्यभूत सार यह है कि आत्म-आराधना ही वस्तुतः परमार्थप्रतिक्रमण है। निष्कर्षरूप से यह गाथा ध्यान में लेने योग्य है।

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण वर्णित है यथा।

होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा ॥९४॥

इस परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार में कुल १८ गाथाएँ और टीकाकार द्वारा रचित १९ कलश हैं, जबकि अन्य ग्रन्थान्तरों के ९ सन्दर्भ हैं।

इस शास्त्र के भावों का विवेचन करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री भावविभोर होकर कहते हैं - टीकाकार मुनिराज ने कार्य के साथ ही त्रैकालिक कारण (कारणशुद्धपर्याय) की बात करके टीका में अलौकिक रहस्य खोले हैं। अहो! जंगल में बसनेवाले और आत्मानन्द में लीन रहनेवाले सन्तों के श्रीमुख से परमागमरूपी अमृत की वर्षा हुई, उसमें आया है कि हे भाई! तेरे धर्म का ध्रुव कारण तो तुझमें सदा विद्यमान है, परन्तु तू उसे कारण नहीं बनाता, इसलिए दुःखी है। अहो! अन्तर का कारण मुनियों के आत्मा में से ही अमृत झरे हैं, उसकी यह अचिन्त्य और अपूर्व बात है। भारतवर्ष के लिए अभी यह बात एकदम नयी है। जिसके महाभाग्य होंगे, उसे यह बात सुनने

को मिलती है और जिसे अन्दर में यह बात बैठ गयी, उसका तो कहना ही क्या ? उसका तो बेड़ा पार हो गया।

सन्तों के अन्तरआत्मा में रहे हुए रहस्यों को खोलनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये भावों को ग्रहण करके हम भी उन्हें स्वानुभव से प्रमाण करें, यही भावना है।

इस नियमसार शास्त्र पर धारावाही अक्षरशः प्रवचन २१४ हैं। जिन्हें सात भागों में प्रकाशित किया जाएगा।

प्रस्तुत कारण-कार्यनियम, भाग-३ में नियमसार व्यवहारचारित्र अधिकार की गाथा ५६ से ७६ तथा कलश ७६ से १०७ तथा परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार की गाथा ७७ से ९४ तथा कलश १०८ से १२६ तक के प्रवचनों को समायोजित किया गया है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अतीन्द्रिय आनन्दरस से सराबोर ऐसे कुल ३९ प्रवचन अक्षरशः प्रकाशित किये गये हैं।

प्रवचन प्रकाशन से पूर्व सम्पूर्ण प्रवचनों को सी.डी. से शब्दशः लिखा जाता है। तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार वाक्य पूर्ति हेतु कोष्टक भरा जाता है और प्रकाशन से पूर्व फिर से मिलान किया जाता है। गुजराती भाषा में इस कार्य को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिसका प्रकाशन राजकोट दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट से हुआ है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है। मूल गाथाओं का बाबू युगलजी, कोटा एवं कलशों का पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली कृत पद्यानुवाद भी समाहित है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में कारण नियमस्वरूप स्वशुद्धात्मा के लक्ष्य से सभी जीव कार्यनियम अर्थात् निश्चय मोक्षमार्गरूप परिणमित हों, इसी भावना के साथ.....

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति।

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।



श्री सद्गुरुदेव-स्तुति



(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञसिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!



अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव ।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था ।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली । दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा ।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया । सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं । जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है ।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है ।'** इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है । इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ । भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा । तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है । इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी । अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया ।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर

दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यो के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ । इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है । परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है । तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है ।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भोजना प्रारम्भ हुआ । इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई । आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं ।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया ।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई । उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे । जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे । इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था ।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई ।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ । तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये । 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया ।

श्री सम्पेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी

सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्णपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त,

निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशापना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तों!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों!!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
६०	२८-०६-१९७१	५६, ७६	१
६१	२९-०६-१९७१	५७-६०, ७७-७९	२०
६२	३०-०६-१९७१	६०	४१
६३	०२-०७-१९७१	६१, ८०-८२	५६
६४	०३-०७-१९७१	६२, ८३-८४	७४
६५	०४-०७-१९७१	६३, ८५	९४
६६	०५-०७-१९७१	६४, ८६	१११
६७	०६-०७-१९७१	६४-६५, ८७-९०	१२८
६८	०७-०७-१९७१	६६-६७, ९१	१४७
६९	०९-०७-१९७१	६८-६९, ९२-९४	१६३
७०	१०-०७-१९७१	७०-७१, ९५-९६	१८५
७१	११-०७-१९७१	९७-९९	२०५
७२	१२-०७-१९७१	७२, १००-१०२	२२२
७३	१३-०७-१९७१	७३-७४, १०३-१०४	२४०
७४	१४-०७-१९७१	४५-७६, १०५-१०८	२५८
७५	२७-१०-१९७९	७७-८१, १०८	२७९
७६	२८-१०-१९७९	७७-८१	३००
७७	२९-१०-१९७९	७७-८१	३१२
७८	३०-१०-१९७९	८२, १०९	३२७
७९	३१-१०-१९७९	८२	३४३
८०	०१-११-१९७९	८३, ११०	३५७
८१	०२-११-१९७९	८४, १११	३७५
८२	१६-११-१९७९	११२	३९२

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
८३	१७-११-१९७९	८५, ११३	४०९
८४	१८-११-१९७९	११३-११४	४२३
८५	१९-११-१९७९	८६	४३९
८६	२०-११-१९७९	८७, ११५	४५२
८७	२१-११-१९७९	८७	४६९
८८	२२-११-१९७९	८८, ११६-११७	४८२
८९	२३-११-१९७९	८८-८९, ११८	४९५
९०	२४-११-१९७९	८९, ११९-१२०	५११
९१	२५-११-१९७९	९०, १२०	५२४
९२	३०-११-१९७९	९०, १२१	५३९
९३	०१-१२-१९७९	९१	५५२
९४	०२-१२-१९७९	९२, १२२	५६४
९५	०३-१२-१९७९	९३, १२३	५७९
९६	०४-१२-१९७९	९३, १२४	५९५
९७	०५-१२-१९७९	९४, १२५	६०९
९८	०६-१२-१९७९	९५, १२६	६२४



परमात्मने नमः ।

कारण-कार्यनियम

(नियमसार-प्रवचन)

(भाग-३)

४

व्यवहारचारित्र अधिकार

गाथा-५६

अथेदानीं व्यवहारचारित्राधिकार उच्यते ह

कुलजोणिजीवमगणठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं ।

तस्सारंभ-णियत्तण-परिणामो होइ पढम-वदं ॥५६॥

कुलयोनिजीवमार्गणास्थानादिषु ज्ञात्वा जीवानाम् ।

तस्यारम्भ-निवृत्ति-परिणामो भवति प्रथम-व्रतम् ॥५६॥

अहिंसाव्रतस्वरूपाख्यानमेतत् । कुलविकल्पो योनिविकल्पश्च जीवमार्गणास्थान-
विकल्पाश्च प्रागेव प्रतिपादिताः । अत्र पुनरुक्तिदोषभयान्न प्रतिपादिताः । तत्रैव तेषां भेदान्
बुद्ध्वा तद्रक्षापरिणतिरेव भवत्यहिंसा । तेषां मृतिर्भवतु वा न वा, प्रयत्नपरिणाममन्तरेण
सावद्यपरिहारो न भवति । अत एव प्रयत्नपरे हिंसापरिणतेरभावादहिंसाव्रतं भवतीति ।

तथा चोक्तं श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिः ह

(शिखरिणी)

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म-परमं,
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम-करुणो ग्रन्थ-मुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृत-वेषोपधि-रतः ॥

अब, व्यवहारचारित्र अधिकार कहा जाता है।

रे जानकर कुल योनि, जीवस्थान मार्गण जीव के।

आरम्भ इनके से विरत हो प्रथम व्रत कहते उसे ॥ ५६ ॥

गाथार्थ :—[जीवानाम्] जीवों के [कुलयानिजीवमार्गणास्थानादिषु] कुल, योनि, जीवस्थान, मार्गणास्थान आदि [ज्ञात्वा] जानकर, [तस्य] उनके [आरम्भ-निवृत्तिपरिणामः] आरम्भ से निवृत्तिरूप परिणाम, वह [प्रथमव्रतम्] पहला व्रत, अर्थात् अहिंसा महाव्रत [भवति] है।

टीका :—यह, अहिंसाव्रत के स्वरूप का कथन है।

कुलभेद, योनिभेद, जीवस्थान के भेद और मार्गणास्थान के भेद पहले ही (४२ वीं गाथा की टीका में ही) प्रतिपादित किये गये हैं; यहाँ पुनरुक्तिदोष के भय से प्रतिपादित नहीं किये हैं। वहाँ कहे हुए उनके भेदों को जानकर, उनकी रक्षारूप परिणति ही अहिंसा है। उनका मरण हो या न हो, प्रयत्नरूप परिणाम बिना, सावद्यपरिहार (दोष का त्याग) नहीं होता; इसीलिए प्रयत्नपरायण को हिंसापरिणति का अभाव होने से अहिंसाव्रत होता है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री नमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए ११९ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

जग प्रसिद्ध यह सत्य, अहिंसा परम ब्रह्म है जीवों की।

जिस आश्रम में आरम्भ अणु भी, वहाँ अहिंसा नहीं रही ॥

१. मुनि को (मुनिवोचित) शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो (हठरहित) देहचेष्टादिकसम्बन्धी शुभोपयोग, वह व्यवहार प्रयत्न है। [शुद्धपरिणति न हो, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहार-प्रयत्न भी नहीं कहलाता।]

अतः अहिंसा सिद्धि हेतु, हे प्रभु तुमने द्वय-ग्रन्थ तजे।
विकृत वेष तथा परिग्रह में, करुणानिधि तुम नहीं रमे॥

श्लोकार्थ :—जगत् में विदित है कि जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है। जिस आश्रम की विधि में लेश भी आरम्भ है, वहाँ (उस आश्रम में, अर्थात् सग्रन्थपने में) अहिंसा नहीं होती। इसलिए उसकी सिद्धि के हेतु, (हे नमिनाथ प्रभु!) परम करुणावन्त ऐसे आपश्री ने दोनों ग्रन्थ को छोड़ दिया (द्रव्य तथा भाव, दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़कर, निर्ग्रन्थपना अङ्गीकार किया) विकृत वेष तथा परिग्रह में रत न हुए।

प्रवचन-६०, श्लोक-७६, गाथा-५६, सोमवार, आषाढ़ शुक्ल ६, दिनांक २८-०६-१९७१

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की कितनीक परिणति शुद्ध होती है, उसे ऐसा अहिंसाव्रत का, जो पाँच महाव्रत का विकल्प, शुभ उपयोगरूप प्रयत्न होता है, उसे यहाँ अहिंसाव्रत कहा जाता है। व्यवहार अहिंसाव्रत। निश्चय से तो वह राग है, वह हिंसा है, परन्तु व्यवहार से उसे अहिंसा कहा जाता है। यह पाँच महाव्रत की बात है।

कुलजोगिजीवमगणठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं ।
तस्सारंभ-णियत्तण-परिणामो होइ पढम-वदं ॥५६॥
रे जानकर कुल योनि, जीवस्थान मार्गण जीव के ।
आरम्भ इनके से विरत हो प्रथम व्रत कहते उसे ॥५६ ॥

टीका : यह, अहिंसाव्रत के स्वरूप का कथन है। कुलभेद,... जीव के कुलभेद। पहले ४२ गाथा में आ गये हैं। योनिभेद,... उत्पत्ति-स्थान के भेद और जीवस्थान के भेद... चौदह और मार्गणास्थान के भेद पहले ही (४२ वीं गाथा की टीका में ही) प्रतिपादित किये गये हैं;... कि जीव में नहीं हैं, ऐसा उसमें आया था। कुलभेद, योनिभेद, जीवस्थान के भेद और मार्गणास्थान के भेद पहले ही (४२ वीं गाथा की टीका में ही).... यह कहा था कि जीव में वे नहीं हैं। वह यहाँ पर्याय में वे भेद हैं - ऐसा बतलाते हैं।

यहाँ पुनरुक्तिदोष के भय से प्रतिपादित नहीं किये हैं। यहाँ पाठ में होने पर भी विस्तार नहीं किया है। वहाँ विस्तार हो गया, इसलिए (यहाँ विस्तार नहीं किया है)।

‘कुलजोणिजीवमगणठाणा’ यह शब्द वहाँ ४२वीं गाथा में था। ४२ गाथा है न? वहाँ यह शब्द है ‘कुलजोणिजीवमगणठाणा’ वहाँ यह शब्द था। वहाँ विस्तार किया था। यहाँ नहीं किया। वहाँ कहे हुए उनके भेदों को जानकर,... देखो! जानकर – ऐसा कहते हैं। उसे जानना तो चाहिए। वस्तु में नहीं है, परन्तु पर्याय में है, उसे जानना चाहिए – ऐसा कहते हैं। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है – ऐसा कहते हैं न?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की बात नहीं परन्तु... है, ऐसे जानने की बात नहीं? आश्रय इसका (स्वभाव का) लिया, तथापि पर्याय में ऐसे भेद हैं, उन्हें जानना।

मुमुक्षु : परन्तु हेय कहने के बाद उसे ऐसे जाना या ऐसे जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार से जानना – ऐसा आता है या नहीं? हेय को जाने, तब हेय होता है या जाने बिना हेय किस प्रकार हो? हेय, ज्ञेय। यह पर्याय में हेय है – ऐसे जाने बिना उसका लक्ष्य कैसे छोड़े? – ऐसा कहते हैं। उन्हें जानकर। देखो! आया है न? सबमें आया है। योगसार में आया नहीं? छह द्रव्यों को प्रयत्न से जानना। छह द्रव्य तो पर है, परन्तु व्यवहार से अपनी पर्याय में उनका ज्ञान होता है, इसलिए उन्हें जानना। जानने में कहाँ आपत्ति है? व्यवहार जाना हुआ। व्यवहार जानने में आवे। व्यवहार का विषय है या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो धर्म होने के बाद की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की यह बात है न?

मुमुक्षु : यह धर्म हुए पहले की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले की यहाँ बात ही नहीं है। यहाँ तो आत्मा का ऐसा भान है, वहाँ ऐसी पर्याय और भेद को जानना। धर्म होने के पहले की बात यहाँ है ही नहीं। ऐई! उसे पर्याय जानने में आवे या नहीं? पर्याय में जानने में नहीं आवे? द्रव्य और पर्याय दो का ज्ञान करे। आदरणीय द्रव्य, पर्याय जाननेयोग्य। ऐई! अटपटा है, इसलिए यह सब भांजगड़ (सिरपच्ची) खड़ी हुई है न? अभी यह तो कहेंगे। उनके भेदों को जानकर,... जानने में न आवे? मार्गणा के भेद पर्याय में हैं। जीव किस-किस अवस्था में है। किस जीव के

स्वरूप भेद में भेद कहाँ है ? कुल कौन सा है ? योनि क्या ? यह जानने में न आवे ? जानने में तो सब आता है ।

उनकी रक्षारूप परिणति ही अहिंसा है । यह रक्षा शब्द रखा है । उनकी रक्षारूप परिणति... अर्थात् उन सब जीवों को न मारने के परिणाम, वह परिणति, वह अहिंसा-व्यवहार-शुभोपयोग ।

मुमुक्षु : उनकी रक्षा की जा सकती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न ? रक्षा का अर्थ यह । हो सकती है कहाँ ? उन्हें नहीं मारने के परिणाम, उन्हें यहाँ रक्षा कहने में आता है । परिणाम । उन्हें मार सकता है या जिला सकता है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं । उन्हें नहीं मारने के परिणाम । देखो ! कहते हैं । **अहिंसा** है । व्यवहार, हों ! यह शुभ उपयोग ।

उनका मरण हो या न हो,... लो, प्रश्न है ? मरण हो या न हो, उसके साथ कुछ नहीं है । वह तो पर है । प्रयत्नरूप परिणाम बिना,... शुभभाव में प्रयत्न बिना सावद्यपरिहार (दोष का त्याग) नहीं होता;... ऐसा कहते हैं । दूसरे को न मारना, यह शुभभाव का प्रयत्न है । वह मरे, न मरे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है । यह तो साथ में लिख दिया, परन्तु शुभपरिणाम का प्रयत्न है, वह सावद्ययोग का त्याग है । उस प्रयत्नरूप परिणाम बिना,... शुभ में प्रयत्न बिना अशुभ के सावद्ययोग का त्याग नहीं होता, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ?

इसीलिए प्रयत्नपरायण को... देखो ! शुभभाव में प्रयत्नपरायण को हिंसापरिणति का अभाव होने से... उसे सावद्य के अशुभभाव का त्याग होने से अहिंसाव्रत होता है । कहो, समझ में आया ? उसे अहिंसाव्रत-शुभभाव होता है । यह व्यवहार, निश्चयसहित होवे, उसे ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा बतलाते हैं और व्यवहारनय के अर्थ में तो ऐसा भी कहते हैं, यह व्यवहार का प्रयत्न है, उतना अशुभ टालता है न ? सावद्ययोग का त्याग, उतना शुभ में प्रयत्न है । है पुण्य-बन्धन, है शुभोपयोग । निश्चय से तो स्वरूप की हिंसा है परन्तु व्यवहार से सावद्ययोग का त्याग है, इसीलिए व्यवहार से उसे अहिंसा परिणाम कहा गया है, ऐसी बात है ।

मुमुक्षु : उलझन तो अवश्य है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझन जरा भी नहीं है। सीधा मार्ग है परन्तु इसने विपरीत माना है। जहाँ वस्तु-आत्मा का भान है, अनुभव है कि मैं तो आनन्द हूँ, उसकी दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ और आनन्द में कितनी ही लीनता भी हुई है, उसे ऐसा शुभभाव प्रयत्न से होता है। इस प्रकार का शुभ का प्रयत्न है न ? उसे यहाँ व्यवहार अहिंसाव्रत कहने में आता है। ऐसा भाव मुनि को छठे गुणस्थान में होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। समझ में आया ?

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री नमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए ११९ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

देखो ! वापस निश्चय डालते हैं।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म-परमं,
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम-करुणो ग्रन्थ-मुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृत-वेषोपधि-रतः॥

श्लोकार्थ : जगत् में विदित है... यहाँ तो कहते हैं, लो ! जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है। यह भाव अहिंसा की बात है। राग की उत्पत्ति न होना और वीतरागपर्याय की उत्पत्ति होना, यह अहिंसा जगत-प्रसिद्ध है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? चलता है वह अहिंसाव्रत का, उसमें नीचे वापस यह लिखा। आत्मा में जितने अंश में राग की उत्पत्ति होती है, उतने अंश में तो हिंसा ही है और जितने अंश में स्वभाव शुद्ध आनन्द के आश्रम वीतराग अकषाय की परिणति होती है, वह अहिंसा है।

जगत् में विदित है कि जीवों की अहिंसा, परमब्रह्म है। उसमें परम आनन्द है। वह परम ब्रह्म आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का जैसा परम ब्रह्मस्वरूप है, ऐसी जहाँ परिणति / पर्याय / वीतरागीदशा प्रगट हुई, वह परम ब्रह्मस्वरूप है। अहिंसा की अवस्था, रागरहित की दशा, हों ! यह शुभ की बात नहीं है। जीव अर्थात् जीव स्वयं भी आया न ? समझ में आया ? **जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है।** वह परजीव की अहिंसा अकेला न मारना, वह नहीं। परम अहिंसा है, परम ब्रह्म है। भगवान आत्मा... यह स्पष्टीकरण करेंगे।

जिस आश्रम में परिग्रह का एक अंश नहीं, वहाँ अहिंसा है, ऐसा कहते हैं। मुनि को आत्मज्ञान अनुभवसहित चारित्र की दशा जो अन्तर वर्तती है, उन्हें परिग्रह का कण

लेने का विकल्प नहीं है। वह विकल्प होवे तो वह हिंसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लोगों को बराबर शुद्धभाव अधिकार कहकर व्यवहार (चारित्र अधिकार) कहेंगे। फिर प्रतिक्रमण आदि निश्चय कहेंगे। जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है। जिस आश्रम की विधि में... देखो! लेश भी आरम्भ है, ... गृहस्थाश्रम में भले पंचम गुणस्थान में हो, परन्तु वहाँ अभी राग है। वस्त्र, पात्र रखने का इत्यादि-इत्यादि राग है, वह हिंसा है। जिस आश्रम की विधि में लेश भी आरम्भ है, वहाँ (उस आश्रम में, अर्थात् सग्रन्थपने में) अहिंसा नहीं होती। देखो! वस्त्र-पात्र रखने का जहाँ भाव है, वहाँ अहिंसा नहीं होती। वह हिंसा है। आहाहा! समझ में आया?

जिस आश्रम की विधि में लेश भी आरम्भ है, वहाँ (उस आश्रम में, अर्थात् सग्रन्थपने में) अहिंसा नहीं होती। देखो! पंचम गुणस्थान में श्रावक को पूर्ण अहिंसा नहीं है। उसे अभी रागभाव है। आरम्भ का, वस्त्र-पात्र रखने का, स्त्री, परिवार इत्यादि राग है, वह हिंसा है। वहाँ अहिंसा नहीं है। देखो! इसलिए उसकी सिद्धि के हेतु, (हे नमिनाथ प्रभु!) परम करुणावन्त ऐसे आपश्री ने दोनों ग्रन्थ को छोड़ दिया... अन्दर में से राग छोड़ा और बाहर में से वस्त्र-पात्र, वस्तु छोड़ी। व्यवहार। ऐसा जो मुनिपना, वहाँ अहिंसा है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिस आश्रम में राग का अंश नहीं और परिग्रह में वस्त्र-पात्र भी नहीं, ऐसे आश्रम में अहिंसा होती है। इसीलिए भावलिंगी सन्त, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी, तदुपरान्त उसमें स्थिरता, वीतरागता प्रगटी है, उन्हें भावहिंसा नहीं है, राग का भावपरिग्रह नहीं है और वस्त्र-पात्र का द्रव्यपरिग्रह भी नहीं है। आहाहा!

इसलिए उसकी सिद्धि के हेतु, (हे नमिनाथ प्रभु!) परम करुणावन्त ऐसे आपश्री ने... देखो! इसमें अपनी करुणा है। दोनों ग्रन्थ को छोड़ दिया... वस्त्र-पात्र भी छोड़ा और राग भी छोड़ा। (द्रव्य तथा भाव, दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़कर, निर्ग्रन्थपना अङ्गीकार किया) देखो! जिसमें राग का लेश भी अंश नहीं। वह वास्तव में वीतरागदशा में सातवें गुणस्थान में... समझे? राग का अंश नहीं, ऐसी जो दशा, वह निर्ग्रन्थ दशा और वह अहिंसादशा, वह अहिंसकदशा है। आहाहा! देखो न व्याख्या।

विकृत वेष... साधु को वस्त्रादि रखना, वह विकृत वेष है; वह सच्चा वेष नहीं है। तथा परिग्रह में रत न हुए। राग में रत नहीं हुए और बाहर के वेष में विकृत में भी रत नहीं हुए। आहाहा! देखो! यह अहिंसाव्रत के शुद्ध उपयोग की व्याख्या चलती है। उसमें यह

लिखा है। भगवान आत्मा रागरहित मुनि को जहाँ वीतरागदशा प्रगट हुई है, उस आश्रम में अहिंसा है। जहाँ राग का आरम्भ नहीं और बाहर राग के निमित्त वस्त्र-पात्र, ऐसा परिग्रह का संग-सम्बन्ध भी नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

एक ओर कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में ज्ञानी को बन्ध नहीं है, राग उसका नहीं है। ऐई! दृष्टि की अपेक्षा से जहाँ परिणमन पर से भिन्न पड़ गया, उस अपेक्षा से (यह बात है)। जैसे शरीर पर, वैसे राग पर परन्तु स्थिरता की अपेक्षा जहाँ आवे, वहाँ पंचम गुणस्थान में भी राग-भाग है, वह हिंसा है, ऐसा कहते हैं। उस आश्रम में अहिंसा पूर्ण नहीं है। आहाहा! कथन की पद्धति देखो! समझ में आया ? यहाँ तो चारित्र की व्याख्या लेनी है या नहीं ? अन्तरस्वरूप में आनन्द में रमणता, उसकी भूमिका में राग का अंश नहीं, उसे अहिंसा जगत प्रसिद्ध-विदित कहने में आता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, वह बात जगत प्रसिद्ध है।

मुनि अनालम्बी अपरिग्रही। आहाहा! नग्न मुनि, बाहर में नग्न है, अन्दर में राग का कण नहीं। जरा सा यह संज्वलन का कण है ऐसा... अकषाय परिणति ही जिन्हें उग्र है, उन्हें यहाँ अहिंसा कहने में आता है। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। उसे अपनी कल्पना से फेरफार करके जगत के समक्ष रखना, वह कोई मार्ग नहीं है। यहाँ तो ग्यारह प्रतिमावाले को भी अभी राग है। है न ? पंचम गुणस्थान है न ? वहाँ अभी उस आश्रम में पूर्ण अहिंसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ नमिनाथ भगवान की बात चलती है। हे प्रभु! आपने तो अन्तर में वीतरागदशा प्रगट की और बाह्य में नग्नदशा। विकृत वेश रहा नहीं। ऐसी अपरिग्रहदशा को यहाँ अहिंसा कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें ? प्रयत्न परायण, लो! इस अपेक्षा से शुभभाव में इतना पुरुषार्थ है न ? अशुभ में अन्तर उल्टा, परन्तु इसमें जरा कम है। परन्तु है न। शुभ में विशेष प्रयत्न है परन्तु इसमें भी अकेला वीर्य है न शुभ में ? ऐसा कहते हैं। परन्तु है, वह व्यवहार अहिंसा है। जिसे निश्चय अहिंसा प्रगट हुई हो, उसे ऐसा विकल्प हो, उसे व्यवहार अहिंसा कहने में आता है। जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द की-शुद्ध की दशा है ही नहीं, उसे यह व्यवहार नहीं हो सकता। उसे व्यवहार ही नहीं है। व्यवहार कहाँ से आया ? जगे बिना, निश्चय बिना व्यवहार किसे कहना ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे पाँचवें में लेंगे । पाँचवें व्रत में निरपेक्ष शब्द है सही न ? पाठ में । निर्विकल्प भावना अर्थात् पंच महाव्रत में अन्दर दृष्टि, ज्ञान, स्थिरता का निरपेक्षपना । पाँचवें में निरपेक्ष शब्द आता है । वहाँ नीचे स्पष्टीकरण है । यहाँ भी स्पष्टीकरण किया न ? देखो न, कहाँ शब्द है वह ? प्रयत्न-प्रयत्न है न ?

मुनि को (मुनित्वोचित) शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो... अन्दर शुद्ध वीतरागदशा तो है । आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की कितनी ही परिणति तो है । **जो (हठरहित) देहचेष्टादिकसम्बन्धी शुभोपयोग, वह व्यवहार प्रयत्न है ।** हठरहित अर्थात् उस प्रकार से शुभभाव वहाँ सहज होता है । [शुद्धपरिणति न हो,...] लो ! पाँचवें में विशेष स्पष्टता है । शुद्धपरिणति न हो, जहाँ स्व भगवान आत्मा का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागीदशा न हो, [वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है;...] वहाँ तो हठ है, सहज नहीं । [वह शुभोपयोग तो व्यवहार-प्रयत्न भी नहीं कहलाता ।] कहो, समझ में आया ?

ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति की जो निर्विकल्पदशा-शुद्धपरिणति प्रगट हो, वहाँ आगे वह शुभोपयोग का प्रयत्न है, वह सहज उस प्रकार का भूमिका में भाव होता है । हठरहित (होता है) और जहाँ शुद्ध की परिणति का भान ही नहीं, आत्मा आनन्दस्वरूप का जहाँ आश्रय लिया नहीं, आश्रय लिए बिना की दशावाला अकेला शुभोपयोग तो हठवाला है । उस भूमिका में उसे हो, आवे - ऐसा वहाँ नहीं है । वह हठवाला है । उस शुभोपयोग को व्यवहार भी नहीं कहा जाता । **व्यवहार-प्रयत्न भी नहीं कहलाता ।** लो । कहो, समझ में आया या नहीं ? कान्तिभाई ! यह भी निश्चय के साथ व्यवहार आया, इसलिए झगड़ा उठा । कहते हैं, जो व्यवहार होता है । व्यवहार होता है तो निश्चय होता है, यह बात यहाँ कहाँ है । यहाँ तो ऐसे निश्चय की दशा की परिणति हो, तब ऐसा व्यवहार-शुभोपयोग होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं । शुभ उपयोग करनेयोग्य है, यह बात भी कहाँ है ? आता है, होता है, होता है ।

मुमुक्षु : उसे करता है, ऐसा कहा जाता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे करता है, वह तो व्यवहारनय से पालता है, ऐसा कहा जाता है ।

व्यवहार अहिंसाव्रत पालता है। राग को पाले ? परन्तु व्यवहारनय का कथन अहिंसा, उस प्रकार से ही कहने में आता है। कहो, भगवान का दृष्टान्त दिया, ठीक। हे प्रभु! आपने तो निर्ग्रन्थदशा अन्तर में और बाह्य में दोनों की हैं। वस्त्र का वेश, वह विकृत वेश है। वह मुनि का वेश नहीं है। सन्त की दशा वह व्यवहार से भी नहीं है। आहाहा! जिसे वस्त्र के प्रति विकल्पदशा छूट गयी है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की परिणति सहित जिसे ऐसा व्यवहार अहिंसा का शुभ प्रयत्न होता है, उसे व्यवहार कहा जाता है, ऐसा कहते हैं।

जहाँ निश्चयस्वरूप का भान नहीं, कि यह व्यवहार। वहाँ व्यवहार कहना किसे ? व्यवहार तो सहचर। निश्चय की श्रद्धा-ज्ञान की शान्ति के साथ सहचर। साथ में हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु यहाँ साथवाला निश्चय तो जगा नहीं, वहाँ सहचर कहना किसे ? समझ में आया ? मोक्षमार्गप्रकाशक में सहचर आता है न ? सहचर—साथ में होता है, इसलिए उसे व्यवहार कहने में आता है परन्तु किसके साथ में ? निश्चय है नहीं और साथ में चलता है। परन्तु किसके साथ में ? समझ में आया ? लोग तो बस, यह अहिंसाव्रत और यह व्रत है, वह चारित्र ही है, बस एक ही बात सिद्ध करते हैं। यहाँ तो शुभ उपयोग स्पष्ट शब्द लेंगे। ये सब शुभ उपयोग है। समझ में आया ? परम्परा से आगे कहेंगे। स्पष्टीकरण करेंगे।

मुमुक्षु : ११७ पृष्ठ पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ११७ पृष्ठ ? कहीं है अवश्य। नीचे न ? टीका में। 'चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही परम्परा से पंचम गति के हेतुभूत ऐसा पाँचवाँ व्रत है।' परम्परागत तो कहा परन्तु शुभ उपयोग शब्द नहीं है। परित्याग ही। परम्परा से पंचम गति के हेतुभूत ऐसा पाँचवाँ व्रत है। अर्थ में है देखो! उसमें अर्थ में है। सर्व परिग्रहों के त्याग (सर्व परिग्रह त्याग सम्बन्धी शुभभाव)... देखो! है ? ६० गाथा। सर्व परिग्रह का त्याग, देखा ? यहाँ ऊपर कहा न। निरपेक्ष भावनापूर्वक (अर्थात् जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं, ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावना सहित...) सहित। तब सर्व परिग्रह का त्याग वह शुभभाव। यह पाठ का पुकार है। ६०वीं गाथा। ६० वीं, हों! ६० गाथा का अर्थ।

निरपेक्ष भावनापूर्वक... देखो! ओहो! जिसे पर की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसा निर्मल

परिणमन हुआ है। (ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित...) सर्व परिग्रहों का त्याग... यह शुद्धपरिणतिसहित, शुभोपयोग वह पाँचवाँ महाव्रत है, ऐसा यहाँ अहिंसा आदि शुभभाव सबको गिनना। समझ में आया ? आहाहा !

श्लोक-७६

तथाहि ह

और, (५६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

त्रसहतिपरिणामध्वान्तविध्वन्सहेतुः,

सकल-भुवन-जीवग्राम-सौख्यप्रदो यः ।

स जयति जिन-धर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां,

विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः ॥७६॥

(हरिगीतिका)

त्रसघात परिणतिरूप तम के नाश का जो हेतु है ।

जो लोक के सम्पूर्ण जीवों के लिए सुखरूप है ॥

एकेन्द्रियों के विविध वध से जो बहुत ही दूर है ।

जिनधर्म नित जयवंत जो आनन्द सागर पूर है ॥

[श्लोकार्थ : —] त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार के नाश का जो हेतु है, सकल लोक के जीव समूह को सुखप्रद है, स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के विविध वध से जो बहुत दूर है और सुन्दर सुखसागर का जो पूर है, वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है ।

श्लोक-७६ पर प्रवचन

और, (५६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

त्रसहतिपरिणामध्वान्तविध्वन्सहेतुः,
 सकल-भुवन-जीवग्राम-सौख्यप्रदो यः ।
 स जयति जिन-धर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां,
 विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः ॥७६॥

त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार के नाश का जो हेतु है,... कौन ? जैनधर्म । जैनधर्म अर्थात् अज्ञान और राग को जीतकर वीतरागता प्रगट करना, वह जैनधर्म है । त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार के नाश का जो हेतु है, सकल लोक के जीव समूह को सुखप्रद है,... वीतरागधर्म । वीतरागधर्म अर्थात् आत्मा की वीतरागी परिणति । वह जैनधर्म, वह जैनशासन है । पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा की स्व-आश्रय की शुद्धपरिणति को यहाँ जैनधर्म और जैनशासन कहने में आता है ।

सकल लोक के जीव समूह को सुखप्रद है,... वीतरागभाव सभी जीवों को आनन्ददायक है, ऐसा कहते हैं । जिन अर्थात् आत्मा का वीतरागस्वरूप । उसके आश्रय से होनेवाली परिणति, वीतराग परिणति । रागादि नहीं - ऐसा जो जैनधर्म, उसे त्रसघात के नाश का, अन्धकार के नाश का हेतु है । और स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के... भी मारने के परिणामरहित है । विविध वध से जो बहुत दूर है... देखा ! एक पानी की बूँद में असंख्य जीव हैं । पानी की बूँद... असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में एक-एक जीव । उनके घात से भी जैनधर्म दूर वर्तता है, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? छह काय ले लिए न ? त्रस और एकेन्द्रिय, (ऐसे) छह काय ले लिए ।

पानी की एक बूँद, अग्नि का एक चिंगारी, उसमें असंख्य जीव हैं । इस पानी के दस-दस सेर, अध मण गरम पानी में, एक-एक पानी की कणी में असंख्य जीव । मुनि के लिए वह पानी बनावे और मुनि ले, वह मुनि ही नहीं है । व्यवहार से मुनि नहीं, हों ! निश्चय से तो है ही नहीं । समझ में आया ? यहाँ तो प्रभु ! तेरा मार्ग, त्रस और एकेन्द्रिय जीव के घात से दूर-दूर मार्ग है । आहाहा !

और सुन्दर सुखसागर का जो पूर है,... आहाहा ! वह राग है, वह तो दुःख है और उससे भिन्न भगवान आत्मा की परिणति, शुद्ध वीतरागस्वभाव का आश्रय लेकर (हुई), अपना निज वीतरागस्वभाव । वीतरागपरिणति जो खड़ी हुई, वह सुन्दर सुखसागर का जो

पूर है,.... अज्ञानी ने सुख की कल्पना की, वह तो दुःख है। यह तो **सुन्दर सुखसागर का जो पूर है,...** आहाहा! क्या कहते हैं। समझ में आया? जैनधर्म उसे कहते हैं कि जो आनन्द सागर भगवान आत्मा में से वीतरागी आनन्द की दशा प्रगट की, उसे जैनधर्म कहते हैं। आहाहा! है या नहीं इसमें? देखो! कहाँ? १५वीं गाथा में ऐसा कहा कि शुद्ध उपयोग। भावश्रुत उपयोग, वह जैनशासन है। समयसार की १५ वीं गाथा। भावश्रुत उपयोग, जिसमें राग का कण नहीं। वीतरागी भावश्रुत उपयोग, वह जैनशासन है। यहाँ कहते हैं कि जैनधर्म कहो या जैनशासन कहो।

जैनधर्म क्या है? कि अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति का पूर अन्दर प्रगट हो, (वह जैनधर्म है)। आहाहा! यह महाव्रत का विकल्प भी राग है, ऐसा कहकर यहाँ वापस निकाल दिया। होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं परन्तु अन्तर में यह राग जो आता है, वह जैनधर्म नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई! महाव्रत के परिणाम का अहिंसा का विकल्प, वह जैनधर्म नहीं है। उसे ऐसा व्यवहार हो, इतना ज्ञान कराते हैं, परन्तु वह जैनधर्म नहीं है। ऐई! आहाहा! क्योंकि राग है, वह दुःख है। अहिंसा महाव्रत का विकल्प—व्यवहार अहिंसा, वह भी दुःख है; जैनधर्म नहीं। बीच में होता है, उसका ज्ञान कराते हैं। आहाहा!

जैनधर्म अर्थात् कोई पक्ष नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं; वह तो वस्तु का स्वरूप है। 'जिन सो हि है आत्मा' वीतरागभाव से भरपूर अकषायस्वभावरूप आत्मा का आश्रय लेकर जो वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता प्रगट हुई, वह सुख का पूर अर्थात् वे तीनों सुखरूप हैं, ऐसा कहते हैं। तीनों दुःखरूप नहीं हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों सुखरूप हैं। लोग कहते हैं न कि अरे! चारित्र तो महा (कठोर) ग्रास है। अरे! चल.. चल.. तुझे भान नहीं है। दूध के दाँत से... क्या कहते हैं? लोहे के चने चबाना। बापू! क्या चारित्र दुःखरूप है? सम्यग्दर्शन दुःखरूप है? सम्यग्ज्ञान दुःखरूप है।

कहते हैं, **सुन्दर सुखसागर का जो पूर है,...** आहाहा! किस प्रकार बात की है! आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर, ध्रुव है। उसका आश्रय लेकर, अवलम्बन लेकर उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द की दशा- श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीनों अतीन्द्रिय आनन्द की दशा है। तीनों सुखरूप दशा है। तीनों में आनन्द है। ऐसे **सुखसागर**

का जो पूर है, वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है। आहाहा! ऐसा जैनधर्म जगत में वीतराग परिणति के परिणमनेवाले के पास जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

दिगम्बर सन्तों की वाणी ठेठ वीतरागता को पहुँचावे ऐसी है। ऐसी बात...! ऐसी बात इनके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर मुनियों के अतिरिक्त ऐसा कथन, ऐसी बात कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में नहीं तो अन्यमत में तो कहाँ से होगी? आहाहा! लोगों को यह कहते हैं तो ऐसा लगता है कि यह पक्ष की बात है। अरे! पक्ष की बात नहीं, भगवान! यह वस्तु ही स्वयं वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसमें त्रिकाल चारित्रगुण है न? वीतरागभाव-स्वरूप है और श्रद्धागुण है, वह भी वीतरागस्वरूप है, ज्ञानगुण है, वह भी वीतराग निर्दोषस्वरूप है। निर्दोषस्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो। ऐसा वीतराग भगवान आत्मा, उस पर दृष्टि पड़ने से, उसका ज्ञान होने पर, उसमें स्थिरता होने से जो दशा प्रगट होती है, निश्चय सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो, वह तो सुख के आनन्द की दशावाली दशा है। आहाहा! उसे जैनधर्म कहते हैं।

अहिंसाव्रत में वापस यह लिखा है, बतलाया अवश्य है। रागादि जाननेयोग्य है परन्तु वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! जितनी अन्दर में रागरहित अहिंसारूप परिणति सुखरूप हुई, उतना जैनधर्म है। कहो, शान्तिभाई! बराबर है यह? तो फिर ये महाव्रत-फहाव्रत में यह और कहाँ डाला? ज्ञान कराया है कि है, परन्तु जैनधर्म उसे कहते हैं कि जिसमें अकेली वीतराग परिणति खड़ी हो। जिसमें राग आया, वह भी वास्तविक जैनधर्म नहीं है। वह तो उपचारिक धर्म, व्यवहार जैनधर्म है। निश्चयधर्म, वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! जैनधर्म के भी दो प्रकार हैं, निश्चय और व्यवहार। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म है तो दोनों धर्म से लाभ होगा न!

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ की बात कहाँ है? एक ही धर्म से लाभ है। वीतरागी जैनधर्म दशा। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, उस एक से ही लाभ है। दूसरा होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। ज्ञान कराते हैं कि व्यवहारनय जानने योग्य है या नहीं?

मुमुक्षु :मुश्किल से....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुश्किल से आया, वहाँ अन्दर ही अन्दर उड़ा दिया। दोनों में

उड़ाया। समन्तभद्राचार्य का आधार देकर उड़ाया, स्वयं ने उड़ाया। दुनिया, दुनिया का जाने, तुझे क्या काम का? तुझे तो आत्मा के साथ काम है, कहते हैं। शुभविकल्प हो, कहते हैं कि वह तो जाननेयोग्य है। वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का जिसका स्वभाव, बस उसके साथ तुझे काम है। ओहोहो! कथनी भी देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, हों! इस पुस्तक की गाथा कुन्दकुन्दाचार्यदेव की, परन्तु टीका करनेवाले मुनि हैं, आचार्य नहीं। पद्मप्रभमलधारिदेव। अमृतचन्द्राचार्य और ये सब आचार्य थे। यह (टीकाकार) तो मुनि हैं।

मुमुक्षु : आचार्य का कथन ही मानने योग्य है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मुनि का कथन... समकित्ती का कथन मानने योग्य है। माननेयोग्य किसका कथन नहीं? आहाहा!

छह काय के वध से जो बहुत दूर है... अर्थात् उन्हें मारने का विकल्प तो नहीं, परन्तु जीलाने के विकल्प से भी यह वीतराग का मार्ग दूर है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहा न? प्रयत्न, शुभ प्रयत्न-परायण।

मुमुक्षु : यहाँ तो रक्षा की बात थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : रक्षा शब्द तो व्यवहार से आया। यहाँ वापस डाला। आहाहा!

छह काय को मारने का विकल्प तो नहीं होता, परन्तु उन्हें न मारने का विकल्प भी जिस जैनधर्म में नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यह विकल्प हो, वह व्यवहारधर्म है, पुण्य है। निश्चय जैनधर्म तो रागरहित अरागी श्रद्धा, अरागी ज्ञान और अरागी चारित्र की दशा, वह जैनधर्म है। आहाहा! **जयवन्त वर्तता है।** मुनि को स्वयं में वीतरागी परिणति है न? **जयवन्त वर्तता है।** आहाहा! कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? वह अकेला निश्चय का आता था, वहाँ जरा पकड़े। निश्चय में व्यवहार आवे और फिर व्यवहार उड़ावे। ऐई! व्यवहार वहाँ तक कहा कि प्रयत्नरूप परिणाम है। ऐई! और कहते हैं कि प्रयत्नरूप परिणाम, वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! व्यवहारधर्म कहने में आता है। व्यवहार कहो या पुण्य कहो। आहाहा! अरे रे! ऐसा मार्ग! निर्मलानन्द प्रभु के आश्रय से धर्म होता है, ऐसा मानना, वह व्रत है। यह तो व्रत के परिणाम आस्रव हैं। अहिंसाव्रत के परिणाम आस्रव हैं, शुभ उपयोग है, राग है।

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ इसमें लिखा हुआ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा ? यहाँ कहा न, कि सुन्दर सुखसागर की... दशा वह जैनधर्म है। अहिंसा वह शुभराग है, शुभ उपयोग है। व्रत है न ? कहो, समझ में आया ? आहाहा ! कहो, चेतनजी ! ऐसी बात वहाँ कहीं थी ?

मुमुक्षु : भूतकाल की बात कहाँ है, वर्तमान की बात करो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में भी विरोध करते हैं। अरे ! भगवान ! शान्त हो, भाई ! जो मार्ग होगा, वह रहेगा। कुछ बदलाव करने से कहीं बदलाव हो नहीं जाएगा। आहाहा ! बापू ! तेरा तत्त्व है। आहाहा ! ऐसा आता है कहीं। निज तत्त्व का कहीं आता है। सहज परमतत्त्व स्वस्वरूप, ऐसा आता है। यह ७९ वें कलश में आता है। 'सहजपरमतत्त्व स्वस्वरूपं' आहाहा ! महा भगवान आत्मा सहज परमतत्त्व, महा परमतत्त्व ध्रुव वस्तु, वह जीव का स्व स्वरूप। वह जीव, वह आत्मा, ऐसे आत्मा का आश्रय लेकर। आश्रय लिया पर्याय ने। आश्रय दिया द्रव्य ने।

मुमुक्षु : द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता न ? स्पर्श नहीं करता और आश्रय दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ (पर्याय) ऐसे गयी, इसलिए दिया न। उसने कुछ इनकार नहीं किया कि नहीं... नहीं... इस ओर मत आ।

मुमुक्षु : उसे छुए नहीं और स्पर्श नहीं करे तो कहाँ से दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात है। कहो, समझ में आया ?

'भूदत्थमस्सिदो खलु' नहीं आया ? ऐई ! भूतार्थ त्रिकाली का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आश्रय करनेवाली तो पर्याय है। आश्रयदाता तो द्रव्य है। ऐई ! उसमें से निकालना पड़ेगा या नहीं 'भूदत्थमस्सिदो खलु' यह महासिद्धान्त है। (समयसार की) ११वीं गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है। कैलाशचन्द्रजी ने लिखा है, परन्तु वापस अर्थ में घुमाते हैं, मेल नहीं खाता... मेल कैसे करना, इसकी बात समझनी चाहिए। ऐसे अपनी कल्पना से करे, ऐसा कहीं चले ? यह तो अनादि के वीतराग सन्त मार्ग कहते आये हैं, परिणमते आये हैं, होते आये हैं, मुक्ति पाते आये हैं। यह कहीं किसी व्यक्ति का मार्ग है ? अनादि सन्त यह मार्ग कहते आये हैं और इस प्रकार का परिणमन करते आये हैं तथा इस प्रकार का कहते आये हैं। ओहोहो ! वाह !

विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः । अन्तिम लाईन । ठीक । चारु अर्थात् सुन्दर । शर्म अर्थात् सुख । अब्धि अर्थात् समुद्र, उसका पूर है । लो ! वाह !

मुमुक्षु : जिनधर्म के विशेषण हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जैनधर्म के विशेषण हैं । आहाहा ! जैनधर्म तो अतीन्द्रिय आनन्ददायक है, ऐसा कहते हैं । दायक अर्थात् बाद में दे, ऐसा नहीं । उसी समय अतीन्द्रिय आनन्द का दाता, परिणमन, उसका नाम जैनधर्म है । आहाहा ! यह पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी... भले स्वयं को अमुक शैली लक्ष्य में रखकर किया हो, परन्तु किया कैसा है ! (समयसार) १५वीं गाथा में कहा कि जैनशासन उसे कहना । भले वह लक्ष्य में हो और यह बात की हो । परन्तु बात तो...

भावश्रुत उपयोग अर्थात् आनन्ददायक दशा, वह जैनशासन है । आहाहा ! उसमें आपदा क्या ? विपदा क्या ? दुःख कहाँ ? आहाहा ! कष्ट को सहन करना, वह जैनधर्म नहीं है - ऐसा कहते हैं । कष्ट को सहन करना अर्थात् ऐसे आकुलता लगे । यहाँ तो अतीन्द्रिय आनन्द की दशा की परिणति प्रगट होती है । प्रवाह का पूर बहाया, कहते हैं । आहाहा ! अन्तर का भाव जो भरा था । पूर्ण भरितअवस्थ । स्वभाव का सागर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द के सहारे गयी, उसके आश्रय में गयी, उस परिणति को यहाँ जैनधर्म कहते हैं । स्वद्रव्य आश्रय परिणति प्रगटे, उसे जैनधर्म कहते हैं । परद्रव्य आश्रय राग हो, वह यथार्थ जैनधर्म नहीं है । निश्चय हो, वहाँ व्यवहार कहने में आता है । समझ में आया ?

अब चलती है अहिंसाव्रत की बात, वहाँ यह डाला है परन्तु डाले न । सुन न ! व्यवहार अहिंसाव्रत का विकल्प है, वह प्रयत्न है, ऐसा तुझे बतलाया । मुनि को होता है परन्तु वह कहीं वास्तविक चीज़ नहीं है, वह यथार्थ वस्तु नहीं है । अन्तर आत्मा छह काय के घात और जिलाने के विकल्प से भी भिन्न है, ऐसा कहते हैं । छह काय के जीव को मारने के विकल्प से तो भिन्न, परन्तु उन्हें बचाने के विकल्प से (भी) जैनधर्म भिन्न है । आहाहा ! समझ में आया ?

वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है । आहाहा ! ऐसा कि जैनधर्म की अस्ति है, ऐसा कहते हैं, भाई ! ऐसा कि यह कहनेमात्र जैनधर्म नहीं है । इसकी अस्ति है । आहाहा ! ऐसा जैनधर्म हमारी परिणति में वर्तता है, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? समन्तभद्राचार्य में भी

यह आया है। अहिंसा परम ब्रह्म, इसलिए वे ऐसा स्पष्टीकरण करते हैं कि छह काय की-जीव की दया, वह अहिंसा परम धर्म है। इसका अर्थ ऐसा किया है। उसकी बात कहाँ है? यहाँ तो परम ब्रह्म है। वह तो अपरम है। आहाहा! ऐसा अर्थ करते हैं, देखो! दया, वह धर्म भगवान ने कहा है। समन्तभद्राचार्य ने अहिंसा को परम धर्म कहा है। छह काय की दया, वह अहिंसा परम धर्म है।

मुमुक्षु : छह काय में स्वयं आया या स्वयं रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं आवे, तब तो रागरहित हो गया वह तो। लो, यह पहली गाथा अहिंसाव्रत और मुनि की अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा में ऐसा एक शुभभाव प्रयत्नपूर्वक होता है, बस इतना। उसमें भी ऐसा आता है (कि) प्रयत्न से जानना। योगसार में (आता है)। षट्द्रव्य को प्रयत्न से जानना, ऐसा आता है। व्यवहार से आवे न!

मुमुक्षु : दोनों हैं अवश्य न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है। जाननेयोग्य वस्तु नहीं?

ऐसा वीतरागमार्ग जिसमें भगवान स्वयं तो आनन्दस्वरूप है, परन्तु जिसमें आनन्द उसका आश्रय करके प्रगट हुआ, वह आनन्द की दशा ही जैनधर्म है। आहाहा! कथन की गजब पद्धति है न! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और वह वीतरागी परिणति आनन्ददायक हुई, उसे जैनधर्म कहते हैं। ऐसा कहकर अहिंसाव्रत का विकल्प वहाँ होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। आदरनेयोग्य है, ऐसा नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-५७

रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं ।
 जो पजहदि साहु सया बिदियवदं होइ तस्सेव ॥५७॥
 रागेण व द्वेषेण वा मोहेन वा मृषाभाषापरिणामं ।
 यः प्रजहाति साधुः सदा द्वितीयव्रतं भवति तस्यैव ॥५७॥

सत्यव्रतस्वरूपाख्यानमेतत् । अत्र मृषापरिणामः सत्यप्रतिपक्षः, स च रागेण वा द्वेषेण वा मोहेन वा जायते । सदा यः साधुः आसन्नभव्यजीवः तं परिणामं परित्यजति तस्य द्वितीयव्रतं भवति इति ।

जो राग, द्वेष रु मोह से परिणाम हो मृष—भाष का ।
 छोड़े उसे जो साधु, होता है उसे व्रत दूसरा ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थः—[रागेण वा] राग से, [द्वेषेण वा] द्वेष से [मोहेन वा] अथवा मोह से होनेवाले [मृषाभाषापरिणामं] मृषाभाषा के परिणाम को [यः साधुः] जो साधु [प्रजहाति] छोड़ता है, [तस्य एव] उसी को [सदा] सदा [द्वितीयव्रतं] दूसरा व्रत, अर्थात् सत्यमहाव्रत [भवति] है ।

टीका :—यह, सत्यव्रत के स्वरूप का कथन है ।

यहाँ (ऐसा कहा है कि) सत्य का प्रतिपक्ष; अर्थात्, सत्य से विरुद्ध परिणाम, वह मृषापरिणाम है; वे (असत्य बोलने के परिणाम) राग से, द्वेष से अथवा मोह से होते हैं । जो साधु—आसन्नभव्य जीव, उन परिणामों का परित्याग करता है; अर्थात्, समस्त प्रकार से छोड़ता है, उसे दूसरा व्रत होता है ।

प्रवचन-६१, श्लोक-७७-७९, गाथा-५७-६०, मंगलवार, आषाढ शुक्ल ७, दिनांक २९-०६-१९७१

गाथा ५७। सत्यव्रत के स्वरूप का कथन। अहिंसाव्रत की व्याख्या हो गयी।

रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं ।

जो पजहदि साहु सया बिदियवदं होइ तस्सेव ॥५७॥

जो राग, द्वेष रु मोह से परिणाम हो मृष— भाष का।

छोड़े उसे जो साधु, होता है उसे व्रत दूसरा ॥ ५७ ॥

अभी मुनि की व्याख्या है न? यह, सत्यव्रत के स्वरूप का कथन है। आहाहा! आत्मा के अन्तर चैतन्य के शुद्ध आनन्द के आदरसहित जो स्वरूप में स्थिरता हुई है, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहते हैं। उस चारित्रदशा में पूर्ण चारित्र न हो, इसलिए ऐसे पंच महाव्रत के शुभोपयोगरूप भाव उसे होते हैं। शुभराग, शुभपरिणाम को यहाँ व्रत कहते हैं।

यहाँ (ऐसा कहा है कि) सत्य का प्रतिपक्ष; अर्थात्, सत्य से विरुद्ध परिणाम, वह मृषा... सत्य से उल्टा, वह झूठ। वह (असत्य बोलने के परिणाम) राग से, ... (होते हैं) अथवा कोई अनुकूल प्राप्त करने की चीज़ (के) राग के कारण झूठ बोले, कोई प्रतिकूलता का निषेध करने, अभाव होने के लिए द्वेष से झूठ बोले। कोई मोह से झूठ बोले। यह राग से, द्वेष से अथवा मोह से... असत्य बोलने के परिणाम होते हैं।

जो साधु—आसन्नभव्य जीव, ... आसन्न (अर्थात्) जिसकी मुक्ति अब नजदीक है। आहाहा! संसार के किनारे आ गया है। आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा तो है, परन्तु उसकी पूर्ण निर्विकल्पता हुई नहीं। सातवीं भूमिका की। इस अपेक्षा से। उसे ऐसे पंच महाव्रत के भाव होते हैं। वह आसन्नभव्य जीव, उन परिणामों का परित्याग करता है; ... राग, द्वेष और मोह से बोले जाते भाव, होनेवाले भाव को परित्यजता है। समस्त प्रकार से छोड़ता है, ... मुनि झूठ छोड़ते हैं। परित्यजता है न? समस्त प्रकार से छोड़ता है, उसे दूसरा व्रत होता है। यह आत्मा के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की दशासहित की बात है। ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान न हो और सत्यव्रत हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी व्रत की भूमिका छठवें गुणस्थान में उस प्रकार के भाव होते हैं, उन्हें

व्यवहारव्रत कहा जाता है। निश्चयव्रत तो स्वरूप में लिपट जाना; स्वरूप आनन्द है, उसमें लीन होना, उसे निश्चय—सच्चा व्रत कहते हैं। यह व्यवहारव्रत उसे विकल्प होते हैं। पुण्य बन्ध का कारण है और स्वभाव के आश्रय से चैतन्य भगवान अपने अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से जो दृष्टि, ज्ञान और लीनता हुई, वह साक्षात् मुक्ति का कारण है।

श्लोक-७७

अब, ५७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :-

(शालिनी)

वक्ति व्यक्तं सत्य-मुच्चैर्जनो यः,
स्वर्गस्त्रीणां भूरिभोगैकभाक् स्यात् ।
अस्मिन् पूज्यः सर्वदा सर्वसद्भिः,
सत्यासत्यं चान्यदस्ति व्रतं किम् ॥७७॥

(हरिगीतिका)

स्पष्टता से जो पुरुष, नित सत्य वाणी बोलता ।
स्वर्ग की बहु देवियों को, एक वह ही भोगता ॥
इस लोक में भी सर्वदा वह, सज्जनों से पूज्य हो ।
सत्य से बढ़कर कहो सच, कौन जग में व्रत अहो ॥७७॥

[श्लोकार्थः—] जो पुरुष, अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है, वह स्वर्ग की स्त्रियों के अनेक भोगों का एक भागी होता है (अर्थात्, वह परलोक में अनन्यरूप से देवाङ्गनाओं के बहुत से भोग प्राप्त करता है) और इस लोक में सर्वदा सर्व सत्पुरुषों का पूज्य बनता है। वास्तव में क्या सत्य से अन्य कोई (बढ़कर) व्रत है ?

श्लोक-७७ पर प्रवचन

अब, ५७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :—

वक्ति व्यक्तं सत्य-मुच्चैर्जनो यः,
स्वर्गस्त्रीणां भूरिभोगैकभाक् स्यात् ।
अस्मिन् पूज्यः सर्वदा सर्वसद्भिः,
सत्यासत्यं चान्यदस्ति व्रतं किम् ॥७७॥

जो पुरुष, अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है,... अति स्पष्टरूप से अर्थात् किसी को प्रसन्न रखने के लिए कुछ फेरफार नहीं करता। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है, वह स्वर्ग की स्त्रियों के अनेक भोगों का एक भागी होता है... ऐसा बतलाया कि सत्य बोलने का भाव पुण्य शुभभाव है। समझ में आया? सत्यव्रत वह दूसरा व्रत, उसका भाव शुभ है; इसलिए उसे पुण्यबन्ध होकर स्वर्ग की स्त्री आदि की अनुकूलता बाहर की मिलती है। ऐसा स्पष्ट कहा। कोई कहे, भाई! इस व्रत के कारण संवर-निर्जरा होती है, आंशिक होती है, लो। यहाँ तो इनकार करते हैं। देखो न, यह स्पष्ट बात करते हैं।

मुमुक्षु : पाप नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप नहीं हुआ। मिथ्यात्व का पाप साथ में इकट्ठा पड़ा है न? वह मिथ्यात्व का भले रहा। मूल पाप। राग का स्वामी होना, देह की क्रिया में करता हूँ, व्रत के परिणाम, वह मेरी चीज़ है—ऐसी मान्यता है, वह तो महा मिथ्यात्व है। सात व्यसन से बड़ा पाप है। उस पाप की भूमिका में व्रत-व्रत हो नहीं सकते। बालव्रत और मूर्खता भरपूर तप होता है। जहाँ आत्मा ज्ञातादृष्टा और सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है, ऐसा जहाँ अन्तर में स्वरूप की जागृति हुई नहीं और अकेले अन्ध राग के भाव, पंच महाव्रत के भाव करता है, वह सब संसार खाते हैं, भटकने के खाते हैं—ऐसा कहते हैं। यहाँ तो समकित्ती के शुभभाव भी स्वर्ग की स्त्री आदि की प्राप्ति करे, ऐसा तो यहाँ वर्णन किया है। समकित्ती का व्रत उसे कहीं संवर दे, निर्जरा दे, (ऐसा नहीं है)। कहो, इसमें स्पष्ट कहा है या नहीं?

जो पुरुष, अति स्पष्टरूप से सत्य बोलता है,... बोलने की क्रिया तो जड़ है। उसके भाव की बात है। बोलने के काल में उसका जो सत्य बोलने का शुभभाव है, वह स्वर्ग की स्त्रियों के अनेक भोगों का एक भागी होता है... उस पुण्य के फल में संयोग मिलेंगे, ऐसा कहते हैं। भले संयोग को परन्तु... ऐसा। वह सत्य बोलने का शुभभाव संयोगी भाव है। स्वाभाविक भाव नहीं, इसलिए उस भाव से संयोग मिलेगा। उसमें आत्मा को उससे कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? लो, ऐसी यह व्रत की व्याख्या है। श्वेताम्बर में पाँच महाव्रत निर्जरा के स्थान कहे हैं, ठाणांग में। पंच महाव्रत निर्जरा के स्थान हैं, लो! अब बेचारे करें क्या? यहाँ कहते हैं कि ये पंच महाव्रत के परिणाम संयोगी भाव विकारी है, इसलिए संयोग आएगा। आत्मा की शान्ति और आत्मा के आनन्द को मदद करे, वह यह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? भोगों का एक भागी होता है, ऐसा। स्वतन्त्र पुण्य किया है न? आत्मदर्शन ज्ञान-चारित्र की भूमिका में ऐसा शुभभाव है, इसलिए उसे बाहर की स्वर्ग आदि की स्त्रियों की अनुकूलता प्राप्त होगी, ऐसा कहते हैं।

(अर्थात्, वह परलोक में अनन्यरूप से देवाङ्गनाओं के बहुत से भोग प्राप्त करता है) और इस लोक में सर्वदा सर्व सत्पुरुषों का... लो। 'सर्वदा सर्वसद्भि' धर्मात्मा पुरुषों को पूज्य बनता है। वास्तव में क्या सत्य से अन्य कोई (बड़कर) व्रत है? अहिंसा में परम ब्रह्म कहा था यह वीतराग। वह तो व्रत की विकल्प की बात है। वास्तव में क्या सत्य से अन्य कोई (बड़कर) व्रत है? आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यबन्ध

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य है शुभभाव (है), परन्तु समकित की भूमिका में चारित्रवन्त को ऐसा भाव होता है परन्तु उससे पुण्य बँधता है और बाहर की सामग्री मिलेगी। बस, इतना है।

गाथा-५८

गामे वा णयरे वाऽरण्ये वा पेच्छिऊण परमत्थं ।
 जो मुयदि ग्रहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव ॥५८॥
 ग्रामे वा नगरे वाऽरण्ये वा प्रेक्षयित्वा परमर्थम् ।
 यो मुञ्चति ग्रहणभावं तृतीयव्रतं भवति तस्यैव ॥५८॥

तृतीयव्रतस्वरूपाख्यानमेतत् । वृत्यावृत्तो ग्रामः तस्मिन् वा चतुर्भिर्गोपुरैर्भासुरं नगरं तस्मिन् वा मनुष्यसञ्चारशून्यं वनस्पतिजातवल्लीगुल्मप्रभृतिभिः परिपूर्णमरण्यं तस्मिन् वा परेण विसृष्टं निहितं पतितं वा विस्मृतं वा परद्रव्यं दृष्ट्वा स्वीकारपरिणामं यः परित्यजति, तस्य हि तृतीयव्रतं भवति इति ।

कानन, नगर या ग्राम में जो देख पर वस्तु उसे ।
 छोड़े ग्रहण के भाव, होता तीसरा व्रत है उसे ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थः—[ग्रामे वा] ग्राम में, [नगरे वा] नगर में [अरण्ये वा] या वन में [परम अर्थम्] परायी वस्तु को [प्रेक्षयित्वा] देखकर, [यः] जो (साधु) [ग्रहणभावं] उसे ग्रहण करने के भाव को [मुञ्चति] छोड़ता है, [तस्य एव] उसी को [तृतीयव्रतं] तीसरा व्रत, अर्थात् अचौर्यमहाव्रत [भवति] है ।

टीका :—यह तीसरे व्रत के स्वरूप का कथन है ।

जिसके चौतरफ बाड़ हो, वह ग्राम (गाँव) है; जो चार द्वारों से सुशोभित हो, वह नगर है; जो मनुष्य के सञ्चाररहित, वनस्पतिसमूह, बेलों और वृक्षों के झुण्ड आदि से खचाखच भरा हो, वह अरण्य है । ऐसे ग्राम, नगर या अरण्य में अन्य से छोड़ी हुई, रखी हुई, गिरी हुई अथवा भूली हुई परवस्तु को देखकर उसके स्वीकार परिणाम का (अर्थात्, उसे अपनी बनाने-ग्रहण करने के परिणाम का) जो परित्याग करता है, उसे वास्तव में तीसरा व्रत होता है ।

गाथा-५८ पर प्रवचन

तीसरे व्रत का स्वरूप। ५८ गाथा।

गामे वा णयरे वाऽरण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं ।
जो मुयदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव ॥५८॥
कानन, नगर या ग्राम में जो देख पर वस्तु उसे ।
छोड़े ग्रहण के भाव, होता तीसरा व्रत है उसे ॥ ५८ ॥

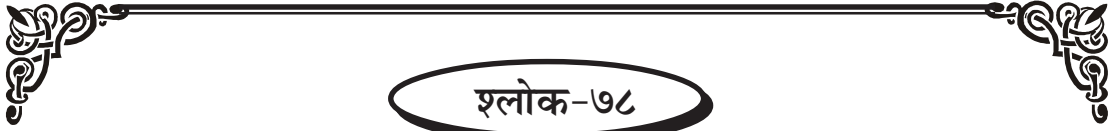
तीसरा व्रत। यह तीसरे व्रत के स्वरूप का कथन है। गाँव की व्याख्या। गाँव किसे कहना? जिसके चौरफ बाड़ हो, वह ग्राम (गाँव) है;... यह बाड़ होती है न? थोर की। पहले तो बहुत बाड़ थी। गाँव के चारों ओर बाड़। वहाँ गाँव में गढ़-बढ़ कहाँ थे? बाड़ के ही बड़े गढ़ थोर की बड़ी-बड़ी बाड़। दो-दो माथोड़ा (मनुष्याकार) लम्बी हाथिया थोर की बाड़ और लम्बे थोर, वह गाँव। यह तो पाठ में गाँव है न, उसकी व्याख्या की है।

जो चार द्वारों से सुशोभित हो, वह नगर है; जो मनुष्य के सञ्चाररहित,... जिसमें मनुष्यों का संचार न हो, आवागमन न हो। जिसमें वनस्पतिसमूह,... होवे। बेलों और वृक्षों के झुण्ड आदि से खचाखच भरा हो, वह अरण्य है। तीन की व्याख्या हुई। पाठ में तीन है न? गाँव, नगर, रण। रण है, उसे यहाँ अरण्य कहा। ऐसे ग्राम, नगर या अरण्य में अन्य से छोड़ी हुई,... किसी ने कोई भी वस्तु छोड़ दी हो। गाँव में, नगर में, रण में, ऐसे तीनों में छोड़ दी हो। गाँव में कोई छोड़कर चला गया हो। लो!

रखी हुई,... हो। गाँव में कहीं चीज़ रखी हो और नगर में या वन में कोई चीज़ रखी हो। भूली हुई... किसी की चीज़ हो। यह गहना पड़ा है, कोई मनुष्य भूल गया है। परवस्तु को देखकर उसके स्वीकार परिणाम का... जो मुनि अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित है, उसे ऐसे तीसरे व्रत का शुभराग, शुभ उपयोग होता है। उसे कोई पर की चीज़ हो, उसे उसके स्वीकार परिणाम का जो परित्याग करता है,... लो, मुख्य यह। 'परित्यजति' संस्कृत में है। उसमें भी 'परित्यजति' था न? 'परित्यजति' ऐसा आया। परिणाम 'परित्यजति' संस्कृत में, हों! छोड़ता है। प्रजहाति है न, मूल तो? ५७ गाथा में। प्रजहाति

मूल पाठ में है। उसका अर्थ संस्कृतकार ने 'परित्यजति' किया है। प्रजहाति झूठ बोलने का त्याग है, जिसे सत्य बोलना है, ऐसा। वह असत्य को सर्वथा प्रकार से छोड़ता है। सत्य बोलने का भाव है, वह महाव्रत शुभभाव है परन्तु उसे होता है। इतना यहाँ सिद्ध करते हैं।

यहाँ तीसरे व्रत में वह कोई भी चीज़ गाँव में, नगर में या वन में किसी की रखी हुई, किसी से छूटी हुई, किसी से भूली हुई, ऐसी चीज़ को लेने के परिणाम छोड़ दे। ऐसी चीज़ है, लाओ ले लूँ। किसी को धर्मादा में दूँगा, ऐसे परिणाम मुनि के नहीं होते, ऐसा कहते हैं। पूरी दुनिया पड़ी है। कहो, कलश निकला हुआ कोई दिखायी दे, सोने की मोहरों का, लो। जंगल में पड़ा हो, भूल गया हुआ पड़ा हो। ऐसे दिखायी दे। लाओ न, ले लूँ। गृहस्थों को दूँगा। वे धर्म में खर्च करेंगे। मन्दिर-बन्दिर बनायेंगे। धर्म में खर्च करना है न! परन्तु पहले लेने के परिणाम ही तेरे खोटे हैं वे? उनका क्या हुआ? परन्तु उस स्वीकार परिणाम को छोड़ दे। चाहे तो हीरा और माणिक दिखायी दे ऐसे। आहाहा! साधु किसे कहे? अन्तर में आनन्द की लहर में झूलते होते हैं, उन्हें ऐसा अशुभ टालने का विकल्प होता है। उसे वास्तव में तीसरा व्रत होता है।



श्लोक-७८

अब, ५८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(आर्या)

आकर्षति रत्नानां सञ्चयमुच्चैरचौर्यमेतदिह ।

स्वर्गस्त्रीसुखमूलं क्रमेण मुक्त्यङ्गनायाश्च ॥७८॥

उग्र अचौर्य जगत में रत्नों का समूह आकृष्ट करे।

परभव में सुर-कामिनी कारण क्रमशः लक्ष्मी-मुक्ति वरे ॥

[श्लोकार्थ : —] यह उग्र अचौर्य इस लोक में रत्नों के सञ्चय को आकर्षित करता है और (परलोक में) स्वर्ग की स्त्रियों के सुख का कारण है तथा क्रमानुसार मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण है।

श्लोक-७८ पर प्रवचन

अब, ५८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— उसमें सत्य में स्त्री आदि देवांगनाओं के योग की बात की थी। परलोक में। इसलोक में सत्पुरुषों से पूजनीय।

आकर्षति रत्नानां सञ्चयमुच्चैरचौर्यमेतदिह।

स्वर्गस्त्रीसुखमूलं क्रमेण मुक्त्यङ्गनायाश्च ॥७८॥

श्लोकार्थः : यह उग्र अचौर्य इस लोक में... अचौर्य शुभ परिणाम इस लोक में रत्नों के सञ्चय को आकर्षित करता है... पहला तो इस लोक में लिया। और (परलोक में) स्वर्ग की स्त्रियों के सुख का कारण है... देखा? यह संयोग है, ऐसा कहते हैं। तीसरे महाव्रत के परिणाम संयोगी भाव है, इसलिए संयोग देता है। उसमें कुछ धर्म दे और आत्मा में एकाग्र हो, ऐसा नहीं है। इतना तो स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु : लिखा है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पश्चात् क्रम से। वह स्वर्ग की स्त्रियों के सुख का कारण है तथा क्रमानुसार... वह राग फिर छोड़ देगा, क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में राग हेय है, वह तो है। परन्तु अभी है, पश्चात् उपादेय आत्मा में एकाग्र होकर छोड़ देगा। इसलिए क्रमानुसार मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण है। यह तो समकिति को... व्रत कारण अर्थात् व्यवहार कहा। यहाँ व्यवहार कहा। सम्यग्दृष्टि को। यहाँ अज्ञानी की बात ही नहीं है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहते हैं न? मोक्ष (मार्ग) दो कहे न। व्यवहार से कथन है। मोक्षमार्ग दो कथन में आते हैं या नहीं? ऐसे यह कथन है, निरूपण है।

क्रमानुसार मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण है। राग का अभाव हुआ है, दृष्टि, ज्ञान और शान्ति तो है। अब वह राग है, उसे छोड़ेगा। छूटेगा ही। उसे छूट जाएगा। क्रमानुसार (छूट जाएगा), इसलिए उसे छोड़कर मुक्ति को प्राप्त हो करेगा। परन्तु यहाँ तो पहले वह शुभभाव है, इसलिए संयोग देता है, इतनी बात की है। दूसरे व्रत में ऐसा कहा।

पहले व्रत में जरा वीतरागी अहिंसा डाली थी। विकल्प है, उसे गौण कर दिया। अहिंसा आत्मा। अकेला वीतरागी स्वभाव ऐसा जिसने प्रगट किया है, वह अहिंसा है। वह तो मुक्ति का कारण है। सत्यव्रत वह स्वर्ग का कारण ऐसा कहा। अचौर्यव्रत स्वर्ग का कारण और क्रम से मुक्ति का कारण है। इस प्रकार से लिया है। समझ में आया? इस कलश में लिया, परन्तु वह समकित्ती का हो या मिथ्यात्वी का हो, शुभभाव है, वह बन्ध का ही कारण है।

मुमुक्षु : इसमें भी बन्ध आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यह भी बन्ध है। इसे राग का भावबन्ध ही है परन्तु दृष्टि में हेय है, चारित्र में कमजोरी से आ रहा है। वह कमजोरी उग्र पुरुषार्थ से छोड़ देगा। क्योंकि राग को छोड़ने के मार्ग में पड़ा है। स्वभाव की एकाग्रता की पूर्णता करने के मार्ग में पड़ा है। आहाहा! ऐसे समकित्ती जीव को ऐसा महाव्रत का भाव मुनि को होता है, वह स्वर्ग के संयोग देता है। पश्चात् क्रम से वह राग छोड़ेगा, तब उसे मुक्ति देगा। राग छोड़ेगा, पश्चात्, हों! इसलिए यह टीका जरा रतनचन्दजी जैसों को पसन्द नहीं आती न! यह स्पष्ट कर डालते हैं। व्रत के परिणाम में यह मिलता है, यहाँ तो ऐसा स्पष्ट कहते हैं।

गाथा-५९

दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभावं णियत्तदे तासु ।
 मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं ॥५९॥
 दृष्ट्वा स्त्रीरूपं वाञ्छाभावं निवर्तते तासु ।
 मैथुनसञ्जाविवर्जितपरिणामोऽथवा तुरीयव्रतम् ॥५९॥

चतुर्थव्रतस्वरूपकथनमिदम् । कमनीयकामिनीनां तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणद्वारेण समुप-
 जनितकौतूहलचित्तवाञ्छापरित्यागेन, अथवा पुम्वेदोदयाभिधाननोकषायतीव्रोदयेन सञ्जात-
 मैथुनसञ्जापरित्यागलक्षणशुभपरिणामेन च ब्रह्मचर्यव्रतं भवति इति ।

जो देख रमणी रूप, वांछाभाव उसमें छोड़ता ।
 परिणाम मैथुन-संज्ञ-वर्जित, व्रत चतुर्थ यही कहा ॥ ५९ ॥

अन्वयार्थ :—[स्त्रीरूपं दृष्ट्वा] स्त्रियों के रूप देखकर, [तासु] उनके प्रति
 [वांछाभावं निवर्तते] वांछाभाव की निवृत्ति वह, [अथवा] अथवा [मैथुनसंज्ञा-
 विवर्जितपरिणामः] मैथुनसंज्ञारहित जो परिणाम, वह [तुरीयव्रतम्] चौथा व्रत,
 अर्थात् ब्रह्मचर्यमहाव्रत है ।

टीका :—यह, चौथे व्रत के स्वरूप का कथन है ।

सुन्दर कामिनियों के मनोहर अङ्ग के निरीक्षण द्वारा उत्पन्न होनेवाली कुतूहलता
 के चित्तवांछा के परित्याग से अथवा पुरुषवेदोदय नाम का जो नोकषाय का तीव्र
 उदय, उसके कारण उत्पन्न होनेवाली मैथुनसंज्ञा के परित्यागस्वरूप शुभपरिणाम से
 ब्रह्मचर्यव्रत होता है ।

गाथा-५९ पर प्रवचन

गाथा ५९ । चौथे व्रत की व्याख्या ।

दट्टूण इत्थिरूवं वांछाभावं णियत्तदे तासु ।
 मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं ॥५९॥
 जो देख रमणी रूप, वांछाभाव उसमें छोड़ता ।
 परिणाम मैथुन-संज्ञ-वर्जित, व्रत चतुर्थ यही कहा ॥ ५९ ॥

टीका : यह, चौथे व्रत के स्वरूप का कथन है। सुन्दर कामिनियों के मनोहर अङ्ग के निरीक्षण द्वारा... शरीर की कान्ति आदि, कोमलता आदि, सुकोमलता आदि सुन्दर कामिनियों के मनोहर अङ्ग... आहाहा! यह शरीर मिट्टी का पुतला, माँस का पुतला है। माँस और हड्डियों की सुन्दरता। निरीक्षण द्वारा उत्पन्न होनेवाली कुतूहलता के चित्तवांछा के... भाषा देखी? आहाहा! ऐसा हो, वाह! कौतूहलता हो। कुतूहलता के चित्तवांछा के परित्याग से... यहाँ यह शब्द आया। उसमें भी परित्याग था, यहाँ भी परित्याग है। 'विवर्जित' है न? 'विवर्जित' विशेष वर्जित। पाठ में।

महाव्रतधारी, आत्मज्ञानी सन्त को ऐसा भाव स्त्री को देखकर कौतूहल के परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। कोई बाह्य चीज़ विस्मयकारी है ही नहीं। आहाहा! विस्मयकारी तो चैतन्य आनन्दमूर्ति है। उसका जिसे दृष्टि में आनन्द तैरता है। धर्मात्मा को तो दृष्टि में आनन्द का स्वभाव तैरता है। उसमें इन स्त्रियों के मनोहर शरीर के अंगों को देखकर कुतूहलता के चित्तवांछा के परित्याग से... लो। अथवा पुरुषवेदोदय नाम का जो नोकषाय का तीव्र उदय, उसके कारण उत्पन्न होनेवाली मैथुनसंज्ञा के परित्यागस्वरूप... देखो! यहाँ आया, दोनों में परित्याग। शुभपरिणाम से... लो, यह शुभपरिणाम है। ब्रह्मचर्यव्रत होता है। यह ब्रह्मचर्य का शुभभाव होता है। पाठ है।

समकित्ती और चारित्रवन्त आत्मा के आनन्द की रमणतावाला मुनि है, उसे ऐसा चौथा ब्रह्मचर्यव्रत शुभपरिणाम है, पुण्य है, आस्रव है। ऐसा किसलिए लिखना चाहिए? यह तो कहा है, हस्तावलम्ब देखकर निमित्तरूप से उपदेश (किया है)। वह सब निमित्त है। आया है परन्तु उसका फल संसार है। एक तो देखने के कौतूहल के परिणाम का त्याग

और तीव्र कर्म के निमित्त के उदय में जो विषय के परिणाम होते हैं, उनका त्याग। ऐसा। ऐसे शुभपरिणाम से ब्रह्मचर्यव्रत होता है। आहाहा! चारित्रवन्त को। अज्ञानी को वह नहीं होता। यह स्पष्टीकरण करेंगे।

श्लोक-७९

अब, ५९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(मालिनी)

भवति तनु-विभूतिः कामिनीनां विभूतिं,
स्मरसि मनसि कामिन्स्त्वं तदा मद्रुचः किम्।
सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं विहाय,
व्रजसि विपुल-मोहं हेतुना केन चित्रम् ॥७९॥

(वीरछन्द)

कामिनियों की तन-विभूति का कामी पुरुष यदि मन से।
करे स्मरण तो होगा क्या लाभ तुझे मम वचनों से ॥
सहजस्वरूपी परम तत्त्व को क्यों त्यागे आश्चर्य अहो।
विपुल मोह को प्राप्त हुए हो किस कारण से तुम्हीं कहो ॥

[श्लोकार्थः —] कामिनियों की जो शरीरविभूति, उस विभूति का, हे कामी पुरुष! यदि तू मन में स्मरण करता है तो मेरे वचन से तुझे क्या लाभ होगा? अहो! आश्चर्य होता है कि सहज परमतत्त्व को, निजस्वरूप को छोड़कर तू किस कारण विपुल मोह को प्राप्त हो रहा है!

श्लोक-७९ पर प्रवचन

अब, ५९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

भवति तनु-विभूतिः कामिनीनां विभूतिं,
 स्मरसि मनसि कामिन्स्त्वं तदा मद्रुचः किम् ।
 सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं विहाय,
 व्रजसि विपुल-मोहं हेतुना केन चित्रम् ॥७९॥

श्लोकार्थः :: अरे ! कामिनियों की जो शरीरविभूति,... लो, यह शरीर विभूति । धूल की राख । यह विभूति नहीं कहते, भूति ? भस्म । इस शरीर के भस्म की विभूति । आहाहा । बड़ी आँखें हों, काले डेला हों, कान कुण्डल जैसे हों, मुख चन्द्रमा जैसा हो, नाक गरुड़ जैसी हो, होंठ लाल हो, गला लम्बा हो और हाथ-पैर... यह सब मिट्टी के पुतले के आकार हैं ।

मुमुक्षु : सब मापसर हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मापसर है, इसलिए सुन्दर कहते हैं न । इस कामिनी शरीर की विभूति मिट्टी-जड़ की विभूति है । आहाहा !

कामिनियों की जो शरीरविभूति, उस विभूति का, हे कामी पुरुष! यदि तू मन में स्मरण करता है... मन में, हों ! वाह ! क्या है ? आहाहा ! एक क्षण में कुछ रोग हो... ऐसा मुर्दा... उसे देखते ग्लानि आवे । आहा ! ऐसे शरीर को देखकर हे कामी पुरुष! यदि तू मन में स्मरण करता है... शरीर की सुन्दरता को मन में स्मरण करेगा । ख्याल में आकर ऐसा कहते हैं.. आहाहा ! तो मेरे वचन से तुझे क्या लाभ होगा ? मुनि कहते हैं । हम तो आत्मा के ब्रह्मचर्य के... आत्मा के ब्रह्म आनन्द की चर्या की रमणता में ऐसा व्यवहार का शुभभाव का ब्रह्मचर्य भाव हो, उसे अशुभभाव नहीं होता । ऐसा जो तुझे उपदेश किया । यदि तू ऐसा निरीक्षण करके ऐसे भाव करेगा तो मेरे वचन से तुझे कुछ लाभ नहीं होगा । सुनकर उसने बुरे भाव छोड़े नहीं तो तूने मेरा सुना नहीं, ऐसा कहते हैं । आहाहा !

अहो ! आश्चर्य होता है कि सहज परमतत्त्व को,... लो, पाठ है न ? सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं स्व-स्वरूपं । अरे ! सहज भगवान आनन्द परमतत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, प्रभु ! अतीन्द्रिय आनन्द की चूसनी आत्मा । आहाहा ! वह तो अनादि से स्वाभाविक तत्त्व है । सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा । आहाहा ! सत् शाश्वत् स्वाभाविक ज्ञान और आनन्द, ऐसा जो परमतत्त्व । स्वस्वरूप की व्याख्या की है । स्व अर्थात् निजस्वरूप,

ऐसा। पाठ में यह है। स्व-स्वरूपं... सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं... सहज परमतत्त्व। परमभाव ऐसा स्वस्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु, आकुलतारहित चीज, निराकुल स्व-निजस्वरूप, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द लबालब भरा है। अरे! ऐसे आनन्दतत्त्व को भूलकर, अपने निजानन्द तत्त्व को भूलकर छोड़कर तू किस कारण विपुल मोह को प्राप्त हो रहा है! आहाहा! क्या है तुझे यह ?

भगवान परमतत्त्व निजस्वरूप आनन्द, उस अतीन्द्रिय आनन्द के एक सेकेण्ड के स्वाद के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन जहाँ सड़ा हुआ तिनका दिखायी दे, बिल्ली सड़ी हो, कुत्ता सड़ गया हो, ऐसे समकिति को भोग आत्मा के आनन्द के समक्ष... आहाहा! ऐसे दिखायी देते हैं। उसे तू आनन्द के भाव को छोड़कर ऐसे विपुल मोह को क्यों प्राप्त हो रहा है? आहाहा! चैतन्यस्वरूप आनन्द है, वहाँ क्यों आकर्षित नहीं होता? ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, वहाँ क्यों आकर्षित नहीं होता? और यहाँ कहाँ आकर्षित होने लगा? ऐसा कहते हैं।

परम सहज तत्त्व निजस्वरूप का आकर्षण होना चाहिए। उसमें एकाकार, विस्मयता उसमें होनी चाहिए कि अहो! ऐसा तत्त्व! ऐसा तत्त्व वह मैं स्वयं हूँ। ऐसे तत्त्व के परमानन्द को भूलकर, छोड़कर... लो! विहाय है न? सहज-परम-तत्त्वं स्व-स्वरूपं विहाय, अरे! भगवान आनन्दमूर्ति भरा बर्तन अन्दर आनन्द के पकवान पड़े हैं। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के पकवान को छोड़कर, ऐसे विष्टा जैसे भोग को तू चाहता है। किस कारण से तुझे ऐसा होता है? ऐसा कहते हैं। विपुल मोह को प्राप्त होता है! तुझे पर में सावधानी क्यों हो जाती है?

भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का भरा बर्तन है। यह तो सब जूठन है। आहाहा! स्वप्न समान। आता है न? 'सर्व जगत है जूठन सम अथवा स्वप्न समान, यह कहिये ज्ञानी दशा बाकी वाचा ज्ञान।' समझ में आया? जिसके ज्ञान में वस्तु है न, परम स्व-स्वरूप, निजस्वरूप? तो उस निजस्वरूप में, स्वस्वरूप में तो अकेला अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण-पूर्ण लबालब भरा है। अरे! उस पर लक्ष्य न करके, उसे छोड़कर। विहाय ऐसे विपुल मोह को क्यों प्राप्त हो रहा है! आहाहा!

अस्ति है, उसकी नास्ति करता है और परम में सुख नहीं है, उसे तू अस्ति सिद्ध

करता है। आहाहा! परमानन्दस्वरूप आत्मा अस्ति है। आनन्द है, ऐसे विद्यमान आनन्द को छोड़कर, ऐसा कहते हैं और पर में कुछ धूल भी नहीं है। इस कामिनी के रूप और मोह में सावधान होता है। तुझे यह क्या है? ऐसा कहते हैं। क्या तुझे भूत लगा है यह? मिथ्यात्व का भूत लगा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अहो! आश्चर्य होता है... यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आश्चर्य होता है। अरे! निजानन्द के स्वरूप के घर को भूलकर; जहाँ आनन्द है, उसे छोड़कर; जहाँ कहीं धूल में भी जरा भी आनन्द नहीं है। आहाहा! अरे! ऐसे मोह को, परसन्मुख की सावधानी, ऐसा कहते हैं। स्वसन्मुख की सावधानी को छोड़कर, ऐसा कहते हैं। परसन्मुख की सावधानी किसलिए करता है? प्रभु! क्या है तुझे? आहाहा! **विपुल मोह को प्राप्त हो रहा है!** भ्रमणा को प्राप्त हो रहा है, ऐसा कहते हैं। जहाँ (सुख) नहीं है, वहाँ तुझे सुखबुद्धि उत्पन्न होती है। जहाँ सुख है, उसे तो छोड़ देता है। सुख की अस्ति / सत्तास्वभाव ऐसा भगवान है, उसे तो तू छोड़ देता है। है, उसे छोड़ देता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। और नहीं है, वहाँ तू मोह को प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। यह विपुल मोह। उसमें सावधान हुआ। यहाँ सावधानपना छूट जाता है। उपदेश तो ऐसा ही दिया जाता है न? समझ में आया? मुनि को ऐसा होता नहीं।

देखो न! कैसी भाषा प्रयोग की है? **कामिनियों की जो शरीरविभूति,...** उसके अंग-उपांग सब सुन्दर, सुकोमल, कोमल। परन्तु वे तो सब माँस और हड्डियाँ हैं। ऊपर की जरा चमड़ी उखाड़कर देखे तो सब दुर्गन्ध मारे, ऐसा होता है। अरे! हड्डियों के पुतले में कोमलता की विभूति में तुझे यह क्या हुआ? उसे क्यों याद करता है? यहाँ भगवान महाप्रभु है, उसे क्यों याद नहीं करता? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे क्यों याद नहीं करता? और उसमें नहीं है, उसे क्यों याद करता है? ऐसा कहते हैं। गजब कहते हैं यह। समझ में आया?

समकित को पर में सुखबुद्धि होती ही नहीं परन्तु ये चारित्रवन्त हैं। स्थिरता में भी इन्हें अस्थिरता का भाग नहीं है। एक व्रत का शुभभाव है, व्रत का शुभभाव है। यह तो कहा न अन्दर? शुभपरिणाम। अन्दर टीका में कहा है। ब्रह्मचर्यव्रत, वह शुभपरिणाम है। समझ में आया? ऐसी स्पष्ट बात है। लो, मुनि का चौथा व्रत / ब्रह्मचर्यव्रत भी शुभभाव है, राग है, आस्रव है, बन्ध का कारण है, परसन्मुख की दशा है। आहाहा! लो, ५९ गाथा हुई।

गाथा-६०

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं ।
 पंचम-वद-मिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स ॥६०॥
 सर्वेषां ग्रन्थानां त्यागो निरपेक्षभावनापूर्वम् ।
 पञ्चम-व्रत-मिति भणितं चारित्र-भरं वहतः ॥६०॥

इह हि पञ्चमव्रतस्वरूपमुक्तम् । सकलपरिग्रहपरित्यागलक्षणनिजकारणपरमात्म-
 स्वरूपावस्थितानां परमसंयमिनां परमजिनयोगीश्वराणां सदैव निश्चयव्यवहारात्मकचारु-चारित्रभरं
 वहतां, बाह्याभ्यन्तरचतुर्विंशतिपरिग्रहपरित्याग एव परम्परया पञ्चमगतिहेतुभूतं पञ्चमव्रतमिति ।

तथा चोक्तं समयसारे ह्य

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
 णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ॥

तथाहि ह्य

निरपेक्ष-भाव संयुक्त सब ही ग्रन्थ के परित्याग का ।
 परिणाम है व्रत पंचवां चारित्रभर वहनार का ॥६०॥

अन्वयार्थः :—[निरपेक्षभावनापूर्वम्] 'निरपेक्ष भावनापूर्वक (अर्थात्, जिस
 भावना में पर की अपेक्षा नहीं है - ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित) [सर्वेषां
 ग्रन्थानां त्यागः] सर्व परिग्रहों का त्याग (सर्व परिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभभाव) उस,

१- मुनि को मुनित्वोचित निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो (हठरहित) सर्व परिग्रहत्याग-सम्बन्धी
 शुभोपयोग, वह व्यवहार अपरिग्रहव्रत कहलाता है । शुद्धपरिणति न हो, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है;
 वह शुभोपयोग तो व्यवहारव्रत भी नहीं कहलाता । [इस पाँचवें व्रत की भाँति अन्य व्रतों का भी समझ
 लेना ।]

[चारित्रभरं वहतः]^१ चारित्रभर वहन करनेवाले को पाँचवाँ व्रत, अर्थात् अपरिग्रहमहाव्रत कहा है।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) पाँचवें व्रत का स्वरूप कहा जाता है।

सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में अवस्थित (स्थिर हुए) परम संयमियों को—परम जिनयोगीश्वरों को—सदैव निश्चयव्यवहारात्मक सुन्दर चारित्रभर वहन करनेवालों को, बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही परम्परा^२ से पञ्चम गति के हेतुभूत – ऐसा पाँचवाँ व्रत है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री समयसार में (२०८ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

पर पदार्थ यदि मेरा हो तो अजीवत्व हो प्राप्त मुझे ।

मैं तो ज्ञाता रहूँ सदा ही, अतः परिग्रह नहीं मुझे ॥

गाथार्थ :—यदि परद्रव्य-परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवत्व को प्राप्त होऊँ । मैं तो ज्ञाता ही हूँ; इसलिए (परद्रव्यरूप) परिग्रह मेरा नहीं है।

गाथा-६० पर प्रवचन

पाँचवें व्रत का स्वरूप । ६०वीं गाथा । इसमें नीचे विस्तार बहुत आयेगा ।

सव्वेसिं गंथाणं चागो गिरवेक्खभावणापुव्वं ।

पंचम-वद-मिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स ॥६०॥

१- चारित्रभर = चारित्र का भार; चारित्रसमूह; चारित्र की अतिशयता ।

२- शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत, शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है – ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा है । वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि को मुनियोग्य शुद्धपरिणति ही (शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन करती है, इसलिए) विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु होती है और वह शुद्धोपयोग, मोक्ष का हेतु होता है । इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप-उसके साथ रहनेवाले-शुभोपयोग में करके, व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है । जहाँ शुद्ध परिणति ही न हो, वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग में मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु प्रगट ही नहीं हुआ है – विद्यमान ही नहीं है, वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका किया जाए ?

निरपेक्ष—भाव संयुक्त सब ही ग्रन्थ के परित्याग का ।

परिणाम है व्रत पंचवां चारित्रभर वहनार का ॥६० ॥

अन्वयार्थ—निरपेक्ष भावनापूर्वक ; अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित,... परिग्रह है न ? अर्थात् पकड़ यहाँ है, कहते हैं । यहाँ पकड़ इस ओर नहीं है, ऐसा निकाला । निरपेक्ष भावनापूर्वक ; अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित,... इसके नीचे अब । नीचे नोट । मुनि को मुनित्वोचित निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ... मुनि उसे कहते हैं कि जिसे वीतराग शुद्धपरिणति शुद्धदशा वर्तती है । अकेले शुभव्रत के परिणाम नहीं, ऐसा कहते हैं । मुनि को-धर्मात्मा सच्चे सन्त को उनके योग्य, निरपेक्ष शुद्धपरिणति.... छठवें गुणस्थान के योग्य निरपेक्ष शुद्धपरिणति अर्थात् कि जिसे राग की अपेक्षा भी नहीं । ये व्रत के परिणाम हैं तो शुद्धपरिणति है, ऐसा नहीं है । समझ में आया ?

निरपेक्ष शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ... निरपेक्ष, समझ में आया ? उसे यह परिग्रह के त्याग का विकल्प जो अपरिग्रह है, ऐसी अपेक्षा भी जिसे-शुद्धपरिणति को नहीं है । वह भाव भिन्न रह गया है । आत्मा अखण्ड आनन्द का जिसे परिग्रह अर्थात् पकड़ अनुभव में हुई है । उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं है । लो ! ऐसे जीव को, शुद्धपरिणति निरपेक्ष वर्तती है उसे, उसके साथ वर्तता हुआ जो (हठरहित) सर्व परिग्रहत्याग-सम्बन्धी... सर्व परिग्रहत्याग । वहाँ तो वस्त्र आदि कुछ है नहीं । आहाहा ! बाहर की बात रह गयी है । परिग्रह-वस्त्ररहित । परन्तु वह मूल है वह ? मूल बिना बाहर में (चारित्र) कहाँ से आया ?

निरपेक्ष भावनापूर्वक... शब्द है न ? देखो न, पाठ में ही है न ? निरपेक्ष भावनापूर्वक... इसका अर्थ हुआ कि पहले महाव्रत में भी निरपेक्ष अहिंसाभाव परिणति वर्तती है । उसे अहिंसा का जो विकल्प है, इसलिए यह वर्तती है – ऐसा नहीं है । क्या कहा ? समझ में आया ? यहाँ लिखा है न, वह पाँचों में ले लेना । मुनि, सच्चे सन्त को आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द, उसके अवलम्बन से प्रगट हुई निरपेक्ष वीतरागी परिणति / अहिंसा (वर्तती है) । उस अहिंसा को अहिंसाव्रत का विकल्प है, उसकी भी उसे अपेक्षा नहीं है । ऐसी अहिंसा वीतरागी परिणति के साथ में रहा हुआ विकल्प अहिंसा व्यवहार, हठरहित का भाव उसे होता है । कहो, समझ में आया ?

इसी प्रकार सत्यव्रत में भी अपना परमसत्य स्वरूप की अपेक्षा होकर जो निर्मल परिणति हुई, उसे सत्यव्रत के विकल्प की अपेक्षा से हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? सत्यव्रत का विकल्प है, इसलिए यहाँ सत्य परिणति निरपेक्ष वर्तती है, ऐसा नहीं है। निरपेक्ष है। उसकी इसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया या नहीं इसमें ? इसमें समझ में आता है या नहीं ? ऐई! लड़कों! हर्षद! समझ में आता है न ? थोड़ा-थोड़ा ? ठीक, बहुत अच्छा। हाँ किया न! कहो, समझ में आया ? आहाहा! क्यों प्रेमचन्दजी! यह तो समझ में आये ऐसा है। पूरा समझ में आता है ? ये तो परिचयवाले हैं न ? आहाहा!

क्या कहना है ? यहाँ निरपेक्ष में से यह पाँचों में ही निकालना है। **निरपेक्ष भावनापूर्वक...** यह विकल्प नहीं, संकल्प नहीं। निरपेक्ष भावना अर्थात् आत्मा के शुद्ध ध्रुव स्वभाव के आश्रय से होकर जो वीतरागी परिणति अहिंसक हुई है, वह निरपेक्ष भावना है। ऐसी निरपेक्ष भावनापूर्वक व्यवहार अहिंसाव्रत का जो विकल्प है, उसे पुण्यबन्ध का कारण कहकर, उसे संयोगी भाव है, ऐसा कहते हैं। वह निरपेक्ष भावना, वह स्वभाविक भाव है। उसके साथ अहिंसाव्रत के विकल्प की उसे अपेक्षा नहीं है। तथापि ऐसे निरपेक्ष भावना के साथ... लो, यह तो भाई! वह आया, सहचर... सहचर... सहचर... सब मेल है न! देखो न! ओहोहो.. गजब बात है। सन्तों की कथनी चारों ओर से (मेल/सुमेलवाली होती है)।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये व्यवहार की अपेक्षा से प्रगट हुए हैं, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप.. आहाहा! सचेत वस्तु, सचेत वस्तु, जागृत वस्तु, आनन्द वस्तु। ऐसी चीज के अवलम्बन से प्रगट हुई शुद्धपरिणति को अहिंसाव्रत के विकल्प की अपेक्षा नहीं है, तथापि उसके साथ रहा हुआ व्यवहार अहिंसा का विकल्प, उसे पहला महाव्रत का परिणाम कहा जाता है।

इसी प्रकार दूसरा, सत्यस्वरूप भगवान आत्मा, पूर्ण सत्य आनन्द का आश्रय लेकर, जो परमसत्य की शुद्ध वीतराग परिणति हुई, उसे सत्यव्रत के विकल्प के महाव्रत की अपेक्षा नहीं है। ऐसी निरपेक्ष परिणति के साथ सहचररूप से दूसरे महाव्रत के परिणाम होते हैं। समझ में आया ? निरपेक्ष चारित्र वर्तता है, उसके साथ में यह सत्यव्रत का शुभभाव है, उसे साथ में-सहचर देखकर व्यवहारचारित्र की उपमा उसे कही जाती है। इसी प्रकार

तीसरे व्रत में-अचौर्य । कहीं बाहर से ग्रहण नहीं करना है । यह तो अन्दर में गृहीत भगवान पूर्णानन्द प्रभु सहजस्वरूप है, उसमें अन्दर जो शुद्ध वीतरागी परिणति (होती है), वह अचौर्य भाव उसका निश्चय है । कहीं से लिया नहीं है । अपने में से आयी हुई दशा है । ऐसी वीतरागी परिणति, वह अचौर्यव्रत के राग की अपेक्षा से नहीं है । आहाहा ! वह व्यवहार है, तो यह निश्चय है-ऐसा नहीं है । ऐसा कहते हैं । जैसे अजीव है तो जीव है, ऐसा है ?

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ से होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीव है तो जीव है, ऐसी दो अपेक्षा से सिद्ध करना हो तो क्या करे ? भाई ! अजीव है तो जीव है, जीव है तो अजीव है ? यह तो अजीवपना और जीवपना भिन्न स्वतन्त्र सिद्ध करना हो तो ऐसा, परन्तु वह अजीव है, इसलिए जीव है और जीव है, इसलिए अजीव है, ऐसा नहीं है । इसी प्रकार व्यवहार है तो निश्चय है, ऐसा है ? बिल्कुल नहीं । आहाहा ! कहो, कान्तिभाई ! आहाहा ! दिगम्बर सन्तों का कथन तो अमृत का प्रवाह बहाया है उसमें । आहाहा ! किसी का पक्ष नहीं, यह सत्य है । समझ में आया ? यह अचौर्य का (कहा) ।

इसी प्रकार जिसे अन्तर्ब्रह्मानन्द प्रगट हुआ है । ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप का चर्य, अन्दर ब्रह्मानन्द की शान्ति प्रगट हुई, निश्चय ब्रह्मचर्य (प्रगट हुआ), उसे व्यवहार ब्रह्मचर्य के राग की अपेक्षा नहीं है । समझ में आया ? ब्रह्मचर्य ब्रह्मस्वरूप भगवान, वह आनन्दमूर्ति प्रभु, उसके आश्रय से हुई जो आनन्द, ब्रह्मचर्य पर्याय में वीतरागी परिणति निश्चय ब्रह्मचर्य प्रगट हुआ है, उसे व्यवहारव्रत के ब्रह्मचर्य के विकल्प की अपेक्षा नहीं है । निरपेक्ष परिणति है । उसके साथ में सहचररूप से साथ में... ऐसा है न ? साथ में शब्द पड़ा है या नहीं ? उसका अर्थ क्या हुआ ? साथ में है, बस ! पहले यह और बाद में यह, ऐसा इसमें कहाँ है ? समझ में आया ? ऐसा ब्रह्म अर्थात् भगवान परम ब्रह्मस्वरूप प्रभु आत्मा के आनन्द की दशा, अतीन्द्रिय ब्रह्मचर्य पर्याय में प्रगट हुआ है, उसे चौथे व्रत के विकल्प के ब्रह्मचर्य की अपेक्षा नहीं है । ऐसे ब्रह्मचर्य के साथ रहा हुआ शुभभाव व्यवहार ब्रह्मचर्य होता है । आहाहा !

मुमुक्षु : चार को लागू पड़ता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार, और यह पाँचवाँ चलता है । कहो, समझ में आया ? गजब

काम किया है। व्यवहार का भाव चलता है, उसमें यह डाला है। देखो! वस्तु की स्थिति इस प्रकार से है, उसे सिद्ध करने की कला इस प्रकार की है। आहाहा! क्या प्रभु तुझमें आनन्द है, उसे प्रगट करने के लिए किसी की अपेक्षा है ?

अब कहते हैं कि निश्चय अपरिग्रह व्रत। जिसे रागरहित अरागी वीतरागी परिणति प्रगट हुई है, उसे परिग्रह के त्याग का जो शुभभाव का विकल्प, उसकी अपेक्षा इसे नहीं है। इस प्रकार निरपेक्ष भावनापूर्वक। पूर्वक में यह साथ आ गया है। यहाँ कहा न? निरपेक्ष भावना... अर्थात् पूर्व में कहा हुआ, यह ऐसा कुछ नहीं। यह तो ऐसा पूर्वक साथ में, ऐसी परिणति के साथ में अर्थात् उस व्यवहारपूर्वक निश्चय को नहीं रहा, परन्तु निश्चयपूर्वक अर्थात् निश्चय है, वहाँ आगे साथ में रहा हुआ विकल्प है। आहाहा! गजब बात, भाई! वस्तु की स्थिति को प्रसिद्ध करने की पद्धति। यह तो वस्तु का स्वरूप जानना है।

‘सर्वेषां’ सर्व परिग्रहों का त्याग;... लो, अर्थात्? अन्वयार्थ चलता है। जिस भावना में पर की अपेक्षा... भावना अर्थात् एकाग्रता। शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा में एकाग्रता। लो, यहाँ भावना अर्थात् एकाग्रता। वह भावना अर्थात् कल्पना। सामायिक में आता है न? शुद्ध उपयोग की भावना। प्रवचनसार में। वहाँ ऐसा अर्थ किया है। अरे! भगवान! क्या करते हैं, भाई! आहाहा! उसे यथास्थान में जहाँ है, वहाँ रहने दे न? ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित, सर्व परिग्रहों का त्याग;... देखा? चौथे में शुभ परिणाम था न? यहाँ फिर डाला।

सर्व परिग्रहों का त्याग; अर्थात्, सर्व परिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभभाव, उस चारित्रभर वहन करनेवाले को... चारित्र का भार; चारित्रसमूह; चारित्र की अतिशयता। वह स्वरूप का चारित्र अन्दर है, उसे ऐसा भाव होता है। चारित्रभर वहन करनेवाले को पाँचवाँ व्रत,.. कहा है। शुभभाव होता है। आहाहा!

विशेष आयेगा.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६२, गाथा-६०, बुधवार, आषाढ शुक्ल ७, दिनांक ३०-०६-१९७१

नियमसार शास्त्र। मोक्ष का मार्ग, उसका अधिकार। यह व्यवहारचारित्र का अधिकार चलता है। ६०वीं गाथा। पाँचवाँ महाव्रत किसे होता है और क्यों होता है? यह बात चलती है। अन्वयार्थ लिया है न थोड़ा?

निरपेक्ष भावनापूर्वक; अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित,... अर्थात् क्या कहा? भावनासहित। आत्मा शुद्ध आनन्द निर्विकल्प पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा का है, उसका अवलम्बन लेकर अन्दर जो एकाग्रता प्रगट हुई है, उसे यहाँ निरालम्बन भावना कहने में आता है। अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यघन वस्तु है। आनन्द का नाथ है। इसका आश्रय लेकर वीतरागी शुद्ध परिणति / पर्याय प्रगट हो, उसे इस पंच महाव्रत का विकल्प है, इसकी भी उसे अपेक्षा नहीं है। ऐसी शुद्धपरिणति जहाँ होती है। समझ में आया? निरपेक्ष। कल बहुत बात हुई थी।

आत्मा वस्तु है, प्रभु! सर्वज्ञ शक्तिवाला और अतीन्द्रिय आनन्दवाला वह तत्त्व है, क्योंकि सर्वज्ञ और अतीन्द्रिय आनन्द जो परमेश्वर को प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? वह अन्तर में है। वस्तु के अन्तरस्वरूप में शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान और शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द, उसकी एकाग्रता। उसमें जिसने स्व-सन्मुख होकर ध्रुवस्वभाव भगवान आत्मा की एकाग्रता में जो भावना हुई, उसे यहाँ निरपेक्ष भावना कहा जाता है।

ऐसी अन्तर की निरालम्बन वीतरागी अवस्था की भूमिका में **सर्व परिग्रहों का त्याग;...** एक वस्त्र का धागा भी जिसे न हो, तो दूसरा परिग्रह तो उसे होगा नहीं। ऐसा **सर्व परिग्रहों का त्याग; अर्थात्, सर्व परिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभभाव,...** शुभभाव विकल्प है कि सर्व परिग्रह छोड़ूँ। ऐसे सर्व परिग्रह के त्यागस्वरूप उस चारित्रभर वहन करनेवाले को... निश्चय और व्यवहारचारित्र है। नीचे अर्थ है। **चारित्र का भार; चारित्रसमूह; चारित्र की अतिशयता।** अर्थात्? स्वरूप आनन्द की रमणता का चारित्र, वह निश्चयचारित्र और व्यवहार में पंच महाव्रत का विकल्प, उसके सहचर-साथ में होता है; इसलिए उसे व्यवहारचारित्र कहने में आता है। ऐसा निश्चय और व्यवहार, चारित्र की अतिशयता को

वहन करनेवाला, चारित्र का भार अर्थात् शुद्धता, वीतरागी शुद्धता और पंच महाव्रत के विकल्प का सहकारीपना, दोनों को चारित्रभार कहने में आता है।

मुमुक्षु : दोनों की सुन्दरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से है न दोनों की सुन्दरता। निश्चय से तो आत्मा के अवलम्बन से वीतरागी आनन्दसहित जो चारित्र अर्थात् आनन्द में रमना, ऐसी दशा प्रगट हुई, वह निश्चयचारित्र है। वीतरागमार्ग में यह है। इसके साथ विकल्प होता है। ये नग्नमुनि होते हैं, सच्चे सन्त होते हैं, वे तो बाह्य में नग्न होते हैं। अन्तर में उन्हें पंच महाव्रत का शुभराग, राग। है आस्रव परन्तु ऐसा भाव अन्तर शुद्धता छठवें गुणस्थान के योग्य मुनि को आनन्द की दशा प्रगट हुई है। अतीन्द्रिय आनन्द—प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द की दशा, वह सच्चा चारित्र है और यह पंच महाव्रत का विकल्प, वह व्यवहारचारित्र / आरोपित चारित्र है। वह वास्तविक चारित्र नहीं है, वह तो अचारित्र है। महाव्रत के परिणाम, विकल्प भी अचारित्र है परन्तु आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, तीर्थकर सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा भगवान आत्मा अन्तर के आनन्द के अवलम्बन से स्थिरता, शान्ति, आनन्द की जो दशा प्रगट हुई, वह निश्चयचारित्र है। उसके साथ यह परिग्रह का त्याग, यह विकल्प है कि वस्त्र छूटा है, नग्न हूँ—ऐसा जो विकल्पदशा, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म। आत्मा का मार्ग कहो या वीतराग का कहो। वीतराग का मार्ग कोई अलग नहीं है।

भगवान आत्मा अत्यन्त वीतरागस्वरूप की मूर्ति आत्मा है। आहाहा! उसमें पंच महाव्रत के विकल्प और राग की गन्ध अन्दर में नहीं, ऐसी वह चीज़ है। ऐसी चीज़ का अवलम्बन लेकर, जिसने चारित्र अन्तर में (प्रगट हुआ है)। पहले तो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह भी स्वरूप ध्रुवचैतन्य आनन्द का आश्रय करके सम्यग्दर्शन होता है। उस सम्यग्दर्शन में शुद्धपरिणति कम है। फिर स्वरूप की विशेष अन्तर रमणता प्रगट होने पर शुद्ध की परिणति उग्र है, उसे सच्चा चारित्र कहते हैं। ऐसे चारित्र की भूमिका में जब तक सर्वज्ञ और वीतराग न हो, उसे पंच महाव्रत का विकल्प जो राग है, आस्रव है, पुण्यास्रव है, ऐसा भाव वहाँ आता है। समझ में आया? आहाहा! अभी तो चारित्र किसे कहना, सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाए, (ऐसा नहीं हो

सकता)। आहाहा! क्या हो? अनन्त काल का अनजाना पन्थ, अन्तर के अनुभव और भान बिना वह प्रगट हो, ऐसा नहीं है।

उसे पाँचवाँ व्रत कहा है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) पाँचवें व्रत का स्वरूप कहा जाता है। देखो! पहली ही बात। **सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप...** भगवान आत्मा प्रभु। अन्दर कैसा है? ध्रुवस्वरूप नित्यानन्द आत्मा। **सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप...** परि उपसर्ग है न? समस्त प्रकार से त्यागस्वरूप। जिनके अन्तरस्वरूप में कोई विकल्प नहीं और अन्तर स्वरूप में एक समय की पर्याय की भी पकड़ नहीं। समझ में आया? एक समय की पर्याय में पकड़ हो तो वह परिग्रहबुद्धि है। यहाँ तो भगवान का मार्ग है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखा। भगवान की वाणी इच्छा बिना निकली। उन्हें इच्छा नहीं होती। उस वाणी को आगम कहने में आता है। उस आगम में ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में... देखो! भाषा भी ऐसी है। **निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में...** अपना। अनादि-अनन्त नित्य प्रभु, अपना निज कारणपरमात्मा, जिसमें से कार्य-धर्मदशा जिसके आश्रय से प्रगट हो, ऐसे निज कारणपरमात्मा का स्वरूप अपना... आहाहा! उसमें **अवस्थित...** मुनि उसमें अवस्थित हैं। आहाह! निज ध्रुव भगवान आत्मा नित्यानन्द अनादि-अनन्त अविनाशी जिसका भाव-स्वभाव, एक समय की पर्याय से रहित। पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से तो रहित, परन्तु एक समय की प्रगट परिणमन की वर्तमान व्यक्त पर्याय / दशा... आहाहा! उससे भी रहित निज कारणपरमात्मा का स्वरूप, अपना स्वरूप, ध्रुवस्वरूप। उसमें अवस्थित। उसमें निश्चय से आनन्द में स्थिर हो गये हैं। आहाहा! ऐसे **परम संयमियों को...** उन्हें परम संयमी कहने में आता है। आहाहा!

अरे! कहाँ लोग मान बैठे? कहाँ वस्तु का स्वरूप है! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ आगम द्वारा ऐसा फरमाते हैं। भगवान! तेरा अन्तर स्वरूप तो जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्धों की पर्याय प्रगट हो, सिद्ध की पर्याय एक, ऐसी अनन्त। ऐसी अनन्त पर्यायों का गुणरूप, ध्रुवरूप भगवान आत्मा, जिसे दृष्टि में लेने से, पूर्णानन्द के स्वभाव का आश्रय लेने से

जिसकी दशा में सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन होने पर स्वाद आता है, वह परम निज कारणपरमात्मा के अवलम्बन से होता है। किसी शरीर, वाणी, मन या परमेश्वर तीन लोक के नाथ हों, उनके अवलम्बन से भी वह दशा प्रगट नहीं होती। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव हों, उनका लक्ष्य करने जाए, तब तो राग उत्पन्न होता है, क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य का आश्रय करने जाए तो शुभराग होता है; उसके आश्रय से धर्म की—सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र की पर्याय उनके आश्रय से उत्पन्न नहीं होती तथा अपना जो दया, दान, व्रतादि का विकल्प है, उसके आश्रय से भी यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होते। तथा एक समय की प्रगट अवस्था ज्ञान के उघाड़ की विकासरूप है, उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होता। नियमसार है न? नियमसार, सच्चा मोक्ष का मार्ग।

यह तो निज कारणपरमात्मा, जिसकी खान में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे स्वभाव का भण्डार प्रभु आत्मा, निज प्रभु... आहाहा! उसमें जो अवस्थित है, ऐसे परम संयमियों को... उन्हें परम संयमी और साधु कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसे साधु होते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागमार्ग में ऐसे साधु होते हैं। अज्ञानमार्ग में सब चाहे जिस प्रकार माने। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे - जाने हैं, ऐसी जिन्हें सर्वज्ञशक्ति व्यक्त प्रगट हो गयी और साथ में अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्य ऐसा परमात्मा को प्रगट हुआ। वे सब दशाएँ कहाँ से आयीं? क्या राग में से आयी? शरीर में से आयी? पर्याय एक समय की वर्तमान पर्याय में से आयी? कहाँ से आती है? भाई! अन्तर वस्तु भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ आत्मा स्वयं, उसमें अवस्थित हो, तब उसमें से आती है। सूक्ष्म बात है, भाई! जन्म-मरण के अन्त की विधि कठिन है। वह तो कहेंगे। ज्ञानी पुरुष को वह कोई कठिन नहीं है, ऐसा कहेंगे। असत् पुरुषों को कठिन है। आहाहा! कहते हैं न? आगे कलश में आता है न? सत्पुरुष को कोई महा आश्चर्य की बात नहीं है। असत् पुरुषों को आश्चर्य की बात है। ८०वाँ कलश आयेगा। आहाहा!

पहला तो सम्यग्दर्शन ही उसे कहा जाता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु निज प्रभु शक्ति का सत्त्व, उसकी प्रतीति, उसका अनुभव होकर उसका ज्ञान होकर प्रतीति हो, वह अन्तर के आश्रय से होती है। समझ में आया? आओ, सामने आओ। पुस्तक दो पुस्तक। समझ में आया?

परम संयमियों को... आहाहा! जिनके आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द जो भरा हुआ है, उसमें से उनकी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द उछल निकला है। जैसे समुद्र में मध्य में पानी भरा है, वह ज्वार के काल में किनारे आकर... ज्वार आता है न? हमारे गुजराती काठियावाड़ में भरती कहते हैं। ज्वार आता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा के ध्रुव मध्यबिन्दु में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और शान्ति पड़ी है। उसमें एकाग्र होने से उसकी वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला आता है, कहते हैं। आहाहा! और उसमें श्रद्धा करना कि यह अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति पूरा आत्मा है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा!

तदुपरान्त विशेष शुद्धता के द्रव्य का विशेष आश्रय लेकर, विशेष अवलम्बन लेकर वस्तु में विशेष स्थिर हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति की वृद्धि हो गयी है, उसे संयमी और मुनि कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **परम संयमियों को- अर्थात् परम जिनयोगीश्वरों को....** परम जिनयोगीश्वर। आहाहा! जिन्हें आत्मा अखण्डानन्द प्रभु... जिनस्वरूप ही ध्रुव आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म'। आहाहा! ऐसा भगवान जिन, वापस परमजिन (कहा है)। जिन्होंने राग को जीता है, मिथ्यात्व को तो जीता है। पश्चात् राग को जीता है और सम्यग्दर्शन शान्ति चारित्र की अन्तर में हुलास से आनन्द के हुलास से शान्ति का वेदन करते हैं, कहते हैं। आहाहा! ऐसे जिनयोगीश्वर। इतने विशेषण प्रयोग किये हैं। परम जिन योग और ईश्वर... आहाहा!

समकृति भी जिन है। समकृति योगी भी है, परन्तु अभी समकृति परम ईश्वर नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान में भगवान ध्रुवस्वरूप प्रभु का एकाग्रपना (करके) मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी को जीता है और उतनी शान्ति तथा स्थिरता सम्यग्दर्शन की भूमिका में प्रगट होती है परन्तु यह तो परम जिनयोगीश्वर... वीतरागता के भाव से अस्थिरता को स्वरूप में एकाग्रता द्वारा ईश्वरपना प्रगट करके जीता है। आहाहा!

ऐसे मुनि को सदैव निश्चयव्यवहारात्मक सुन्दर... यह सुन्दर है, इसलिए व्यवहार से सुन्दर का आरोप दिया गया है। आहाहा! सदा ही निश्चय। अतीन्द्रिय में आत्मा के आनन्द का ज्वार आया है। ऐसी जो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप की रमणता, उसे निश्चय चारित्र कहते हैं, सच्चा चारित्र (कहते हैं) और उसकी भूमिका में पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह राग है। उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। चारित्र नहीं है, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : दो होकर एक ही चारित्र कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो होकर चारित्रभर। चारित्रभर की व्याख्या दो होकर की है। निश्चय और व्यवहार। यह व्यवहार का अधिकार है न ? समझ में आया ? आहाहा! यह मार्ग सुनना भी जगत को कठिन पड़ता है। समझना और करना तो कहीं रह गया। आहाहा! परन्तु ऐसा स्वरूप वीतराग ने कहा है और यही वस्तु की स्थिति है कि आत्मा का, ध्रुव का अवलम्बन लेकर जिसने सम्यग्दर्शन-आत्मा का अनुभव प्रगट किया है, तदुपरान्त जिसने द्रव्य का, शुद्ध का बहुत अवलम्बन लेकर, आश्रय लेकर जिसने आनन्द और शान्ति की विशेष स्थिरता प्रगट की है, उसे निश्चय और व्यवहारचारित्र होता है, ऐसा कहते हैं। उसे निश्चय / सच्चा स्वरूप में रमणता आनन्द, वह सच्चा चारित्र और उसे पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह खोटा चारित्र, उसे व्यवहारचारित्र कहने में आता है। आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो अभी पाँच महाव्रत का ठिकाना नहीं होता, समकित बिना के, हों! मिथ्यादृष्टि। अरे! भगवान! कहाँ भूला है और कहाँ गया है ? आहाहा!

अरे! जन्म-मरण का चक्र। चौरासी के अवतार के दुःख, उसका अन्त तो स्वभाव का आश्रय ले तो होता है, ऐसा है। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से... समझ में आया ? चार गति के दुःख चाहे तो स्वर्ग में हो, तो भी दुःखी है। जहाँ आत्मा के आनन्द की खबर नहीं और अकेले देव के सुख को भोगने का विकल्प, वह भी आकुलता है। अंगारों की अग्नि सुलगती है। आहाहा! ये सेठिया पैसेवाले, धूलवाले कहलाते हैं। धूल के सेठिया कहलाये न ? ये धूल के। पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। ये बेचारे अंगारों में सुलगते हैं। ये राग के अंगारों में सुलग उठे हैं। सुखी नहीं हैं। आहाहा! सुख और आनन्द तो अन्तर भगवान आत्मा के घर में पड़ा है। उसके घर में जाकर एकाग्र हुए बिना आनन्द नहीं आता। आहाहा!

कहते हैं कि अहो! ऐसा निश्चयव्यवहार... सदा ही, कहा है न? सदा ही निश्चय है और साथ में विकल्प भी सदा है, ऐसा लिया। यह व्यवहार अधिकार है, इसलिए साथ में लिया है। **सुन्दर चारित्रभर वहन करनेवालों को,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप का, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद है, वह सच्चा निश्चयचारित्र है। उसमें विकल्प उठा, वह व्यवहारचारित्र है। दोनों को यहाँ सुन्दर चारित्रभर कहा है। यह निश्चय सुन्दर है, वह व्यवहार सुन्दर है परन्तु जिसे यह निश्चय हो उसे। आत्मा का सम्यग्दर्शन भी नहीं और चारित्र की रमणता का आनन्द नहीं, ऐसे जीव को तो पंच महाव्रत के विकल्प व्यवहार से भी कहे नहीं जाते। व्यवहार से भी उसे चारित्र नहीं है। आहाहा!

वहन करनेवालों को,... वापिस देखा? इतना पुरुषार्थ है न? निश्चय में पुरुषार्थ है और व्यवहार में इतना... उसे वहन करनेवाला कहा। शुद्धपरिणति को वहन करता है, और शुभभाव को भी वहाँ (वहन करता है)। इतना प्रयत्न है न? अशुभ नहीं होता उतना। **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही...** ऐसे मुनि को बाह्य परिग्रह वस्त्र-पात्र, स्त्री, कुटुम्ब, सर्व का छूट गया है। अभ्यन्तर तीन कषाय का भाव छूट गया है। ऐसे **परम्परा से पञ्चम गति के हेतुभूत—ऐसा पाँचवाँ व्रत है।** मूल तो पाँचवें व्रत को परम्परा हेतुभूत कहते हैं क्योंकि विकल्प है। निश्चय से तो शुद्धपरिणति ही मोक्ष का कारण है, परन्तु उसके साथ ऐसा विकल्प है, उसे परम्परा अर्थात् अब बाद में... व्यवहार से, ऐसा इसका अर्थ। इसका त्याग होकर होगा। साक्षात् तो शुद्ध परिणति है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! क्या कहते हैं? बात समझना कठिन।

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द की खान है। उस खान में से जिसने अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में एकाग्र होकर निकाला, उसे स्वावलम्बी समकिति, स्वावलम्बी ज्ञानी और स्वावलम्बी चारित्रवन्त कहने में आता है। आहाहा! उसे पंच महाव्रत अथवा अट्टाईस मूलगुण मुनियों के अट्टाईस विकल्प हैं, वह शुभराग है, वह व्यवहार है। पाँचवाँ व्रत।

परम्परा से पञ्चम गति के... हेतु निमित्त है। नीचे इसका स्पष्टीकरण करना पड़ा। वास्तव में तो इतना ही है। कि वह है। अभी तो साक्षात् तो शुद्धपरिणति है परन्तु शुभ को छोड़ेगा, इसलिए परम्परा अर्थात् व्यवहार कहा। साक्षात्, वह निश्चय; परम्परा, वह व्यवहार। साक्षात् तो आत्मा शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में रमता है, वह मुक्ति का

कारण है। उसके राग को परम्परा, अभी नहीं, साक्षात् नहीं इसलिए परम्परा अर्थात् व्यवहार। व्यवहार का अर्थ यह हुआ। अरे! इसमें आग्रह किसका? भाई! तेरे घर में जाने की बात में वाद-विवाद क्या? उसमें वाद-विवाद नहीं। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त लाना है, बापू! चौरासी के अवतार में भटककर दुःखी है। कहीं सुख नहीं है। यह पुण्यभाव करता है न? वह दुःख है। आहाहा! वास्तव में यह पंच महाव्रत का विकल्प भी दुःख है। परन्तु आनन्दस्वरूप ऐसे भगवान का अवलम्बन लेकर जिसने अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति, चारित्र प्रगट किया है, इसलिए वह विकल्प है दुःख, परन्तु साक्षात् मोक्ष का सुखरूप कारण तो शुद्धपरिणति। उस दुःख का अभाव करेगा, इसलिए उसे परम्परा से मुक्ति का कारण कहा है। व्यवहार से ऐसा है, बात ऐसी है। आहाहा!

नीचे नोट में (क्रमांक ३) हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। **शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत,...** यह स्पष्टीकरण किया है। कौन पण्डित? हमारे पण्डित हैं। बड़े पण्डित हैं। बहुत शान्त हैं। संस्कृत, व्याकरण सबमें पूर्ण हैं। उन्होंने नीचे स्पष्टीकरण किया है। **शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत,...** क्या कहते हैं? स्वरूप की-आत्मा की शुद्धपरिणति, ऐसी भूमिका में जो शुभराग, महाव्रत का उपयोग होता है, ऐसा **शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत, शुद्धोपयोग का हेतु है...** वह शुद्धोपयोग अर्थात् अन्दर वीतरागीदशा, उसमें शुभराग निमित्त है। व्यवहार से हेतु कहा है। वास्तव में तो व्यवहारव्रत है, वह तो राग है। शुद्ध उपयोग है, वह तो वीतरागता है। आहाहा! गजब बात है! इस वीतरागता का हेतु राग, यह तो उपचार से कथन है। आहाहा! महाव्रत है, वह विकल्प है, राग है, आस्रव है। उसे शुद्ध उपयोग जो आत्मा का, आत्मा के आश्रय से वीतरागता हो, उसका उसे हेतु कहना, वह तो व्यवहार से है। समझ में आया?

शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है... और आत्मा में महाव्रत का विकल्प शुभ से रहित अन्तर के आनन्दस्वरूप का उपयोग जो वीतरागी परिणाम / शुद्धोपयोग, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। **ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा है।** उपचार से कहो या व्यवहार से। व्यवहार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा गया है। समझ में आया? शास्त्र के अर्थ करने में भी झगड़े। **वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि को...** छठवें गुणस्थान में सच्चे मुनि-सन्त को शुभोपयोग पंच महाव्रत का राग जब

वर्तता है। **मुनियोग्य शुद्धपरिणति ही...** उन्हें तो मुनि के योग्य... समकिति के योग्य शुद्धपरिणति जघन्य थोड़ी है। पंचम गुणस्थान में शुद्धपरिणति उससे विशेष है। छठे गुणस्थान में उससे विशेष है। वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु का चारित्रवन्त ने उग्र आश्रय लिया है, इसलिए उसकी शुद्धपरिणति विशेष उग्र है। उसे (**शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन करती है,**)... कौन ? शुद्धपरिणति। शुद्धपरिणति अर्थात् ? अशुभराग, वह पापराग; शुभराग, वह पुण्यराग, दोनों से रहित स्वभाव का आश्रय होकर जो शुद्ध वीतरागी परिणति प्रगट होती है, उसे यहाँ शुद्धपरिणति, शुद्धपर्याय कहने में आता है। आहाहा! शान्तिभाई! लो, ऐसा है यह।

मुमुक्षु : हवा में उड़ने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! मार्ग तो तेरा अन्तर में है, बाहर में है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि के योग्य जो शुद्धदशा—इसका अर्थ ? समकिति के योग्य जो शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जो प्रगट हुई है, वह समकिति के योग्य है। जिसे सच्चा श्रावक कहते हैं। यह वाड़ा के हैं, उनकी बात यह नहीं है।

मुमुक्षु : वाड़ा में हैं, वे तो वाड़ा में ही रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाड़ा में तो बकरे होते हैं। आहाहा!

यह तो आत्मा अन्तर भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने, त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने इन्द्रों और गणधर के समक्ष दिव्यध्वनि द्वारा भगवान ने जो आत्मा वर्णन किया, वह आत्मा अन्दर में पूर्ण शुद्ध और पूर्ण स्वभाव का भण्डार है। समकिति को उसके योग्य उसकी शुद्धदशा होती है। पाँचवें (गुणस्थानवाले) को उसके योग्य उसकी शुद्धदशा विशेष होती है। मुनि को उनके योग्य शुद्धदशा विशेष होती है, क्योंकि उन्होंने द्रव्य का विशेष आश्रय और अवलम्बन लिया है। जितना विशेष अवलम्बन, उतनी उग्र और ऊँची दशा। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु होती है... लो, क्या कहते हैं ? छठवें गुणस्थान में जो वस्तु / आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई शुद्धपरिणति, वह सातवें गुणस्थान का जो शुद्धोपयोग है, उसका वह शुद्धपरिणति कारण होती है।

मुमुक्षु : आप तो उससे भी इनकार करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी व्यवहार सिद्ध करना है न? पर्याय का दाता आत्मा नहीं है, यह बात फिर एक ओर रही। यहाँ तो... अरे! भगवान का मार्ग, बापू! तीन काल-तीन लोक में परमेश्वर ने कहा, उसके अतिरिक्त कहीं है नहीं, किसी मार्ग में यह मार्ग है नहीं, परन्तु इसके मार्ग की पद्धति जानना, अनन्त काल में इसने जानी नहीं। अनन्त काल में इसने दरकार ही नहीं की। ऐसे का ऐसा बाहर में ही बाहर में बाह्य दृष्टि से धर्म मानकर बहिरात्मबुद्धि से, उसमें (समय) गँवाकर अनन्त संसार इसने बिताया है, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि जो सच्चे मुनि आत्मदर्शी, आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी शुद्धपरिणतिवाले, उन्हें जो महाव्रत का शुभपरिणाम वर्तत है, उसे मोक्ष का हेतु कहा, उसका अर्थ यह है कि उन्हें जो शुद्धपरिणति वर्तती है, वह शुद्धोपयोग का कारण है और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। ऐसा लेना है न यहाँ? आहाहा! **शुद्धोपयोग का हेतु होती है और वह शुद्धोपयोग, मोक्ष का हेतु होता है।** ऐसा लिया। यह जरा शान्ति से समझने जैसी बात है। यह कहीं वार्ता-कथा नहीं है। एक राजा था, एक रानी थी। मार गप्प और वह सुनकर प्रसन्न हो। ओहोहो! क्या महाराज ने आज बात की! कल रावण को राम मारेंगे, हों! अब।

हमारे बोटोद में ऐसा था। बोटोद में (संवत्) १९७० में दीक्षा ली न? १९७० में दीक्षा ली। ५८ वर्ष हुए। तब वे 'रतनसी भावसार' थे। भाई पहिचानते हैं। रतनसी, पहले वहाँ थे न। वे होंकार देते थे। १९७० के आषाढ शुक्ल पूर्णिमा की बात है। दीक्षा हुई, कण्ठ अच्छा था, बहुत मीठा। फिर वहाँ ढाल... क्या कहलाता है? ढाल-ढाल। कोई शब्द है, भूल गये। वह... अलग और ढाल। ...अलग वे नीचे पढ़ते। इसलिए रतनसीभाई ऊपर आये। मुझे कहा-महाराज! आप आओ न। अरे! रतनसीभाई! यह तो मैं तो उसे विकथा मानता हूँ। पूर्णिमा से शुरु होवे वह भाद्र शुक्ल पंचम तक, बस इतना। मात्र ढाल और वह... ढाल पढ़े उसमें श्रीकृष्ण की बात, रामरास में राम की बात। दोनों अलग बात है। इसलिए हमारे नीचे मूलचन्दजी थे, माणिकचन्दजी थे। १९७० का पहला चातुर्मास था न? माणिकचन्दजी थे और कानजी भावसार थे। भावसार नहीं थे परन्तु वह दीक्षा... वे दो व्यक्ति थे और चार हम थे। फिर नीचे हमारे मूलचन्दजी... रतनसी भावसार आये, हों! मैं तो ऊपर बैठता था।नीचे बैठे। जहाँ जरा कहा... ऐई! रतनसीभाई! यह तो सब विकथाएँ हैं। तब कहा, तुम्हारे गुरु पढ़ते हैं न? तो गुरु पढ़ते हैं तो भी विकथा है। मेरे सामने

तो बहुत बोल नहीं सके। यह हमारे गुरु मूलचन्दजी पढ़ते, हीराजी महाराज पहले पढ़ते, फिर बन्द कर दिया। फिर मूलचन्दजी पढ़ते। चाहे जो पढ़े। यह लोकरंजन और लोगों को इकट्ठे करने की कथा है। उसमें धर्म क्या होगा और कैसे होगा, उसकी बात उसमें कहाँ है? आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा, १९७० के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? १९७० में दीक्षा ली थी। ५७ वर्ष। नहीं, यह धर्म की बात छोड़कर ऐसी सब लोगों को रंजन करने की...? अब यह तो बात कहाँ थी? आहाहा!

कहते हैं, यहाँ जो पाँचवें महाव्रत के राग को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा, उसका कारण ऐसा है कि मुनि को मुनियोग्य छठवें गुणस्थान में जो शुद्धपरिणति तीन कषाय के अभाव की वीतरागदशा प्रगट हुई होती है, वह शुद्धपरिणति बाद के सातवें गुणस्थान के शुद्धोपयोग को शुद्धपरिणति कारण कहलाती है। वह कारण इसका वास्तविक है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है, तथापि इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप... क्या कहते हैं? वह शुद्धपरिणति, छठे (गुणस्थान) में शुद्ध वीतरागदशा है, वह शुद्धोपयोग का कारण है। सातवें का शुद्धोपयोग मुनि को, और वह शुद्धोपयोग केवल मोक्ष का कारण है।

इस प्रकार यहाँ शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप... शुद्धपरिणति परम्परा से मोक्ष का कारण है, भाई! साक्षात् मोक्ष का कारण शुद्धोपयोग है। यहाँ है, तदनुसार बात को सिद्ध किया है। समझ में आया? जो बात जैसे हो, वैसे सिद्ध होगी न? कहो, समझ में आया? आत्मा में शुद्धोपयोग, पुण्य और पाप के अशुद्धोपयोग से रहित आत्मा के आनन्द का शुद्धोपयोग, निर्मलानन्द वीतराग उपयोग, वह मुक्ति का कारण है। अब उस शुद्धोपयोग का कारण... वह शुद्धोपयोग सातवें गुणस्थान में होता है। आंशिक नीचे होता है, उसकी यहाँ बात नहीं लेना है। उस शुद्धोपयोग का कारण छठवीं भूमिका में जिसे शुद्धपरिणति जो है, वीतरागी दशा (है), वह शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धपरिणति परम्परा से मोक्ष का कारण है। सीधा (कारण) तो शुद्धोपयोग है। समझ में आया? यह शुद्धपरिणति परम्परा से मोक्ष के कारण का आरोप शुभ उपयोग में व्यवहार से दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : जरा लम्बा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा है। है तो लम्बा। बात सच्ची है परन्तु इसे समझना पड़ेगा न? आहाहा! ऐसे काल में नहीं समझे, बापू! यह मनुष्य देह चला जाएगा, भाई! यह तो हड्डियाँ हैं, मिट्टी है, इसकी अवधि से रहेगी, अवधि पूरी होने पर चला जाएगा। तुझे करना हो, वह यदि नहीं किया, (तो) यह लट का अवतार और मनुष्य के अवतार में अन्तर क्या? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि यहाँ परम्परा से पंचम गति का हेतु पाँचवें महाव्रत के विकल्प को-शुभराग को कहा, उसका यह आश्रय समझना कि आत्मा में वस्तु के आश्रय से मुनि के योग्य जो शुद्धदशा, वीतरागी परिणति-पर्याय प्रगट हुई है, वह शुद्धोपयोग बाद का उसका वह कारण है और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है तो वास्तव में तो शुद्धपरिणति ही मोक्ष का परम्परा कारण है परन्तु... यह निश्चय हुआ। निश्चय परम्परा कारण। समझ में आया? वह राग व्यवहार है, इसका-शुद्धपरिणति का आरोप वहाँ डाला है। निश्चय से परम्परा हेतु यह है। इसका हेतु यहाँ डाला कि यह परम्परा मोक्ष का कारण है, यह व्यवहार से कहने में आया है। कहो, समझ में आया? गजब बातें, भाई! यह, ऐसा समझ करना, श्रद्धा करना... यह कोई... आहाहा! वह तो चलो दया पालो, व्रत करो और करो उपवास तथा दो-पाँच लाख खर्च करके यात्रा कर डालो, धर्म हो जाएगा। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! लाख यात्रा निकाल तो भी वहाँ कहाँ धर्म था? वह तो शुभराग है। महाव्रत और तप करने में राग मन्द करे तो शुभराग है। वहाँ धर्म-बर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

एक व्यक्ति का पत्र आया है। कल किसी का पत्र आया है, यह तुम्हारे क्या कहलाता है परबिंडियो? अन्तर्देशी। महाराज! आप ये सब मन्दिर बनाते हो, इसकी अपेक्षा ढूँढिया को आत्मा की ओर झुकाओ न! प्रतिमा वह तो शुभराग है। ऐसा बेचारे बहुत लिखते हैं। कौन कहता है? यहाँ मन्दिर का किसी ने कहा नहीं। यह तो अपने आप लोग करते हैं। हम कहते हैं कि इसमें शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं।

मुमुक्षु : लोग क्यों करते हैं? आप कहते हो कि आपने उपदेश किया नहीं और लोग बनाते हैं। अब उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश किया नहीं, ऐसा नहीं है। यह तो कहा नहीं कि तू यह करना, ऐसा। उपदेश में तो सब बात आती है। ऐई! और वह भी जहाँ नहीं, वहाँ लोग बनाते

हैं। जहाँ आगे साधन नहीं है, वहाँ बनाते हैं। समझ में आया? एक विशेष आँख में आवे, ऐसा जरा यह फतेपुर का होगा, ऐसा लगता है। कहा हमने तब भी हुआ था। जो होता है, वह तो होगा, क्योंकि गाँव छोटा न... जरा लोगों को लगता है। परन्तु पैंतीस घर और वे समवसरण बनाते हैं। हमने तो कभी कुछ कहा नहीं। मार्ग ऐसा है और उसमें ऐसा होता है, बस इतनी बात है और अभी तो देखो न, यह जयपुर में तो अकेला शिक्षण का कार्य। अकेला शिक्षण, भाई! बापू! शिक्षण में दो-ढाई लाख रुपये खर्च किये। बीस दिन, दो हजार लोग बाहर से आये थे। दो घण्टे व्याख्यान और दो घण्टे शिक्षा। तत्त्व का उपदेश। दो सौ तो अध्यापक आये थे। पाठशाला में पढ़ानेवाले। बीस दिन हुए न वहाँ? ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह। अन्दर समझाने के लिए ऐसा शुभभाव होता है। है तो शुभभाव, कहा, भाई!

जहाँ जरूरत नहीं है, वहाँ मन्दिर बनाना; जरूरत नहीं है, वहाँ मानस्तम्भ बनाना, पैसा डालना, बापू! यह कहीं ठीक नहीं कहलाता। यह तो अपने इकट्ठा काम करते हैं। यह लोग जहाँ जरूरत है, वहाँ डालते हैं और यह वह क्या कहलाता है? आहारजी नहीं? पपोरा। कितने मन्दिर। दिगम्बर घर एक भी नहीं। तीन तो मानस्तम्भ हैं, चौथा बनाते हैं। लोगों को पैसे हुए हों, लोगों को ऐसा लगता है कि ओहो! अमुक सेठ का मन्दिर। मान है। मान के लिए (बनाते हैं)। जहाँ देवदर्शनादि न हो, वहाँ होता है परन्तु यह तो पचास-पचास मन्दिर और चार-चार बड़े ढेर। आहाहा! दुनिया रिवाज में चढ़ी, वह कहाँ चढ़ी?

यहाँ तो कहते हैं, मुनि जैसे सच्चे सन्त को भी जो महाव्रत का शुभोपयोग आता है, वह भी राग है, वह भी बन्ध का कारण है, परन्तु आये बिना नहीं रहता। स्वरूप के अनुभव की दशा में चारित्र निर्मल वीतरागदशा प्रगट हुई हो, तथापि होता है। उस शुभोपयोग को मोक्ष का कारण कहा, उसका हेतु यह कि मुनियोग्य सच्ची शुद्ध वीतराग दशा प्रगटी होती है, वह शुद्धोपयोग का हेतु और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। वह निश्चय वास्तविक कारण है। यह व्यवहार कारण है। कहो, समझ में आया? स्व आश्रय शुद्धपरिणति, स्व आश्रय शुद्धोपयोग, स्व आश्रय मुक्ति, ऐसा। इस अपेक्षा से निश्चय कहा और यह तो पर के आश्रय से राग। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! इसमें वाद-विवाद को कोई अवसर भी नहीं है। ऐसी चीज़ है। भगवान ने कुछ की नहीं है। भगवान ने तो अपना सर्वज्ञपना प्रगट किया, तब वाणी द्वारा आया कि मार्ग यह है, बापू! भगवान, वे किसी के कर्ता नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? लो।

इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप-उसके साथ रहनेवाले-शुभोपयोग में करके, व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है। जहाँ शुद्ध परिणति ही न हो.... परन्तु जहाँ अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना न हो, वह पुण्य और विकल्प से धर्म माने, महाव्रत के परिणाम को चारित्र माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? बात ऐसी है, बापू! वीतराग के घर का सत्य तो ऐसा है। आहाहा! इन्द्र, सौधर्म देवलोक के इन्द्र, ईशान इन्द्र जो स्वीकार करते हैं, बापू! वह कहीं कोई दो-चार, पच्चीस-पचास लोगों की कल्पना की बात नहीं है। वह तो अनन्त तीर्थकरों, अनन्त इन्द्रों ने स्वीकार किया, अनन्त गणधरों ने अनुभव किया, अनन्त तीर्थकरों ने यही कहा है। समझ में आया?

जहाँ शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और स्वद्रव्य का भान ही नहीं है, शुद्ध परिणति ही न हो, वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग में मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप भी नहीं किया जा सकता,... बराबर है? क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु... वह शुद्धपरिणति। शुद्धपरिणति यथार्थ परम्पराहेतु है। वह तो है नहीं। जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु प्रगट ही नहीं हुआ है - विद्यमान ही नहीं है, वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका किया जाए? कहो, समझ में आया? जरा लम्बी बात है, परन्तु अब इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट हुआ? यह स्पष्ट ही है। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। यही बात प्रभु कहते हैं। साक्षात् विराजते हैं। तीर्थकर, केवली विद्यमान गणधर, इन्द्र जाते हैं। वही बात यह है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री समयसार में (२०८ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि— लो, आधार देते हैं। इस ओर है न?

मज्झं परिग्गहो यदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।

णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झं ॥

धर्मात्मा, मुनि ऐसा विचारते हैं कि यदि परद्रव्य-परिग्रह मेरा हो... यह विकल्प से

लेकर। यहाँ फिर पर्याय परद्रव्य, ऐसा नहीं, वह रखो एक ओर। शुभराग महाव्रत का विकल्प है, वह भी अचेतन है। राग अचेतन है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! राग है न? विकल्प है, वह अचेतन है। अचेतन अर्थात् उसमें चैतन्य ज्ञान के आनन्द का अंश नहीं है। चैतन्य के किरण का अंश नहीं है। तो कहते हैं कि परद्रव्य यदि मेरा होवे, अचेतन राग मेरा होवे तो मैं अजीवत्व को प्राप्त होऊँ। आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्द की मूर्ति प्रभु है। सचेत, सचेत। अकेला ज्ञान-आनन्द का चेतन का पिण्ड है। उस चीज़ में इस राग का, वस्त्रादि का तो एक ओर रखो, महाव्रत का विकल्प, वह वास्तव में अचेतन है। राग है, इसलिए (अचेतन है) क्योंकि राग स्वयं राग को नहीं जानता, राग दूसरे के द्वारा जाना जाता है; इसलिए वह राग अचेतन है। उस राग को मेरा मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यदि परद्रव्य-परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवत्व को प्राप्त होऊँ। मैं तो ज्ञाता ही हूँ;... वह अचेतन विकल्प मेरा नहीं है। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन हुआ, तब से भान है, परन्तु यह तो चारित्रवन्त कहते हैं। यह चारित्र की व्याख्या है न? निर्जरा की गाथा है न यह? समयसार की निर्जरा की गाथा है। मैं तो ज्ञाता ही हूँ; इसलिए (परद्रव्यरूप) परिग्रह मेरा नहीं है। यह विकल्पमात्र दया, दान, व्रत का राग वह मेरी वस्तु नहीं है। वह मेरी होवे तो मैं अचेतन हो जाऊँ। आहाहा! शरीर-बरीर तो कहीं रह गया। यह तो मिट्टी-धूल है। अजीवरूप से रही हुई यह तो मिट्टी-धूल है, पुद्गल है। यह मेरा—ऐसा माने, तब तो जड़ है, कहते हैं। परन्तु राग के भाग को भी मेरा मानूँ तो, मैं अजीव हो जाऊँ, जीवपने न रहूँ।

मैं तो ज्ञाता ही हूँ;... जानने-देखनेवाली मेरी चीज़ है। मुझमें ये रागादि कोई चीज़ है नहीं। ऐसे आत्मा को अन्दर में अनुभव करना चाहिए, स्थिरता करनी चाहिए। इसका नाम मुक्ति का मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-८०

और, (६० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक करते हैं)—

(हरिणी)

त्यजतु भव-भीरुत्वाद्भव्यः परिग्रहविग्रहं,
निरुपम-सुखावास-प्राप्त्यै करोतु निजात्मनि ।
स्थिति-मविचलां शर्माकारां जगज्जनदुर्लभां,
न च भवति महच्चित्रं चित्रं सता-मसतामिदम् ॥८०॥

(वीरछन्द)

परिग्रहद्वय भवभय का कारण, भव्य जीव तुम अभी तजो ।
निरुपम सुख-ग्रह प्राप्ति हेतु, निज में ही अविचल लीन रहो ॥
यद्यपि जगत जनों को, दुर्लभ सुखस्वरूप है यह स्थिरता ।
किन्तु असत् पुरुषों को अचरज, सत्पुरुषों को अचरज क्या ॥

[श्लोकार्थः—] भव्य जीव, भवभीरुता के कारण परिग्रहविस्तार को छोड़ो और निरुपम सुख के आवास^१ की प्राप्ति हेतु निज आत्मा में अविचल, सुखाकार (सुखमयी) तथा जगत्जनों को दुर्लभ ऐसी स्थिति (स्थिरता) करो और यह (निजात्मा में अचल सुखात्मक स्थिति करने का कार्य) सत्पुरुषों को कोई महा-आश्चर्य की बात नहीं है; असत्पुरुषों को आश्चर्य की बात है ।

प्रवचन-६३, श्लोक-८० से ८२, गाथा-६१, शुक्रवार, आषाढ़ शुक्ल ८, दिनांक ०२-०७-१९७१

यह नियमसार, व्यवहारचारित्र अधिकार है, इसमें ६०वीं गाथा, का ८०वाँ कलश है । पंच महाव्रत की बात आयी न? उसका कलश है ।

१- आवास = निवासस्थान; घर; आयतन ।

त्यजतु भव-भीरुत्वाद्भव्यः परिग्रहविग्रहं,
 निरुपम-सुखावास-प्राप्त्यै करोतु निजात्मनि ।
 स्थिति-मविचलां शर्माकारां जगज्जनदुर्लभां,
 न च भवति महच्चित्रं चित्रं सता-मसतामिदम् ॥८०॥

श्लोकार्थ - भव्य जीव,... वास्तविक मुनिपने की दशा का पाँचवाँ व्रत कैसा होता है और उसे निश्चय अनुभव कैसा होता है, उस सहित बात है। निश्चय में अपना स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अनुभव हुआ होता है। तदुपरान्त उसे स्वरूप की, शान्ति की, वीतरागता की विशेष रमणता हुई होती है। उसे उसकी भूमिका प्रमाण में पाँचवाँ महाव्रत ऐसा शुभराग, परिग्रह के त्याग का ऐसा शुभराग होता है, उसे यहाँ पाँचवाँ महाव्रत कहते हैं। वह जीव **भव्य जीव,...** वह भव्य जीव होता है। आत्मा की शान्ति अर्थात् आनन्द पूर्ण दशा, ऐसी मुक्ति का वह अभिलाषी होता है।

भवभीरुता के कारण... और उसे चार गति के भव का भय होता है। मुनि को चार गति में कहीं जाना, गति में जाना या भव में जाना, वह उन्हें भय होता है। चार गति का परिभ्रमण का उन्हें डर होता है। स्वर्ग गति हो तो भी वह कषाय की अग्नि से, स्वर्ग के देव भी कषाय के अंगारों से जल रहे हैं। गति में कहीं शान्ति नहीं है, इसलिए धर्मा-सम्यग्दृष्टि और मुनि... यहाँ मुनि की बात है न? **भवभीरुता...** किसी भी भव और भव का कारण भाव, उससे उन्हें डर होता है। यह नहीं... यह नहीं... अरे! मैं तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का साधक—ऐसा मैं, उसे भव के भाव से डर होता है।

ऐसे जीव **परिग्रहविग्रहं** विग्रह का अर्थ यहाँ विस्तार किया है। विग्रह का अर्थ किया। **परिग्रहविस्तार को छोड़ो...** जैनदर्शन का वास्तविक मुनिपना, वीतराग ने कहा हुआ कैसा होता है, इसकी सच्ची समझ देते हैं और वह मुनिपना अंगीकार करना कि जो मुक्ति का तात्कालिक कारण है। ऐसा उपदेश में वैराग्य कराते हैं। उस समस्त परिग्रह को छोड़ो। सच्चे मुनि हैं, उन्हें तो एक वस्त्र का धागा भी नहीं होता। समझ में आया? इसलिए कहा न? **परिग्रहविस्तार को छोड़ो...** परिग्रह का विग्रह-विस्तार जितना सब। एक वस्त्र का टुकड़ा रखे, तो भी वह ममत्व, मूर्च्छा और परिग्रह है और ऐसा भाव है, वहाँ मुनिपना होता नहीं।

कहते हैं **परिग्रहविस्तार को छोड़ो...** व्यवहार का उपदेश है न? और **निरुपम**

सुख के आवास की प्राप्ति हेतु... ऐसे भव से भीरु हैं और निरुपम – उपमारहित आत्मा का आनन्द, उसका आवास = निवासस्थान वह आत्मा। उसका घर वह आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का घर आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द कहीं अन्यत्र नहीं है। अतीन्द्रिय सुख के आवास की प्राप्ति हेतु निज आत्मा में अविचल,... अपना सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का भण्डार आत्मा है, उसमें अविचल—चलित न हो, इस प्रकार स्थिर हो (-ऐसा) कहते हैं। देखो! यह मुनिपना। आहाहा! सुखाकार... शर्माकारं यह न? शर्माकारं शर्म का आकार है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है। प्रभु आत्मा इन पुण्य-पाप के राग से भिन्न और अपने अतीन्द्रिय आनन्द से अभिन्न, ऐसा आत्मतत्त्व है। आहाहा!

ऐसा सुख का आकार अर्थात् सुखमयी भगवान। तथा जगत्जनों को दुर्लभ ऐसी स्थिति (स्थिरता) करो... आहाहा! साधारण प्राणी को आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में रहना महा दुर्लभ है। मुनि को तो सुलभ है। उसे मुनि कहते हैं। आहाहा! जो अपना अतीन्द्रिय आनन्द सम्यग्दर्शन में अनुभव किया था, पहले सम्यग्दर्शन में जाना था कि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। उसमें अविचल स्थिति। आहाहा! वह तो जगत के साधारण प्राणी को दुर्लभ है। आहाहा! ओहोहो! दुर्लभबोधि। पहले तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य दुर्लभ है। क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। बाहर से मान बैठे। आहाहा! जिसे जगत के भव में से निकलना है, उसे तो आत्मा की ऐसी अन्तरदशा अनुभव में होती है। तदुपरान्त अविचल स्थिति (स्थिरता) आत्मा में होती है। जगतजनों को तो दुर्लभ है। आहाहा! मुनिदशा में अतीन्द्रिय आनन्द में मुनि स्थिर होते हैं। आहाहा! यह मुनिपना। यहाँ तो अभी मुनिपने की खबर नहीं होती। क्या चीज़ है? यह चल निकले मुनि हो गये। आहाहा!

दुर्लभ ऐसी स्थिति (स्थिरता) करो... आहाहा! जो वस्तु आत्मा आनन्द का घर, आनन्द का निवास, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम आत्मा है, उसका अनुभव किया कि यह आत्मा है। अब उसमें स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। उसमें निवास कर, वास कर, स्थिर हो, इसका नाम साधुपना है और इस चारित्र्यदशा के बिना, ऐसी चारित्र्यदशा के बिना मुक्ति नहीं होती। कहो, समझ में आया?

और यह (निजात्मा में अचल सुखात्मक स्थिति करने का कार्य) सत्पुरुषों को

कोई महा-आश्चर्य की बात नहीं है;... आहाहा! सन्तों को, वीतरागी सन्त को, वीतरागी मुनियों को अन्तर के स्वभाव में रहना, स्थिर होना, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वह तो इसके स्वभाव की स्थिति ही ऐसी है। आहाहा! मुनि तो छठवें-सातवें गुणस्थान में हजारों बार झूलते हैं। एक दिन में हजारों बार अप्रमत्तदशा आती है। छठा-सातवाँ गुणस्थान। घड़ीक में ससम। आनन्द में लीन हो जाते हैं, फिर विकल्प उठता है, वह छठवाँ आ जाता है। फिर सातवाँ... फिर छठवाँ... देखो! यह दशा। जैनदर्शन के—वास्तविक दर्शन के सन्त ऐसे होते हैं। आहाहा!

सत्पुरुषों को कोई महा-आश्चर्य की बात नहीं है;... ऐसा कहते हैं। ओहो! जिसने आत्मा को, जैसे हथेली की रेखा को देखते हैं, वैसे अन्दर देखा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, पहले से आत्मा ऐसा जाना और देखा है। कहते हैं, ऐसे धर्मात्मा को आगे बढ़कर स्वरूप में स्थिर होना, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वह तो उनका स्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धन्य अवतार है न! समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का वह सागर है। आहाहा! उसमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत के विकल्प राग, वह भी उस स्वरूप में नहीं। ऐसी वह चीज़ है। उस चीज़ में, उस वस्तु में बसना, वस्तु में बसना, ऐसे आनन्द में स्थिर होना सत्पुरुषों के लिए कोई आश्चर्यकारी नहीं है, यही उनकी दशा होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

असत्पुरुषों को आश्चर्य की बात है। आहाहा! जिन्हें, आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा, ऐसी जिन्हें खबर नहीं और पर में, धूल में, पुण्य में, पाप में सुखबुद्धि मानी है, ऐसे अज्ञानियों को आत्मा में स्थिर होना, वह आश्चर्यकारी है। उन्हें आश्चर्य की बात है। अर्थात् वे नहीं कर सकते। आहाहा! पाँचवाँ महाव्रत था न! निर्ग्रन्थदशा को ऐसा विकल्प होता है, नग्नदशा। जैन के सच्चे मुनि तो अन्तर में तीन कषाय के अभाववाले, बाहर में अत्यन्त नग्नदशा होती है, उन्हें जैन के मुनि कहा जाता है। अकेले नग्न भी नहीं और अकेले तीन कषाय का अभाव हुआ हो और शरीर में वस्त्रादि रहें, ऐसा भी नहीं है। ऐसी दशा है। वीतराग परमेश्वर की यह आज्ञा है, ऐसी इसे पहले पहिचान करके मानना चाहिए। यह ८०वाँ कलश हुआ।

गाथा-६१

प्रासुगमगणेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।
 गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥
 प्रासुकमार्गेण दिवा अवलोकयत् युगप्रमाणं खलु ।
 गच्छति पुरतः श्रमणः ईर्या-समितिर्भवेत्तस्य ॥६१॥

अत्रेर्यासमितिस्वरूपमुक्तम् । यः परमसंयमी गुरुदेवयात्रादिप्रशस्तप्रयोजनमुद्दिश्यैक-
 युगप्रमाणं मार्गमवलोकयन् स्थावरजङ्गमप्राणिपरिरक्षार्थं दिवैव गच्छति, तस्य खलु परम-
 श्रमणस्येर्यासमितिर्भवति । व्यवहारसमितिस्वरूपमुक्तम् । इदानीं निश्चयसमितिस्वरूप-मुच्यते ।
 अभेदानुपचाररत्नत्रयमार्गेण परमधर्मिणमात्मानं सम्यग् इता परिणतिः समितिः । अथवा
 निजपरमतत्त्वनिरतसहजपरमबोधादिपरमधर्माणां संहतिः समितिः । इति निश्चय-व्यवहारसमितिभेदं
 बुद्ध्वा तत्र परमनिश्चयसमितिमुपयातु भव्य इति ।

मुनिराज चलते मार्गं दिन में, देख आगे की मही ।
 प्रासुक धुरा जितनी, उन्हें ही समिति ईर्या है कही ॥६१॥

अन्वयार्थः—[श्रमणः] जो श्रमण, [प्रासुकमार्गेण] प्रासुकमार्ग पर [दिवा]
 दिन में [युगप्रमाणं] धुरा प्रमाण [पुरतः] आगे [खलु अवलोकयन्] देखकर
 [गच्छति] चलता है, [तस्य] उसे [ईर्यासमितिः] ईर्यासमिति [भवेत्] होती है ।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), ईर्यासमिति का स्वरूप कहा है ।

जो परमसंयमी^१ गुरुयात्रा (गुरु के पास जाना), देवयात्रा (देव के पास

१- परमसंयमी मुनि को (अर्थात्, मुनियोग्य शुद्धपरिणतिवाले मुनि को) शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो
 (हठरहित) ईर्यासम्बन्धी (गमनसम्बन्धी; चलनेसम्बन्धी) शुभोपयोग, वह व्यवहार ईर्यासमिति है ।
 शुद्धपरिणति न हो, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहारसमिति भी नहीं कहलाता
 [इस ईर्यासमिति की भाँति अन्य समितियों का भी समझ लेना]

जाना) आदि प्रशस्त प्रयोजन का उद्देश्य रखकर, एक धुरा (चार हाथ) जितना मार्ग देखते-देखते, स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की परिरक्षा (समस्त प्रकार से रक्षा) के हेतु दिन में ही चलता है, उस परमश्रमण को ईर्यासमिति होती है। (इस प्रकार) व्यवहारसमिति का स्वरूप कहा गया।

अब, निश्चयसमिति का स्वरूप कहा जाता है – अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी मार्ग पर परमधर्मी ऐसे (अपने) आत्मा के प्रति सम्यक् 'इति' (गति) अर्थात्, परिणति, वह समिति है; अथवा निज परमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों को संहति (मिलन; संगठन), वह समिति है।

इस प्रकार निश्चय और व्यवहाररूप समितिभेद जानकर, उनमें (उन दो में से) परम-निश्चयसमिति को भव्य जीव प्राप्त करो।

गाथा-६१ पर प्रवचन

६१ वीं गाथा। अब समिति की बात आयी। ईर्यासमिति। मुनि को आत्मा के भानसहित ईर्यासमिति। निश्चयसमितिसहित व्यवहारसमिति कैसी होती है, उसकी बात है। आहाहा! ६१वीं गाथा।

पासुगमग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।

गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥

नीचे हरिगीत, मूल गाथा का....

मुनिराज चलते मार्ग दिन में, देख आगे की मही।

प्रासुक धुरा जितनी, उन्हें ही समिति ईर्या है कही ॥६१॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में), ईर्यासमिति का स्वरूप कहा है। जो परमसंयमी... परमसंयमी मुनि, ऐसा पहले लिया है। उन्हें ऐसी व्यवहारसमिति होती है। नीचे अर्थ किया है। परमसंयमी मुनि को (अर्थात्, ...) नीचे नोट (मुनियोग्य शुद्धपरिणतिवाले मुनि को)... आहाहा! साधु के योग्य उसे वीतरागता, अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट हुई है, शुद्धता-पवित्रता प्रगट हुई है। (जैसे) पर्वत में से मीठा पानी झरता है, वैसे भगवान आत्मा

आनन्द का पर्वत है, उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द का झरना जिसे बहता है। आहाहा! ऐसी शुद्धपरिणति, (शुद्धपरिणतिवाले मुनि को) शुद्धपरिणति के साथ... ऐसी आनन्द की शुद्धदशा के साथ वर्तता हुआ... सहचर-साथ में रहनेवाला (हठरहित) ईर्यासम्बन्धी... सहज ऐसा विकल्प होता है। वहाँ हठ नहीं होती। (गमनसम्बन्धी; चलनेसम्बन्धी) शुभोपयोग,... उन्हें शुभोपयोग होता है। है वह पुण्यभाव है। व्यवहारसमिति, परन्तु निश्चय आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की शुद्धदशा की भूमिका प्रगट हुई है, उसे ऐसा हठरहित का शुभोपयोग होता है। बात-बात में बहुत अन्तर है। अभी की शैली और वीतराग का मार्ग सब फेरफार.. फेरफार..

वह व्यवहारसमिति है। कौन ? जिसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है और अतीन्द्रिय आनन्दसहित शुद्धदशा प्रगट हुई है। वीतरागी आनन्द आदि दशा प्रगट हुई है, उसे गमन सम्बन्धी शुभोपयोग / राग की मन्दता का भाव होता है। हठ (रहित होता है), उसे व्यवहारसमिति कहा जाता है। आहाहा! शुद्धपरिणति न हो,... जहाँ पहले शुद्धदशा ही, वीतरागदशा ही प्रगट नहीं हुई। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, आनन्द के धाम में से आनन्द का प्रवाह शुद्धपरिणतिरूप से जिसे हुआ ही नहीं, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है;... ऐसे देखकर चलने का शुभोपयोग अज्ञानी को होता है परन्तु हठवाला होता है। हठ, उसे तो यहाँ व्यवहारसमिति भी नहीं कहलाता... समझ में आया ?

वह शुभोपयोग तो व्यवहारसमिति भी नहीं कहलाता [इस ईर्यासमिति की भाँति अन्य समितियों का भी समझ लेना।] ऐसे भाषासमिति, ऐषणासमिति, आदाननिक्षेपण... उनमें भी उन्हें शुभोपयोग होता है, परन्तु वह शुद्धपरिणतिसहित शुभोपयोग सहचर होता है। आत्मा के शुद्धता के भान में शुद्धतापरिणतिरूप वीतराग छठवें गुणस्थान के योग्य। उसके योग्य जो वीतरागदशा। शान्त.. शान्त.. शान्त.. अन्तर में ऐसी अविकारीदशा प्रगट हुई है, उसे ऐसा गमन सम्बन्धी शुभोपयोग होता है, वह व्यवहारसमिति कहलाता है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु ऐसा होता है। जिसे शुद्ध का कुछ सम्यग्दर्शन का भान नहीं, सम्यक्चारित्र क्या, इसकी भी खबर नहीं; ऐसे ईर्यासमिति में शुभभाव होता है, वह हठवाला होता है। उसे मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। मिथ्यात्व का महापाप तो साथ में होता है। आहाहा! निश्चय सत् क्या है, वह रह गया। मात्र व्यवहार की खोटी रूढ़ियाँ रह गयीं। आहाहा! मार्ग तो वीतराग का यह तो परमेश्वर का मार्ग है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ,

जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रभु ने देखे हैं, ऐसी वीतरागदशासहित का केवलज्ञान, उनकी वाणी में तो यह आया है, बापू! मुनिपने की दशा। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी दशा होवे और निश्चय न होवे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय न होवे तो कुछ सच्चा ही नहीं है। शून्य है। रण में शोर मचाने जैसा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? यहाँ आत्मा की बात है। वह संघ भी खोटा और वह भी खोटे। खोटे-खोटे की बात यहाँ नहीं है। यह तो आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञ परमेश्वर ने वीतराग ने—केवलज्ञानी तीर्थकरदेव ने कहा और उन्होंने तो पूर्ण प्रगट किया। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त चतुष्टय प्रभु को प्रगट हुआ। उन्होंने कहा कि जिसे आत्मदर्शन का भान है, आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, राग का ईर्याविकल्प व्यवहार आवे, उसका भी मैं कर्ता नहीं। आहाहा! ईर्यासमिति का देखकर चलने का शुभभाव आवे, वह मेरा कर्तव्य नहीं है परन्तु आये बिना रहता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो ?

जिस पन्थ से गणधर गये, जिस पन्थ का स्वीकार इन्द्रों ने किया, जिस पन्थ में महाचक्रवर्ती, चक्रवर्ती का राज्य छोड़कर... आहाहा! जैसे कफ छोड़े, वैसे छियानवें हजार स्त्रियाँ छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द में, अन्तर के आनन्द में आत्मा में प्रभु रमने लगे। ऐसा मुनिपना है। आहाहा! धन्य अवतार! वह दशा आये बिना इसे मुक्ति नहीं हो सकती परन्तु उससे पहले उसका भान तो होना चाहिए न (कि) कैसा मुनिपना? कैसा समकित? कैसा ज्ञान? किसे चारित्र कहना? किसे व्यवहार कहना? किसे निश्चय कहना? कुछ खबर बिना ये सब चार गति में भटकने के मार्ग हैं।

परमसंयमी मुनि को.. पहला शब्द यह लिया। क्योंकि वह व्यवहारसमिति की-ईर्या की बात है न? परन्तु व्यवहार किसे होता है? कि परमसंयमी मुनि को। जिन्हें अभी आत्मा का सम्यग्दर्शन क्या, इसका भान नहीं, इसकी पहिचान नहीं! उसे व्यवहार से देखकर चले और यह करे, वह सब मिथ्यात्वसहित हठवाला शुभभाव है। आहाहा! ऐसे परमसंयमी मुनि को अन्तर में तो शुद्धता बहुत प्रगट हुई है। तीन कषाय-अनन्तानुबन्धी,

अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय तीन का जिसे अभाव वर्तता है, ऐसे मुनि को गुरुयात्रा... लो आया। पुद्गलयात्रा था न? पुद्गलयात्रा बिना, पुद्गल बिना यात्रा नहीं हो सकती। लो आया। यह गुरुयात्रा। धर्मात्मा, आत्मज्ञानी, ध्यानी, आनन्द में रहनेवाले सच्चे सन्त को भी गुरु के पास जाने का विकल्प आता है। अपने गुरु हों, आनन्द विशेष अधिक गुण में हैं, उनके पास जाने का विकल्प होता है, वह शुभविकल्प है। उस गमन में उन्हें शुभभाव होता है। देखकर चलना।

देवयात्रा... साक्षात् परमात्मा विराजते हों, उनके दर्शन करने जाना हो या देवयात्रा... सर्वज्ञ परमात्मा की सच्ची वीतरागमूर्ति, ऐसे तीर्थादि में जाना हो। आदि प्रशस्त प्रयोजन... लो, ये सब प्रशस्त प्रयोजन हैं, शुभराग के प्रयोजन हैं। गुरु के पास शिक्षा लेने जाना दो-पाँच कोस दूर हों तो। इत्यादि गमन करना, परन्तु है वह परमसंयमी सन्त स्वयं। उन्हें ऐसा शुभयोग का भाव आता है। ऐसे प्रशस्त प्रयोजन का उद्देश्य रखकर, एक धुरा जितना मार्ग देखते-देखते,... ऐसे बाहर नजर रखे कि कोई जीव-जन्तु न हो। यहाँ शुभ उपयोग है न? आहाहा!

एक धुरा जितना मार्ग देखते-देखते, स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की परिरक्षा के हेतु... प्रासुक मार्ग। उसमें कोई जीवजन्तु न हो, ऐसे मार्ग में मुनि गमन करे। नीचे वनस्पति हो, हरिकाय उगी हो, त्रस-चींटी, मकोड़ा, खपेड़ी उड़ती होती है। बारीक-बारकी खपेड़ी। ऐसा जहाँ हो, वहाँ मुनि विहार न करे, उसमें गमन न करे। निर्दोष मार्ग हो, जिसमें अचेतन हो गया हो, लोगों के पैर से सब मर्दन होकर अचेतन (प्रासुक) हुआ हो, उसमें मुनि ईर्यासमिति से गमन करते हैं। आहाहा! स्थावर, एकेन्द्रिय प्राणी, हों! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, ये पाँच एकेन्द्रिय स्थावर जीव हैं। उनकी भी हिंसा न हो, ऐसे चलते हैं। दिशा में, जंगल में जाना हो तो जहाँ हरितकाय उगी हो, वहाँ जंगल (दस्त) नहीं जाते। यह पठवा में आता है। आहाहा! नीचे यह वनस्पति देखो न, चातुर्मास में तो कितनी जमी होती है। आहाहा! उसमें नहीं जाते। जहाँ बालू हो, बालू के नाला (धोरे) हो, खाली पानीरहित, वहाँ जाते हैं। वे वहाँ गमन करते हैं। यहाँ गमन नहीं करते।

यह प्राणियों की परिरक्षा के हेतु... उन्हें दुःख न हो, यह अपेक्षा। रक्षा की व्याख्या इतनी। दिन में ही चलता है,... मुनि रात्रि में नहीं चलता। रात्रि में यह तो घण्टे-घण्टे, दो-दो घण्टे अन्धकार में (चले), गर्मी है तो शीघ्र पहले पहुँच जाएँ, चाय को पहुँचने।

आहाहा! वह तो सम्यग्दर्शन और ज्ञानरहित व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। तुमने तो सब देखा होगा, नहीं? रात्रि को जल्दी उठे। चैत्र महीना की धूप हो। वहाँ शीघ्र पहुँच जाँ। चाय को फिर देरी होगी। अरे रे! तेरे व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। निश्चय तो है नहीं, वहाँ व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है, उसे साधु (माने)। कुसाधु को साधु मानने जैसी मान्यता है। आहाहा! ऐसा सन्तों का मार्ग, सर्वज्ञ परमेश्वर का है। तीर्थकरदेव के मार्ग में ऐसा है। अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं।

दिन में ही चलता है, उस परमश्रमण को ईर्यासमिति होती है। देखो! वापस यहाँ लिया। यहाँ यह शब्द है, हों! पहले परमसंयमी है। वहाँ फिर परम साधु है। परमश्रमण है। टीका में ही है। परमश्रमण अर्थात् अकेले अज्ञानी को ऐसा हो, यह नहीं। आहाहा! जिसे शुद्धभाव प्रगट हुआ है, वीतरागदशा जिसने अन्तर में अनुभव की है और प्रगट हुई है, ऐसे को ऐसा व्यवहार, यह समिति होती है। (इस प्रकार) व्यवहारसमिति का स्वरूप कहा गया। पाठ में था वह। अब वापस निश्चय की बात करते हैं। इसके साथ ही साथ।

अब, निश्चयसमिति का स्वरूप कहा जाता है... सच्ची समिति इसे कहते हैं। देखकर चलने का विकल्प तो उपचार, व्यवहारसमिति है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं है। व्यवहारसमिति भी धर्मी को धर्म नहीं है, शुभभाव है। अब निश्चयसमिति। निश्चयसमिति का स्वरूप कहा जाता है – अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी मार्ग पर परमधर्मी ऐसे (अपने) आत्मा के प्रति... देखो! बाहर चलते हैं न व्यवहारी? बाहर मार्ग में... तो अब निश्चयवाला? अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी मार्ग पर... आहाहा! एक तो शब्दों को समझना कठिन पड़े। अभेद-अनुपचार। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र निर्विकल्प स्वभाव के आश्रय से होता है, उसे अभेद रत्नत्रय कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अभेद कहो या अनुपचार कहो। उपचार नहीं। रत्नत्रयरूपी मार्ग में... आहाहा! अन्तर के स्वरूप में शुद्ध चैतन्य की सम्यग्दर्शनदशा, शुद्ध चैतन्य की सम्यग्ज्ञान, स्वसंवेदन ज्ञान की निर्मल दशा और स्वरूप में रमणतारूप वीतरागी चारित्र, ऐसे मार्ग में जो रमता है, उसे निश्चयसमिति कहते हैं। आहाहा!

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी... पृथ्वी में बाहर धुरा प्रमाण देखकर चले। कोई जीव को, परजीव को दुःख न हो, यह शुभोपयोग है परन्तु यह किसे होता है? जिसे अन्तर में अभेद रत्नत्रय, वस्तु भगवान आत्मा, आत्मा प्रभु स्वयं सच्चिदानन्द है, उसका जिसे

सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र हुआ है। आत्मा का साक्षात्कार जिसे हुआ है, वह रत्नत्रयरूपी मार्ग पर... वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो परिणति, उस मार्ग में गति करे, ऐसा कहते हैं। परमधर्मी ऐसे (अपने) आत्मा... ऐसा। रत्नत्रयरूपी मार्ग पर परमधर्मी ऐसे (अपने) आत्मा के प्रति सम्यक् 'इति'... परिणति। आत्मा की सम्यक् शुद्धदशा, उसे सच्ची समिति कहा जाता है। उसे संवर और निर्जरारूप समिति कहने में आता है। वह शुभ था कि देखकर चलना, वह तो पुण्यबन्ध का कारण शुभोपयोग था। समझ में आया? अभी बात समझते पकड़ में नहीं आती। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धभाव की परिणति है न? उसके साथ यह शुभ है। समिति है न, अन्दर उपयोग स्थिर नहीं हुआ। शुद्धपरिणति भी निश्चयमोक्षमार्ग में आत्मा को जोड़ा हुआ है। उसमें चलता है, गति करता है। अन्तःसमिति और साथ में यह शुभोपयोग होता है, वह व्यवहार है, यह (शुद्ध उपयोग) निश्चय है। निश्चय, वह धर्म है और व्यवहार, वह पुण्य है। ऐसी बात है। वह बाहर में मार्ग में देखकर चले। यह अन्तर के मार्ग में देखकर चले। अपने आत्मा के प्रति सम्यक् गति, ऐसा, अर्थात् परिणति, शुद्धदशा, उसे सच्ची समिति कहा जाता है। अब इसकी तो गन्ध भी नहीं होती और व्यवहारसमिति में यह है... यह है... और विधि करो। विधि से धर्म करो, विधि से देखकर चलो। परन्तु किसको?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मिच्छामि दुक्कडं, यह तो आता है।

मुमुक्षु : शुभभाव अविधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह शुभभाव ही अभी निश्चय से अविधि है। सूक्ष्म बात है। विधि से करना, अविधि न होने देना। खमासणा में अमुक में-अमुक में... अरे! बेचारा मजदूरी कर-करके मर जाता है। पुण्यबन्ध का भी ठिकाना नहीं होता। मिथ्यासहित है न? यहाँ तो भगवान आत्मा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागी परिणति में प्रवर्तता है, उसका आत्मा सम्यक् गतिरूप से परिणमा है, उसे समिति कहा जाता है। वह सच्ची समिति है। सन्तों की सच्ची समिति। आहाहा!

मुमुक्षु : यह भाव का काम है....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होवे, वहाँ ऐसा होता है। स्थिर न हो गया हो उसे। कहते थे न वे। निश्चय हो, उसे फिर क्या दिक्कत ? अरे ! जिसे पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई, उसे ऐसा होता है, वहाँ ऐसा शुभविकल्प आता है, नहीं तो वीतराग केवली हो गया हो। कहा न ? गुरु के पास जाना, देव के पास जाना। उसे ऐसा भाव आता है, जानता है कि यह शुभराग है। व्यवहार से ऐसी दशा है। यद्यपि ज्ञानी तो व्यवहार से मुक्त है, परन्तु उस मुक्तदशा में ऐसा एक परविकल्प उठता है, ऐसा वह जानता है। आहाहा ! गजब बात ! लो, मुनि को शुभोपयोग होता है। एक ओर कहते हैं समकिति निश्चय में लीन, व्यवहार से मुक्त है। वह रखकर यह बात है। आहाहा ! परन्तु बात यह है कि यह आत्मा क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं होती। आत्मा अर्थात् कुछ है बस। परन्तु वह अन्दर कौन है ? अनन्त आनन्द का धाम सच्चिदानन्द प्रभु है वह। आहाहा ! महाप्रभु की तो खबर नहीं होती और इन बाहर के भगवान की पहिचान करने निकले। ऐसी जिसे समिति की निश्चयदशा होती है, उसे वह व्यवहार होता है अथवा...

मुमुक्षु : परमधर्मी...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाना परमधर्मी ऐसा अपना आत्मा। यहाँ धर्मी अर्थात् धर्म का धारक, ऐसा आत्मा अपने आत्मा के प्रति सम्यक् परिणति है ऐसी। ऐसा, धर्मी तो त्रिकाल वस्तु है, परन्तु उसकी परिणति है न, वीतराग परिणति वर्तमान है।

परमधर्मी ऐसे (अपने) आत्मा के प्रति सम्यक् 'इति' (गति) अर्थात्, परिणति,... उस ओर की झुकाववाली दशा। और शुभभाव की दशा परसन्मुख के झुकाववाली है, ऐसा कहना है। आहाहा ! कोई कहे, परन्तु ऐसा समझकर हमें क्या काम है ? परन्तु तुझे समकित क्या ? साधुपना क्या ? संवर-निर्जरा क्या ? नव तत्त्व को भलीभाँति जानना पड़ेगा या नहीं ? नव तत्त्व में संवर-निर्जरा किसे कहना ? मुनिपना अर्थात् संवर, निर्जरा। जिसे अभी नव तत्त्व की खबर नहीं। उसे अकेला आत्मा अन्दर से छाँटकर अलग करके अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! नव तत्त्व के तत्त्व की अन्दर में अभी उसका ठिकाना नहीं होता। वीतराग कहते हैं उस प्रकार, हों ! वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात कहीं किसी धर्म में है नहीं। यह बात कहीं नहीं हो सकती। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त सबने कल्पना से सब बातों की हैं। समझ में आया ?

निज परमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों को संहति... लो! (मिलन; संगठन)... एकाकार होना। परमज्ञानादिक परमधर्मों को संहति... उसमें एकाकार होना। आत्मा के प्रति था न पहला? उसमें परमधर्मों के प्रति। वह धर्मों के प्रति था, इसे धर्म के प्रति, स्वभाववान के प्रति परिणति थी। यह स्वभाव में परिणति, ऐसा कहते हैं। धर्म है न? निज परमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों... ऐसा। वह परमधर्मों था। यहाँ सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों... उसकी संहति (मिलन; संगठन),... स्वभाव की एकता। वह समिति है। आहाहा!

इस प्रकार निश्चय और व्यवहाररूप समितिभेद जानकर,... देखो! दोनों को बराबर जानकर कि निश्चय सत्य यह है, व्यवहार उपचार यह है। (उन दो में से)... देखो अब। परम-निश्चयसमिति को भव्य जीव प्राप्त करो। ठीक। अधिकार व्यवहार का है। व्यवहार को प्राप्त करो नहीं, व्यवहार आ जाता है। इसलिए कठोर लगे न यह। मुनि हैं और अधिकार व्यवहार का चलता है परन्तु यह व्यवहार, निश्चय को समझाने के लिए, निश्चय में स्थिरता हो, उसके लिए व्यवहार है। निश्चय को प्राप्त करना है, व्यवहार को प्राप्त करना नहीं। व्यवहार तो बीच में आ जाता है। गजब बात!

यह तो जिसे संसार का, चार गति का डर लगा हो। कहीं सुख नहीं स्वर्ग में या सेठई में या धूल में। सुख आत्मा में है, ऐसी जिसे रुचि और गरज हुई हो, उसे मुनिपना कैसा होता है, उसे पालने का, उसे समझना चाहिए। और यह मुनिपने की ऐसी दशा न हो, उसे मुनिपना मानना, तो माननेवाले को भी मिथ्यात्व लगता है। समझ में आया? वह तो मिथ्यात्वी है ही। जिसे मुनिपना नहीं, उसे मुनिपना मानता है परन्तु उसे मुनिपना जो माने... मुनि है न? साधु है न। पाँचवें काल के उत्कृष्ट न हों भले, परन्तु साधु हैं न? साधु ही नहीं, सुन न! दृष्टि ही मिथ्यात्व है। राग से, क्रिया से धर्म मानता है और राग का व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। वह निश्चय और व्यवहार दोनों से भ्रष्ट है। आहाहा! कठिन काम, बापू! जगत के साथ खड़े रहना। वीतरागमार्ग में रहना।

(उन दो में से) परम-निश्चयसमिति... वापस। व्यवहार... परम-निश्चयसमिति को भव्य जीव प्राप्त करो। आहाहा! ओहो!




श्लोक-८१

अब, ६१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं—

(मंदाक्रांता)

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो,
मुक्त्वा सङ्गं भव-भयकरं हेम-रामात्मकं च ।
स्थित्वाऽपूर्वं सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,
भेदाभावे समयति च सः सर्वदा मुक्त एव ॥८१॥

(वीरछन्द)

परम समिति को मुक्ति वधू की सखी जानते हैं जो जीव ।
भवभयकारी कंचन कामिनी संग छोड़ते भव्य सदैव ॥
सहज अपूर्व स्वरूप विलसता चमत्कार चैतन्य अभेद ।
उसमें थिर होकर परिणामते सदा मुक्त रहते हैं वे ॥

[श्लोकार्थः—] इस प्रकार मुक्तिकान्ता की (मुक्तिसुन्दरी की) सखी परम—
समिति को जानकर, जो जीव भवभय के करनेवाले कञ्चन कामिनी के संग को
छोड़कर, अपूर्व, सहज-विलसते (स्वभाव से प्रकाशते), अभेद चैतन्यचमत्कारमात्र
में स्थित रहकर (उसमें) सम्यक् 'इति' (गति) करते हैं; अर्थात्, सम्यक् रूप से
परिणामित होते हैं, वे सर्वदा मुक्त ही हैं ।

श्लोक-८१ पर प्रवचन

अब, ६१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं— पहली समिति है न, पहली । ८१ वाँ कलश

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो,
मुक्त्वा सङ्गं भव-भयकरं हेम-रामात्मकं च ।

स्थित्वाऽपूर्वे सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,
भेदाभावे समयति च सः सर्वदा मुक्त एव ॥८१॥

अब यहाँ आया, लो ! इस प्रकार मुक्तिकान्ता की (मुक्तिसुन्दरी की) सखी... तेरी पूर्ण आनन्ददशा, ऐसी मुक्ति। पूर्ण आनन्ददशा, ऐसी सिद्धदशा की सखी परमनिश्चय समिति। आहाहा ! यह उसकी सखी है। मुक्तिकान्ता पूर्ण आनन्दस्वरूप सिद्धदशा की सखी यह निश्चयसमिति है। स्वरूप में एकाकार होकर परिणमना, वीतरागदशारूप से आत्मा में लीन होना अथवा अनन्त धर्मों-स्वभाव में लीन होना, ऐसी परम—समिति को जानकर, जो जीव भवभय के करनेवाले... लो। हेम, रामादि। है न ? हेम अर्थात् सोना। रामा अर्थात् स्त्री। भवभय के करनेवाले कञ्चन कामिनी के संग को छोड़कर,... आहाहा ! कंचन और कामिनी चोकी आड़ी आती है न ? 'चोकी आड़ी श्याम की, राम की रमत को वही लूटे' नरसिंह मेहता कहते हैं। व्यवहार से। यह बात है, वह वहाँ कहाँ है ? 'कंचन और काम की चोकी आड़ी श्याम की, राम की रमत को वह लूटे।' यहाँ तो संग न करना, इतनी बात है। कंचन आदि परिग्रह। उसमें कंचनादि, वस्त्रादि सब आया और कामिनी अर्थात् स्त्री, उसके संग को छोड़कर, उस ओर के झुकाव के भाव को छोड़ दे। आहाहा !

अपूर्व, सहज-विलसते... अब उसे छोड़कर जाना कहाँ ? अपूर्व, सहज-विलसते... आहाहा ! (स्वभाव से प्रकाशते),... आहाहा ! सहजानन्द भगवान् अभेद चैतन्य-चमत्कारमात्र में... देखो ! भगवान् चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु, ऐसा अभेद एकरूप, उसमें स्थित रहकर, उसमें स्थित रहकर सम्यक् 'इति' (गति) करते हैं; अर्थात्, सम्यक् रूप से परिणमित होते हैं, वे सर्वदा मुक्त ही हैं। वह मुक्त ही है, कहते हैं। आहाहा ! भगवान् आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, वह अतीन्द्रिय आनन्द में, ऐसे चैतन्य चमत्कारमात्र में, अभेद चैतन्य चमत्कार, ऐसा। उसमें भेद नहीं। एकरूप त्रिकाल स्थित रहकर सम्यक् गति करे, परिणति करे, शुद्धरूप से हो। वे सर्वदा मुक्त ही हैं। उसकी परिणति रागरहित हुई, वह मुक्त ही है, कहते हैं। आहाहा ! वे सर्वदा मुक्त ही हैं। वापस। मुक्त ही। 'सर्वदा मुक्त एव' मुक्त ही है।

मुक्त समकृति में आता है न। समयसार कलश। यह चारित्रवन्त मुक्त कहा। वहाँ समकृति को मुक्त कहा है। आहाहा ! यह बात सुनना भी इसे कठिन, उलझनजनक लगती

है। यह क्या कहते हैं ? भगवान् आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उस अतीन्द्रिय आनन्द में प्रवेश करके शुद्धपरिणति प्रगट करना, वह जीव मुक्त है, (ऐसा) कहते हैं। द्रव्य और गुण तो मुक्त थे, परिणति ने वीतरागता प्रगट की, वह मुक्त हो गयी। समझ में आया ? द्रव्य अर्थात् आत्मा और गुण अर्थात् शक्तियाँ, वे तो मुक्त ही हैं। जो पर्याय में, राग में एकता थी, वह टूटकर स्वभाव के साथ एकता हुई और शुद्धदशा हुई, वह मुक्त है। पर्याय में भी मुक्त है। व्यवहार समिति का अधिकार, उसमें ऐसे कलश डाले हैं। मुश्किल से व्यवहार का अधिकार आया, वहाँ फिर यह कहा। परन्तु इस निश्चय के बिना व्यवहार नहीं है, यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है।

श्लोक-८२

(मालिनी)

जयति समितिरेषा शीलमूलं मुनीनां,
 त्रसहति-परिदूरा स्थावराणां हतेर्वा।
 भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला,
 सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी ॥८२॥

(हरिगीतिका)

जयवन्त हो यह समिति जो मुनि शील गुण का मूल है।
 यह त्रस तथा स्थावरों के घात से अति दूर है ॥
 भव दवानल तापरूपी क्लेश करती शान्त है।
 सुकृतरूपी धान्य को संतोष दायक मेघ है ॥

[श्लोकार्थ : —] जो (समिति), मुनियों को शील का (चारित्र का) मूल है, जो त्रसजीवों के घात से तथा स्थावरजीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है, जो भव—दावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली तथा समस्त सुकृतरूपी धान्य की राशि को (पोषण देकर) सन्तोष देनेवाली मेघमाला है—ऐसी यह समिति जयवन्त है।

श्लोक-८२ पर प्रवचन

८२ वाँ कलश ।

जयति समितिरेषा शीलमूलं मुनीनां,
त्रसहति-परिदूरा स्थावराणां हतेर्वा ।
भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला,
सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी ॥८२॥

श्लोकार्थ... आहाहा! जो (समिति),... निश्चय । यहाँ तो यह कहा । आत्मा अनन्त आनन्द का सागर है । उस आत्मा में शुद्धपरिणति अथवा धर्म में, उसके धर्मों में एकाग्रता की परिणति, वह । (समिति), मुनियों को शील का (चारित्र का) मूल है,... चारित्र का वह मूल है । यह निश्चयसमिति, हों ! लोग शान्ति से स्वाध्याय भी नहीं करते । ऐसा का ऐसा हाँकते ही जाते हैं । पढ़े (जाते हैं) । धूल में भी उसमें कुछ नहीं है । आहाहा ! एक-एक गाथा पढ़े तो खबर पड़े कि यह सब तेरा उल्टा है । अरे ! ऐसे अवसर में, ऐसे काल में मनुष्यभव में भव के अभाव की बात न जँचे, और न समझे तो यह इसने क्या किया ? बाकी तो सब ढोर भी खाना-पीना करते हैं ।

यहाँ तो कहते हैं, जो स्वरूप आत्मा का भगवान आत्मा अथवा उसके आनन्द आदि धर्म, उसमें जो एकाकार होकर परिणमता है, उसे निश्चयसमिति कहते हैं । वह निश्चयसमिति चारित्र का मूल है अर्थात् वही चारित्र है । समझ में आया ? जो त्रसजीवों के घात से तथा स्थावरजीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है,... एक पृथ्वी का एकेन्द्रिय जीव भी घात हो, उससे भी यह समिति दूर है । पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं । कहते हैं कि मुनि के लिए पानी बनाया हो और ले, ऐसा है नहीं । दूरवर्ती है समिति । आहाहा ! यह ईर्या की बात है परन्तु यह सब समिति में ऐसा लेना ।

जीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है,... पृथ्वीकाय, अग्निकाय, वायुकाय, अपकाय—तेजकाय, वनस्पति और त्रस, छह काय के जीव से (जीव के घात से) दूर हैं । किसी भी एकेन्द्रिय जीव को दुःख हो, ऐसा भाव मुनि को नहीं होता । मुनि को । मुनि की बात है न ? यहाँ तो सब अध मण-अध मण पानी गर्म करे उनके लिए । उठावे, डाले

उसमें... क्या कहलाता है कमण्डल। मुनि को कमण्डल, और फिर पात्र। इतने-इतने बड़े पात्र भरें। भरकर मोतीशा की धर्मशाला में। वहाँ देखा था न हमारे यहाँ। हमारी बहन वहाँ रहती थी न? हरिबेन, हरकुँवरबेन नहीं? हरकुँवरबेन की नहीं वह शाला? वह हमारी बहिन थी। मोतीशा में उनके मालिक रहते थे। नाम भूल गये। लींबड़ी के थे हरकुँवरबेन, नहीं? उनकी शाला है पालीताणा में। बड़ी पाठशाला है। वह हरिबेन थी हमारी। हमारे बापू के बड़े भाई की लड़की। दादा की लड़की। वहाँ उतरे थे। मोतीशा की धर्मशाला में, संसार में थे तब हमारी बहिन थी। सब देखा था रसोड़ा-बसोड़ा। परन्तु यह तो (संवत्) १९६९ के वर्ष, हों! १९७० से पहले। भाई साथ में थे। शिवलालभाई साथ में थे। उनके सगे भाई और हमारे दादा के लड़के होते हैं, सब देखा था। साथ में यात्रा गये थे। १९६९ में दीक्षा लेने से पहले। सब कुछ ठिकाना नहीं होता। नीचे उतरकर लड्डू खाया था और तले हुए भुजिये। इतना बड़ा था। यह तो ऐसा बड़ा। पहले बहुत था। मैं और वे भाई थे। हरकुँवरबेन के सगे भाई! पहले... देरी लगेगी चलो न यहाँ थोड़ा खा लें। फिर गये घर। बेचारे उत्साह से दें, हों! यहाँ तो फिर हमारे पहिचान थी न, अरे रे! उसमें लोग प्रसन्न हों, लो!

कहते हैं कि त्रस और स्थावर के जीव से... एकेन्द्रिय की भी हिंसा हो, उससे मुनि तो दूर हैं। आहाहा! समस्त प्रकार से (दूर हैं)। छह काय के पीहर, लिखे सही, छह काय का ग्वाल। उनके लिए कच्चरघाण, उसके लिए पानी, आहार, चाय, दूध। कहते आवें कि भाई आज आना, हों! भुजिया-बुजिया है हमारे यहाँ। दोपहर को आना। कुकर्म करते हैं न? सन्त, मुनि तो त्रस और स्थावर के घात से दूर हैं।

जो भव—दावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली... आहाहा! भव दावानल का परिताप-क्लेश सुलगा है, प्रभु! आहाहा! यह मिथ्यात्व राग-द्वेष के परिणाम दावानल हैं, कहते हैं। आहाहा! यह क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष के भाव दावानल सुलगता संसार है। आहाहा! ऐसे भव—दावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली तथा समस्त सुकृतरूपी धान्य की राशि को (पोषण देकर) सन्तोष देनेवाली... अनाज बोया होवे न? पश्चात् वर्षा-मेघमाला ठीक से आवे। मेघमाला ऐसी ठीक से आवे न? देखो न! छींटे ऐसे ठीक से आवें, माला जैसे लगें। ऐसे निश्चयसमिति, आत्मा की वीतराग शुद्धपरिणतिरूपी समिति, इसके सुकृत अर्थात् शुद्धता के जितने गुण

के अंकुर-धान्य, ऐसी जो राशि है, उसे समिति सन्तोष देनेवाली मेघमाला है। ऐसी यह समिति जयवन्त है। आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं कि वह समिति हमारे पास है। समझ में आया? आहाहा! वह जयवन्त वर्तती है। हमारी परिणति हमारे पास है, ऐसा कहते हैं। जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि दिगम्बर सन्त थे। ९०० वर्ष पहले आनन्दकन्द में झूलते थे। कहते हैं कि आत्मा के अनन्त गुण के अंकुर जितने फूटे हैं, उन सबको समिति मेघमाला समान धान्य को पोषण देनेवाली है। वह जयवन्त वर्ती, कहते हैं। आहाहा!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६४, श्लोक-८३ से ८४, गाथा-६२, शनिवार, आषाढ़ शुक्ल १०, दिनांक ०३-०७-१९७१

व्यवहारचारित्र का अधिकार है। अन्दर कलशों में तो निश्चय आता है अर्थात् जिसे प्रथम आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द और ज्ञातादृष्टा है, ऐसा जिसे प्रथम भान हुआ हो, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। तदुपरान्त यहाँ तो बात है। जिसे आत्मा का कल्याण करना है, उसे उस कल्याणस्वरूप भगवान आत्मा का पहले अनुभव करना चाहिए, अनुभव के बिना यह आत्मा क्या चीज़ है, इसकी प्रतीति या विश्वास यथार्थ नहीं हो सकता। समझ में आया? तदुपरान्त यहाँ तो व्यवहारचारित्र का अधिकार है न? जिसे आत्मदर्शन, शुद्ध चैतन्यसत्ता, पुण्य-पाप के राग से भिन्न, ऐसा भान हुआ; तदुपरान्त जिसे चारित्रदशा होती है, अर्थात् स्वरूप में रमणता, आनन्दस्वरूप में रमणतारूपी निश्चय / सच्चा चारित्र होता है, उसे ऐसे व्यवहारचारित्र के विकल्पों की मर्यादा है। आहाहा! इतनी इसमें शर्तें हैं। समझ में आया?

जिसे आत्मा की परमानन्ददशा, ऐसी मुक्ति की जिसे स्पृहा है, उसे तो प्रथम आत्मा मुक्तस्वरूप आनन्द है, ऐसी तो उसे दृष्टि अनुभव में पहले होना चाहिए। इसके बिना उसे चारित्र नहीं होता और मात्र सम्यग्दर्शन से भी कहीं मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन उपरान्त स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र हो, उसे ऐसे व्यवहारसमिति—देखकर चलना इत्यादि शुभभाव होता है। जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं, जिसे अन्तरचारित्र ही नहीं, उसे ऐसा व्यवहार ईर्यासमिति का व्यवहार भी नहीं हो सकता।

श्लोक-८३

८३ वाँ कलश है, ८२ तक आ गया है। यह ईर्यासमिति का चलता है। आहाहा!

(मालिनी)

नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्,
समिति-विरहितानां काम-रोगातुराणाम् ।
मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनो-गेह-मध्ये,
ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्ते : ॥८३॥

(हरिगीतिका)

विश्व में निश्चित यही, इस जन्मरूपी उदधि में।
समिति विरहित कामरूपी, रोगपीडित जन्मते ॥
इसलिए हे मुनी! अपनी, चित्तरूपी निलय में।
इस मुक्तिरूपी सुन्दरी के लिए, भव्य निवास रख ॥

[श्लोकार्थः—] यहाँ (विश्व में) यह निश्चित है कि इस जन्मार्णव (भवसागर में) समितिरहित कामरोगातुर (इच्छारूपी रोग से पीडित) जनों का जन्म होता है। इसलिए हे मुनि! तू अपने मनरूपी घर में इस सुमुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री के लिये निवासगृह रख (अर्थात्, तू मुक्ति का चिन्तन कर)।

श्लोक-८३ पर प्रवचन

नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्,
समिति-विरहितानां काम-रोगातुराणाम् ।
मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनो-गेह-मध्ये,
ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्ते : ॥८३॥

श्लोकार्थः : यहाँ (विश्व में) यह निश्चित है कि इस जन्मार्णव (भवसागर में) समितिरहित.... जीव भटकते हैं। आत्मा के आनन्द के परिणमनरहित दशावाले भटकते

हैं। समझ में आया ? आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, उसके भान बिना और उसकी रमणता बिना (भटकते हैं)। समिति अर्थात् स्वरूप में रमणता होना। आनन्द में रमणता, वह निश्चयसमिति और वह सच्चा चारित्र कहा जाता है। ऐसा जिसे नहीं है, वे **जन्मार्णव (भवसागर में) समितिरहित कामरोगातुर (इच्छारूपी रोग से पीड़ित)...** हैं। जिसे कुछ करना ही नहीं, ऐसा स्वरूप है। ऐसा जिसे भान नहीं है, उसे तो इच्छारूपी रोग (है), उसमें आतुर है। अज्ञानी ऐसे कुछ करूँ, ऐसा करूँ, पुण्य करूँ, पाप करूँ, पर का करूँ। स्वसन्मुख की दृष्टि छोड़कर परसन्मुख के विकार परिणाम में कर्ता से पीड़ित दुःखी है वह। आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकनेवाला वह आत्मा के स्वरूप की अन्तर रमणता के अभाव में पर की इच्छा के कार्य में रूका हुआ (है)। स्वयं ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसमें भान होकर रमना चाहिए कि जो मुक्ति का अथवा संसार के अन्त का उपाय है। आहाहा! उसे नहीं करके कामातुर अर्थात् **तुराणाम् इच्छा** के रोग से पीड़ित प्राणी, ऐसा कहते हैं।

इच्छा, वह दुःख है। यह करना... यह करना... यह करना... ऐसी इच्छा से पीड़ित प्राणी दुःखी होते हुए **जनों का जन्म होता है**। ऐसे जीवों का चौरासी में अवतार होता है। आहाहा! समझ में आया ? (**विश्व में**) यह निश्चित है... ऐसा। निश्चित ही है कि भवसागर में तो आत्मा के स्वरूप की रमणतारहित कामातुर **जनों का जन्म होता है**। आहाहा! कलंकित अवतार। यह सब अवतार, वह कलंक है, कहते हैं। भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञान का सागर आत्मा है, उसकी जिसे अन्तर रमणता... पहले रमणता भी क्या वस्तु है, उसका भान हो और फिर रमणता हो। अर्थात् भान और रमणता रहित प्राणी, ऐसा कहते हैं। इच्छा से पीड़ित वे जन्म धारण करते हैं। आहाहा!

इसलिए हे मुनि! मुनिप शब्द है। प अर्थात्... **मुनिप** है न ? चेतनजी ! परन्तु क्या ? प क्यों हैं ? हमारे पण्डित कहते हैं। मुनिपति ऐसा कहते हैं। हे मुनि ! ऐसा। आहाहा ! तू अपने मनरूपी घर में... है न ? **कुरु ततस्त्वं त्वन्मनो-गेह-मध्ये**, आहाहा ! हे मुनि ! तू अपने मनरूपी घर में **इस सुमुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री...** परमानन्द की परिणति होना, इसका नाम मुक्ति है। इसके लिए **निवासगृह...** अन्तर में मुक्ति की दशा की रमणता का समय ले, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तेरे घर में ऐसी मुक्तिरूपी निवास का घर रख, कमरा उसके लिए रख, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

भगवान आत्मा इन पुण्य-पाप के विकल्प से भी रहित है, ऐसी दृष्टि हुई है, ऐसे मुनि को कहते हैं कि अब तू तेरे स्वरूप में रमण कर। मुक्ति को तेरे घर में बसा, ऐसा कहते हैं। बन्धन के भाव की दृष्टि से तू छूटा है, अब दृष्टि सहित में स्वरूप में राग से मुक्त होने की ऐसी मुक्तिरूपी स्त्री का घर रख। आहाहा! उसका निवास-घर कमरा रख। आहाहा! यह पुण्य और पाप को रखने का भाव है न? कहते हैं, वह तेरा मिथ्यात्वभाव है। वह तेरे जन्मने के लक्षण हैं। चौरासी में जन्मना... आहाहा!

इसलिए हे मुनि! राग से रहित पूर्ण परमात्मदशा, सिद्धदशा के कारणरूप तेरे मन में-निर्मल पर्याय में उसका चिन्तन कर, उसका ध्यान कर, उसमें रमणता कर कि जिससे तुझे मुक्ति हो। भारी कठोर शर्ते। आहाहा! देखकर चल, ईर्यासमिति की बात यहाँ नहीं ली है। वह तो बीच में व्यवहार होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। करने का तो प्रभु! तुझे अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणति करना, वह तेरी समिति है। निश्चय, हों! यह व्यवहार सम्यग्दर्शन वह वापस नहीं। आहाहा! यह तो निर्भ्रान्त हूँ। निभ्रत पुरुषों का काम है, ऐसा आया था। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति का जिन्हें एकाग्रपना हुआ है, वे निभ्रत पुरुष सब जगत की चिन्ताओं से मुक्त हैं। समझ में आया? ऐसी मुक्ति का तू चिन्तवन कर, ऐसा कहते हैं। चिन्तवन का अर्थ अन्दर एकाग्रता करना। ज्ञानस्वभावभाव ऐसा तू, उसमें एकाग्र हो। वह मुक्ति का उपाय है और उस मुक्ति को तेरे घर में बसाने का कारण है। आहाहा! ८४ कलश।

यह सत्य की बात तो जगत में बाहर में रही नहीं और वह व्यवहार अकेला रहा गया। खोटी लकीरें। सर्प गया और लकीरें रहीं। ऐसा चलना, ऐसा खाना, यह करना... परन्तु वह तो सब विकल्प की बात है, सुन न! शुभराग है, परन्तु उसके पहले अन्तर रागरहित स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप के अनुभव बिना स्वरूप में रमणता की समिति कहाँ से आयेगी? आहाहा! जिसने स्वरूप ही देखा नहीं, जाना नहीं, दृष्टि में लिया नहीं; उसे स्वरूप में रमणता कहाँ से होगी? ऐसा कहते हैं। रमणता अर्थात् चारित्र। आहाहा!

कहते हैं, वरना चौरासी के अवतार में जन्मना पड़ेगा। आहाहा! कोई वहाँ तेरा सहायक नहीं है। इसलिए आत्मा अपने निज स्वभाव की सम्हाल करके उसमें रमणतारूपी समिति प्रगट कर, जिससे तुझे जन्म-मरण मिट जाए, यहाँ यह बात है। आहाहा!

श्लोक-८४

(आर्या)

निश्चयरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभागभवेन्मोक्षः ।
बत न च लभतेऽपायात् सन्सार-महार्णवे भ्रमति ॥८४॥

(वीरछन्द)

निश्चयरूप समिति पाले तो जीव मुक्ति को प्राप्त करे ।
किन्तु अरे रे! समिति नाश से मुक्ति न हो भव में भटके ॥

[श्लोकार्थः—] यदि जीव, निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करे तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है—मोक्षरूप होता है परन्तु समिति के नाश से (अभाव से), अरे रे! वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता, किन्तु संसाररूपी महासागर में भटकता है ।

श्लोक-८४ पर प्रवचन

८४ वाँ कलश !

निश्चयरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभागभवेन्मोक्षः ।
बत न च लभतेऽपायात् सन्सार-महार्णवे भ्रमति ॥८४॥

श्लोकार्थः—यदि जीव, निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करे... क्या कहते हैं ? देखो ! दिगम्बर सन्तों की सनातन परिणति की प्रणालिका । है अधिकार व्यवहार का, तो भी... होवे जाननेयोग्य । आचरणयोग्य तो स्वरूप में रमणता, वह है । नव तत्त्व में संवर-निर्जरा की मुनि की दशा कैसी होती है, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं । चौथे गुणस्थान में संवर-निर्जरा अल्प होती है, पाँचवें गुणस्थान में विशेष होती है, मुनि को बहुत विशेष होती है और अकेला पुण्यभाव ही होता है, ऐसा नहीं है — ऐसा कहते हैं । मात्र ईर्यासमिति-देखकर चलना, वह तो विकल्प, राग है । वह कहीं मुनिपना नहीं और वह कहीं धर्म नहीं है । आहाहा !

कल किसी का पत्र आया था कि ये सब मन्दिर बनाते हैं और होते हैं, इसकी अपेक्षा तो आत्मा में उतरने की बात ढूँढ़ियों को करो न अब। लो, किसी का पत्र आया था, बापू! भाई! यह शुभराग होता है। यहाँ देखो न! व्यवहारचारित्र होता है, उसका ज्ञान कराते हैं। शुभराग, भगवान की भक्ति आदि धर्म नहीं है परन्तु अशुभराग से बचने को बीच में ऐसा भाव आता है। यदि उसे कहे कि नहीं, नहीं; यह छोड़ो तो फिर यह पढ़ना, सुनने में भी शुभराग है। यह सुनना भी शुभराग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव का घोंटन करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव का घोंटन करे, वह तो पहले अन्दर विकल्प है। ऐई! उसे अन्तर में दृष्टिसहित की रमणता तो अमुक काल रह सकती नहीं; इसलिए उसे ऐसा शुभभाव होता है। यह पत्र किसी का आया था। कहाँ का था? मेरठ का। अन्तर्देशी आता है। ऐसी कि इस प्रकार... यहाँ तो भाई! हम कहते नहीं। यह तो लोग उनके अनुसार मन्दिर आदि शास्त्र में होते हैं, इसलिए बनाते हैं। होते हैं। होते हैं, वह तो उनके कारण होते हैं। तब यहाँ कहे उतारो इसमें, ढूँढ़िया को मूर्ति जँचती नहीं, इसलिए उसे चैतन्य में उतरो, ऐसा कहते हैं परन्तु अभी चैतन्य का भान नहीं। आहाहा! अभी उसमें मूर्ति है और उसका भक्तिभाव आता है, ऐसी जिसे खबर नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? तब तो यह श्रवण करना, वह भी शुभभाव है। यह पढ़ना भी शुभभाव है। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसा करना भी एक शुभराग है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो राग की व्याख्या, बापू! उसे खबर नहीं। वे सब विकल्प आते हैं, होते हैं। वह धर्म नहीं है। आहाहा! धर्म तो उन विकल्पों से रहित चैतन्यमूर्ति भगवान का अनुभव होकर दृष्टि हो, वह धर्म की शुरुआत है और पश्चात् स्वरूप में रमणता करना, ओहो! वह तो धन्य अवतार! उनकी दशा आनन्द में झूलती होती है, उसका नाम चारित्र है। चारित्र कहीं वस्त्र छोड़कर नग्न हो गये, इसलिए चारित्र (हो गया), ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो जिसे जन्म-मरण मिटाकर मुक्ति करनी हो, उसकी बात है, भाई! तो उसे तो कहते हैं, यदि जीव, निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करे... देखो! अर्थ ऐसा है न?

निश्चय भगवान आत्मा, अन्तरस्वरूप में आनन्द और ज्ञान का सागर आत्मा है। आत्मा वस्तु है न? पदार्थ है न? तो है तो उसमें कुछ शक्ति, गुण, स्वभाव होगा या नहीं? या जड़ में ही गुण और स्वभाव होते हैं और आत्मा में नहीं होते? अरे! जड़ में गुण और स्वभाव है, यह भी निर्णय किसने किया? यह तो आत्मा ने (निर्णय किया)। आत्मा अन्दर ऐसा त्रिकाली कायम रहनेवाला उसका स्वभाव है। ज्ञान और आनन्द और स्वच्छता, शुद्धता, पवित्रता, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभाव में **समिति को उत्पन्न करे...** उसमें से निश्चय। शुद्धता उत्पन्न करे, शुद्धता का स्वभाव है, उसमें से शुद्धता उत्पन्न करे। पुण्य-पाप के परिणाम नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

निश्चयरूप समिति... अन्तर आत्मा आनन्द में परिणमे, आनन्द में रमे—ऐसी जो सच्ची समिति, उसे पहले तो उत्पन्न करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उत्पाद है न? वह तो पर्याय है न? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध और आनन्द का धाम, ध्रुवधाम में से शुद्ध निश्चयरूप समिति प्रगट करे। यह वीतरागदशा है। कषाय के क्लेश से रहित, अकषाय के आनन्दसहित, ऐसी समिति को उत्पन्न करे, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! गजब धर्म की व्याख्या, भाई! तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है.... कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु: बढ़ते-बढ़ते.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़ते-बढ़ते वह उत्पन्न करता है, उसमें से ही मुक्ति होती है। यह समिति, वह समिति है और आगे बढ़ा वह। परिणमन है न! वह सब समिति का परिणमन है। थोड़ा, बहुत, ज्यादा।

परन्तु समिति के नाश से... आहाहा! कहते हैं, शुद्ध भगवान आत्मा आनन्द का स्वरूप है, उसमें जिसकी दृष्टि और रमणता नहीं, **अरेरे...** ऐसा कहते हैं। **बत है न? अरे रे! वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता,**... वह चौरासी के अवतार में भटकेगा। आहाहा! कौआ और कुत्ता, कंथवा और हाथी, नारकी और पशु ऐसे अवतार... आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। जिसे भगवान आत्मा अन्तरस्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, तीर्थंकरदेव केवली परमात्मा ने (देखा) वह अनन्त आनन्द और ज्ञान और शान्ति से भरपूर तत्त्व है। उसका आश्रय करके निर्मल दशा करे, उसे समिति कहो, मोक्षमार्ग कहो - सब एक ही है। उसे संसार का किनारा आता है, परन्तु अरे रे! खेद है कि प्रभु! अपनी जाति को नहीं सम्हाल

कर, स्वयं आनन्द का धाम आत्मा है, उसके सन्मुख में रमणता, श्रद्धा नहीं करता। अरे रे! राग की क्रिया के भाव में पड़ा, वह मोक्ष नहीं प्राप्त करता – ऐसा कहते हैं। लो, यहाँ तो आत्मा की रमणता रहित अकेली ईर्यासमिति व्यवहार, वह भी मोक्ष नहीं प्राप्त करता, भाई! ऐसा कहा है। आत्मा का अनुभव और अन्तर रमणतारहित अकेला ईर्यासमिति का शुभभाव है, वह भी संसार है, उसका फल संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो समिति ही कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोग व्यवहार से कहते हैं न! ऐसे बराबर देखकर चलता है, किसी जीव को दुःख न हो, ऐसे चलता है। अरे! परन्तु अन्दर में वस्तु है, उसमें तो देखकर चलता नहीं। उसे देखा नहीं और देखे बिना अन्दर में रमणता कहाँ से होगी? भारी कठिन, भाई! अभी तो यह बात सुनने को मिलती नहीं। अरे रे! भाई! यह मुनि यहाँ खेद करते हैं। प्रभु! यह तेरे ऐसे आनन्दस्वरूप में अन्तर-सन्मुख की दृष्टि और रमणता बिना अकेली राग की क्रिया से मुक्ति नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। मोक्ष नहीं होगा, अवतार होगा। आहाहा! वह तो अवतार चाहे स्वर्ग का हो तो भी वहाँ अंगारे का दुःख है, प्रभु! कषाय की भट्टी जलती है। आहाहा!

अरे रे! वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता, किन्तु संसाररूपी महासागर में भटकता है। आहाहा! चौरासी के अवतार अथाग, उसमें भ्रमेगा। अज्ञानी उनमें भ्रमेगा, ऐसा कहते हैं। जिसे स्वरूप भगवान आत्मा की समिति अर्थात् जिसे अन्दर शुद्धपरिणति, शुद्ध है— ऐसा भान नहीं है और इसलिए शुद्ध की परिणति दशा उसे नहीं है, ऐसा। इसलिए उसे मात्र अशुद्ध परिणति है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो पुण्य का भाव हो या पाप के भाव हों, दोनों मलिन भाव हैं। दोनों संसार में जन्म लेने के कारण हैं। आहाहा! यह ८४वाँ कलश हुआ, लो।

संसाररूपी महासागर... भाषा तो ऐसी है न? महार्णवे आहाहा! संसार बड़ा समुद्र है। पृथ्वी के अवतार, जल का अवतार, अग्नि का अवतार, वायु का अवतार, चींटी, कौआ, कुत्ता—ऐसे अवतार कर-करके कचूमर निकल गया। जहाँ कुछ मनुष्य हों, उसमें फिर पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हों, स्त्री, पुत्र ठीक हों, धन्धा अच्छा जमे तो हम सुखी हैं। मूढ़ है, सुन न! तूझे कौन सुखी कहता है? दुःख के अंगारों में जल रहा है। ऐ..

हिम्मतभाई! आहाहा! वह दुःख के क्लेश के अंगारों में जल रहा है। ये सेठ, राजा और देव सब दुःख के अंगारों में सुलग रहे हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : तन-मन थरथरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन तो कुछ थरथरता न हो। अन्दर राग थरथरता है। विकार-विकार। राग और द्वेष की आकुलता होती है। आहाहा! अभी धन्धा बहुत अच्छा दमदार चलता है। लोग क्या कहें? धमाकेदार। ऐसी सब अज्ञानी की भाषा होती है। अभी धमाकेदार चलता है। लाख-लाख, दो-दो लाख की आमदनी। बीस हजार का खर्च, एक लाख अस्सी हजार बढ़ते हैं परन्तु अब क्या है? सुन न! दुःख के अंगारे सुलगते हैं, तुझे भान नहीं है। वह जड़ मेरा है और जड़ लक्ष्मी मुझे मिली, यह तेरी मान्यता ही मूर्खता से भरपूर है। दुःख के अंगारों में सुलग रहा है और मानता है कि मैंने किया है। कैसे हैं भाई! अभी बादशाही है। ठीक। अक्ल का खां है, कहते हैं। गुणवन्तभाई! यहाँ तो ऐसा है, भाई! आहाहा! आनन्द के धाम प्रभु आत्मा पर तेरी नजर नहीं होती और नजर मात्र पुण्य और पाप के राग में, पर में मूढ़ होकर चौरासी के अवतार में जन्म लेने के तेरे लक्षण हैं। आहाहा! ऐसा यहाँ कहते हैं। शान्तिभाई! क्या होगा ऐसा? गजब भाई! धर्म बहुत कठिन।

मुमुक्षु : दुःख को दुःख मानता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख की खबर ही नहीं है। बस, पाँच-पच्चीस लाख मिले, शरीर सुन्दर, स्त्री ठीक, लड़के आज्ञाकारी, बहुएँ अच्छे घर की...

मुमुक्षु : ऐसा तो सबको होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब होता नहीं, लो कहते हैं परन्तु यह तो किसी के यहाँ होता है।

मुमुक्षु : होवे उसमें सन्तोष माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीपचन्द सेठिया है न? उनके यहाँ सब बाहर की सुविधाएँ हैं। दीपचन्द सेठिया सरदारशहर। कहते थे। अभी उन्हें सब समानता। लड़के, उनकी बहू अच्छे घर की, तेरापंथी गृहस्थों की हो, स्थानकवासी तेरापंथी, तो भी उसे बहुत वह। पाँच-सात बहुएँ हों तो सबके गहने सबको दे नहीं। सबके गहने एक जगह रखे। जिसको चाहिए हो, वह ले जाना। ऐसा कि कुछ यह मेरा-तेरा होवे तो फिर वापस विवाद उठे।

अच्छे घर की लड़कियाँ हों, इसलिए विवाद टालकर शान्ति है। उनके घर में बहुत शान्ति है। उनकी लाईन ही अलग है। सेठिया के घर की। सवेरे से शाम तक सब खाने में, पीने में, सबमें धर्म के गायन होते हैं। बाहर की लाईन बहुत ऐसी है। वह तो कहते थे परन्तु कहे हमारे बर्तन उठानेवाली लड़की, महिला आती है, वह यह बोलती है – हम आनन्द में रहनेवाले हैं, राग आदि हम नहीं हैं, शरीरादि हमें नहीं है, पैसा हमारा नहीं है, स्त्री हमारी नहीं है – ऐसा कहती है। वह भी अच्छे घर की पैसेवाली... ऐसा बोलते थे। काम करनेवाली हो, उसे भी कितना ही पुण्य (होता है), वह भी गहने पहनकर, वस्त्र, बर्तन करते। वे कहते थे। पुण्य का कहते थे कि भरत चक्रवर्ती का अंश है हमारे पास तो। परन्तु धूल में क्या है? ऐसा तो अनन्त बार मिला। वह तो दुःख का सरदार है। आहाहा! कहो, ऐसी सब समानता किसी को होती है परन्तु वह तो पुण्य की, धूल की समानता न? वह तो दुःख का हर्ष है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का सागर प्रभु अन्दर है, उसमें जिसकी नजर नहीं है और उसमें जिसकी रमणता नहीं है। नजर नहीं अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! वह तो संसाररूपी महासागर में भटकेगा। यह ईर्यासमिति की बात हुई। लो, अब भाषासमिति। पाँच समिति में दूसरी। यहाँ तो समिति का रूप ही दूसरे प्रकार का है। ६२वीं गाथा।

गाथा-६२

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।
 परिचत्ता सपर-हिदं भासा-समिदी वदंतस्स ॥६२॥
 पैशून्यहास्यकर्कशपरनिन्दात्मप्रशन्सितं वचनम् ।
 परित्यक्त्वा स्व-पर-हितं भाषा-समितिर्वदतः ॥६२॥

अत्र भाषासमितिस्वरूपमुक्तम् । कर्णेजपमुखविनिर्गतं नृपतिकर्णाभ्यर्णगतं चैकपुरुषस्य एककुटुम्बस्य एकग्रामस्य वा महद्विपत्कारणं वचः पैशून्यम् । क्वचित् कदाचित् किञ्चित् परजनविकाररूपमवलोक्य त्वाकर्ण्य च हास्याभिधाननोकषायसमुप-जनितं ईषच्छुभ-मिश्रितमप्यशुभकर्मकारणं पुरुषमुखविकारगतं हास्यकर्म ।

कर्णशष्कुलीविवराभ्यर्णगोचरमात्रेण परेषामप्रीतिजननं हि कर्कशवचः । परेषां भूता-भूतदूषणपुरस्सरवाक्यं परनिन्दा ।

स्वस्य भूताभूतगुणस्तुतिरात्मप्रशन्सा ।

एतत्सर्वमप्रशस्तवचः परित्यज्य स्वस्य च परस्य च शुभशुद्धपरिणतिकारणं वचो भाषासमितिरिति ।

तथा चोक्तं श्रीगुणभद्रस्वामिभिः ह

(मालिनी)

समधिगत-समस्ताः सर्व-सावद्य-दूराः,
 स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः ।
 स्वपरसफलजल्पाः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
 कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः ॥

तथा च ह

पैशून्य, कर्कश, हास्य, परनिन्दा प्रशंसा आत्म की।

छोड़ें कहे हितकर वचन, उसके समिति है वचन की ॥६२॥

अन्वयार्थ :—[पैशून्यहास्यकर्कशपरनिन्दात्मप्रशंसितं] पैशून्य (चुगली), हास्य, कर्कश भाषा, परनिन्दा और आत्मप्रशंसारूप वचन [परित्यक्त्वा] परित्यागी को, [स्वपरहितं वदतः] जो स्वपरहितरूप वचन बोलता है, उसे [भाषासमितिः] भाषासमिति होती है।

टीका :—यहाँ भाषासमिति का स्वरूप कहा है।

चुगलखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए और राजा के कान तक पहुँचे हुए, किसी एक पुरुष, किसी एक कुटुम्ब अथा किसी एक ग्राम को महा विपत्ति के कारणभूत—ऐसे वचन, वह पैशून्य है। कहीं कभी किन्हीं परजनों के विकृतरूप को देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होनेवाला, किञ्चित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभकर्म का कारण, पुरुष के मुँह के विकार के साथ सम्बन्धवाला, वह हास्यकर्म है। कर्ण छिद्र के निकट पहुँचनेमात्र से जो दूसरों को अप्रीति उत्पन्न करते हैं, वे कर्कश वचन हैं। दूसरे के विद्यमान—अविद्यमान दूषणपूर्वक के वचन (अर्थात्, पर के सच्चे तथा झूठे दोष कहनेवाले वचन) वह परनिन्दा है। अपने विद्यमान—अविद्यमान गुणों की स्तुति, वह आत्मप्रशंसा है। — यह सब अप्रशस्त वचनों के परित्यागपूर्वक स्व तथा पर को शुभ और शुद्धपरिणति के कारणभूत वचन, वह भाषासमिति है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२६ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

हेय-ग्राह्य अर्थों को जानें, हिंसादिक पापों से दूर।

निज-हित निहित चित्त है जिनका, इन्द्रिय शान्त हुई सम्पूर्ण ॥

निज-पर हितकारी वाणी है हुए सर्व संकल्प विमुक्त।

सर्व प्रपञ्च विहीन मुनीश्वर क्यों न पात्र बन होंगे मुक्त ॥

श्लोकार्थ :—जिन्होंने सब (वस्तुस्वरूप) जान लिया है, जो सर्व सावद्य से

दूर हैं, जिन्होंने स्वहित में चित्त को स्थापित किया है, जिन्होंने सर्व *प्रचार शान्त हुआ है, जिनकी भाषा स्वपर को सफल (हितरूप) है, जो सर्व सङ्कल्परहित हैं, वे विमुक्त पुरुष इस लोक में विमुक्ति का भाजन क्यों नहीं होंगे ? (अर्थात्, ऐसे मुनिजन अवश्य मोक्ष के पात्र हैं।)

गाथा-६२ पर प्रवचन

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।
परिचत्ता सपर-हिदं भासा-समिदी वदंतस्स ॥६२॥

नीचे इसका हरिगीत ।

पैशून्य, कर्कश, हास्य, परनिन्दा प्रशंसा आत्म की ।
छोड़ें कहे हितकर वचन, उसके समिति है वचन की ॥६२॥

टीका :—यहाँ भाषासमिति का स्वरूप कहा है। चुगलीखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए... चुगलीखोर मनुष्य होते हैं न ? किसी की कहीं भिड़ावे, किसी का कहीं भिड़ावे। आहाहा! चुगलीखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए और राजा के कान तक पहुँचे हुए, ... राजा के कान तक जाए। किसी एक पुरुष, ... की चुगली खोर। किसी एक पुरुष की चुगली करे या किसी एक कुटुम्ब अथा किसी एक ग्राम को... ऐसा महा विपत्ति के कारणभूत... उस कुटुम्ब को, मनुष्य को और गाँव को बड़ी आपत्ति आ पड़े ऐसे शब्द बोलना और राजा के कान में जाए तो हैरान कर डाले।

मुमुक्षु : अभी तो राजा रहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राजा रहे। परन्तु वे तो दूसरे होते हैं न, कार्यकर्ता दूसरे होते हैं, यह तो वह का वह हुआ।

महा विपत्ति के कारणभूत—ऐसे वचन, वह पैशून्य है। चुगली-चुगली। आहाहा! किसी के गुप्त ऐसे भाव हों, वह चुगलीखोर खोले और राजा के पास जाए तो लूटे। जीभ काट डाले, हाथ काट डाले। आहाहा! ऐसे वचन धर्मात्मा नहीं बोलता, ऐसा

* प्रचार=व्यवस्था; कार्य सिर पर लेना; आरम्भ; बाह्य प्रवृत्ति।

कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे शब्द धर्मात्मा को नहीं होते। शब्द ही ऐसे नहीं होते अर्थात् ऐसा भाव नहीं होता, ऐसा कहना है। शब्द तो जड़ हैं। ऐसे पैशून्यभाव छोड़कर... मुनि समिति से स्व-पर के हित के वाक्य कहे, ऐसा कहते हैं।

अब हास्य की व्याख्या करते हैं। हास्य कहीं.. किसी जगह कभी... किसी काल में किन्हीं परजनों के विकृतरूप को देखकर... तीन शब्द हैं। दूसरे जनों का विकृतरूप। भाण्ड का रूप या ऐसा रूप देखकर कहीं कभी किन्हीं... किसी जगह किसी काल में और कुछ भी थोड़ा परजनों के विकृतरूप को देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होनेवाला, किञ्चित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभकर्म का कारण, पुरुष के मुँह के विकार के साथ सम्बन्धवाला,... ऐसे मुख ऐसा करके ऐसी मजाक करते हैं न ? आहाहा ! ऐसे शब्द बोले, सामनेवाले को मरना पड़े। लोहे के बाण जैसे कठोर लगे। अरे ! सज्जनों को ऐसे शब्द होंगे ? यहाँ तो मुनि की बात है। मुनि ऐसे भाव को छोड़ देते हैं। ऐसे भाव नहीं होते। वह हास्यकर्म है। लो।

मुमुक्षु : जरा शुभ के साथ मिश्रित....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुभ के साथ मिश्रित कहा। शुभ अर्थात् क्या ? जरा सा अन्दर... है तो सब अशुभ। परन्तु यह बाहर के हैं न ? हास्य, मस्करी करते हैं न ? दाँत निकालते हैं, वह पाप ही है।

कर्ण छिद्र के निकट पहुँचनेमात्र से जो दूसरों को अप्रीति उत्पन्न करते हैं, वे कर्कश वचन हैं। कर्कश वचन। ऐसे कठोर वचन बिच्छू के डंक जैसे लगते हैं। ऐसे वचन सज्जनों को, धर्मात्मा को नहीं हो सकते। आहाहा ! दूसरे के विद्यमान—अविद्यमान दूषणपूर्वक के वचन... अब देखो यह। दूसरे लोगों में दूषण हो या दूषण न हो। विद्यमान—अविद्यमान दूषणपूर्वक के वचन... निन्दा है न ? उसमें पर को दुःख होता है। आहाहा ! दूसरे के विद्यमान... दूषण और अविद्यमान दूषण... न भी हो। ऐसे वचन (अर्थात्, पर के सच्चे तथा झूठे दोष कहनेवाले वचन)... ऐसा। न हो, उसे कहना और होवे, उसका कहना। दोष होवे, उसे कहना और दोष न हो, उसे वापस दोष लगाना। दोनों झूठे दोष कहनेवाले वचनों को परनिन्दा कहा जाता है। ऐसे शब्द उसे पाप के भाव हैं। इन सज्जनों को ऐसे शब्द नहीं हो सकते। देखा इसमें ? पर में दूषण होवे, तो भी कहना, वह भी परनिन्दा

है - यहाँ तो ऐसा कहते हैं। न होवे और कहना, वह तो एक दूषण है, झूठ है ही, परन्तु है, उसके दूषण कहे तो सामनेवाले को दुःख होता है न? समझ में आया? ऐसे शब्द छोड़कर, ऐसा कहते हैं। परित्यागी है न अन्तिम? यह सब अप्रशस्त वचनों को छोड़कर, ऐसा कहते हैं।

और अपने विद्यमान-अविद्यमान गुणों की स्तुति,... देखो! सच्चे गुण हों और अपनी स्तुति करना, वह भी एक निन्दा है। अपनी प्रशंसा है, कहते हैं। आहाहा! और अविद्यमान। नहीं गुणों को गुण कहना, वह तो दोष है ही। समझ में आया? आत्मप्रशंसा। परन्तु है, ऐसे गुणों को भी बाहर फूँकना / कहना, वह भी एक अप्रशस्त भाव है।

मुमुक्षु : खबर कैसे पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहना था उसे? खबर का क्या काम है। ऐई!

मुमुक्षु : ठगाने देना न उसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझे क्या? दूसरे को दुःख हो, ऐसा करने का कारण क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन किसे ठगता है? किसी के ऐसे दूषण प्रगट करना, वह सज्जन का काम नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। होवे, ख्याल में आ जाए, तथापि कहना शोभा देता है? एक भगवानजीभाई कच्छी थे। मूली में। स्थानकवासी थे परन्तु उन्हें हमारे प्रति बहुत प्रेम था। बहुत पढ़े हुए थे। साधु को पढ़ावे ऐसे थे। मूली में भगवानजी कच्छी। वे एक बार तो ऐसा कहते थे कि वह कुत्ती आकर बैठी हो। क्या कहलाता है उसे जरा ऐसा करके? परन्तु अपने हट कहना, वह उसे तो कुछ नहीं परन्तु अपने को शोभा नहीं देता, ऐसा कहते थे। अपन हट-हट कहते हैं। एक बार बात करते थे, बहुत शास्त्र पढ़े हुए। ...शास्त्र का पठन बहुत था। उन्हें हमारे प्रति बहुत प्रेम था। स्थानकवासी में होशियार कहलाते थे। एक वे भगवानजीभाई और एक दामोदर सेठ यहाँ दामनगर दो और तीसरे वीरजीभाई के पिता ताराचन्दभाई। ये तीनों शास्त्र के पढ़नेवाले, पूरे काठियावाड़ में थे। उसमें नीति में ताराचन्दभाई अधिक। ऐसे सब तीनों में अन्तर था। वीरजीभाई के पिता, ऐसे नीतिवाले बहुत। ताराचन्दभाई शास्त्र पढ़ावे। दृष्टि खोटी, दृष्टि खोटी। ऐई! जयन्तीभाई!

ताराचन्दभाई को देखा था ? वीरजीभाई के पिता । ऐसे बड़े पण्डित कहलाये, हों ! साधु की टोली को पढ़ावे, अर्जिकाओं को पढ़ावे परन्तु दृष्टि विपरीत थी ।

एक तो हम पहले-पहले (संवत्) १९८२ में जामनगर गये थे और जती के उपाश्रय में उतरे थे । व्याख्यान दिया । लोग तो बहुत हजारों लोग । १९८२ के वर्ष की बात है । उसमें एक वाक्य आया, जो कुछ मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता, वह क्रिया पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं । भाई ! यह आता है न ? नामकर्म में । यह तो आता है । ज्ञानसागर है न ? जामनगर की ज्ञानसागर पुस्तक है । ऐसा कि चार प्रकार से शुभनामकर्म बँधता है । 'मन की सरलता, कालुजोयाय सुजोयाय । यह अविस्वादाद जोगाणं ।' इसलिए कोई ऐसा कहे कि मन की सरलता के परिणाम हैं, वह धर्म है, यह नहीं, कहा । मन की सरलता का विकल्प है, वह पुण्य है । ऐसे तीनों काया के सरलता के भाव हैं, वे पुण्य हैं, धर्म नहीं । इसलिए उन्हें तो जरा बात उलटी बैठी हुई थी । कोई नहीं था, तब शाम को अकेले आये । महाराज ! ऐसी बात तो लोगों को... मैंने कहा क्या है ? लोगों को अब चाहे जो हो । तुम देखो, ज्ञानसागर में देखो । कहा चार प्रकार से शुभ नामकर्म बँधता है और चार प्रकार से अशुभ नामकर्म बँधता है । मन, वचन, काया की असरलता और विस्वादाद / झगड़ा वह पाप बाँधता है । मन, वचन, काया की सरलता के परिणाम, वह पुण्य बाँधता है । पश्चात् मन, वचन, काया की सरलता के परिणाम, वे धर्म-संवर हैं, बिल्कुल नहीं । ज्ञानसागर में आता है । वे साधु भड़क गये, परन्तु अकेले, हों ! लोग शान्त । कोई नहीं था, तब शाम को आये । महाराज ! यह क्या ? मैंने कहा, यह मार्ग है, लोगों को जँचे या न जँचे, उससे क्या हुआ ? वहाँ तो अकेली क्रिया में प्रौषध करे और प्रतिक्रमण करे, वह सब भाव धर्म है, ऐसा मानते हैं । धूल में भी धर्म नहीं है, कहा । मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता है परन्तु व्यक्ति शान्त कुछ बोले नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं । धर्म-वर्म प्राप्त करने में बाहर का कोई कारण है ही नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक पात्र गिना है, एक अपेक्षा से । परन्तु कौन सी

सरलता ? ऐसी सरलता तो अनन्त बार की है। हुआ क्यों नहीं ? नामकर्म शुभभाव से पुण्य बँधता है, ऐसा पाठ है। सब... है। ज्ञानसागर में पाठ है। पहले वह ज्ञानसागर सीखे हुए थे न ? १९६८ के वर्ष में। पालियाद। पालेज से आये, तब पहले ये सीखे थे। ज्ञानसागर के ये थोकड़ा सब। चार प्रकार से पुण्य बाँधे। मन की सरलता... ऐसा शब्द है। काया की सरलता, मन की सरलता, वाणी की सरलता। बापू! मार्ग तो यह है, कहा। शास्त्र में लिखा है, देखो यह। वह धर्म नहीं है। सरलता पुण्य है, वक्रता पाप है और उस सरलता तथा वक्रतारहित आत्मा की दृष्टि और अनुभव करना, वह धर्म है। परन्तु वे बेचारे भड़क गये थे। लो कितने ही साधु-आर्यिकाओं को पढ़ावे, परन्तु यह बात सुनकर भड़क गये थे। देखो ! कहा, तुम्हारे ज्ञानसागर में लिखा है न ? तुम्हारे पुनातर, पुनातर से प्रकाशित है न ? जामनगर के पुनातर है, ज्ञानसागर छपाया है, वह बाहर चलता है। स्थानकवासी में वह बहुत चलता है। थोकड़ा सीखे उसमें पहले यही सीखना। छह काय, नव तत्त्व, गुणस्थान, सब... है अपने यहाँ सब है। प्रत्येक पुस्तक है। यहाँ तो मन, वचन और काया के झुकाववाला भाव, चाहे तो शुभ या अशुभ, वह बन्ध का कारण है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु की सन्मुखता का भाव, धर्म है। कहो, समझ में आया ?

अपने विद्यमान-अविद्यमान गुणों की स्तुति, वह आत्मप्रशंसा है।—यह सब अप्रशस्त वचनों के परित्यागपूर्वक स्व तथा पर को शुभ और शुद्धपरिणति के कारणभूत वचन,... लो, ठीक। या सामनेवाले को शुभभाव हो, ऐसा निमित्त-वाणी और या शुद्धता हो, ऐसा निमित्त-वाणी। वाणी में यह आता है। समझ में आया ? स्व तथा पर को... देखो न ! अपने को भी शुभ और शुद्ध तथा पर को भी शुभ और शुद्ध का कारण कहा, निमित्त है न।

भगवान आत्मा राग से रहित है, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है, यह शुद्ध के निमित्त के वचन हैं। स्वयं स्वरूप में स्थिर न हो, तब भगवान की भक्ति, पूजा, नाम-स्मरण का भाव होता है, यह भाषासमिति शुभ में निमित्त है। समझ में आया ? कारण कहा है यहाँ तो, ऐई ! शुभभाव को, शुद्धपरिणति को कारणभूत है। कारणभूत वह करे तब न ? ऐसी भाषासमिति है तो शुभभाव। भाषासमिति, बोलना, वह भी एक शुभभाव है। संवर-निर्जरा नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा ! लो, इसे भाषासमिति कहते हैं। मुनि धर्मात्मा को तो ऐसा स्व-पर की निन्दा और प्रशंसारहित, स्व-पर को शुभ और शुद्ध का निमित्त, ऐसी भाषा

होती है। भाषा तो भाषा के कारण से है, परन्तु ऐसा उसका भाव है, ऐसा। ऐसा शुभभाव होता है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२६ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि... लो!

समधिगत-समस्ताः सर्व-सावद्य-दूराः,
स्वहितनिहितचित्ताः शान्तसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः॥

श्लोकार्थः :—जिन्होंने सब (वस्तुस्वरूप) जान लिया है,... धर्मात्मा। मुनि ने तो जगत का सब स्वरूप जाना है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, जीव, अजीव, प्रत्येक छह द्रव्य का स्वरूप भगवान ने जो कहा, परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने छह द्रव्य कहे, उनके अन्तर्भेद नो कहे, वह सब जिसने जान लिया है। पुण्य, वह पुण्य है; पाप, वह पाप है; आस्रव, वह आस्रव है। आत्मस्वभाव, वह स्वभाव है। उसके आश्रय से होनेवाली संवर-निर्जरादशा, वह निर्मलदशा है। अजीव वह अजीव है। ऐसे सब तत्त्वों की पृथक्-पृथक् स्थिति जैसी है, वैसी जिसने जान ली है।

जो सर्व सावद्य से दूर हैं,... मुनि की बात है न? उन्हें बिल्कुल सावद्य के परिणाम (नहीं हैं)। आहाहा! यह तो मकान बनावे, वहाँ स्वयं खड़ा रहे। कितने पत्थर आये? धूल कहाँ आयी? व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! गजब बात है। अपने नाम के दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख के मकान बनाये। अकेला सावद्य-पाप है। ऐसे पाप के वचन मुनि को नहीं होते। जिन्होंने स्वहित में चित्त को स्थापित किया है,... आहाहा! अपने ज्ञान की दशा और स्वहित में है। उस ज्ञान में स्वहित का स्थापन है। स्वहित में चित्त को स्थापित किया है,... मेरा स्वभाव शुद्ध आनन्द, उसमें मुझे रहना, ऐसा स्वहित जिसने चित्त में स्थापित किया है। देखा?

जिन्होंने सर्व प्रचार शान्त हुआ है,... अर्थात्? कुछ साज-समहाल करनी हो कि भाई! यह पाठशाला करनी हो तो इसकी समहाल मैं करूँगा। ऐसा मुनि को नहीं हो सकता। आहाहा! एक पुस्तक बनाओ, यह सब व्यवस्था मैं करूँगा। मैं प्रूफ देख दूँगा।

मुमुक्षु : बराबर है या नहीं, ऐसा तो निश्चित करना चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है, यह कोई कहे उसे कहे परन्तु वहाँ साज-समहाल सिर पर काम ले ले कि इतना काम तो तुम्हारे करना पड़ेगा। मुनि के सिर पर कोई बोझा नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। भाई! यह तुम्हारे नाम का पत्रक बाहर लगाते हैं, इसलिए तुम्हें इस पत्र में एक-दो लेख देने पड़ेंगे। यह बोझा मुनि को नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रचार का इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो न, क्या कहते हैं यह ? प्रचार=व्यवस्था; कार्य सिर पर लेना; आरम्भ; बाह्य प्रवृत्ति। इतना काम करना पड़ेगा। ये लड़के हैं। अपन छात्र करते हैं। छह छात्र हैं, इनमें से सवेरे आधे घण्टे तुम्हें यहाँ हमेशा उपदेश देना। मुनि ऐसा काम सिर पर लेते ही नहीं। आहाहा!

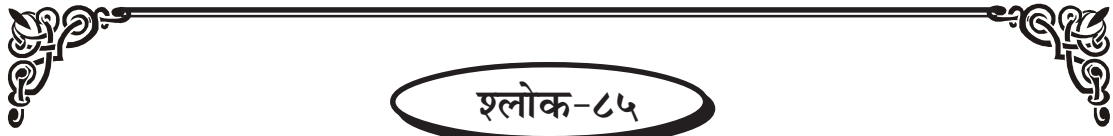
मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हं... ऐसा है। और फिर भी शुभ आता है, परन्तु तो भी काम सिर पर लेना, इतना काम तो हर रोज तुम्हें करना ही पड़ेगा। अच्छे लोगों पर हमेशा दो पत्र तो तुम्हें लिखने ही पड़ेंगे, यह काम मुनियों का नहीं है। आहाहा! अपने आता है न? प्रवचनसार में नहीं आता। क्या कहते हैं उसे? क्रमप्रक्रम? मुनि तो ऐसे आनन्द में मौज करते हैं। हलवा, हलवा, हलवा उन्हें अब यह करना, यह करना, पत्र लिखना... पत्र आवे तब उनके उत्तर देना, यह बोझ मुनि को नहीं होता। आहाहा! थोक के थोक आवे। सवेरे के पचास सौ पत्र, वापस उसके जवाब लिखे हों। उसे व्यक्ति रखा हो। लिखो। यह तो अकेला संसार का धन्धा है। संसार की दुकानें चली हैं। आहाहा! प्रभु का मार्ग ऐसा है। मुनि तो निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... रागरहित शुद्धता में जहाँ रम रहे हैं, उन्हें ऐसे काम सिर पर बोझा, वह हो ही नहीं सकता। समझ में आया ?

कार्य सिर पर लेना; आरम्भ; बाह्य प्रवृत्ति। यह मुनि को नहीं हो सकता। यहाँ एक पाँच लाख का मन्दिर बनता है, वहाँ हमेशा तुम्हें क्लास लेने आना है, देखने आना है, बस। यह काम मुनियों का नहीं है। आहाहा! ऐसा काम मुनि सिर पर नहीं लेते। आहाहा! **जिनकी भाषा स्व-पर को सफल (हितरूप) है,...** ऐसा कहते हैं। जिसमें अपना हित हो, ऐसा हो अथवा पर का हित हो, ऐसी ही भाषा होती है। जिसमें एकेन्द्रिय प्राणी भी मरे,

हिंसा हो, ऐसी भाषा मुनि को नहीं होती। जो सर्व संकल्परहित हैं, ... भाषा देखो, आहाहा! संकल्प ही यहाँ नहीं है। आनन्द की लहर में जहाँ उछले, जहाँ सन्त-नग्न दिगम्बर मुनि वे तो जंगल में बसते हैं। आहाहा! वीतरागी मुनि तो संसार से पर, पार होते हैं। यह जब मकान में हो, तब वे वन में होते हैं। ये बोलचाल करे, तब प्रसन्न हो, वे मौन हों। आहाहा! पन्थ ही अलग है। वे विमुक्त पुरुष इस लोक में विमुक्ति का भाजन क्यों नहीं होंगे? आहाहा! ऐसे मुक्ति में क्यों नहीं जाएँगे? (अर्थात्, ऐसे मुनिजन अवश्य मोक्ष के पात्र हैं।) लो, आहाहा! जिनकी दशा अन्तर में आनन्द का उछाल, लहरें उछल रही हैं। जिन्हें कभी शुभ विकल्प आता है, तथापि उनका आदर नहीं है, ऐसे मुनि मुक्ति में क्यों नहीं जाएँगे? कहते हैं। आहाहा! जरूर जाते हैं। लो! इसके अतिरिक्त अज्ञानी बन्ध के भाव ले, और मुनिपना माने, वह संसार में क्यों नहीं जाएगा? अवश्य संसार में जाएगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



श्लोक-८५

और (६२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —

(अनुष्टुप्)

पर-ब्रह्मण्यनुष्ठान-निरतानां मनीषिणाम् ।

अन्तरैरप्यलं जल्पैः बहिर्जल्पैश्च किं पुनः ॥८५॥

(वीरछन्द)

परब्रह्म के अनुष्ठान में लीन बुद्धिशाली जन को ।

बहिर्जल्प की बात कहें क्या? अन्तर्जल्प अहो बस हो ॥

[श्लोकार्थः —] परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत (अर्थात्, परमात्मा के आचरण में लीन) ऐसे बुद्धिमान् पुरुषों को — मुनिजनों को अन्तर्जल्प से (विकल्परूप अन्तरंग उत्थान से) भी बस होओ, बहिर्जल्प की (भाषा बोलने की) तो बात ही क्या ?

प्रवचन-६५, श्लोक-८५, गाथा-६३, रविवार, आषाढ शुक्ल ११, दिनांक ०४-०७-१९७१

पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ रागभाव को एकत्वरूप से (अनुभव करता है) । स्वभाव शुद्ध है और विभाव अशुद्ध है, दो का एकपने मानना, वह बन्ध है, वह मिथ्यात्व है, वह अज्ञान है । उससे—राग और विकल्प से मेरी चीज़ शुद्ध चिदानन्द आत्मा भिन्न है—ऐसी जिसने राग से भिन्नता की और अपने स्वभाव की एकता अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति द्वारा साधी है, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं । अटपटा जैसा लगे । लोगों को तत्त्व का अभ्यास नहीं होता । शान्तिभाई ! आत्मा क्या वस्तु है ? अन्दर क्यों दुःखी है ? बन्ध क्यों है और बन्धरहित कैसे हुआ जाए, यह बात इसने अनन्त काल में बराबर सुनी नहीं, विचार नहीं की । अन्दर में प्रभु आत्मा...

यह अधिकार तो अपने भाषासमिति का चलता है परन्तु मोक्षमार्ग में आत्मा, यह विभाव के विकल्पों की वृत्ति जो पुण्य-पाप और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम से भिन्न अपना जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं । उस मोक्षमार्ग को साधनेवाले सन्त होते हैं । उन्हें भाषा समिति होती है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है । यद्यपि निश्चय से तो वे विकल्परहित ही अपनी शुद्धपरिणति को साधते हैं । वही सच्ची अन्तर शुद्ध स्वभाव की एकता, वह उनकी सच्ची समिति है । समिति—स्वरूप की परिणति शुद्धगति, विकाररहित आत्मा शुद्धचिदानन्द की शुद्ध परमपवित्र परिणति, गति, रमणता ही सच्ची समिति गिनने में आयी है । ऐसा है । इसे भाषासमिति विकल्प होता है, तो बराबर हित-मित बोलना; वीतराग कहते हैं, उस प्रकार से सत्य बात कहना, उसे व्यवहारसमिति, पुण्यबन्ध का कारण है । मनसुखभाई ! यह गजब बात है । यह अगम्य बातें हैं । अब यहाँ तो अपने निश्चय का है, देखो ! ८५वाँ कलश ।

पर-ब्रह्मण्यनुष्ठान-निरतानां मनीषिणाम् ।

अन्तरैरप्यलं जल्पैः बहिर्जल्पैश्च किं पुनः ॥८५॥

आहाहा ! श्लोकार्थ : परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत... भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप ही शुद्ध आनन्द है । ऐसा जो परमब्रह्म । ब्रह्म क्यों कहा ?—कि परम आनन्दस्वरूप आत्मा

है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु आत्मा है, इसलिए परमब्रह्म, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव में-अनुष्ठान में यह उनका अनुष्ठान। आहाहा! परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा में आचरण करना अर्थात् एकाग्र होना, वह उसका अनुष्ठान, यह धर्मी का आचरण है। आहाहा!

परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत... निरत अर्थात् लीन। आहाहा! अनादि से अज्ञान में अपने निजानन्दस्वरूप के भान बिना, यह पुण्य और पाप के रागभाव, दुःखभाव में यह रत था, लीन था। यह संसार में भटकने का रास्ता है। आहाहा! समझ में आया? यह उसकी लीनता बदलना। परमब्रह्म का अनुष्ठान किया। आहाहा! अनादि से... यह देह तो जड़, मिट्टी, धूल, अजीव है। इसे और आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। दोनों परिणति निराली है। दोनों की दशा ही अलग है। यह (शरीर) तो जड़, मिट्टी, अजीव है। इस अजीव की पर्याय करता हुआ अजीव स्वयं से टिक रहा है।

आत्मा में जो अनादि के पुण्य और पाप के भाव जो विभावभाव, उनमें जो अनादि से रत था, लीन था, वह दुःख के पन्थ में, बन्ध के पन्थ में था। शान्तिभाई! ऐसा स्वरूप है। बहुत सूक्ष्म है। अनजाने को तो अटपटा जैसा लगे। अटपटी भाषा होवे न, ऐसा लगे। वस्तु का कभी परिचय किया नहीं। अन्दर देह में रजकण से, मिट्टी से भिन्न। जिसका चैतन्य का तेज, ज्ञान और आनन्द के तेज से दिस, ओपता-शोभता आत्मा है। ऐसे आत्मा को यहाँ परमब्रह्म कहते हैं। परम आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। इन विषयों में, पैसे में, शरीर में, स्त्री के भोग में सुख मानता है, वह तो मूढ़ अज्ञानी कल्पना करके मानता है। उनमें है नहीं। कल्पना करके, मूढ़ अपने आनन्द को भूलकर, उनमें ठीक लगता है, मजा आता है, ऐसा वह मानता है। यह मान्यता मिथ्याभ्रम और दुःखरूप है। उसे टालकर जिसने परमब्रह्म भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के सागर प्रभु का जिसने अनुष्ठान किया, उसके अन्तर के आचरण में जो लीन है। यह क्या कहते हैं?

इसका अनादि का आचरण विकारी, पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि भाव, ये सब विकारी भाव हैं, उनका इसे आचरण था। यह आचरण मिथ्या आचरण, मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-आचरण है। इस आचरण की दृष्टि छोड़कर, जो परमब्रह्म भगवान आत्मा के अनुष्ठान में लीन है। सच्चिदानन्द प्रभु—सत् शाश्वत चिद् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द के अनुष्ठान में लीन है। इनकी भाषा देखो! आहाहा! भगवान

पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, उसके आचरण में-अनुष्ठान में-आचरण में लीन है, यह मुक्ति का मार्ग है। कहो, समझ में आया ? शशीभाई ! यह शब्द तो बहुत सरस आया है। मांगलिक में पहला ही आया है। लो, तुम्हारे। आहाहा !

कहते हैं, अरे ! एक बार सत्य क्या है, तेरा सत्पना, सत्यपना। पुण्य-पाप के भाव, वे तो सब असत्य और दुःखकारी, विकारी हैं। शरीर, मन, वाणी तो सब जड़ और अजीव हैं, वे कोई तुझमें नहीं हैं, तेरे नहीं हैं, तेरे होकर रहे नहीं हैं। वे तो उनके (जड़ के) होकर रहे हैं। तू आनन्द और ज्ञान का, तेज का सागर प्रभु है। उसरूप अनादि से न रहकर, शुभ-अशुभ के विकल्प, पुण्य, पाप के राग के आचरणरूप रहना, वह दुःखदायक आचरण है। समझ में आया ? आहाहा ! आचरण तो इसकी दशा में होता है न ? हैं ?

भगवान आत्मा अनादि से विकार के, पुण्य-पाप के भाव के आचरण में है, वह तो बन्धभाव है, दुःखभाव है, संसारभाव है, भटकने का भाव है। दुःख के जाल में उलझने का वह भाव है। जिसे मोक्ष करना हो, उसे भगवान आत्मा परमब्रह्म, परम आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर स्वरूप, ध्रुव अनादि-अनन्त अविनाशी जो चीज है, उस परमब्रह्म का अनुष्ठान, यह पर्याय है। परमब्रह्म, यह त्रिकाली आनन्दस्वरूप, वह ध्रुव है... है... और है आत्मा। आदि नहीं, अन्त नहीं; अनादि है, है और है। ऐसा जो अतीन्द्रिय परमब्रह्म आनन्दस्वरूप का अनुष्ठान अर्थात् उसमें एकाग्रता, जिसे मोक्षमार्ग कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य, यह परमब्रह्म का अनुष्ठान है। समझ में आया ? आहाहा ! बात सुनने पर बैठना कठिन पड़ती है। अरे ! सम्प्रदाय में यह बात नहीं चलती।

यह बात ही दूसरी है, भगवान ! बात ही बापू ! अपूर्व बात अनन्त काल में जिसे सुनी नहीं, ग्रहण नहीं की, रुचि नहीं, परिणमी नहीं। वह चीज तो कैसी होगी ? भाषा ही पहले ऐसी ली है। देखो न ! भाषासमिति का कहते हैं। यह भाषा बोलना, वह नहीं, कहते हैं। आहाहा ! यह व्यवहारसमिति का विकल्प, वह तो व्यवहार आचरण है परन्तु जिसे ऐसा निश्चय आचरण होवे, उसे होता है परन्तु यह व्यवहार आचरण का भी विकल्प है, उसे छोड़कर, भगवान परमानन्द प्रभु ध्रुव अविनाशी अनादि-अनन्त सत् आत्मा का जो आनन्दस्वरूप ध्रुव में एकाग्र होना, वह परमब्रह्म का अनुष्ठान है, वह आत्मा का अनुष्ठान है, वह आत्मा का आचरण है, वह आत्मा की मोक्षमार्ग की दशा है। समझ में आया ?

ऐसे धर्मात्मा ने निरत (अर्थात्, परमात्मा के आचरण में लीन) ऐसे बुद्धिमान्

पुरुषों को... देखो! उन्हें चतुर कहा। ये दुनिया के चतुर, वे चतुर नहीं। महीने में पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार का वेतन, वे चतुर होंगे या नहीं? इन रामजीभाई के लड़के को पढ़ाकर कितना बड़ा किया है, सुमनभाई (को)। आठ हजार का वेतन, ऐसा लोग कहते हैं। अपने को कुछ खबर नहीं। ऐसा लोग कहते हैं कि इनके लड़के का आठ हजार का मासिक वेतन है। नौ हजार है। लो, उसके पिता को खबर नहीं।

मुमुक्षु : मुझे खबर नहीं और सरकार का कानून हुआ है कि पाँच हजार से अधिक किसी को नहीं दिया जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुप्त होगा। आहाहा!

कहते हैं कि यह चतुराई नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह तो भटकने की चतुराई है। आहाहा! देखो न! यह क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति, प्रभु! वस्तु हो, वह दुःखरूप होगी? दुःख तो उससे उल्टी विकृत दशा करे, वह दुःख है। दुःख नहीं शरीर, वाणी, मन में; दुःख नहीं अन्तरस्वरूप में। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान को भूलकर पुण्य और पाप के भाव में रुकता है, वह दुःख है। समझ में आया? आहाहा! वह रुचि छोड़कर जिसे परमब्रह्म भगवान आनन्दमूर्ति, प्रभु, इन आस्रव के राग से निराला; पुण्य-पाप के विकल्प, वह तो बन्धन के कारण, आस्रव, विकार है। उनसे निराला ध्रुवतत्त्व है। उसके अनुष्ठान में एक स्वभाव में स्वाश्रय में लीन है, उन चतुर पुरुषों को... उन्हें चतुर पुरुष कहा। बाकी सब पागल और मूर्ख हैं। महीने में दस-दस हजार का वेतन हो। समझ में आया? आहाहा!

अरे! प्रभु अपना स्वरूप आनन्द का धाम, मृग की नाभि में कस्तूरी है, कस्तूरी की मृग को कीमत नहीं होती। इसी प्रकार अन्तर आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी भरी है, उसकी उसे कीमत नहीं है। पुण्य और पाप अथवा पुण्य का फल यह कुछ धूल मिली हो, पैसा पाँच-पचास लाख, स्त्री, पुत्र कुछ रूपवान और अच्छे (हुए हों), यह उसकी-धूल की लक्ष्मी। आहाहा! उसकी इसे महिमा है, यह मूढ़ है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐई! मलूपचन्दभाई! आहाहा! न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं? 'नि' धातु है न? वस्तु का स्वरूप जैसा है, उसे नि धातु, ले जाना। जैसा है, उसे ज्ञान में ले जाना, इसका नाम न्याय कहा जाता है। आहाहा!

भगवान ने... श्लोक रखा है न! टीका का, स्वयं का नहीं? टीकाकार का अपना। अरे! जिसका आचरण विकार का आचरण जो पर की ओर के आश्रयवाले, ऐसी आश्रयदृष्टि जिसे पर की छूट गयी है और स्व भगवान नित्यानन्द प्रभु, ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे अनुष्ठान-लीनता है... आहाहा! ऐसे बुद्धिमान् पुरुषों को अर्थात् मुनिजनों को... ऐसे धर्मात्मा को... आहाहा! अन्तर्जल्प से (विकल्परूप अन्तरंग उत्थान से)... अन्दर विकल्पवृत्ति उठती है न? मैं ऐसा हूँ, या वैसा हूँ। ऐसा विकल्प उठे, वह अन्तर्जल्प है, विकार है, कहते हैं। उससे धर्मात्मा को क्या प्रयोजन है? कहते हैं। आहाहा! देखो! यह मुनि की दशा। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द में लीन है, ऐसी दशा जिसे है, उस धर्मात्मा को अन्तर्जल्प, अन्तर्मुख की वृत्ति का उत्थान, विकल्प उठना, उसका क्या प्रयोजन है? वह तो राग, विकार है।

उस उत्थान से भी बस होओ,... क्या कहते हैं? अन्तर्जल्प से भी बस होओ। अर्थात् क्या? बाहर से तो बोलना बन्द है। उससे तो क्या कहना? ऐसा कहते हैं। भाषा बोलना, वह तो जड़ अवस्था है, परन्तु उसमें विकल्प उठता है कि ऐसे बोलना, वह राग है। आहाहा! कहते हैं कि धर्मात्मा मुनि सन्त जंगल में बसते हों, उनकी बात है न? उन्हें, जिनके आनन्द में, अनुभव में लीन है, ऐसे सन्तों को अन्तरवृत्ति का क्या काम है, कहते हैं। अन्तर्जल्प उठे, ऐसा कहूँ, ऐसा बोलना, ऐसी बात ऐसी वृत्ति से बस होओ। है न? अन्तरैरप्यलं जल्पैः... अन्तरैरप्यलं जल्पैः अलम् बस होओ। यह अन्दर में राग की वृत्ति का विकल्प उठता है, वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही वापस ऐसा कहते हैं, शास्त्र में बहुत ऊँची बात आयी है, उत्कृष्ट। इसलिए हमारा आचरण जघन्य-मध्यम है। परन्तु अब यह तो मूल चीज़ ही यह है। आहाहा! अभी आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प नहीं हैं और अजीव तो मिट्टी-जड़ है, वह तो इसमें है ही नहीं। इतना भी जिसे अभी भान नहीं, उसे सम्यग्दर्शन बिना स्वरूप में लीनता की चारित्र की दशा नहीं हो सकती। समझ में आया? वह चौरासी के अवतार में लुटाया है, कहते हैं। भाई! तेरी निधि। तेरा निधान सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर पड़ा रहा है। उसके सामने देखे बिना, शत्रु के सामने देखकर तूने शत्रु को प्रिय किया है। आहाहा! यह शुभ और अशुभ का राग, वह शत्रु है, उसे तूने प्रिय किया, भगवान! अब छोड़ न, कहते हैं। आहाहा! पहले दृष्टि तो निर्मल कर कि यह पुण्य और पाप का राग, वह

विभाव अधर्म है। मेरी चीज़ उससे भिन्न है। ऐसा आनन्दमूर्ति का अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली शुरुआत की दशा कहने में आती है।

तदुपरान्त यहाँ तो अब मुनि की दशा का वर्णन है। मुनि तो स्वरूप में इतने अधिक लीन होते हैं कि जिन्हें अन्तर्जल्प के विकल्प से अलम्—बस होओ। बस होओ... बस होओ... समझाना है न? बस होओ, ऐसा कहते हैं, वह भी एक विकल्प है। समझ में आया? **मुनिजनों को अन्तर्जल्प से (विकल्परूप अन्तरंग उत्थान से)...** अन्दर वृत्ति उठे, वह उत्थान हुआ न? विकल्प उठे, राग, यह हूँ, वह हूँ, यह नहीं, वह नहीं, सब अन्तर में मन का विकल्प, हों! वह दुःखरूप है। बन्द करो। भगवान! अब तेरे घर में जा - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और बहिर्जल्प। **बहिर्जल्प की (भाषा बोलने की) तो बात ही क्या ?** कहते हैं। बोलना, ऐसा जो विकल्प उठे, बोलने का, वह तो मुनि को क्या काम है? आहाहा! समाधिशतक में लिया है न? किसके साथ बोलना? यह दिखता है, वह जड़ है। अन्दर आत्मा, वह तो रागरहित भिन्न चीज़ है। मैं किसके साथ बोलूँ? वह सुनता नहीं और इस जड़ को भान नहीं। चैतन्य है, वह तो जाननहार-देखनहार प्रभु है। मौन रहने की बात में आता है न? समाधिशतक में आता है। मैं किसके साथ बोलूँ? मेरा स्वभाव ही अन्तर में... अन्तर विकल्प उत्थान करना, वह भी मेरा स्वरूप नहीं, तो बोलना और बोल करके करना, यह मैं किसे कहूँ? क्या कहूँ? समझ में आया? **बहिर्जल्प की तो बात ही क्या ?** यह व्यवहारसमिति की व्याख्या। वापस उड़ा दी। टीकाकार ने उड़ा दी। इसलिए लोगों को यह टीका कठोर पड़ती है न। लो, यह भाषासमिति की बात हुई।

अब मुनि की ऐषणासमिति। मुनि आत्मा के आनन्द में रमनेवाले होते हैं। उन्हें निर्दोष आहार होता है। उनके लिए बनाया आहार चौका करके ले, वह आहार नहीं होता। नहीं होता? तुम्हारे करते हैं न? आहाहा! मुनि की दशा... लोग कहते हैं कि तुम मुनि को मानो, परन्तु मुनि आगम से तो देख। आगम की दृष्टि से मुनि किसे कहना, इसकी खबर बिना मुनि किसे मानना? ऐई! ऐषणासमिति कहते हैं। पहले ईर्यासमिति की बात आ गयी, पंच महाव्रत की बात आ गयी। पश्चात् ईर्या की, भाषा की (बात हुई)। अब ऐषणासमिति। ६३ वीं गाथा।

गाथा-६३

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।
दिण्णं परेण भत्तं सम-भुत्ती एसणा-समिदी ॥६३॥

कृतकारितानुमोदनरहितं तथा पासुकं प्रशस्तं च ।
दत्तं परेण भक्तं सम्भुक्तिः एषणा-समितिः ॥६३॥

अत्रैषणासमितिस्वरूपमुक्तम् । तद्यथा ह्य मनोवाक्कायानां प्रत्येकं कृतकारितानुमोदनैः कृत्वा नव विकल्पा भवन्ति, न तैः संयुक्तमन्नं नवकोटिविशुद्धमित्युक्तं; अतिप्रशस्तं मनोहरं, हरितकायात्मकसूक्ष्मप्राणिसञ्चारागोचरं पासुकमित्यभिहितं; प्रतिग्रहोच्चस्थानपाद-क्षालनार्चनप्रणामयोगशुद्धिभिक्षाशुद्धिनामधेयैर्नवविधपुण्यैः प्रतिपत्तिं कृत्वा श्रद्धाशक्त्य-लुब्धताभक्तिज्ञानदयाक्षमाऽभिधानसप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन योग्याचारेणोपासकेन दत्तं भक्तं भुञ्जानः तिष्ठति यः परमतपोधनः तस्यैषणासमितिर्भवति । इति व्यवहारसमितिक्रमः । अथ निश्चयतो जीवस्याशनं नास्ति परमार्थतः, षट्प्रकारमशनं व्यवहारतः सन्सारिणामेव भवति ।

तथा चोक्तं ह्य

णोकम्मकम्महारो लेपाहारो य कवलमाहारो ।
उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो ॥

अशुद्धजीवानां विभावधर्मं प्रति व्यवहारनयस्योदाहरणमिदम् । इदानीं निश्चयस्योदाहृति-रुच्यते । तद्यथा ह्य

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा ।
अण्णं भिक्ख-मणेसणमध ते समणा अणाहारा ॥

तथा चोक्तं श्रीगुणभद्रस्वामिभिः ह्य

(मालिनी)

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी ।

विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥

तथाहि ह

आहार प्रासुक शुद्ध लें परदत्त कृत कारित बिना ।
करते नहिं अनुमोदना मुनि, समिति जिनके एषणा ॥६३ ॥

अन्वयार्थ :—[परेण दत्तं] पर द्वारा दिया गया, [कृतकारितानुमोदनरहितं] कृत-कारित-अनुमोदनरहित, [तथा प्रासुकं] प्रासुक [प्रशस्तं च] और प्रशस्त^१ [भक्तं] भोजन करनेरूप [संभुक्तिः] जो सम्यक् आहारग्रहण, [एषणासमितिः] वह एषणासमिति है ।

टीका :—यहाँ एषणासमिति का स्वरूप कहा है, वह इस प्रकार है —

मन, वचन और काय में से प्रत्येक को कृत, कारित और अनुमोदनासहित मानकर उनके नौ भेद होते हैं; उनसे संयुक्त अन्न नव कोटिरूप से विशुद्ध नहीं है — ऐसा (शास्त्र में) कहा है; अतिप्रशस्त; अर्थात्, मनोहर (अन्न); हरितकायमय सूक्ष्म प्राणियों के सञ्चार को अगोचर वह प्रासुक (अन्न) — ऐसा (शास्त्र में) कहा है । प्रतिग्रह^२ उच्च स्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, योगशुद्धि (मन-वचन-काया की शुद्धि) और भिक्षाशुद्धि — इस नवविध पुण्य से (नवधा भक्ति से) आदर करके, श्रद्धा, शक्ति, अलुब्धता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा — इन (दाता के) सात गुणोंसहित शुद्ध योग्य-आचारवाले उपासक द्वारा दिया गया (नव कोटिरूप से शुद्ध, प्रशस्त और प्रासुक) भोजन जो परम तपोधन लेते हैं, उन्हें एषणासमिति होती है । ऐसा व्यवहारसमिति क्रम है ।

अब, निश्चय से ऐसा है कि जीव को परमार्थ से अशन नहीं है; छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है ।

१- प्रशस्त = अच्छा; शास्त्र में प्रशंसित; जो व्यवहार से प्रमादादि का या रोगादि का निमित्त न हो ऐसा ।

२- प्रतिग्रह = “आहारजल शुद्ध है; तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, (ठहरिये, ठहरिये, ठहरिये)” ऐसा कहकर आहारग्रहण की प्रार्थना करना; कृपा करने के लिये प्रार्थना; आदरसन्मान । [इस प्रकार प्रतिग्रह किया जाने पर, यदि मुनि कृपा करके ठहर जाएँ तो दाता के सात गुणों से युक्त श्रावक उन्हें अपने घर में ले जाकर, उच्च-आसन पर विराजमान करके, पाँव धोकर, पूजन करता है और प्रणाम करता है, फिर मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक शुद्ध भिक्षा देता है ।]

नोकर्म-आहार, कर्म-आहार, लेप-आहार, कवल-आहार, ओज-आहार और मन-आहार - ऐसा क्रमशः छह प्रकार आहार जानना।

अशुद्ध जीवों के विभावधर्म सम्बन्ध में व्यवहारनय का यह (अवतरण की हुई गाथा में) उदाहरण है।

अब, (श्री प्रवचनसार की २२७ वीं गाथा द्वारा) निश्चय का उदाहरण कहा जाता है। वह इस प्रकार —

जिसका आत्मा एषणारहित है (अर्थात्, जो अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है), उसे वह भी तप है; (और) उसे प्राप्त करने के लिये (अनशनस्वभावी आत्मा को परिपूर्णरूप से प्राप्त करने के लिये) प्रयत्न करनेवाले ऐसे जो श्रमण, उन्हें अन्य (स्वरूप से भिन्न ऐसी) भिक्षा, एषणा बिना (एषणादोष रहित) होती है; इसलिए वे श्रमण अनाहारी हैं।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

नियम और यम में तत्पर जो देहादिक से चित्त निवृत्त।
सब जीवों में अनुकम्पायुत और समाधिदशा को प्राप्त ॥
आगमोक्त आहार अल्प है, निद्रा को है किया परास्त।
पाया है अध्यात्म सार दहते क्लेशों का जाल समस्त ॥

[श्लोकार्थ : —] जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है; जो अत्यन्त यमनियमसहित है; जिसका आत्मा, बाहर से और भीतर से शान्त हुआ है; जिसे समाधि परिणमित हुई है; जिसे सर्व जीवों के प्रति अनुकम्पा है; जो विहित (शास्त्राज्ञा के अनुसार) हित-मित^१ भोजन करनेवाला है; जिसे निद्रा का नाश किया है, वह (मुनि) क्लेशजाल को समूल जला देता है।

गाथा-६३ पर प्रवचन

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।

दिण्णं परेण भत्तं सम-भुत्ती एसणा-समिदी ॥६३॥

नीचे हरिगीत । मूल श्लोक का नीचे हरिगीत ।

आहार प्रासुक शुद्ध लें परदत्त कृत कारित बिना ।

करते नहिं अनुमोदना मुनि, समिति जिनके एषणा ॥६३ ॥

एषणासमिति । एषणा अर्थात् क्या ? शोधना । मेरे लिए बनाया हुआ नहीं न ? मुनि के लिए किया, कराया और अनुमोदन, वह कोई भी आहार नहीं लेते । मुनिदशा है । नीचे है, देखो । मन, वचन और काय में से प्रत्येक को कृत, कारित और अनुमोदनासहित मानकर उनके नौ भेद होते हैं;... मन, वचन और काया । मन, वचन, काया से करना, कराना और अनुमोदना, इसके नौ भेद होते हैं । नौ भेद से उन्हें आहार का त्याग होता है । मन से किया हुआ, कराया हुआ और अनुमोदना तथा वचन से और काया से (कृत-कारित अनुमोदना, ऐसे) नौ भेद से सदोष आहार का त्याग होता है । समझ में आया ? उनसे संयुक्त अन्न नव कोटिरूप से विशुद्ध नहीं है... देखो ! जिसमें उनके लिए किया हो, कराया हो और करता को ले । वह ले, वही अनुमोदना है, भाई ! खबर है कि यह मेरे लिए बनाया है । यह पानी (प्रासुक) बनाया है । पानी कहाँ वहाँ पाँच-दस सेर था ? गर्म पानी कर रखा था । समझ में आया ? वह लेते हैं, वही पाप का अनुमोदन करते हैं ।

मुमुक्षु : लल्लूभाई के भाई ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लल्लूभाई । यह प्रश्न हमारे (संवत्) १९६९ के वर्ष में उठा था । दीक्षा लेने से पहले । १९७० के वर्ष में दीक्षा ली । ५८वाँ वर्ष चलता है ? संवत् १९६९ के वर्ष में यह प्रश्न उठा था । हीराजी महाराज के साथ । हीराजी महाराज को तुमने नहीं देखा होगा । तुमने देखा है ? नहीं देखा होगा । १९७४ के वर्ष में गुजर गये । उनसे मैंने पहला प्रश्न किया था । संवत् १९६९ के वर्ष में-वैशाख में । संवत् १९६९, राणपुर में प्रश्न किया था । कहा, महाराज !... अभी दीक्षा नहीं ली थी, परन्तु सब निर्णय करता था । (तो प्रश्न किया) कि महाराज ! यह साधु के लिए मकान बनाया हो । यह उपाश्रय बनाते हैं न ? तो कहा, उसे नौ कोटि में से कौन सी कोटि टूटती है ? ऐसा मैंने प्रश्न किया था । नौ कोटि समझ में आयी ? मन, वचन और काया, करना, कराना, और अनुमोदन करना । नौ आये न नौ ? यह तो तब प्रश्न हुआ था । संवत् १९६९ । १९६९ के वर्ष, ५८ वर्ष पहले, राणपुर में प्रश्न किया था । कहा, यह साधु के लिए उपाश्रय-कमरा, उपाश्रय पाटू बनावे । क्योंकि आहार तो वे

नहीं लेते थे। बहुत कड़क। हीराजी महाराज बहुत स्पष्ट थे। उनके लिए आहार किया हो, कराया हो, वह लेते ही नहीं। अभी तो यह कुछ ठिकाना नहीं है। अभी तो चाय-पानी बनावे, दूध बनावे, दूसरा बनावे। ले जाते हैं। वह तो एकदम मार्ग ही नहीं है। वे तो बहुत निर्दोष लेते थे परन्तु उपाश्रय सेवन करते थे। उसके लिए करे, ये प्रश्न उठा था। एक गुलाबचन्द गाँधी थे। नाम नहीं सुना होगा। राजकोट के साधु गुलाबचन्द गाँधी, वह क्या कहलाता है तुम्हारा? जरीफ था। गाँधी गुलाबचन्द। यह १९६९ के वर्ष में भाद्र शुक्ल चार के दिन राजकोट में गुजर गये। परन्तु वे उपाश्रय नहीं प्रयोग करते थे। उनके लिए बनाया हुआ उपाश्रय, मकान, कमरा, पाट वे नहीं प्रयोग करते थे। १९६८ के वर्ष में मैंने उनसे पहले सुना कि साधु को नहीं चलता। कहा, अपने को तो यह खबर नहीं थी। साधु को उसके लिए बनाया हुआ पाट (पटिया) नहीं चलता। ठीक। करो अपने निर्णय, हीराजी महाराज को पूछकर और उन्होंने गाथा कही। तब कण्ठस्थ थी। इसलिए उस दिन दशवैकालिक की गाथा थी। अठारह बोल में एक भी बोल तोड़े तो साधुपने से भ्रष्ट होता है, तो वहाँ उसमें ऐसा था कि उसके लिए मकान, उपाश्रय, पाट बनाया हुआ हो, यदि ले तो वह साधुपने से भ्रष्ट होता है। ऐसा उस श्लोक में था। वह श्लोक तब कण्ठस्थ था। १९६९ के वर्ष की बात है। और मैंने उसे कहा बात सच्ची लगती है, हों! तुमने कहा यह। ऐई! दास! तुमने देखा है न? वढ़वाण के चातुरमास में। १९६९ में वहाँ था। १९७० के वर्ष में राजकोट। कहा, यह क्या? हीराजी महाराज को कहा, हमारे गुरु थे, बहुत शान्त थे परन्तु अब यह बात... उनके निकट दीक्षा लेता है, यह और वह यह पूछता है। मैं कहूँ नहीं। वह नहीं बेचारे को। मैं कहूँगा तो रुकेगा, ऐसा कुछ नहीं है। उनने ऐसा माना था कि मुझे कहे। मैंने कहा, महाराज! मेरा एक प्रश्न है कि यह साधु के लिए मकान, उपाश्रय या पाट बनाया हो, आहार-पानी वहाँ ले तो उसे मन, वचन और काया; करना, कराना और अनुमोदन— नौ कोटि आयी न यहाँ? उनमें से कौन सी कोटि टूटती है, कहो। तो नव टूटती है? इसलिए ऐसा बोले कि उसमें एक भी नहीं टूटती। उनके सामने तो कुछ बोला नहीं जाए। मन में हो गया कि यह बात अपने को जँचती नहीं है। बहुत इज्जतदार थे। हीराजी महाराज तो बहुत इज्जतदार। बहुत 'हीरा इतना हीर' ऐसी उनके आचरण की क्रिया, परन्तु दृष्टि अत्यन्त मिथ्या, परन्तु उनका सम्प्रदाय के आचरण में... फिर दृष्टान्त दिया कि तुम्हारे भाई

खुशालभाई हैं... मुझे दृष्टान्त दिया। उन्होंने एक मकान बनाया, और उसमें तुम रहो, उसमें कौन सी कोटि टूटेगी? मेरे मन में तो ऐसा कि वह प्रयोग करे, वही अनुमोदन है। नौ कोटि में यह अनुमोदन हुआ, वह कोटि ही टूट गयी। ऐई! तुम्हारे गुलाबचन्दजी का था न? आहाहा! यह तो १९६९ के वर्ष की बात है। ५९ वर्ष पहले की बात है। कितनों का तो जन्म भी नहीं होगा? अपने को जँचता नहीं, भाई! क्योंकि दशवैकालिक कण्ठस्थ था, उसमें एक गाथा थी कि जो कोई उसके लिए बनाया हुआ हो, वह अनुमोदना करता है, तो उसे नौ कोटि निर्दोष नहीं रहती। वह साधु नहीं है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

नौ भेद—करना, कराना, अनुमोदन; मन से, वचन से और काया से। उनसे संयुक्त अन्न... ऐसे नव भंग से दोषवाला अन्न। नव कोटिरूप से विशुद्ध नहीं है... वह नौ प्रकार से निर्दोष नहीं है। ऐसा (शास्त्र में) कहा है;... इसलिए ऐसा आहार-पानी, मकान साधु नहीं लेते। आहाहा! यहाँ तो अब दो-दो लाख के, पाँच-पाँच लाख के मकान बनावे और सामने खड़े रहें। आहाहा! सब... गृहस्थों को खबर नहीं होती। अतिप्रशस्त; अर्थात्, मनोहर (अन्न);... चाहिए, ऐसा कहते हैं। एक तो निर्दोष चाहिए और अतिप्रशस्त अर्थात् प्रमादादि का या रोगादि का निमित्त न हो ऐसा। रोग का कारण न हो, प्रमाद ऐसा... गरिष्ठ आहार मैसूर (पाक) आदि कि जिसमें प्रमाद हो, ऐसा आहार नहीं लेना चाहिए। निभाने के लिए, शरीर निभानेमात्र विकल्प होता है।

मनोहर... अर्थात् अतिप्रशस्त; अर्थात्, मनोहर (अन्न);... शरीर में रोग और प्रमाद का कारण न हो, ऐसा निर्दोष। उसके लिए बनाया हुआ, बिल्कुल किया हुआ, कराया हुआ, अनुमोदन नहीं। हरितकायमय सूक्ष्म प्राणियों के सञ्चार को अगोचर... जिसमें हरितकाय का जीव हरितकाय, एकेन्द्रिय का एक दाना भी उसमें छुआ हुआ न हो। ये वनस्पति एकेन्द्रिय जीव हैं न? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आता है न? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया - यह आता है न, इच्छामि पडिक्कमण में। सामायिक में इर्या, ववरोविया यह आता है न? अर्थ की किसे खबर होती है! भगवान जाने। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, जीवियाओ, ववरोविया... मिच्छामी दुक्कडम् जाओ। ऐई! जयन्तीभाई! किया है या नहीं कुछ? सामायिक-वामायिक की है या नहीं? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिसमें हरितकाय का एक दाना सचेत, जो अनाज को छुआ न हो, ऐसा अनाज प्रासुक गिनने में आता है। ऐसा प्रासुक मुनि लेते हैं। यदि एक दाना भी बाजरे का, गेहूँ का दाना पड़ा हो और निर्दोष आहार देने के लिए बहिन उठे, यदि उसकी साड़ी या पैर दाने को छू जाए तो मुनि आहार नहीं लेते। ऐसा हमने सम्प्रदाय में बहुत वर्ष किया है। चिल्लाते थे। समझ में आया ? यह सब क्रियाकाण्ड, तत्त्वदृष्टिरहित। यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित मुनिपने की दशा की बात है। उसे जानना पड़ेगा या नहीं कि मुनिपना कैसा होता है ? अभी मुनिपना, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की खबर न हो और ऐसे समकित कहाँ से हो ?

वह प्रासुक (अन्न) - ऐसा (शास्त्र में) कहा है। लो, जिसे एक दाना भी स्पर्शित न हो। वनस्पति शब्द प्रयोग किया है न ? देखो न ! हरितकाय सूक्ष्म। सूक्ष्म टुकड़ा। एक यह ग्वार आती है न ? ग्वार नहीं ? उसे काटे और बारीक सूक्ष्म टुकड़ा होता है न ? जरा ऐसे पड़ा हो तो भी उसे आहार छूना नहीं चाहिए। वह छुआ हुआ आहार चलता नहीं है। यह ग्वार... ग्वार। अन्तिम क्या कहलाती है अणी। ग्वार की सब्जी बनावे, तब उसकी अन्तिम अणी गँठल निकाल डालते हैं। वह यदि यहाँ पड़ी हो और उसमें आहार देनेवाले का पैर पड़े तो वह साधु को चलता नहीं। वह हरितकाय संचारवाला आहार है। अरे रे ! ऐसा शास्त्र में भगवान ने कहा है।

मुमुक्षु : वह टुकड़ा-गँठल तो अजीव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीव होगा ? जीव है। इतनी भी खबर नहीं ? यह हरा ग्वार होता है न, उसके टुकड़े में असंख्य हरे जीव हैं। हरितकाय लीलोतरी है। यह हरितकाय कहा नहीं ? एक टुकड़ा इतना हरा, यह भिण्डी लो न ! उसकी भी अन्तिम अणी निकाल डालते हैं न ? उस अणी में असंख्य जीव हैं। भगवान केवली ने कहे हुए एकेन्द्रिय जीव हैं। जैन में रहे, उन्हें भी कहाँ खबर है। जय नारायण। भगवान सच्चे। करो धर्म। क्यों ? कान्तिभाई !

यहाँ तो कहते हैं कि उस हरितकाय का एक टुकड़ा.. भिण्डी का, ग्वार का.. हमारे हीराजी महाराज की क्रिया बहुत ऐसी। हमारी क्रिया भी पन्द्रह वर्ष बहुत कड़क थी। आहार लेने जाएँ और इस हरितकाय का टुकड़ा पड़ा हो, और उस महिला का पैर छू जाए तो आहार न लें। अपने गृहस्थ रायचन्द गाँधी जैसे बड़े दशाश्रीमाली हैं न ? रायचन्द गाँधी

बोटाद में बड़े गृहस्थ है, उनके यहाँ आहार लेने जाएँ, वहाँ बड़ा मकान। एक टुकड़ा ऐसे पड़ा हो, उसे छूए, वहाँ ध्यान रखना, महाराज आये हैं, ऐसा कहे। यदि कहीं छू जाओगे तो नहीं लेंगे, चिल्लाहट करे, हों! रायचन्द गाँधी... ८५ वर्ष की उम्र, ९० हुए होंगे। वह बेचारे उसे देखकर डरे। हम आहार लेने जाएँ वहाँ। यह क्रिया उस समय सख्त मानी थी, वह की थी। डरे, ऐसे डरे। कहाँ वस्तु... होगी। कहीं हरितकाय को छू जाएँगे तो महाराज चले जाएँगे।

यहाँ मुनि सच्चे सन्त आत्मज्ञानसहित, जिन्हें आत्मा के आनन्द का अनुष्ठान प्रगट हुआ है, उन्हें आहार की विधि में इस प्रकार से होता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! एक बात।

अब देनेवाला। अब उसे देनेवाला कैसा हो? आहार ऐसा हो, लेनेवाले ऐसे हों, दो बात हो गयी न? अब देनेवाला कैसा हो? आहाहा! प्रतिग्रह, उच्च स्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, योगशुद्धि (मन-वचन-काया की शुद्धि) और भिक्षाशुद्धि - इस नवविध पुण्य से (नवधा भक्ति से) आदर करके,... लो। वही गृहस्थ ऐसा कहे, आहार-पानी शुद्ध है। बात सूक्ष्म है। सच्चे सन्त की बात है। सच्चे मुनि हों, वे तो नग्न होते हैं, दिगम्बर होते हैं, जंगल में बसते हैं।

जैन परमेश्वर ने स्वीकार किये हुए सन्त, मुनि... णमो लोए सव्व साहूणं—यह पद तो शरीर में नग्न हो; अन्दर तीन कषायरहित हो, वह जंगल में बसता है। भिक्षा के लिए किसी समय गाँव में आवे। ऐसी स्थिति वीतराग के मार्ग में अनादि की है। बीच में गड़बड़ की है, वह उसके घर की। भगवान के घर की नहीं। आहार-पानी शुद्ध है, ऐसा पहले कहे। मुनि निकले, दिगम्बर सन्त, आत्मध्यानी-ज्ञानी, उसमें आहार का विकल्प होता है। उसमें गृहस्थ... निर्दोष आहार-पानी पड़ा हो वह, हों! उनके लिए बनाया हो (वह नहीं), यह बात तो की है। निर्दोष हो। तथा पाँच-दस हो और एक-दो लोगों को हो इतना तो पहले रखते थे। पहले कहाँ रोटी की बहुत कीमत नहीं थी। अब यह बहुत कीमत हो गयी। पहले तो दो-तीन रुपये का महीने में खाते थे। विधवा को पाँच सौ रुपये आवे और ढाई बाँध दे तो बहुत होता था। साठ वर्ष पहले सुना था। क्या कहलाता है वह? पोत.. पोत। पोत कहते थे या नहीं? सब देखा है न? साठ वर्ष पहले। पाँच सौ रुपये हों। कहे, ओहो.. बहुत।

उसके ढाई रुपये... तब आठ आना नहीं था न, अब यह डेढ़ रुपया हुआ। तब आठ आना ब्याज था। ढाई रुपये बस है, उसे। स्पष्ट लेते थे।

यहाँ कहते हैं कि एकदम घर का आहार हो, उसमें मुनि आये हों। पधारो महाराज, कृपा करो। ऐसा कहे तो वे खड़े रहें। ऐसे के ऐसे घर में नहीं घुस जाँएँ, ऐसा कहते हैं। दुनिया में सब फेरफार-फेरफार है। उच्च स्थान,... है न? ऐसा कहकर आहारग्रहण की प्रार्थना करना; कृपा करने के लिये प्रार्थना;... प्रभु पधारो! आदरसन्मान। [इस प्रकार प्रतिग्रह किया जाने पर, यदि मुनि कृपा करके ठहर जाँएँ तो दाता के सात गुणों से युक्त श्रावक उन्हें अपने घर में ले जाकर, उच्च-आसन पर विराजमान करके,...] पटिया-वटिया रखकर। [पाँव धोकर, पूजन करता है...] ऐसी वीतरागमार्ग में अनादि की विधि है। उसके बाद यह सब फेरफार हो गया है। यह मार्ग अनादि का है। महाविदेहक्षेत्र में तो यही मार्ग वर्तता है। भगवान सीमन्धर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वहाँ ऐसा ही मार्ग है। समझ में आया? अरे रे!

[पाँव धोकर, पूजन करता है और प्रणाम करता है, फिर मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक शुद्ध भिक्षा देता है।] है न? अर्चन, प्रणाम, योगशुद्धि (मन-वचन-काया की शुद्धि) और भिक्षाशुद्धि - इस नवविध पुण्य से (नवधा भक्ति से) आदर करके,... देनेवाला कैसा होगा? श्रद्धावाला हो, उसके घर में आहार लेते हैं, ऐसा कहते हैं। जिस-तिस के घर में नहीं चढ़ जाते। अरे रे! गजब बात! यह बात तो सुनना कठिन पड़ती है। यह तो अनादि का यह मार्ग था, मार्ग यह है। समझ में आया?

शक्ति,... अपनी खड़े रहने की शक्ति हो। मूढ़ हो ऐसा नहीं। अलुब्धता,... देनेवाले को गृद्धि न हो। ऐसा आहार-पानी दे सकता है। लेनेवाला ऐसा धर्मी हो, धर्मात्मा सन्त नग्न मुनि, स्वरूप के अनुष्ठान में लीनवाला हो, थोड़ा विकल्प है लेने आवें तब। भक्ति... सहित दे। ज्ञान... सहित हो और भानवाला हो। देनेवाले को भान हो। मुनिपना ऐसा हो, उसे देने की विधि ऐसी हो। ऐसा उसे ज्ञान हो। भानरहित अन्ध न हो। उसके हृदय में दया हो। श्रावक को, सच्चे श्रावक की बात चलती है, हों! यह वाड़ा की बात नहीं है। दया और क्षमा - इन (दाता के) सात गुणों... लो। देनेवाले के सात गुण होते हैं। आहाहा! सहित शुद्ध योग्य-आचारवाले उपासक द्वारा दिया गया... लो। शुद्ध योग्य आचारवाले उपासक

द्वारा। देखा न? श्रावक स्वयं ऐसा होता है - ऐसा कहते हैं। ऐसे गुणवाले शुद्ध योग्य-आचारवाले उपासक... श्रावक, उसके द्वारा दिया गया (नव कोटिरूप से शुद्ध, प्रशस्त और प्रासुक)... यह सब आ गया न? तीन बोल आ गये। नव कोटि से शुद्ध प्रशस्त... अर्थात् प्रमाद और रोग न हो, ऐसा आहार और प्रासुक... अर्थात् उसमें हरितकाय का संचार, एकेन्द्रिय जीव उसे स्पर्श न हुआ हो, ऐसा भोजन जो परम तपोधन लेते हैं, लो! उन्हें एषणासमिति होती है। ऐसा व्यवहारसमिति क्रम है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव परमेश्वर तीर्थकर के मार्ग में यह विधि है। इसमें है या नहीं?

अब, निश्चय से ऐसा है कि जीव को परमार्थ से अशन नहीं है;... यह तो मुनि को शरीर निभाने के लिए जरा विकल्प आया, तो यह होता है। परन्तु वास्तव में तो आहार-पानी तो जड़ है। आत्मा में है ही नहीं और आत्मा में वे स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा! वह तो मिट्टी है। दाल, भात, सब्जी, वह तो अजीवतत्त्व है। वह जीवतत्त्व में है ही नहीं। आहाहा! परमार्थ से अशन नहीं है; छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है। विकल्प है, इसलिए कहा जाता है। बहुत प्रकार निकलते हैं। समयसार में कहा है या प्रवचनसार में। समयसार में गाथा नहीं आती। ४१५ गाथा है न? टीका में है। नोकर्म-आहार, कर्म-आहार, लेप-आहार, कवल-आहार, ओज-आहार और मन-आहार... और इस गाथा का... सरीखा नहीं है प्रवचनसार में। इस गाथा के जो शब्द हैं, ऐसे शब्द उसमें नहीं हैं। प्रवचनसार में थोड़ा अन्तर है। २०वीं गाथा में है न यह? २०वीं गाथा।

णोकम्मकम्महारो लेपाहारो य कवलमाहारो।

उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो ॥

कम्महारो लेपाहारो इतना अन्तर है इसमें है। णोकम्मकम्महारो लेपाहारो मुनिपना कैसा होता है, उसका ज्ञान, श्रद्धा कराते हैं। जिसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भी खबर न हो, उसे आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! छह प्रकार के नाम लिए हैं, देखो! नोकर्म-आहार,... नोकर्म अर्थात्? शरीर के ये परमाणु हैं न वे? औदारिक के रजकण होते हैं न? वह नोकर्म। केवली को भी वे रजकण आते हैं न? कर्म-आहार,... ये कर्म के रजकण। लेप-आहार,... अन्दर चोपड़े कवल-आहार,... ग्रास ले। ओज-आहार... यह पंखी (पक्षी) जैसे पंखी पंख द्वारा बच्चे को पोसता है न? वह ओज आहार

कहलाता है। मन-आहार... देवों को मन का आहार होता है। उन्हें हजार वर्ष में इच्छा होती है, उन्हें मन से आहार आता है। यह छह प्रकार आहार है, लो।

अशुद्ध जीवों के विभावधर्म सम्बन्ध में व्यवहारनय का यह (अवतरण की हुई गाथा में) उदाहरण है। आहार लेना, यह विकल्प है, ऐसा अशुद्धभाव है, उसके द्वारा यहाँ बात है। अथवा छह प्रकार का आहार के लिए सब है। अब, (श्री प्रवचनसार की २२७ वीं गाथा द्वारा) निश्चय का उदाहरण कहा जाता है। लो यह २२७ गाथा है।

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा ।

अण्णं भिक्ख-मणेसणमध ते समणा अणाहारा ॥

जिसका आत्मा एषणारहित है (अर्थात्, जो अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है),... क्या कहते हैं ? मुनि को तो आत्मा में आहार है ही नहीं। आहार तो जड़-धूल है। वह आत्मा में है नहीं। यह आत्मा आहाररहित है, ऐसी जो दशा, ऐसा आत्मा का भान, उसे ही एषणा कहा जाता है। वह एषणारहित है (अर्थात्, जो अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है),... ऐसा कहते हैं। उसे आहार की इच्छा नहीं है। आहाहा! इच्छा तो राग है।

मुमुक्षु : आत्मा को होवे कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में कैसी वह वस्तु। वह तो विकल्प उठा था, ऐसे जीव की बात की थी। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है।

उसे वह भी तप है;... क्या कहा ? यह आत्मा अनशनस्वभावी है अर्थात् आहार-पानी रहित स्वभाववाला है—ऐसा जो भान वही, एक तप है। भगवान आत्मा में जहाँ विकल्प नहीं, वहाँ ऐसा आहार और पानी उसमें अन्दर है नहीं। आहाहा! ऐसा जो चैतन्यतत्त्व है। कहते हैं, (अनशनस्वभावी आत्मा को...) अर्थात्, अशन, अनशन। अशन रहित अनशनस्वभावी ऐसा। अशन अर्थात् आहार-पानी। अनशन अर्थात् आहार-पानी रहित। ऐसे आत्मा को जानता होने के कारण। अरे! मैं तो आहार के रजकण और रागरहित हूँ। आहार के रजकण तो अजीव हैं और राग है, वह तो आस्रवतत्त्व है। मैं तो उस आस्रव और अजीव रजकण से मेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा को अशनरहित

स्वभाववाला जानता हुआ, वही एक तप है, कहते हैं। क्या कहा? समझ में आया?

आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सिद्धस्वरूप परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकर ने कहा, देह के रजकणों से भिन्न है, कर्म से भिन्न है। कर्म जड़ है, पुण्य-पाप के विकल्प / आस्रव से भिन्न है तो इस आहार-पानी से भिन्न है, ऐसी जो आत्मा की स्थिति... आहार-पानी कुछ भी स्वरूप में नहीं है, ऐसा मैं हूँ। ऐसा जो ज्ञान-ध्यान, वह तप है। कहा या नहीं? क्या कहा? अनशनस्वभावी आत्मा को जानता हुआ। अर्थात्? अनशनस्वभावी अर्थात्? अशन, अनशन। अशन-अनशन। अशन—आहार-पानी से रहित अनशन। ऐसा अशनरहित आत्मा। जैसे शरीररहित आत्मा, वैसे आहार-पानीरहित आत्मा, ऐसे आत्मा की अनुभव दृष्टि होने से उसकी स्थिरता अन्तर में है। उसे ही तप कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? विशेष बात लेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६६, श्लोक-८६, गाथा-६४, सोमवार, आषाढ़ शुक्ल १२, दिनांक ०५-०७-१९७१

नियमसार, १२५ पृष्ठ है। प्रवचनसार का श्लोक है। मुनि का अधिकार है। मुनि एषणासमिति से आहार ले, वह उनका व्यवहार है। उन्हें मुनि कहते हैं कि जिन्हें आत्मा का पहले ज्ञान, अनुभव हुआ हो। वीतरागमार्ग में व्यवहारचारित्र किसे होता है? – कि जिसे अन्दर आत्मा राग से, विकल्प से, अत्यन्त भिन्न; शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, उनसे तो भिन्न है, परन्तु एक राग का दया, दान का विकल्प उठे, उससे चीज भिन्न है। ऐसा जिसे अन्तर में राग से और पर से अधिक अर्थात् भिन्न आत्मा जानने में आवे, अनुभव में आवे, उसे समकित कहने में आता है। प्रथम में प्रथम धर्म। तदुपरान्त यहाँ तो मुनि की बात है। अब मुनि कैसे होते हैं? २२७ गाथा का उद्धरण दिया है।

जिसका आत्मा एषणारहित है... क्या कहते हैं? यह आत्मा है, वह अनशन, अशन। आहार-पानी से रहित आत्मा है। अनशनस्वभावी आत्मा है। अर्थ में है? एषणारहित अर्थात् अनशनस्वभावी आत्मा, ऐसा। उसे एषणा-खोजना कि यह है, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है। आहार लेना या छोड़ना, वह वस्तु के स्वरूप में ही नहीं है क्योंकि आहार तो पुद्गल जड़ है। जड़ का लेना या छोड़ना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। वह तो

अनशनस्वभावी आत्मा को जाने। धर्मी जीव अपना आत्मा अनशन अर्थात् अशनरहित अनशनस्वभावी जाने। समकित्ती भी ऐसा जाने, परन्तु तदुपरान्त यहाँ विशेष बात मुनि की है।

आत्मा वस्तु है, वह ज्ञानानन्दस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। यह अशन अर्थात् आहार-पानी, अशणं, पाणं, खाईमं, साईमं - आता है न सब ? इन सब चीजों से रहित आत्मा है। आत्मा में यह वस्तु, आहार-पानी, पुद्गल का तो अभाव है। मुनि उसे कहते हैं कि जिसका आत्मा एषणरहित है। यह आत्मा है आत्मा, वह तो आनन्द और ज्ञानस्वभावसहित है। उसमें आहार-पानी का तो अभाव है, वह तो जड़ है। आहार, अशरणं, पाणं, खाईमं, साईमं-कोई भी चीज़, उसका तो आत्म स्वभाव में अभाव है। धर्मी की दृष्टि उस अनशनरहित ऐसे आत्मा पर उसकी दृष्टि है। धर्मी की दृष्टि वह है। आहार ले या न ले, वह चीज़ आत्मा में नहीं है। आहाहा! क्योंकि जो चीज़ उसमें नहीं, उसे लेने-देने की बात कहाँ से होगी ? आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि की पहली बात है। धर्मी पहले सम्यग्दृष्टि होता है, तब वह अपने आत्मा को... अशन तो पुद्गल, जड़, अजीव है। आत्मा तो अजीवरहित स्वभाववाला है। अनशनस्वभावी। अशन-अशन अर्थात् आहार-पानी, उनसे रहित, वह अनशन। अनशनस्वभावी आत्मा। आहाहा! जिसमें आहार-पानी का एक रजकण भी नहीं। ऐसा आत्मा धर्मी ने, सम्यग्दृष्टि ने, प्रथम धर्म की श्रेणीवाले जीव ने पहले ऐसा आत्मा जाना है कि आत्मा में आहार-पानी आदि वस्तु नहीं है।

(आहार की इच्छारहित है)। इस अपेक्षा से तो समकित्ती भी आहार की इच्छारहित है। समझ में आया ? अब यहाँ तो मुनि की विशेष बात है न ? मुनि को (अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है), उसे वह भी तप है;... वह तप। मैं अनाहारी वस्तु हूँ। आहार की चीज़ मुझमें है ही नहीं, ऐसे आत्मा में दृष्टि और अनुभव में स्थिरता (होवे), उसे ही तप कहते हैं। समझ में आया ? वह उपवास है, ऐसा कहते हैं। लो, ठीक। मुनि आहार लेते हैं तथापि, विकल्प होने पर भी, दृष्टि में विकल्प और आहाररहित चीज़ मैं हूँ, ऐसी दृष्टि के कारण आत्मा अनाहारी, आहाररहित चीज़ है, ऐसी अनुभव में स्थिरता है, वह आहार करने पर भी और आहार का विकल्प होने पर भी वह उपवासी है। गजब काम।

क्योंकि आत्मा आहार-पानी रहित चीज़ है। उसके उप अर्थात् समीप में धर्मात्मा बसता है। आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञानस्वरूप, वह आहार-पानी की चीज़ पुद्गल से रहित है, ऐसी चीज़ में धर्मी की दृष्टि पड़ी है। धर्मी तो अपने शुद्ध आत्मा के उप अर्थात् समीप में बसता है, तो वही उपवास है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और तदुपरान्त उसे प्राप्त करने के लिए... भगवान आत्मा अशन—आहार, पानी, मेवा आदि कोई भी चीज़ से रहित (आत्मा है), ऐसी दृष्टि हुई है, ऐसा आत्मा का अन्तरभान हुआ है और उसी आत्मा को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नवान है। ऐसा अनशनस्वभावी आत्मा, पूर्ण प्राप्त करने के लिए... जिसका प्रयत्न है। है ?

(और) उसे प्राप्त करने के लिये (अनशनस्वभावी आत्मा को परिपूर्णरूप से प्राप्त करने के लिये)... अर्थात् मुक्ति। जैसी आहार-पानीरहित चीज़ है, वैसा अनुभव दृष्टि में हुआ, परन्तु पूर्ण निर्मल ऐसी मुक्ति करने में उसका प्रयत्न है। प्रयत्न करनेवाले ऐसे जो श्रमण, उन्हें अन्य (स्वरूप से भिन्न ऐसी) भिक्षा, एषणा बिना (एषणादोष रहित)... तो मुनि आहार लेते हैं। उनके लिए चौका बनावे, आहार-पानी बनावे और ले, वे तो मुनि नहीं हैं। समझ में आया? उनके लिए गर्म पानी, आहार बनाया हो, उससे रहित लेते हैं। उनका दोष होवे तो वे लेते नहीं।

(एषणादोष रहित) होती है; इसलिए वे श्रमण अनाहारी हैं। देखो! जरा सूक्ष्म है। यह प्रवचनसार की गाथा है। यह नियमसार चलता है। भगवान आत्मा रजकण और राग के भाव से रहित है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई और उस चीज़ को प्राप्त करने का स्वसन्मुख का प्रयत्न चालू है, तो वह आहार लेने पर भी... बाहर से तो व्यवहार से ऐसा कहे न? और आहार का विकल्प होने पर भी उसे अनाहारी कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

धर्मी को भी पहले से ऐसी भावना होनी चाहिए। मैं तो आत्मा एक रजकण और राग के अंश से रहित मैं हूँ। ऐसे आत्मा की जिसे दृष्टि (हुई है), आत्मा के समीप दृष्टि है, वह तो समकृती अनाहारी ही है परन्तु यहाँ तो मुनिपने की अनाहारी दशा लेना है, तो वह आहार लेते हैं तो एषणादोषरहित लेते हैं, इसलिए वे अनाहारी हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समकृती दृष्टि अपेक्षा से अनाहारी हैं और मुनि स्थिरता की अपेक्षा से अनाहारी हैं - ऐसा सिद्ध करना है। ऐई! समझ में आया?

धर्मी जीव को अपना वस्तुस्वरूप, राग और रजकण कोई भी परमाणु से भिन्न अपनी चीज़ अनुभव में आयी है, इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि भी अनाहारी है। उसे आहार नहीं है और इच्छा उत्पन्न होती है, वह भी उसकी चीज़ नहीं है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दृष्टि को आहार का भाग लेने का राग तीव्र है, इस अपेक्षा से, स्थिरता की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि अनाहारी नहीं है। दृष्टि की अपेक्षा से अनाहारी है, चारित्र की अपेक्षा से अनाहारी नहीं है।

मुनि जो आत्मज्ञानी, ध्यानी, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन जिन्हें प्रगट हुआ है। उन मुनि को तो, आहार-पानी की चीज़ मुझमें नहीं है परन्तु लेने का भाव है, उसमें एषणादोषरहित लेते हैं इसलिए साक्षात् अनाहारी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाराज का श्लोक है। दिगम्बर मुनि, सन्त... आहाहा! इस टीका में एक बोल अधिक लिया है। अमृतचन्द्राचार्य। कि जैसे मुनि अनाहारी हैं, वैसे मुनि अविहारी हैं। क्योंकि विहार करना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। हिलना, चलना, गमन करना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। ऐसी दृष्टि का ख्याल आया है कि मैं तो अविहारी हूँ। विहार करना, गति करना, गमन करना, वह तो मेरे स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि भी अविहारी है। समझ में आया? परन्तु मुनि तो साक्षात् अविहारी है क्योंकि विहार करने में ईर्यासमिति का दोष टालकर करते हैं, इतनी स्थिरता उसमें जमी है, इस अपेक्षा से मुनि को अविहारी कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग वह तो यह, बापू! अन्तर चैतन्यस्वरूप, जिसे पर का अवलम्बन ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़...

कहते हैं कि आहार की इच्छा और आहार लेते हैं, तथापि अनशनस्वभावी की दृष्टि होने से और निर्दोष आहार लेने की भावना होने से अनाहारी हैं। इसी प्रकार अविहारी, विहाररहित आत्मा है, ऐसा जानने से और विहार में भी समितिसहित जानने से ईर्यासमिति का दोष बिल्कुल नहीं लगता; इस कारण मुनि को अविहारी कहा जाता है। समझ में आया? निश्चय से तो सम्यग्दृष्टि भी अविहारी है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा का स्वभाव ही जहाँ नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव ही नहीं। हलन-चलन करे, वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि — लो ! गुणभद्रस्वामी मुनि, दिगम्बर सन्त हुए न ? उन्होंने यह बात की है, लो !

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी ।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥

श्लोकार्थ : आहाहा ! जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है;... पहले समकित की बात करते हैं । आहाहा ! मुनि ऐसे होते हैं कि जिन्हें पहले सम्यग्दर्शन हुआ होता है । सम्यग्दर्शन बिना मुनि नहीं होते । सम्यग्दर्शन में ऐसा निर्णय किया है । **अध्यात्म के सार का निश्चय किया है;...** ओहो ! मैं तो राग का विकल्प, शरीर के रजकण, कर्म के रजकण से अत्यन्त रहित हूँ । मैं पूर्ण आनन्द और ज्ञान से पूर्ण भरपूर हूँ । मेरी चीज़ में राग और शरीर तो है नहीं परन्तु एक समय की पर्याय भी त्रिकाल में है नहीं । ऐसा सम्यग्दृष्टि ने पहले अपनी पूर्ण चीज़ का निर्णय किया है । आहाहा ! समझ में आया ?

भाषा क्या है ? **अध्यात्म के सार का...** आहाहा ! भगवान आत्मा धर्मी, सम्यग्दृष्टि होने से उसने अध्यात्म के सार का निर्णय किया है । तत्त्वार्थसार । कल आया था न ? तत्त्व में सार, ऐसा आत्मतत्त्व । यहाँ अध्यात्म सार लिया है । अपना आत्मा, कहते हैं कि जो पुण्य-पाप के आस्रव हैं, उनसे रहित तो है ही और कर्म तथा शरीर से रहित है ही, परन्तु संवर-निर्जरा और मोक्ष जो तत्त्व है, वह भी पर्यायरूप तत्त्व है, उनसे भी द्रव्यतत्त्व भिन्न है । आहाहा !

जयपुर में मंगलाचरण में पहले यह कहा था । दस हजार लोग थे । स्वागत था न, बैशाख कृष्ण छह । दस हजार लोग । रामलीला मैदान । कहा, मार्ग यह है । दस हजार लोग थे । तत्त्व में सार तत्त्व... तत्त्व तो पुण्य-पाप के विकल्प वह तत्त्व है और संवर-निर्जरा और मोक्ष, वह निर्मल दशा, वह भी तत्त्व है । परन्तु उस तत्त्व में सारतत्त्व द्रव्यतत्त्व है । समझ में आया ? ऐसी बात रह गयी है कि उसे अनन्त काल में ख्याल में आयी ही नहीं । यह नियमसार है न ? इसकी ही गाथा यहाँ है न ? ३८ में, ३९ में । शुद्धभाव अधिकार है न ? लो, आया ।

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है... पृष्ठ ७८ है। ५४वाँ कलश सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है... ओहोहो! यह अध्यात्मसार। क्या कहते हैं? कि जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा (बन्ध), मोक्ष, इन सब तत्त्वों में एक तत्त्व—जीवतत्त्व सार है। उन पर्याय तत्त्व से भी जीवद्रव्य तत्त्व सार है। संवर-निर्जरा मोक्षतत्त्व में भी जीवतत्त्व सार है। जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से... आहाहा! क्षायिकभाव, उपशमभाव, उदयभाव, क्षयोपशमभाव ये सब पर्यायें हैं। क्षायिकभाव भी पर्याय है। वह भी नाशवान है। जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है... कायम रहनेवाला तत्त्व भगवान है। समझ में आया? क्षायिक समकित की पर्याय, वह भी नष्ट होनेयोग्य है क्योंकि पर्याय है, एक समय की स्थिति है। उससे भी तत्त्व-आत्मा दूर है। प्रेमचन्दभाई! आहाहा! ऐसा भारी कठिन काम। देव-गुरु-शास्त्र से तो कहीं पार रह गया। उनसे उठा विकल्प, उससे भी पार, परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट हुई, अन्तर में स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति-चारित्र वीतरागता (प्रगट हुए), वह भी पर्याय है और वह पर्याय नष्ट होनेयोग्य है, तो नष्ट होनेयोग्य से दूर है। ध्रुवतत्त्व तो नष्ट होनेयोग्य से दूर है, वह आत्मतत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग तो यह है। कहा भाई! समझो, न समझो, तुम्हें यह करना ही होगा। बाहर से कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं है।

समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है... शुद्ध ज्ञान का अवतार और सुख-सागर की बाढ़ है। अकेला सुख-सागर और ज्ञान की अन्दर बाढ़ आवे, ऐसी वह तो चीज़ है। आहाहा! बाढ़ कहते हैं न? अन्तर में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन की बाढ़ आती है, ऐसी वह चीज़ है। पर्याय आती है, वह नाशवान है, परन्तु जिसमें से आती है, वह महाध्रुव तत्त्व है, उस तत्त्व को यहाँ सार तत्त्व और अध्यात्म का सार, सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। समझ में आया? लो!

जिसने अध्यात्म के सार का... मुनि ने पहले तो नव तत्त्व में सार तत्त्व एक आत्मा ध्रुव का निर्णय अनुभव किया हो, पश्चात् वे मुनि होने योग्य हैं। जिसे अभी सम्यग्दर्शन के निर्णय का ठिकाना नहीं, वह तो मुनि होने के योग्य ही नहीं है। आहाहा! जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है; जो अत्यन्त यमनियमसहित है;... अब उपरान्त। सम्यग्दर्शन उपरान्त अब। समझ में आया? आहाहा! प्रथम तो मैं ध्रुव नित्य आनन्द, एक

समय की पर्याय से भी दूर वर्तनेवाला, वीतरागी धर्मदशा से भी दूर वर्तनेवाला मैं आत्मा हूँ। ऐसा पहले अनुभव में निर्णय होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। पहले सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् अत्यन्त यमनियमसहित है;... अब मुनि की बात आयी। ऐसे सम्यग्दर्शनसहित जो पंच महाव्रतादि नियमसहित है। अन्तर में स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द की जिन्हें बाढ़ आयी हो। आहाहा! सिद्ध का आनन्द, सिद्ध परमात्मा का जो आनन्द, ऐसा ही आनन्द। उससे थोड़ा कम, परन्तु अत्यन्त अतीन्द्रिय आनन्द में ध्रुव में बहुत एकाग्रता हुई है, तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आया है, तो अन्तर के निश्चय यम-नियमसहित है। व्यवहार में पंच महाव्रतादि का ऐसा विकल्प उठता है।

जिसका आत्मा, बाहर से और भीतर से शान्त हुआ है;... पर्याय में भी शान्ति और द्रव्य में भी शान्ति। वस्तु शान्त आनन्द प्रभु और पर्याय में भी शान्त अतीन्द्रिय आनन्द, उपशमरस, उपशमरस जिसकी पर्याय में ढल गया है, ऐसे मुनि। जिसे समाधि परिणमित हुई है;... देखो, जिसे समाधि परिणमित हुई है;... आनन्द की शान्ति समाधि... समाधि... समाधि...। आधि-व्याधि-उपाधि से रहित, वह समाधि है। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प; व्याधि अर्थात् शरीर का रोग आदि; उपाधि अर्थात् ये संयोग। आधि-व्याधि-उपाधि से रहित आत्मा के आनन्द की शान्ति की समाधि। आहाहा! वीतरागभावरूप जिसकी समाधि परिणमित हो गयी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे वीतरागमार्ग में मुनि कहने में आता है। आहाहा! उसे अन्तर में ऐसी समाधि परिणमित हो गयी है, बाहर में नग्नदशा हो और अभ्यन्तर में कदाचित् विकल्प आवे तो पंच महाव्रतादि का विकल्प हो। वह भी हेयबुद्धि से (आता है)।

जिसे समाधि परिणमित हुई है;... ओहोहो! गुणभद्रस्वामी दिगम्बर सन्त कहते हैं। सन्त की ऐसी दशा। 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे...' आता है न? अभी पूजा होती थी न। अभी बोलते थे। इसमें कहीं है। 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे...' मैं तो सदा निरन्तर। देहक्रिया, विकल्प-राग की क्रिया से रहित मैं सदा निरन्तर भिन्न हूँ। ऐसे सन्त स्वभाव में अपनी भावनारूप एकाग्रता करते हैं।

'आतम भावना भावतां जीव लहै...' यह आता है न? भावना अर्थात् यह। वे रटन ही रखे। 'आतम भावना भावतां जीव लहै केवलज्ञान' परन्तु आत्मा पर्याय और राग से

भिन्न ऐसी चीज़ की भावना का अर्थ इसमें एकाग्रता। ध्रुव भगवान में एकाग्रता, वह आत्मभावना, वह आत्मभावना भाते जीव लहे केवलज्ञान। उस स्वरूप में एकाग्रता से केवलज्ञान लेता है। अन्तर के स्वरूप की एकाग्रता। अतीन्द्रिय आनन्दधाम भगवान में एकाग्रता की वीतरागी दशा, वह भावना। भावना अर्थात् कोई कल्पना, चिन्तवना, या विकल्प, ऐसा नहीं। आत्मभाव की भावना। अतः आत्मभाव ध्रुव चिदानन्द आनन्दमूर्ति की भावना अर्थात् एकाग्रता। अर्थ की खबर नहीं होती और पहाड़े बोले जाते हैं। रटन (किये जाते हैं)। आत्म भावना भावतां... परन्तु आत्मा किसे कहना? भावना किसे कहना? उसका फल केवलज्ञान किसे कहना? यह अपन नहीं जानते हैं।

जिसे समाधि... आनन्द... आनन्द... आनन्द की शान्ति। तीन कषाय के अभावरूप शान्ति... शान्ति... शान्ति...। आकुलता बहुत टल गयी है। अनाकुलता की समाधि। मुनि को पर्याय में शान्ति परिणमित हो गयी है। वीतरागता प्रगट हुई है। आहाहा!

जिसे सर्व जीवों के प्रति अनुकम्पा है;... एकेन्द्रिय पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति से लेकर सब जीवों के प्रति अनुकम्पा। किसी को दुःख देने का भाव नहीं। **जो विहित (शास्त्राज्ञा के अनुसार)...** वीतराग ने आज्ञा की है, वैसे निर्दोष आहार-पानी; उसके लिए बनाया हो, वह ले नहीं। प्राण जाए तो भी ले नहीं। **(शास्त्राज्ञा के अनुसार) हित-मित... हितकर और उचित मात्रा में।** मित और मर्यादित। **भोजन करनेवाला है;...** ऐसे सम्यग्दर्शन में आत्मा का निर्णय हुआ हो सार और पश्चात् समाधिरूप परिणाम और बाहर में अभ्यन्तर शान्तरूप है, अनुकम्पा है। वह शास्त्र की आज्ञा प्रमाण विहित-विधि से निर्दोष आहार पाने आदि हो तो हित और मित भोजन लेता है।

जिसने निद्रा का नाश किया है,... देखो! मुनि को निद्रा कैसी, कहते हैं। आहार जहाँ अल्प है, शान्ति जहाँ बहुत है। निद्रा का नाश किया है। एक अल्प निद्रा आती है, ऐसा कहते हैं। सच्चे मुनि हों उन्हें तो पौन सैकेण्ड की अन्दर निद्रा आवे। एक सैकेण्ड निद्रा आवे तो मुनिपना रहता नहीं। ऐसी दशा है। इस अपेक्षा से निद्रा का नाश किया, ऐसा कहा, भाई! यह दो घण्टे-चार घण्टे सोते हों, वे मुनि नहीं हैं। ऐई! गजब! समझ में आया? तीन काल में सन्त की व्याख्या यह है। तीनों काल के वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव के मार्ग में ऐसा मुनिपना है। भाषा देखो न, कैसी की है! स्वयं मुनि हैं।

जिसने निद्रा का नाश किया है,... पाठ है न, देखो न 'निहतनिद्रो' इसका अर्थ ही यह है। बहुत अल्प, रात्रि के अन्तिम भाग में। छहढाला में आता है न? 'पिछली रयनि'... छहढाला, दौलतराम (जी कृत)। पिछली रात्रि के चौथे पहर में जरा एक करवट बदले ऐसी की ऐसी पौन सैकेण्ड में निद्रा ले। फिर अप्रमत्तदशा हो जाए। छठा गुणस्थान हो, वहाँ तक थोड़ी निद्रा जरा आ जाती है। एकदम सातवें गुणस्थान में। फिर छठा, फिर सातवाँ – इस अपेक्षा से मुनि ने निद्रा का नाश किया है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह गृहस्थ तो रात्रि में आठ बजे सोवे और सवेरे छह बजे उठे। चाय-पानी का समय हो, तब सवेरे उठे। नौ बजे। जल्दी सोवे, जल्दी जागे वीर-ऐसे शब्द पहले आते थे। नहीं? ऐसा आता था हमारे उमराला में। यह हमारे यहाँ उमराला में ही था। उमराला में पाणीयारू था, उस पणीयारो पर एक कागज था, तब की बात है, यह तो ७० वर्ष पहले की (बात है)। हमारे दीपचन्दभाई थे, वे बहुत होशियार थे। वे बड़े भाई थे। वे सब बहुत... पाणीयारा पर एक ऐसा कागज था। तब की बात है। जल्दी उठे वह वीर। यह तो गृहस्थाश्रम की बात है। मुनि को जल्दी-देरी से सोने का है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो स्वयं मुनि गुणभद्राचार्य दिगम्बर सन्त, स्वयं की व्याख्या करते हुए ऐसा कहते हैं। मुनि को निद्रा का नाश हुआ। आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ है— अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी का नाश हो गया है। एक कषाय जरा... संज्वलन की अल्प कषाय है। महाव्रत का विकल्प आदि कषायभाव है। आहाहा! जिसने निद्रा का नाश किया है,... देखो! मुनि कैसी बात करते हैं! स्वयं करते हैं। यह अल्प निद्रा जरा होती है, इसका अर्थ गिनती नहीं, ऐसा कहते हैं। जगत के प्राणी निद्रा लेते हैं, वैसी निद्रा इन्हें (मुनि को) होती नहीं।

मुमुक्षु : नींद की गोलियाँ लें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो तुम्हारे सब व्यापार का धन्धा ठीक न हो, वह ले। नींद की गोली ले। बात सत्य है।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं, गृहस्थ भी आज तो सोते नहीं, गोली रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उपाधि के कारण उसे नींद नहीं आती। यह तो समाधि इतनी प्रगटी है कि जिन्हें निद्रा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यापारी है, वह तो गोली का बेचनेवाला ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न ? ऐसी गोली रखते होंगे ? आहाहा !

वह (मुनि) क्लेशजाल को समूल जला देता है । आहाहा ! कषाय के अंश को तो जलाकर राख कर डालता है । आहाहा ! उसे यहाँ मुनि कहा जाता है । यह मुनिपना है । वहाँ (श्वेताम्बर में) कहते हैं गृहस्थाश्रम में हो गया केवलज्ञान । कैसा ? कर्मापुत्र । श्वेताम्बर में आता है । गृहस्थाश्रम में केवलज्ञान हो गया ।

मुमुक्षु : भरत महाराज को हुआ, फिर इसे न हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भरत महाराज को कुछ हुआ नहीं । नग्न हुए पश्चात् मुनिपना आया है । नग्नदशा बिना अन्तर से मुनिपना प्रगट ही नहीं होता, और अकेला नग्नपना हो, उसे मुनिपना होता नहीं । अन्तरदशा के भान अनुभव बिना, वीतरागता बिना मुनिपना नहीं हो सकता । कर्मापुत्र केवली था, माँ-बाप के कारण गृहस्थाश्रम में रहा । लोग सब्जी लाये, छुरी नहीं मिलती थी । केवली ने कहा, एक छुरी कोठी के पीछे है । कहो, ये कोई बातें... ऐसे केवलज्ञानी ? श्वेताम्बर में यह बात है ।

मुमुक्षु : फिर परीक्षा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ने में उसकी परीक्षा ले । उसकी टीका की थी । बहुत वर्ष की बात है । हम भावनगर थे । (संवत्) १९७७ के बाद १९८३ । वह बेरिस्टर नहीं था ? कोई खुशाल । उसने टीका की थी । १९७३ के वर्ष में हम मुम्बई से भावनगर आये थे तब । कि ऐसे केवली सिद्ध किये हैं कोई गप्प मारी है या नहीं ? कुछ विचार नहीं करते ? यह कुँवरजीभाई ने मुझे कहा । कुँवरजी आनन्दजी उनसे लिखा परन्तु यह विचार तो करो । केवलज्ञानी गृहस्थाश्रम में रहे और वह छुरी बतावे, सब्जी को काटने के लिए चाहिए थी । क्या कहते हो तुम यह ?

मुनि किसे कहे, बापू ! वे तो वन में बसनेवाले, वन के बाघ । आहाहा ! जिन्हें वस्त्र का एक टुकड़ा नहीं होता । और समाधि... समाधि... समाधि... आनन्द में लवलीन । उन्हें कहते हैं कि क्लेशजाल का तो नाश कर देते हैं । आहाहा ! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति..

श्लोक-८६

और ६३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

(शालिनी)

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम् ।
तप्त्वा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी प्राप्नोतीद्भ्यां मुक्तिवाराङ्गनां सः ॥८६॥

(हरिगीतिका)

भक्त ने हस्ताग्र से भोजन दिया वह ग्रहण कर ।
पूर्ण ज्ञान प्रकाशमय निज आत्मा का ध्यान कर ॥
इस तरह सम्यक् तपों को तपे जो सत् तपस्वी ।
मुक्तिमय वारांगना दैदीप्यमान लहे सही ॥

[श्लोकार्थः—] भक्त के हस्ताग्र से (हाथ की उङ्गलियों से) दिया गया भोजन लेकर, पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके, इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर, वह सत् तपस्वी (सच्चा तपस्वी) दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना को (मुक्तिरूपी स्त्री को) प्राप्त करता है ।

श्लोक-८६ पर प्रवचन

लो! और ६३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— पद्मप्रभमलधारिदेव । ८६ कलश है न ? ८६

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम् ।
तप्त्वा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी प्राप्नोतीद्भ्यां मुक्तिवाराङ्गनां सः ॥८६॥

कहते हैं कि धर्मात्मा सन्त वीतराग के मार्ग में ऐसे सन्त होते हैं, उसकी पहले समझ, श्रद्धा तो करनी पड़ेगी या नहीं ? जिसे-तिसे साधु माने और जिसे-तिसे गुरु माने, (वह) मिथ्यात्व में पड़ा है, कहते हैं । आहाहा !

श्लोकार्थ : भक्त के हस्ताग्र से (हाथ की उङ्गलियों से) दिया गया भोजन लेकर,... देखो ! आत्मज्ञानी शान्ति समाधि में झूलते हैं और भिक्षा लेने जाते हैं वहाँ, भक्त के हस्ताग्र से... ऐसा लिया । जैसे-तैसे के घर में नहीं । गुणधारी श्रावक हो, भक्त हो वहाँ आहार लें, ऐसा कहते हैं । यह पहले आ गया है न ? आठ गुणसहित । आठ गुण आ गया । श्रावक के आठ गुणसहित । जैन सच्चे श्रावक हों और भक्ति करनेवाले । भक्ति । जबरदस्ती दे या ऐसा करे, ऐसा नहीं । **भक्त के हस्ताग्र से...** दो बात । एक तो धर्मात्मा का भक्त हो और हस्ताग्र से-हाथ से । दूसरे को हुकम करे, ऐसा नहीं । लो, महाराज पधारो हैं, आहार दो, ऐसा नहीं । वे वहाँ आते ही नहीं । वह तो पधारो... पधारो... पधारो... ऐसे मान से... यह तो मुनि परमेश्वर हैं । अन्तर आनन्द में कल्लोल करते हैं । आहाहा ! आहार का एक विकल्प आया, वह भी विकल्प का स्वामी और आहार लेने का स्वामी नहीं । उसके ज्ञाता-दृष्टा हैं । देखो ! यह वीतराग के मुनि । आहाहा ! यह साधुपना ।

भोजन लेकर दिया गया भोजन लेकर,...देखा न ? (हाथ की उङ्गलियों से)... वापस ऐसा । ऐसे हाथ से देते हैं न ? हाथ की अङ्गुलियों से देते हैं । ऐसे हाथ में देते हैं । **पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके,**... देखो ! बाहर बात ली है जरा आहार की । भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसका ध्यान करके, उसके आनन्द का ध्यान करके । आहाहा ! पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाला आत्मा—द्रव्य लिया । द्रव्य-द्रव्यवस्तु । ध्रुव नित्यानन्द प्रभु । **पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाले आत्मा...** आहाहा ! पर्याय में तो अपूर्ण ज्ञान है । पूर्ण त्रिकाल है, ऐसा पूर्ण स्वभाव भगवान का ध्यान-निजस्वरूप का ध्यान । यहाँ तो यह कहते हैं, देखो !

यान करके, इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर,... लो, यह सत् तप । यह सम्यक् तप । सच्चा मुनिपना । आहाहा ! आत्मा पूर्ण ज्ञानप्रकाश का पिण्ड है, उसमें एकाग्रता, ध्यान करना, वही सत् तप है, वही मुनिपना है, ऐसा कहते हैं । अन्दर शब्द है ? देखो ! **इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर,**... इस प्रकार अर्थात् ? ज्ञानप्रकाश ऐसा भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु का ध्यान करके । देखो ! देव-गुरु का नहीं, राग का नहीं, एक समय की पर्याय का ध्यान नहीं । समझ में आया ? परमेश्वर का मार्ग, वीतराग का मार्ग अनादि-अनन्त सत्यमार्ग ऐसा है । इस प्रकार से अपना भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति आदि, ऐसा तत्त्व भगवान का अन्तरध्यान, उसे

ध्येय करके पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा को ध्येय करके ध्यान करता है, वह सत् तपस्वी है, वह सच्चा तपस्वी है, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर,... यह सत् तप। दो, पाँच, दस, पच्चीस अपवास-वपवास करे, उसे आत्मा का भान नहीं। वह तो अज्ञान मूखाई से भरपूर तप है। बालतप और बालव्रत (है)। समझ में आया ? वह सत् तपस्वी... देखो भाषा। वह सच्चा तपस्वी है। सच्चा तपस्वी है। मात्र आहार छोड़ा, पानी छोड़ा और तपस्वी हो गया, ऐसा नहीं। वह तपस्वी नहीं। यह तो सच्चा तपस्वी उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। वे (बाकी) सब खोटे तपस्वी। आहाहा ! जो आत्मा के अन्तर पूर्ण स्वरूप के ध्यान में उसे ध्येय करके पड़ा है, वह सच्चा तपस्वी है। आहाहा ! तपस्वी अर्थात् सच्चा मुनि, ऐसा। तप अर्थात् मुनिपना गिना है न ? भगवान का तपकल्याणक नहीं ? तपकल्याणक कहो या मुनिपना कहो। यह सच्चा मुनिपना, सच्चा मुनिपना यह है, ऐसा कहते हैं।

ऐसे दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना को... आहाहा ! पूर्णानन्द प्रभु ऐसे आत्मा को ध्येय बनाकर ध्यान में लिया, विषय किया, अपने सम्यग्ज्ञान में ध्रुव को विषय बनाया और ध्यान किया। ऐसे ध्यानी मुनि दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना को (मुक्तिरूपी स्त्री को) प्राप्त करता है। लो। यह केवलज्ञानरूपी दैदीप्यमान शोभित मुक्ति, ऐसी वाराङ्गना अर्थात् स्त्री, मुक्तिरूपी स्त्री को प्राप्त करते हैं। आहाहा ! भाषा ही... कहो, ऐसे सच्चे मुनि को दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना... केवलज्ञान, अनन्त आनन्द ऐसी मुक्तिरूपी स्त्री, उसे ऐसे सच्चे ध्यानी, आत्मा का ध्यान करनेवाले ध्यानी मुक्ति प्राप्त करते हैं। कहो, समझ में आया ? यह पहले व्यवहार लिया परन्तु ध्यान तो इसका करते हैं। आहार लिए हस्ताग्र से परन्तु ध्यान तो यहाँ का यहाँ है। वहाँ नहीं कि आहार लेना है और अमुक है और... आहाहा ! यह ६३ गाथा हुई।

गाथा-६४

तथाहि ह

पोत्थङ्कमंडलाइं ग्रहणविसर्गेषु प्रयत्नपरिणामो ।
 आदावण-णिक्खेवण-समिदी होदि त्ति णिद्धिद्वा ॥६४॥
 पुस्तक-कमण्डलादिग्रहणविसर्गयोः प्रयत्नपरिणामः ।
 आदान-निक्षेपण-समितिर्भवतीति निर्दिष्टाः ॥६४॥

अत्रादाननिक्षेपणसमितिस्वरूपमुक्तम् । अपहृतसंयमिनां संयमज्ञानाद्युपकरणग्रहण-
 विसर्गसमयसमुद्भवसमितिप्रकारोक्तिरियम् । उपेक्षासंयमिनां न पुस्तककमण्डलुप्रभृतयः, अतस्ते
 परमजिनमुनयः एकान्ततो निष्पृहाः, अत एव बाह्योपकरणनिर्मुक्ताः । अभ्यन्तरोपकरणं निजपरम-
 तत्त्वप्रकाशदक्षं निरुपाधिस्वरूपसहजज्ञानमन्तरेण न किमप्युपादेयमस्ति । अपहृतसंयमधराणां
 परमागमार्थस्य पुनः पुनः प्रत्यभिज्ञानकारणं पुस्तकं ज्ञानोपकरणमिति यावत्, शौचोपकरणं च
 कायविशुद्धिहेतुः कमण्डलुः, संयमोपकरणहेतुः पिच्छः । एतेषां ग्रहणविसर्गयोः समयसमुद्भव-
 प्रयत्नपरिणामविशुद्धिरेव हि आदाननिक्षेपणसमितिरिति निर्दिष्टेति ।

पुस्तक कमण्डल आदि निक्षेपणग्रहण करते यती ।

होता प्रयत्न परिणाम वह, आदाननिक्षेपण समिति ॥ ६४ ॥

गाथार्थः :—[पुस्तककमण्डलादिग्रहणविसर्गयोः] पुस्तक, कमण्डल आदि
 लेने-रखने सम्बन्धी [प्रयत्नपरिणामः] प्रयत्नपरिणाम, वह [आदाननिक्षेपणसमितिः]
 आदान-निक्षेपणसमिति [भवति] है [इति निर्दिष्टा]—ऐसा कहा है ।

टीका :—यहाँ आदान निक्षेपणसमिति का स्वरूप कहा है ।

यह, अपहृतसंयमियों^१ को संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय

१. अपहृतसंयमी = अपहृतसंयमवाले मुनि । (अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम, हीन-
 न्यूनतावाला संयम), सरागचारित्र और शुभोपयोग - ये सब एकार्थ हैं ।

उत्पन्न होनेवाली समिति का प्रकार कहा है। उपेक्षासंयमियों^१ को पुस्तक, कमण्डल आदि नहीं होते; वे परमजिनमुनि एकान्त में (सर्वथा) निस्पृह होते हैं; इसीलिए वे बाह्य उपकरणरहित होते हैं। अभ्यन्तर उपकरणभूत, निज परमतत्त्व को प्रकाशित करने में चतुर ऐसा जो निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ उन्हें उपादेय नहीं है। अपहृतसंयमधरों को परमागम के अर्थ का पुनः पुनः प्रत्यभिज्ञान होने में कारणभूत ऐसी पुस्तक, वह ज्ञान का उपकरण है; शौच का उपकरण कायविशुद्धि के हेतुभूत कमण्डल है; संयम का उपकरण-हेतु पीछी है। इन उपकरणों को लेते-रखते समय उत्पन्न होनेवाली प्रयत्नपरिणामरूप विशुद्धि ही आदाननिक्षेपणसमिति है - ऐसा (शास्त्र में) कहा है।

गाथा-६४ पर प्रवचन

मुनि की आदाननिक्षेपणसमिति कहते हैं। मुनि ले-रखे क्या? व्यवहार से, हों! उसकी व्याख्या है।

पोत्थङ्कमंडलाइं गहणविसग्गेषु पयतपरिणामो ।

आदावण-णिक्खेवण-समिदी होदि त्ति णिद्धिट्ठो ॥६४॥

पुस्तक कमण्डल आदि निक्षेपणग्रहण करते यती।

होता प्रयत परिणाम वह, आदाननिक्षेपण समिति ॥ ६४ ॥

ऐसा निदिष्ठान कहा न! भगवान ने ऐसा कहा है। आगम में ऐसा कहा है।

टीका : यहाँ आदान निक्षेपणसमिति का स्वरूप कहा है। यह, अपहृतसंयमियों को संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय... व्यवहारसंयमी की बात है। जिसे विकल्प उठा है। आत्मा के अनुभवसहित अन्दर शान्ति तो है, परन्तु शुभराग विकल्प उठा है, उसे अपहृतसंयमी कहते हैं। अपवादी संयमी। नीचे है न, अपहृतसंयमवाले मुनि। (अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम, हीन-न्यूनतावाला संयम),

१. उपेक्षासंयमी = उपेक्षासंयमवाले मुनि। (उत्सर्ग, निश्चयनय, सर्व परित्याग, उपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग - ये सब एकार्थ हैं।)

सरागचारित्र और शुभोपयोग – ये सब एकार्थ हैं। देखो! अब यहाँ विशिष्टता क्या कहते हैं? कि मुनि को तीन कषाय का अभाव तो है और अनुभव सम्यग्दर्शन तो साथ में है ही। अब उन्हें शुभभाव का विकल्प आता है, उसे व्यवहारसंयमी कहा है। ऐसा निश्चय तो है। भाई! वह व्यवहार अर्थात् सम्यग्दर्शन और शान्ति नहीं है, और यह व्यवहार है, उसकी बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : छठवें वाले को अपहृतसंयमी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छठवें गुणस्थानवाला अपहृत सराग संयमी व्यवहारनय का संयमी, आस्रववाला संयमी कहने में आया है। आहाहा! वापस आत्मज्ञान नहीं, अनुभव नहीं, शान्ति नहीं, तीन कषाय का अभाव नहीं, वह व्यवहार, उस व्यवहार को व्यवहार कहते ही नहीं। वह तो अज्ञानी है। आहाहा! राग के विकल्प का कर्ता होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे व्यवहार कैसा? यहाँ तो अपहृतसंयमी को अर्थात् कि जो शुभोपयोग में आया है। मैं चीज़ को लेने-रखने के भाव में यत्न करता है, ऐसे शुभराग से, अन्तर में तीन कषाय की निरागी दशा है, ऐसे साधु को जो विकल्प आया है, उसे अपहृतसंयमी कहते हैं। आहाहा! देखो न! कैसा स्पष्टीकरण किया है!

संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय... देखो! संयम और ज्ञान है तो सही। अन्तर का संयम भी है और अन्तर सम्यग्ज्ञान भी है। उसके उपकरण लेते-रखते समय उत्पन्न होनेवाली समिति का प्रकार कहा है। लो! उसे पुस्तकादि लेने-रखने में। वह उपकरण है न? पुस्तक, कमण्डल आदि... यह उपकरण की बात है। जिसे अपना शुद्ध अनुभव सम्यग्दर्शन है और जिसे संयम और ज्ञान अन्तर परिणमित हुआ है, उसे जब छठवें गुणस्थान में शुभराग आता है। लेने-रखने की चीज़ को, पुस्तक लेना-रखना। वह क्रिया तो जड़ की है, परन्तु शुभभाव का विकल्प उठता है, उस शुभभाववाले जीव को सरागसंयमी, व्यवहारनय के संयमी, अपहृतसंयमी, अपवादीसंयमी, एकदेशपरित्याग (कहते हैं)। देखो! अशुभराग छूटा है, शुभराग छूटा नहीं है तो एकदेशपरित्याग है। आहाहा!

पंचम गुणस्थान में एकदेशपरित्याग और यह एकदेशपरित्याग, दोनों में अन्तर है, भाई! आहाहा! सम्यग्दृष्टि श्रावक आत्मा का अनुभवी है। उसमें एकदेश राग का त्याग है, तो वह एकदेशसंयमी कहलाता है। यह दूसरी चीज़ है। यहाँ तो सातवीं भूमिका का

(गुणस्थान का) अभाव है। सर्व राग के अभावरूप निर्विकल्प उपयोग का अभाव है और अशुभराग गया और शुभराग में आया, तो उसे एकदेशत्यागी कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ?

(एकदेशपरित्याग, अपहतसंयम, हीन-न्यूनतावाला संयम)... छोटे गुणस्थान में... बाह्य में नग्नदशा। समझ में आया ? अभ्यन्तर में दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु पूर्ण शुद्ध निर्विकल्प उपयोगरूप चारित्र नहीं तो उसे यहाँ न्यून-हीन संयम कहा है। आहाहा! सरागचारित्र... आहाहा! क्या करे ? यहाँ तो अन्तर आत्मा का अनुभव और अन्दर स्थिरता-शान्ति तो है, उसमें सप्तम गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प उपयोग नहीं और रागभाग है तो एकदेशत्याग कहा। यह बात है। पक्ष से बात करे तो नहीं जँचे, भाई! यह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। आहाहा!

जिसे सम्यग्दर्शन, आत्म-अनुभव नहीं है और राग का कर्ता होता है, उसे व्यवहार कहाँ से आया ? निश्चय का भान नहीं, वहाँ तो व्यवहार ही नहीं है, उसे तो सरागसंयमी भी नहीं कहते। आहाहा! वह तो मिथ्यादृष्टि असंयमी है। यहाँ तो आत्मा के आनन्द का अनुभव है और शान्ति, समाधि, तीन कषाय के अभावरूप परिणमित हुई है, परन्तु निर्विकल्प शुद्ध उपयोग में जमे नहीं तो शुभराग आया, उसे न्यून संयमी, सरागसंयमी, शुभ उपयोगवाला संयमी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? है तो वह हेय, परन्तु आये बिना नहीं रहता। पहले, छठवें गुणस्थान में आता है, ऐई! यह तो छोटे गुणस्थानवाले को ही व्यवहार कहा। वे कहते हैं न, व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, भाई! आता है न ? उसका अर्थ यह। छोटे गुणस्थानवाले को शुभ उपयोग आया है, वह व्यवहार है। पश्चात् अभाव करके सातवें में जाएगा। मिथ्यादृष्टि को पहले व्यवहार और पश्चात् समकित हो, यह बात ही कहाँ है ? कैसे संयमी मुनि... यह समिति का प्रकार कहा, उसे व्यवहारसमिति, लेने-छोड़ने का विकल्प ऐसा होता है, यह बात की। उपेक्षासंयमी अब कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-६७, श्लोक-८७ से ९०, गाथा-६४-६५, मंगलवार, आषाढ़ शुक्ल १३, दिनांक ०६-०७-१९७१

आदाननिक्षेपणसमिति । मुनि को वस्तु लेने-रखने की विधि की पद्धति । इसकी टीका ।

यह, अपहृतसंयमियों को... अर्थात् न्यून संयमवाले को, ऐसा । (अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग,...) सरागचारित्र कहो या शुभोपयोग में आया, ऐसा कहो । उपकरण लेते-रखते समय... परन्तु संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय... ऐसा । संयम और ज्ञान तो है, परन्तु न्यून है । सातवें गुणस्थान में जैसा चाहिए, वैसा छठवें में नहीं है । इससे उसे समिति का प्रकार कहा है । जिसे विकल्प है और अन्दर दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी है, उसे यह आदाननिक्षेपणसमिति कही गयी है । उपेक्षासंयमियों को... जिसे अन्दर में शुद्धोपयोग हुआ है, उत्सर्ग है, निश्चयनय सर्व परित्याग है । उपेक्षासंयमी (उपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग - ये सब एकार्थ हैं ।) पुस्तक, कमण्डल आदि नहीं होते;... वे तो आत्मा के ध्यान में होते हैं । सातवें गुणस्थान में अप्रमत्तदशा है । शुद्ध आनन्द के अनुभव में होते हैं । उन्हें यह पुस्तक, कमण्डल होते नहीं ।

वे परमजिनमुनि एकान्त में (सर्वथा) निस्पृह होते हैं; इसीलिए वे बाह्य उपकरणरहित होते हैं । अन्तर के ध्यान में होवे, उन्हें बाह्य उपकरण नहीं होते । अभ्यन्तर उपकरणभूत,... उन्हें होता है कितना ? ध्यान में मुनि छठवें गुणस्थान से आगे जाकर सातवें गुणस्थान में ध्यान में आते हैं, तब उन्हें अभ्यन्तर उपकरणभूत, निज परमतत्त्व को प्रकाशित करने में चतुर ऐसा जो निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ उन्हें उपादेय नहीं है । लो । निज परमतत्त्व आनन्दस्वरूप को प्रकाशित करने में चतुर ऐसा जो निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान,... वह उनका उपकरण है । अन्तर-ज्ञान जो स्वरूप को पकड़कर अनुभवता है, वह ज्ञान उनका उपकरण है, ऐसा कहते हैं । क्योंकि ज्ञान की पर्याय द्वारा पूरा आत्मा अनुभव में लिया; इसलिए उसे-ज्ञान को उपकरण कहने में आता है । अपेक्षा संयमी वीतरागी शुद्धोपयोगी है, उनको । अन्य कुछ उन्हें उपादेय नहीं है । लो ।

अपहृतसंयमधरों को... परन्तु जो छठवें गुणस्थान में जिसे शुभराग का विकल्प उत्पन्न हुआ है, वह व्यवहारनय में आया है, उसे परमागम के अर्थ का पुनः पुनः... परम-आगम सिद्धान्त सर्वज्ञ कथित । पुनः पुनः... प्रत्यभिज्ञान होने में कारणभूत ऐसी पुस्तक...

प्रत्यभिज्ञान अर्थात् था, उसे यही है - ऐसा निर्णय होने में विशेष पुस्तक निमित्त है, ऐसा कहते हैं। मुनि को व्यवहार में वह ज्ञान का उपकरण है।

शौच का उपकरण कायविशुद्धि के हेतुभूत कमण्डल है;... जंगल (दस्त) आदि साफ होने के लिए कायविशुद्धि के निमित्त पानी का कमण्डल होता है, बस। मुनि को पात्रा-बात्रा होते नहीं। भारी कठिन काम।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आदान... यहाँ आदाननिक्षेपण। बीच में वे शब्द डाले हैं न।... समिति है न! खबर है न! खोटी है।

यहाँ तो आदाननिक्षेपण, बस। किसका? कि ज्ञान के उपकरणरूपी पुस्तक का और कमण्डल का तथा संयम का उपकरण-हेतु, पीछी है। ऐसा मार्ग है। फिर कोई ऐसा कहते हैं, यह तो दिगम्बर के शास्त्रों में है। हमारे शास्त्रों में तो अनादि का यह है, ऐसा कहे।

मुमुक्षु : इन दो में से सच्चे कौन, यह निर्णय करना पड़े न। जब दोनों परस्पर विरुद्ध कहनेवाले हों तो सत्य के शोधक को निर्णय करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मार्ग ही अनादि का यह है। बीच में निकले, इसलिए फिर पूरा मार्ग ही बदल डाला। परन्तु अब यह बात तो जिसे मध्यस्थ के विचारना हो, सत्य को शोधना हो तो यह बात है। मुनि को तो एक पुस्तक होती है, कमण्डल होता है और पीछी, बस।

इन उपकरणों को लेते-रखते समय... लो! इस मुनिपने की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। किसे मुनि कहना? आहाहा! **उत्पन्न होनेवाली प्रयत्नपरिणामरूप विशुद्धि ही...** लो! यहाँ शुभभाव को विशुद्धि कहा। वही आदाननिक्षेपणसमिति है। समिति का नाम ही यह है-आदाननिक्षेपण। लेना-रखना, बस इतना। क्या? कि ये तीन। पुस्तक, कमण्डल, पिच्छी। **ऐसा (शास्त्र में) कहा है। है न? 'निर्दिष्टेति' है न पाठ में? भवति, ऐसा। 'निर्दिष्टेति' ऐसा भगवान ने सिद्धान्त में यह कहा है। इससे विरुद्ध, वह सिद्धान्त का कथन नहीं है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न, देखो न! 'होदि त्ति णिद्धि' - भगवान ने ऐसा कहा है और भगवान के सिद्धान्त में इतना है। उन्हें (मुनि को) तीन उपकरण के अतिरिक्त दूसरा होता नहीं।**

श्लोक-८७

अब, ६४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(मालिनी)

समितिषु समितीयं राजते सोत्तमानां,
परम-जिनमुनीनां संहतौ क्षान्तिमैत्री ।
त्वमपि कुरु मनःपङ्केरुहे भव्य नित्यं,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः ॥८७॥

(हरिगीत)

समितियों में समिति यह, उत्तम मुनि को शोभती ।
उन परम जिनमुनि सङ्ग में, है क्षमा एवं मैत्री ॥
हे भव्य! तुम भी मन कमल में, सदा यह धारण करो ।
परमश्रीमय कामिनी के, शीघ्र ही प्रिय कान्त हो ॥

[श्लोकार्थः —] उत्तम परमजिनमुनियों की यह समिति, समितियों में शोभती है। उसके संग में क्षान्ति और मैत्री होते हैं; (अर्थात्, इस समितियुक्त मुनि को धीरज-सहनशीलता-क्षमा और मैत्रीभाव होते हैं।) हे भव्य! तू भी मन-कमल में सदा वह समिति धारण कर, कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का प्रिय कान्त होगा; (अर्थात्, मुक्तिलक्ष्मी का वरण करेगा।)

श्लोक-८७ पर प्रवचन

अब, ६४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— अब, स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव (श्लोक कहते हैं) ।

समितिषु समितीयं राजते सोत्तमानां,
परम-जिनमुनीनां संहतौ क्षान्तिमैत्री ।
त्वमपि कुरु मनःपङ्केरुहे भव्य नित्यं,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः ॥८७॥

श्लोकार्थ : उत्तम परमजिनमुनियों की यह समिति,... उत्तम परमजिनमुनियों की यह समिति। आहाहा! यह समिति, समितियों में शोभती है। सब समितियों में यह समिति शोभती है - ऐसा कहते हैं। उसके संग में क्षान्ति और मैत्री होते हैं;... जिसे ऐसी समिति हो, उसे धीरज होती है, सहनशीलता होती है। धीरज अर्थात् सहनशीलता। (क्षमा और मैत्रीभाव होते हैं।) धीरज अर्थात् सहनशीलता और क्षमा, ऐसा। इसका नाम क्षमा। धीरज होती है। उतावल नहीं। शान्त है। अहो! वीतराग कहते हैं कि सन्त-मुनिपना ऐसा है। अन्तर में जिन्हें आत्मानुभव होता है; तदुपरान्त संयम और स्थिरता भी होती है और ऐसी समिति का भाव जिन्हें होता है, उसके साथ क्षमा और मैत्रीभाव होता है।

हे भव्य! तू भी मन-कमल में... हे भव्य! तू भी मन-कमल में सदा वह समिति धारण कर,... ऐसी समिति हो, उसे धारण कर। यहाँ तो मुनि की बात है न! दूसरे को समझाते हैं कि मुनिपना ऐसा होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से मुनिपना माने तो यह गुरु में - उसकी श्रद्धा में भूल है और देव में भी उसकी भूल हुई। देव ने ऐसा कहा न! शास्त्र में वैसा (अन्य प्रकार) कहा नहीं और शास्त्र में वैसा कहा - ऐसा माने, यह तीनों में उसकी भूल है। मन, वचन और काया। **मन-कमल में सदा वह समिति धारण कर, कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का प्रिय...** परमानन्दरूपीदशा, अतीन्द्रिय परम आनन्दरूपी मुक्तदशा, ऐसी तेरी परिणति, उसका प्रिय कान्त होगा;... वह परिणति तुझे एक समय भी छोड़ेगी नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह उत्सर्गमार्ग है, वह अपवादमार्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्प आया, वह अपवाद; विकल्परहित यह उत्सर्ग। विकल्प आया, वह व्यवहारनय; यह स्थिरता हुई, वह निश्चयनय। विकल्प आया, वह अपहत; यह उपेक्षा। विकल्प आया, वह शुभोपयोग; यह शुद्धोपयोग। कहो, समझ में आया? विकल्प आया, वह एकदेश परित्याग, यह सर्वदेश परित्याग। कहो, एकदेश परित्याग। और एकदेश परित्याग, तो श्रावक कहलाता है। महाव्रत, वे अणुव्रत हैं। महाव्रत, वह अणुव्रत है। विकल्प है न? मार्ग बहुत अलग। पूरा मार्ग बदल डाला। लोगों को खबर भी नहीं होती कि वीतराग का मार्ग क्या है? जिसमें जन्में, वह उनका धर्म। हो गया, जाओ। उस कुल में गिने। ६५ वीं गाथा।

गाथा-६५

पासुग-भूमि-पदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण ।
उच्चारदिच्चागो पइट्टासमिदी हवे तस्स ॥६५॥

प्रासुक-भूमिप्रदेशे गूढे रहिते परोपरोधेन ।
उच्चारदित्यागः प्रतिष्ठासमितिर्भवेत्तस्य ॥६५॥

मुनीनां कायमलादित्यागस्थानशुद्धिकथनमिदम् । शुद्धनिश्चयतो जीवस्य देहाभावात्त्र
चात्रग्रहणपरिणतिः । व्यवहारतो देहः विद्यते, तस्यैव हि देहे सति ह्याहारग्रहणं भवति, आहार-
ग्रहणान्मलमूत्रादयः सम्भवन्त्येव । अत एव संयमिनां मलमूत्रविसर्गस्थानं निर्जन्तुकं परेषामु-
परोधेन विरहितम् । तत्र स्थाने शरीरधर्मं कृत्वा पश्चात्तस्मात्स्थानादुत्तरेण कतिचित् पदानि गत्वा
ह्युदङ्मुखः स्थित्वा चोत्सृज्य कायकर्माणि सन्सारकारणं परिणामं मनश्च सन्सृतेर्निमित्तं,
स्वात्मानमव्यग्रो भूत्वा ध्यायति यः परमसंयमी मुहुर्मुहुः कलेवरस्याप्यशुचित्वं वा परिभावयति,
तस्य खलु प्रतिष्ठापनसमितिरिति । नान्येषां स्वैरवृत्तीनां यतिनामधारिणां काचित् समितिरिति ।

जो गूढ प्रासुक और पर-उपरोध बिन भू पर यती ।
मल त्याग करते हैं उन्हें, समिति प्रतिष्ठापन कही ॥ ६५ ॥

गाथार्थ :—[परोपरोधेन रहिते] जिसे पर के उपरोधरहित (दूसरे से रोका न
जाये, ऐसा), [गूढे] गूढ और [प्रासुकभूमिप्रदेशे] प्रासुक भूमिप्रदेश में [उच्चारदि-
त्यागः] मलादि का त्याग हो, [तस्य] उसे [प्रतिष्ठासमितिः] प्रतिष्ठापनसमिति
[भवेत्] होती है ।

टीका :—यह, मुनियों को कायमलादित्याग के स्थान की शुद्धि का कथन है ।

शुद्धनिश्चय से जीव को देह का अभाव होने से अन्नग्रहणरूप परिणति नहीं है ।
व्यवहार से (जीव को) देह है; इसलिए उसी को देह होने से आहारग्रहण है; आहारग्रहण
के कारण मलमूत्रादिक सम्भवित हैं ही । इसीलिए संयमियों को मलमूत्रादिक के

उत्सर्ग का (त्याग का) स्थान जन्तुरहित तथा पर के उपरोधरहित होता है। उस स्थान पर शरीरधर्म करके फिर जो परसंयमी उस स्थान से उत्तर दिशा में कुछ डग जाकर उत्तरमुख खड़े रहकर, कायकर्मों का (शरीर की क्रियाओं का), संसार के कारणभूत हों ऐसे परिणामों का तथा संसार के निमित्तभूत मन का उत्सर्ग करके, निज आत्मा को अव्यग्र (एकाग्र) होकर ध्याता है अथवा पुनः पुनः कलेवर की (शरीर की) भी अशुचिता सर्व ओर से भाता है, उसे वास्तव में प्रतिष्ठापनसमिति होती है। दूसरे स्वच्छन्दवृत्तिवाले यतिनामधारियों को कोई समिति नहीं होती।

गाथा-६५ पर प्रवचन

प्रतिष्ठापन। पाँचवीं है न ?

पासुग-भूमि-पदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।

उच्चारदिच्चागो पइट्टासमिदी हवे तस्स ॥६५॥

पइट्टा प्रतिष्ठा। छोड़ना।

जो गूढ पासुक और पर-उपरोध बिन भू पर यती।

मल त्याग करते हैं उन्हें, समिति प्रतिष्ठापन कही ॥ ६५ ॥

टीका : यह, मुनियों को कायमलादित्याग के स्थान की शुद्धि का कथन है। कायमलादि, दिशा / दस्त जाना आदि। शुद्धनिश्चय से जीव को देह का अभाव होने से... मूल तो शुद्धनिश्चय से तो देह, आत्मा को है नहीं। इसलिए अन्नग्रहणरूप परिणति नहीं है। इसलिए अन्नग्रहण करने का विकल्प भी उसे नहीं है। वह आत्मा में है ही नहीं। व्यवहार से (जीव को) देह है;... निमित्तरूप से। संयोगी चीज़ है। इसलिए उसी को देह होने से आहारग्रहण है;... विकल्प है न? उतना। आहारग्रहण तो आहार के कारण से है, परन्तु वह विकल्प है न! आहारग्रहण करने का विकल्प है। आहारग्रहण के कारण मलमूत्रादिक सम्भवित हैं ही। आहार किया, इसलिए फिर मलमूत्रादि होते हैं। इसीलिए संयमियों को मलमूत्रादिक के उत्सर्ग का (त्याग का) स्थान जन्तुरहित... जहाँ एकेन्द्रियादि जीव न हों तथा पर के उपरोधरहित होता है। वहाँ किसी की आज्ञा

विरुद्ध न हो कि इतने क्षेत्र में तुम्हें कहीं विसर्जित नहीं करना। ऐसी आज्ञा उपरोधरहित हो। किसी का विरोध नहीं हो।

उस स्थान पर शरीरधर्म करके... लो, मल या मूत्र वह शरीर धर्म है-शरीर का स्वभाव है। फिर जो परसंयमी उस स्थान से उत्तर दिशा में कुछ डग जाकर उत्तरमुख खड़े रहकर, कायकर्मों का (शरीर की क्रियाओं का), संसार के कारणभूत हों ऐसे परिणामों का... लो, यह संसार के कारणभूत परिणाम थे। यह ऐसे करना... ऐसे करना... यह विकल्प था न वह ? संसार के निमित्तभूत मन का उत्सर्ग करके,... उस मन को भी जरा ध्यान में होकर छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कायोत्सर्ग अर्थात् काया और मन को छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, उसे यहाँ कायोत्सर्ग कहा जाता है। मन का संग छोड़े। आहाहा!

निज आत्मा को अव्यग्र (एकाग्र) होकर ध्याता है... मल और मूत्र (विसर्जित) करने के पश्चात् अपने ध्यान में आत्मा को लेकर अव्यग्ररूप से एकाग्र होकर, आनन्दस्वरूप आत्मा का ध्यान करे। उसे ध्येय में लेकर स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। देखो! उस समिति के पश्चात् यह। व्यवहारसमिति के विकल्प के बाद यह कर्तव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूरी बात ही बदल डाली। सब बदल गयी एक-एक बात। परम्परा से वीतराग का मार्ग था, वह सब बदल डाला। नये कल्पित शास्त्र ही बनाये न! कल्पित। ईरियावही करना, वह तो वापस विकल्प है। भाषा है न वह ? वह भाषा का विकल्प है। यह तो कहते हैं, मन का संग छोड़कर अन्दर ध्यान में जाना, ऐसा कहते हैं। इतना भी विकल्प शरीर है, तो अन्न ग्रहण है, तो मल-मूत्र है, वह भी स्वरूप में तो है नहीं; इसलिए यह विकल्प आया, वह संसार का कारण है, बन्धन का कारण है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! मन का संग करके परिणाम उत्पन्न हुए, वह भी बन्ध का कारण है। भारी सूक्ष्म (बात है)।

निज आत्मा को अव्यग्र (एकाग्र) होकर ध्याता है... भगवान को ध्यावे और अरिहन्त को ध्यावे, ऐसा नहीं कहा। अरिहन्त का ध्यान करे, अरिहन्त का ध्यान करे, वे तो पर हैं। पर का ध्यान करे, वहाँ तो राग है। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन है। **अथवा पुनः पुनः कलेवर की (शरीर की) भी अशुचिता... अहो! यह शरीर! जिसमें माँस, हड्डियाँ,**

चमड़ी, विष्टा, पेशाब (भरा हुआ है) । आहाहा ! आत्मा का ऐसे ध्यान करे और या यह विकल्प / विचार करे । अशुचिता सर्व ओर से भाता है, ... शरीर का, शरीर के प्रत्येक अवयवों की अशुचिपने की भावना करे । उसे वास्तव में प्रतिष्ठापनसमिति होती है । ऐसे सन्त को यह प्रतिष्ठापन-छोड़ना, बोसराना होता है । अस्ति-नास्ति करते हैं ।

दूसरे स्वच्छन्दवृत्तिवाले यतिनामधारियों को कोई समिति नहीं होती । आहाहा ! स्वच्छन्दवृत्ति-वीतरागमार्ग को छोड़कर अपनी कल्पना से मार्ग में पड़े होते हैं, ऐसे स्वच्छन्दवृत्तिवाले यतिनामधारियों को... यति अर्थात् साधु । कोई समिति... एक भी नहीं होती । आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं यह कहते हैं । लो ! पड़ट्टासमिदी हवे तस्स-है न ? उसमें से निकाला कि दूसरों को नहीं होती । पाठ है न पड़ट्टासमिदी हवे तस्स इन्हें होती है ; स्वच्छन्दियों को नहीं होती, ऐसा इसमें से निकाला । अस्ति-नास्ति । आहाहा ! देखो ! ऐसा मुनिपना होता है । गृहस्थाश्रम में वस्त्र पहने हों, गृहस्थाश्रम में हो और मुनिपना आवे, ऐसा तीन काल में नहीं होता, ऐसा कहते हैं ।

मुमुक्षु : आदान अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लेना, कहा न । निक्षेप अर्थात् छोड़ना । पुस्तक लेना और रखना । लेना और रखना ।

मुमुक्षु : आदान-प्रदान के बाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्न कहा न, अभी बात हो गयी । कहाँ ध्यान था । भण्डमति इसमें नहीं । आदाननिक्षेपण एक ही नाम है ।... अर्थात् वासण होता है । तब कहाँ थे ?... यह श्वेताम्बर की शैली की भाषा है । सनातनमार्ग में यह वस्तु थी ही नहीं । आहाहा ! आदान निक्षेपणा समिति बस । उसमें वापस पुस्तक का नाम नहीं दिया । यह तो बीच में आती है । अन्दर उसको पात्र होवे ही, वस्त्र होवे ही, वह तो मुनि ही नहीं है । वस्त्र-पात्र रखे और मुनि माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है । आहाहा ! भारी कठिन काम ।

मुमुक्षु : अपवादमार्ग होता ही है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपवाद इस विकल्प का होता है ।

मुमुक्षु : उत्सर्ग का तो इस काल में अभाव ही है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्सर्ग बिना अपवाद होता ही नहीं। है न, तर्क है न? आहाहा! इसके लिए तो यह कथन है कि जिसे अन्तर निश्चय संयम तो प्रगट हुआ है। निश्चयदर्शन भी है परन्तु जो चारित्र की पूर्णता चाहिए, वह नहीं है; इसलिए उसे विकल्प उठता है, उसे अपवादी संयम कहा जाता है। अपवाद है। चाहे जैसा निमित्त हो, कहा था न? चाहे जैसा क्या न हो? मुनि को तो इतना ही होता है, इसके अतिरिक्त... चाहे जैसा निमित्त नहीं होता। खबर है न? ऐसा कहते हैं। अपवाद क्या कहा था न यहाँ? अपवादी मुनि कहे हैं। खबर है न? लींबड़ीवाले केशवलाल ने कहा था। परन्तु क्या करे? रहना उसमें तो बचाव किये बिना चलता नहीं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! सत्य तो यह है। वस्तु का स्वरूप यह है। वाद-विवाद करनेयोग्य नहीं है। किसके साथ वाद-विवाद करे?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी वह विकल्प है, उतना अपवाद है। वस्तु तो जो अनुभव और स्थिरता संयम है, वही है। ऐसे को ऐसा अपवादी होता है। इसके अतिरिक्त होता नहीं।



श्लोक-८८

अब, ६५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं—

(मालिनी)

समित्तिरिह यतीनां मुक्तिसाम्राज्यमूलं,
जिनमतकुशलानां स्वात्मचिन्तापराणाम् ।
मधुसख-निशितास्त्र-व्रातसम्भिन्नचेतः,
सहितमुनिगणानां नैव सा गोचरा स्यात् ॥८८॥

(हरिगीतिका)

जिनमार्ग में जो कुशल एवं आत्म चिन्तन लीन हैं।
ऐसे यती को यह समिति साम्राज्य-शिव का मूल है ॥

जिनका हृदय घायल हुआ है काम अस्त्र समूह से।
उन मुनिगणों को तो समिति यह कभी भी दिखती नहीं ॥

[श्लोकार्थः —] जिनमत में कुशल और स्वात्मचिन्तन में परायण, ऐसे यतियों को यह समिति मुक्तिसाम्राज्य का मूल है। कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र समूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं।

श्लोक-८८ पर प्रवचन

अब, ६५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं —

समितिरिह यतीनां मुक्तिसाम्राज्यमूलं,
जिनमतकुशलानां स्वात्मचिन्तापराणाम् ।
मधुसख-निशितास्त्र-व्रातसम्भिन्नचेतः,
सहितमुनिगणानां नैव सा गोचरा स्यात् ॥८८॥

श्लोकार्थः : जिनमत में कुशल... है मुनि। देखा ? वीतराग का मार्ग ऐसा है सन्त का, ऐसे जैनमत में सन्त कुशल हैं। वह यह जैनमत है, यह वीतराग मत है। और स्वात्मचिन्तन में परायण,... वापस। अकेले ज्ञान कुशल हैं इतना नहीं—यहाँ ऐसा कहते हैं। वीतराग परमात्मा ने गुरुपना, देवपना, धर्मपना जो कहा, उसमें वे कुशल हैं, विचक्षण हैं, समझदार हैं। और स्वात्मचिन्तन में परायण,... आत्मध्यान अन्तर आनन्दस्वरूप परायण तत्पर ही हैं। आत्मा के आनन्द के ध्यान में तत्पर हैं। अकेला कुशलपना नहीं, ऐसा। तदुपरान्त स्वरूप की स्थिरता के ध्यान में परायण हैं।

ऐसे यतियों को... यति अर्थात् स्वरूप का यत्न करनेवाले को, रागरहित आत्मा के स्वभाव का यत्न करनेवाले को। यह समिति मुक्तिसाम्राज्य का मूल है। मुक्तिरूपी साम्राज्य का यह मूल है। लो, यह साम्राज्य। कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र समूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं। आहाहा ! कहते हैं कि जिसे वासना, कामदेव की वृत्ति उठती है, ऐसे अस्त्रसमूह से भिदे हुए, (अर्थात्) जिसका हृदय

विषय-वासना के भाव से भिद गया है। जहाँ-तहाँ अनुकूलता, स्त्री आदि के शरीर को देखकर और उसे प्रेम उत्पन्न होता है, वह कामबाण से घाते गये हैं। आहाहा!

कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र समूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं। उन्हें समिति नहीं होती और समिति का ज्ञान भी उन्हें नहीं होता। ऐसी समिति का ऐसा ज्ञान भी नहीं और वह समिति भी नहीं। आहाहा! गजब भाई! तीक्ष्ण अस्त्र समूह... वे ही वृत्तियाँ बारम्बार उठती हों। स्त्री के परिचय में रहे, संग में रहे, ऐसी वृत्तियाँ उठे, कहते हैं कि उनसे उसका हृदय भिंद गया है। उसे इस समिति का, निश्चय का आचरण नहीं होता। तो व्यवहार भी उसे नहीं होता।

ब्रह्मानन्द भगवान् आत्मा के स्वरूप में जिनकी रमणता है, ऐसे सन्तों को ऐसी समिति होती है। आहाहा! पूरी दुनिया से उदास हो गया है। विकल्प के शुभभाव से भी उदास है। उसे ऐसी वासना उत्पन्न नहीं होती। जिसे यह वासना-आत्मा के आनन्द से उल्टी वृत्तियाँ-उदभवित होती है, ऐसे घायल हृदयवाले को समिति नहीं होती।



श्लोक-८९

(हरिणी)

समितिसमितिं बुद्ध्वा मुक्त्यङ्गनाभिमतामिमां,
भवभवभयध्वान्तप्रध्वन्सपूर्णशशिप्रभाम् ।
मुनिप तव सद्दीक्षा-कान्तासखी-मधुना मुदा,
जिनमततपःसिद्धं यायाः फलं किमपि ध्रुवम् ॥८९॥

(वीरछन्द)

मुक्ति कामिनी को जो प्रिय है सर्व समिति में समिति यही।
भवभय तम के नाश हेतु जो प्रभा समान कलाधर की ॥
हे मुनि! जान प्रमोदभाव से, सखि-सत्-दीक्षा-कामिनी की।
प्राप्ति करे जिनकथित तपस्या-साध्य किसी शाश्वत फल की ॥

[श्लोकार्थः —] हे मुनि! समितियों में की इस समिति को — कि जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है, जो भव-भव के भयरूपी अन्धकार को नष्ट करने की लिये पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है तथा तेरी सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की) सखी है; उसे अब प्रमोद से जानकर, जिनमतकथित तप से सिद्ध होनेवाले ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा ।

श्लोक-८९ पर प्रवचन

८९ वाँ कलश ।

समितिसमितिं बुद्ध्वा मुक्त्यङ्गनाभिमतामिमां,
 भवभवभयध्वान्तप्रध्वन्सपूर्णशशिप्रभाम् ।
 मुनिप तव सद्दीक्षा-कान्तासखी-मधुना मुदा,
 जिनमततपःसिद्धं यायाः फलं किमपि ध्रुवम् ॥८९॥

श्लोकार्थः : हे मुनि! समितियों में की इस समिति को कि जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है,... लो, ठीक । अन्तर का शुद्ध निर्मल परिणमन समिति, वह मुक्त अर्थात् आनन्दरूप की पूर्ण दशा, उसे प्रिय है अर्थात् उस दशा से उसे मुक्ति होगी । आहाहा ! हे मुनि! समितियों में की इस समिति को कि जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है, जो भव-भव के भयरूपी अन्धकार को नष्ट करने की लिये पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है... अहो ! सम-इति । आत्मा में एकाग्र होकर आनन्द की परिणति होना । कल दो प्रकार आये थे न ? कि आत्मा में एकाग्र होना या धर्मस्वभाव में एकाग्र होना, सब एक ही है । भाषा दो आयी । वही वास्तविक समिति है ।

भव-भव के भय... अहो ! चौरासी लाख का । भव-भव अर्थात् चौरासी लाख का भयरूपी अन्धकार को नष्ट करने की लिये... आनन्दस्वरूप भगवान की अन्तर में एकाग्रता, लगन, अन्दर एकाग्रता होना, वह पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है... आहाहा ! तेरी सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की) सखी है;... तेरी दीक्षा जो अकषायपरिणति, वीतरागभाव की दशा, वह दीक्षा है । उसकी यह कान्ता सखी है । दीक्षारूपी कान्ता, उसकी यह सखी है । समिति उसकी सखी है । यह तो निरालम्बी मार्ग

है। जहाँ विकल्प का भी आश्रय नहीं। आहाहा! मार्ग की श्रद्धा खबर नहीं होती। आचरण तो बाद में। आहाहा!

तेरी सत्-दीक्षा... देखो! सत्-दीक्षा। वस्त्र छोड़ दिये और नग्न हुए, वह नहीं। सत्-दीक्षा। आत्मा के आनन्दस्वरूप की परिणति जिसने प्रगट की है, ऐसी सच्ची दीक्षा। यह तो वस्त्र छोड़े और हो गयी दीक्षा। यह तो सत्स्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द के स्वरूप से सत् है, उसकी वीतराग परिणति प्रगट होना, उसे यहाँ सत्-दीक्षा कहने में आता है। उस सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की)... मुनि को तो वीतराग परिणति प्रिय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहारनय के विकल्प आदि अट्टाईस मूलगुण उन्हें प्रिय नहीं हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। (वे तो) हेयबुद्धि से आते हैं। आहाहा!

यहाँ तो दीक्षारूपी प्रिय स्त्री, सच्ची दीक्षा, ऐसा। जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की परिणति में जिसे निर्मलता प्रगट हुई है। वीतरागभावरूपी दशा प्रगट हुई है, उसे यहाँ दीक्षा कहा जाता है। उसे सच्ची दीक्षा कहते हैं। बाकी सब मिथ्या दीक्षा है। अरे रे! गजब! उसकी सखी है। ऐसी वीतरागदशारूपी आत्मा की परिणति—सच्ची दीक्षा, वह समिति इसकी सखी है, सहेली है, साथ रहनेवाली है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे अब प्रमोद से जानकर,... जानकर, प्रमोद से जानकर। उकताहट न लावे। अहो!

मुमुक्षु : पर्याय को, और प्रमोद से जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : पर्याय के सन्मुख तो देखना नहीं और फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखना नहीं, परन्तु आता है या नहीं? ऐई! ऐई! क्या कहते हैं यह? अन्दर सब बातें चलती हो न। पर्याय वह उत्पन्न करने की अपेक्षा से उपादेय है। वीतरागभाव। आदरणीय की अपेक्षा से द्रव्य उपादेय है। ऐसी बात है। त्रिकाली भगवान आत्मा तो खास उपादेय... उपादेय... उपादेय... है। वह श्रद्धा में यह, ज्ञान में वह और चारित्र में भी वही है।

मुमुक्षु : परिणमे तब या पहले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु परिणमन बिना कहाँ से उपादेय आया ? उसका आश्रय किया, इसलिए उपादेय हुआ, तब उसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का परिणमन हुआ ।

मुमुक्षु : परन्तु परिणमन की बात किसलिए करते हो ? वह तो पर्याय है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय आती नहीं ? जानने योग्य नहीं ? पर्याय होती नहीं ? और कार्य तो सब पर्याय में होता है । कार्य द्रव्य-गुण में होता है ? निर्मल वीतरागी पर्याय की यहाँ बात है । द्रव्य के ज्ञान के साथ पर्याय ऐसी होती है, उसका ज्ञान हो, उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं ।

मुमुक्षु : प्रमाणज्ञान तो हेय है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय है, परन्तु है उसे हेय है या नहीं है, उसे हेय ? प्रमाण में इसका-पर्याय का आश्रय है, वह हेय है । वस्तु हेय है ? वस्तु तो त्रिकाल है । प्रमाणज्ञान में प्रमाण नहीं आता ? जाननेयोग्य नहीं ? व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान का अर्थ क्या हुआ ? शक्ति के वर्णन में तो ऐसा भी आया है । भगवान आत्मा द्रव्य से शुद्ध, गुण से शुद्ध, उसका भान होने पर पर्याय से शुद्ध होता है, तब उसे प्रमाणज्ञान कहने में आता है । अशुद्धता की बात नहीं है ।

मुमुक्षु : सब शक्तियों में ऐसा है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब शक्तियों का वर्णन है । शक्ति में सैंतालीस शक्ति त्रिकाली गुण है और गुण का धारक आत्मा का जहाँ आश्रय किया, उसमें शुद्धता ही परिणमती है । उसका - व्यवहारनय का विषय उसकी पर्याय है । शुद्धदशा, वह व्यवहारनय का विषय है । सद्भूतव्यवहारनय (का विषय है) । रागादि की बात यहाँ नहीं है । सत्शक्ति है न ? ज्ञानानन्द आदि अनन्त शक्तियाँ हैं, उनका धारक एक द्रव्य है, ऐसे द्रव्य का आश्रय लिया, अनन्त गुण की शक्ति सत् है, वह शुद्ध परिणमती है ।

‘सर्व गुणांश, वह समकित ।’ श्रीमद् ने ऐसा संक्षिप्त वाक्य कहा । ‘सर्व गुणांश, वह समकित ।’ जितने अनन्त गुण हैं, उनमें द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई, वे जितने गुण हैं, वे सब निर्मलरूप से-आंशिक शुद्धरूप से हुए । वह सर्व गुणांश, वह समकित । राग, वह समकित और अमुक, वह समकित-ऐसा वहाँ नहीं कहा । समझ में आया ? देव-शास्त्र-गुरु, वह

समकित-ऐसा वहाँ नहीं कहा। ऐई! है न अपने यहाँ? 'सर्व गुणांश, वह समकित।' बाहर दरवाजे पर (लिखा है)। एक ओर समकित है तथा एक ओर चारित्र। बाहर दोनों दरवाजों पर दोनों हैं। स्वरूप में रमना, वह चारित्र। पाँच महाव्रत का विकल्प-विकल्प वह व्यवहारचारित्र है। गजब मार्ग भाई! मार्ग ऐसा है, वह जिसे रुचता नहीं न, वह ऐसा कहता है कि यह नहीं... नहीं... अपने को...

जिनमतकथित तप से सिद्ध होनेवाले ऐसे... वीतराग अभिप्राय से त्रिलोकनाथ तीर्थकर ने परमेश्वर देवाधिदेव जिसे आत्मा कहा और उसकी समिति निर्मल कही, ऐसे जिनमतकथित—वीतराग भगवान ने कहे हुए तप अर्थात् मुनिपना। ऐसा मुनिपना। स्वरूप की रमणता के आनन्द के लहर में जो स्थित होता है, ऐसा जो तप अर्थात् मुनि, ऐसा मुनिपना। उससे सिद्ध होनेवाले ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा। भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने आत्मा वीतराग कहा, उसके सब गुण भी वीतरागी कहे और उनका आश्रय लेकर प्रगट होनेवाली दशाएँ भी वीतरागी दशा है। तीनों वीतरागरूप हुए हैं। ऐसा जो जिनमत का कथन अथवा वाच्य जो है, ऐसे मुनिपने की दशा... आहाहा! एक सेकेण्ड भी मुनि की दशा... भवजल तारणहार। अन्दर में जहाज शीघ्रता से चला। मुक्ति के प्रयाण में चारित्र का जहाज शीघ्रता से चला। आहाहा! एकदम पूर्ण परमात्मा के सुख को प्राप्त करेगा, ऐसा कहते हैं। देखो न! ऐसे मुनिपने से सिद्ध होनेवाले, साबित होनेवाले फलरूप से आनेवाले ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा। देखो! पर्याय को ध्रुव कहा। ऐसी पर्याय मिलेगी कि वह पर्याय बाद में छूटेगी नहीं - ऐसा कहते हैं। चार गति तो छूट जाती है। देवगति कहे, अमर कहे। अमर कहे, वह भी मर जाते हैं। तैंतीस सागर में, इकतीस सागर में। यह तो लम्बा काल रहते हैं, इसलिए उन्हें अमर कहा जाता है। वह तो व्यवहार से अमर है। बहुत लम्बा आयुष्य है... अमर तो भगवान आत्मा की मुक्त गति, वह अमर है। उसे यहाँ ध्रुव कहा है। कहो, ध्रुव, अचल, अनुपम आया न? (समयसार) पहली गाथा। वह शब्द प्रयोग किया है। सन्तों की मर्यादा है न? उसी और उसी में से लेकर बातें करते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप की एकाग्रता करने से, स्वरूप की रमणतारूप मुनिपना प्रगट होने पर, उससे निश्चित और अनुपम, जो पर्याय वापिस नहीं हटती, ऐसी

दशा / ध्रुवपर्याय को प्राप्त करेगा। सिद्ध की पर्याय कहो या ध्रुवपर्याय कहो, एक ही बात है। ध्रुव का अर्थ (यह कि) वह पर्याय वापिस फिरकर संसार आवे, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

जिनमतकथित तप से... वापिस ऐसा। वीतराग भगवान ने-परमेश्वर ने कहा हुआ। अज्ञानी कहें आत्मा का और मोक्ष का मार्ग, वह बात अज्ञानी में सच्ची होती नहीं। सब कल्पित बातें होती हैं। जिनमतकथित... 'जिनमततपःसिद्धं यायाः फलं किमपि ध्रुवम्' 'यायाः' अर्थात् प्राप्त करेगा न ? 'यायाः' प्राप्त करेगा। अहो ! अनाकुल आनन्द की मूर्ति, प्रभु ! ऐसे आत्मा में एकाग्र होकर, जो वीतरागदशा, तेरी सत् दीक्षा, उसकी यह समिति एकाग्रता अन्दर में, यह उसकी सखी है और ऐसे अभिप्रायसहित स्थिरता। त्रिकाली द्रव्य में द्रव्यदृष्टिसहित स्वरूप में स्थिरता, वीतरागी परिणति से तो तुझे ध्रुव फल मिलेगा। बदलना पड़े, ऐसी गति नहीं मिलेगी, ऐसा कहते हैं। वहीं का वहीं स्थिर रहेगा। वह सिद्ध की गति सादि-अनन्त पर्याय में ही ऐसा का ऐसा रह जाएगा। आहाहा !

देखो न... सवरे एक खरगोश था न ? खरगोश का छोटा बच्चा था। इस चपेट में आ गया होगा ? क्या कहलाता है ? इतना छोटा था बेचारा। भगवान अन्दर से निकल गया। जीवित था, तब तक आऊँ... आऊँ... आऊँ... कहाँ धूल में है तू ? यह तो मिट्टी है। ऐसे पड़ा था। ट्रक में बहुत मर जाते हैं। सियाल, चूहे, सर्प, मेंढक। बेचारे मेंढक का चूरा हो जाता है, पक्षी... आहाहा ! स्थिति पूरी होवे, तब प्रभु अन्दर से चल निकलता है। शरीर यहाँ पड़ा रहता है। था वहाँ तक यही मैं हूँ, ऐसा मानता था। कहते हैं कि वीतरागभाव से शरीर छूटे, उसे ध्रुवफल मुक्ति प्राप्त करे, ऐसा कहते हैं। यह तो स्वयं की मान्यता वहाँ थी और शरीर तो चला गया। शरीर छोड़ा नहीं, छूट गया है। आहाहा !

ऐसे फल तो तू प्राप्त करेगा।

श्लोक-९०

(द्रुतविलंबित)

समितिसंहतितः फल-मुत्तमं सपदि याति मुनिः परमार्थतः ।
न च मनोवचसामपि गोचरं किमपि केवलसौख्यसुधामयम् ॥९०॥

(वीरछन्द)

समिति संगति द्वारा मुनिगण मन अरु वचन अगोचर जो ।
ऐसा कोई केवलसुख अमृतमय उत्तम फल पाते ॥

[श्लोकार्थः—] समिति की संगति द्वारा वास्तव में मुनि, मन-वाणी को भी अगोचर (मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य) ऐसा कोई केवलसुखामृतमय उत्तम फल शीघ्र प्राप्त करता है ।

श्लोक-९० पर प्रवचन

९०वाँ कलश ।

समितिसंहतितः फल-मुत्तमं सपदि याति मुनिः परमार्थतः ।
न च मनोवचसामपि गोचरं किमपि केवलसौख्यसुधामयम् ॥९०॥

आहाहा! क्या कहते हैं? श्लोकार्थ : समिति की संगति द्वारा... भाषा देखो! जिसने आत्मा में वीतरागता की पर्याय के साथ संगति की है। आहाहा! जिसने राग का संग छोड़ दिया है। समिति की संगति द्वारा वास्तव में मुनि,... ऐसे सन्त... आहाहा! केवली का तो विरह पड़ा, परन्तु ऐसे सन्त-मुनियों का विरह पड़ा। आहाहा! कहते हैं कि समिति की संगति द्वारा.... राग का संग नहीं, निमित्त का संग नहीं - ऐसा कहते हैं। शुद्ध भगवान पवित्र आनन्द के संग द्वारा, उसकी संगति।

मुमुक्षु : व्यवहार में से निश्चय निकालते हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; निकालते हैं, तब उनको रुचता नहीं। व्यवहार कहने का हेतु क्या है? निश्चय है। उसे (व्यवहार को) छोड़कर स्थिर होने के लिए व्यवहार का हेतु है।

...मुनि तो मुक्त ही हैं परन्तु विकल्प है, उतनी अस्थिरता है। उसे छोड़कर स्थिरता में जा। इसके लिए व्यवहार बतलाते हैं। यह व्यवहार आता है, उसे बतावे तो सही न! ज्ञान तो करावे न! जाना हुआ प्रयोजनवान है।

समिति की संगति द्वारा... वे इसमें से व्यवहारसमिति ले लेते हैं। ऐई! यहाँ तो समिति की संगति अन्दर वीतराग परिणति का परिचय, उसकी संगति। आहाहा! इस बात को भी सुनते हुए इसे प्रमोद आवे, ऐसी यह तो चीज़ है। आहाहा! **समिति की संगति द्वारा...** पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी व्यवहार के स्थान में निश्चय वस्तु आदरणीय तो वही है। व्यवहार आता है, वह जाननेयोग्य है। ऐसा होता है। जब व्यवहार विकल्प होता है, तब होता है, बस इतना।

वास्तव में मुनि, मन-वाणी को भी अगोचर... आहाहा! मन के विकल्प को और वाणी से अगम्य, ऐसी चीज़। (**मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य**)... ऐसे दो अर्थ किये। मन से तो अचिन्त्य हैं। मन से ज्ञात हो, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! वाणी से अकथ्य है। क्या कहे इसे? पुण्य-पाप के रागरहित वीतरागपरिणति। उस वीतरागपरिणति को क्या कहना? कुछ दृष्टान्त दो, कहते हैं, लो! परन्तु इसमें दृष्टान्त क्या? वस्तु वीतराग... राग से छूटकर उसमें एकाग्र होना, उसका नाम वैराग्य परिणति है। उसका नाम मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य। **ऐसा कोई...** ऐसा कोई, आहाहा! ऐसा कि अलौकिक। **केवलसुखामृतमय...** आहाहा! ऐसी रमणता द्वारा भगवान तुझे केवलसुखामृत अकेला सुख और अमृत का सागर, ऐसे **उत्तम फल...** तू प्राप्त करेगा। वह भी **शीघ्र प्राप्त करता है।** वापस ऐसा। शीघ्र प्राप्त करता है, उसमें क्रमबद्ध कहाँ गयी? इसका अर्थ कि ऐसा होवे, उसे अल्प काल में क्रम में वही मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। जिसे ऐसी दशा अन्दर हो, उसे अल्प काल में उसके क्रम में मुक्ति आती ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कोई केवलसुखामृतमय उत्तम फल... वह भी सपदि... सपदि है न? भाषा तो बहुत सब आयी है, हों! **शीघ्र प्राप्त करता है।** आहाहा! ऐसी चरित्र की सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की रमणता, उसे तो मुक्ति अल्प काल में प्राप्त होगी। संसार का अल्प काल में अन्त आयेगा। समिति की व्याख्या करते हुए समिति का-भावसमिति का प्रमोद और उसका फल बताया। लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-६६

कालुस्समोहसण्णारागदोसाइअसुहभावाणं ।
 परिहारो मणु-गुत्ती ववहार-णयेण परिकहियं ॥६६॥
 कालुष्यमोहसञ्जारागद्वेषाद्यशुभभावानाम् ।
 परिहारो मनोगुप्तिः व्यवहारनयेन परिकथिता ॥६६॥

व्यवहारमनोगुप्तिस्वरूपाख्यानमेतत् । क्रोधमानमायालोभाभिधानैश्चतुर्भिः कषायैः क्षुभितं चित्तं कालुष्यम् । मोहो दर्शनचारित्रभेदाद् द्विधा । सञ्जा आहारभयमैथुनपरिग्रहाणां भेदाश्चतुर्धा । रागः प्रशस्ताप्रशस्तभेदेन द्विविधः । असह्यजनेषु वापि चासह्यपदार्थसार्थेषु वा वैरस्य परिणामो द्वेषः । इत्याद्यशुभपरिणामप्रत्ययानां परिहार एव व्यवहारनयाभिप्रायेण मनोगुप्तिरिति ।

कालुष्य, संज्ञा, मोह, राग, द्वेष के परिहार से ।
 होती मनोगुप्ति श्रमण को, कथन नय व्यवहार से ॥६६॥

गाथार्थः—[कालुष्यमोहसंज्ञारागद्वेषाद्यशुभभावानाम्] कलुषता, मोह, संज्ञा, राग, द्वेष आदि अशुभभावों के [परिहारः] परिहार को [व्यवहारकथेन] व्यवहारनय से [मनोगुप्तिः] मनोगुप्ति [परिकथिता] कहा है ।

टीका : यह, व्यवहारमनोगुप्ति^१ के स्वरूप का कथन है ।

क्रोध, मान, माया और लोभ नामक चार कषायों से क्षुब्ध हुआ चित्त, सो कलुषता है । दर्शनमोह और चारित्रमोह—ऐसे (दो) भेदों के कारण मोह दो प्रकार

१. मुनि को मुनित्वोचित शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो (हठरहित) मन—आश्रित, वचन—आश्रित अथवा काय—आश्रित शुभोपयोग, उसे व्यवहारगुप्ति कहा जाता है, क्योंकि शुभोपयोग में मन, वचन या काय के साथ अशुभोपयोगरूप युक्तता नहीं है । शुद्धपरिणति न हो, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहारगुप्ति भी नहीं कहलाता ।

का है। आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा—ऐसे (चार) भेदों के कारण संज्ञा चार प्रकार की है। प्रशस्तराग और अप्रशस्तराग—ऐसे (दो) भेदों के कारण राग दो प्रकार का है। असह्य जनों के प्रति अथवा असह्य पदार्थसमूहों के प्रति वैर का परिणाम, वह द्वेष है।—इत्यादि अशुभपरिणामप्रत्ययों^१ का परिहार ही (अर्थात् अशुभपरिणामरूप भावपापास्रवों का त्याग ही) व्यवहारनय के अभिप्राय से मनोगुप्ति है।

प्रवचन-६८, श्लोक-९१, गाथा-६६-६७, बुधवार, आषाढ शुक्ल १४, दिनांक ०७-०७-१९७१

कालुष्य, संज्ञा, मोह, राग, द्वेष के परिहार से।
होती मनोगुप्ति श्रमण को, कथन नय व्यवहार से ॥६६ ॥

टीका : यह, व्यवहारमनोगुप्ति के स्वरूप का कथन है। नीचे नोट। व्यवहारचारित्र का अधिकार है न? जिसे अन्तर में आत्मदर्शन, शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप का जिसे अन्तर में भान हो गया है; तदुपरान्त जिसकी स्वरूप में स्थिरता, चारित्र की कितनी ही स्थिरता हुई है; उसे ऐसी मनोगुप्ति व्यवहार से हो सकती है। मनोगुप्ति का विकल्प है। मुनि को मुनित्वोचित... नोट में (फुटनोट में) मुनि की व्याख्या है। वास्तविक मुनिपना कैसा होता है, उसमें व्यवहार कैसा होता है? जिसने अन्तरस्वरूप आनन्दस्वरूप की प्राप्ति की है। सम्यग्दर्शन में आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसी आत्मा की उपलब्धि-प्राप्ति की है। तदुपरान्त स्वरूप में शान्ति और स्थिरता की कितनी ही जागृति हुई है, उसे अशुभ से गोपकर शुभभाव होता है, उसे व्यवहार मनोगुप्ति कहते हैं। इतनी शर्तों सहित।

यह मुनि को मुनित्वोचित... उसके योग्य शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ... अर्थात् कि आत्मा पवित्र आनन्द है, उसकी अवस्था / परिणति शुद्ध तो हुई है। सम्यग्दर्शन में भी आत्मा आनन्द है, उसकी शुद्ध अवस्था थोड़ी हुई है; मुनि को विशेष शुद्ध अवस्था हुई है। आनन्द और शान्ति की पवित्रता उन्हें बहुत परिणमित हो गयी है। आहाहा! उन्हें

१. प्रत्यय = आस्रव; कारण। (संसार के कारणों से आत्मा का गोपन-रक्षण करना सो गुप्ति है। भावपापास्रव तथा भावपुण्यास्रव संसार के कारण हैं।)

साथ वर्तता हुआ... ऐसी शुद्धदशा के साथ रहनेवाला (हठरहित) मन-आश्रित,... भाव शुभोपयोग वचन-आश्रित अथवा काय-आश्रित शुभोपयोग,... राग । शुभोपयोग, उसे व्यवहारगुप्ति कहा जाता है,... लो ! व्यवहारगुप्ति, वचनगुप्ति, मन को अशुभ से गोपा है और शुभ में प्रवर्तता है ।

क्योंकि शुभोपयोग में मन, वचन या काय के साथ अशुभोपयोगरूप युक्तता नहीं है । ऐसा । इसलिए गुप्ति, ऐसा कहते हैं । शुभराग में अशुभराग नहीं है । शुद्धपरिणति न हो, जहाँ पहले आत्मा की पवित्रता—श्रद्धा-ज्ञान और शान्तिरूप परिणमन न हो, उसका शुभोपयोग जो होता है, वह हठरहित होता है । वह शुभोपयोग, व्यवहारगुप्ति भी नहीं कहलाता । आहाहा ! क्या कहा ? कि व्यवहारगुप्ति उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा का आनन्द और ज्ञान और पवित्रता की प्रभुता श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति में परिणमित हुई है । स्वभाव के आश्रय से वीतरागी परिणति, वीतरागी अवस्था हुई है, उसे हठरहित अशुभ से गोपनरूप मन का शुभभाव, उसे व्यवहारगुप्ति कहा जाता है; परन्तु जिसे उस शुद्धपरिणति का अनुभव ही नहीं, जिसे आत्मा-आनन्द की शुद्धपरिणति ही प्रगट नहीं हुई, ऐसे अज्ञानी के शुभभाव को... वह तो हठवाला शुभभाव है, इसलिए उसे व्यवहारगुप्ति भी नहीं कहा जाता । आहाहा ! भारी शर्ते । ऐसा मार्ग है, भाई ! इसे, मार्ग क्या है - ऐसा जानना तो पड़ेगा न ? क्योंकि आत्मा का सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान और उसका चारित्र, वह मुक्ति का कारण है । स्वरूप में रमणता, आनन्द में रमणता, चरना-रमना-जमना, आनन्द का अनुभव करना, ऐसा जो चारित्र होता है, उसे सच्चा चारित्र और मुक्ति का कारण कहते हैं । ऐसी चारित्रदशा में शुद्धोपयोगरूप परिणमन जब न हो, तब उसे ऐसा अशुभ से गोपनरूप शुभ के भावरूप शुभोपयोगरूप मन व्यवहार से गुप्ति कहलाती है । चेतन का अरूपी मधुर जिसका आनन्द स्वाद है । आहाहा ! आता है न ? यह नीचे (फुट) नोट की व्याख्या हुई ।

अब क्रोध, मान, माया और लोभ नामक चार कषायों से क्षुब्ध हुआ चित्त, सो कलुषता है । पहले कलुषता की व्याख्या है । मलिन परिणाम । क्रोध, मान, कपट और लोभ, इन चार कषायों से कम्पायमान, अस्थिर हुई क्षुब्धता, ऐसा चित्त, उसे कलुषता कहते हैं । व्याख्या करते हैं । यह कलुषता तो अशुभभाव है, उसे छोड़ना । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के कितने ही भावसहित ऐसे कलुषभाव को मन में (से) छोड़ना और शुभभाव का होना, उसे मन की व्यवहारगुप्ति कहने में आता है ।

पश्चात् दर्शनमोह और चारित्रमोह—ऐसे (दो) भेदों के कारण मोह दो प्रकार का है। ऐसे देखो तो चारित्र के भाग में कोई भी राग नहीं, ऐसा कहा। दर्शनमोह और चारित्रमोह दोनों इसमें आ गये। शुभ और अशुभराग दोनों इसमें आ जाते हैं। परन्तु इसकी व्याख्या लेना, और चारित्रमोह में तो राग शुभ भी आ जाता है और अशुभ भी आ जाता है। अब इन दो की निवृत्ति तो निश्चयमनोगुप्ति हुई, परन्तु उसमें से अशुभ का त्याग लेना। शैली तो यह सब है। राग-द्वेषादि अशुभभावन। इसलिए टीका भी उसी प्रकार की है। उसमें से अशुभभाव ऐसा नहीं। यह अशुभभावन, ऐसा है। ऐसे जो अशुभभाव, उन्हें छोड़ना। छोड़ना और यह सब व्यवहार है न ?

आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा—ऐसे (चार) भेदों के... यह तो अशुभभाव ही है। ये चार तो अशुभभाव ही हैं। चारित्रमोह में तो अभी शुभराग भी आ जाता है, परन्तु उसमें से अशुभराग को छोड़ना और शुभराग में रहना, उसे यहाँ व्यवहार—मनोगुप्ति कहते हैं। रहना अर्थात् है, ऐसा। आहाहा! एक ओर सम्यग्दृष्टि शुभ-अशुभराग से मुक्त है। आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसा भान होने पर सम्यग्दृष्टि शुभ-अशुभ विकल्प से तो भिन्न ही है परन्तु यहाँ चारित्र की अपेक्षा से अस्थिरता का जो भाव, उसके दो भाग। शुभ की और अशुभ की... इस अशुभ की अस्थिरता छोड़कर शुभ में रहता है। ज्ञान करता है कि यह भाव है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है न ? उसे यहाँ व्यवहार से मनोगुप्ति कहा जाता है।

आहारसंज्ञा,... हों! आहार करने का विकल्प है, वह संज्ञा नहीं। आहार करने का विकल्प है, वह संज्ञा नहीं। वह तो अशुभभाव है। मुनि को आहार लेने की वृत्ति होती है। वैसे तो शास्त्र इन्कार करते हैं कि अशुभभाव तो उन्हें होते ही नहीं अर्थात् आहारसंज्ञा वह तो गृद्धि बताती है। वह गृद्धि उन्हें नहीं होती। आहार लेने का भाव, वह आहारसंज्ञा है—ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

प्रशस्तराग और अप्रशस्तराग—ऐसे (दो) भेदों के कारण राग दो प्रकार का है। एक शुभराग और एक अशुभराग। उसमें से अशुभराग को छोड़ना और शुभराग में व्यवहार कहलाता है, उसे मनोगुप्ति कहने में आता है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं, इत्यादि सबको छोड़ना। ये सब अशुभ परिणाम हैं। ध्वनि तो यह है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी गड़बड़ी नहीं चलती। यहाँ तो पाठ तो स्पष्ट छोड़ना ऐसा कहता है परन्तु इसका अर्थ इतना करना। अशुभ छोड़ना और शुभ में होवे, इतनी बात है। बस। बात होवे, वैसे आयेगी न? उल्टी-सीधी कुछ होगी? पाठ ऐसा है न? देखो न! इसमें ऐसा कहाँ कहा! **रागद्वोसाइअसुहभावाणं** ऐसा शब्द है न? स्पष्ट पाठ है, परन्तु उसमें से ऐसा लेना। उसमें जो अशुभभाव है, उसे छोड़ना, इतनी बात है। पाठ वापस व्यवहार है न? पाठ वापस व्यवहारनय और **ववहार-णयेण परिकहियं** ऐसा। इसका अर्थ कि अशुभ को छोड़ने पर शुभ रहता है, उसे व्यवहार से मनोगुप्ति है। बस, इतनी ही बात है। उसमें कोई दूसरा उल्टा-सीधा चले ऐसा नहीं है। समझ में आया? उस राग के दो प्रकार किये। इतना यहाँ लेना चाहिए परन्तु वे दोनों छोड़े हैं। दोनों छोड़े तब तो निश्चयमनोगुप्ति हो जाए। यहाँ पाठ व्यवहारनय का है। उसमें जो समुचित हो, उसका अर्थ होना चाहिए न।

द्वेष की व्याख्या। **असह्य जनों के प्रति...** ऐसे मनुष्य हों कि ऐसी कठोर गाली दे, मार मारे, ऐसे के प्रति द्वेष, ऐसे के प्रति उसे वैर के परिणाम द्वेष, वह छोड़ देना। ऐसे मनुष्य होते हैं न? ऐसी गाली दे, बिच्छु के डंक जैसा मारे। **आंकरा** मारे ऐसे कठोर शब्द कहे, उनका द्वेष नहीं करना, तो भी उनके प्रति द्वेष, वैर के परिणाम नहीं हों। **अथवा असह्य पदार्थसमूहों के प्रति...** दोनों। असह्य जनों और असह्य पदार्थ। बाहर में सहन न हो, ऐसे काँटे, लोहे के पत्र, कितने ही होते हैं न। जमीन में अन्दर पत्र चिपट हो। अब टक्कर लगे, वह तो उखड़े नहीं और यहाँ चमड़ी उखाड़ दे। फिर उस पर द्वेष करे। जमीन में गहरा पत्थर चिपटा होता है न? बाहर में जरा निकला हुआ हो। वह जरा ऐसे ठोकर मारे तो निकल जाए। क्या निकले? वह तो गहरा होवे न, अंगूठे से मारने जाए तो अंगूठा छिल जाए। उस पदार्थ के प्रति द्वेष (नहीं) करे, ऐसा कहते हैं। काँटे होते हैं, देखो न! यह बबूल के, क्या कहलाते हैं यह गोरडा के। ऐसे चुभें कि उन बबूल के काँटों पर द्वेष करे, कहते हैं मुनि ऐसे द्वेष का त्याग करते हैं।

वैर का परिणाम, वह द्वेष है।—इत्यादि... पाठ है सही न, इसलिए तदनुसार ही टीका की है। **अशुभपरिणामप्रत्ययों का...** अशुभ परिणामरूपी आस्रवों का परिहार।

उसमें से इतना लेना। सम्यग्दर्शन शुद्ध है, तीन कषाय के अभाव का चारित्र भी शुद्ध है, उनकी भूमिका में उन्हें अशुभ से छूटकर योग्य शुभराग होता है, उसे यहाँ मनोगुप्ति व्यवहार से कहते हैं। पाठ में ऐसा लिया न दोसाइअसुहभाववाणंपरिहारो व्यवहार-णयेण परिकहियं पाठ स्वयं ऐसा बोलता है। फिर टीका तत्प्रमाण करनी पड़े न? परन्तु इसका अर्थ ऐसा ले लेना।

फिर अर्थ किया है (अर्थात् अशुभपरिणामरूप भावपापास्रवों का त्याग)... अशुभपरिणाम भावपापास्रव। पूर्ण आस्रव का त्याग हो जाए, तब तो निश्चयगुप्ति हो जाती है। पाप के परिणाम का त्याग, स्वरूप की दृष्टि और चारित्र की भूमिका और शुभपरिणाम का भाव आवे, उसे व्यवहारनय के अभिप्राय से मनोगुप्ति कही है। लो, अब जरा नीचे इसका अर्थ देखें तो नीचे आएगा। पाठ अशुभपरिणाम प्रत्ययों का परिहार है। अब नीचे अर्थ में वापस पाप-पुण्यास्रव भी डाला है।

प्रत्यय = आस्रव; कारण। (संसार के कारणों से आत्मा का गोपन-रक्षण करना सो गुप्ति है।) यह निश्चय का अर्थ। (भावपापास्रव तथा भावपुण्यास्रव संसार के कारण हैं।) दोनों से गोपन, वह निश्चयगुप्ति है और पापास्रव से गुप्ति, वह व्यवहारगुप्ति है। आहाहा! लोगों को शास्त्र का अभ्यास घट गया है और इसके बिना सब लगा रखा है। वास्तविक तत्त्व क्या है? किस प्रकार परिणाम हैं? शुभ क्या है? शुद्ध क्या है? त्रिकाली शुद्ध क्या है? उसके वास्तविक द्रव्य-गुण-पर्याय के ज्ञान बिना ऐसे के ऐसे चल निकलते हैं, चारित्र और दीक्षा, दख्या है। वह बेचार दख्या है। कुन्दकुन्दाचार्य की कितनी स्पष्ट बात है।

भावपुण्यास्रव और भावपापास्रव दोनों बन्ध के कारण हैं। उन दोनों को छोड़े तो निश्चयगुप्ति कहलाये। सम्यग्दर्शन तो है, सम्यग्ज्ञान है, तीन कषाय के अभाव का चारित्र भी है। उसमें पाप के परिणाम छोड़े तो व्यवहारगुप्ति कहलाये और पुण्य-पाप छोड़कर सातवीं भूमिका में जाए तो निश्चयगुप्ति कहलाये। गजब! दीक्षा ले, इसलिए उसे छह काय के बोल और नव तत्त्व और ऐसा सिखाने लगे। दण्डक की गतागति। उसका भी कितनों को ठिकाना नहीं होता। हमारे एक 'अंजवालीबाई' थे। उमराला के भावसार। अंजवालीबाई थे। वरवाला में दीक्षा नहीं ली थी? अंजवालीबाई थे। व्याख्यान बहुत करे और लोग बेचारे यह भोंठ जैसे हों। ये बनिये अभी के क्या हैं? गढडा में, उसकी आठ वर्ष की दीक्षा। उसमें

मैं दुकान छोड़कर वहाँ आठ महीने रहा था। पश्चात् उसने वहाँ तो वोरानियो, दीवालीबाई, वे विशाश्रीमाली थे न तुम्हारे नागनेस के हैं। विशाश्रीमाली। उपाश्रय के बाहर दुकान थी। उसके गोरानी थे। उसे बेचारे को कुछ आता नहीं। आठ वर्ष की दीक्षा (संवत्) १९६० में दीक्षा ली। १९६९ में मैं गया। इसलिए वह कहे, भाई! कानजीभाई! इसे गति के बोल सिखाओ। अब वह आठ वर्ष से व्याख्यान पढ़े। गतागति के बोल, थोकड़ा आता है न? वह तो हमने पहले १९६८ में सीखे थे। इसलिए १९६९ में आठ महीने रहे थे। फिर जो नीचे बैठ कहे,... गोरानी कहे। कानजीभाई! नीचे बैठे तू नीचे बैठ। सीखना है तो कुछ कोई पटिये पर बैठे और ये नीचे बैठें, ऐसे सीखा जाता है? भावसार था। अंजवालीबाई थे। हमारे गाँव के थे। उमराला के थे। संघवी भावसार थे, पोरबन्दर रहते थे। उनके बड़े भाई की बहू। परन्तु आठ वर्ष से तो गतागती के थोकड़ा मुझे से सीखे थे। देखो! यह कितना चलता है उस सम्प्रदाय में। ओहोहो! मुझे उस समय ऐसा लगा था, परन्तु यह पढ़ते हैं, क्यों पढ़ें, कैसा पढ़ें, यह बोल सीखे हुए हों। वे क्या कहलाते हैं अलावा... .. अलग निकाले हों। के बोल हों न उसमें से ले। वे सीखे हों, वह पढ़े। अब गतागती की खबर नहीं होती। कहाँ से कौन जाए? आठ वर्ष की बात है। उसे मूल बात ऐसी हो गयी कि बस, वस्त्र बदलकर हो जाओ त्यागी। अभी तत्त्व क्या है, श्रद्धा-ज्ञान तो एक ओर रहा, परन्तु व्यवहार का ज्ञान (कि) यह जीव कहाँ जाए और कहाँ से आवे और क्या हो, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं व्यवहारनय के अभिप्राय से मनोगुप्ति है। ऐसा कहा न? पाठ में ऐसा है न, अभिप्राय अधिक डाला। व्यवहारनयाभिप्रायेण आहाहा! सम्यग्दर्शन आत्मा के भानपूर्वक सच्चा चारित्र वर्तता हो, उसे शुद्धोपयोग का जब अभाव हो, तब उसे ऐसा शुभभाव होता है। उसे व्यवहार मनोगुप्ति कहने में आता है। उस शुभ से भी छूटकर शुद्धोपयोग में रमे, वह तो निश्चयमनोगुप्ति हो गयी। यह व्यवहारमनोगुप्ति आस्रव का कारण है, उससे पुण्यास्रव आवे। मन को अशुभ से गोपना, उससे पुण्यास्रव आवे; धर्म नहीं। आहाहा!

श्लोक-९१

अब ६६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(वसन्ततिलका)

गुप्तिर्भविष्यति सदा परमागमार्थ-
चिन्तासनाथमनसो विजितेन्द्रियस्य ।
बाह्यान्तरङ्गपरिषङ्गविवर्जितस्य,
श्रीमज्जिनेन्द्रचरणस्मरणान्वितस्य ॥९१॥

(वीरछन्द)

जो परमागम कथित अर्थ का चिन्तक अरु विजितेन्द्रिय है ।
बाह्याभ्यन्तर संगरहित, जिनपद ध्याता को गुप्ति कहें ॥ ९१ ॥

[श्लोकार्थः—] जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है, जो विजितेन्द्रिय है (अर्थात् जिसने इन्द्रियों को विशेषरूप से जीता है), जो बाह्य तथा अभ्यन्तर सङ्गरहित है और जो श्री जिनेन्द्रचरण के स्मरण से संयुक्त है, उसे सदा गुप्ति होती है ।

श्लोक-९१ पर प्रवचन

अब ६६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं — ९१ वाँ श्लोक

गुप्तिर्भविष्यति सदा परमागमार्थ-
चिन्तासनाथमनसो विजितेन्द्रियस्य ।
बाह्यान्तरङ्गपरिषङ्गविवर्जितस्य,
श्रीमज्जिनेन्द्रचरणस्मरणान्वितस्य ॥९१॥

व्यवहार डाला है, लो ।

जो मुनि, सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दर्शनी, सम्यक्चारित्री जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है,... भाषा देखी ? परमागम । सर्वज्ञ से कथित, परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहे हुए परमागम । समझ में आया ? उसमें जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है,... है शुभविकल्प । देखो ! भगवान के नहीं कहे हुए ऐसे शास्त्रों की यहाँ बात नहीं ली है क्योंकि उसकी वस्तु की दृष्टि ही मिथ्या है । परमागम । लो, अपने इसका नाम भी परमागममन्दिर है न ? कोई कल पूछता था, कब बनेगा ? क्या खबर पड़े कब बनेगा ? अपने को क्या खबर पड़े, इसमें किस जगह है । बीस महीने हो गये । वजुभाई क्या करे अन्दर जलते हों तो भी । यह कोई कल पूछता था । दो वर्ष में होगा ? होवे तब ठीक । परन्तु यह परमागम आया न ?

परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त... यह सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, चारित्रसहित को शुभविकल्प और शुभराग (आवे वह) व्यवहारमनोगुप्ति कहने में आता है । शास्त्र का चिन्तवन, शास्त्र का वाँचन, शास्त्र में मन को रोके, उसका नाम शुभभाव है । मुनि को भी... वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित हों उन्हें । जिन्हें मिथ्या आगम की श्रद्धा है, उस आगम के मिथ्या साधु की श्रद्धा है, उसे तो दर्शन ही जहाँ सच्चा नहीं, वहाँ चारित्र तो होता नहीं । इसलिए उसे मनोगुप्ति व्यवहार से भी नहीं होती । आहाहा ! भारी शर्ते, भाई !

जिसका मन... वीतराग परमेश्वर के कहे हुए परमागम की चिन्ता, उनके अर्थों की विचारने में रुकता है, वह शुभभाव है । वह शुभभाव है । अब उसमें ऐसा कहा कि स्वाध्याय करे तो असंख्यगुनी निर्जरा होती है । ऐई ! धवल में (ऐसा आता है) । वे उसे सामने रखते हैं । आता है या नहीं ? धवल में ऐसा आता है । यहाँ कहते हैं कि उस परमागम का चिन्तवन करे, वह शुभभाव है, ऐसा कहते हैं । वहाँ तो अन्दर आनन्दस्वरूप में-ध्येय में एकाग्रता है, उसके लक्ष्य से स्वाध्याय करता है । विकल्प से भले हो परन्तु जोर है स्वभावसन्मुख का । उसके कारण निर्जरा होती है । यह शुभभाव तो चिन्तवन है । परमागम की विचारणा का विकल्प है, लोग ये डालते हैं । यह लोग कहे, यह डाले और वह हमारा डालते नहीं, फिर ऐसा कहे । भाई ! स्मरण करते हैं, नहीं डालते कहाँ ? ऐई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परमागम में कहीं कहा है । स्वाध्याय करते हुए असंख्यगुनी

निर्जरा कही है। यहाँ परमागम का चिन्तवन करने से शुभभाव कहा है। वह तो स्वाध्याय में स्व का आश्रय है, उसके लक्ष्य से, शुद्धि के लक्ष्य से होता है। वह तो प्रवचनसार में नहीं कहा? ज्ञान के लक्ष्य से ज्ञेयों का ज्ञान करना। आता है न? भाई! प्रवचनसार, ज्ञान अधिकार पूरा हुआ। अन्तर में आत्मा का ज्ञान हुआ है, इसके लक्ष्य से अब ज्ञेय, छह द्रव्य आदि का लेते हैं। यहाँ दर्शन का अधिकार है। ज्ञेय अधिकार कहो, दर्शन अधिकार कहो, इसके वाँचन-श्रवण में उपयोग जुड़ता है आत्मा में। उसकी प्रतीति से आत्मा का चिन्तवन, शास्त्र का चिन्तवन करता है, तो उसे स्व के आश्रय से निर्जरा होती है। यहाँ पर का अकेला विकल्प है, इतनी बात लेनी है।

जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तन... क्या कहते हैं? ऐसे अर्थ, शब्दों का भाव, विचारने में मन (रुकता है)।

मुमुक्षु : तो मुनियों को अर्थ नहीं आता होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है परन्तु विशेष, स्वाध्याय करते हुए विशेष है या नहीं? ... आता है न। चाहे जितना हो, सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीस-तैंतीस सागर तक स्वाध्याय करते हैं, लो।

मुमुक्षु : वह तो चौथे गुणस्थान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान में, तो भी उसका पार नहीं आता, ऐसी स्वाध्याय। तैंतीस सागर किसे कहते हैं? एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष। एक पल्य के असंख्यातवें भाग में। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्यात अरब वर्ष, ऐसे-ऐसे असंख्यगुने पल्योपम, ऐसे दस कोड़ाकोड़ी का एक सागरोपम, उसकी तैंतीस सागर की स्थिति सर्वार्थसिद्धि के देव की है। अभी एकावतारी है। स्वर्ग का देव सर्वार्थसिद्धि में है। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। यह तैंतीस सागर तक स्वाध्याय करते हैं। शुभविकल्प है। वहाँ उन्हें कोई स्त्री नहीं, व्यापार नहीं। आहाहा! देव इकट्ठे होकर स्वाध्याय किया करते हैं, चर्चा-वार्ता। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, धन्धा नहीं, दुकान नहीं, तारटपाल नहीं, वकालात की पढ़ाई नहीं। वकालात के नियम निकालना वह कुछ वहाँ है? आहाहा! तो भी अन्त में अन्दर जाकर मुनि होऊँगा और

वीतरागता प्रगट करके श्रेणी माँडूगा, तब केवलज्ञान होगा। इस कारण से (स्वाध्याय आदि से) केवल (ज्ञान) होगा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव सिद्ध करना है न? यह शुभभाव है, ऐसा। एकावतारी है। एक भव में मोक्ष जानेवाले असंख्यात देव सर्वार्थसिद्धि में हैं। मुनि-भावलिंगी सन्त थे, वे वहाँ जाते हैं। अकेले समकिति नहीं जा सकते। समकितसहित चारित्र हो, ऐसे वहाँ एकावतारी होकर सर्वार्थसिद्धि में असंख्यात देव हैं। सब एकवतारी हैं। एक ही भव अन्तिम मनुष्य का देह। तैंतीस सागर तक स्वाध्याय करें, परन्तु वह शुभोपयोग है, ऐसा कहना है। जितना स्व का लक्ष्य रहता है, उतनी वहाँ निर्जरा होती है। कहते हैं कि धर्मात्मा मुनि की व्याख्या है न अभी तो?

जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है, जो विजितेन्द्रिय है (अर्थात् जिसने इन्द्रियों को विशेषरूप से जीता है),... जो इंदियेजिणित्ता... जो बाह्य तथा अभ्यन्तर संगरहित है... लो, तो भी यहाँ उसे व्यवहार कहेंगे। और जो श्री जिनेन्द्रचरण के स्मरण से संयुक्त है,... अहो! जिनेश्वरदेव वीतरागपरमात्मा सर्वज्ञ अरिहन्तदेव वीतराग ऐसे होते हैं, उनका जिसे स्मरण वर्तता है। याद करे तो वीतराग को याद करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! श्री जिनेन्द्रचरण के स्मरण से संयुक्त है,... सहित है, देखा? यही स्मरण है। अहो! जिनने वीतरागता प्रगट की है, जिन्हें राग का अंश रहा नहीं ऐसे जिनेन्द्रदेव का मुनियों को भी शुभभाव में स्मरण वर्तता है।

उसे सदा गुप्ति होती है। लो! उसे यह व्यवहारगुप्ति होती है। व्यवहारगुप्ति की बात है न यहाँ तो? क्योंकि जिनेन्द्र का स्मरण है, परमागम के अर्थ का चिन्तवन है तो देव और शास्त्र दो आ गये। गुरु तो स्वयं है। यह बात आ गयी। बाह्य और अभ्यन्तर संगरहित हैं। दिगम्बर सन्तों की कथनी कोई अलौकिक है। एक-एक भाव में परम रहस्य भरा हुआ है। उसे सदा गुप्ति होती है। देखो! निश्चयगुप्ति तो होती है परन्तु साथ में यह शुभराग, वह व्यवहारगुप्ति है, ऐसा। जितनी रागरहित परिणति हो गयी है, वह तो निश्चयगुप्ति है परन्तु जो व्यवहार है, उसकी गुप्ति हुई नहीं। इसलिए उसका भाव व्यवहार कहने में आता है।

६७ गाथा।

गाथा-६७

श्रीराजचौरभक्तकथादि-वचनस्स पाव-हेउस्स ।
परिहारो वयगुत्ती अलियादिणियत्तिवचणं वा ॥६७॥

स्त्रीराजचौरभक्तकथादि-वचनस्य पापहेतोः ।

परिहारो वाग्गुप्तिरलीकादिनिवृत्तिवचनं वा ॥६७॥

इह वाग्गुप्तिस्वरूपमुक्तम् । अतिप्रवृद्धकामैः कामुकजनैः स्त्रीणां संयोगविप्रलम्भजनित-
विविधवचनरचना कर्तव्या श्रोतव्या च सैव स्त्रीकथा । राज्ञां युद्धहेतूपन्यासो राजकथाप्रपञ्चः ।
चौराणां चौरप्रयोगकथनं चौरकथाविधानम् । अतिप्रवृद्धभोजनप्रीत्या विचित्रमण्डकावली-
खण्डदधिखण्डसिताशनपानप्रशन्सा भक्तकथा । आसामपि कथानां परिहारो वाग्गुप्तिः ।
अलीकनिवृत्तिश्च वाग्गुप्तिः । अन्येषां अप्रशस्तवचसां निवृत्तिरेव वा वाग्गुप्तिः इति ।

तथा चोक्तं श्रीपूज्यपादस्वामिभिः ह

(अनुष्टुप्)

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः ।

एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ॥

तथाहि ह

जो पापकारण चोर, भोजन, राज दारा की कथा ।

एवं मृषा-परिहार यह लक्षण वचन की गुप्ति का ॥६७॥

गाथार्थः :—[पापहेतोः] पाप के हेतुभूत ऐसे [स्त्रीराजचौरभक्तकथादि-
वचनस्य] स्त्रीकथा, राजकथा, चौरकथा, भक्तकथा इत्यादिरूप वचनों का [परिहारः]
परिहार [वा] अथवा [अलीकादिनिवृत्तिवचनं] असत्यादिक की निवृत्तिवाले वचन,
[वाग्गुप्तिः] वह वचनगुप्ति है ।

टीका : यहाँ वचनगुप्ति का स्वरूप कहा है ।

जिन्हें काम अति वृद्धि को प्राप्त हुआ हो—ऐसे कामी जनों द्वारा की जानेवाली और सुनी जानेवाली—ऐसी जो स्त्रियों की संयोगवियोगजनित विविध वचनरचना (स्त्रियों सम्बन्धी बात), वही स्त्रीकथा है; राजाओं का युद्धहेतुक कथन (अर्थात् राजाओं द्वारा किये जानेवाले युद्धादिक का कथन), वह राजकथाप्रपञ्च है; चोरों का चोरप्रयोग कथन, वह चोरकथाविधान है (अर्थात् चोरों द्वारा किये जानेवाले चोरी के प्रयोगों की बात वह चोरकथा है); अति वृद्धि को प्राप्त भोजन की प्रीति द्वारा मैदा की पूरी और शक्कर, दही-शक्कर, मिसरी इत्यादि अनेक प्रकार के अशन-पान की प्रशंसा, वह भक्तकथा (भोजनकथा) है। — इन समस्त कथाओं का परिहार, सो वचनगुप्ति है। असत्य की निवृत्ति भी वचनगुप्ति है। अथवा (असत्य उपरान्त) अन्य प्रशस्त वचनों की निवृत्ति, वही वचनगुप्ति है।

इस प्रकार (आचार्यवर) श्री पूज्यपादस्वामी ने (समाधितन्त्र में १७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

इस प्रकार बहिरङ्ग वचन को तजकर अन्तर्वचन अशेष ।
यही योग परमात्म-प्रकाशक दीपक है कहते संक्षेप ॥

श्लोकार्थ : इस प्रकार बहिर्वचनों को त्यागकर अन्तर्वचनों को अशेषतः (सम्पूर्ण रूप से) त्यागना—यह संक्षेप से योग (अर्थात् समाधि) है जो कि योग परमात्मा का प्रदीप है (अर्थात् परमात्मा को प्रकाशित करनेवाला दीपक है)।

गाथा-६७ पर प्रवचन

अब वचनगुप्ति का स्वरूप। पहले मनोगुप्ति का स्वरूप कहा।

थीराजचोरभक्तकहादि-वयणस्स पाव-हेउस्स ।

परिहारो वयगुत्ती अलियादिणियत्तिवयणं वा ॥६७॥

जो पापकारण चोर, भोजन, राज दारा की कथा।

एवं मृषा-परिहार यह लक्षण वचन की गुप्ति का ॥६७॥

आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि राग के त्याग का कर्ता भी आत्मा नहीं है, ऐसा

उसका स्वरूप ही है। राग का त्याग कर्ता कहना, वह भी व्यवहारनय का कथन है। लो, इस त्याग का यह। आत्मा राग का त्याग करता है, वह भी एक व्यवहारनय का कथन अन्यथा है, ऐसा कहते हैं। परमार्थ से देखें तो भगवान आत्मा राग के त्याग का कर्ता भी नहीं है। राग के भाव का कर्ता तो नहीं परन्तु उसके त्याग का कर्ता नहीं। आहाहा! यहाँ कहना है कि वचन का त्याग करे। यह सब व्यवहारनय के कथन हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : विरोध नहीं आया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध बिल्कुल नहीं। दो नय का कथन ही विरुद्ध होता है। दो नय के कथन ही विरुद्ध हैं। दो नय किसके पड़े? आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है 'एवं मृषा-परिहार' त्यागगुप्ति वचन की कहो। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, राग का त्याग आत्मा नहीं करता। क्या त्याग करे? स्वरूप में आनन्द में पड़ा है, वहाँ राग उत्पन्न नहीं होता, इसका नाम राग (का) त्याग करता है, यह व्यवहार के कथन हैं। आहाहा! भारी कठिन। यहाँ कहते हैं कि वचन का त्याग करे। इसका अर्थ वाणी। तो वाणी का त्याग कब है कि बोलने में अशुभभाव नहीं तो उसने उस प्रकार की वाणी का त्याग किया, ऐसा कहा जाता है। वाणी का त्याग असद्भूतव्यवहारनय कहा है? आत्मा वाणी कहाँ बोलता है और वाणी को आत्मा कहाँ छोड़ता है? मैं मौन रहूँ। मौन कौन रहे? आत्मा वाणी बोल सकता है? वाणी होना रोक सकता है? आहाहा!

टीका : यहाँ वचनगुप्ति का स्वरूप कहा है। लो, स्त्रीकथा की व्याख्या करते हैं। ऐसी स्त्रीकथा, मुनि अशुभभाव को छोड़ देते हैं, ऐसा कहते हैं। जिन्हें काम अति वृद्धि को प्राप्त हुआ हो... जिन्हें काम की वासना अतिवृद्धि को प्राप्त हुई हो ऐसे कामी जनों द्वारा की जानेवाली और सुनी जानेवाली—ऐसी जो स्त्रियों की संयोगवियोगजनित विविध वचनरचना... ऐसी जो स्त्रियों की संयोगवियोगजनित। ऐसी स्त्री का संग हो, ऐसी स्त्री न हो तो ऐसा हो, ऐसी विविध वचनरचना (स्त्रियों सम्बन्धी बात), वही स्त्रीकथा है;... आहाहा! मुनि को ऐसी स्त्रीकथा नहीं होती। आहाहा! मुनि को स्त्री का परिचय ही नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? फिर उसे सिखाना, आधे घण्टे दो गाथा सीखो। यह

धन्धा तेरा ? यह तो स्त्रीकथा विशेष हो गयी । राग और प्रेम... आहाहा ! ऐसा भाव मुनि को नहीं होता ।

राजाओं का युद्धहेतुक कथन... राजकथा । युद्ध में ऐसे लड़ाई हुई, ऐसा हुआ, ऐसा हुआ । आहाहा ! (अर्थात् राजाओं द्वारा किये जानेवाले युद्धादिक का कथन), वह राजकथाप्रपञ्च है;... राजकथा का प्रपञ्च मुनि छोड़ देते हैं । उन्हें व्यवहारवचनगुप्ति कहा जाता है । राजकथाप्रपञ्च । देखो न ! अभी बँगले का कुछ होता है न, लेख... लेख... लेख इतना आता है । उसमें भी आता है । जैनपत्रों में । सर्वत्र मारा-मारी है । परस्पर में मुसलमान काट डालते हैं । कोई देशवाले ने वापस कुछ किया । युद्ध के शस्त्र विमान में आते थे, उसमें केनाडा ने नहीं जाने दिया, उसे शाबासी दी । ऐसा उसमें कुछ आया था । आहाहा ! यह सब प्रसन्न होते हैं, यह होता है, वह सब पापकथा है । इसने उसे हथियार दिये, इस हथियार से लड़ता है, ऐसा है, इसलिए इसकी जय होगी । अब धूल में जय किसे कहना ? आहाहा ! लोगों का संहार, बालक का संहार कुकर्म होता है । ऐसी युद्ध की कथा का त्याग करे । मुनि ऐसी कथा में पड़े नहीं । यहाँ तो शास्त्र की कथा करना, वह भी शुभभाव है । आहाहा ! शास्त्र का स्वाध्याय, व्याख्यान । समकित सहित ज्ञानी को, हों ! वह भी व्यख्यान आदि का शुभभाव है । वह कोई धर्म नहीं है । आहाहा !

मुमुक्षु : निर्जरा तो होती है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी निर्जरा नहीं है । शुभभाव से निर्जरा होगी ? परन्तु उस समय उस प्रकार का विकल्प होता है । प्रभु का मार्ग तो निवृत्ति मार्ग है । आहाहा ! ऐसे राग से भी निवर्तना, ऐसा स्वभावमार्ग है । समझ में आया ? परन्तु कहते हैं कि इतना न हो तो वह परमागम आदि की स्वाध्याय में मन को रोके । आहाहा ! मार्ग से मार्ग समझ में आये ।

चोरों का चोरप्रयोग कथन,... चोर ऐसे संताप, फिर ऐसे हो, फिर ऐसा हो, ऐसी बातें आवे तो सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं । **चोरप्रयोग कथन, वह चोरकथाविधान है** (अर्थात् चोरों द्वारा किये जानेवाले चोरी के प्रयोगों की बात...) पहले ऐसा करना, फिर ऐसा करना, ऐसा करना । ऐसी विकथायें, पाप कथा है । यह ढालसागर को पढ़ते हैं न, उसमें ही सब प्रसन्न हो जाते हैं । रावण को मारा ऐसा है, अमुक को ऐसे मारा । कल अब रावण को राम मारेंगे । वार्ता कहते थे । वहाँ वे अरे ! ऐसी की ऐसी बातें । ढालसागर पढ़ते

हैं। ढालसागर तब नहीं कहा था ? फिर नाम आया। ढालसागर कहलाता है। यह कृष्ण की बात हो उसे ढालसागर कहते हैं और राम की बात को रामराज कहा जाता है। तब कहा था न, (संवत्) १९७० के वर्ष में अषाढ शुक्ल १५, आज चौदश है, तब शुरु की थी। ढालसागर। बोटद में रतनसिंह भावसार पटेल थे। महाराज! नीचे आना। अब सब विकथा है। बड़ा रगड़ा खींचना और इकट्ठा करना। अरे! इतनी सामायिक तो हो न, परन्तु सामायिक... इसमें ऐसी विकथा सुने।

मुमुक्षु : बैठे न उतनी देर सामायिक में।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी बार बैठे। आहाहा! उसने ऐसा मारा, उसने ऐसा मारा, उसने ऐसा किया, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। ये सब विकथाएँ मुनि नहीं करते। वे पापवृत्ति को छोड़ देते हैं। आहाहा!

अति वृद्धि को प्राप्त भोजन की... कथा आती है। **प्रीति द्वारा मैदा की पूरी और शक्कर,...** पोची ऐसी मैदा की पूरी थी और शक्कर और खाण्ड, ओहोहो! परन्तु अब क्या है ? सब पाप कथा है। आहाहा! **अति वृद्धि को प्राप्त भोजन की प्रीति...** ऐसा कहते हैं। किसकी ? **मैदा की पूरी और शक्कर, दही-शक्कर,...** ऐसा बढ़िया श्रीखण्ड हो। ऐसा दही... उसमें शक्कर डालकर... श्रीखण्ड। परन्तु अब है क्या ? विष्टा है। छह घण्टे बाद उसकी विष्टा होगी। विष्टा का पूर्वरूप है यह। आहाहा! उसकी इतनी प्रीति क्या ? उसका उत्साह। आज तो ऐसा था। आज तो मैसूर और अरबी के (भुजिया) थे, हों! ओहो! तेल में तो तले परन्तु यह तो घी में तले हुए और ऐसे लाल किये हुए। अरबी के पत्ते होते हैं न ? उन्हें अरबी के पान कहते हैं न ? उन पर आटा लगाकर फिर छुरी से टुकड़े करे। टुकड़ा करनेवाला गजब होशियार था। ठीक से किये। अर र र! बापू! ऐसी बात! आत्मा के आनन्द की बात छोड़कर अथवा परमागम के चिन्तवन के अर्थ छोड़कर ऐसी कथाएँ मुनि को नहीं होती। खाने की बात तुच्छ है। वह तुच्छ नहीं कहा श्रीमद् ने ? ऐसी तुच्छ वार्ता धर्मात्मा को नहीं होती।

दही-शक्कर, मिसरी इत्यादि अनेक प्रकार के अशन-पान की प्रशंसा,... ऐसा आहार हो। बढ़िया पानी हो, मौसम्बी का, अनार का, क्या कहलाता है, वह बढ़िया अनार का ? दिल्ली के... दिल्ली के अनार बड़े आते हैं। ऐसे बड़े दाने। वहाँ रखते हैं। पड़े हो

उसमें से थोड़ा-थोड़ा खाये। मजा करे। बड़े.. बड़े.. अरे! ऐसी तेरी धूल की बातें? ऐसी विकथा। प्रशंसा, वह भक्तकथा (भोजनकथा) है।—इन समस्त कथाओं का परिहार, सो वचनगुप्ति है। असत्य की निवृत्ति भी वचनगुप्ति है। झूठ बोलने की निवृत्ति और सत्य बोलना, वह भी एक निवृत्ति है। अथवा (असत्य उपरान्त) अन्य प्रशस्त वचनों की निवृत्ति,... खराब वचन ऐसे। जिन वचनों से परिणाम खराब हों, ऐसे वचनों की निवृत्ति, वह भी एक वचनगुप्ति है। व्यवहार वचनगुप्ति है। आत्मा को पूछे, आत्मा को पढ़े, आत्मा की कथा करे, वह कथा भी एक शुभराग है। समझ में आया? उसमें भी उसे व्यवहार वचनगुप्ति कहा जाता है। पाठ में अशुभ में नहीं जाता, इस अपेक्षा से। वचनगुप्ति की व्याख्या हुई।

इस प्रकार (आचार्यवर) श्री पूज्यपादस्वामी ने (समाधितन्त्र में १७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।

एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः॥

यह निश्चय है। यह निश्चय की बात है।

इस प्रकार बहिर्वचनों को त्यागकर... भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें जोड़ दे न! यहाँ कहाँ व्यर्थ का जोड़ा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर्वचनों को अशेषतः... अन्तर के जल्प-विकल्प को भी सर्वथा छोड़कर अशेषतः... अर्थात् सब प्रकार से, पूर्णरूप से यह संक्षेप से योग (अर्थात् समाधि) है... वह यह संक्षेप से समाधि है। समाधि। 'समाधि वर मुत्तमं दिंतु'—ऐसा लोगस्स में नहीं आता? अर्थ की खबर नहीं होती। पहाड़े बोलते हैं। 'समाधि वर मुत्तमं दिंतु चंदेश निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा' जाओ, खड़े हो जाओ प्रतिक्रमण हो गया। समाधि... समाधि... समाधि...। आधि—मन के संकल्प से रहित; व्याधि—शरीर की व्याधि से रहित; उपाधि—बाहर के संयोग से रहित। आत्मा की अन्तर शान्ति, समाधि—जो कि योग परमात्मा का प्रदीप है... लो! आत्मा आनन्दस्वरूप में जुड़ान करना, मन का संग छोड़ना, वाणी का संग छोड़ना, स्वभाव का संग करना। आहाहा! शुद्ध आनन्द का धाम भगवान का संग करना। असंग का संग, ऐसा जो योग। स्वरूप की एकाग्रता, वह परमात्मा का प्रदीप है (अर्थात्

परमात्मा को प्रकाशित करनेवाला दीपक है)। सम्यग्ज्ञान के नेत्र द्वारा, समाधि द्वारा आत्मा को देखे, वह परमात्मा का प्रकाशित करनेवाला दीपक है। पुण्य-पाप के विकल्प में कुछ परमात्मा का विकास नहीं होता, ऐसा कहते हैं। पाठ ही है न, देखो न!

एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ऐसा कहते हैं कि वाणी का योग, विकल्प है, वह भी कहीं आत्मा का प्रकाश करने में कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। वचनगुप्ति में डाला है न यह? चाहे जैसा स्वाध्याय करे, उपदेश करे, वह तो वस्तु का विकल्प है। आहाहा! आत्मा में जुड़ान कर देना, वही परमात्मा का प्रकाश करनेवाला योग है कि जिसे यहाँ समाधि की शान्ति कहते हैं। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६९, श्लोक-९२-९४, गाथा-६८-६९, शुक्रवार, अषाढ़ कृष्ण १ (गुजराती),
दिनांक ०९-०७-१९७१

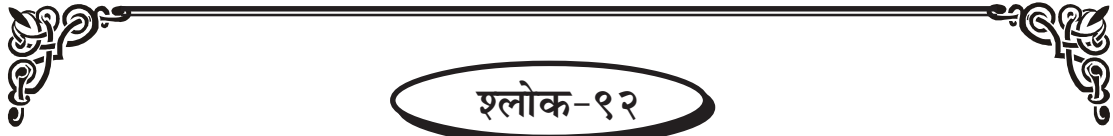
आज भगवान महावीरस्वामी का दिव्यध्वनि का दिन है। भगवान महावीर परमात्मा को वैशाख शुक्ल दसवीं को चार ज्ञान का नाश होकर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था, तब वाणी नहीं निकली, क्योंकि उनकी वाणी हो और धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, ऐसा नहीं होता क्योंकि जब तीर्थकरगोत्र बाँधा, बँधा, तब भाव में ऐसा था कि मैं पूर्ण होऊँ अथवा जीव धर्म प्राप्त करे। इसलिए तीर्थकर की वाणी निकलती है, तब धर्म प्राप्त करनेवाले होते ही हैं, ऐसा ही उसका सम्बन्ध है। वैशाख शुक्ल दसवीं को धर्म प्राप्त करनेवाले गणधर जो मुख्य चाहिए, वे नहीं थे। इसलिए ६६ दिन तक वाणी नहीं निकली। उस वाणी को निकलने का काल नहीं था। उसमें आज श्रावण कृष्ण एकम... सिद्धान्त की श्रावण कृष्ण एकम आज है। तब इन्द्र, गणधर को-गौतम को लाये। लाये और यहाँ वाणी खिरी। इसलिए (वे) आये, इसलिए वाणी निकली, यह निमित्त है। वाणी उस समय निकलने का काल था। यह सिद्धान्त चला है। इन्द्र पहले गौतम को क्यों नहीं लाये? कि भाई! काललब्धि नहीं थी। उनका समझने का काल नहीं था और यहाँ वाणी निकलने का। वह

वाणी आज श्रावण कृष्ण एकम को भगवान के मुख से दिव्यध्वनि निकली। उस वाणी के-सिद्धान्त के अर्थ के करनेवाले भगवान महावीर, वह द्रव्य-वस्तु हुआ, क्षेत्र विपुलाचल पर्वत। राजगृहीनगरी के निकट पाँच पर्वत हैं, उनमें एक विपुलाचल पर्वत है, उस क्षेत्र में भगवान की वाणी निकली। काल, यह श्रावण कृष्ण एकम था, वह काल है। श्रावण कृष्ण एकम को दिव्यध्वनि खिरी। प्रभु ने भावश्रुतज्ञान की प्ररूपणा की। हैं तो केवलज्ञानी, परन्तु भावश्रुत की प्ररूपणा की, क्योंकि जो गणधर भावश्रुत को प्राप्त करनेवाले, उन्हें निमित्त तो भावश्रुत हो, ऐसा। उस भावश्रुत की प्ररूपणा परमात्मा ने की है। आज श्रावण कृष्ण एकम (को की है।) अर्थ के करनेवाले भगवान और पश्चात् सूत्र की रचना के करनेवाले गणधर। इस सूत्र की रचना अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना की, वह भी आज का दिन है। यह आज वाणी का—दिव्यध्वनि का दिन है। श्रावण कृष्ण एकम। सिद्धान्त से यह श्रावण कृष्ण एकम है। सिद्धान्त के हिसाब से कृष्ण (पक्ष) पहले आता है। शुक्ल पक्ष बाद में क्योंकि यह पूर्णिमा कल गयी न? पूर्णिमा अर्थात् पूर्ण महीना। पूनम अर्थात् पूरा महीना कल पूरा हुआ। और यह कृष्ण (पक्ष) लगा। महीने का पहला दिन। अमावस्या हो, तब आधा महीना होता है। अ-मास है न? आधा महीना होता है। पूर्णिमा हो, तब पूर्ण मास होता है। अर्थात् युग का पहला दिन श्रावण कृष्ण एकम। उस दिन भगवान की दिव्यध्वनि निकली और गणधर भगवान ने रचना की। भावश्रुत के परिणमन से, गणधरदेव ने भावश्रुत से परिणम कर द्रव्यश्रुत की रचना की है। समझ में आया?

भगवान की वाणी में भावश्रुत का अर्थ आया। गणधर भावश्रुत को परिणमित्त हुए, उन्होंने द्रव्यश्रुत की रचना की। अर्थ के कर्ता भगवान हैं; सूत्र के कर्ता गणधरदेव हैं, यह उस दिव्यध्वनि का दिन है। उस समय होंगे, तब तो गणधर, इन्द्र, विपुलाचल पर्वत पर साक्षात् दिव्यध्वनि (जो) ६६ दिन से बन्द थी। भगवान को केवलज्ञान हुआ तो भी, गणधर मुख्य है, वे नहीं थे; इसलिए वाणी नहीं निकली, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। वे लोग कहते हैं-नहीं, देखो! गणधर नहीं थे, इसलिए वाणी नहीं निकली। गणधर का निमित्त हुआ, इसलिए वाणी निकली। ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? वाणी तो वाणी के काल में ही निकली है, गणधर का निमित्त था।

यह भगवान के कहे हुए सिद्धान्त, उन्हें सन्तों ने शास्त्र रचना की। उसमें से यह

एक नियमसार सिद्धान्त है। यह नियमसार है न? नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। नियम का अर्थ ही मोक्ष का मार्ग होता है। आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अन्तर अनुभव में सम्यग्दर्शन प्रगट करके ज्ञान और स्वरूप की रमणता प्रगट की, ऐसा जो मोक्षमार्ग है, उसके फलरूप मोक्ष है। यह मार्ग और मार्ग के फल दोनों की व्याख्या इसमें है। पहले गाथा में आ गयी है। कल सज्जाय थी। मार्ग और मार्ग के फल में....



श्लोक-९२

और इस ६७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(मन्दाक्रान्ता)

त्यक्त्वा वाचं भवभयकरीं भव्यजीवः समस्तां,
ध्यात्वा शुद्धं सहजविलसच्चिच्चमत्कारमेकम् ।
पश्चान्मुक्तिं सहज-महिमानन्द-सौख्याकरीं तां,
प्राप्नोत्युच्चैः प्रहत-दुरितध्वान्तसङ्घातरूपः ॥९२॥

(वीरछन्द)

भव्यजीव भवभय उत्पादक सब वचनों का त्याग करें।
सहज शुद्ध विलसित चैतन्य चमत्कार का ध्यान करें ॥
पाप तिमिर का पुञ्ज नाश कर अहो सहज जो महिमावन्त।
सौख्य और आनन्द खान है मुक्ति लहें अतिशय भगवन्त ॥ ९२ ॥

[श्लोकार्थः—] भव्यजीव, भवभय की करनेवाली समस्त वाणी को छोड़कर शुद्ध सहज —विलसते चैतन्य चमत्कार का एक का ध्यान करके, फिर, पापरूपी तिमिरसमूह को नष्ट करके सहजमहिमावन्त आनन्दसौख्य की खानरूप ऐसी उस मुक्ति को अतिशयरूप से प्राप्त करता है।

श्लोक-९२ पर प्रवचन

और इस ६७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं - ९२ वाँ श्लोक, नियमसार।

त्यक्त्वा वाचं भवभयकरीं भव्यजीवः समस्तां,
ध्यात्वा शुद्धं सहजविलसच्चिच्चमत्कारमेकम्।
पश्चान्मुक्तिं सहज-महिमानन्द-सौख्याकरीं तां,
प्राप्नोत्युच्चैः प्रहत-दुरितध्वान्तसङ्घातरूपः ॥९२॥

यह ६७ वीं गाथा। वचनगुप्ति की बात चलती है। लो, भगवान ने वाणी कही, अब उसमें ऐसा आया कि वचनगुप्ति किसे कहना? समझ में आया? कहते हैं, श्लोकार्थ है न?

श्लोकार्थ : भव्यजीव,... पहली ही बात ली है। पात्र जीव जो है वह। आत्मा की शान्ति मोक्ष के मार्ग को पाने के योग्य है। भव्यजीव, भवभय की करनेवाली समस्त वाणी... लो। वाणी है, वह तो जड़ है, परन्तु उसमें बोलने का विकल्प है, वह भवभय को करनेवाली विकल्प दशा है। वाणी तो जड़ है। भाषा तो ऐसी है, देखो! भव्यजीव, भवभय की करनेवाली समस्त वाणी को छोड़कर... इसका अर्थ कि विकल्प को छोड़कर। वाणी बोलने में जो विकल्प / राग है, उसे छोड़कर, ऐसा इसका अर्थ है। यह संस्कृत प्रमाण तो ऐसा अर्थ नहीं होता। वाणी को छोड़कर, ऐसा लिख है। लो, वाणी क्या छोड़े? वाणी करता कब है, वह वाणी छोड़े? वह तो जड़ है परन्तु वाणी बोलने का जो भाव है, वह राग है। आहाहा! छद्मस्थ को, हों! केवली को कुछ है नहीं। राग नहीं है। वह तो इच्छा बिना भगवान की दिव्यध्वनि वाणी निकलती है परन्तु छद्मस्थ हैं, रागी हैं, इसलिए वाणी के योग में राग का परिणाम निमित्त है।

उस परिणाम को छोड़कर। देखो! यह व्याख्यान करने की वाणी में भी शुभराग है, कहते हैं। आहाहा! छद्मस्थ को। उसे वाणी की गुप्ति की बात है न। वह भवभय की करनेवाली समस्त वाणी को छोड़कर... शुभराग। वाणी में जो अशुभराग वह तो ठीक, परन्तु धर्म की वाणी में जो कहने में राग है... आहाहा! उसे भी छोड़कर। शुद्ध सहज— विलसते चैतन्य चमत्कार का एक का ध्यान करके,... यह वाणी का विकल्प है, उसे

छोड़कर, स्वाभाविक शुद्ध सहज विलसते। भगवान आत्मा स्वभाविक विलसता-खिलता प्रभु चैतन्य अन्दर है। ऐसा चैतन्य चमत्कार। भगवान आत्मा में चैतन्य चमत्कार भरा हुआ है। ऐसा चैतन्य चमत्कार आत्मा का तत्त्व **एक का ध्यान...** उसका एक का ध्यान। आहाहा!

वाणी के राग को छोड़कर। वह राग तो भवभय का करनेवाला है, कहते हैं। आहाहा! रचना तो देखो! उपदेश में शुभराग, वह भवभय का कारण है। आहाहा! मुनि का। वे कहे, उपदेश देने में निर्जरा है। कितना अन्तर! उपदेश से दूसरे धर्म प्राप्त करें, उसका जीव को लाभ होगा। यहाँ कहते हैं, वह सब बात मिथ्या है। छद्मस्थ की उपदेश की वाणी है, उसमें राग आता है। उस राग को छोड़कर वीतराग सहज विलसता प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, चैतन्य चमत्कार मूर्ति प्रभु स्वयं है, उसका एक का ध्यान करके। देखो! उस आत्मा का एक का ध्यान। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय भेद या भगवान का ध्यान, वह नहीं। भगवान का ध्यान करने जाए तो विकल्प, राग उठता है क्योंकि भगवान परवस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

एक भगवान वापस। एक शब्द क्यों प्रयोग किया है? कि यह वस्तु आत्मा है, इसमें अनन्त गुण है और दशा है, ऐसे भेद नहीं हैं। अकेला चैतन्यबिम्ब प्रभु एक का ध्यान करके। यह मोक्ष का मार्ग है। यह नियमसार है न? अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द। इन्द्रियों में कल्पित आनन्द, वह तो दुःख है। इन्द्रियों के विषयों में कल्पित सुख, वह तो दुःख है, जहर है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का रस है। आहाहा! ऐसा आत्मा, उसका एक का ध्यान करना। उसी ध्यान को यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहते हैं।

चैतन्य चमत्कार का एक का... यह द्रव्य हुआ, वस्तु। **ध्यान करके,...** यह पर्याय हुई। समझ में आया? जिसे आत्मा का हित करना हो और इन चार गतियों के दुःख मिटाने हों, उसे क्या करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वाभाविक विलसता... आहाहा! चैतन्य चमत्कार प्रभु आत्मा है। उसका वह एक स्वरूप है, एकरूप है, उसका ध्यान करके... आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी उसे ध्येय बनाकर, ज्ञान में भी उसे ध्येय बनाकर, चारित्र में भी उसे विषय बनाकर... आहाहा! वीतराग का मार्ग ऐसा है। दिव्यध्वनि में यह आया था। विपुलाचल पर्वत पर भगवान की वाणी इन्द्र, गणधरों के समक्ष वाणी खिरी, वह यह निकली। आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप सहज चैतन्य चमत्कार, ऐसी चीज़ तू अन्दर है। उसका ध्यान कर, उसे ध्येय बना, उसे विषय बना। राग और पर का विषय लक्ष्य में से छोड़ दे। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा, अकेला अमृत के, शान्ति के रस से भरपूर समुद्र है। आहाहा! उसे पामररूप से लोगों ने माना है। मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग को उसकी कीमत नहीं। इसी प्रकार परमात्मा कहते हैं कि तेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी पड़ी है। आहाहा! उसे न मानकर बाहर खोजता है। कुछ विषयों में सुख है, जैसे में सुख है, इज्जत में (सुख है)... जहर है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु जँचे कैसे? यह लहर है। ऐई! धीरुभाई! लड्डू खाते हों, पैसा कुछ पचास हजार पैदा होता हो। कल कोई कहता था कि पचास हजार कमाते हैं। कोई कहता था। मुझे तो पैसा बहुत बढ़ गया। दुःख का निमित्त। यह कोई कल कहता था। बारह महीने में पचास हजार कमाते हैं। यह कोई कहता था। बहुत लोग आते हैं। लाख, दो लाख, दस लाख कमाते हैं, परन्तु उसमें क्या हुआ। धूल, वह तो जड़ है। वह तो मिट्टी-धूल है। धूल में सुख है? उस पर लक्ष्य जाता है, वह राग और आकुलता है। आहाहा! धीरुभाई! मार्ग गजब।

यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव परमात्मा साक्षात् समवसरण में विराजते हों और उनका लक्ष्य करे और ध्यान करने जाए तो राग है क्योंकि परद्रव्य पर लक्ष्य जाए, वहाँ राग ही होता है। आहाहा! आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, चैतन्यमूर्ति प्रभु अन्दर है। उसका ध्यान करने से शान्ति और आनन्द होता है, उसे धर्म होता है। परद्रव्य के लक्ष्य से और ध्यान से धर्म नहीं होता। आहाहा!

उसका ध्यान करके, फिर,... उसे क्या फल आता है, ऐसा कहते हैं। दोनों लेते हैं। मार्ग और मार्ग का फल। पापरूपी तिमिरसमूह को नष्ट करके... पाप शब्द से पुण्य और पाप के दोनों भावों को यहाँ पाप कहा है। कहो, समझ में आया? भगवान अन्दर अमृतस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द से डोलता नाथ, प्रभु अन्दर है। आहाहा! अरे! कहते हैं कि उसे पकड़ न, उसे ध्यान में ले न, उसका ध्यान रख न, उसका ध्यान रख न, उसका ध्यान रख न। आहाहा! तो तुझे शान्ति होगी और उसके फलरूप से पुण्य और पाप का अन्धकार... भाषा देखो! पुण्य और पाप के भाव, वह तो अज्ञान अन्धकार है। वह चैतन्य चमत्कार नहीं, ऐसा सामने डालना है न? यहाँ चैतन्य चमत्कार—भगवान आत्मा चैतन्य

चमत्कार का नूर, उसका पूर आत्मा है। आहाहा! और पुण्य तथा पाप तिमिर है, अज्ञान अन्धकार है। भाव में, हों! फल की बात, धूल की बात नहीं है। आहाहा! यह तो शुभ और अशुभभाव, वाणी को छोड़कर... राग, वह तो पाप है, कहते हैं, अन्धकार है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश के चमत्कार का नूर, उसका ध्यान करने से, उसका आश्रय करने से, उसे अवलम्बन में लेने से जो दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी दशा होती है, वह पुण्य-पाप के अन्धकार का नाश करनेवाली है। कहो, समझ में आया? **पापरूपी तिमिरसमूह को...** आहाहा! असंख्य प्रकार के पुण्य-पाप के विकल्प; यहाँ तो वाणी बोलने में राग (होता है), वह अन्धकार है, कहते हैं। विकल्प है न? वह तिमिर है। अन्धकार के समूह को **नष्ट करके...** आहाहा! एक-एक बोल समझने में अभी विवाद। धर्म तो बाद में परन्तु अभी क्या कहते हैं और कैसा है, यह समझने का ठिकाना नहीं होता और धर्म हो गया। जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है। आहाहा!

अरे! **सहजमहिमावंत...** आनन्दसुख की खानरूप ऐसी मुक्ति। यह मुक्ति का विशेष है। पहले **सहज-विलसते चैतन्य चमत्कार...** द्रव्य का विशेषण था। उसका ध्यान, वह पर्याय। अब मुक्ति होती है, वह भी पर्याय है। ऐसे अन्तरस्वरूप को ध्यान में लेने से, उसके फल में सहज महिमावन्त मुक्ति सहज महिमा है। सिद्धपद **सहजमहिमावंत आनन्दसौख्य की खानरूप...** भाषा देखो! आनन्दरूप सुख। आहाहा! आनन्द की-सुख की खान है। कौन? मुक्ति, हों! आहाहा! ऐसे तो लोगस्स में शोर मचाते रहते हैं, 'सिद्धा सिद्धिं मम दिशंतु' ऐई! लोगस्स में आता है या नहीं? लोगस्स के अर्थ कुछ समझे नहीं। तूमड़ी में कंकड़। पहाड़े बोले जाएँ। पहले लोगस्स-बोगस्स किया था या नहीं? किया होगा। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिशंतु' हे सिद्ध भगवान! हमें सिद्धपद दिखाओ। दिखाओं का अर्थ हमें केवलज्ञान होओ, ऐसी प्रार्थना करता है। आहाहा! सामायिक में सात पाठ आते हैं, नहीं? १. णमो अरिहंताणं, २. तिख्खुत्तो, ३. इच्छामि पडिक्कमणुं, ४. तस्स उत्तरी, ५. लोगस्स, ६. करेमि भन्ते, ७. णमोत्थुणं सात पाठ। अर्थ की कुछ खबर नहीं होती। अभी अर्थ की खबर नहीं होती, उसे भाव का भासन होना, अन्तर में आत्मा (कैसे) भासित हो? बस, सात बार बोले तो सामायिक हो गयी। हम भी पहले वहाँ ऐसा सब करते थे। पालेज में पर्यूषण आवे तो फिर शाम को इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करें। पूरे दिन दुकान चले। अपवास किया हो, चतुर्विध आहारत्यागवाला अपवास हो तो भी दुकान में बैठें।

शाम को सब इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करें। एक-दो गायन गायें। हो गया धर्म, लो! धूल में भी नहीं होता था।

गाते थे 'देखो रे... देखो रे... जैनों कैसे ब्रत धारी...' ऐसा आता है न? जम्बूस्वामी। ऐसा गाते। सब कण्ठस्थ किये हुए थे। सब बैठे हों वहाँ गाते। नहीं खबर... हमारे सब सुननेवाले आवे। फावाभाई और धीरुभाई ये थे न? धीरजलाल, मनहर का पिता। सब भोले-भट्ट जैसे। आहाहा! फिर वह सत्यनारायण की कथा बैठावे।

मुमुक्षु : आत्मा सत्यनारायण है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सत्यनारायण तो यह है। वह तो सत्यनारायण, वह ब्राह्मण करे और फिर उसकी प्रसादी नहीं ली, उसका जहाज डूब गया, अमुक हुआ, ऐसी बातें आती हैं। आती हैं या नहीं? अन्तिम वह प्रसादी... इसलिए तब तक उसे बैठना, ऐसा। इसलिए ब्राह्मण ने ऐसी रचना कर रखी है। चला नहीं जाए ऐसा। जिसने प्रसादी नहीं ली, उसका जहाज डूब गया, ऐसा हुआ। इसलिए तब तक सुनने बैठना। वह चाहे जैसा गप्प मारे। हमने यह सब वहाँ सुना है, हों! किया नहीं परन्तु सुना है। आहाहा! जैन में नाम धरावे तो भी उसे कोई भान नहीं होता।

कहते हैं, आहाहा! जिसने आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, परमात्मा जिसका अन्तरस्वरूप है, उसे जिसने ध्यान में लेकर पकड़ा, उसे मुक्ति सहज महिमावन्त आनन्दसुख की खान, ऐसी उस मुक्ति को अतिशयरूप से प्राप्त करता है। खास करके (प्राप्त करता है)। उसे मुक्ति होती ही है; दूसरा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे गति-वति नहीं होती। मोक्ष के मार्ग से तो मोक्ष ही मिलता है। यह मार्ग है, इस मार्ग से जाए तो वहाँ मोक्ष आवे। मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप वह तो है। उसका ध्यान करने से पर्याय में मुक्ति प्रगट होती है। आहाहा! यह उसकी मोक्ष की क्रिया, मोक्षमार्ग की यह क्रिया। इस क्रिया की सूझ नहीं पड़ती। एक बार यात्रा कर आओ। चलो, अषाढ़ शुक्ल चौदस की। पालीताणा। बारह महीने के पाप धूल जाएँगे। फिर वापस नया पाप बाँधने का। आहाहा! धर्म के नाम से अनादि से ठगाया है न। धर्म क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती। यह ६७वीं गाथा हुई। ६८ वीं गाथा।

गाथा-६८

बंधनछेदनमारण आकुंचण तह प्रसारणादीया ।
 काय-किरिया-णियत्ती णिहिट्टा कायगुत्ति ति ॥६८॥
 बन्धनछेदनमारणाकुञ्चनानि तथा प्रसारणादीनि ।
 काय-क्रिया-निवृत्तिः निर्दिष्टा काय-गुप्तिरिति ॥६८॥

अत्र कायगुप्तिस्वरूपमुक्तम् । कस्यापि नरस्य तस्यान्तरङ्गनिमित्तं कर्म, बन्धनस्य बहिरङ्गहेतुः कस्यापि कायव्यापारः । छेदनस्याप्यन्तरङ्गकारणं कर्मोदयः, बहिरङ्गकारणं प्रमत्तस्य कायक्रिया । मारणस्याप्यन्तरङ्गहेतुरान्तर्यक्षयः, बहिरङ्गकारणं कस्यापि कायविकृतिः । आकुञ्चनप्रसारणादिहेतुः संहरणविसर्पणादिहेतुसमुद्घातः । एतासां कायक्रियाणां निवृत्तिः कायगुप्तिरिति ।

मारण, प्रतारण, बन्ध छेदन और आकुञ्चन सभी ।
 करते सदा परिहार मुनिजन, गुप्ति पालें काय की ॥६८॥

गाथार्थः—[बन्धनछेदनमारणाकुंचनानि] बन्धन, छेदन, मारण (मार डालना), आकुंचन (संकोचना) [तथा] तथा [प्रसारणादीनि] प्रसारण (विस्तारना) इत्यादि [कायक्रियानिवृत्तिः] कायक्रियाओं की निवृत्ति को [कायगुप्तिः इति निर्दिष्टाः] कायगुप्ति कहा है ।

टीका : यहाँ कायगुप्ति का स्वरूप कहा है ।

किसी पुरुष को बन्धन का अन्तरंग निमित्त कर्म है, बन्धन का बहिरंग हेतु किसी का काय व्यापार है; छेदन का भी अन्तरंग कारण कर्मोदय है, बहिरंग कारण प्रमत्त जीव की कायक्रिया है; मारण का भी अन्तरंग हेतु आन्तरिक (निकट) सम्बन्ध का (आयु का) क्षय है, बहिरंग कारण किसी की कायविकृति है; आकुंचन, प्रसारण आदि का हेतु संकोचविस्तारादिक के हेतुभूत समुद्घात है ।—इन कायक्रियाओं की निवृत्ति, वह कायगुप्ति है ।

गाथा-६८ पर प्रवचन

यह कायगुप्ति की व्याख्या है। ६८ वीं गाथा।

बंधणछेदणमारण आकुंचण तह पसारणादीया।

काय-किरिया-णियत्ती णिद्धिद्धा कायगुप्ति त्ति॥६८॥

नीचे हरिगीत—

मारन, प्रतारण, बन्ध छेदन और आकुंचन सभी।

करते सदा परिहार मुनिजन, गुप्ति पालें काय की ॥६८॥

यह अन्तरंग कारण आया, भाई! यहाँ कायगुप्ति का स्वरूप कहा है। यह अन्तरंग कारण।

मुमुक्षु : निमित्त को अन्तरंग कारण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दूसरी बात है।

टीका : किसी पुरुष को बन्धन का अन्तरंग निमित्त कर्म है,... उसे कोई बाँधे, परन्तु उस बाँधने में अन्तरंग कारण तो उसका कर्म है। उसे कर्म है, इसलिए उसे कोई बाँधता है। अन्तरंग कारण कर्म है। समझ में आया ? बन्धन का बहिरंग हेतु किसी का काय व्यापार है;... बाँधे न, इसलिए काया का व्यापार, वह बाहर का निमित्त है। समझ में आया ? किसी पुरुष को बन्धन का अन्तरंग निमित्त... उसे बाँधे, कोई वृक्ष के साथ बाँधे, डोरी से बाँधे, पैर बाँधे, लोहे के सरिये से बाँधे परन्तु उस बाँधने में मूल कारण तो असाता का कर्म अन्दर है, वह वास्तविक निमित्त है। बाहर में काय का व्यापार दूसरे का बाँधने का।

छेदन का भी अन्तरंग कारण कर्मोदय है,... कोई छेदे, शरीर के टुकड़े करे, कान काटे, नाक काटे। अन्तरंग कारण तो कर्मोदय है... वीरजीभाई बस में थे। उसमें लुटेरे आये थे। 'ढसा' के पास। वीरजीभाई अन्दर थे। सबको नीचे उतारा, उसमें जो बस का ड्राईवर था, उसका नाक काट दिया। वीरजीभाई सबको कहे, मुख उस ओर रखो, इसलिए वापस अपने को इस ओर भागना है न। मुख सबका उस ओर रखाया। वीरजीभाई कहे, इसका

बेचारे का नाक कट गया। डाल दिया है तो लाओ न, खोजें। परन्तु वह नाक भी साथ में ले गया। वीरजीभाई कहे मैं भी साथ में था। सबको उस ओर उतार डालो। भाई! हमारे पास पैसा होवे तो ले लो। वह नहीं लिया। उसके साथ वैर था, इसलिए उसका नाक काटा। अन्तरंग हेतु तो उसका असाता का उदय है। निमित्त (है)।

बाह्य छेदने का बहिरंग कारण प्रमत्त जीव की कायक्रिया है;... भाषा देखो! कोई जीव भी छेदा जाए। प्रमत्त मुनि चलते हों, उनकी कायक्रिया। उन्हें पाप लगता है, यह प्रश्न अभी नहीं है। यहाँ तो उसे निमित्त कौन? प्रमत्त जीव हो वहाँ तक... चलता हो प्रमत्त में चलते हैं न? अप्रमत्त में तो स्थिर होते हैं। इसलिए पहले गुणस्थान तो प्रमत्त क्रिया होती है, उसके छेदन में काय का व्यापार निमित्त होता है।मारन का भी अन्तरंग हेतु आन्तरिक (निकट) सम्बन्ध का (आयु का)... है। मारण का अन्तरंग हेतु अन्दर आयुष्य है। आयुष्य पूरा हुआ तो मरता है। बाहर में कोई मार सके, ऐसा है नहीं। आहाहा!

बहिरंग कारण किसी की कायविकृति है;... काया का व्यापार निमित्त होता है और वह मर जाता है। आयुष्य पूरा हो, वह अन्तरंग कारण, यह बाह्य निमित्त। आकुंचन, प्रसारण आदि का हेतु संकोचविस्तारादिक के हेतुभूत समुद्घात है। समुद्घात होता है न? ये प्रदेश बाहर निकलें। इन कायक्रियाओं की निवृत्ति, वह कायगुप्ति है। तीनों से निवृत्त होना और अन्तर आत्मा के ध्यान में जाना, इसका नाम कायगुप्ति कहने में आती है। पहले समझे तो सही कि यह कायगुप्ति किसे कहना? कर सके, न कर सके—यह प्रश्न बाद में, परन्तु काया का व्यापार-विकल्प जो है, उसे छोड़ना और अन्तर के आत्मा के आनन्द के ध्यान में आना, उसे कायगुप्ति कहा जाता है। आहाहा!

श्लोक-९३

अब ६८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(अनुष्टुप्)

मुक्त्वा कायविकारं यः शुद्धात्मानं मुहुर्मुहुः ।
सम्भावयति तस्यैव सफलं जन्म सन्सृतौ ॥९३॥

(दोहा)

तजकर काय विकार जो आत्म भावना भाय ।
पुनः पुनः ध्यावे उसे जन्म सफल हो जाए ॥ ९३ ॥

[श्लोकार्थः] कायविकार को छोड़कर, जो पुनः पुनः शुद्धात्मा की सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसी का जन्म संसार में सफल है।

श्लोक-९३ पर प्रवचन

अब ६८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

मुक्त्वा कायविकारं यः शुद्धात्मानं मुहुर्मुहुः ।
सम्भावयति तस्यैव सफलं जन्म सन्सृतौ ॥९३॥

श्लोकार्थः : कायविकार को छोड़कर,... कायविकार को छोड़कर, जो पुनः पुनः शुद्धात्मा की सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है,... लो, आहाहा! शुद्ध प्रभु चैतन्य आनन्दमूर्ति की भावना करता है। उसमें एकाग्र होता है, उसी का जन्म संसार में सफल है। बाकी सबके जन्म (निरर्थक हैं)। जन्मे, वे निरर्थक मरेंगे और वापस जन्मेंगे। आहाहा! कायविकार को छोड़कर, जो पुनः पुनः शुद्धात्मा की सम्भावना (सम्यक् भावना)... ऐसा। अर्थात् चैतन्यवस्तु भगवान आत्मा की अन्तर की बराबर एकाग्रता

(हो) उसे सम्भावना-भावना कहने में आता है। **उसी का जन्म संसार में सफल है।** जन्मकर फिर से न जन्मना, ऐसा उसने किया। कायागुप्ति है न? शरीर नहीं मिले, ऐसा कहते हैं। उसे जन्म ही नहीं होगा। आहाहा!

अन्तर वस्तु भगवान् आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का जिसने ध्यान (किया), वर्तमान ध्यान की दशा में उसे जिसने विषय बनाया, उसे जन्म कैसा? कहते हैं। उसका मिला हुआ जन्म सफल है। फिर से काया नहीं मिलेगी। आहाहा! **उसी का जन्म संसार में सफल है।** कायागुप्ति में यह डाला है, लो! अब यह मन-वचनगुप्ति की-निश्चय की बात करते हैं। पहले व्यवहार की बात थी। मन-वचनगुप्ति की, व्यवहार की बात थी। अब निश्चय की बात करते हैं। ६९ गाथा।

गाथा-६९

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती ।
अलियादि णियत्तिं वा मोणं वा होइ वइगुत्ती ॥६९॥

या रागादिनिवृत्तिर्मनसो जानीहि तां मनोगुप्तिम् ।
अलीकादि-निवृत्तिर्वा मौनं वा भवति वाग्गुप्तिः ॥६९॥

निश्चयनयेन मनोवाग्गुप्तिसूचनेयम् । सकलमोहरागद्वेषाभावादखण्डाद्वैतपरमचिद्रूपे
सम्यगवस्थितिरेव निश्चयमनोगुप्तिः । हे शिष्य त्वं तावदचलितां मनोगुप्तिमिति जानीहि ।
निखिलानृतभाषापरिहृतिर्वा मौनव्रतं च । मूर्तद्रव्यस्य चेतनाभावाद् अमूर्तद्रव्यस्येन्द्रियज्ञाना-
गोचरत्वादुभयत्र वाक्प्रवृत्तिर्न भवति । इति निश्चयवाग्गुप्तिस्वरूपमुक्तम् ।

हो राग की निवृत्ति मन से नियत मनगुप्ति वही ।
होवे असत्य-निवृत्ति अथवा मौन वच गुप्ति कही ॥ ६९ ॥

गाथार्थ :— [मनसः] मन में से [या] जो [रागादिनिवृत्तिः] रागादि की
निवृत्ति [ताम्] उसे [मनोगुप्तिम्] मनोगुप्ति [जानीहि] जान । [अलीकादिनिवृत्तिः]
असत्यादि की निवृत्ति [वा] अथवा [मौनं वा] मौन, [वाग्गुप्तिः भवति] वह
वचनगुप्ति है ।

टीका :— यह, निश्चयनय से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की सूचना है ।

सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में
सम्यक् रूप से अवस्थित रहना ही निश्चयमनोगुप्ति है । हे शिष्य! तू उसे वास्तव में
अचलित मनोगुप्ति जान ।

समस्त असत्य भाषा का परिहार अथवा मौनव्रत, सो वचनगुप्ति है । मूर्तद्रव्य
को चेतना का अभाव होने के कारण और अमूर्तद्रव्य इन्द्रियज्ञान से अगोचर होने के
कारण दोनों के प्रति वचनप्रवृत्ति नहीं होती । इस प्रकार निश्चयवचनगुप्ति का स्वरूप
कहा गया ।

गाथा-६९ पर प्रवचन

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती ।
 अलियादि णियत्तिं वा मोणं वा होइ वइगुत्ती ॥६९॥
 हो राग की निवृत्ति मन से नियत मनगुप्ति वही ।
 होवे असत्य-निवृत्ति अथवा मौन वच गुप्ति कही ॥ ६९ ॥

दो प्रकार । टीका : यह, निश्चयनय से... अर्थात् सच्ची दृष्टि से । मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की सूचना है । सच्ची मनोगुप्ति और सच्ची वचनगुप्ति की व्याख्या है । वह व्यवहार थी, सच्ची नहीं थी; व्यवहार था, विकल्प था ।

मुमुक्षु : इस अधिकार में ही निश्चय दिया है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ ही दिया है । आहाहा ! निश्चय के बिना व्यवहार कैसा ? ऐसा सिद्ध करते हैं । पहले व्यवहार की बात की थी, पश्चात् निश्चय की । विकल्प किया अशुभ से छूटना और शुभ में आना, यह व्यवहार मनोगुप्ति है । यहाँ से छूटकर स्वरूप में आना, यह निश्चयगुप्ति है । आहाहा ! यह, निश्चयनय से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की सूचना है ।

सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में सम्यक् रूप से अवस्थित रहना ही निश्चयमनोगुप्ति है । लो, पहले में ऐसा आया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शान्ति की भूमिका में अशुभ से हटकर शुभ में आना, यह व्यवहार मनोगुप्ति है । यहाँ तो शुभ और अशुभ दोनों विकल्प से हटकर अन्दर में जाना । देखो ! सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव... उसमें राग था । व्यवहार मनोगुप्ति में धर्मी को भी शुभराग था । यह तो सकल मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण... जिसने मोह अर्थात् मिथ्यात्वभाव छोड़ा है और राग तथा द्वेष का विकल्प छोड़ा है ।

अखण्ड अद्वैत परमचिद्रूप में... लो ! भगवान आत्मा अखण्ड आत्मा है, अद्वैत है । जिसमें दो भेद ही नहीं । लो, यह अद्वैत आत्मा आया । सब होकर आत्मा एक, ऐसा नहीं । जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसा कहते हैं । अखण्ड है और द्वैत नहीं । अद्वैत है, एक स्वरूप है, परमचिद्रूप-परमज्ञानरूप प्रभु । ज्ञानस्वभावरूप परम ज्ञानस्वभावरूप । **सम्यक् रूप**

से अवस्थित रहना... यथार्थरूप से अन्तर में अखण्ड चिद्रूप में स्थिर रहना, वही निश्चयमनोगुप्ति है। लो, इसका नाम धर्म है। समझ में आया ? सच्ची मनोगुप्ति इसका नाम है। तब कोई कहे, यह तो सब केवली की बात है। केवली की कहाँ, यहाँ तो मुनि की बात है।

मुमुक्षु : केवली होने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली होने का उपाय, ऐसा जो मुनिमार्ग, उसकी ऐसी दशा होती है, उसकी बात है। उसे पहले श्रद्धा में तो लेना पड़े न ? सच्चा साधुपना कैसा होता है, सच्चा मुनिपना कैसा होता है, यह तो कुछ भान नहीं होता और हो गये साधु। आचार्य भगवन्त... आहाहा! भाई! इसमें तो वस्तु के स्वरूप के भान बिना तो नुकसान है। यह तो तेरे अहित के नाश की बात है। हितपना तो भगवान आत्मा का...

अपना शुद्ध आनन्दस्वभाव अखण्ड अद्वैत परमज्ञानरूप। परमज्ञानरूप। वह तो ज्ञानरूप ही है। जानने के स्वभाव का रूप है। उसमें सम्यक् रूप से अवस्थित रहना... स्थिर रहना। वही निश्चयमनोगुप्ति है। हे शिष्य!... जाणीहि है सही न ? दूसरे पद में। जाणीहि है न ? इसलिए निकाला। हे शिष्य!...

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न ? मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती। आहाहा! इसे तो जान कि इसका नाम मनोगुप्ति कहलाता है। वाणी नहीं, मन का विकल्प नहीं और अन्तर में अखण्ड आनन्द अभेद चिद्रूप में लीनता है, उसे यहाँ सच्ची मनोगुप्ति कहा जाता है।

हे शिष्य! तू उसे वास्तव में अचलित मनोगुप्ति जान। ऐसा। जाणीहि था न, उसमें से निकाला। जाणीहि तो यह किसी को कहते हैं या नहीं ? इसका अर्थ हुआ कि कुन्दकुन्दाचार्य शिष्य को कहते हैं, सन्तों को कहते हैं। तू उसे वास्तव में अचलित... अन्दर आत्मा के आनन्द में स्थिर होना, उसे मन का शुभविकल्प भी नहीं। उसे अचलित मनोगुप्ति जान। और वही धर्म और वही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! रूखा लगे, कोई वार्ता हो, कथा हो तो मन भी भींगे। क्योंकि... ऐसी बात आवे तो मन भींगे। भींगे न ? (यह तो) रूखी बात लगे।

अन्दर वीतराग मूर्ति भगवान में राग नहीं है, ऐसा चैतन्यस्वरूप का विकल्प

छोड़कर ध्यान करे, उसका नाम मनोगुप्ति कहने में आता है। आहाहा! कभी सुना नहीं होगा, विचार में लिया नहीं होगा, प्रयोग तो किया नहीं होगा। मार्ग बहुत अलौकिक है। वीतरागमार्ग परमेश्वर तीर्थकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग कोई दूसरा प्रकार है। अभी सब गड़बड़ बहुत चलती है। बाहर में सर्वत्र धर्म मना लिया गया है। आहाहा! बापू! यह तो तेरा काल जाता है, प्रभु! यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

परम अद्वैत अखण्ड चिद्रूप में अन्दर में स्थिति करना, अन्दर में आसन लगा देना, उसे हे शिष्य! तू मन की गुप्ति की, ऐसा तू जान। देखो! निश्चय में ऐसा आया। इसका ज्ञान... मनोगुप्ति इसे कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब ऐसा सब धन्धा कब करना? कमाना कब?

मुमुक्षु : यह एक ही कमाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कुछ नहीं वहाँ, सुन न! सब पाप के हैरान के रास्ते हैं। पुण्य और पाप दोनों पाप है। उनके रास्ते जाने से चार गति के दुःख हैं। यहाँ तो मोक्ष के मार्ग की व्याख्या है न? यह मन की बात की। निश्चयमनोगुप्ति की बात की, सच्ची मनोगुप्ति की बात की। अब सच्ची असत्य वाणी की बात करते हैं।

समस्त असत्य भाषा का परिहार... एक बात। **समस्त असत्य भाषा का परिहार अथवा मौनव्रत, सो वचनगुप्ति है। मूर्तद्रव्य को चेतना का अभाव होने के कारण...** लो, मूर्तद्रव्य को चेतना का भाषा में अभाव है। और **अमूर्तद्रव्य इन्द्रियज्ञान से अगोचर होने के कारण दोनों के प्रति वचनप्रवृत्ति नहीं होती।** यहाँ समाधिशतक की शैली ली है। कहते हैं कि मैं किससे बोलूँ? भाषा तो जड़ है। उसमें-इस जड़ में तो चेतना का अभाव है। आहाहा! वाणी में आत्मा नहीं है। चेतना का अभाव वाणी में है अर्थात् जड़ वाणी में चेतना का अभाव होने के कारण **अमूर्तद्रव्य इन्द्रियज्ञान से अगोचर होने के कारण...** यह आत्मा है, वह अमूर्त है। इन्द्रियज्ञान के अगोचर है। किसके साथ मैं बात करूँ, ऐसा कहते हैं। वचन गोपन की पद्धति है। यहाँ तो (ऐसा कहे) उपदेश देने से लाभ होता है। लोग धर्म समझें, उसका लाभ मिलता है। यह बात मिथ्या है, कहते हैं। समझ में आया? उपदेश में लाभ मिलता है न? दो-दो घण्टे, तीन-तीन घण्टे सवरे समझाना। कुछ दे या नहीं? दसवाँ भाग नहीं मिलता होगा? इन गरासिया को मिलता है।

मुमुक्षु : दरबार को मिले ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलता है । गरासिया को कहे कि हमारी जमीन में धर्म हो, उसका दसवाँ भाग हम देंगे । यहाँ तब हुआ था न ? जब प्रवचन हाल का खातमुहूर्त हुआ, तब एक भाई थे, गुजर गये । केशूभाई के भाई (थे) वह कहे, इन गरासिया की जमीन में धर्म होता है तो दसवाँ भाग मिलेगा । यह जमीन तुम्हारी कहाँ रही अब ? परन्तु तुम्हारी हो तो भी करनेवाले के परिणाम प्रमाण उसे भाव होते हैं । आहाहा !

मुमुक्षु : जमीन-जमीन की है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह कहे न भाई ! एक मन्दिर बनाओ । उसमें जो कुछ धर्मध्यान होगा, उस मन्दिर बनानेवाले को लाभ होगा । धूल में भी नहीं होगा, सुन न ! कैसे होगा यह ।

मुमुक्षु : अब अहमदाबाद का मन्दिर हो गया, दिक्कत नहीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बहुत बाकी है । ऐसे के ऐसे यह सब अन्यत्र भटका करे और प्रमुख रूप से सामने नाम आवे । अन्दर कुछ काम करे नहीं । ऐई ! तीन-तीन महीने मुम्बई भटका करे । ऐई ! कितना काम है ? एक लाख रुपये का दरवाजा बनाना है, अन्दर काम बहुत है । अभी जा आये हैं न दो महीने । पहली बात... फिर सब लोग बात करे न ? तब तुम नहीं थे । कहे यहाँ बहुत काम करना बाकी है परन्तु कोई ध्यान नहीं देता । लड़के की लड़की का विवाह करना हो तो वहाँ महीना, दो महीना रुकता है । कोई ऐसी बातें करे, डॉक्टर !

मुमुक्षु : न करे तो भी करने बराबर ही है न ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़की के विवाह में पाँच-छह लाख खर्च किये । न्यालभाई और इनके पिता ने कहा, अहमदाबाद के लिए तुम्हें पचास हजार-लाख कुछ देना है या नहीं ? परन्तु यह मानता नहीं ।

मुमुक्षु : जिसे वास्तव में धर्म समझना हो, उसे पैसा खर्च करना चाहिए न, मुझे किसका कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? मलूपचन्दभाई ! ऐसा कहे तुम्हें करना है, हमें

कहाँ करना है ? इतना सब पैसा उसके पास न हो तो कहाँ से दे ? आहाहा ! कौन पैसा दे और ले ? वह तो पैसा जहाँ जानेवाला हो, वहाँ जाता है । आहाहा ! देनेवाला दे, इसलिए प्रयोग करे ? वह तो जड़ के रजकण जिस जगह लगने हैं-खर्च होने हैं, वहाँ वे खर्च होंगे । कौन खर्च कर सकता है ? आहाहा ! ऐसी बात है ।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा इन्द्रिय के अगम्य और इस जड़-वाणी में चैतन्य नहीं । दोनों के प्रति वचनप्रवृत्ति नहीं होती । जाओ । इस प्रकार निश्चयवचनगुप्ति का स्वरूप कहा गया । लो ! वाणी में आत्मा नहीं, आत्मा इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होता । किसके साथ बात करना ? वचन को गोपना, ऐसा कहते हैं । विकल्प नहीं करना, ऐसा । वचन तो... विकल्प... वाणी में आत्मा नहीं है, वहाँ विकल्प क्या करे और आत्मा इन्द्रिय से गम्य नहीं, तो मैं किससे बात करूँ ?

मुमुक्षु : वाणी सुनना या नहीं सुनना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बातें हैं । अगम्यगम्य की बातें हैं । सुनने में आवे, परन्तु वह शुभराग है । सुनने में है, वह तो शुभराग है । उसे कोई राग से ज्ञान नहीं होता । सुनने से नहीं होता । ऐसी गजब बात, भाई ! यह तो वीतरागमार्ग ऐसा है । अन्तर के आत्मा के ज्ञानस्वरूप का स्पर्श करने से ज्ञान होता है । उसे छूने से, अनुभव से ज्ञान होता है, ऐसी बात है ।



श्लोक-१४

अब ६९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(शार्दूलविक्रीडित)

शस्ताशस्तमनोवचस्समुदयं त्यक्त्वात्मनिष्ठापरः,
शुद्धाशुद्धनयातिरिक्तमनघं चिन्मात्रचिन्तामणिम् ।
प्राप्यानन्तचतुष्टयात्मकतया सार्धं स्थितां सर्वदा,
जीवन्मुक्तिमुपैति योगितिलकः पापाटवीपावकः ॥१४॥

(वीरछन्द)

जो प्रशस्त अप्रशस्त वचन-मन के समूह का करता त्याग ।
 आत्मनिष्ठ रहता अरु शुद्धाशुद्ध नय रहित हो निष्पाप ॥
 चिन्तामणि चिन्मात्र प्राप्त कर सदा अनन्त चतुष्टय युक्त ।
 पापारण्य-दहन सम योगितिलक होता है जीवनमुक्त ॥१४ ॥

[श्लोकार्थः —] पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसा योगितिलक (मुनिशिरोमणि) प्रशस्त-अप्रशस्त, मन-वाणी के समुदाय को छोड़कर आत्मनिष्ठा में परायण रहता हुआ, शुद्धनय और अशुद्धनय से रहित ऐसे अनघ (निर्दोष) चैतन्यमात्र चिन्तामणि को प्राप्त करके, अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ सर्वदा स्थित ऐसी जीवनमुक्ति को प्राप्त करता है ।

श्लोक-१४ पर प्रवचन

अब ६९ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

शस्ताशस्तमनोवचस्समुदयं त्यक्त्वात्मनिष्ठापरः,
 शुद्धाशुद्धनयातिरिक्तमनघं चिन्मात्रचिन्तामणिम् ।
 प्राप्यानन्तचतुष्टयात्मकतया सार्धं स्थितां सर्वदा,
 जीवन्मुक्तिमुपैति योगितिलकः पापाटवीपावकः ॥१४॥

मुनिपना कैसा होता है ? योगी में तिलक । आहाहा ! पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान... हैं । मुनि तो उन्हें कहते हैं कि पुण्य और पाप के विकल्प को जलाने में समर्थ है । आहाहा ! पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों, हों ! अग्नि समान ऐसा योगितिलक... आहाहा ! प्रशस्त-अप्रशस्त, मन-वाणी के समुदाय को छोड़कर... देखो ! शुभ और अशुभ, मन का व्यापार और वाणी का व्यापार छोड़कर । मन सम्बन्धी और वाणी सम्बन्धी वह शुभविकल्प भी छोड़कर, ऐसा कहते हैं । आहाहा !

पापरूपी अटवी को... बड़ा वन । पुण्य-पाप के संकल्प-विकल्प के जाल, वह बड़ी वन अग्नि है । उसे जलाने में मुनि अग्नि है । ऐसा कि वह तो बड़ी अटवी है । ओहो ! स्वरूप में आनन्द में रहनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द में रहनेवाले, ऐसे मुनि पुण्य-पाप के वन

को जलाकर राख करते हैं। (मुनिशिरोमणि)... है न ? तिलक। योगी में भी शिरोमणि। प्रशस्त-अप्रशस्त, मन-वाणी के समुदाय को छोड़कर आत्मनिष्ठा में परायण रहता हुआ,... भाषा देखो ! बदलकर व्यवहारचारित्र में भी यह अधिकार लिया। मुनियों की पद्धति ही सन्तों की अलग बात है।

आत्मनिष्ठा में परायण... शुद्धचैतन्य आनन्दस्वभाव ऐसे आत्मा में तत्पर हैं। मुनि तो उसमें तत्पर हैं। आहाहा! शुद्धनय और अशुद्धनय से रहित ऐसे अनघ (निर्दोष) चैतन्यमात्र चिन्तामणि को प्राप्त करके,... शुद्धनय और अशुद्धनय से रहित। शुद्धनय अर्थात् विकल्प। मैं शुद्ध आनन्द हूँ, ऐसा विकल्प और अशुद्धराग की पर्याय स्वभाव में है नहीं। दोनों से रहित। शुद्धनय और अशुद्धनय... के विकल्प से रहित ऐसे अनघ (निर्दोष)... लो! अघ अर्थात् पुण्य और पाप दोनों। उनसे अनघ-निर्दोष चैतन्यमात्र चिन्तामणि को प्राप्त करके,... चैतन्यस्वरूप भगवान चिन्तामणि रत्न आत्मा है। आहाहा! उसे प्राप्त करके। वह चिन्तामणि है। जितना उसमें एकाग्र हो, उतनी उसमें शान्ति और आनन्द मिले, ऐसा चिन्तामणिरत्न भगवान है। उसे पामररूप से माना है। इसने माना है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, उल्लसित होकर उनमें रुका है, उसे आत्मा के चिन्तामणिरत्न की कीमत नहीं है।

अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ... सार्ध है न, सार्ध ? उसमें भी सार्ध है न ? १५वीं गाथा में। परिणति के साथ सार्ध, वह पर्याय है न अन्दर ? कारणपर्याय। वहाँ भी सार्ध है। अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ सर्वदा स्थित... मुक्ति-मुक्ति। जो आत्मा में परायण है, उसे ऐसी दशा प्राप्त होती है। अनन्तचतुष्टयात्मकपने के साथ सर्वदा स्थित ऐसी जीवनमुक्ति को प्राप्त करता है। जीते जी मुक्ति हो गया। राग से, विकल्प से, वाणी से (मुक्त हो गया)। जिसे आत्मा के स्वभाव का ध्यान है, उस ध्यानी को ऐसी दशा प्रगट होती है अर्थात् मुक्ति मिलती है, मोक्ष का मार्ग मिलता है, उसका फल मोक्ष। इसमें दोनों बातें हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा-७०

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ।
हिंसाइ-णियत्ती वा सरीर-गुत्ति त्ति णिहिट्ठा ॥७०॥

कायक्रियानिवृत्तिः कायोत्सर्गः शरीरके गुप्तिः ।
हिंसादि-निवृत्तिर्वा शरीर-गुप्तिरिति निर्दिष्टा ॥७०॥

निश्चयशरीरगुप्तिस्वरूपाख्यानमेतत् । सर्वेषां जनानां कायेषु बह्वायः क्रिया विद्यन्ते, तासां निवृत्तिः कायोत्सर्गः, स एव गुप्तिर्भवति । पञ्चस्थावराणां त्रसानां च हिंसानिवृत्तिः कायगुप्तिर्वा । परमसंयमधरः परमजिनयोगीश्वरः यः स्वकीयं वपुः स्वस्य वपुषा विवेश तस्यापरिस्पन्दमूतिरेव निश्चयकायगुप्तिरिति ।

तथा चोक्तं तत्त्वानुशासने ह्य

(अनुष्टुप्)

उत्सृज्य कायकर्माणि भावं च भवकारणम् ।
स्वात्मावस्थानमव्यग्रं कायोत्सर्गः स उच्यते ॥

तथाहि ह्य

कायिक क्रिया निवृत्ति कायोत्सर्ग तन की गुप्ति है ।
हिंसादि से निवृत्ति भी होती नियत तनगुप्ति है ॥७०॥

गाथार्थः—[कायक्रियानिवृत्तिः] कायक्रियाओं की निवृत्तिरूप [कायोत्सर्गः] कायोत्सर्ग, [शरीरके गुप्तिः] शरीरसम्बन्धी गुप्ति है; [वा] अथवा [हिंसादिनिवृत्तिः] हिंसादि की निवृत्ति को [शरीरगुप्तिः इति] शरीरगुप्ति [निर्दिष्टा] कहा है ।

टीका :— यह निश्चयशरीरगुप्ति के स्वरूप का कथन है ।

सर्वजनों को कायासम्बन्धी बहु क्रियाएँ होती हैं; उनकी निवृत्ति, सो कायोत्सर्ग है; वही गुप्ति (अर्थात् कायगुप्ति) है । अथवा पाँच स्थावरों की और त्रसों की

हिंसानिवृत्ति, सो कायगुप्ति है। जो परमसंयमधर परमजिनयोगीश्वर अपने (चैतन्यरूप) शरीर में अपने (चैतन्यरूप) शरीर से प्रविष्ट हो गये, उनकी अपरिस्पंदमूर्ति ही (अकम्पदशा ही) निश्चयकायगुप्ति है।

इसी प्रकार श्री तत्त्वानुशासन में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

काय क्रिया का त्याग करे भव हेतु विकारी भाव तजे ।
निज में रहे निराकुल स्थिर सो नर कायोत्सर्ग करे ॥

श्लोकार्थ : कायक्रियाओं को तथा भव के कारणभूत (विकारी) भाव को छोड़कर, अव्यग्ररूप से निज आत्मा में स्थित रहना, वह कायोत्सर्ग कहलाता है।

प्रवचन-७०, श्लोक-१५-१६, गाथा-७०-७१, शनिवार, अषाढ कृष्ण २ (गुजराती),
दिनांक १०-०७-१९७१

व्यवहारचारित्र के अधिकार में निश्चयशरीर की गुप्ति की व्याख्या है। कायोत्सर्ग किसे कहना? ७० वीं गाथा।

कायकिरियाणियत्ती काउस्सगो सरीरगे गुत्ती ।
हिंसाइ-णियत्ती वा सरीर-गुत्ति त्ति णिद्धिटा ॥७०॥

नीचे इसका हरिगीत

कायिक क्रिया निवृत्ति कायोत्सर्ग तन की गुप्ति है ।
हिंसादि से निवृत्ति भी होती नियत तनगुप्ति है ॥७०॥

टीका : यह निश्चयशरीरगुप्ति के स्वरूप का कथन है। सर्वजनों को कायासम्बन्धी बहु क्रियाएँ होती हैं;... यह देह / शरीर जड़ है, उस सम्बन्धी की बहुत प्रवृत्ति शरीर में शरीर के कारण होती है। उनकी निवृत्ति,... उस शरीर की क्रिया की ओर के राग के विकल्प का झुकाव जो है, उससे निवृत्ति, वह शरीर की क्रिया से निवृत्ति, ऐसा कहा जाता है। सर्वजनों को... यह शरीर है, वह तो जड़ है, अजीव है। इसकी जो बहुत प्रकार की क्रियाएँ उनकी निवृत्ति, सो कायोत्सर्ग है;... अर्थात् अन्दर में शुभ-अशुभराग

हो, राग, उससे भी निवृत्ति करके स्वरूप में एकाग्र होना, इसका नाम शरीरगुप्ति अथवा कायोत्सर्ग कहा जाता है।

काया का उत्सर्ग अर्थात् आत्मा में शरीर है नहीं और शरीर की क्रिया की ओर के झुकाववाला भाग भी आत्मा में नहीं है। ऐसा जो शुभ-अशुभराग / विकल्प, काया की क्रिया के सम्बन्ध में हो वह, उससे निवृत्ति करके अखण्ड आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द में एकाग्र होना, उसका नाम सच्चा कायोत्सर्ग कहते हैं। तस्सउत्तरी में आता है न ? ताव कायं ठाणेणं माणेणं ज्ञाणेणं अप्पाणं वोसिरामी। काया की ओर का झुकाव छोड़ता हूँ। वचन का और ध्यान में मन का। ठाणेणां, माणेणं, ज्ञाणेणं – ऐसे तीन हैं न ? काया, मन और वाणी, तीनों से मैं छूटता हूँ। कायोत्सर्ग आता है न ? तस्सउत्तरी ! ऐई ! बाबूभाई ! अर्थ भी नहीं आता होगा। ऐसे के ऐसे पहाड़े बोलते हों। उसमें चौथे पाठ में आता है। ताव कायं ठाणेणं माणेणं ज्ञाणेणं अप्पाणं वोसिरामी।

यहाँ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थकरदेव कहते हैं कि कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं, कि जो आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, उसमें लीन होकर काया की क्रियाओं सम्बन्धी के विकल्प की वृत्तियों का अभाव करके स्वरूप में स्थिर होना, आनन्द का वेदन करना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, इसका नाम कायोत्सर्ग है।

मुमुक्षु : अन्दर के आनन्द में...

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द के अतिरिक्त क्या करता है, वह भाव आनन्द का है। यह दुःख का है। कायासम्बन्धी, क्रियासम्बन्धी का विकल्प है, वह सब दुःख है। शुभ-अशुभ राग की वृत्ति, विकल्प उठे-कायासम्बन्धी, मनसम्बन्धी या वचनसम्बन्धी, वह दुःख है। धर्म कहीं दुःखरूप होगा ? यह दुःख के विकल्प जो राग, उससे निवृत्ति अर्थात् स्वरूप में प्रवृत्ति, ऐसा। स्वरूप आनन्द... अभी आगे कहेंगे।

उनकी निवृत्ति, सो कायोत्सर्ग है; वही गुप्ति (अर्थात् कायगुप्ति) है। उसे भगवान गुप्ति कहते हैं। आहाहा ! स्वरूप में अन्दर में जाना और विकल्पों का नाश होना, उसका नाम परमात्मा कायोत्सर्ग की गुप्ति कहते हैं। कहो, समझ में आया ? यह कायोत्सर्गरूपी गुप्ति है। अथवा पाँच स्थावरों की और त्रसों की हिंसानिवृत्ति, सो कायगुप्ति है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस (ये) छह काय है न ? पाँच स्थावर और त्रस, उनके ओर

की हिंसा की निवृत्ति का नाम कायगुप्ति है। पर की ओर के झुकाव का हिंसा का भाव, उससे छूटना और अन्तरस्वभाव आत्मा का, उसमें एकाग्र होना, इसका नाम कायगुप्ति कहा जाता है।

जो परमसंयमधर... मुनि की मुख्यता से बात ली है न? **जो परमसंयमधर...** परम आत्मा के आनन्द में जिसे संयमदशा प्रगट हुई है, उसे मुनि कहते हैं। जिन्हें विकल्प से छह काय की हिंसा छूट गयी है, तथा अव्रत का भाव भी जिन्हें छूट गया है। आत्मा के अतीन्द्रिय निजस्वरूप में जो परम योगीश्वर स्थित हैं। **परमसंयमधर...** हैं ऐसे **परमजिनयोगीश्वर...** आहाहा! परमजिनयोगीश्वर। जिनयोगीश्वर अर्थात् जिन्होंने राग के विकल्प को जीता है, उत्पन्न होने नहीं देते। वीतरागभावना उत्पन्न करते हैं, उन्हें परमजिनयोगीश्वर, उन्हें सन्त-मुनि कहा जाता है।

परमसंयमधर परमजिनयोगीश्वर अपने (चैतन्यरूप) शरीर में अपने (चैतन्यरूप) शरीर से प्रविष्ट हो गये,... देखो! आहाहा! कहते हैं कि यह शरीर की गुप्ति की व्याख्या चलती है न? तो यह शरीर है, वह तो अजीव-जड़ है। उस ओर की प्रवृत्ति का विकल्प है, वह भी विकार है। उससे आत्मा में प्रवेश नहीं होता, परन्तु उस विकल्प की, विकार की वृत्तियों से रहित शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्मा, ऐसा जो अपना निजशरीर। शरीरगुप्ति है न? इसलिए यहाँ शरीर लिया। इस शरीर की प्रवृत्ति के विकल्प-राग से छूटकर और निजशरीर... वीतरागस्वभावस्वरूप आत्मा, वह निजशरीर है। आहाहा! निजशरीर में अपने शरीर से अर्थात् चैतन्यरूप शरीर से प्रवेश कर गये हैं। क्या कहते हैं? पुण्य-पाप का शुभ-अशुभ विकल्प है, वह तो विकार है, वह कोई आत्मा नहीं। आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ऐसा अपना स्वरूप, वह अपना शरीर, उसमें चैतन्यरूप शरीर से-निर्मल वीतरागी परिणति से प्रवेश कर गये हैं। भाषा भी समझना कठिन पड़े। ऐसा हो, उसकी अपेक्षा एक जात्रा-वात्रा कर आवें और कल्याण हो गया, जाओ। आहाहा! कल्याण पूरी चीज़ अलग है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव, परमजिनयोगीश्वर सन्तों की गुप्ति का वर्णन करते हैं। आहाहा! यह शरीर जड़-मिट्टी है, इसकी क्रियाओं से निवृत्त हुआ हो, इसलिए उस ओर के झुकाववाला विकल्प, उससे निवृत्त हुआ; इसलिए शरीर की क्रिया से निवृत्त हुआ,

ऐसा कहने में आता है। वहाँ से निवृत्त हुआ, तब अब गया कहाँ? कि भगवान ज्ञानस्वरूप -आनन्दस्वरूप आत्मा, उसने निर्मल वीतरागी परिणति से अन्दर में प्रवेश किया। आहाहा! यह बात! ऐसा प्रभु का मार्ग है, भाई! आहाहा! दुनिया कुछ की कुछ माने, मार्ग कहीं रह गया।

त्रिलोकनाथ परमात्मा, इन्द्रों और नरेन्द्रों के समक्ष इस शरीर की गुप्ति का वर्णन करते थे। आहा! भाई! यह शरीर है, वह तो मिट्टी-जड़ है। उसकी प्रवृत्ति की क्रिया तो जड़ से जड़ में है परन्तु तुझे विकल्प था कि मैं शरीर का ऐसा करूँ, ऐसा करूँ - ऐसा जो पुण्य-पाप का जो विकल्प है, वह भी वास्तव में तो काया है, पर काया है। आहाहा! वह आस्रव-तत्त्व है, वह पर काया है अर्थात् वह पर का समूह है, वह चैतन्य नहीं। आहाहा!

चैतन्य तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु! ऐसे चैतन्य में चैतन्य द्वारा, स्वशरीर में स्वशरीर द्वारा। स्वशरीर अर्थात् चैतन्य ज्ञानमूर्ति में ज्ञान और वीतराग की वीतरागी शुद्ध परिणति द्वारा चैतन्य के द्रव्य में प्रवेश किया, उसका नाम कायोत्सर्ग कहा जाता है। बाबूभाई! बाप-दादा ने किसी ने कभी सुना भी नहीं होगा। यह कर डाली सामायिक। यह तो अब कभी सुनने आते हैं, इनके पिता तो सुनते ही नहीं। पुरानी रूढ़ि। क्यों चिमनभाई! ऐसा ही है न। प्रत्येक में वह जहाँ-जहाँ पड़ा हो... आहाहा! पारसनाथ परचा पूरे। ऐसा हमारे बारम्बार बोलते। पिताजी दातून करके... इतना बोलते।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, इतना समझे। पारसनाथ परचा पूरे, शान्तिनाथ साता करे। उन्हें कुछ दूसरी खबर नहीं। भोले व्यक्ति हैं। भोले अर्थात् धर्म के लिए भोले, हों! संसार में तो... पारसनाथ परचा पूरे, शान्तिनाथ साता करे - ऐसा बोलते अवश्य दो-तीन लाइन। आहाहा! यह पारसनाथ तो तू है। आनन्द का धाम सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा जो आत्मा, उसमें निर्मल परिणति द्वारा प्रवेश करना अर्थात् अभेद होना। आहाहा! क्या कहते हैं, यह अभी पकड़ना कठिन। शान्तिभाई! आहाहा! इसका नाम कायोत्सर्ग और इसका नाम शरीर की गुप्ति। इस शरीर की ओर के लक्ष्य को छोड़कर, चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, आनन्द का धाम आत्मा है, उसमें निर्मल वीतरागी पर्याय द्वारा अन्तर में प्रवेश करना, इसका नाम कायोत्सर्ग कहते हैं। कायोत्सर्ग कभी किया तो नहीं, परन्तु कायोत्सर्ग कैसे हो, इसकी

खबर भी नहीं। आहाहा! ऐसे का ऐसे मान बैठे। भगवान के सामने खड़ा रहे। 'ताऊ काये ठाठणं' भगवान के दर्शन करने सामने खड़े रहते हैं न? वह तो सब शुभराग है, वह तो विकल्प है, पुण्यभाव है; वह धर्म नहीं, वह कायोत्सर्ग नहीं। आहाहा!

कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं कि जो कायासम्बन्धी की वृत्तियों को छोड़कर-उत्सर्ग, उनका उत्सर्ग किया - छोड़ा। उसे छोड़ा, तब गया कहाँ? ऐसा कहते हैं। इसलिए ऐसा अर्थ किया। कायोत्सर्ग है न, इसलिए उसमें यह बात की। मन की वाणी-देह की जो विकल्पदशा राग है, उससे निवृत्त हुआ। निवृत्त हुआ, तब गया कहाँ? कि आनन्दस्वरूप जो आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु (है), उसे निर्मल परिणति द्वारा अन्तर में अभेद हुआ, इसका नाम कायोत्सर्ग कहने में आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐसा सुने, गुणवन्तभाई! बाहर में तो सुनने में आता नहीं। बस ऐसा करो, सामायिक करो, इच्छामि पडिक्कमियू ईरिया वहियाये। लो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। क्या कहा? यह भाषा जड़ है। इसमें विकल्प हुआ, वह राग है। कोई खबर नहीं होती। अनन्त काल ऐसा का ऐसा वास्तविक तत्त्व के भान बिना व्यतीत किया और चौरासी के अवतार में गल गया। कैसी बात की? देखो! आहाहा!

इस शरीर के प्रति लक्ष्य छोड़कर... शरीर तो शरीर है, वह तो जड़ की क्रिया है। वह कहीं तुझसे नहीं छूटता और तुझसे होता भी नहीं परन्तु यहाँ उसकी ओर का लक्ष्य छोड़ा तो शरीर की क्रिया छोड़ी, ऐसा कहने में आया। उसकी ओर का लक्ष्य छोड़ा, तब उसका अर्थ हुआ कि पुण्य और पाप के विकल्प से भी लक्ष्य छोड़ा और उनसे लक्ष्य छोड़ा, तब गया कहाँ? प्रवेश कहाँ किया? राग में प्रवेश था, शुभ-अशुभ राग में प्रवेश था, वह तो अकायोत्सर्ग था-मिथ्यात्वभाव था। राग में एकाकार, वह तो मिथ्यात्वभाव था। सम्यक्भाव? भगवान चैतन्यशरीर स्व इसकी वस्तु है। ज्ञान, आनन्द, जाननस्वभाव ऐसा जो चैतन्य का निज, अनादि शरीर अर्थात् स्वरूप, उसमें निज शरीर से और निज स्वरूप से। निज स्वरूप से प्रवेश करे, इसका नाम कायोत्सर्ग है। आहाहा! जैन के वाड़ा में जन्मे हों, तथापि यह बात क्या है, वह सुनी नहीं होगी। बालचन्द्रभाई! वृद्ध ने सुनी थी? आहाहा!

तीर्थकर त्रिलोकनाथ, इन्द्र के पूजनीक, पूर्णानन्दस्वरूप प्राप्त, उनकी वाणी में आया, वह बात सन्त कहते हैं। पाठ में है न? 'स्वकीयं वपुः स्वस्य वपुषा विवेश' 'स्वकीयं

वपुः' संस्कृत है। 'स्वकीयं वपुः' अपना जो 'वपुः' अर्थात् शरीर। आनन्द और ज्ञान का धाम आत्मा, वह इसका शरीर। आहाहा! उसे यह (जड़) शरीर नहीं, यह तो मिट्टी जड़ है। पुण्य-पाप के विकल्प / भाव उठें, वह भी विकार है, अचेतन है। वह कहीं चैतन्य की जाति नहीं है। उस विकार के पुण्य-पाप के राग से रहित चैतन्य ज्योति भगवान आत्मा वस्तु पदार्थ है, सत्त्व है, तत्त्व है, वस्तु है, ऐसा निज स्वकीय शरीर, ज्ञान और आनन्द का सागर, ऐसा स्वकीय शरीर, उसमें 'स्वकीयं वपुः स्वस्य वपुषा' संस्कृत में है न? आहाहा! गजब टीका करते हैं। यह कठिन पड़े, इसलिए वे लोग निकाल डालते हैं। अपूर्व बात है। बाबूभाई! अपूर्व कहते थे न कल? बात तो ऐसी है। यह तो वीतराग की है। यह बात अन्यत्र कहीं तीन काल में सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर के अतिरिक्त ऐसा स्वरूप कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! देखो पद्धति!

शरीर की गुप्ति अर्थात् शरीर की ओर के राग के पुण्य-पाप के भाव को छोड़कर इसने काया की क्रियाएँ छोड़ी, ऐसा कहने में आता है। तब ग्रहण क्या किया? कि चैतन्य भगवान आत्मा अन्तर आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु है, ऐसा निज स्वशरीर अर्थात् स्वस्वरूप, उस स्वस्वरूप द्वारा प्रवेश किया। निर्मल दशा द्वारा अन्दर एकाकार हुआ। आहाहा! उस पुण्य के विकल्प से भी अन्तर एकाकार नहीं हुआ जाता। उससे तो निवृत्त हो, तब यहाँ प्रवेश होता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? पहले समझ तो करे। सत्य क्या है? प्रभु का मार्ग क्या है? वीतराग क्या कहना चाहते हैं। खबर नहीं होती और ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। शरीर मृत्यु के समीप होता जाता है। जो अवधि लेकर आया है, उसके निकट होता जाता है। है या नहीं? आहाहा!

यह जीवती ज्योति चैतन्य है। आहाहा! ज्ञान और शान्ति, आनन्द और स्वच्छता, प्रभुता से भरपूर प्रभु! ऐसा इसका स्वस्वरूप कहो या स्वशरीर कहो। उसे राग से विमुख करके और रागरहित निर्मल पर्याय / निर्मलदशा द्वारा निर्मलानन्द प्रभु को पकड़ना, उसमें प्रवेश करना, उसका नाम शरीरगुप्ति और कायोत्सर्ग है। आहाहा! यह निवृत्ति का अर्थ है। उस ओर का लक्ष्य छोड़ना अर्थात् कि यहाँ निवृत्ति हो गयी। यहाँ निवृत्ति है, वहाँ कहाँ उसमें घुस गयी है? वह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। शरीर से ऐसा करना, ऐसा राग है, उसे और उस क्रिया को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध को छोड़ा, उसने काया की

क्रिया को छोड़ा, निवृत्ति (हुई), ऐसा कहने में आता है। क्या हो? भाषा में कहना हो तो उसकी पद्धति अनुसार भाषा में आवे। पाठ में है न 'कायकिरियाणियत्ती।'

भगवान आत्मा... आहाहा! परन्तु कौन है, इसकी खबर बिना अन्दर स्थिर कहाँ से हो? अन्दर जाए कहाँ से? यह चीज़ है कौन? मैं आत्मा... आत्मा... आत्मा कहलाता है। वह कोई वस्तु है या उसमें क्या है? क्या है वह? जैसे ये जड़ादि वस्तु है, वैसे ही भगवान आत्मा भी वस्तु है और जैसे जड़ में जड़ की शक्तियाँ हैं, वैसे भगवान आत्मा में उसकी अरूपी चैतन्य अनन्त शक्तियाँ हैं। ऐसी अनन्त शक्ति का स्वरूप एकरूप भगवान में निर्मल दशा द्वारा अन्दर में जाना, उसे कायोत्सर्ग और उसे योग तथा उसे गुप्ति कहा जाता है। इसका नाम धर्म है। आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न कि अप्पाणं बोसरामि। पूरा आत्मा छोड़ दे। तारु काय ठाणेणं, माणेणं, ज्ञाणेणं, अप्पाणं बोसरामि। यह कौन सा आत्मा छोड़ना है और किस आत्मा को ग्रहण करना है, इसकी कुछ खबर नहीं। अप्पाणं बोसरामि, श्रीमद् कहते हैं। आत्मा को छोड़ दिया, परन्तु कौन सा आत्मा? क्या कहता है तू? यह पुण्य और पाप की वृत्तियाँ हैं, वे अनात्मा हैं, वे यथार्थ आत्मा नहीं। उन्हें छोड़ना, उन्हें छोड़ा और आत्मा त्रिकाल आनन्द स्वरूप है, उसे पकड़ा। आहाहा! कहो, मोहनभाई! आता है न? अप्पाणं बोसरामि। श्रीमद् ने टीका की है। बोलनेवाले को भान नहीं होता कि मैं अप्पाणं बोसरामि—आत्मा को छोड़ूँ परन्तु किस आत्मा को छोड़ूँ और किस आत्मा को ग्रहण करूँ? हिम्मतभाई! आता है न? पाठ कण्ठस्थ किया है? नहीं किया? कपूरभाई ने किया होगा। पहले के पुराने वृद्ध हों, उन्होंने (किया होगा)। तुमने नहीं किया होगा अरविन्दभाई? किया है? आहाहा!

कहते हैं कि अप्पाणं बोसरामि का अर्थ क्या? - कि काया, मन और वाणी की ओर के पुण्य-पाप के विकल्प जो राग, वह अशुद्ध आत्मा, वह व्यवहार आत्मा, वह विकार आत्मा; उसे मैं छोड़ता हूँ। परन्तु क्या बराबर? अभी तक कभी ध्यान रखा है? उस व्यापार में अन्दर कितने लवलीन हो जाए। शरीर अच्छा न हो तो भी वहाँ जाए।

मुमुक्षु : उसमें समझ पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें समझ पड़ती है। शरीर को ठीक नहीं था न, कितने ही

महीने; तो भी झट अच्छा हो जाए तो काम में जाएँ। झट हो जाए। ऐसे साधारण रीति से लोगों को होता है कि शीघ्र मिट जाए, फिर दुकान में घाणी के बैल की तरह मजदूरी में जुड़ जाएँ। आहाहा! बात तो यहाँ विशिष्टता यह की है।

शरीर में अपने (चैतन्यरूप) शरीर से प्रविष्ट हो गये,... धर्मात्मा का कायोत्सर्ग काल ऐसा है कि... आहाहा! भगवान आत्मा... इस शरीर से छूटा, तब निज शरीर क्या? कि ज्ञान आनन्द, शान्ति, स्वच्छता का धाम प्रभु अन्दर आत्मा है। सिद्ध भगवान को जो दशाएँ प्रगट हुई, वे सब दशाएँ आत्मा में भरी हैं। आहाहा! वे दशाएँ आयी कहाँ से? कहीं बाहर से आती है? सिद्ध भगवान, अरिहन्त भगवान को जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? कोई देह में से आता है? वाणी में से, मन में से, राग में से वह दशा आती है? आहाहा! एक समय की पर्याय में से आती है? पर्याय तो एक समय की है। वस्तु है ध्रुव, चैतन्य भगवान। अनन्त ऐसी निर्मल पर्याय का पिण्ड है, उसे यहाँ निर्मल पर्याय द्वारा अन्दर पर्यायवान को पहुँच जाना। आहाहा! कितनों ने तो ऐसे शब्द भी पूरी जिन्दगी में सुने नहीं होंगे। क्यों भाई! मूलचन्दजी! सत्य बात है? ऐसी स्थिति है, बापू! आहाहा! यह जन्म-जरा और मरण का अन्त लाने की बातें हैं, बापू! जन्म-मरण तो अनादि से कर रहा है। ये धूल के सेठ, ये देव, वे सब बेचारे दुःखी हैं। ऐसा होगा? बालचन्दभाई! मलूपचन्दभाई! दुःखी होंगे ये? पूनमचन्द दुःखी होगा? आहाहा!

यहाँ तो परसन्मुख के झुकाव का विकार, वह दुःख और वह आकुलता है। आहाहा! उसे छोड़कर अर्थात् उस ओर का आश्रय तथा झुकाव छोड़कर, यहाँ भगवान चैतन्य द्रव्यस्वरूप में निर्मल दशा... यहाँ राग से छूटा तो निर्मलदशा हुई। उस निर्मल दशा द्वारा अन्दर में गया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! यह कायोत्सर्ग की व्याख्या है। वे तो सामने खड़े रहें (और बोले) काऊ ठाय झाणेण, माणेणं णमो अरिहन्ताणं - लो हो गया दो मिनिट में कायोत्सर्ग। आहाहा! बापू! एक सेकेण्ड का कायोत्सर्ग जन्म-मरण के अन्त को लावे, वह बात यहाँ है। आहाहा! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण के भाव जिसमें नहीं, ऐसे आत्मा में... आहाहा! 'हिसाङ्णियत्ती वा सरीरगुप्ति ति णिदिट्ठा।'

उनकी अपरिस्पंदमूर्ति ही (अकम्पदशा ही) निश्चयकायगुप्ति है। लो, भगवान

आत्मा निज ज्ञान और आनन्दस्वरूप में स्थिर हो, कँपे नहीं। अपरिस्पन्द अर्थात् पुण्य-पाप की कम्पन दशा जहाँ नहीं। ऐसी अपरिस्पन्दमूर्ति ही (अकम्पदशा ही) निश्चयकायगुप्ति है। उसे भगवान (द्वारा) शरीर की गुप्ति और कायगुप्ति कहा जाता है। अब, इसी प्रकार श्री तत्त्वानुशासन में (श्लोक द्वारा) कहा है कि — है न ऊपर श्लोक, १३७ पृष्ठ पर

उत्सृज्य कायकर्माणि भावं च भवकारणम् ।

स्वात्मावस्थानमव्यग्रं कायोत्सर्गः स उच्यते ॥

इसका अर्थ। १३७ पृष्ठ पर अर्थ है।

श्लोकार्थ : कायक्रियाओं को... यह निमित्त की बात ली है। जड़ की क्रिया। उसमें निमित्त-नैमित्त सम्बन्ध है न? इसलिए कायक्रिया नैमित्तिक और विकार निमित्त। कायक्रियाओं को तथा भव के कारणभूत (विकारी) भाव को... देखो! भव का कारण। पुण्य और पाप के विकल्प / राग, वह तो भव का कारण है। आहाहा! भगवान परमात्मा की भक्ति का भाव, वह शुभभाव, वह भव का कारण है। आहाहा! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में राग, वह वीतरागमार्ग में नहीं हो सकता। होवे, उसे जाननेयोग्य आवे परन्तु आदरणीय है, ऐसा नहीं है। भाव होता अवश्य है। आहाहा!

दो बातें ली हैं। कायक्रियाओं को तथा भव के कारणभूत... पुण्य-पाप का विकल्प जो शुभ-अशुभराग, वह भव का कारण है। वह कायक्रिया निमित्त जड़ की, वह कहीं भव का कारण नहीं है, कारण यह है। आहाहा! छोड़कर,... उस विकारीभाव को (छोड़कर।) चाहे तो भगवान की भक्ति का विकल्प हो या दया-दान का हो, व्रत का हो, वह सब राग है। वह राग भव का कारण है। वे शोर मचाते हैं कि समकित्ती का पुण्य भव का कारण? अब सुन न, भाई! वहाँ राग है। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! अभी ऐसी बात सुनना भी कठिन हो गयी है। बाहर की रूढ़ियाँ रह गयीं। सर्प गया और लकीरें रही, कहते हैं न? आहाहा!

कहते हैं, वे काय क्रियाएँ हैं, उनका लक्ष्य छोड़ दे और उनके कारणरूप जो भव का कारण ऐसे विकारीभाव, उन्हें छोड़कर अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़कर अव्यग्ररूप से निज आत्मा में स्थित रहना,... आनन्दरूप से। पुण्य-पाप में व्यग्रता थी। शुभ-अशुभभाव है, वह तो व्यग्रता है, अस्थिरता है, कम्पन है, दोष है। आहाहा! अव्यग्ररूप से निज आत्मा

में... वापस ऐसा। भगवान का आत्मा माने, वह नहीं; वह तो पर है। आहाहा! निज आत्मा में स्थित रहना,... भगवान आत्मा आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय स्वभाव का सागर है। ऐसे निज आत्मा में अन्दर स्थित रहना, वह कायोत्सर्ग कहलाता है। आहाहा! उसका नाम धर्म कहो, उसका नाम कायोत्सर्ग कहो, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। कहो, है या नहीं अन्दर सामने? पाठ सामने है। पाठ का तो अर्थ होता है। बनिये दीवाली में नामा मिलाते हैं या नहीं? बहियों में नहीं मिलाते? दशहरा आवे, तब मिलाते हैं या नहीं? भाई! तुझमें कितना लेना है? उसमें 27835 निकलते हैं। तुझे कितने निकलते हैं, भाई? यहाँ तो तीन हजार निकलते हैं। इतना अधिक अन्तर कैसे होगा? मिलान करो। कोई रकम बाकी रह गयी। वहाँ बनिये मिलाते हैं। यहाँ मिलाने में समय नहीं मिलता।

मुमुक्षु : वहाँ लाभ दिखता है और यहाँ लाभ दिखाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी वहाँ लाभ नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा... लाभ सवाया-बनिये लिखते हैं न? दरवाजे पर लिखते हैं। लक्ष्य लाभ अर्थात् आत्मा का लक्ष्य कर तो लाभ होगा, ऐसा है इसका अर्थ... आहाहा!

एक बार हमने कहा था न? पालेज में साथ में बहियाँ लिखी थीं, बहियों में नामा लिखते हैं न? लोटियावोरा। एक बड़ा गृहस्थ बड़ोदरा में। नामा साथ में लिखा। और माल लेने गये। मैं मुम्बई माल लेने गया था। यह तो (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष की बात है। उसमें वह लोटियावोरा सामने था। पचास हजार का कपड़ा जल गया। लिखकर सब दे, उसका जल गया। मुम्बई। वह सेठ रास्ते में मिला। कैसे हो सेठ? सब जल गया। नामा तो साथ में लिखा था। बहियाँ लिखकर हम वहाँ रहे। क्या कहलाता है? आतिशबाजी। आतिशबाजी करे। उस सेठिया की दुकान में सब साथ में नामा लिखने जाए, परन्तु साथ में नामा लिखा था न कहा उसमें? नहीं, भाई थे। पचास हजार का कपड़ा, हों! महिलाएँ मुश्किल से निकली। अग्नि कैसी लगी रात्रि को, बाहर से निकले, वह क्या कहलाता है कमरा न हो? दरवाजे में से बाहर निकलकर नीचे उतरे। नीचे धग.. धग.. धग.. परन्तु नामा लिखा था न? वह वहाँ क्या करता था? पाप का उदय आवे तो नामा भी पड़ा रहे। आहाहा! सुलग गया।

मुमुक्षु : कपड़े जल गये, उसमें पाप का उदय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पचास हजार गये। हाय.. हाय.. बाहर में भिखारी हो गया। यह तो उस समय की बात है। (संवत्) १९६४-६५-६६ के वर्ष की बात है। उस समय में पचास हजार अर्थात् ? अभी तो तुम्हारे रुपये गिनती में कहाँ आते हैं। अभी के बीस लाख और पहले के एक लाख, इतना अधिक भाव बदल गया है न ?

मुमुक्षु : लोगों में भी बदल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बदल गया। लोगों का बदल गया, दाना का बदल गया, घी का बदल गया, पानी का बदल गया। सब बदल गया। आहाहा! उसमें क्या हुआ ? साथ में नामा लिखा था।

यहाँ तो कहते हैं कि वह तो पूर्व के पुण्य-पाप प्रमाण बाहर की क्रियाएँ होती हैं। वहाँ कहीं तेरे रखने से रहती नहीं। यह रखने से रहे ऐसा है, ऐसा कहता है। आत्मा में ठीक रहना। निज भगवान वस्तु है, पदार्थ है। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा स्वयं है। सत्शाश्वत् ज्ञान और आनन्द है, उसमें स्थित रहना, पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर स्थित रहना, इसका नाम भगवान, कायोत्सर्ग और शरीरगुप्ति और धर्म कहते हैं। आहाहा!



श्लोक-९५

और (इस ७० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —

(अनुष्टुप्)

अपरिस्पन्दरूपस्य परिस्पन्दात्मिका तनुः ।

व्यवहाराद्भवेन्मेऽतस्त्यजामि विकृतिं तनोः ॥९५॥

(वीरछन्द)

अपरिस्पन्द स्वरूप मुझे यह परिस्पन्दमय देह अहो ।
है व्यवहार मात्र से यह तन अतः तजूँ तन विकृति को ॥

[श्लोकार्थः—] अपरिस्पन्दात्मक ऐसे मुझे, परिस्पन्दात्मक शरीर व्यवहार से है; इसलिए मैं शरीर की विकृति को छोड़ता हूँ।

श्लोक-९५ पर प्रवचन

और (इस ७० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) — स्वयं का श्लोक है। पद्मप्रभमलधारिदेव।

अपरिस्पन्दरूपस्य परिस्पन्दात्मिका तनुः।

व्यवहाराद्भवेन्मेऽतस्त्यजामि विकृतिं तनोः॥९५॥

श्लोकार्थः अरे! अपरिस्पन्दात्मक ऐसे मुझे,... स्वयं कहते हैं, मैं तो अपरिस्पन्द अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प में नहीं आऊँ, ऐसी मैं चीज़ हूँ। चैतन्यबिम्ब ध्रुवस्वरूप भगवान, अपरिस्पन्दात्मक स्थिर बिम्ब आत्मा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? कहाँ गये? चेतनजी नहीं? पीछे से आये लगते हैं। अपरिस्पन्दात्मक ऐसे मुझे,... मैं तो अन्दर पुण्य-पाप के राग से भिन्न हूँ। यह पुण्य-पाप और शरीरादि सब परिस्पन्द, कम्पन है। मेरा निजस्वरूप अपरिस्पन्दक है। कम्पन नहीं, अस्थिरता नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प नहीं। स्थिर बिम्ब शान्त आनन्दकन्द हूँ। आहाहा! ऐसे मुझे, परिस्पन्दात्मक शरीर व्यवहार से है;... ऐसा यहाँ पुण्य, पाप और शरीर वह तो व्यवहार से मुझे है, निश्चय से मुझमें है नहीं। पर्याय में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। व्यवहार से अर्थात् है नहीं, उसे कहना।

मुमुक्षु : 'है' उसका अर्थ 'नहीं' करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; 'है' यह ? कहते हैं 'नहीं'। व्यवहार से कहलाता है कि नहीं। आहाहा!

तेरा शरीर तो अपरिस्पन्द है। ध्रुव, ध्रुव नित्यानन्द अविनाशी आदि-अन्तरहित तेरा सत्त्व, ऐसे मुझे यह परिस्पन्दक विकार और शरीर यह मुझे व्यवहार से कहने में आये हैं। परमार्थ से मुझमें है नहीं। आहाहा! गजब भाई! ऐसी क्रिया! इसलिए मैं शरीर की विकृति को छोड़ता हूँ। व्यवहार से परिस्पन्द है न? ऐसा। इसलिए उस व्यवहार को मैं छोड़ता हूँ,

ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान! मेरी चीज़ तो आनन्द का धाम, स्थिरबिम्ब है, उसमें रहकर **परिस्पन्दात्मक विकार-शरीर व्यवहार से है**;... कहने में (आता है), उसे मैं छोड़ता हूँ। इस शरीर की विकृति को छोड़ता हूँ। यह पुण्य-पाप का भाव सब शरीर की विकृति है। यह आत्मा का भाव नहीं है, लो, यह गुप्ति की व्याख्या की।

अब भगवान की व्याख्या करते हैं। अरिहन्त भगवान! णमो अरिहन्ताणं। ये अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी पहिचान कराते हैं। यह व्यवहार है न? परद्रव्य है न? पाँचों ही परमेष्ठी पर है। आत्मा के लिए पर है, इसलिए व्यवहार है। पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जाने से राग ही होता है, इसलिए यहाँ व्यवहार में उनका अधिकार डाला है। समझ में आया? परद्रव्य है न? निज भगवान स्वद्रव्य का आश्रय करने से, उसके अवलम्बन में जाने से इसे धर्म होता है। पर के आश्रय में जाने से धर्म नहीं होता, शुभभाव / पुण्य होता है।

मुमुक्षु : तो भी लोग जाते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाएँ, न जाएँ; यहाँ निश्चय की बात है। वस्तु यह है। राग है, इसलिए गए बिना रहे नहीं। यहाँ तो वस्तु की स्थिति क्या है, यह कहते हैं। वहाँ जाकर धर्म मान लेता है न? धर्म कर आये। ऊपर जाकर नीचे उतरे, लो, जाओ। वह धर्म नहीं है। पाँच परमेष्ठी का आश्रय लेकर राग ही होता है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य है न? वह कहाँ स्वद्रव्य है? आहाहा! वहाँ जाकर कहे, 'शिवपद हमको देजो रे महाराज' भगवान कहते हैं तेरा शिवपद तुझमें है; मेरे सामने देखकर नहीं मिलेगा। आहाहा! दुनिया से तो भारी कठिन काम है।

गाथा-७१

घणघाडकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया ।
 चोत्तिसअदिसयजुत्ता अरहंता एरिसा होंति ॥७१॥
 घनघातिकर्मरहिताः केवलज्ञानादिपरमगुणसहिताः ।
 चतुस्त्रिंशदतिशय-युक्ता अर्हन्त ईदृशा भवन्ति ॥७१॥

भगवतोऽर्हत्परमेश्वरस्य स्वरूपाख्यानमेतत् । आत्मगुणघातकानि घातिकर्माणि घन-
 रूपाणि सान्द्रीभूतात्मकानि ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहनीयानि तैर्विरहितास्तथोक्ताः; प्रागुप्त-
 घातिचतुष्कप्रध्वन्सनासादितत्रैलोक्यप्रक्षोभहेतुभूतसकलविमलकेवलज्ञानकेवलदर्शन-
 केवलशक्तिकेवलसुखसहिताश्च; निःस्वेदनिर्मलादिचतुस्त्रिंशदतिशयगुणनिलयाः; ईदृशा भवन्ति
 भगवन्तोऽर्हन्त इति ।

चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त है ।
 अर्हत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं ॥७१॥

गाथार्थ :—[घनघातिकर्मरहिताः] घनघातिकर्मरहित, [केवलज्ञानादिपरम-
 गुणसहिताः] केवलज्ञानादि परम गुणों सहित और [चतुस्त्रिंशदतिशययुक्ताः] चौंतीस
 अतिशय संयुक्त—[ईदृशाः] ऐसे, [अर्हन्तः] अरहन्त [भवन्ति] होते हैं ।

टीका :— यह, भगवान अरहन्त परमेश्वर के स्वरूप का कथन है ।

[भगवन्त अरहन्त कैसे होते हैं ?] (१) जो आत्मगुणों के घातक घातिकर्म हैं
 और जो घन अर्थात् गाढ़ हैं—ऐसे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय
 कर्म, उनसे रहित वर्णन किये गये; (२) जो पूर्व में बोये गये चार घातिकर्मों के नाश
 से प्राप्त होते हैं ऐसे, तीन लोक को प्रक्षोभ^१ के हेतुभूत सकलविमल (सर्वथा निर्मल)

१. प्रक्षोभ का अर्थ ८५ वें पृष्ठ की टिप्पणी में देखें ।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलशक्ति (वीर्य, बल) और केवलसुख सहित; तथा (३) स्वेदरहित, मलरहित इत्यादि चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप—ऐसे भगवन्त अरहन्त होते हैं।

गाथा-७१ पर प्रवचन

७१ गाथा है

घणघाड़कम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया ।

चोत्तिसअदिसयजुत्ता अरहंता एरिसा होंति ॥७१॥

अरिहन्त भगवान ऐसे होते हैं ? अभी अरिहन्त भगवान कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं होती। अरिहन्त भगवान हैं, अरिहन्त भगवान हैं। आहाहा ! नीचे इसका हरिगीत है।

चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त है।

अर्हत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं ॥७१॥

इसकी टीका है न ? टीका : यह, भगवान अरहन्त परमेश्वर के स्वरूप का कथन है। टीका है ? यह, भगवान... णमो अरिहन्ताणं। वे अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी पहिचान देते हैं। इस ओर १३८ पृष्ठ पर।

[भगवन्त अरहन्त कैसे होते हैं ?] (१) जो आत्मगुणों के घातक घातिकर्म हैं और जो घन अर्थात् गाढ़ हैं—ऐसे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय कर्म, उनसे रहित वर्णन किये गये;... अरिहन्त भगवान तो चार घातिकर्मों का नाश किया है। समझ में आया ? भगवान महावीर आदि जब अरिहन्त पद में विराजमान थे, तब उन्हें चार घातिकर्मों का नाश हुआ था। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। अभी तो भगवान सिद्ध हैं। तीर्थकर अभी तो सिद्ध हैं। वे तो अशरीरी हैं। अभी अरिहन्त नहीं हैं। अभी महाविदेह में अरिहन्त सीमन्धर भगवान हैं। चौबीस तीर्थकर तो अभी णमो सिद्धाणं में शामिल हो गये हैं, वे तो सिद्ध हो गये। वे जब अरिहन्त थे, तब यहाँ थे। अभी अरिहन्त महाविदेह में विराजते हैं। बीस विहरमान तीर्थकर, सीमन्धर भगवान (आदि) विद्यमान तीर्थकर वे अभी अरिहन्तपद में हैं और तीर्थकर (महावीरस्वामी आदि) अभी

सिद्धपद में हैं। यह कहते हैं, **आत्मगुणों के घातक...** अर्थात् निमित्त घातक। घातिकर्म जो घन अर्थात् गाढ हैं। ऐसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय कर्म से रहित कहने में आये हैं। भगवान अरिहन्त चार कर्मों से रहित हो गये हैं।

(२) जो पूर्व में बोये गये चार घातिकर्मों के नाश से प्राप्त होते हैं ऐसे, **तीन लोक को प्रक्षोभ के हेतुभूत...** आनन्द का कारण, ऐसा कहते हैं। भगवान अरिहन्त को जब केवलज्ञान होता है, तब तीन लोक में जरा साता होती है। भगवान जन्मे, केवलज्ञान प्राप्त करे, तब तीन लोक में-नारकी को भी जरा साता होती है। **तीन लोक को प्रक्षोभ के हेतुभूत...** निमित्तभूत। देखो! निमित्तभूत-हेतुभूत कहा न? **सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान,...** परमात्मा को एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा केवलज्ञान होता है। आहाहा! एक 'क' के असंख्यातवें भाग में। 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसके एक समय में तीन काल-तीन लोक भगवान जानते हैं। गत अनन्त काल की अनन्त पर्यायें, वर्तमान और भविष्य, सभी पर्यायोंसहित द्रव्य को एक समय में भगवान जानते हैं। हुआ, होता है और होगा - सब भगवान जानते हैं। भगवान के ज्ञान से कुछ अनजाना नहीं है। आहाहा! जगत में ऐसा ज्ञान होता है, वह भी अभी सत्ता का स्वीकार करना। समझकर, हों! अरिहन्त भगवान को केवलज्ञान होता है। एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने। जिसे केवलज्ञान होने पर जगत के तीन लोक में जरा क्षोभ हो जाता है। क्षोभ अर्थात् सुख। खलबलाहट हो जाती है, अहो! कहीं कोई परमात्मा केवलज्ञान प्राप्त हुए हैं, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

सकलविमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान,... भगवान को होता है। आहाहा! **केवलदर्शन,...** होता है। केवलवीर्य। शक्ति अर्थात् वीर्य। भगवान को अनन्त वीर्य प्रगट हुआ होता है **और केवलसुख...** अकेले आनन्दसहित भगवान हैं। भगवान को तो वहाँ कोई पैसा नहीं, मकान नहीं, स्त्री नहीं, खाना नहीं, आहार-पानी नहीं, कुर्सी-टेबल नहीं। यह सब बैठते हैं न? बढ़िया कुर्सी पर खाने बैठें। यहाँ कपड़ा लटकता हो। यह सब वहाँ नहीं है और कहते हैं कि अनन्त सुख है। बाहर में कहाँ धूल में सुख था। बाहर के लक्ष्य में जाए, इतनी तो आकुलता और राग है। भगवान तो अन्तर आनन्द की दशा शक्तिरूप है, उसे प्रगट की है। आहाहा! सुखी तो भगवान केवली हैं। पैसेवाले, बादशाह और सेठ

सुखी नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसे पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है, (वह सुखी है)। आहाहा!

अरे! ऐसे अस्तित्व की सत्ता का स्वीकार करने जाए, तब वह महासत्ता इतनी एक समय की केवलज्ञान आदि है। इसे द्रव्य पर दृष्टि जाए, तब उसका स्वीकार होता है। आहाहा! गजब बात, भाई! **केवलसुख सहित;...** भगवान हैं। आहाहा! ऐसा कहकर (कहते हैं), उन्हें आहार-पानी का दुःख नहीं अब। या आहार-पानी लेना है? अरिहन्त की बात है न? शरीर सहित हैं उनकी (बात है न)। अरिहन्त की बात है न? शरीर है, तो भी आहार-पानी का दुःख नहीं है। उन्हें आहार-पानी नहीं होता। उन्हें अन्दर में अनन्त आनन्द है। उस सहित है। मुख्य चार शक्ति से सहित है। अनन्त गुण का परिणमन है परन्तु ये चार मुख्य हैं।

स्वेदरहित,... हैं। भगवान को पसीना नहीं होता। अरिहन्त भगवान को पसीना नहीं होता। स्वेद अर्थात् पसीना। **मलरहित...** है। उन्हें दिशा—मल-मूत्र नहीं होता। उन्हें खाने का आहार नहीं है। **इत्यादि चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप...** यह व्यवहार डाला है, वह (अनन्त चतुष्टय) निश्चय गुण हैं। पुण्यप्रकृति में ऐसा भाव उन्हें होता है।

चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप—ऐसे भगवन्त अरिहन्त होते हैं। वास्तविक अरिहन्त का स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्याय से जाने तो उसे आत्मा के साथ मिलान का प्रसंग आवे। इसकी अभी कहाँ दरकार है? भगवान है... भगवान है... बस हो गया। **चौंतीस अतिशय गुणों के निवासस्थानरूप—**ऐसे भगवन्त अरिहन्त होते हैं। ऐसे अरिहन्त भगवान होते हैं। साधारण प्राणी अपने को अरिहन्त मनावे, आहार हो, पानी हो, शरीर में रोग हो और अरिहन्त हैं, ऐसा नहीं। ऐसा बताते हैं। समझ में आया?

श्लोक-९६

अब ७१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं —

(मालिनी)

जयति विदित-गात्रः स्मेर-नीरेज-नेत्रः,
सुकृतनिलयगोत्रः पण्डिताम्भोजमित्रः ।
मुनि-जन-वन-चैत्रः कर्म-वाहिन्यमित्रः,
सकल-हित-चरित्रः श्रीसुसीमा-सुपुत्रः ॥९६॥

(हरिगीतिका)

प्रख्यात तन संयुक्त, अम्बुजवत् प्रफुल्लित नेत्र हैं ।
पुण्य का घर गोत्र है पण्डित कमल को सूर्य हैं ॥
मुनिजन वनों को हैं वसन्तरु कर्मदल के शत्रु हैं ।
सर्व हितकारी सुसीमा मात-सुत जयवंत हैं ॥

[श्लोकार्थः —] प्रख्यात (अर्थात् परमौदारिक) जिनका शरीर है, प्रफुल्लित कमल जैसे जिनके नेत्र हैं, पुण्य का निवासस्थान (अर्थात् तीर्थङ्करपद) जिनका गोत्र है, पण्डितरूपी कमलों को (विकसित करने के लिये) जो सूर्य हैं, मुनिजनरूपी वन को जो चैत्र हैं (अर्थात् मुनिजनरूपी वन को खिलाने में जो वसन्तऋतु समान हैं), कर्म की सेना के जो शत्रु हैं और सर्व को हितरूप जिनका चरित्र है, वे श्री सुसीमा माता के सुपुत्र (श्री पद्मप्रभ तीर्थङ्कर) जयवन्त हैं ।

श्लोक-९६ पर प्रवचन

अब ७१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं— पाँच श्लोक । ओहोहो !

जयति विदित-गात्रः स्मेर-नीरेज-नेत्रः,
सुकृतनिलयगोत्रः पण्डिताम्भोजमित्रः ।

मुनि-जन-वन-चैत्रः कर्म-वाहिन्यमित्रः,
सकल-हित-चरित्रः श्रीसुसीमा-सुपुत्रः ॥९६॥

ओहोहो! त्रः सब त्रः एक-एक पद में।

पद्मप्रभ भगवान को स्मरण किया है। स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव हैं न? टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं। इसलिए पद्मप्रभु को स्मरण किया है। यह टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारि मुनि, दिगम्बर वनवासी सन्त थे। आचार्य नहीं थे, मुनि थे, तो अपने नाम के भगवान जो पद्मप्रभ है, उनको स्मरण करके कहते हैं। भगवान कैसे थे? अरिहन्त पद में थे तब। अभी तो सिद्ध हो गये हैं। चौबीस तीर्थकर अभी तो सिद्ध हो गये। अभी शरीर नहीं है, आठ कर्म का नाश करके सिद्ध हो गये। यह तो थे, तब की बात है।

प्रख्यात (अर्थात् परमौदारिक) जिनका शरीर है,... जिनका परमौदारिक शरीर है। भगवान अरिहन्त हों, केवलज्ञान हो, तब उनका शरीर स्फटिक जैसा परमौदारिक रजकण हो जाते हैं। उन्हें रोग नहीं होता, आहार नहीं होता, पानी नहीं होता—ऐसा शरीर ही स्फटिक जैसा हो जाता है। आहाहा! जिसमें नजर डालने से... भामण्डल आदि साथ में होते हैं न! सप्त भव का ज्ञान हो जाता है। जिसे भव हो उसे। नहीं हो, उसके भूत के तीन और वर्तमान। ऐसा परमौदारिक शरीर भगवान को होता है। अरिहन्त को ऐसा शरीर होता है। लो, यह तो एक पद्मप्रभ का नाम लिखा है, परन्तु सब अरिहन्तों को ऐसा ही होता है।

प्रफुल्लित कमल जैसे जिनके नेत्र हैं,... आहाहा! तीर्थकर पुण्यवन्त होते हैं। कमल प्रस्फुटित हो लम्बे सेड हो, ऐसी आँख होती है। साधारण प्राणी की अपेक्षा तीर्थकर का पुण्य तो सर्वोत्कृष्ट है न? इसलिए उनकी आँख भी प्रफुल्लित कमल जैसे जिनके नेत्र... खिला हुआ कमल हो, ऐसी उनकी आँख होती है। आँख से उन्हें कुछ देखना नहीं, हों! यह तो शरीर ऐसा होता है, ऐसा बताते हैं। वे तो केवलज्ञानी हैं। केवलज्ञान से तीन काल और तीन लोक को देखते हैं। आहाहा! पुण्य का निवासस्थान... है। ऐसा गोत्र है, लो। तीर्थकर गोत्र है न? पुण्य का निवासस्थान है न। उनके पास सर्वोत्कृष्ट पुण्य का फल है।

मुमुक्षु : पुण्य फला अरिहन्ता

पुण्य गुरुदेवश्री : वह यह पुण्य फला अरिहन्ता।

पण्डितरूपी कमलों को (विकसित करने के लिये) जो सूर्य हैं,... कैसे हैं तीर्थंकर भगवान अरिहन्त परमात्मा ? जो कोई पण्डित चतुर और समझदार जीव होते हैं, ऐसे कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य हैं। मूढ़ को क्या करे, कहते हैं। जिसमें समझने की योग्यता और पात्रता है, ऐसे पण्डितों को, **पण्डितरूपी कमलों को (विकसित करने के लिये) जो सूर्य हैं,... सूर्य... परमात्मा हैं।** कहो, समझ में आया ? जैसे यह प्रातःकाल कमल खिलता है न ? सूर्य के निमित्त से जैसे कमल खिलता है। वह कमल खिलता है न ? लकड़ियाँ खिलेंगी ? इसी प्रकार जो पात्र जीव होते हैं, ऐसे पण्डितों को, पण्डितरूपी कमलों को प्रगट होने में वे सूर्यसमान हैं।

मुनिजनरूपी वन को जो चैत्र हैं... बसन्त ऋतु। चैत्र महीने में बसन्त ऋतु होती है न ? सब फूल खिल जाते हैं। पंच वर्णा फूल खिल जाते हैं। भगवान के काल में ऐसे जीव खिल उठते हैं। (**मुनिजनरूपी वन को खिलाने में...**) सन्त, लाखों मुनि होते हैं, उनके खिलने में भगवान (**बसन्तऋतु समान हैं**) आहाहा ! **कर्म की सेना के जो शत्रु हैं...** अर्थात् उन्हें मार डाला है। बाकी चार मुर्दे रहे हैं। घाति को जलाया है और चार अघाति (रह गये हैं)। भगवान को चार कर्म रह गये हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र। सिद्ध भगवान आठ कर्मरहित हैं। अरिहन्त को चार गये और चार बाकी हैं।

और सर्व को हितरूप जिनका चरित्र है... आहाहा ! चरित्र ही ऐसा है, कहते हैं। उनका चरित्र। **चरित्र है...** ऐसा शब्द है न **सकल-हित-चरित्र**: उनका सब वर्तन ही पूरा, सरल जीव को हितकारी है। **वे श्री सुसीमा माता के सुपुत्र...** सुसीमा माता के सुपुत्र (**श्री पद्मप्रभ तीर्थङ्कर**) जयवन्त हैं। कहो, अभी तो पद्मप्रभ मोक्ष में पधारे हैं, परन्तु पूर्व के अरिहन्त पद में थे, उसे याद किया है। जयवन्त वर्तो। आहाहा ! उनका कहा हुआ भाव, हमारे में जयवन्त वर्तता है। भगवान भी जयवन्त वर्तते हैं, ऐसा कहकर मांगलिक किया है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक-९७

(मालिनी)

स्मर-करि-मृगराजः पुण्य-कञ्जाहिराजः,
सकल-गुण-समाजः सर्वकल्पावनीजः ।
स जयति जिनराजः प्रास्त-दुःकर्मबीजः,
पद-नुत-सुर-राजस्त्यक्त-सन्सार-भूजः ॥९७॥

(हरिगीतिका)

कामगज को सिंह हैं जो पुण्य अम्बुज भानु हैं ।
सर्वगुण साम्राज्य, चिन्तित वस्तुदायक वृक्ष हैं ॥
जो कर्म बीज विनाशकर्त्ता जिन-चरण सुरपति नमें ।
संसारतरु त्यागी अहो जिनराजश्री जयवंत हैं ॥

[श्लोकार्थः—] जो कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं, जो पुण्यरूपी कमल को (विकसित करने के लिये) भानु हैं, जो सर्व गुणों के समाज (समुदाय) हैं, जो सर्व कल्पित (चिन्तित) देनेवाले कल्पवृक्ष हैं, जिन्होंने दुष्ट कर्म के बीज को नष्ट किया है, जिनके चरण में सुरेन्द्र नमते हैं और जिन्होंने संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है, वे जिनराज (श्री पद्मप्रभ भगवान) जयवन्त हैं ।

प्रवचन-७१, श्लोक-९७-९९, रविवार, अषाढ़ कृष्ण ३ (गुजराती), दिनांक ११-०७-१९७१

नियमसार, व्यवहारचारित्र अधिकार । इसमें अरिहन्त भगवान का अधिकार है । अरिहन्त... अरिहन्त भी पर है न, इसलिए व्यवहार में रखा है । व्यवहारचारित्र का अधिकार है । पंच परमेष्ठी भी परद्रव्य है; इसलिए व्यवहार है रखा है ।

मुमुक्षु : वे तो शुद्ध हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध है, परन्तु पर हैं न ? भले शुद्ध हैं, परन्तु इससे (-आत्मा से) तो पर है न ? उनका लक्ष्य करने से तो राग होता है; उनका आश्रय करने से कहीं धर्म नहीं

होता। इसलिए व्यवहार पराश्रित है, निश्चय स्वाश्रित है; इसलिए व्यवहारचारित्र में यह अधिकार रखा है। श्लोक ९६ हो गया है। (अब), ९७ वाँ श्लोक।

स्मर-करि-मृगराजः पुण्य-कञ्जाहिराजः,

सकल-गुण-समाजः सर्वकल्पावनीजः।

स जयति जिनराजः प्रास्त-दुःकर्मबीजः,

पद-नुत-सुर-राजस्त्यक्त-सन्सार-भूजः ॥९७॥

भुज अर्थात् क्या हुआ वापस? भुज-पृथ्वी में जन्मना। (भू अर्थात् पृथ्वी, ज अर्थात् जन्मना)। आहाहा!

स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार हैं। इससे चौबीस तीर्थकरों में पद्मप्रभ को याद किया है। टीकाकार 'पद्मप्रभ' है न? उन चौबीस तीर्थकरों में 'पद्मप्रभ' स्वयं के नाम से हैं, उन्हें याद करके स्तुति की है। समझ में आया?

(श्रोताओं से) थोड़े नजदीक आओ तो पीछे जगह हो। आज रविवार है न, इसलिए आज लड़कों को शामिल होना होता है न आज। भावनगर और राजकोट और...

क्या कहा? कहते हैं, पद्मप्रभ भगवान ऐसे हैं अर्थात् कि मैं आत्मा ऐसा हूँ। जो कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं,... स्मर है न? स्मर अर्थात् कामदेव। इच्छा - पाँच इन्द्रिय के विषयों के ओर की झुकाव की वृत्ति। ऐसा काम; करि अर्थात् हाथी। मृगराजः अर्थात् सिंह। स्मर-करि-मृगराजः कैसे हैं प्रभु? कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं,....

मुमुक्षु : यह तो... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहते हैं कि मारना-ऐसा नहीं बोलना। शब्दों को क्या... णमो अरिहंताणं। बड़ी चर्चा आयी है न? भगवान को फिर दुश्मन कैसे? दुश्मन को मारना - यह जैन को शोभा नहीं देता, ये शब्द लिखना शोभा नहीं देता, ऐसा और आया। ऐसे के ऐसे। शब्द के साथ क्या है?

कामदेवरूपी हाथी... करि आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ने अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से पाँच इन्द्रियों के विषय की वृत्तिया जो विकल्प हैं, उन्हें

जिसने नष्ट कर दिया है, ऐसे वे सिंह हैं। भगवान आत्मा भी वैसा ही है। ऐसे स्वयं अपना नाम डालकर कहा है। पाँच इन्द्रियों के विषय की ओर की वृत्तियाँ, उनका व्यय करने के लिए। यहाँ तो उपदेश के वाक्य हैं न? वास्तव में तो व्यय करता नहीं। स्वरूप में स्थिर होता है तो विकार उत्पन्न नहीं होता, उसे व्यय / नाश करे - ऐसा कहा जाता है। परन्तु क्या हो? भाषा से बातें करना (और) वस्तु भाषातीत। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं,...** ऐसे भगवान आत्मा भी अनीन्द्रिय। यह आत्मा अनीन्द्रियस्वरूप है। इसके आश्रय से इन्द्रिय की वृत्तियाँ नष्ट होती हैं, ऐसा आत्मा है। ऐसे पद्मप्रभ भगवान हैं और ऐसा ही यह आत्मा है। समझ में आया? **जो पुण्यरूपी कमल को (विकसित करने के लिये) भानु हैं,...** लो। **पुण्यकञ्ज** है न? पानी में उत्पन्न हुआ कमल। परमात्मा कैसे है? **पुण्यरूपी कमल को (विकसित करने के लिये) भानु हैं,...** पहला गुण लिया और दूसरा पुण्य लिया। बाहर की ऋद्धि बतायी। पुण्यरूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य हैं। ऐसे भगवान आत्मा भी, उसका आश्रय लेने से इन्द्रियों की वृत्तियाँ तो नष्ट होती हैं, परन्तु उसके आश्रय में कमी रह जाए तो उसे ऐसे पुण्य विकल्प होते हैं कि जो तीर्थकरपने को भी प्राप्त हो, ऐसा यह आत्मा है। कहो, समझ में आया?

जो सर्व गुणों के समाज (समुदाय) हैं,... लो। **सकल-गुण-समाज:** तीसरा पद है। ९७ श्लोक। भगवान सकल गुण का समाज है। लो, समाज। ऐसे भगवान आत्मा अनन्त गुण का समाज है। अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु स्वयं ही समाज है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। ऐसे परमात्मा को प्रगटरूप है। सर्व गुण की पर्याय प्रगट समाज है, समुदाय है। **सर्वकल्पावनीज: जो सर्व कल्पित (चिन्तित) देनेवाले कल्पवृक्ष हैं,...** **कल्पावनीज:** अवनीज शब्द है न? वह कल्पवृक्ष। अवनीज पृथ्वी का उत्पन्न हुआ। अवनी अर्थात् पृथ्वी ज अर्थात् उत्पन्न हुआ। कल्पवृक्ष। **सर्वकल्पावनीज: भगवान त्रिलोकनाथ सर्व कल्पित (चिन्तित) देनेवाले कल्पवृक्ष हैं,...** ऐसे यह आत्मा भी अनन्त ज्ञान-आनन्द सम्पन्न है। वह **सर्व कल्पित...** अर्थात् एकाग्र हो, तो उसमें सर्व मनोरथ पूर्ण हो, ऐसा यह आत्मा है। बाबूभाई! ऐसा आत्मा है, ऐसा सुना नहीं। यह सब बाहर की लगायी है - भक्ति, पूजा, व्रत, तप। यहाँ थे न? अगास में। एक बार कहा था कि व्रत-नियम करना, वह तुम्हारा अधिकार

है। ऐसा कहा, परन्तु वह सब कर्म का कार्य है। कर्मस्वरूप है, वह आत्मस्वरूप नहीं। ऐसा कहा था। अगास। ऐसे तो कहा, भाई! व्रत और नियम, वह तो सब विकल्प है और वह विकल्प वास्तव में तो कर्म का कर्तव्य है। वह जीव का स्वरूप है ही नहीं। यहाँ कल्पवृक्ष अर्थात् अपने आनन्दादि की परिणति को प्रगट करे, ऐसा आत्मा है। ऐसा कल्पवृक्ष है। जिन्होंने स जयति जिनराजः जिन्होंने दुष्ट कर्म के बीज को नष्ट किया है,... पीछे का पद लिया प्रास्त-दुःकर्मबीजः, प्रास्त-दुःकर्मबीजः,... जिसने कर्म के बीज को तो जलाकर नाश किया है। आहाहा! जिनके चरण में सुरेन्द्र नमते हैं... पद-नुत-सुर ऐसा। पद-नुत-सुर जिनके चरण में... नुत अर्थात् नमते हैं। नुत-सुर-राज देवों के इन्द्र भी जिनके चरणकमल में नमते हैं। ऐसे पद्मप्रभ भगवान, यहाँ अरिहन्त पद की व्याख्या है न? इसलिए उसमें उन्हें स्मरण किया है। ऐसा स्वरूप ही मेरा है, ऐसा भी साथ ही याद किया है।

और जिन्होंने संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है,... लो। त्यक्त-सन्सार-भूजः चौथा पद है न? त्यक्त-सन्सार-भूजः भू, पृथ्वी में उत्पन्न हुए वृक्ष। यह संसाररूपी वृक्ष, इसका जिसने नाश किया है। भगवान आत्मा संसार का नाश करनेवाला ही स्वभाव है। संसार को उत्पन्न करे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। नाश करने का स्वभाव है, वह भी व्यवहार है। परमार्थ से आत्मा राग के नाश का कर्ता भी नहीं। संसार विकार है, उसका नाश कर्ता कहना, वह भी परमार्थ नहीं। आत्मा का आनन्दस्वभाव, उसमें अन्तर में एकाकार होने से संसार अर्थात् राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसे संसार का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शब्द के अर्थानुसार किस नय का कथन है, यह न समझ में आये तो गड़बड़ करे। सिद्धान्त में धवल में तो ऐसा कहा, कोई भी सूत्र, कोई भी अर्थ, नय वाक्य बिना नहीं हो सकते। नय बिना नहीं हो सकते। किसी भी शास्त्र का मूल शब्द या उसका अर्थ नय वाक्य है। व्यवहारनय का वाक्य है या निश्चयनय का वाक्य है? यह इसे जानना चाहिए। जाने बिना अर्थ करे तो अर्थ का अनर्थ हो जाए।

संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है,... लो। और उसमें ऐसा कहते हैं कि राग का त्याग कर्ता आत्मा परमार्थ से नहीं है; नाममात्र है। यहाँ कहते हैं, नाश हो गया है न? स्वभाव परिपूर्ण अखण्ड अभेद का आश्रय लेकर, उससे उत्पन्न हुई मोक्षदशा, अरिहन्त भी

मोक्ष ही है। प्रसिद्ध मोक्ष है, ऐसा कहेंगे। प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है, बाद में कहेंगे। उन्हें मोक्षप्रसिद्ध है। भावमोक्ष हो गया है। अरिहन्त को भावमोक्ष सब गुण पर्याय में परिणम गये हैं। कहते हैं **संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है, वे जिनराज (श्री पद्मप्रभ भगवान) जयवन्त हैं।** वह भगवान तो अभी मोक्ष में पधारे हैं परन्तु उन्हें मानो ऐसे समवसरण में विराजते हों, ऐसे याद करके आत्मा भी मानो पूरा विद्यमान विराजमान हो, ऐसा करके आत्मा की स्तुति में पद्मप्रभ भगवान की स्तुति, वर्तमान तीर्थकररूप ही हों, उन्हें वन्दन किया है। वरना वे तो मोक्ष में हैं, सिद्ध हैं। सौ इन्द्र नमते हैं, चरण में नमते हैं कहाँ? पाठ में तो ऐसा आया। चरण में सुरेन्द्र नमते हैं। भगवान तो सिद्ध हुए उन्हें कहाँ अभी (इन्द्र है) ? परन्तु वे समवसरण में थे, तब जो विद्यमान है, उन तीर्थकर को याद करके, मैं भी पूरा तत्त्व विद्यमान हूँ। नहीं, ऐसा नहीं। जैसे तीर्थकर अभी नहीं हैं, ऐसा नहीं। साक्षात् विराजते हैं, ऐसा करके स्तुति करता हूँ। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा ऐसा का ऐसा विद्यमान, वर्तमान ध्रुव, अखण्डानन्द प्रभु है। उसमें मैं एकाग्र होता हूँ, वह मेरी मोक्ष की प्रसिद्धि का कारण है। समझ में आया? आहाहा! यह ९७ श्लोक हुआ। यहाँ तो पाठ ऐसा है न? जयवन्त वर्ते। **स जयति** ऐसा है न? तीसरे पद का। **स जयति** जयवन्त वर्तते हैं, जयवन्त हैं। इन्द्र जिनके चरणों को नमते हैं, ऐसे भगवान जयवन्त हैं। ऐई! आहाहा! भूतकाल में जैसे भगवान थे, वैसे ही वर्तमान में मानो हैं। ऐसे पंचम काल के मुनि, उसमें अनादि का ऐसा का ऐसा हूँ, ऐसा विद्यमान भगवान हूँ, उसकी स्तुति अर्थात् उसे मैं नमता हूँ। बाहर में ऐसे पद्मप्रभ भगवान अरिहन्त पद में थे, उन्हें याद करके नमता हूँ। विकल्प से व्यवहार से। व्यवहारचारित्र है न? यह ९७वाँ कलश हुआ।

श्लोक-९८

(मालिनी)

जित-रतिपति-चापः सर्व-विद्या-प्रदीपः,
परिणत-सुखरूपः पाप-कीनाश-रूपः ।
हत-भव-परितापः श्री-पदानम्र-भूपः,
स जयति जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः ॥९८॥

(हरिगीतिका)

जीता जिन्होंने काम शर, विद्या प्रकाशक सर्व हैं ।
सुखरूप परिणत, पाप नाशन के लिए यमरूप हैं ॥
भवताप नाशक, श्रीपदों में भूपति जिनको नमैं ।
जो क्रोधजिन विद्वान् जिनको नमैं वे जयवंत हैं ॥

[श्लोकार्थः—] कामदेव के बाण को जिन्होंने जीत लिया है, सर्व विद्याओं के जो प्रदीप (प्रकाशक) हैं, जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है, पाप को (मार-डालने के लिये) जो यमरूप हैं, भव के परिताप का जिन्होंने नाश किया है, भूपति जिनके श्रीपद में (महिमायुक्त पुनीत चरणों में) नमते हैं, क्रोध को जिन्होंने जीता है और विद्वानों का समुदाय जिनके आगे नत हो जाता-झुक जाता है, वे (श्री पद्मप्रभनाथ)जयवन्त हैं ।

श्लोक-९८ पर प्रवचन

९८ वाँ कलश

जित-रतिपति-चापः सर्व-विद्या-प्रदीपः,
परिणत-सुखरूपः पाप-कीनाश-रूपः ।
हत-भव-परितापः श्री-पदानम्र-भूपः,
स जयति जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः ॥९८॥

प्रत्येक में कामदेव आता है। चार में। यह शब्द नया लगता है। हमारे जैसों को संस्कृत न आती हो उन्हें। **पाप-कीनाश-रूपः** अर्थात् यम जैसा। पाप को नाश करने के लिए यम। ९८।

श्लोकार्थः : कामदेव के बाण को जिन्होंने जीत लिया है,... अतीन्द्रिय आत्मा प्रगट किया है। जिसके पाँच इन्द्रिय के विषय की वृत्तियाँ नष्ट हो गयी हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय कामबाण, हों! आहाहा! कामदेव के बाण को (जीत लिया है)। आनन्दमूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में, जिसे कामदेव के बाण नहीं लगते परन्तु कामदेव को मार डाला है, कहते हैं। आहाहा! जीत लिया है। अतीन्द्रिय भगवान आनन्द का नाथ, उसका अवलम्बन लेकर परसन्मुख की वृत्तियों का जिसने नाश कर डाला है। वह **कामदेव के बाण को जिन्होंने जीत लिया है,... जित-रतिपति-चापः** इस पहले पद का अर्थ है। **जित-रतिपति-चापः** बाण। **चापः** अर्थात् बाण है न? रतिपति का चाप, ऐसा। **रतिपति** अर्थात् कामदेव, उसका **चापः** अर्थात् बाण। उसे जिसने जीता है। **जित-रतिपति-चापः**

सर्व-विद्या-प्रदीपः जो सर्व विद्याओं के जो प्रदीप (प्रकाशक) हैं,... केवलज्ञान प्रकाशित है। यद्यपि भगवान तो श्रुतज्ञान प्रकाशते हैं परन्तु उस श्रुतज्ञान में पूरा प्रकाश सब आ जाता है। परसों आया था न? भाई! (श्रावण कृष्ण) एकम्। भगवान हैं, वे भावश्रुत प्रकाशते हैं। भगवान केवलज्ञान प्रकाशते नहीं। धवल में आता है। भावश्रुत प्रकाशते हैं। क्यों? - कि जिसे भावश्रुत होता है, उसे यह वाणी निमित्त है, इसलिए भावश्रुत का प्रकाश है। केवलज्ञान को क्या प्रकाशे? समझ में आया?

सर्व विद्याओं के जो प्रदीप (प्रकाशक) हैं,... सब उस भावश्रुत में प्रकाशते भगवान की वाणी में आने से सब प्रकाश हो जाता है। भावश्रुत में फिर केवलज्ञानी कैसे, वह सब उसमें आ जाता है। समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि केवलज्ञान को प्रकाशती है, ऐसा नहीं लिया। अर्थकर्ता है। भगवान गणधरदेव सूत्रकर्ता हैं। अर्थकर्ता का अर्थ यह भावश्रुत कहते हैं। द्रव्यश्रुत तो फिर उसकी रचना गणधर करते हैं। आहाहा! **सर्व विद्याओं के जो प्रदीप...** प्र विशेष, दीपक। प्रकाश करनेवाले हैं। लो, प्रदीप! यह नाम आया इसमें। **सर्व विद्याओं के जो प्रकाशक हैं,**... आया इसमें। उसे प्रदीप कहते हैं, ऐसा

कहते हैं। जगत में अनादि की सब विद्याएँ हैं, उन्हें प्रकाशता है, उसे प्रदीप कहते हैं, ऐसा कहते हैं। पश्चात् ?

परिणत-सुखरूप: आहाहा! जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,... अनादि से दुःख पुण्य-पाप के विकाररूप परिणमता था, वह दुःखरूप से परिणमता था। जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,... सुख मिला है या प्राप्त हुआ है, ऐसा नहीं। जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,... समझ में आया ? आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थकरदेव पद्मप्रभ की बात याद करते हैं। जिनकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्दरूपी परिणमन हो गया है। आनन्द को प्राप्त होंगे और आनन्द को लेंगे, यह बात यहाँ नहीं है, कहते हैं। वह तो आनन्द की परिणति ही परिणम गयी है। जैसा अतीन्द्रिय आनन्द उनका स्वभाव, वैसी ही परिणति परिणमित हो गयी है। आहाहा!

जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,... आहाहा! संसार के दुःखरूप जिनका परिणमन परिणमा है, वह परिणमन इस शरीर, वाणी, मन के कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। संसार में भी पुण्य और पाप के विकाररूप से, दुःखरूप से परिणमता है, यह उसकी दशा है, यह उसकी अवस्था है। यह भी एक सुखरूप परिणमे, वह उनकी अवस्था है। लोकालोक को जानते हैं और सबको जानते हैं, इसलिए सुखरूप होते हैं। थोड़े को जाने तो सुख हो, तीन काल को जाने उसे कितना सुख होगा ?

मुमुक्षु : ढेर मोढ़े

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी बात है। पर को जानना वह सुख नहीं है। अन्दर आनन्द की परिणति सुखरूप हो गयी है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन में भी धर्म की पहली दशा में सुखरूप आंशिक आनन्दरूप परिणति होती है। इन सिद्ध, अरिहन्त को पूर्ण आनन्द की परिणति हो गयी। समझ में आया ? ऐसा कहकर अपनी भी बात करते हैं कि मुनियों को भी अतीन्द्रिय आनन्द की परिणतिरूप उनकी भूमिका के योग्य... उनकी भूमिका के योग्य अतीन्द्रिय आनन्द की सुखरूप परिणति है। अरिहन्त को पूर्ण है, ऐसा कहकर यह कहेंगे कि वह जयवन्त है। समझ में आया ? पहले सबमें यह डाला था न ?

पाप को (मार-डालने के लिये) जो यमरूप हैं,... पाप-कीनाश-रूपः.. कीनाश का अर्थ यम। कीनाश अर्थात् यम। नयी भाषा है। इन संस्कृतवालों को अधिक

(खबर पड़े)। पाप और पाप का वह कीनाश है। पाप को नाश करने को यमरूप है। यम है यम। आहाहा! पाप को (मार-डालने के लिये) जो यमरूप हैं,... यम है यम। आहाहा! भगवान आत्मा भी, पाप शब्द से पुण्य और पाप के विकल्प का नाश करने के लिए यम समान भगवान आत्मा है। समझ में आया ? ऐसा भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ आश्रय लिया, कहते हैं कि वह तो विकार के लिए यम समान हैं। उसे विकार में सुखबुद्धि उड़ गयी है। इसलिए विकार का नाश करने के लिए आत्मा का स्वभाव यमरूप है। आहाहा! समझ में आया ?

भव के परिताप का जिन्होंने नाश किया है,... हत-भव-परिताप: भव का परिताप। देखो, विशिष्टता! चार गति का परिताप। चारों गतियों में आकुलता है, ऐसा कहते हैं। स्वर्ग में भी परिताप ही है, वहाँ सुख है नहीं। जमभाई! ये पैसेवाले सब सुखी कहलाते हैं या नहीं? तुमको वहाँ सेठसाहेब, सेठसाहेब करते हैं या नहीं? उसमें कुछ सुख होता होगा या नहीं? आकुलता होती है, कहते हैं। चारों गतियों में आकुलता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : सेठसाहेब न कहे तो आकुलता होती है। (कहे तो) मजा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है, ऐसा कहते हैं। वहाँ धूल की कल्पना उठी है। ऐई! मलूकचन्दभाई! क्या कहा यह? आकुलता है। **हत-भव-परिताप:** भव का। वापस अकेला ताप नहीं, परिताप। आहाहा! चार गति के भव में अग्नि सुलगती है, कहते हैं। समझ में आया? यह सेठाई और राजा और देव, वे सब अग्नि से, कषाय से सुलगते हैं। वे **भव-परिताप:** उसको हत जिन्होंने नष्ट कर दिया है। भाषा तो ऐसी ही आवे न! उपदेश में क्या आवे?

मुमुक्षु : जहाँ-तहाँ मारने की ही अकेली बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार डालता है। वह कहे, ऐसा नहीं लेना। अब व्यर्थ का। परमात्मप्रकाश में नहीं कहा? अरे! अनादि के... हों! बन्धु का मारनेवाला तू है, ऐसा कहा। बाबूभाई! आत्मा को ऐसा कहा। 'तेरा बन्धव साथ में रहनेवाला उसे तूने मार डाला।' बेचारा साथ में रहता था। जहाँ जाए, वहाँ साथ का साथ। रास्ते में भी साथ। एक समय दूर न रहे, ऐसे तो वे मित्र थे। भगवान आत्मा अपने स्वरूप में आरूढ़ हुआ, कर्म का नाश

हो गया। उस कर्म के नाश का उपाय एक स्वरूप में आरूढ़ हुआ, वह एक ही बात है। यह क्रिया कर्म के नाश की है।

भव के परिताप का जिन्होंने नाश किया है,... आकुलता। ये पैसेवाले दिखायी दें, स्त्री, पुत्र, परिवारी दिखायी दें। सब भव के परिताप हैं। समझ में आया? यह वीतराग पर्याय परिणमन में कोई राग या निमित्त या शरीर अनुकूल था, इसलिए परिणमी है, ऐसा नहीं है। आत्मा में अनादि का वीतरागभाव जो है, वह उसे परिणमने में अनुकूल था।

भूपति जिनके श्रीपद में... यह श्री की व्याख्या की है। (**महिमायुक्त पुनीत चरणों में**)... ऐसा। अकेले चरण नहीं। महिमायुक्त पुनीत चरणों-यह श्री की व्याख्या की है। **नमते हैं,...** आहाहा! इन्द्र आकर (नमते हैं)। यहाँ तो भूपति, भूपति है। **तत्त्वविज्ञानः तक्षः** वहाँ आया न? नहीं, वह तो ९८वें में। **स जयति जितकोपः** जिन्होंने कोप को तो जीता है। द्वेष का अंश नहीं। कुछ प्रतिकूलता हो तो अरुचि हो, यह बात भगवान को रही नहीं। **जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः विद्वानों का समुदाय जिनके आगे नत हो जाता...** आहाहा! बड़े विद्वान और पण्डित, उनके झुण्ड ऐसे अरिहन्त पद, सर्वज्ञ पद में विद्वान नत हो जाते हैं। ऐसे विद्वान अर्थात् ज्ञान की दशा चाहे जितनी प्रगट हुई है, वह सब स्वभाव में नम पड़ते हैं। समझ में आया? ऐसा यह अरिहन्त पद है, ऐसा वह यह आत्मपद है।

वे (श्री पद्मप्रभनाथ)जयवन्त हैं। है ? स जयति जयवन्त हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसे भगवान मानो साक्षात् समवसरण में विराजते हों। जिनके पद में नमते हैं, उसका अर्थ वहाँ कहाँ भगवान को पैर है अभी? सिद्ध में तो पैर नहीं, परन्तु यहाँ थे, ऐसा मानो नजर में तैरते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा भी वर्तमान में पूर्ण विद्यमान आनन्द का तत्त्व दृष्टि में तैरता है, जयवन्त वर्तता है। वह वस्तु जयवन्त वर्तती है। यहाँ भगवान जयवन्त वर्तते हैं। यहाँ जिसने दृष्टि और ज्ञान से पूरी चीज़ को पकड़ा है, वह वस्तु जयवन्त वर्तती है। आहाहा! यह ९८वाँ श्लोक हुआ।

श्लोक-९९

(मालिनी)

जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः,
 प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः ।
 पदयुग-नत-यक्षः तत्त्व-विज्ञान-दक्षः,
 कृतबुधजनशिक्षः प्रोक्तनिर्वाणदीक्षः ॥९९॥

(हरिगीतिका)

सप्रसिद्ध जिनका मोक्ष अम्बुज पत्रवत् जो दीर्घ हैं ।
 पापकक्षा के विजेता काम सेना विजित हैं ॥
 यक्ष जिनके चरण में, विज्ञान तत्त्व सुदक्ष हैं ।
 बुधजन-गुरू, निर्वाण दीक्षा उचारक जयवंत हैं ॥

[श्लोकार्थः—] प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है, पद्मपत्र (कमल के पत्ते) जैसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं, पापकक्षा^१ को जिन्होंने जीत लिया है, कामदेव के पक्ष का जिन्होंने नाश किया है, यक्ष जिनके चरणयुगल में नमते हैं, तत्त्वविज्ञान में जो दक्ष (चतुर) हैं, बुधजनों को जिन्होंने शिक्षा (सीख) दी है और निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है, वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं ।

श्लोक-९९ पर प्रवचन

९९ श्लोक । जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः सब 'क्ष' है । उसमें 'स' थे । उसमें 'ज' थे । पहले में 'त्र' थे । पहले में सब 'त्र' थे ।

जयति विदितगात्रः स्मेरनीरेजनेत्रः
 दूसरे में 'ज' थे । सब 'ज' ।

१. कक्षा = भूमिका; श्रेणी; स्थिति ।

स्मरकरिमृगराजः पुण्यकञ्जाहिराजः

तीसरे में सब 'प' थे।

जितरतिपतिचापः सर्वविद्याप्रदीपः

'त्र', 'ज', 'प' और अब 'क्ष'।

जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः,

प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः।

पदयुग-नत-यक्षः तत्त्व-विज्ञान-दक्षः,

कृतबुधजनशिक्षः प्रोक्तनिर्वाणदीक्षः ॥९९॥

श्लोकार्थः प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है, ... सिद्धं प्रसिद्धं नहीं आता। क्या कहलाता है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। सिद्ध समूह तो प्रसिद्ध है। आहाहा! प्रसिद्ध सिद्धसमूह, आता है न? अनन्त सिद्ध प्रसिद्ध हैं। ऐसे अरिहन्तों का मोक्ष प्रसिद्ध है। आहाहा! ऐसे आत्मा का मोक्ष प्रसिद्ध है। मोक्ष हो, वह प्रसिद्ध है। संसार-फंसार आत्मा को रहे नहीं। उसे आत्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? संसारवाला आत्मा मानना, वह तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। संसारवाला आत्मा मानना... संसार अर्थात् विकल्प और आस्रव। आस्रवसहित मानना, वह तो तत्त्व की दृष्टि विपरीत है।

प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है, ... आहाहा! जो आत्मा में प्रसिद्ध मोक्ष मुक्तस्वरूप पड़ा ही है। उसे पर्याय में प्रसिद्ध मोक्ष हो, वह कोई विशेषता, नवीनता नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही है। दोनों शुद्ध ही है। समयसार में आया था। ...कारण और कार्य दोनों शुद्ध ही हैं। शुद्ध हैं, इसका अर्थ कि है ही ऐसा। त्रिकाल है और त्रिकाल है, उसका जिसने आश्रय लिया, उसे शुद्धता ही पूर्ण प्रगट होगी, वह शुद्ध ही है। अशुद्धता रहेगी ही नहीं। ऐसा सूक्ष्म है। बाबूभाई! बाहर में एक यात्रा कर आये, इसलिए निपट गया, ऐसा नहीं है। यह आषाढ शुक्ल पूर्णिमा की... चौदश की करे, पूर्णिमा की न

करे। फिर कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, समय-समय यात्रा करनेवाला आत्मा है।

प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है,... आहाहा! शुद्धस्वरूप परमानन्द की विद्यमानता जहाँ दृष्टि में आयी, (वहाँ) प्रसिद्ध मोक्ष है। प्रसिद्ध मोक्ष है... प्रसिद्ध मोक्ष है। प्रतीति में ऐसी प्रसिद्ध पर्याय में मोक्ष होगा, होगा, और होगा ही - ऐसा आत्मा है। जिसमें संसार की गन्ध नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने आत्मा पकड़ा और आत्मा जाना अथवा आत्मा है, ऐसा माना, है वह माना कब कहलाये? पूरा परिपूर्ण भगवान है, ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन में माना, उसे प्रसिद्ध मोक्ष है। उसे भगवान को पूछने नहीं जाना पड़ता कि भाई! मेरा मोक्ष कब होगा? मोक्ष ही है। अरिहन्त को भावमोक्ष प्रसिद्ध हो गया है। कहते हैं।

पद्मपत्र (कमल के पत्ते) जैसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं,... कमल के पत्र। पुण्यवन्त प्राणी को यहाँ से वहाँ शेड ऐसे चलती होती है। कमल-कमल होता है न? शेड चलती है। ऐसे कमल का फूल हो, ऐसी उसकी आँख होती है। तीर्थकर तो पूर्ण पुण्य के धनी हैं न? अन्दर में पहले गुण की बात की। दूसरे, उनके शरीर की व्याख्या की। **जैसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं,...** अन्दर केवलज्ञान के दीर्घ नेत्र हो गये हैं, बाहर में भी आँख ऐसी होती है। चक्रवर्ती, बलदेव, उसमें तीर्थकर का तो क्या कहना?

पापकक्षा को जिन्होंने जीत लिया है,... पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों। उनका पहलू जीत लिया है, ऐसा कहते हैं। संसार का पहलू पुण्य-पाप है। उस पहलू में जो चढ़ गया था, उससे हट गया है। आहाहा! अनादि से शुभ और अशुभ के पक्ष में चढ़ा था, वह मिथ्यात्व और संसार था। आहाहा! उस पापकक्षा की **भूमिका; श्रेणी; स्थिति** देखो! कक्षा है न, कक्षा? एक ओर का पहलू, ऐसे। संसार का पहलू जिसने जीत लिया है, स्वभाव के पक्ष में चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? जैसे अरिहन्त हैं, वैसा ही तू है - वापिस ऐसा।

तत्त्वानुशासन में आता है न? तत्त्वानुशासन न? ऐसा कि अरिहन्त का ध्यान का नहीं आता? ऐसा कहते हैं अरिहन्त का ध्यान करे तो तू व्यर्थ है। तू कहाँ अरिहन्त है। सुन न अब। हम अभी अरिहन्त हैं क्योंकि अरिहन्तस्वरूप आत्मा है, उसका ध्यान करके शान्ति मिलती है, इसलिए साक्षात् अरिहन्त बिना कहाँ से मिले? इसलिए हम अन्दर

अरिहन्त ही हैं। तत्त्वानुशासन में ऐसा श्लोक है। समझ में आया ? ऐसा कि अरिहन्त तो अभी नहीं हैं और तुम कौन से अरिहन्त का ध्यान करते हो ? तुम्हारा मिथ्या है। तुझे खबर नहीं। हम अन्दर अरिहन्त ही हैं। आहाहा ! उसका ध्यान करने से शान्ति आती है, उसका अर्थ कि मिथ्या अरिहन्त का ध्यान करने से शान्ति आयेगी ? आहाहा ! पाँच पद ही हम हैं। आहाहा ! समझ में आया ? शान्तिभाई ! गजब बात ऐसी ! बहुत से कहते हैं छोटे मुँह बड़ी बातें। उसे खबर नहीं है। यहाँ छोटा मुँह है ही नहीं। काम कक्षा, पापकक्षा।

संसार के पहलू से हट गया आत्मा है, उसे आत्मा कहते हैं। भगवान संसार के पहलू से हट गया है। ऐसे आत्मा भी संसार के पहलू से हट गया है, उसे आत्मा कहते हैं। संसार के पक्ष में खड़ा है, वह अनात्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन में संसार का पक्ष छूट गया है। संसार से मुक्त है। व्यवहार से मुक्त कहो या संसार से मुक्त कहो, सब एक ही है। सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली सीढ़ी, व्यवहार से मुक्त। व्यवहार अर्थात् विकल्प से मुक्त है। उसे संसार का पक्ष छूट गया है। आहाहा ! पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दरूपी मुक्तस्वभाव के पक्ष में गया, तब संसारपक्ष छूटा, तब उसने आत्मा के अनुभव को माना, ऐसा कहने में आता है।

प्रजित-दुरितकक्षः.. दुरित का अर्थ पाप किया है। ऐसा। प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः कामदेव के पक्ष का जिन्होंने नाश किया है,... वह कक्षा थी। यह पक्ष है। **कामदेव के पक्ष का जिन्होंने नाश किया है,...** 'क्षः' है न ? 'क्षः'। **प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः पदयुग-नत-यक्षः** इसमें चार शब्द हैं। **यक्ष जिनके चरणयुगल में नमते हैं,...** चँवर ढोलते हैं न ? इन्द्र, यक्ष समवसरण में चौंसठ चँवर (ढोलते हैं)। हवा अच्छी आवे, इसलिए होगा ? भगवान को गर्मी नहीं होती। पंखे नहीं डालते ? पंखे। उन्हें क्या है ? भगवान तो अनन्त आनन्द में विराजते हैं। यह तो भक्तिवाले को दिखाने का भाव है। चँवर ढोले, चँवर। यहाँ ढोलते हैं न ? पंखा। कितनों के हाथ में पुस्तक होवे तो उसे लेकर हवा करते हैं। बहुत गर्मी लगती है न ? छोटी पुस्तक हाथ में होवे तो उससे हवा करते हैं। यह ठीक कहलायेगा ? बहुत गर्मी लगती होवे तो क्या करना ? सहन करना। कागज का पंखा। कितने ही लड़कों के हाथ में छोटी पुस्तक होवे तो (पंखा करते हैं)। ऐसा नहीं किया जाता। शास्त्र की असातना कहलाती है। आहाहा ! **यक्ष जिनके चरणयुगल में नमते हैं,...** यह तो पुण्य का कारण है और इन्द्र-देव आकर

चँवर ढोलते हैं। इसमें उन्हें क्या है? उन्हें हवा लगे और गर्मी होती होगी, ऐसा होगा? वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में विराजमान हैं। ये तो भक्त भक्ति के भाव से यह करते हैं।

तत्त्व-विज्ञान-दक्षः तत्त्वविज्ञान में जो दक्ष (चतुर) हैं... अरिहन्त, सर्वज्ञ परमात्मा। जगत की जितनी विद्याएँ और ज्ञान हैं, उन सबमें प्रवीण हैं। ऐसा कहे, यह अमुक और मन्त्र को जाने, अमुक तन्त्र को जाने, अमुक ऐसी विद्या जाने। उन सबमें भगवान प्रवीण है। कुछ करते नहीं, हों! देखो! **तत्त्वविज्ञान में जो दक्ष (चतुर) हैं...** इतनी ही बात ली है न?

कृतबुधजनशिक्षः बुधजनों को जिन्होंने शिक्षा (सीख) दी है... कहो, अज्ञानी को, बड़थोल को नहीं। ऐसा कहते हैं। जो पात्र रूढा जैसा है, उसे भगवान ने शिक्षा दी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे शिक्षा लागू पड़ती है, उसे शिक्षा दी है, ऐसा कहते हैं। **बुधजनों को जिन्होंने शिक्षा (सीख) दी है...** बुध तो समझे हुए हैं। समझे हुए को कहते हैं, उन्हें समझाया है। अनसमझ को समझाते नहीं, ऐई!

प्रोक्तनिर्वाणदीक्षः अन्तिम बोल। निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है... जिन्होंने निर्वाण की ही प्राप्ति होने की ऐसी ही दीक्षा उन्होंने ली है। जिस दीक्षा में मोक्ष हो, ऐसी दीक्षा का उच्चारण किया है। आहाहा! स्वर्ग मिले या अमुक मिले, ऐसी दीक्षा नहीं-ऐसा कहते हैं। कहते हैं या नहीं? दो घड़ी दीक्षा ले तो उसे स्वर्ग कपाल में, ऐसा सुना था। (विक्रम संवत्) २००० के वर्ष में। वहाँ राजकोट। मनसुखभाई की लड़की दीक्षा लेनेवाली थी न। चिमन के भाई मनसुखभाई की दो लड़कियों की तब दीक्षा थी। राजकोट में २००० के वर्ष में ऐसी सब बातें आती थीं। वहाँ त्रम्बकभाई को लड़कियाँ मिलने आयी थीं। उनके रिश्तेदार होते हैं न! त्रम्बकलाल सेठ, नानालालभाई के बहनोई। वहाँ लड़कियाँ आयी थीं। हम वहाँ वाँकानेर थे। बातें करते थे कि यहाँ तो महाराज ऐसा कहते हैं कि यदि दो घड़ी साधुपना आवे तो उसके कपाल में स्वर्ग तो अवश्य। धूल में भी नहीं, अब सुन न! आहाहा!

यहाँ तो **निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है...** स्वर्ग मिलेगा, यह बात दीक्षा के स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! ऐसी (स्वर्ग की) लालच देकर मूढते हैं। ऐई! स्वर्ग मिलेगा। वहाँ फिर ऐई.. खाने-पीने का ऐसा नहीं होता, परन्तु उसे हजार वर्ष में इच्छा

होती है। परन्तु उसमें क्या हुआ, धूल ? वह सब भव तो परिताप वाले हैं, ऐसा कहा। क्लेश और आकुलता वाले भव हैं। तुझे उस भव में जाना है ? यह दीक्षा का फल ? दीक्षा तो उसे कहते हैं, जिससे निर्वाण प्राप्त हो। आहाहा ! निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है, ... लो।

वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं। हमारे तो कहते हैं कि वे जयवन्त वर्तते हैं। अर्थात् कि मोक्ष का कारण ऐसी दीक्षा हमारे जयवन्त वर्तती है। ऐसा पद्मप्रभमलधारि मुनि स्वयं कहते हैं। मोक्ष का कारण ऐसी जो दीक्षा, (वह) हमारे जयवन्त वर्तती है। उसके फल में हमें मुक्ति ही आयेगी। आहाहा ! पुण्य करेगा तो गति तो सुधरेगी। पाप में जाए उसकी अपेक्षा। कहते हैं, तेरी श्रद्धा और ज्ञान ही सब मिथ्या है। जिसके फल में स्वर्ग माँगे, उसके कारण में पुण्य होता है और पुण्य की इच्छावाला मिथ्यादृष्टि है।

धर्मी को तो आत्मा के स्वभाव की भावना है। उसका नाम दीक्षा। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप की रमणता की दीक्षा जिसने ग्रहण की है। वह दीक्षा निर्वाण का कारण है। आहाहा ! उस दीक्षा को दीक्षा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई ! जयन्तीभाई ! यह तो कहते हैं, अब पाप से तो छूटें। चूल्हे के, अग्नि के और छहकाय के आरम्भ से (तो छूटे) ऐसी बात करे और कहीं तो बेचारे को हो। क्या धूल होगा। संसार है, वह का वह है। आहाहा ! जिससे निर्वाण, केवल मुक्ति-ऐसी जो दीक्षा अर्थात् आत्मा के स्वभाव का आचरण, शुद्ध का आचरण, वही दीक्षा है, हों ! पंच महाव्रत के विकल्प-फिकल्प, वह दीक्षा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! गजब मार्ग ! दिगम्बर सन्तों की कथनी भी... कड़क।

निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है, वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं। प्रभु ! वे जयवन्त हैं। आहाहा ! हमारा भाव भी मोक्ष का कारण जयवन्त है। हमारे जो परिणाम, वीतरागभाव जो मोक्ष का कारण, वह जयवन्त है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह पंचम काल के मुनि हैं। और कोई कहे कि यह तो सब चौथे काल की बातें हैं। काल हो या फाल, वस्तु कुछ बदलती होगी ? देखो न ! आचार्य-मुनि स्वयं... आहाहा ! हमारी दीक्षा तो निर्वाण का कारण है। ऐसी दीक्षा हमें आयी है। भगवान को भी यही दीक्षा उच्चारण की थी और यह दीक्षा समझायी थी। समझ में आया ? जिस दीक्षा में कारण होकर मोक्ष हो, ऐसी दीक्षा भगवान ने समझायी थी, ऐसा कहते हैं। बाबूभाई !

आओ, मुंडाओ यहाँ साधु होओ, तुम्हें यहाँ स्वर्ग मिलेगा, ऐसे ललचाये नहीं थे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शिक्षा दी है, ऐसा कहा, हों! दीक्षा की ऐसी शिक्षा, जिससे मुक्ति हो, ऐसी दीक्षा—ऐसी समझायी थी। यह तो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निर्विकारी, निर्विकल्प परिणति, वह मोक्ष का कारण है। ऐसा भगवान ने समझाया था कि तेरी दीक्षा से तुझे स्वर्ग मिलेगा और सेठाई मिलेगी, यह दीक्षा का फल ही नहीं है। आहाहा!

निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है,... निर्वाण का कारण ऐसी दीक्षा को जिन्होंने समझाया है, ऐसा कहते हैं। वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं। लो। उसमें-अर्थ में लिया। यहाँ ऐसा लिया। कितना है वह? ९९। श्लोक कितना? ७१ गाथा। अन्तिम। दक्ष (चतुर) भव्य जीवों को शिक्षा... तथा जिन्होंने निर्वाण का कारण मुनिदीक्षा का स्वरूप कहा है। ऐसा भाई शीतलप्रसाद ने पहले अर्थ किया था न? निर्वाण का कारण मुनिदीक्षा, मोक्ष का कारण मुनिदीक्षा, वीतरागी परिणति, ऐसी जीवों को शिक्षा प्रदान की है। आहाहा! उसका नाम दीक्षा और उसका नाम दीक्षा का फल मोक्ष। यह तो गप्पा-गप्प मारे। क्रिया का ठिकाना नहीं और पंच महाव्रत पालते हैं और उससे मुक्ति होगी। धूल में भी नहीं होगी। लो, ९९वाँ श्लोक हुआ। १०० वाँ श्लोक बाकी रह गया।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१००

(मालिनी)

मदन-नग-सुरेशः कान्त-काय-प्रदेशः,

पदविनतयमीशः प्रास्तकीनाशपाशः ।

दुरघ-वन-हुताशः कीर्ति-सम्पूरिताशः,

जयति जगदधीशः चारु-पद्म-प्रभेशः ॥१००॥

(हरिगीतिका)

काम-नग को वज्रधर जो कान्तकाय प्रदेश हैं ।
 मुनिवर नमें जिनके चरण यमपाश नाशक शूर हैं ॥
 पापवन को अग्नि हैं, चहुँ ओर व्याप्त सुकीर्ति है ।
 जगत् के जो नाथ, सुन्दर पद्मप्रभ जयवंत हैं ॥

[श्लोकार्थः—] कामदेवरूपी पर्वत के लिये (अर्थात् उसे तोड़ देने में) जो (वज्रधर) इन्द्र समान हैं, कान्त (मनोहर) जिनका कायप्रदेश है, मुनिवर जिनके चरण में नमते हैं, यम के पाश का जिन्होंने नाश किया है, दुष्ट पापरूपी वन को (जलाने के लिये) जो अग्नि हैं, सर्व दिशाओं में जिनकी कीर्ति व्याप्त हो गई है और जगत् के जो अधीश (नाथ) है, वे सुन्दर पद्मप्रभेश जयवन्त हैं ।

प्रवचन-७२, श्लोक-१००-१०२, गाथा-७२, सोमवार, अषाढ़ कृष्ण ४ (गुजराती)
 दिनांक १२-०७-१९७१

यह नियमसार, व्यवहारचारित्र अधिकार है । ७१ गाथा । १००वाँ कलश । १०० कलश है न ? अरिहन्त कैसे हैं - उनका स्वरूप है ।

मदन-नग-सुरेशः कान्त-काय-प्रदेशः,
 पदविनतयमीशः प्रास्तकीनाशपाशः ।
 दुरघ-वन-हुताशः कीर्ति-सम्पूरिताशः,
 जयति जगदधीशः चारु-पद्म-प्रभेशः ॥१००॥

पद्मप्रभ भगवान की स्तुति करते हैं । स्वयं का पद्मप्रभ नाम है न ? टीकाकार का पद्मप्रभ नाम है । उस नाम से भगवान पद्मप्रभ को याद करके अरिहन्त का इस प्रकार स्तवन और स्तुति करते हैं ।

श्लोकार्थः कामदेवरूपी पर्वत के लिए (अर्थात् उसे तोड़ देने में) जो (वज्रधर) इन्द्र समान हैं, ... इन्द्र के हाथ में वज्र होता है; इसलिए उसे वज्रधर कहा जाता है । इसी तरह भगवान पद्मप्रभ भगवान कामदेवरूपी पर्वत के लिए (अर्थात् उसे तोड़ देने में) जो (वज्रधर) इन्द्र समान हैं, ... वाह ! मदन-नग-सुरेशः मदनरूपी पर्वत को सुरेशः अर्थात्

इन्द्र की तरह। सुरेश-इन्द्र का ईश। वज्रधर तो डाला वह... आया न, इसलिए नाम डाला। आहाहा! वज्र, वज्र से जैसे पूर्ण होता है; इसी तरह भगवान आत्मा कामदेव की वासना का तो चूर्ण कर डाला है।

कान्त (मनोहर) जिनका कायप्रदेश है,... यह बाह्यबुद्धि। जिनका मनोहर शरीर है। परमौदारिक, ऐसा कहते हैं। अरिहन्त के शरीर को व्याधि, क्षुधा, तृषा, रोग ऐसा होता नहीं। कान्त शरीर है, मनोहर शरीर है। **जिनका कायप्रदेश है,...** अर्थात् शरीर के प्रदेश। भगवान आत्मा के प्रदेश तो निर्मल, परन्तु उनके शरीर के प्रदेश भी निर्मल हैं। परमौदारिक शरीर है न? प्रत्येक अरिहन्त को ऐसा होता है। यहाँ तो अभी पद्मप्रभ नाम से याद किया है।

मुनिवर जिनके चरण में नमते हैं,... मुनिवरों-जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई है, ऐसे मुनिवर भी सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा के चरण में नमते हैं। उन्हें भी भक्ति होती है - ऐसा कहते हैं। मुनिवर—आचार्य, उपाध्याय, साधु इत्यादि अरिहन्त के चरण में, वीतरागता पूर्ण प्रगट हुई है - उनके चरणों में नमते हैं।

मुमुक्षु : हेयबुद्धि से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये बिना रहता है? हेय है, परन्तु आता है या नहीं? भक्ति का विकल्प है, वह तो उपयोग है, परन्तु आये बिना रहता नहीं। होगा ही इसलिए? वह तो है, वह आदरणीय नहीं, परन्तु है या नहीं? है, उसे आदरणीय नहीं, ऐसा कहना। भाव तो आता है। आदरणीय नहीं है, हेय है। हेय किसलिए करना? वह आये बिना रहता ही नहीं। सब कहे—अग्नि कहे, धगधगता अंगारा कहे, शुभभाव है, कषाय है, राग है। मुनिवरों को भी आता है, होता है, जानते हैं। ऐसा स्वरूप ही है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग शान्तरस से पूर्ण परिणमित हो गये हैं। उन पर मुनिवरों को भी भक्ति आती है।

जिनके चरण में नमते हैं, यम के पाश का जिन्होंने नाश किया है,... **प्रास्तकीनाशपाश:** यम के पाश का, बन्धन का जिन्होंने नाश किया है। भाव का बन्धन नहीं रहा - ऐसा कहते हैं। **दुष्ट पापरूपी वन को (जलाने के लिए) जो अग्नि हैं,...** दुष्ट पाप और पुण्य दोनों, ऐसा जो वन, उसे जलाने को जो अग्नि है। अर्थात् कि उन्हें है नहीं। वीतराग शान्तरस अकषायस्वभाव से जिनका परिणमन है, (उन्होंने) ऐसे पाप और पुण्य के वन को जला डाला है। जलाने को समर्थ हैं - ऐसा कहा जाता है।

सर्व दिशाओं में जिनकी कीर्ति व्याप्त हो गई है... पुण्य लिया। चारों दिशाओं में जिनकी कीर्ति पसर गयी है, व्याप्त हो गयी है। **कीर्ति-सम्पूरिताशः** तीर्थकर (हैं), इसलिए और अरिहन्त की गुणदशा पूर्ण, उनकी पुण्यप्रकृति पूर्ण ऐसी होती है कि चारों दिशाओं में इन्द्र आदि उनका आदर करते हैं। ऐसी कीर्ति व्याप्त हो गयी है। यह तो पवित्रता और पुण्य दोनों की बात करते हैं। बतलाना होवे तो बतलावे न ? और **जगत् के जो अधीश (नाथ) है,...** जो जगत के नाथ हैं। व्यवहार से नाथ कहने में आता है। तीन लोक के जाननेवाले हैं न, इसलिए उसमें नाथ हैं।

वे सुन्दर पद्मप्रभेश जयवन्त हैं। ऐसे सुन्दर पद्मप्रभ भगवान... देखो! यहाँ तो कान्त जिनका कायप्रदेश है। यह तो अरिहन्तरूप से स्मरण किया है। नहीं तो वे तो सिद्ध हो गये हैं। अभी तो सिद्ध हैं। अरिहन्त की अस्ति में थे, उसकी स्तुति है। अभी तो सिद्ध हो गये हैं। यहाँ लोगस्स में आता है न ?.. तीर्थकर मुझे प्रसन्न होओ। तीर्थकर हो गये, तीर्थकर तो अभी सिद्ध हो गये।में आया था न ? लोगस्स में आता है। तीर्थकर तो मोक्ष पधारे हैं। अभी तीर्थकर नहीं हैं, परन्तु उन्हें तीर्थकर की अस्ति थी, उस प्रकार से स्मरण करके वन्दन किया है। भूतकाल में तीर्थकर थे न ? 'तिथ्ययरा में पसिवंतु' - ऐसा है न उसमें ? तीर्थकर मुझे प्रसन्न होओ। प्रसन्न होते होंगे ? अपना आत्मा अपने में प्रसन्न होवे, उसे भगवान मुझे प्रसन्न होओ - ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। भगवान तो वीतराग हैं। वे प्रसन्न नहीं होते और अप्रसन्न भी नहीं होते। वे तो सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा वीतराग हैं। अपने आत्मा में आनन्द की, शान्ति की प्रसन्नता वर्तती है; इसलिए मानो कि भगवान प्रसन्न हैं। मैं स्वयं मेरे लिए प्रसन्न हूँ, भगवान मुझे प्रसन्न है। यह ७१ गाथा हुई।

गाथा-७२

णट्टुकम्मबंधा अट्टमहागुणसमणिया परमा ।
 लोयग-ठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति ॥७२॥

नष्टाष्टकर्मबन्धा अष्टमहागुणसमन्विताः परमाः ।
 लोकाग्रस्थिता नित्याः सिद्धास्ते ईदृशा भवन्ति ॥७२॥

भगवतां सिद्धिपरम्पराहेतुभूतानां सिद्धपरमेष्ठीनां स्वरूपमत्रोक्तम् । निरवशेषेणान्तर्मुखाकार-
 ध्यानध्येयविकल्पविरहितनिश्चयपरमशुक्लध्यानबलेन नष्टाष्टकर्मबन्धाः; क्षायिकसम्यक्त्वा-
 द्यष्टगुणपुष्टितुष्टाश्च; त्रितत्त्वस्वरूपेषु विशिष्टगुणाधारत्वात् परमाः; त्रिभुवनशिखरात्परतो
 गतिहेतोरभावात् लोकाग्रस्थिताः; व्यवहारतोऽभूतपूर्वपर्यायप्रच्यवनाभावान्नित्याः; ईदृशास्ते
 भगवन्तः सिद्धपरमेष्ठिन इति ।

हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं ।
 लोकाग्र में जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं ॥७२॥

गाथार्थः—[नष्टाष्टकर्मबन्धाः] आठ कर्मों के बन्ध को जिन्होंने नष्ट किया है,
 ऐसे [अष्टमहागुणसमन्विताः] आठ महागुणों सहित, [परमाः] परम, [लोकाग्र-
 स्थिताः] लोक के अग्र में स्थित और [नित्याः] नित्य - [ईदृशाः] ऐसे [ते सिद्धाः]
 वे सिद्ध [भवन्ति] होते हैं ।

टीका :—सिद्धि के परम्पराहेतुभूत ऐसे भगवन्त सिद्धपरमेष्ठियों का स्वरूप
 यहाँ कहा है ।

[भगवन्त सिद्ध कैसे होते हैं] (१) निरवशेषरूप^१ से अन्तर्मुखाकार, ध्यान-
 ध्येय के विकल्परहित निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध

१. निरवशेषरूप से = अशेषतः; कुछ शेष रखे बिना; सम्पूर्णरूप से; सर्वथा । [परमशुक्लध्यान का आकार
 अर्थात् स्वरूप सम्पूर्णतया अन्तर्मुख होता है ।]

को नष्ट किया है ऐसे; (२) क्षायिक^१ सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों की पुष्टि से तुष्ट; (३) विशिष्ट गुणों के आधार होने से तत्त्व^२ के तीन स्वरूपों में परम; (४) तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित; (५) व्यवहार से अभूतपूर्व पर्याय में से (पहले कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय में से) च्युत होने का अभाव होने के कारण नित्य - ऐसे वे भगवन्त परमेष्ठी होते हैं।

गाथा ७२ पर प्रवचन

७२ वीं गाथा, सिद्ध की (है)। वह (७१ वीं) अरिहन्त की गाथा थी। अब सिद्ध की गाथा। व्यवहार है न, व्यवहार ? इसमें पाँचों परमेष्ठी रखे। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, व्यवहार और निश्चय दोनों डाले।

णट्टकम्मबंधा अट्टमहागुणसमण्णिया परमा ।

लोयग-ठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति ॥७२॥

हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं।

लोकाग्र में जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं ॥७२॥

सिद्ध का अर्थ शाश्वत बताया। लो !

टीका : सिद्धि के परम्पराहेतुभूत... सिद्ध भगवान् मुक्ति के परम्परा हेतु हैं। साक्षात् हेतु तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य है। इनका निमित्त है, इसलिए परम्परा हेतु कहा जाता है। साक्षात् सिद्धपरमात्मा इसकी मुक्ति का साक्षात् कारण नहीं है। साक्षात् कारण तो स्वचैतन्य के आश्रय से वर्तते दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य, ये साक्षात् कारण हैं। उसमें व्यवहार श्रद्धा सिद्ध भगवान् की आती है; इसलिए परम्परा हेतु कहने में आया है। परम्परा निमित्त, ऐसे भगवन्त सिद्धपरमेष्ठियों का स्वरूप यहाँ कहा है।

-
१. सिद्धभगवन्त क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध इन आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट - आनन्दमय होते हैं।
 २. सिद्ध भगवन्त विशिष्ट गुणों के आधार होने से बहिःतत्त्व और परमतत्त्व ऐसे तीन तत्त्वस्वरूपों में से परमतत्त्वस्वरूप हैं।

[भगवन्त सिद्ध कैसे होते हैं] अब सिद्ध कैसे हुए - यह बात साथ में कहते हैं ।
 (१) निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार, ध्यान-ध्येय के विकल्परहित निश्चय-
 परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया है ऐसे;... लो,
 ऐसा कहा है । अपवास करके या ऐसा करके कर्म नाश किया है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते
 हैं । वह तो विकल्प है । यह तो निरवशेषरूप से... अशेषतः; कुछ शेष रखे बिना; सम्पूर्णरूप
 से; सर्वथा । [परमशुक्लध्यान का आकार अर्थात् स्वरूप सम्पूर्णतया अन्तर्मुख होता है ।]

आत्मा अन्तर पूर्णानन्दस्वरूप है, उस पर शुक्लध्यान अन्तरस्वरूप है । अन्तर में
 स्वरूप है, वह बाह्य है नहीं । निरविशेषरूप से जिसने अन्तर्मुख ध्यान-ध्येय के
 विकल्परहित... ध्यान करना और यह ध्येय भगवान आत्मा है, ऐसे भेद का भी जहाँ
 विकल्प अर्थात् राग नहीं है । आहाहा ! ऐसे ध्यान और ध्येय के विकल्प अर्थात् रागरहित
 अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है । शुक्लध्यान का । अन्तर्मुख जिसका भाव है; जरा भी
 बहिर्मुख नहीं । ऐसे निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से... लो, वापस परमशुक्ल ।
 परमशुक्ल - ध्यान, ऐसा । अन्तर के शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान में अन्तर्मुख होकर जो
 परमशुक्लध्यान प्रगट हुआ, उसके बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया
 है... वे चार तो सही परन्तु दूसरे चार नये अर्थात् आठ नष्ट किये हैं, ऐसा कहते हैं । चार
 घातिकर्म तो अन्तर्मुख के ध्यान द्वारा नष्ट होते हैं । अन्तर्मुख की परिणति द्वारा नाश होते हैं ।
 बहिर्मुख के किसी भी विकल्प द्वारा किसी कर्म का नाश नहीं होता । आहाहा !

दर्शनमोह का नाश अन्तर्मुख दृष्टि के स्वरूप से वह नाश होता है । देखो ! इसमें ऐसा
 आता है न कि जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है । धवल
 में आता है न ? वह तो निमित्त की व्याख्या है । जिनबिम्ब तो यह आत्मा अन्तर वीतरागमूर्ति
 प्रभु में अन्तर्मुख होकर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है । समझ में आया ? आठों ही कर्मों
 का नाश कहा न ? अन्तर्मुखाकार । अन्तर्मुखाकार पहले धर्मध्यान का अन्तर्मुखाकार है ।
 यह अशेष भी अन्तर्मुखाकार है । सब पूर्ण रीति से । धर्मध्यान में सम्यग्दर्शन होने में भी,
 दर्शनमोह के नाश में भी अन्तर्मुख आश्रय है । पूर्ण आनन्दस्वरूप के आश्रय से ही दर्शनमोह
 का नाश होता है । समझ में आया ? शुभोपयोग से शुद्धोपयोग होता है, ऐसा नहीं - ऐसा
 कहते हैं । शुभोपयोग तो बाहर का व्यापार है । शुद्ध है, वह तो अन्तर्मुख का व्यापार है । दोनों
 की दिशा में अन्तर है ।

निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार,... तो पहले अन्तर्मुख के स्वरूप से दर्शनमोह का नाश किया, पश्चात् अन्तर्मुख में चारित्र (मोह) का भी नाश हुआ, पश्चात् पूर्ण अन्तर्मुख हुए, तो आठों का नाश हुआ। यहाँ तो उन चार अघाति का भी अन्तर्मुखाकार नाश किया। निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया है... वे सिद्ध कैसे हुए, यह बतलाते हैं। सिद्धपद इस प्रकार से प्राप्त होता है। किसी बाहर के क्रियाकाण्ड से वह प्राप्त नहीं होता। समझ में आया ? यह तो आठ कर्म का नाश किया। अट्टमहागुणसमणिया—क्षायिक सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों की पुष्टि से तुष्ट;... हैं। आठ गुणों की पुष्टि से आनन्दमय हैं। नीचे (फुटनोट) सिद्धभगवन्त क्षायिक सम्यक्त्व,... समकित पहले लिया, लो ! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध इन आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट - आनन्दमय होते हैं। इसमें चारित्र नहीं आया, इसलिए कितने ही ऐसा कहते हैं कि उन्हें चारित्र नहीं होता। (किन्तु) यह मिथ्या बात है। चारित्र आ गया। अनन्त सुख है न ? समकित का सुख और चारित्र का सुख दोनों होकर अनन्त सुख प्रगट हुआ। सिद्ध भगवान में भी चारित्र है। अपना चारित्रगुण स्वभाव पूर्ण प्रगट हो गया है। व्यवहारचारित्र के नाम जो हैं सामायिक और... वह है। वह चारित्र नहीं आया। कोई कहे सिद्ध का चारित्र नहीं। सिद्ध को पूर्ण चारित्र है। आहाहा ! वहाँ यह चारित्र क्या होता है ? अपने स्वरूप के आनन्द में रमणता, वह चारित्र है। वह पूर्ण रमणता प्रगट हो गयी, वह पूर्ण चारित्र है।

तुष्टि-सन्तुष्ट हैं। तुष्ट हैं न ? तुष्ट-तुष्ट हैं। आठ गुणों से सन्तुष्ट। सन्तुष्ट अर्थात् आनन्द है। अनन्त आनन्द भी साथ में है। आहा ! गुण कहे हैं परन्तु वह है पर्याय। गुण कहे हैं न ? क्षायिक समकित आदि अष्ट गुण। लो, कितने ही यह कहते हैं न, भगवान ने आठ गुण कहे हैं, तुम कहते हो कि वह पर्याय है। भगवान ने पर्याय कही है। पर्याय को ही गुण कहा है। गुण प्रगट होते होंगे ? गुण तो त्रिकाल है। यहाँ तो पुष्टि से तुष्ट है। सब आनन्दसहित प्रगट हुए हैं। पर्याय की बात है। सिद्ध भी पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल है, उनकी उल्टी अवस्था संसार है। पूर्ण सुल्टी अवस्था, वह मोक्ष है, पर्याय है। समकित भी पर्याय है। चारित्र भी पर्याय है, सिद्ध भी पर्याय है।

विशिष्ट गुणों के आधार होने से तत्त्व के तीन स्वरूपों में परम;... हैं। सिद्ध भगवान तो विशिष्ट गुणों के आधार होने से... गुण अर्थात् पर्याय। बहिरतत्त्व, अन्तःतत्त्व और

परमतत्त्व । ऐसे तीन तत्त्वस्वरूप में से परम तत्त्वस्वरूप पर्याय, स्वयं उत्कृष्ट पर्याय है न ? वह परमतत्त्व । यहाँ ध्रुव की बात नहीं है । विशिष्ट गुणों के आधार होने से... विशिष्ट समस्त पर्यायें पूर्ण प्रगट हुई होने से उनकी पर्याय का आधार सिद्ध भगवान हैं । इन तत्त्व के तीन स्वरूपों में... बहिर्तत्त्व, अन्तःतत्त्व-द्रव्य; बहिर्तत्त्व-पर्यायें, इनमें भी परमतत्त्व अर्थात् सिद्ध की पूर्ण पर्याय उत्कृष्ट है । लो, तीन स्वरूप में परम हैं । पूर्ण दशा प्रगट हुई है ।

तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित;... हैं । लो, लोक के अग्र में सिद्ध भगवान विराजते हैं । तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से... व्यवहार से बात की है । लोक के अग्र में स्थित;... है, वह बराबर निश्चय है । निश्चय अर्थात् ? पर के कारण से नहीं, स्वयं के कारण से स्थित हैं । इस प्रकार निश्चय तो स्वरूप में स्थित है । लोक के अग्र में स्थित हैं, यह तो व्यवहार कहने में आता है । तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित;... हैं । धर्मास्ति का अभाव होने से लोक के अग्र में स्थित हैं । इसका अर्थ ही यह है । उनकी अवस्था ही वहाँ रहने की योग्यता है, इसलिए धर्मास्ति नहीं है । व्यवहार से... व्यवहार है, परन्तु निश्चय तो यह है । लोक के अग्र में सिद्ध भी कथंचित् परतन्त्र है ऐसा (लोग) कहते हैं । ऐसा नहीं है । पूर्ण स्वतन्त्र हैं । कहते हैं न कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र – ऐसा लगाते हैं । अनेकान्त को जहाँ-तहाँ ऐसी विपरीतता कर देते हैं । कदाचित् शुभभाव से धर्म हो, कदाचित् शुद्ध से भी हो । कदाचित् समकित से बन्ध भी हो और समकित से मुक्ति भी हो, इसका नाम (लोग) अनेकान्त कहते हैं ।

मुमुक्षु : गति मिलती है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित से क्या गति मिले ? राग से मिलती है । ऐसी भाषा समकित के साथ है, इसलिए ऐसा कहा है । समकित है, वह तो निर्मल दशा है । निर्मल दशा से स्वर्ग मिले ? तीर्थकरणना, वह भी शुभभाव का अपराध है । तीर्थकरणना बाँधे और मुनि को आहारक शरीर बाँधे, वह शुभोपयोग का अपराध है । आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कल्याण करता था ? स्वयं को ऐसा शुभभाव आया, हो गया । एक मनुष्य के दो भव होंगे । एक भव में केवल (ज्ञान) नहीं ले सकेगा ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ क्या ? इसका अभाव करेगा, उसे मुक्ति होगी । जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधा, उस भाव का भी अभाव करेगा । आहाहा ! कैसी बात ! वस्तु का स्वरूप ऐसा है । वाद-विवाद करे, इससे कहीं वस्तु बदल जाएगी ? तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह भाव अपराध है – ऐसा पुरुषार्थसिद्धियुपाय में (गाथा २२०) पाठ है । अपराध है, ऐसा पाठ है । अमृतचन्द्राचार्य (का पाठ है) । आहाहा ! पंच महाव्रत के परिणाम, वह अपराध है, विकल्प है, राग है । जगत को पकड़ा हो, उसमें से निकलना, भारी काम ।

तीन लोक के शिखर से आगे गतिहेतु का अभाव होने से... कारण यह दिया, देखो यह । परन्तु पहले परिणमन सिद्ध किया न ? समझ में आया ?लोक के अग्र में स्थित;... हैं । लो, वहाँ निमित्त नहीं और वहाँ स्थित स्वयं उपादान से है । बस, उपादान बताते हैं । स्वयं को भी आगे जाने की योग्यता है ही नहीं । व्यवहार से वे सिद्ध भगवान व्यवहार से नित्य कहने में आते हैं । पाठ है न ? लोयग-ठिदा णिच्चा व्यवहार से नित्य है । निश्चय से तो परिणमन समय-समय में बदलता है । सिद्ध भी समय-समय में बदलते हैं । स्तुति में एक आता है, प्रभु ! तुम तो समय-समय में बदलते हो, मैं तो असंख्य समय में बदलता हूँ । असंख्य समय का ख्याल आता है । वह भी बदलता है तो समय-समय में । असंख्य समय में ख्याल आता है । स्तुति में आता है । कहीं आता होगा । तुम तो समय-समय में बदलते हो, परन्तु मुझे तो अन्तर्मुहूर्त में बदलता है । इसका अर्थ कि मेरी ऐसी स्थूलता है । आपको सूक्ष्मता प्रगट हो गयी है । व्यवहार से वे नित्य हैं ।

अभूतपूर्व पर्याय... भगवान को पूर्व में नहीं थी, ऐसी सिद्धपर्याय प्रगट हुई । (पहले कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय में से) च्युत होने का अभाव होने के कारण यह पर्याय हुई, इसमें से नाश होने का अभाव होने से । नाश अर्थात् व्यवहार से वह नित्य कहने में आती है । कहो, समझ में आया ? ऐसी की ऐसी पर्याय रहनेवाली है, इस अपेक्षा से (नित्य कही जाती है) । पर्याय तो समय-समय में बदलती ही है । व्यवहार से अभूतपूर्व पर्याय में से (पहले कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय में से) च्युत होने का अभाव होने के कारण नित्य – ऐसे वे भगवन्त परमेष्ठी होते हैं । लो, जैन में रहे हुए को भी उनके जैन सम्प्रदाय में क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती । जहाँ तहाँ भटकते हैं । यह अभी

मुम्बई में करनेवाले हैं न ? अठारह दिन के पर्यूषण । समाचार-पत्र में आया था । महावीर की वाणी । आठ दिन श्वेताम्बर के, दस दिगम्बर के । महावीर की वाणी का... अठारह दिन ।

मुमुक्षु :मूर्ख हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मूर्ख तो कोई हुआ ही नहीं, ऐसा कहते हैं । कौन जाने पहले उसमें घुस गया । फिर और इसमें... डाला । ...अठारह दिन के पर्यूषण, सौ रुपये की टिकिट । अठारह दिन व्याख्यान सुनना हो तो सौ रुपये देना पड़ेगा । कल समाचार पत्र में आया था न ? पैसा उगाहना और महावीर के नाम की वाणी । कहाँ महावीर और कहाँ... महावीर तो महावीर ही हैं । आहाहा ! महावीर की वे बेचारे कहते हैं, महावीर की २५०० वर्ष मनाना है । अपने जैन तो थोड़े हैं, ऐसा हम महोत्सव नहीं कर सकेंगे । जैसी विश्व में बौद्ध की हुई है, वैसी कोई हम नहीं कर सकेंगे । भगवान तो कोई... बुद्ध वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि था । ये तो तीन लोक के नाथ, सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्णानन्द, इनका अपन महोत्सव क्या कर सकेंगे ? और नहीं तो सब महोत्सव में इकट्ठे मिल जाएँ, ऐसा कहते हैं । ईशु का भी महोत्सव, बुद्ध का महोत्सव, गाँधी का महोत्सव और महावीर का महोत्सव ।

मुमुक्षु : लौकिक के साथ मिल जाए ।

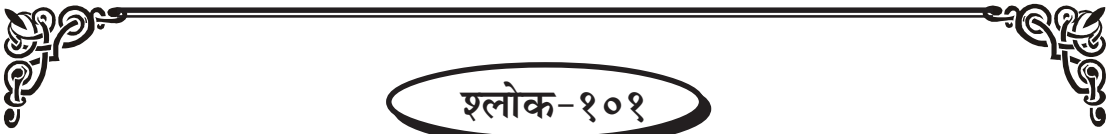
पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक के साथ अपने को (समन्वय नहीं होता)... अरे ! महावीर कौन और ईशु तथा बौद्ध कौन ? तीन लोक के नाथ एक समय में जिन्हें परिपूर्ण ज्ञान.. परमेश्वर कृतकृत्य हो गये । उनका यह महोत्सव... तुलना करना... साधारण के साथ तुलना... एक मत है, इसकी महिमा कुछ घटे ऐसी नहीं है । यह कहा था वहाँ । वहाँ साहूजी आये न ? कहा था, बात तो ऐसी है । अपने जैन चाहे जैसे हों... चाहे जितने हों परन्तु महोत्सव ईशु का किया, वैसी नहीं कर सकेंगे । वे तो करोड़ों रुपये साधारण, पूरा वर्ग ही अभी मिथ्यादृष्टि का बड़ा है । वह तो बड़ा होता है । मनुष्य में अधिक ।

भगवान ! आहाहा ! एक समय में तीन काल, तीन लोक (जाने), उन्हें नहीं परन्तु पर्याय जानते हुए जानने में आ जाएँ । आहाहा ! ऐसी बात की गन्ध अन्यत्र कहाँ है ? ईशु और बौद्ध वे तो सब... जरा सब... आए... जैन... थोड़े, वे थोड़े भी मतभेद एक ओर रखकर एक होवे तो करो, दूसरा क्या ? शुभभाव है । वह कोई शुद्ध नहीं । तब ऐसा कहा था । साहूजी... भाई । आहाहा ! आत्मा अनन्त गुण और सब पूर्ण प्रगट पर्यायरूप से परिणमन

हो गया। और एक समय में जिन्हें तीन काल-तीन लोक जानने में आवे और वह-वह दशा ऐसी की ऐसी कायम रहे, इसलिए उसे नित्य कहा जाता है। कूटस्थ कहा है न!

सिद्ध भगवान की पर्याय को कूटस्थ कहा। कूटस्थ का अर्थ? ऐसी की ऐसी रहती है, इस अपेक्षा से। बाकी समय-समय में बदलती है। सिद्ध का ज्ञान, केवलज्ञान समय-समय में बदलता है। केवलज्ञान तो पर्याय है, कोई गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाल है। आहाहा! उसका महोत्सव कौन करे? अन्तर में अनुभव करके उग्रता प्रगट करे, वह महोत्सव है। आहाहा! यह प्रभु का पामर प्राणी क्या महोत्सव करे?

यहाँ कहते हैं, वह पर्याय कायम रहती है, इसलिए उसे नित्य कहा जाता है। आहाहा! ध्रुव तो नित्य है परन्तु पर्याय भी सदा ऐसी की ऐसी रहती है, इसलिए पर्याय को भी नित्य कहा जाता है। ध्रुव आया है न पहले? ध्रुव, अचल। समयसार की पहली गाथा। सिद्ध भगवान ध्रुव हैं। यह पर्याय की बात है। ध्रुव है न? 'वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं' वह पर्याय ध्रुव है। ऐसे समय-समय में नाशवान है। यह कहा तो भी ऐसी की ऐसी है, इसलिए ध्रुव है, ऐसा कहने में आता है। इसने कभी अनन्त काल में यह आत्मा क्या? वस्तु क्या? शक्ति क्या? दशा क्या? उसकी सम्हाल करने की इसने दरकार नहीं की। इस दुनिया की पंचायत-जंजाल, व्यवहार धन्धा, शुभ की क्रिया में रुककर... आत्मा ऐसा राग से भिन्न ऐसी अनन्त सामर्थ्यवाला तत्त्व, जिसकी एक समय की पर्याय में तीन काल ज्ञात हो, ऐसी की ऐसी पर्याय नित्य रहा करे। आहाहा!



श्लोक-१०१

अब ७२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं —

(मालिनी)

व्यवहरण-नयेन ज्ञानपुञ्जः स सिद्धः,

त्रिभुवनशिखराग्रग्रावचूडामणिः स्यात् ।

सहज-परम-चिच्चिन्तामणौ नित्य-शुद्धे,
निवसति निज-रूपे निश्चयेनैव देवः ॥१०१॥

(वीरछन्द)

वे सिद्धप्रभु व्यवहारनय से ज्ञान के घनपुञ्ज हैं।
त्रिभुवन शिखर की शिखा के चूड़ामणी घनरूप हैं ॥
वे देव निश्चय से सहज चैतन्य चिन्तामणि परम।
निज नित्य शुद्ध स्वरूप में ही वास करते हैं स्वयं ॥

[श्लोकार्थः —] व्यवहारनय से ज्ञानपुंज ऐसे वे सिद्ध भगवान त्रिभुवनशिखर की शिखा के (चैतन्यघनरूप) ठोस चूड़ामणि^१ हैं; निश्चय से वे देव सहजपरमचैतन्य-चिन्तामणिस्वरूप नित्यशुद्ध निजरूप में ही वास करते हैं।

श्लोक-१०१ पर प्रवचन

अब ७२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं —

व्यवहरण-नयेन ज्ञानपुञ्जः स सिद्धः,
त्रिभुवनशिखराग्रग्रावचूडामणिः स्यात् ।
सहज-परम-चिच्चिन्तामणौ नित्य-शुद्धे,
निवसति निज-रूपे निश्चयेनैव देवः ॥१०१॥

भगवान सिद्धपरमात्मा व्यवहारनय से लोक के अग्र में हैं, ऐसा कहने में आता है। पर के क्षेत्र में हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से तो भगवान अपने स्वरूप में ही है। लोक के अग्र में कहना, यह व्यवहार है - ऐसा कहते हैं। लोक पर है न? पराश्रय, वह व्यवहार। यह तो भगवान अपने गुण की पर्याय में बसे हुए हैं। भाव में बसे हुए हैं। अपने क्षेत्र में बसे हुए हैं। परक्षेत्र में नहीं। अपना असंख्य प्रदेश क्षेत्र है, उनके अनन्त गुण की पर्याय के परिणामन में बसे हुए है। निज क्षेत्र में बसे हैं, यह निश्चय। लोक के अग्र में

१. चूड़ामणि = शिखामणि; कलगी का रत्न; शिखर का रत्न।

रहते हैं, यह व्यवहार। वे कहें - लोक के अग्र में व्यवहार, यह खोटा है ? व्यवहार अभूतार्थ है न ? अभूतार्थ का अर्थ ? लोक के अग्र में वास्तव में नहीं है। वास्तव में अपने स्वरूप में हैं। समझ में आया ? अब इसका अर्थ करते हैं कि तुम लोक के अग्र को व्यवहार कहते हो। व्यवहार तो अभूतार्थ है। तो लोक के अग्र में नहीं ? अन्यत्र हैं ?आहाहा !

निश्चय से लोक के अग्र में नहीं हैं। निश्चय से अपने स्वरूप में हैं। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में स्वयं भगवान विराजते हैं। परक्षेत्र में नहीं, तथापि परक्षेत्र में है, ऐसा कहना व्यवहार है। व्यवहार अन्यथा कहता है। व्यवहार से व्यवहार को सच्चा सिद्ध करना है।

व्यवहारनय से ज्ञानपुंज ऐसे वे सिद्ध भगवान... वह ज्ञान का पुंज प्रभु है। अकेली ज्ञानदशा। पूर्ण ज्ञानपुंज हो गये हैं। ऐसा ही यह आत्मा है। अकेला ज्ञान का पुंज है। **व्यवहारनय से...** इतना रखना। **ज्ञानपुंज ऐसे वे सिद्ध भगवान त्रिभुवनशिखर की शिखा के...** त्रिभुवन के शिखर के ऊपर (चैतन्यघनरूप) ठोस चूड़ामणि हैं;... चैतन्यघन तो अपना स्वभाव है परन्तु वहाँ शिखर के ऊपर है, यह व्यवहार से कहा जाता है। ठोस-ठोस। ठोस चूड़ामणि। **कलगी का रत्न; शिखर का रत्न।** है। असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें विकल्प का प्रवेश नहीं। वहाँ परक्षेत्र का प्रवेश नहीं। आहाहा ! लोक का अग्र कहो परन्तु उस अग्र के क्षेत्र का अन्दर प्रवेश नहीं। अपने क्षेत्र में वे स्वयं हैं। आहाहा !

निश्चय से वे देव सहजपरमचैतन्यचिन्तामणिस्वरूप नित्यशुद्ध... वह व्यवहार था। लोक के अग्र में वह (व्यवहार था)। **निश्चय से वे देव...** परमात्मा सिद्ध भगवान **सहजपरमचैतन्य...** स्वाभाविक परमचैतन्य **चिन्तामणिस्वरूप...** परमचैतन्यचिन्तामणि। आहाहा ! जिसमें लोकालोक... एक समय, 'स' के बोलने में असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय में लोकालोक ज्ञात हो जाए, ऐसा चैतन्यचिन्तामणिरत्न है। **निश्चय से वे देव सहजपरमचैतन्यचिन्तामणिस्वरूप नित्यशुद्ध...** पर्याय कायम अर्थात् निजस्वरूप में ही वास करते हैं। पर्याय निर्मल शुद्ध वहाँ बसती है, ऐसा कहते हैं। अपनी परम आनन्ददशा, अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत, वह समय-समय में अनन्त अमृत का भोजन भगवान करते हैं। आहाहा ! सिद्ध भगवान को अतीन्द्रिय अमृत का भोग समय-समय में है। यह भगवान को भोग चढ़ाते हैं न ? क्या कहलाता है ? थाल। वैष्णव चढ़ाते हैं। वह भोग धूल का (जड़ का) है। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का भोग, परमात्मा को

अनन्त भोग प्रगट हुआ है। ऐसे चिन्तामणि नित्यशुद्ध निजस्वरूप में ही वास करते हैं। यह सब पर्याय की बात है। नित्यशुद्ध निजस्वरूप... परिणति में वे बसते हैं। निश्चय से उसमें बसते हैं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार से लोक के अग्र में बसते हैं। लोक के अग्र में हैं, यह बराबर है परन्तु आत्मा लोक के अग्र में हैं, यह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखा? परन्तु है न? इस अपेक्षा से बराबर है परन्तु आत्मा उसमें अग्र में है, यह व्यवहार है। निश्चय से तो अपने स्वरूप में है।

अपना निज मन्दिर, निरावरण, निर्मल दशा हुई, उसमें वे बसते हैं। अरे! अरूपी भी महापदार्थ है। अरूपी (का अर्थ) तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। अरूपी का स्वरूप है। अरूपी का रूप स्वरूप है। ले, स्वरूप है या नहीं अरूपी भी? वह जड़स्वरूप है। अरूपी स्वरूप है। स्वरूप पदार्थ है। विज्ञानघन चिन्तामणि रत्न ऐसा नित्य शुद्ध निजस्वरूप में ही बसता है। उसका क्षेत्र वह है। लोक के अग्र में कहना, वह पर की अपेक्षा से व्यवहार है। दूसरा श्लोक, १०२।

श्लोक-१०२

(स्रग्धरा)

नीत्वास्तान् सर्व-दोषान् त्रिभुवन-शिखरे ये स्थिता देह-मुक्ताः
तान् सर्वान् सिद्धिसिद्धयै निरुपमविशदज्ञानदृक्शक्तियुक्तान् ।
सिद्धान् नष्टाष्ट-कर्म-प्रकृति-समुदयान् नित्य-शुद्धाननन्तान्,
अव्याबाधान्नमामि त्रिभुवनतिलकान् सिद्धिसीमन्तिनीशान् ॥१०२॥

(वीरछन्द)

सर्व दोष को नष्ट किया लोकाग्र शिखर पर जो थिर हैं।
देह मुक्त निरुपम निर्मल जो ज्ञान शक्ति से शोभित हैं ॥
जो हैं अष्टकर्म की प्रकृति के समूह के नाशक जान।
नित्य शुद्ध हैं जो अनन्त हैं अव्याबाध त्रिलोक प्रधान ॥

मुक्ति सुन्दरी के स्वामी हैं निर्मल गुण अनन्त की खान।
सिद्धि प्राप्ति के लिए अहो! मैं सब सिद्धों को करूँ नमन ॥

[श्लोकार्थः] जो सर्व दोषों को नष्ट करके देहमुक्त होकर त्रिभुवनशिखर पर स्थित हैं, जो निरुपम विशद (निर्मल) ज्ञानदर्शनशक्ति से युक्त हैं, जिन्होंने आठ कर्मों की प्रकृति के समुदाय को नष्ट किया है, जो नित्यशुद्ध हैं, जो अनन्त हैं, अव्याबाध हैं, तीन लोक में प्रधान हैं और मुक्तिसुन्दरी के स्वामी हैं, उन सर्व सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति के हेतु मैं नमन करता हूँ।

श्लोक-१०२ पर प्रवचन

नीत्वास्तान् सर्व-दोषान् त्रिभुवन-शिखरे ये स्थिता देह-मुक्ताः
तान् सर्वान् सिद्धिसिद्धयै निरुपमविशदज्ञानदृक्शक्तियुक्तान् ।
सिद्धान् नष्टाष्ट-कर्म-प्रकृति-समुदयान् नित्य-शुद्धाननन्तान्,
अव्याबाधान्नमामि त्रिभुवनतिलकान् सिद्धिसीमन्तिनीशान् ॥१०२॥

यह क्या कहा... अर्थ किया है ? अव्याबाध है परन्तु इसमें वापस... है वह ? नमामि । अव्याबाधन नमामि । अव्याबाध ऐसे भगवान के स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ।

श्लोकार्थः : जो सर्व दोषों को नष्ट करके... इसका अर्थ सर्व दोषों को नष्ट करके... लो । कितने ही सिद्ध तो अनादि के हैं । सिद्ध भी दोष का नाश करके ही सिद्ध हुए हैं । अनादि की परम्परा तो यही है । आहाहा ! विवाद उठाते हैं । ऐसा कि सिद्ध अनादि के अनन्त हैं । वे पहले संसारी थे, फिर सिद्ध हुए । तब पहले संसारदशा बड़ी हुई, ... फिर सिद्ध हुए । एक-एक व्यक्ति की अपेक्षा से तो ऐसा ही कहा जाता है । अनन्त की अपेक्षा से अनन्त सिद्ध अनादि के हैं । पहले कोई सिद्ध नहीं थे और पहला हुआ, ऐसा नहीं होता । पहले कोई सिद्ध नहीं थे और संसार का नाश करके पहले हुए हैं, ऐसा नहीं होता । सिद्ध अनादि-अनन्त; संसार अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा है । सिद्ध हुए, ऐसा जब कहना हो, तब ऐसा ही कहा जाता है ।

सर्व दोषों को नष्ट करके देहमुक्त होकर... लो ! देह थी, उससे मुक्त होकर ।

त्रिभुवनशिखर पर स्थित हैं,... तीन भुवन के शिखर पर स्थित हैं। जो निरुपम विशद (निर्मल) ज्ञानदर्शनशक्ति से युक्त हैं,... जिसे उपमा न दी जा सके, ऐसे निर्मल ज्ञानदर्शन से युक्त हैं-सहित हैं। ज्ञानदर्शन से सहित हैं। पर से सहित हैं, ऐसा नहीं। निर्मल, विशद, निरुपम-जिसकी उपमा नहीं मिलती। ऐसे ज्ञानदर्शनशक्ति से युक्त हैं,... यह पर्याय की बात है। ज्ञानदर्शन शक्ति, यह पर्याय की बात है।

जिन्होंने आठ कर्मों की प्रकृति के समुदाय को नष्ट किया है,... भाषा क्या आवे ? जिन्होंने आठ कर्म की प्रकृति, वापस। उसका स्वभाव, उसके समुदाय को नष्ट किया है। अपना स्वभाव पूर्ण प्रगट किया है। जो नित्यशुद्ध हैं,... लो, यहाँ आया। नित्यशुद्ध हैं। जो निर्मलदशा प्रगट हुई, वह कायम ऐसी की ऐसी रहती है। व्ययरहित उत्पाद और उत्पादरहित व्यय, आता है न ? भाई ! प्रवचनसार में। आहाहा ! व्ययरहित उत्पाद। सिद्धपर्याय प्रगट हुई, कैसी ? कि व्ययरहित। उत्पाद बिना का व्यय-संसार का नाश हुआ, संसाररहित... अब उत्पाद... है ? प्रवचनसार... अन्दर है। व्ययरहित उत्पाद और उत्पादरहित व्यय। आहाहा ! तो ही सिद्धपना रहे न ? नित्य है न ? जो नित्य पर्याय प्रगट हुई, उत्पाद। व्ययरहित उत्पाद। अब उस पर्याय का व्यय-नाश नहीं होगा। इस संसार का व्यय हुआ, वह उत्पादरहित व्यय हुआ। अब फिर संसार उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा ! ऐसे भगवान-सिद्ध भगवान की जाति का तू है, कहते हैं। आहाहा ! ऐसा कहाँ स्वरूप है ? दूसरे सब गप्प मारते हैं। महावीर की वाणी... आहाहा ! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जैनदर्शन अर्थात् कोई सम्प्रदाय नहीं, विश्वदर्शन है। विश्व का स्वरूप है, आत्मा का, जड़ का स्वरूप है, ऐसा इसका स्वरूप है। ऐसी जो सिद्ध भगवान की पर्याय प्रगट हुई, वह नित्य शुद्ध है, ऐसा कहते हैं।

जो अनन्त हैं,... वह पर्याय अनन्त है। ऐसी की ऐसी अन्तरहित हुआ ही करेगी। अव्याबाध हैं,... कोई विघ्न करनेवाला नहीं है। लो ! अव्याबाध है। धर्मास्तिकाय ने सिद्ध को रोका है तो अव्याबाध नहीं रहे। सिद्ध को धर्मास्तिकाय ने रोका है न ? वे क्यों नहीं ऊपर जाते ?

मुमुक्षु : लोक का आत्मा लोक में रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा लोक का द्रव्य है, लोक में रहेगा। अलोक में कहाँ जाता

था ? आहाहा ! लोक की चीज़ है, लोक में रहती है। अलोक में कहाँ से जाए ? लोक तो उसे कहते हैं—लोकयन्ति इति लोकः। जहाँ छह द्रव्य दिखते हैं, उसे लोक कहते हैं। अलोक अर्थात् जहाँ छह द्रव्य हैं नहीं, एक आकाश है, उसका नाम अलोक। आहाहा ! ऐसी बात देखो तो सही ! सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसी वस्तु की स्थिति वर्णन की, ऐसी स्थिति कहीं, कहीं अन्यत्र नहीं है। सब बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। लाखों लोग इकट्ठे हों, धूल में भी कहते हैं नहीं। आहाहा ! सत्य तो यह है।

तीन लोक में प्रधान हैं... त्रिभुवन तिलक। तीन लोक के तिलक हैं। ऊपर। और **मुक्तिसुन्दरी के स्वामी हैं,...** लो। सिद्धिसीमन्तिनीशान् मुक्तिरूपी सुन्दरी। यह पवित्र आनन्द की दशा और पूर्ण ज्ञानदशा, ऐसी जो उसकी पर्याय, उसके वे स्वामी हैं। अपनी निर्मल पर्याय के स्वामी हैं। लोक के नाथ कहलाते हैं न ? वे तो जानते हैं 'लोगनाहाणं, लोग-हिआणं, लोग-पईवाणं, लोग-पज्जोअगराणं, अभय-दयाणं, चक्खु-दयाणं, मग्ग-दयाणं...' आता है या नहीं ? ...बहुत विशेषण लगाते हैं। परन्तु है क्या ?, अर्थ की खबर नहीं होती। मग्ग-दयाणं व्याख्यान में करते होंगे। पहाड़े बोले। आहाहा !

मुक्तिसुन्दरी के स्वामी हैं,... लो। उन सर्व सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति के हेतु मैं नमन करता हूँ। लो। ठीक। मैं भगवान को नमस्कार करता हूँ, उससे मुझे सिद्धि प्राप्त होगी। सिद्धि को नमे, वह तो विकल्प है। वह तो बात है। उसमें नहीं आता 'वन्दे तद्गुण लब्धये' - हे भगवान ! आपके गुणों की प्राप्ति के लिए आपको नमन करता हूँ। यह तो बात करते हैं। तुम्हारी जाति है, वह मुझे अन्तर में से प्रगट करनी है। आपको वन्दन करूँ, ऐसे विकल्प में कुछ नहीं है। यह तो समयसार में पहले नहीं कहा ? यह टीका करते हुए मेरी शुद्धि बढ़ जाओ। टीका करते हुए बढ़ जाओ तो टीका का तो विकल्प है।

मुमुक्षु : अभी क्यों लिखे होवे तब लिखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिखे ? लिखते हैं वह बराबर लिखते हैं। अन्तर में मेरा आश्रय चैतन्य में वर्तता है। यह लिखने के समय भी मेरा आश्रय तो चैतन्य द्रव्य ही है। इसके आश्रय की उग्रता होने से अशुद्धता टल जाओ, ऐसा कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, उन सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति के हेतु... मुक्ति की प्राप्ति के लिए वन्दन करता हूँ। 'सिद्धासिद्धिं मम दिशंतु' आता है न ? हे सिद्ध भगवान ! मुझे सिद्धि

दिखाओ। इसका अर्थ कि मैं केवलज्ञान प्रगट करूँ, तब तुम्हारी सिद्धि दिखेगी। लोग्गस्स में आता है या नहीं? हिम्मतभाई! नहीं आता होगा। यह लोग्गस्स में आता है।...उस सर्व सिद्धि की प्राप्ति के लिए, मेरा प्रयोजन मेरे स्वभाव का आश्रय लेकर पूर्ण प्राप्ति करूँ, यह मेरा हेतु है, ऐसा कहते हैं। वन्दन करने का विकल्प है, उससे होगा। ऐसे वन्दन के विकल्प के काल में भी मेरा आश्रय स्वचैतन्य पर है। वह आश्रय बढ़कर मुक्ति की प्राप्ति हो। इसलिए मैं अभी (नमता) हूँ, ऐसा कहते हैं।

के हेतु मैं नमन करता हूँ। लो! सिद्ध भगवान को नमन करना, वह परद्रव्य है। परद्रव्य को नमन, वह तो विकल्प है। विकल्प ही है, राग है। उस समय स्व के आश्रय का जोर करके मैं मुक्ति को प्राप्त करूँ, यही मेरी अभिलाषा है। राग में अटकूँ और राग का फल मुझे मिलना, यह नहीं। आहाहा! भाई! वीतराग की वाणी... व्यवहार से वर्णन करे कुछ, निश्चय से वर्णन करे कुछ।

मुमुक्षु : दो नये का विरोध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दो नये विरुद्ध हुए।

यह १०२ श्लोक हुआ १०३ कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१०३

(अनुष्टुप्)

स्वस्वरूपस्थितान् शुद्धान् प्राप्ताष्टगुणसम्पदः ।

नष्टाष्टकर्मसन्दोहान् सिद्धान् वन्दे पुनः पुनः ॥१०३॥

(वीरछन्द)

निज स्वरूप में जो स्थित हैं और शुद्ध हैं सिद्ध महान्।

वसु गुण सम्पति प्राप्त हुए वसुकर्म विनाशक उन्हें नमन ॥

[श्लोकार्थः] जो निज स्वरूप में स्थित हैं, जो शुद्ध हैं; जिन्होंने आठ गुणरूपी सम्पदा प्राप्त की है और जिन्होंने आठ कर्मों का समूह नष्ट किया है, उन सिद्धों को मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ।

प्रवचन-७३, श्लोक-१०३-१०४, गाथा-७३-७४, मंगलवार, अषाढ़ कृष्ण ६ (गुजराती),
दिनांक १३-०७-१९७१

१०३ वाँ कलश ।

स्वस्वरूपस्थितान् शुद्धान् प्राप्ताष्टगुणसम्पदः ।

नष्टाष्टकर्मसन्दोहान् सिद्धान् वन्दे पुनः पुनः ॥१०३॥

१०३ कलश, ७३ गाथा के ऊपर ।

सिद्ध भगवान जो निज स्वरूप में स्थित हैं,... अपने आनन्द आदि अनन्त गुण की परिणति निर्मल, उसमें सिद्ध परमात्मा स्थित हैं । जो शुद्ध हैं;... परिपूर्ण पवित्र हैं । जिन्होंने आठ गुणरूपी सम्पदा प्राप्त की है... अनन्त गुण । अनन्त समकित, अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि आठ गुण की पर्याय प्राप्त की है । जिन्होंने आठ कर्मों का समूह नष्ट किया है, उन सिद्धों को मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ । ऐसे सिद्ध भगवान—णमो सिद्धाणं । ऐसे सिद्ध को पहिचानकर मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ, ऐसा टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं ।

अब ७३ वीं गाथा, उसकी टीका ।

टीका : यहाँ आचार्य का स्वरूप कहा है । इस ओर है न ? [भगवन्त आचार्य कैसे होते हैं ?] जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव के शासन में आचार्यों का स्वरूप कैसा होता है, उसका वर्णन करते हैं । जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य नामक पाँच आचारों से परिपूर्ण;... हैं । निश्चय आत्मा आनन्द ज्ञानस्वरूप है, उसका जिसे ज्ञान आचरण अन्तर से शुद्ध ज्ञान का परिणमन प्रगट हुआ है । ज्ञान... आचार, दर्शन... आचार । सम्यग्दर्शन का शुद्ध परिणमन जिन्हें प्रगट हुआ है । चारित्र... स्वरूप आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की रमणतारूप चारित्र, उसमें अन्तर रमणता, ऐसा चारित्र जिसे प्रगट हुआ है । तप... शुद्ध आनन्द आदि की परिणति शोभित, तपित, विशेष परिणित निर्मल दशा हुई है, उसे तप कहते हैं । वीर्य... जिसका बल पाँच आचार में परिणम रहा है । शुद्ध, पुण्य-पाप के रागरहित जिसका वीर्य स्वरूप की शुद्ध शक्ति का सत्व, उसका परिणमन करने में वीर्य समर्थ रहा है । इन नामक पाँच आचारों से परिपूर्ण;... हैं । ऐसे जैनदर्शन में आचार्यों

का अन्तःस्वरूप ऐसा होता है। बाह्य में पंच आचार भी विकल्परूप होते हैं। जिनकी नग्नदशा होती है, जो जंगल में बसते हैं। आहाहा! तीनों काल में जैनशासन में आचार्य का ऐसा स्वरूप है।

जिसे स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र नाम की पाँच इन्द्रियोंरूपी मदान्ध हाथी... पाँच इन्द्रियों का मद हाथी मानो मद में आये हों, उसका दर्प का दलन करने में दक्ष (पञ्चेन्द्रियरूपी मदमत्त हाथी के मद को चूरचूर करने में निपुण)... ओहो! अतीन्द्रिय आनन्द जिन्हें उग्ररूप से परिणमित हुआ है। उसके द्वारा पाँच इन्द्रिय के विषयों को पाँच इन्द्रियोंरूपी मदान्ध हाथी के दर्प का दलन करने में दक्ष (पञ्चेन्द्रियरूपी मदमत्त हाथी के मद को चूरचूर करने में निपुण)... हैं। विषय के विकल्प की दशा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! निर्विकल्प—रागरहित आनन्द की दशा में रमते, अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति में झूलते हुए उन्होंने पाँच इन्द्रिय के मद का तो नाश किया है। बहुत सूक्ष्म है। शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं। वह तो जड़-मिट्टी है। अन्दर भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप का जिन्हें परिणमन अर्थात् अवस्था अतीन्द्रिय उग्ररूप से परिणमी है, इसलिए उन्होंने पाँच इन्द्रियों को जीता है।

समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं,.. आत्मा में अकेली शान्ति, अविकारी दशा, निर्दोष पवित्रता प्रगट हुई है कि घोर उपसर्गों के प्रति भी विजय प्राप्त की है। प्रतिकूलता के अनन्त ढेर आवें, तो भी उनके प्रति यह ठीक नहीं है, ऐसा विकल्प जिन्हें नहीं होता। आनन्द में रमते हैं। आहाहा! उन्हें आचार्य कहते हैं। णमो आइरियाणं – आता है न? णमो लोए सव्व आइरियाणं। ऐसे ढाई में द्वीप सन्त, आचार्य जैनदर्शन के होते हैं। समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं, इसलिए धीर... हैं। एक बात। यह तीसरा बोल। और गुणगम्भीर... हैं। जिनके गुण की दशा इतनी गम्भीर है। साधारण जीव को उसका पता नहीं लगता, ऐसी दशा है। अतीन्द्रिय आनन्दपूर्वक निर्मल ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द, शान्ति इत्यादि ऐसी दशा प्रगट हुई है कि जिसके गुण गम्भीर हैं। आहाहा! ऐसा जैनदर्शन के आचार्य का स्वरूप है। ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे भगवन्त आचार्य होते हैं। लो, शब्द प्रयोग किया है। पहले तो कोष्ठक में डाला था। यह तो पाठ में आया। ऐसे भगवन्त आचार्य होते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री वादिराजदेव ने कहा है कि— दूसरे का आधार देते हैं । श्लोक ।

पञ्चाचारपरान्नकिञ्चनपतीन्नष्टकषायाश्रमान्,
चञ्चज्ज्ञानबलप्रपञ्चितमहापञ्चास्तिकायस्थितीन् ।
स्फाराचञ्चलयोगचञ्चुरधियः सूरीनुदञ्चद्गुणान् ,
अञ्चामो भवदुःखसञ्चयभिदे भक्तिक्रियाचञ्चवः ॥

भक्तिक्रियाचञ्चवः चञ्चव । जैन साधु-आचार्य कैसे होते हैं ? नीचे श्लोकार्थ ।

पञ्चाचारपरायण हैं,... अन्तर के ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि वीर्य, तप में तत्पर हैं । शुद्ध आचरण में अन्दर पुण्य-पाप के रागरहित, आनन्द का धाम भगवान के पंचाचार में वे तत्पर हैं । आत्मा का आचरण, ऐसा कहते हैं । उसमें तत्पर हैं । वीतरागी परिणति में वे तत्पर हैं, ऐसा कहते हैं । **जो अकिञ्चनता के स्वामी हैं,**... जिन्हें एक परिग्रह का, राग का अंश नहीं और कपड़े का टुकड़ा नहीं, ऐसे जैन के आचार्य भगवान, भगवान ने वर्णन किये हैं । **अकिञ्चनता के स्वामी हैं,**... बाह्य में नग्नदशा, अन्तर में राग का कण भी जिन्हें नहीं है । आहाहा !

जिन्होंने कषायस्थानों को नष्ट किया है,... शुभ-अशुभराग, ऐसे जो कषाय अर्थात् विकारभाव, उनका जिन्होंने नाश किया है । वीतराग परिणति में झूलते हैं । आहाहा ! **परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो महा पञ्चास्तिकाय की स्थिति को समझाते हैं,**... कहते हैं कि इस जगत में पंचास्तिकाय है अर्थात् काल के अतिरिक्त आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश - ऐसे पाँच अस्तिकाय । काल है, वह अस्ति है परन्तु काय नहीं है । इसलिए पाँच अस्ति में उसे नहीं लेना । ऐसा पंचास्तिकाय का स्वरूप **परिणमित ज्ञान के बल द्वारा...** मात्र धारणा में से नहीं, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! भगवान आत्मा ज्ञान में परिणमन, अन्दर वीतरागी परिणमन हो गया है ।

परिणमित ज्ञान के बल द्वारा... अकेली बात करने बैठे हैं, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं । आहाहा ! अकेले पंचास्तिकाय भगवान ने कहे हैं, ऐसी धारणा की है और कहते हैं, ऐसा भी नहीं । आहाहा ! अन्तर पंचास्तिकाय जगत में हैं, उसका ज्ञान में परिणमन हो गया है । ज्ञानस्वरूप आत्मा, चिदानन्दस्वरूप आत्मा का ज्ञान का परिणमन ही अन्दर हो गया

है। परिणमन के बल द्वारा पंचास्तिकाय का कथन करते हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान के पास सुना हुआ है, सुना हुआ कहते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! शुद्ध चैतन्यभगवान पवित्र की परिणति, जिसकी दशा हो गयी है, कहते हैं। उस दशा के परिणमनपूर्वक पंचास्तिकाय का कथन करते हैं।

महापंचास्तिकाय... भाषा ऐसी ली है न? आकाश लोकालोक का आकाश, आकाशास्तिकाय, एक-एक जीव असंख्य प्रदेशी- ऐसे अनन्त आत्माएँ, उससे अनन्त गुणे परमाणु, धर्मास्ति और अधर्मास्ति, ऐसी महा पंचास्तिकाय की मर्यादा - स्थिति को वे समझाते हैं। जगत में एक ही आत्मा है अथवा अनन्त आत्मा ही है, ऐसा नहीं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश—ऐसे पाँच अस्तिकाय। अस्ति अर्थात् हैं; बहुत से प्रदेशों का समूह अर्थात् काय। भाषा पूरी अलग! ऐसा स्वरूप है।

परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो... जिनका ज्ञानस्वरूप अन्दर वीतरागभाव से परिणम गया है। ऐसे परिणमन के बल द्वारा महापंचास्ति - ऐसी भाषा ली है न? आकाश का तो कहीं अन्त नहीं, ऐसा आकाश है। उनकी स्थिति को समझाते हैं,... आचार्य हैं न? **विपुल अचंचल योग में (विकसित स्थिर समाधि में) जिनकी बुद्धि निपुण है...** विपुल अचंचल योग। (विकसित स्थिर...) आनन्द। स्थिर समाधि-शान्ति। अकषाय शान्ति। वीतरागभाव की शान्ति का परिणमन, ऐसी समाधि अचंचल योग विपुल, **जिनकी बुद्धि निपुण है...** आनन्द की समाधि में जिनकी बुद्धि निपुण है। आनन्द की शान्ति और समाधि। समाधि अर्थात् वे बाबा जोगी करें, उनकी बात यहाँ नहीं है, हों! समाधि। लोगस्स में यह आता है...। आता है न लोगस्स में? अर्थ किसे आता है? भगवान जाने अर्थ तो 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु। चंदेसु निम्मलयरा, आईच्चेसु अहियं पयासयरा;' यहाँ तो 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' इसका अर्थ क्या? मुझे उत्तम समाधि दो। कौन सी समाधि? वे बाबा करते हैं वह? (नहीं)

यहाँ तो आधि, व्याधि, उपाधि रहित आत्मा की वीतरागी शान्ति को समाधि कहते हैं। आधि अर्थात् मन के संकल्प-विकल्परहित; व्याधि अर्थात् शरीर के रोगरहित और उपाधि अर्थात् संयोगरहित - ऐसी आत्मा में शान्त.. शान्त.. शान्त.. उसे शान्ति का समुद्र उछला है। आहाहा! विकसित हुआ है न? कहा न? निपुण अर्थात् विकसित। स्थिर

समाधि में बुद्धि निपुण है। उसमें वे आचार्य चतुर हैं। परम आनन्द की शान्ति, उसमें वे झूलते हैं, उसमें वे निपुण हैं।

जिनको गुण उछलते हैं,... लो। आत्मा के जो अनन्त गुण हैं, वे उछलते हैं अर्थात् पर्याय में परिणमते हैं। जैसे समुद्र में ज्वार आता है, अन्दर से उछलकर ज्वार आता है; इसी प्रकार मुनि को, आचार्यों को अन्तर में अनन्त गुण का जो समुद्र भरा है, वे गुण उछलते हैं। अन्तर के अनुभव की दृष्टि के जोर से अनन्त-अनन्त आनन्द आदि गुण की दशा उछलती है। उछाला मारती है। आहाहा! गजब बात, भाई! समुद्र उछलता है, कहते हैं। भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण हैं। एक-एक आत्मा में (अनन्त-अनन्त गुण हैं)। वे अनन्त-अनन्त गुण उछलते हैं। उसकी पर्याय में ज्वार आता है। क्या होगा यह अनादि से खबर नहीं। आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त आनन्द और ज्ञान तथा शान्ति से भरपूर तत्त्व है। ऐसे तत्त्व का जहाँ अनुभव किया और उसमें एकाग्र हुआ तो अनन्त शक्तिरूप गुण हैं, वे उसकी पर्याय में उछलते हैं। लो, वह आया न? शक्ति उछलती है। ज्ञान में दूसरी शक्तियाँ उछलती हैं। शक्ति में आता है न? सैंतालीस शक्ति। आहाहा! ज्ञान का सम्यक् परिणमन होने पर, शुद्ध चैतन्यद्रव्य का आश्रय लेने पर सम्यग्ज्ञान का परिणमन होने पर अनन्त गुणों की पर्याय, इस ज्ञान की पर्याय में उछलती है, आती हैं। आहाहा! धर्मी को पुण्य-पाप का राग नहीं आता, नहीं उछलता। आहाहा!

जिनको गुण उछलते हैं,... अज्ञानी को विकार उछलता है। पुण्य-पाप के भाव उछाला मारते हैं। अन्धा होकर उनमें पड़ता है। अस्थिरता में जुड़ जाता है। राग में एकाकार हो जाता है। यह अन्दर आनन्द में एकाकार हो जाए, उन आचार्यों को... ऐसे वीतराग मार्ग के अन्तर अनुभवी सन्तों को भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम,... स्वयं मुनि हैं न? टीका करनेवाले मुनि हैं। इसलिए ऐसे जैन के आचार्य होते हैं, उन्हें हम भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम,... वापस ऐसा। ऐसे सन्तों की भक्ति करने में हम कुशल हैं। हमें खबर है कि ऐसे सन्त हैं, उनका बहुमान करने में हम चतुर हैं, सयाने हैं, कुशल हैं, निपुण हैं, चतुर हैं।

मुमुक्षु : राग में...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में अर्थात् उस गुण में। उनके गुण को वन्दन करने में चतुर

हैं। भले विकल्प हो। आहाहा! यह मुनि हैं, वह भी भावलिंगी सन्त हैं। जिन्हें अनन्त आनन्द उछला है। सच्चे मुनि तो उन्हें कहते हैं। वस्त्र त्यागकर बैठे, इसलिए मुनि हो गया—ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह मुनि स्वयं कहते हैं, अहो! ऐसे आचार्य जैन में!

मुमुक्षु : आचार्य, आचार्य को कहते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनि, आचार्य को कहते हैं। टीकाकार मुनि हैं न? मुनि कहते हैं कि हम... पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं। ये वादिराज आचार्य हैं। परन्तु ये स्वयं आधार देते हैं न? वादिराज पंचाचार ये करते हैं, आचार्य कहते हैं। परन्तु हम भी यह करते हैं। आहाहा! वे तो पूर्व में हो गये हैं।

ऐसे हम, भवदुःखराशि को भेदने के लिये... लो, ऐसा ही आवे। कथन क्या आवे? ऐसे सन्तों को, आचार्य, आचार्य को; आचार्य, मुनि को; मुनि, आचार्य को... आहाहा! ...भेदने के लिये पूजते हैं। भव के दुःख, संसार का जाल, स्वर्ग-नरक के भव के दुःख का जाल.. आहाहा! उसे छेदने के लिए हम वन्दन करते हैं, ऐसा कहते हैं। उसमें भव में कुछ नरक और तिर्यच के भव छेदने के लिए, ऐसा कुछ नहीं। सम्पूर्ण सब भवदुःख की राशि - चारों गतियाँ... आहाहा! भव के दुःख का ढेर। चौरासी के अवतार में सर्वत्र दुःख है, भाई! देव दुःखी, सेठ दुःखी, राजा दुःखी, सब भिखारी, राग के भिखारी हैं। विकार के अभिलाषी सब दुःखी हैं।आता है न? वीतरागी मुनि भी, हों! आता है न यह? अकिंचितता के स्वामी हैं। अन्तर में अकिंचनता और बाहर में अकिंचनता। धन्य अवतार! उन्होंने अवतार सफल किया है।

चारित्रस्वरूप जिन्हें अन्तर में... नग्नदशा बाह्य और अन्तर में चारित्र परिणम गया है। आहाहा! जिन्हें पूरी दुनिया की दरकार नहीं है। ऐसा आत्मा, उसे भक्त कहते हैं, लो, आचार्य महाराज के भी भक्त आचार्य और मुनि भी आचार्य के भक्त हैं। भेदने के लिये पूजते हैं। भाषा तो ऐसी ही आवे न? 'वंदे तद्गुण लब्धये' आया था।

हमारे प्राप्ति। भाव तो अन्दर में यह है। भले अन्दर में विकल्प है। उससे कुछ प्राप्त नहीं होता। लो, आचार्य स्वयं अपनी बात करते हैं, और ऐसे आचार्य होते हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ, ऐसा भी कहते हैं।

गाथा-७३

पंचाचारसमगा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्वलणा ।
 धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति ॥७३॥
 पञ्चाचारसमगाः पञ्चेन्द्रियदन्तिदर्पनिर्दलनाः ।
 धीरा गुणगम्भीरा आचार्या ईदृशा भवन्ति ॥७३॥

अत्राचार्यस्वरूपमुक्तम् । ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याभिधानैः पञ्चभिः आचारैः समगाः ;
 स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राभिधानपञ्चेन्द्रियमदान्धसिन्धुरदर्पनिर्दलनदक्षाः ; निखिलघोरो-
 पसर्गविजयोपार्जितधीरगुणगम्भीराः ; एवं लक्षणलक्षितास्ते भगवन्तो ह्याचार्या इति ।

तथा चोक्तं श्रीवादिराजदेवैः ह

(शार्दूलविक्रीडित)

पञ्चाचारपरान्नकिञ्चनपतीन्नष्टकषायाश्रमान्,
 चञ्चज्ज्ञानबलप्रपञ्चितमहापञ्चास्तिकायस्थितीन् ।
 स्फाराचञ्चलयोगचञ्चुरधियः सूरीनुदञ्चद्गुणान्,
 अञ्चामो भवदुःखसञ्चयभिदे भक्तिक्रियाचञ्चवः ॥

तथाहि ह

हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं ।
 पंचेन्द्रि-गज के दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं ॥७३॥

गाथार्थः—[पञ्चाचारसमगाः] पञ्चाचारों से परिपूर्ण, [पंचेन्द्रियदंतिदर्प-
 निर्दलनाः] पञ्चेन्द्रियरूपी हाथी के मद का दलन करनेवाले, [धीराः] धीर और
 [गुण-गंभीराः] गुणगम्भीर—[ईदृशाः] ऐसे [आचार्याः] आचार्य [भवन्ति]
 होते हैं ।

टीका :—यहाँ आचार्य का स्वरूप कहा है।

[भगवन्त आचार्य कैसे होते हैं ?] (१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य नामक पाँच आचारों से परिपूर्ण; (२) स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र नाम की पाँच इन्द्रियोंरूपी मदान्ध हाथी के दर्प का दलन करने में दक्ष (पञ्चेन्द्रियरूपी मदमत्त हाथी के मद को चूरचूर करने में निपुण); (३-४) समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं, इसलिए धीर और गुणगम्भीर—ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे भगवन्त आचार्य होते हैं।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री वादिराजदेव ने कहा है कि —

(वीरछन्द)

पञ्चाचार परायण नष्ट कषायस्थान, अकिञ्चन हैं ।
ज्ञान परिणमन द्वारा जो पञ्चास्तिकाय समझाते हैं ॥
विपुल अचञ्चल योग निपणुमति आचार्यों को गुण उछलें ।
भक्ति क्रिया में कुशल हुए हम भवभय भेदन को पूजें ॥

श्लोकार्थ : जो पञ्चाचारपरायण हैं, जो अकिञ्चनता के स्वामी हैं, जिन्होंने कषायस्थानों को नष्ट किया है, परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो महा पञ्चास्तिकाय की स्थिति को समझाते हैं, विपुल अचञ्चल योग में (विकसित स्थिर समाधि में) जिनकी बुद्धि निपुण है और जिनको गुण उछलते हैं, उन आचार्यों को भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम, भवदुःखराशि को भेदने के लिये पूजते हैं।

गाथा-७३ पर प्रवचन

व्यवहार-चारित्र का अधिकार, ७३ गाथा। आचार्य कैसे होते हैं ? जैनदर्शन में वीतराग के मार्ग में पंचपरमेष्ठी कैसे होते हैं, उनका वर्णन है। अरिहन्त और सिद्ध का वर्णन आ गया। आज आचार्य का वर्णन

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिहलणा ।*
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति ॥७३॥

* इस गाथा की टीका पर प्रवचन श्लोक १०३ के बाद आ चुका है।

हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं ।
 पंचेन्द्रि-गज के दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं ॥७३ ॥
 इसकी टीका । क्या कहा ? कलश बाकी है ऐसा न ?
 १०३, मैं पढ़ गया था इसलिए मानो ऐसा कि आ गया ।
 मुमुक्षु : अन्दर पढ़ लिया होवे न ?
 पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर पढ़ गया होऊँ न इसलिए ।



श्लोक-१०४

और इस ७३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(हरिणी)

सकलकरणग्रामालम्बाद्विमुक्तमनाकुलं,
 स्वहितनिरतं शुद्धं निर्वाणकारणकारणम् ।
 शम-दम-यमावासं मैत्री-दया-दम-मंदिरं,
 निरुपमिदं वन्द्यं श्री-चन्द्र-कीर्ति-मुनेर्मनः ॥१०४॥

(हरिगीतिका)

जो सकल इन्द्रियग्राम के आलम्बनों से मुक्त हैं ।
 जो हैं अनाकुल स्वहितरत निर्वाण कारण हेतु हैं ॥
 शम दम दया मैत्री तथा यम आदि गुण जिसमें रहें ।
 श्री चन्द्रकीर्ति मुनीश का निरुपम हृदय मम वन्द्य है ॥

[श्लोकार्थः—] सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बनरहित, अनाकुल, स्वहित में लीन, शुद्ध, निर्वाण के कारण का कारण (मुक्ति के कारणभूत शुक्लध्यान का कारण), शम-दम-यम^१ का निवासस्थान, मैत्री-दया-दम का मन्दिर (घर)—ऐसा यह श्रीचन्द्रकीर्तिमुनि का निरुपम मन (चैतन्यपरिणामन) वन्द्य है ।

और इस ७३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

सकलकरणग्रामालम्बाद्विमुक्तमनाकुलं,
स्वहितनिरतं शुद्धं निर्वाणकारणकारणम् ।
शम-दम-यमावासं मैत्री-दया-दम-मंदिरं,
निरुपमिदं वन्द्यं श्री-चन्द्र-कीर्ति-मुनेर्मनः ॥१०४॥

कलश १०४। आचार्य ने आचार्य को नमन किया अर्थात् स्वयं मुनि अब, मेरे गुरु को वन्दन। गुरु-आचार्य को। देखो! आहाहा! उनके आचार्यगुरु भी ऐसे हैं, ऐसा ज्ञान में निर्णय हो गया है। है न? चन्द्रकीर्ति मुनि का मन अर्थात् चैतन्यपरिणति। मेरे आचार्य के, मेरे गुरु-आचार्य को वीतराग परिणति परिणम गयी है, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा!

श्लोकार्थ : सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बनरहित,... क्या कहते हैं? अपने गुरु जो चन्द्रकीर्ति। पद्मप्रभमलधारिदेव के आचार्य हैं। ओहोहो! मुनि भी देखो न, कैसे पके हैं! आचार्य ऐसे, लो! पद्मप्रभमलधारि मुनि... आहाहा! कहते हैं, हमारे गुरु और उन्हें हमने पहिचाना है कि उनका चैतन्य परिणमन, वीतरागी दशा कैसी है? **सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बनरहित,...** उनका परिणमन है। आहाहा! अन्तर के वीतरागी निर्दोष आनन्द का परिणमन, अवस्था जिसे इन्द्रिय के समूह के आलम्बन का अभाव है, ऐसी अतीन्द्रिय आलम्बन दशा प्रगट हुई है। **अनाकुल,...** है। हमारे गुरु का परिणमन कैसा है? आनन्दरूप है, अनाकुल है। आहाहा! दूसरे मुनि की बात जान ली? ज्ञात हो जाती है?

मुमुक्षु : केवलज्ञान होवे तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान... यह तो अभी जानते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में और उनकी परिणति शुद्ध है, उसे जान लिया। आहाहा!

१. शम = शान्ति; उपशम। दम = इन्द्रियादि का दमन; जितेन्द्रियता। यम = संयम।

स्व-परप्रकाशक ज्ञान का फल अन्दर है। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ, उस बल में हमारे आचार्य-मुनि महाराज ऐसे थे, उनका परिणमन ऐसा जो मन। मन अर्थात् उनका परिणमन, उसे मैं वन्दन करता हूँ। पंच महाव्रत के विकल्प और वह तो राग है, वह कोई वन्दन करनेयोग्य नहीं है। गजब बात! वह कोई मुनिपना नहीं है। पंच महाव्रत वह तो विकल्प राग है। वह कहीं चारित्र नहीं है, वन्दनीय नहीं है, ऐसा कहते हैं। वन्दनीय तो भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द के परिणमन अवस्थारूप उग्ररूप से परिणमे, वह चारित्र और वह वन्दन के योग्य है। नग्नपना हो, वह कहीं वन्दनीय नहीं है। होता है, निमित्तरूप से (दशा) ऐसी होती है परन्तु जड़ की दशा, अन्तरंग में उतरे हुए गहरे-गहरे अन्दर में जाकर जिसने चैतन्य का पता लिया... आहाहा! ऐसी जो वीतरागी परिणति दशा है, वह अनाकुल है। बिल्कुल आकुलता है ही नहीं। आनन्द.. आनन्द.. आनन्द..।

स्वहित में लीन,... हैं। हमारे गुरु, आचार्य स्वयं के हित में लीन हैं। देखो! पर का हित कैसे... आहाहा! स्वहित में लीन,... है। आत्मा का शुद्ध आनन्दस्वरूप, ऐसा जो स्वहित, उसमें वे लीन हैं। शुद्ध... है। जिनका परिणमन / वीतरागी अनाकुल दशा, स्वहित में लीनवाली, इन्द्रियों के आलम्बनरहित शुद्धदशा है। पुण्य-पाप का भाव तो अशुद्ध है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव तो अशुद्ध है। यह तो शुद्धदशा है। आहाहा! निर्वाण के कारण का कारण... है। मुक्ति का कारण तो शुक्लध्यान स्वयं का; और यह चैतन्यपरिणमन, मेरे गुरु का परिणमन, वह निमित्त है।

(मुक्ति के कारणभूत शुक्लध्यान का कारण),... भगवान हमारे गुरु, आचार्य वीतरागी हुए, हों! अकेले राग से धर्म माने और पुण्य से धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह धर्मी नहीं, साधु नहीं और आचार्य भी नहीं। आहाहा! यह तो पंचम काल के मुनि हैं, लो! निर्वाण के कारण का कारण... है। मोक्ष, आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा है। उसका कारण शुक्लध्यान है। उसके आश्रय में उपादानरूप से द्रव्य और बाह्य निमित्तरूप से हमारे गुरु का चैतन्य परिणमन। लो, गाथा ही ऐसी है। उनका अभिप्राय अन्तरंग कारण, ऐसा कहा न? यहाँ अन्तरंग की ही बात ली है।

शम-दम-यम का निवासस्थान,... है। आहाहा! वीतरागी भगवान आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई वीतरागी दशा शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. उपशम। शान्ति और

उपशम (का) तो निवासस्थान है। शान्ति को रहने का घर है। आहाहा! आत्मा की शान्ति, अकषायपरिणति के रहने का, वह गुरु का चैतन्यपरिणमन, उस शान्ति का निवासस्थान है। आहाहा! **दम = इन्द्रियादि का दमन; जितेन्द्रियता।** जितेन्द्रियता का निवास है। आहाहा! और **यम = संयम।** भाव संयम का निवासस्थान है। कहो, उस समय ऐसे मुनि होंगे न! ९०० वर्ष पहले।

ऐसा भगवान आत्मा अन्तर के शुद्धस्वभाव से परिणति होकर उछल रहा है। वह **शम-दम-यम का निवासस्थान,...** है। वह रहने का घर है। आहाहा! और **मैत्री-दया-दम का मन्दिर (घर)...** है। उसमें भी दम था और इसमें भी दम है परन्तु वह निवासस्थान है, यह मैत्री दया दम का मन्दिर है, घर है। यह निवासस्थान कहा। धर्म की निर्विकल्प शुद्ध परिणति दशा, वह **मैत्री-दया-दम का मन्दिर (घर)...** है। **ऐसा यह श्रीचन्द्रकीर्तिमुनि का निरुपम मन (चैतन्यपरिणमन) वन्द्य है।** मन की व्याख्या चैतन्यपरिणमन है। भावमन, निर्विकल्पदशा, वीतरागीदशा मुनि की, वह हमारे वन्द्य है। उनके पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना वह नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसी दशा हमारे आदरणीय है। समझ में आया? लो, यह अरिहन्त, सिद्ध और आचार्य तीन की व्याख्या हुई। ऐसे आचार्य होते हैं। आहाहा! दिखायी देना दुर्लभ हो गया है। वीतरागमार्ग, परमेश्वर वीतराग तीर्थकरदेव के शासन में तो ऐसे आचार्य होते हैं और आचार्य मनावे, मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड करे, पंच महाव्रत के विकल्प हों और उसे धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वे जैन के साधु भी नहीं, जैन के आचार्य भी नहीं।

मुमुक्षु : जैनधर्म में तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म में कहाँ रहे? अज्ञानधर्म में हैं। आहाहा! जैनधर्म तो पुण्य-पाप के राग से रहित, स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई शुद्धपरिणति, वह जैनधर्म है। जैनधर्म कोई आत्मा की परिणति से दूर नहीं है। आहाहा! वह स्वयं शुद्धपरिणति, वह जैनशासन है। आहाहा! (समयसार) १५वीं गाथा में आया न? आत्मा परम आनन्द का धाम शुद्ध चैतन्यधन में से प्रगट हुई शुद्ध और वीतरागी दशा, वह वन्द्य और उसे जैनशासन कहने में आता है। ऐसा जैन शासन का परिणमन हमारे वन्दनीय है, ऐसा कहते हैं। इसमें गजब! बाहर में तो कुछ सूझ पड़े, ऐसा नहीं मिलता। यह सब करते हों, उन्हें तो कुछ नाम भी नहीं मिलता।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे ? भगवान ! यह (शरीर) मिट्टी-जड़ है, इसका हलना-चलना होता है, वह तो जड़ के कारण है । बोलना होता है, वह जड़ के कारण से है । वह कहीं तेरा नहीं है । विकल्प उठे, इसकी दया पालूँ, व्रत पालूँ, वह सब राग है; वह कहीं धर्म नहीं है, वह कहीं जैनशासन नहीं है । आहाहा ! यह चन्द्रकीर्ति, अपने गुरु को याद करके उनका परिणमन जान लिया ? ऐई ! आहाहा ! छद्मस्थ, छद्मस्थ के परिणमन को जाने ?

मुमुक्षु : इस काल में...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल में जाने । यहाँ किसकी बात आयी ? यह पंचम काल की तो बात है । पंचम काल के मुनि हैं और पंचम काल के गुरु को वन्दन करते हैं । आहाहा !....

गाथा-७४

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा ।
 णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति ॥७४॥
 रत्नत्रयसंयुक्ताः जिनकथितपदार्थदेशकाः शूराः ।
 निःकाङ्क्षभावसहिताः उपाध्याया ईदृशा भवन्ति ॥७४॥

अध्यापकाभिधानपरमगुरुस्वरूपाख्यानमेतद् । अविचलिताखण्डाद्वैतपरमचिद्रूपश्रद्धान-
 परिज्ञानानुष्ठानशुद्धनिश्चयस्वभावरत्नत्रयसंयुक्ताः; जिनेन्द्रवदनारविन्दविनिर्गतजीवादिसमस्त-
 पदार्थसार्थोपदेशशूराः; निखिलपरिग्रहपरित्यागलक्षणनिरञ्जननिजपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्न-
 परमवीतरागसुखामृतपानोन्मुखास्तत एव निष्काङ्क्षाभावनासनाथाः; एवम्भूतलक्षणलक्षितास्ते
 जैनानामुपाध्याया इति ।

जो रत्नत्रय से युक्त निकांक्षित्व से भरपूर हैं ।
 उवज्झाय वे जिनवर-कथित तत्वोपदेष्टा शूर हैं ॥७४॥

गाथार्थ :—[रत्नत्रयसंयुक्ताः] रत्नत्रय से संयुक्त, [शूराः जिनकथितपदार्थ-
 देशकाः] जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक और [निःकांक्षभावसहिताः]
 निःकांक्षभावसहित—[ईदृशाः] ऐसे [उपाध्यायाः] उपाध्याय [भवन्ति] होते हैं ।

टीका :—यह अध्यापक (अर्थात् उपाध्याय) नाम के परमगुरु के स्वरूप का
 कथन है ।

[उपाध्याय कैसे होते हैं ?] (१) अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप के
 श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठानरूप^१ शुद्ध निश्चय—स्वभावरत्नत्रयवाले; (२) जिनेन्द्र
 के मुखारविन्द से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थसमूह का उपदेश देने में शूरवीर;

१. अनुष्ठान = आचरण; चारित्र; विधान; कार्यरूप में परिणत करना ।

(३) समस्त परिग्रह के परित्यागस्वरूप जो निरञ्जन निज परमात्मतत्त्व, उसकी भावना से उत्पन्न होनेवाले परम वीतराग सुखामृत के पान में सन्मुख होने से ही निष्काँक्षभावनासहित — ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे जैनों के उपाध्याय होते हैं।

गाथा-७४ पर प्रवचन

अब उपाध्याय। जैन के उपाध्याय कैसे होते हैं ? णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। णमो उवज्झायाणं परन्तु इसका णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, ऐसा किया। अन्तिम पद है, वह सबमें डालना। णमो लोए सव्व साहूणं है न ? वह सबमें डालना। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। अन्तिम पद सबको लागू पड़ता है।

अब उपाध्याय की व्याख्या। आहाहा!

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।

णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति ॥७४॥

नीचे (हरिगीत)

जो रत्नत्रय से युक्त निकांक्षित्व से भरपूर हैं।

उवझाय वे जिनवर-कथित तत्वोपदेष्टा शूर हैं ॥७४॥

आहाहा! यह अध्यापक (अर्थात् उपाध्याय) नाम के परमगुरु के स्वरूप का कथन है। जैन के [उपाध्याय कैसे होते हैं ?] (१) अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप के श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठानरूप शुद्ध निश्चय-स्वभावरत्नत्रयवाले;... होते हैं। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा अन्दर त्रिकाल अविचल है। द्रव्य अखण्ड है, अद्वैत है। गुण-गुणी का भेद भी नहीं। परमचिद्रूप—त्रिकाल ज्ञानरूप, ऐसा आत्मस्वरूप, उसका श्रद्धान। उसकी श्रद्धा, वह समकित है। नवतत्त्व की श्रद्धा या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित नहीं है; वह तो विकल्प है, राग है।

परमचिद्रूप अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप... पूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान की श्रद्धा अर्थात् उसके सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति करना, इसका नाम समकित है।

आहाहा! अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप के श्रद्धान, ज्ञान... निष्कांक्ष भाव डाला, देखा? इसलिए उसमें क्या हेतु है? कि वे प्ररूपणा करते हैं, उसमें से ये मेरे शिष्य होंगे, मुझे मानेंगे, ऐसी कांक्षा नहीं होती। इसलिए निष्कांक्ष भाव डाला है। स्वाध्याय है न? ऐसे पढ़ाते हैं न? और इससे तो हमारे पास पढ़ें तो इतने तो हमें मानते होंगे, इतने तो मेरे शिष्य हुए। यह जैनदर्शन में ऐसी कांक्षा नहीं होती। कहो, समझ में आया? यह सब वजन यहाँ है।

ऐसे निश्चय-स्वभावरत्नत्रयवाले;... भाषा देखो! व्यवहार का निषेध किया। व्यवहाररत्नत्रय नहीं। निश्चय-स्वभावरत्नत्रय। आहाहा! त्रिकाल चैतन्यबिम्ब प्रभु, परमस्वभावभाव की श्रद्धा, ज्ञान और अनुष्ठान। स्वरूप में रमणता, वह अनुष्ठान। ऐसे आत्मा के स्वरूप में रमना, वह चारित्र, वह विधान, उसे इनने अमल में रखा, वह विधान, उसे अनुष्ठान कहते हैं। आहाहा! परम चिद्रूप अखण्ड अभेद की अन्तरश्रद्धा, उसका ज्ञान। उसका ज्ञान, वह ज्ञान। शास्त्र के पठन का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। यहाँ तो शास्त्र का थोड़ा कण्ठस्थ हुआ और कहने लगे तो हो गया। अब तुम दीक्षा-वीक्षा लो तो हमसे लेना। हम तुम्हें सिखायेंगे। वाड़ा बन्दी हो जाती है। दीक्षा लेना तो यहाँ लेना। कहते हैं कि ऐसा मार्ग वीतरागमार्ग नहीं हो सकता। आहाहा!

जिसे कांक्षा नहीं, इच्छा ही नहीं। यह प्ररूपणा करते हैं, समझाते हैं। यह तो निश्चयरत्नत्रयस्वभाववाले हैं। देखा? यहाँ स्वभावरत्नत्रय कहा। वह (व्यवहार) विभावरत्नत्रय हुआ। व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान, वह विभाव है / राग है। ऐसे शुद्ध निश्चय—स्वभावरत्नत्रयवाले; (२) जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए... देखो! किसी ने कल्पना से शास्त्र या सूत्र बाँधे, वे नहीं। आहाहा! जिनेन्द्र के मुखरूपी अरविन्द-कमल। उसमें से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थसमूह को... जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—नौ तत्त्व। जीवादि समस्त पदार्थसमूह का उपदेश देने में शूरवीर;... तो भी कांक्षा नहीं।

यह णिककंखभावसहिया ऐसा शब्द है न? निकांक्षभावसहित हैं, ऐसा। आहाहा! कि इतना अपन कहते हैं, बोलना आया, सिखाया; इसलिए अपने इतने माननेवाले होंगे। अपना पक्ष तो करेंगे, ऐसी कांक्षा धर्मात्मा को नहीं होती - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

‘ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री भगवान ।’ अरे ! दुनिया को सुनने को नहीं मिलता और उससे उल्टा मार्ग सुनने को मिलता है और मानते हैं, अरे रे ! जिन्दगी चली जाती है । बाहर में कोई शरण नहीं । शरण तो भगवान आत्मा अपना स्वरूप, वह शरण है । उसके आश्रय से प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह स्वभावरत्नत्रय, ऐसे प्रगट हुए स्वभावरत्नत्रयवाले और भगवान के मुख से निकले हुए नव पदार्थ, उस उपदेश में शूरवीर, परन्तु ऐसे हों वे । भाई ! ऐसा निश्चयस्वभावरत्नत्रय नहीं और उपदेश करने में समर्थ हैं, ऐसा नहीं... आहाहा ! इसलिए पहले यह छापा है । अहो ! पाठ है न ! **रयणत्तयसंजुत्ता**, बाद में **जिणकहिय-पयत्थदेसया** बाद में लिया है । आहाहा !

शुद्धनिश्चय स्वभावरत्नत्रयवाले, ऐसे उपाध्याय । **जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थसमूह का उपदेश देने में शूरवीर;**... उपदेश तो वाणी के कारण वाणी है परन्तु ज्ञान के क्षयोपशम में अन्दर इतनी शूरवीरता है, ऐसा कहते हैं । ज्ञान का इतना क्षयोपशम है, कि... भगवान ने कहे हुए पदार्थ को समझाने में समर्थ हैं, ऐसा । भाषा तो भाषा के कारण से है । परन्तु अन्दर के ज्ञान के क्षयोपशम में ऐसी दशा है । इस प्रकार से समझाते हैं । वे स्वभावरत्नत्रयवाले होते हैं वे ।

समस्त परिग्रह के परित्यागस्वरूप जो निरञ्जन निज परमात्मतत्त्व, उसकी भावना से उत्पन्न होनेवाले परम वीतराग सुखामृत के पान में सन्मुख होने से... लो, वे निकाँक्ष क्यों हैं ? आहाहा ! वे **निज परमात्मतत्त्व**,... वापस । भगवान का तत्त्व नहीं । निज परमतत्त्व की भावना । देखो ! यह भावना आयी । ध्रुव आनन्द प्रभु में एकाग्रता, वही भावना । कल्पना ऐसा कहे कि यह पुण्य करना, यह करना, ऐसा नहीं । निज परमात्मतत्त्व निरंजन, जिसमें पर का बिल्कुल अभाव है । **उसकी भावना से उत्पन्न...** ऐसा आनन्दस्वरूप भगवान स्वयं निज, उसकी एकाग्रता से होनेवाले परम वीतराग सुखामृत के पान में **सन्मुख...** हैं वे तो । ओहोहो !

परम वीतराग सुखरूपी अमृत । परम वीतरागी सुखरूपी अमृत के निर्विकल्प पान में वे तो सन्मुख हैं । अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव करने में, पान करने में सन्मुख हैं ; इसलिए उन्हें कांक्षा नहीं होती, ऐसा कहते हैं । गजब बातें, भाई ! उसमें घण्टे भर में ऐसा आया कि भगवान के भक्ति करना, पूजा करना, दया करना, व्रत करना, ऐसा तो आया नहीं

इसमें। यह वस्तु है, इसकी श्रद्धा-ज्ञान हुए और इसमें स्थिरता हो, उसमें रह न सके, उसे... शुभविकल्प आता है, परन्तु उसकी यहाँ बात नहीं है।

परम वीतराग सुखामृत के पान में... आहाहा! सन्त, उपाध्याय निर्विकल्प आनन्दरस के पान में तत्पर हैं, वहाँ सन्मुख हैं। इच्छा से तो विमुख हैं। आहाहा! यहाँ तो जहाँ थोड़ा बोलना आवे, कहना आवे, वहाँ स्वयं उपाध्याय का पद ले ले। उपाध्याय का ठिकाना (स्थान) ले ले। ऐसा नहीं, भाई! बापू! यह वस्तु अलग है। यह तो वीतरागमार्ग है। अन्तर वीतरागता... आहाहा! निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभावरत्नत्रय और भगवान के कहे हुए पदार्थों में शूरवीर और स्वयं निज परमात्मतत्त्व, शुद्ध भगवान त्रिकाली ध्रुव में एकाग्रता, वह पर्याय है। निज परमात्मतत्त्व, वह तो त्रिकाली ध्रुव; उसकी भावना, वह पर्याय है। उसमें एकाग्र होने से, एकाग्रता से उत्पन्न होता, वापस ऐसा (कहा)। परम वीतराग सुखामृत। सुखरूपी अमृत अन्तर से प्रकट हुआ। यह मुनियों की दशा होती है, इसे मुनि कहा जाता है।

परम वीतराग सुखामृत के पान में... सुखीरूपी अमृत के पान में सन्मुख होने से... वे तो आनन्द के पान में सन्मुख हैं। होने से ही... इस कारण से निष्काँक्षभावनासहित... लो। निष्काँक्षभावनासहित... निष्काँक्षभाव कहा है न? इच्छारहित की भावनासहित है। उसमें उन्हें इच्छा नहीं होती। आहाहा! ऐसा उपदेश करे, बड़ी सभा भरे, अपने मार्ग में नाम निकले। अरे! भगवान! नाम कहाँ? नाम कहाँ था? अन्तर आनन्द के पान में सन्मुख होने से ही निष्काँक्षभावनासहित — ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे जैनों के उपाध्याय होते हैं। वीतरागमार्ग में जैन में... अन्य में तो कोई है नहीं। परमेश्वर सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं। परन्तु जैनों में ऐसे उपाध्याय होते हैं। इसका श्लोक कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१०५

अब ७४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(अनुष्टुप्)

रत्नत्रयमयान् शुद्धान् भव्याम्भोजदिवाकरान् ।
उपदेष्टुनुपाध्यायान् नित्यं वन्दे पुनः पुनः ॥१०५॥

(दोहा)

रत्नत्रयमय शुद्ध जो भव्य कमल को सूर्य ।
उपदेशक उवझाय को पुनः पुनः वन्दूँ ॥

[श्लोकार्थः] रत्नत्रयमय, शुद्ध, भव्यकमल के सूर्य और (जिनकथित पदार्थों के), उपदेशक – ऐसे उपाध्यायों को मैं नित्य पुनः पुनः वन्दन करता हूँ ।

प्रवचन-७४, श्लोक-१०५-१०८, गाथा-७५-७६, बुधवार, आषाढ़ कृष्ण ७, दिनांक १४-०७-१९७१

७५ गाथा के ऊपर एक कलश बाकी है । उपाध्याय कैसे होते हैं, उनकी व्याख्या हो गयी । अब उसका कलश है ।

रत्नत्रयमयान् शुद्धान् भव्याम्भोजदिवाकरान् ।
उपदेष्टुनुपाध्यायान् नित्यं वन्दे पुनः पुनः ॥१०५॥

रत्नत्रयमय, ... जैन के उपाध्याय उन्हें कहते हैं, जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, तीन रत्नोमय जिनकी अभेद परिणति हुई है । शुद्ध आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय उनकी अभेद परिणति हुई है, उन्हें उपाध्याय कहते हैं । साधु को वह होता है, अन्तर इतना इसका । भव्यकमल के सूर्य और (जिनकथित पदार्थों के), उपदेशक... इतना यहाँ लेंगे । शुद्ध-शुद्ध है । रत्नत्रयमय वीतरागी परिणति जिन्हें शुद्ध हुई है । भव्यकमल के सूर्य... योग्य प्राणी, उसके सूर्य ।

जिसकी अन्तर योग्यता चैतन्य के प्रकाश की प्रगट होने की योग्यता है, उसे उपाध्याय सूर्य समान हैं। वीतराग ने कहे हुए पदार्थों के उपदेशक, ऐसा। उन्हें उपदेशक कहा है न? सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर ने जो पदार्थ कहे, उन्हें उपदेश करने में समर्थ हैं।

ऐसे उपाध्यायों को मैं नित्य... मुनि कहते हैं। पुनः पुनः वन्दन करता हूँ। ऐसी दशावान परिणति वीतरागदशा जिन्हें हुई है और जैनपदार्थों के उपदेशक हैं, उन्हें मैं बारम्बार वन्दन करता हूँ। व्यवहार अधिकार है न? पाँचों परमेष्ठी स्वद्रव्य की अपेक्षा से तो व्यवहार, पर है। पाँच को मानना, वन्दन आदि सब व्यवहार शुभराग है; इसलिए व्यवहारचारित्र में उन्हें रखा है।

गाथा-७५

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता ।
णिगंथा णिम्मोहा साहू दे एरिसा होंति ॥७५॥

व्यापार-विप्रमुक्ताः चतुर्विधाराधनासदारक्ताः ।
निर्ग्रन्था निर्मोहाः साधवः एतादृशा भवन्ति ॥७५॥

निरन्तराखण्डितपरमतपश्चरणनिरतसर्वसाधुस्वरूपाख्यानमेतत् । ये महान्तः परमसंयमिनः
त्रिकालनिरावरणनिरञ्जनपरमपञ्चमभावभावनापरिणताः अत एव समस्तबाह्यव्यापार-विप्रमुक्ताः ;
ज्ञानदर्शनचारित्रपरमतपश्चरणाभिधानचतुर्विधाराधनासदानुरक्ताः ; बाह्याभ्यन्तरसमस्तपरिग्रहाग्रह-
विनिर्मुक्तत्वान्निर्ग्रन्थाः ; सदा निरञ्जननिजकारणसमयसारस्वरूपसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानाचरण-
प्रतिपक्षमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राभावान्निर्मोहाः च ; इत्थम्भूतपरमनिर्वाणसीमन्तिनीचारुसीमन्त-
सीमाशोभामसृणघुसृणरजः पुञ्जपिञ्जरितवर्णालङ्कारावलोकनकौतूहल-बुद्धयोऽपि ते सर्वेपि
साधवः इति ।

निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापार से प्रविमुक्त हैं ।
हैं साधु, चउआराधना में जो सदा अनुरक्त हैं ॥७५॥

गाथार्थ :—[व्यापारविप्रमुक्ताः] व्यापार से विमुक्त (समस्त व्यापाररहित),
[चतुर्विधाराधनासदारक्ताः] चतुर्विध आराधना में सदा रक्त, [निर्ग्रन्थाः] निर्ग्रन्थ और
[निर्मोहाः] निर्मोह—[एतादृशाः] ऐसे [साधवः] साधु [भवन्ति] होते हैं ।

टीका :—यह, निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में निरत (लीन) ऐसे सर्व
साधुओं के स्वरूप का कथन है ।

[साधु कैसे होते हैं ?] (१) परमसंयमी महापुरुष होने से त्रिकाल-निरावरण
निरञ्जन परम पञ्चम भाव की भावना में परिणमित होने के कारण ही समस्त बाह्य
व्यापार से विमुक्त; (२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना

में सदा अनुरक्त; (३) बाह्य-अभ्यन्तर समस्त परिग्रह के ग्रहण-रहित होने के कारण निर्ग्रन्थ; तथा (४) सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के सम्यक्, श्रद्धान, सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने के कारण निर्मोह - ऐसे परमनिर्वाणसुन्दरी की सुन्दर माँग की शोभारूप कोमल केशर के रज-पुञ्ज के सुवर्णरङ्गी अलङ्कार को (केशर-रज की कनकरङ्गी शोभा को) देखने में कौतूहलबुद्धिवाले वे समस्त साधु होते हैं (अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणवाले, मुक्तिसुन्दरी की अनुपमता का अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले समस्त साधु होते हैं)।

गाथा-७५ पर प्रवचन

अब ७५वीं गाथा। साधु, जैन के साधु।

मुमुक्षु : दूसरी जाति में साधु होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में भी बहुत लोग साधु कहते हैं न? ये लोग कहते हैं न? णमो लोए सव्व साहूणं। जगत के सब साधु उसमें आये। लोए सव्व साहूणं। जैन के वे ही साधु हैं, बाकी कोई साधु नहीं। अन्य में है ही नहीं।

मुमुक्षु : अर्थ बहुत संकुचित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संकुचित अर्थ है। वीतराग परमेश्वर ने जो आत्मा वीतरागस्वरूप कहा, ऐसे वीतरागस्वरूप में जिसकी अन्तर्मुख दृष्टि और अनुभव की स्थिरता है, उसे साधु कहते हैं। वह अन्य में नहीं होता। जैन परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य में वह नहीं होता। णमो लोए सव्व साहूणं। ऐसे सब साधु हों वे इसमें आते हैं। चाहे जो वेश धारण किया हो (और) जैन में भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि पुण्य से धर्म माननेवाले, व्यवहारक्रिया के माननेवाले, वे भी साधुपने में नहीं आते।

मुमुक्षु : पुण्य को धर्म न माने, पुण्य को उपादेय माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह का वही हुआ न? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द वीतराग की मूर्ति, वही उपादेय है। उसके अतिरिक्त विकल्प जो राग, वह तो हेय है। ऐसा

न मानता हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे जैन साधु में गिनने में नहीं आता, इसलिए कहते हैं, देखो! पहला शब्द है। ७५वीं गाथा।

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता ।

णिगंथा णिम्मोहा साहू दे एरिसा होंति ॥७५॥

ऐसे साधु वीतरागमार्ग में होते हैं।

निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापार से प्रविमुक्त हैं।

हैं साधु, चउआराधना में जो सदा अनुरक्त हैं ॥७५॥

टीका : यह, निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में निरत... देखो! निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में... अतीन्द्रिय आनन्द में उग्ररूप से पुरुषार्थ से जो एकाग्र हो गये हैं, वे निरन्तर अखण्डित। परम इच्छा बिना अमृतस्वरूप भगवान आत्मा में जो निरत-लीन हैं। देखो! पंच महाव्रत में लीन हैं, अट्टाईस मूलगुण में लीन हैं, यह नहीं लिया है, क्योंकि पंच महाव्रतादि तो विकल्प है, वह तो आस्रव है; उसमें लीन नहीं होते। ऐसी बहुत कठिन बात है। निरन्तर अखण्डित परम तपश्चरण में निरत... ठीक। तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। मुनिपना अर्थात् चारित्र। परमचारित्र। यह तो वस्तु की स्थिति है। यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। आत्मा ही वीतरागमूर्ति... आहाहा! उसकी जिसे निरन्तर अखण्डस्वरूप में परम स्थिरता, परम लीनता (हुई है)। ऐसे सर्व साधुओं के स्वरूप का कथन है। ऐसे सर्व साधुओं के...

[साधु कैसे होते हैं ?] (१) परमसंयमी महापुरुष होने से... परमसंयमी महापुरुष होने से त्रिकाल-निरावरण निरञ्जन परम पञ्चम भाव की भावना में परिणमित होने के कारण... आहाहा! व्यापार से प्रविमुक्त की व्याख्या करते हैं। आहाहा! जिन्हें विकल्प का व्यापार भी छूट गया है। आहाहा! परमसंयमी महापुरुष होने से... ऐसे होने के कारण, ऐसा। त्रिकाल-निरावरण निरञ्जन परम पञ्चम भाव... अपना त्रिकाली परम पंचम भाव.. आहाहा! ध्रुव ध्रुवभाव। भगवान आत्मा का त्रिकाली नित्यस्वरूप, ऐसे पञ्चम भाव की भावना... भावना शब्द से एकाग्रता। उसमें परिणमित होने के कारण... अकेली पंचम भाव की विकल्प की भावना, ऐसा नहीं। देखो! इसमें भावना में परिणमित लिए हैं। ध्रुव शुद्ध चैतन्यद्रव्य, त्रिकाली आनन्द का धाम, परम पंचम भाव, वस्तु की अस्ति का

त्रिकाल भाव, उसकी भावना में परिणमित हैं। पंचम भाव, वह त्रिकाली भाव है और उसकी भावना, वह वर्तमान पर्याय है। आहाहा! ऐसे साधु होते हैं। जैन परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ के शासन में ऐसे साधु होते हैं। उन्हें साधु कहा जाता है।

इसके कारण ही समस्त बाह्य व्यापार से विमुक्त;... व्यापार प्रविमुक्त कैसे? विकल्प का व्यापार प्रविमुक्त छूट गया है। आहाहा! निर्विकल्प अखण्ड त्रिकाली पंचम स्वभाव की भावना में परिणमित, उस अवस्थारूप हो गये होने के कारण, आहाहा! इस कारण उन्हें बाह्य का व्यापार छूट गया है। **बाह्य व्यापार से विमुक्त;...** वास्तव में तो वे पंच महाव्रत के विकल्प से भी विमुक्त हैं। आहाहा! वीतराग का स्वरूप बहुत सूक्ष्म है। अलौकिक परमात्मा स्वयं ही ध्रुव नित्य को भावना में परिणमित कराकर, ऐसा नित्य भगवान उसकी भावना-एकाग्रता में वर्तमानदशा में परिणमित होकर बाह्य व्यापार से छूट गये हैं। आहाहा! ऐसी परिणति खड़ी हुई, इसलिए बाह्य विकल्प का व्यापार रुक गया है। देखो! यह साधु।

जिन्हें परमानन्द की पूर्ण प्राप्ति करनी है, उन्हें तो ऐसी आराधना में त्रिकाली आनन्द में लीन हो, उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है। अर्थात् मुक्ति होती है, ऐसा। समस्त बाह्य व्यापार, ऐसा। **'विष्णुमुक्का'** है न? उसमें यह कहा। समस्त शब्द ले लिया। समस्त बाह्य व्यापार। आहाहा! क्योंकि मुनि को तो उपदेश भी नहीं। उपदेश तो आचार्य, उपाध्याय को होता है। आहाहा! मुनि तो अपने स्वरूप को साधते हैं। **बाह्य व्यापार से विमुक्त;...** हैं। उन्हें अकेला वीतरागभाव का परिणमन है, ऐसा कहते हैं। आत्मा स्वयं त्रिकाली वीतरागस्वभाव है, उसकी भावना वीतराग परिणति। बस, यह उनका स्वरूप है। अब आराधना में लीन हैं, यह बताते हैं।

(२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त;... है। भगवान आत्मा के ओर की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति तथा इच्छानिरोध, अमृतस्वरूप भगवान में आराधना में लीन हैं। आहाहा! दुनिया धर्म प्राप्त करे या न करे, ऐसा विकल्प यहाँ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन, आत्मचारित्र और आत्मा में विशेष उग्र पुरुषार्थ से लीन, ऐसी चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त;... ऐसा। **'चउव्विहाराहणासयारत्ता'** है न पाठ? तब अब खावे-पीवे

कब ? सदा अनुरक्त । वे खाते नहीं और पीते भी नहीं । आहाहा ! यह क्रिया होती है और विकल्प आता है, उसके जाननेवाले रहते हैं । आहाहा ! समझ में आया ? यह णमो लोए सव्व साहूणं की व्याख्या है ।

जिन्हें चार प्रकार की आराधना, सेवन है । दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप के सेवन में लीन हैं । आहाहा ! 'साधे इति साधु ।' पूर्ण स्वरूप का अन्तर में साधन करे, वे साधु हैं । ऐसा पूर्ण स्वरूप तो सर्वज्ञ वीतरागमार्ग में होता है और ऐसे पूर्ण शक्ति को धरनेवाला आत्मा भी ऐसे वीतरागमार्ग में ही होता है । ऐसे पूर्ण स्वरूप की आराधना में तत्पर हैं कि जिससे उसकी—पूर्ण स्वरूप की पर्याय में प्राप्ति होती है । निर्ग्रन्थ हैं । साधु निर्ग्रन्थ हैं ।

बाह्य-अभ्यन्तर समस्त परिग्रह के ग्रहण-रहित होने के कारण... बाह्य में वस्त्र का धागा भी नहीं होता । मुनि को वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं होता । तिलतुष कहा है न ? तिल का छिलका जितना भी परिग्रह होवे तो भी वह मुनि नहीं है । आहाहा ! और वह स्वयं को मुनि माने तो कहते हैं कि निगोद में जाता है । आहाहा ! वस्तु की स्थिति ऐसी है । मुनिदशा में वस्त्र-पात्र ग्रहण करने का विकल्प उन्हें नहीं होता । मुनि किसे कहते हैं ? आहाहा ! धन्य दशा.. ! धन्य अवतार.. ! जिन्होंने केवलज्ञान को हथेली में लेने की तैयारी की है, ऐसे मुनि बाह्य में वस्त्र नहीं, अभ्यन्तर में राग का कण नहीं । आहाहा !

समस्त परिग्रह के ग्रहण-रहित होने के कारण... इस कारण से निर्ग्रन्थ हैं, ऐसा कहते हैं । निर्ग्रन्थ क्यों हैं ? बाह्य अभ्यन्तर का ग्रन्थ-राग छूट गया है । अभ्यन्तर राग, परिग्रह और बाह्य में वस्त्र का टुकड़ा सब छूट गया है ; इसलिए उन्हें निर्ग्रन्थ कहा जाता है । अब उन्हें निर्मोह कहते हैं । मुनि निर्मोह होते हैं ।

(४) सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार... लो ! सदा निरञ्जन निज कारण प्रभु, निरञ्जन त्रिकाल शुद्ध आत्मा है । ऐसा निज कारणसमयसार । त्रिकाल परमात्मस्वरूप ध्रुव, उसके स्वरूप के सम्यक् श्रद्धान,.... ऐसा कारणसमयसार भगवान नित्य, उसके स्वरूप का श्रद्धान, सम्यक् श्रद्धान परिणमनरूप, ऐसा कहते हैं । सम्यक् परिज्ञान । आहाहा ! निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के... परिज्ञान । इससे उन्हें निर्मोह कहने में आता है, ऐसा कहते हैं । कहो, सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के... ऐसा जो त्रिकाली भगवान आत्मा का वीतरागीस्वरूप आत्मा का ध्रुव, उसका सम्यक् श्रद्धान,

सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन,... इसमें ऐसा लिया। नहीं तो कितने ही कहते हैं न? वह व्यवहार प्रतिपक्ष। व्यवहार प्रतिपक्ष नहीं, यह प्रतिपक्ष। क्या करे? यह तो दो की बात है। वह कहे, निश्चय, व्यवहार के प्रतिपक्षरहित है। व्यवहार के परिहार के लिए 'सार' पद जोड़ा है। वहाँ तो व्यवहार के विकल्प का अभाव बतलाकर अकेला बतलाना है। यहाँ तो दूसरी बात है। निर्मोह है न? निर्मोहदशा प्रगट की है, उसे ऐसे भाव का जिसे अभाव है, परन्तु वह कहते हैं उसमें से। उसमें देखो उसमें। क्या कहा? शान्तिभाई! क्या कहा?

यहाँ सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के... सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन,... लिया है। उससे प्रतिपक्ष मिथ्याज्ञान। ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने के कारण निर्मोह... हैं। लो, और पहले आया था, वह व्यवहार के परिहार के लिए सारपद जोड़ा है।

मुमुक्षु : वह प्रतिपक्ष कहाँ अभी पावे, वह तो ४९ में लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब आता है। यह तो सब आता ही है न? व्यवहार का फल और व्यवहार दो से प्रतिपक्ष निश्चय। लोगों को अन्दर ऐसा आग्रह हो जाता है न? और उस निश्चय का भान नहीं होता, फिर व्यवहार है, वह सर्वस्व मान लिया गया कि यह सब हमारा मुनिपना ही यह है और साधुपना यह है। मोक्ष का मार्ग यह है। भाई! मार्ग ऐसे नहीं मिलता। वह तो उपशमरस, शान्तरस। भगवान शान्तरस है, अकषायरस है। उस अकषायरस का परिणमन, वह मोक्ष का मार्ग है। मिथ्या व्यवहार कषाय है, वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है।

वहाँ तो नियमसार शब्द था न? नियमसार शब्द था। सार शब्द को... रखा है। सार क्यों कहा है? कि व्यवहार के परिहार के लिए (कहा है), विपरीत के परिहार के लिए (कहा है)। वहाँ व्यवहार होता है तो उसे... विपरीत के परिहार के लिए। ऐसा विपरीत के परिहार के लिए। विपरीत अर्थात् मिथ्यादर्शन-ज्ञान ऐसा कहते हैं। यहाँ तो नियम जैसे आत्मा, समय-सार द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित, वह समयसार। उसमें भावकर्म आया। पुण्य-पाप दोनों विकल्प आये। उनसे रहित जो समयसार। इसी प्रकार नियमसार स्वाभाविक आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्व आश्रय से निर्मल प्रगट हुआ, उससे विरुद्ध

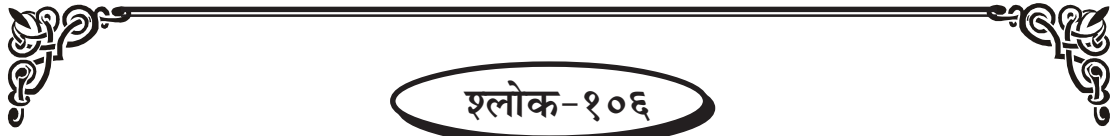
व्यवहार का विकल्प, उससे रहित इसलिए सार। जैसे समयसार में सार क्यों? भावकर्मरहित, इसलिए सार, ऐसा। द्रव्यकर्मरहित तो है ही। यहाँ सार क्यों? व्यवहार के विकल्परहित, इसलिए सार। यह यहाँ अर्थ नहीं है। यहाँ तो निर्मोह कहना है। आहाहा! शास्त्रों का अर्थ करने में अपने स्वार्थ से अपना पक्ष पोषण करने के लिए (ऐसे अर्थ करते हैं)। आहाहा! अरे रे! क्या करता है? जीव को नुकसान (होता है)। उसकी इसे खबर नहीं है।

सदा निरञ्जन निज कारणसमयसार के स्वरूप के सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने के कारण निर्मोह... मुनि हैं। ऐसे परमनिर्वाणसुन्दरी की सुन्दर माँग की शोभारूप कोमल केशर के रज-पुञ्ज के सुवर्णरङ्गी अलङ्कार को... यहाँ विशेष केशर के रज-पुञ्ज के सुवर्णरङ्गी अलङ्कार को (केशर-रज की कनकरङ्गी शोभा को) देखने में... आनन्द की दशा को अवलोकन करने में, अनुपमता अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले, ऐसा। पूर्ण आनन्द की दशा को प्राप्त करने में आतुर बुद्धिवाले। उन्हें पुण्य होगा और स्वर्ग में जाऊँगा, लोग मानेंगे या पूजेंगे, यह बात है नहीं। आहाहा! पूर्ण आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति को देखने में कौतूहलबुद्धिवाले वे समस्त साधु होते हैं... लो, ऐसे सब साधु होते हैं।

(अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणवाले, मुक्तिसुन्दरी की अनुपमता का अवलोकन करने में आतुर बुद्धिवाले समस्त साधु होते हैं)। जैन के ऐसे साधु होते हैं। अन्यत्र ऐसे साधु नहीं होते। णमो लोए सव्व साहूणं में सब समाहित हो जाएँ, ऐसा नहीं है। अन्यमत के भी साधु डालोगे, तब ऐसा कहे... कोई एक व्यक्ति ऐसा कहता था। संख्या पूरी होगी। करोड़ साधु कहे हैं। ढाई द्वीप में इतने सब कहाँ से लाओगे - ऐसा कहता है। वह तो अन्यमत के डालोगे तब होगा। डाला। अन्यमत तो मिथ्यादृष्टि है, उसे क्या डाले? यहाँ तो चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले भी इसमें नहीं आते। चौथे और पाँचवें गुणस्थानवाले इस पद में (साधु के पद में) नहीं आते। आहाहा!

ऐसे साधु स्वरूप का आराधन, आनन्द की सेवा, अतीन्द्रिय आनन्द की सेवा करते हैं। उसकी आराधना में तत्पर / लीन हैं, उन्हें यहाँ साधु कहने में आता है। जितने साधु के भाव हैं, उनमें एकदेश श्रावक को भी लागू पड़ता है। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में कहा है

न ? जितने साधु के भाव कहे, उनका एकदेश, एक भाग सब श्रावक को लागू पड़ता है। समझ में आया ? अब उसे निश्चयरत्नत्रय आया या नहीं ? ऐसा मेरा कहना है। भले एकदेश आया। सब जितना भाग है, उसमें कुछ श्रद्धा-ज्ञान का एकदेश नहीं। आचरण का एकदेश। आचरण का एकदेश, वह सर्व देश का भाग है। दर्शन के कोई भाग नहीं हैं। मुनि को तो सर्वदेशी समकित है और श्रावक को एकदेशी एक अंश है, ऐसा है ? आहाहा !



श्लोक-१०६

अब ७५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(आर्या)

भविनां भवसुखविमुखं त्यक्तं सर्वाभिषङ्गसम्बन्धात्।
मङ्क्षु विमङ्क्ष्व निजात्मनि वन्द्यं नस्तन्मनः साधोः ॥१०६॥

(वीरछन्द)

संसारी के भव-सुख से जो विमुख, संग सम्बन्ध विहीन।
मुनिमन है वह वन्द्य हमें, हे मुनि! मन करो निजात्म विलीन ॥

[श्लोकार्थ :] भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है और सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है, ऐसा वह साधु का मन हमें वन्द्य है। हे साधु! उस मन को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो।

श्लोक-१०६ पर प्रवचन

अब ७५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

भविनां भवसुखविमुखं त्यक्तं सर्वाभिषङ्गसम्बन्धात्।
मङ्क्षु विमङ्क्ष्व निजात्मनि वन्द्यं नस्तन्मनः साधोः ॥१०६॥

आहाहा! भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है... देखो! भववाले जीवों के भवसुख, ऐसा। भव में रहे हुए अज्ञानी, उन्हें जो भवसुख की कल्पना है, इन्द्रियों में सुख है, इज्जत में सुख है, ऐसे भव में रहे हुए जीवों के... आहाहा! भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है... पाँच इन्द्रिय के विषय में, राग में, पुण्य में भी कहीं सुख है नहीं। भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख है और सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,... साधु है न? सर्व संग छूट गया है। असंग भगवान आत्मा के संग में पड़े हैं, पर का संग जिन्हें छूट गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र का-जिनवाणी का संग तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। अन्तर में नहीं। वाँचन का विकल्प है, उससे छूटे हुए हैं। व्यवहार से विमुक्त हैं। चौथे गुणस्थान में व्यवहार से मुक्त हैं तो मुनि की क्या बात करना! आहाहा! सम्यग्दर्शन में ही विकल्प से मुक्तदशा है। अस्थिरता की अपेक्षा से विकल्प हो, परन्तु दृष्टि में उससे मुक्त है। दृष्टि का विषय नहीं और दृष्टि के परिणमन में एक भी राग आता नहीं। मुनि को यह शास्त्र पठन का विकल्प (आता है) परन्तु उससे छूटे हुए पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी शास्त्र पठन का जो विकल्प (आवे), उससे वे पृथक् हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, वस्तु ही ऐसी है। वीतराग रस से परिणमित भगवान, उसके—राग के रस से तो पृथक् पड़ गया है। आहाहा! यह बात पकड़ना जगत को कठिन है। इसलिए अन्तर की पकड़ बिना बाहर में पकड़कर चल निकले हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! यह तो तेरे स्वभाव के लाभ की बात है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,... कहो, जिनवाणी और देव-गुरु भी परसंग। वह संग भी जिन्हें अन्तर में छूट गया है। चौथे में कहा न? परसंग-राग से तो मुक्त है। देव-गुरु की श्रद्धा का विकल्प से मुक्त है। आहाहा! बापू! मोक्ष का मार्ग तो कोई अलौकिक है। वह अन्तर अवलोकन बिना बाहर से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। ऐसे **सर्व सङ्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,...** 'सर्वाभिषङ्गसम्बन्धात् त्यक्तं' ऐसा है न? कोई भी संग ही नहीं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में विकल्प का संग नहीं, मुक्त है, परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से वहाँ राग है। उस अस्थिरता के राग से भी छूट गये हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अकेली वीतराग धारा, वह साधुपना। आहाहा! बीच में पंच महाव्रतादि के विकल्प (आवें, वह) कर्मधारा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! कहो।

ऐसा वह साधु का मन हमें वंद्य है। मुनि स्वयं कहते हैं। ऐसा उस साधु का चैतन्य परिणमन। मन अर्थात् वह। भववाले जीवों के भवसुख से जो विमुख... अर्थात् आत्मा के सुख के सन्मुख, ऐसा। सर्व सद्ग के सम्बन्ध से जो मुक्त है,... असंग ऐसा भगवान, उसके संग में लीन। ऐसा जो उनका परिणमन, (वह) हमको वन्द्य है। कहो, मुनि, मुनि के लिए कहते हैं। आहाहा!

हे साधु! उस मन को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो। आहाहा! उस शुद्ध परिणति को अन्दर में झुकाओ। उस परिणति को शीघ्र निजात्मा में मग्न करो। उग्ररूप से अन्दर स्थिर होओ, ऐसा कहते हैं। जहाँ भगवान पूर्णानन्दस्वरूप विराजता है, वह स्वयं प्रभु (है), उसमें लीन होओ। यह साधु का कर्तव्य और कार्य है। आहाहा! इस बात की तो गन्ध, सुनने को भी मिले नहीं और यह करो.. यह करो.. यह करो.. हो गया। १०६वाँ कलश।

गाथा-७६

एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं ।
णिच्छय-णयस्स चरणं एत्तो उट्ठं पवक्खामि ॥७६॥

ईदृग्भावनायां व्यवहार-नयस्य भवति चारित्रम् ।
निश्चय-नयस्य चरणं एतदूर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ॥७६॥

व्यवहारचारित्राधिकारव्याख्यानोपसंहारनिश्चयचारित्रसूचनोपन्यासोऽयम् । इत्थं भूतायां प्रागुक्तपञ्चमहाव्रतपञ्चसमितिनिश्चयव्यवहारत्रिगुप्तिपञ्चपरमेष्ठिध्यानसंयुक्तायां अतिप्रशस्त-शुभभावनायां व्यवहारनयाभिप्रायेण परमचारित्रं भवति, वक्ष्यमाणपञ्चमाधिकारे परमपञ्चमभाव-निरतपञ्चमगतिहेतुभूतशुद्धनिश्चयनयात्मपरमचारित्रं द्रष्टव्यं भवतीति ।

तथा चोक्तं मार्गप्रकाशे ह

(वंशस्थ)

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम् ।
तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः ॥

तथाहि ह

इस भावना में जानिये चारित्र नय व्यवहार से ।
निश्चय-चरण अब मैं कहूँ निश्चयनयात्मक द्वार से ॥ ७६ ॥

गाथार्थः—[ईदृग्भावनायाम्] ऐसी (पूर्वोक्त), भावना में [व्यवहारनयस्य] व्यवहारनय के अभिप्राय से [चारित्रम्] चारित्र [भवति] है; [निश्चयनयस्य] निश्चयनय के अभिप्राय से [चरणम्] चारित्र [एतदूर्ध्वम्] इसके पश्चात् [प्रवक्ष्यामि] कहूँगा ।

टीका :—यह, व्यवहारचारित्र-अधिकार का जो व्याख्यान, उसके उपसंहार का और निश्चयचारित्र की सूचना का कथन है ।

ऐसी जो पूर्वोक्त पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, निश्चय-व्यवहार त्रिगुप्ति तथा पञ्च परमेष्ठी के ध्यान से संयुक्त, अतिप्रशस्त शुभभावना, उसमें व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है; अब कहे जानेवाले पाँचवें अधिकार में, परम पञ्चम भाव में लीन, पञ्चम गति के हेतुभूत, शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र द्रष्टव्य (देखनेयोग्य) है।

इसी प्रकार मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वंशस्थ)

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम् ।
तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः ॥

[श्लोकार्थः] जिसके बिना (जिस चारित्र के बिना) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं, उसी देव-असुर-मानव से स्तवन किये गये जैन चरण को (ऐसा जो सुर-असुर मनुष्यों से स्तवन किया गया जिनोक्त चारित्र उसे) मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ।

गाथा-७६ पर प्रवचन

अब यह व्यवहारचारित्र की अन्तिम गाथा है।

एरिसयभावणाए व्यवहारणयस्स होदि चारित्तं ।
णिच्छय-णयस्स चरणं एत्तो उट्ठं पवक्खामि ॥७६॥

इस भावना में जानिये चारित्र नय व्यवहार से।
निश्चय-चरण अब मैं कहूँ निश्चयनयात्मक द्वार से ॥ ७६ ॥

टीका : यह, व्यवहारचारित्र-अधिकार का जो व्याख्यान, उसके उपसंहार का... यह पूरा किया जाता है, ऐसा कहते हैं। और निश्चयचारित्र की सूचना का कथन है। अब से निश्चयचारित्र की व्याख्या आयेगी।

ऐसी जो पूर्वोक्त पञ्च महाव्रत,... यह सब शुभभाव। पञ्च समिति, निश्चय-व्यवहार त्रिगुप्ति... में भी जो व्यवहार भाग वह। ऐसा लेना। तथा पञ्च परमेष्ठी के ध्यान

से संयुक्त, अतिप्रशस्त शुभभावना,... नहीं तो उस निश्चयगुप्ति में तो शुद्धता आती है, परन्तु निश्चय और व्यवहार में जो यह शुभभाव लेना। व्यवहार है न? पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, निश्चय-व्यवहार त्रिगुप्ति... में शुभभावना और पञ्च परमेष्ठी के ध्यान से संयुक्त,... पंच परमेष्ठी का ध्यान भी शुभभाव है। उसमें शुद्धता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रशस्त और अप्रशस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव है, शुभ।

शुभभावना, उसमें व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है;... व्यवहारनय से उसे चारित्र कहा जाता है। निश्चय से परमचारित्र यह तो उसे व्यवहार से परमचारित्र का आरोप दिया गया है। परम शब्द प्रयोग किया है न? शुभभाव। परन्तु समकित, दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित है, उसे। अज्ञानी की यहाँ बात नहीं है। अतिप्रशस्त शुभभावना, उसमें व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है;... निश्चयस्वरूप का अन्तर अनुभव, आनन्द की श्रद्धा, आनन्द का ज्ञान और आनन्द की रमणता में न्यूनता है। पूर्ण वीतरागता नहीं है; इसलिए बीच में ऐसा शुभभाव उसे होता है। यहाँ अज्ञानी की बात नहीं है। जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसे ऐसा शुभभाव होता है। उस शुभभाव को व्यवहारचारित्र कहा जाता है।

अब कहे जानेवाले पाँचवें अधिकार में,... लो, चार अधिकार हुए। परम पञ्चम भाव में लीन,... लो, यह निश्चयचारित्र। परम पञ्चम भाव में लीन,... त्रिकाली परमात्मस्वरूप अपना, उसमें जिसकी लीनता जमी है। पञ्चम गति के हेतुभूत,... देखो! व्यवहार में पंचम गति के हेतुभूत, ऐसा शब्द नहीं था। उसे ऐसे पाँचवें, ऐसा कहा कि व्यवहारनय के अभिप्राय से परम चारित्र है, बस इतना। यह तो पंचम गति के हेतुभूत मोक्ष का कारण। अन्दर ध्रुवस्वभाव में लीनता, वह निर्विकारी निर्विकल्पदशा / वीतरागी परिणति। पंचम भाव, वह ध्रुव है। लीन, वह वर्तमान वीतराग परिणति है। वह पंचम गति का कारण है। मोक्ष का कारण है। शुद्धनिश्चयनयस्वरूप परम चारित्र द्रष्टव्य (देखनेयोग्य) है। लो।

शुद्धनिश्चयनय... स्वरूप। शुद्धनिश्चयनय स्वरूप, वापस ऐसा। परम चारित्र, शुद्धनिश्चयनय का विषय या शुद्धनिश्चय, ऐसा नहीं। वह शुद्धनिश्चयनय स्वरूप ही परम चारित्र। परिणति को शुद्धनिश्चयस्वरूप कहा। शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र द्रष्टव्य

(देखनेयोग्य) है। अनुभव करनेयोग्य है, स्थिरता करनेयोग्य है। यह अधिकार पाँचवें में कहेंगे, ऐसा कहते हैं।

इसी प्रकार मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम्।

तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः ॥

इसमें चारित्र की प्रधानता बतलाते हैं। आहाहा! स्वरूप की रमणता, चारित्र। जिसके बिना (जिस चारित्र के बिना) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं,.. बीज उगता नहीं, फटता नहीं। चारित्र भी ऐसा है। वहाँ बीज जैसा है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं,.. उसमें चारित्र का परिणमन हो, तब मुक्ति होती है – ऐसा कहते हैं। अकेले सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान से मुक्ति नहीं होती, ऐसा सिद्ध करते हैं।

कोठार के भीतर पड़े हुए बीज (अनाज) समान हैं,.. परन्तु अनाज जैसे हैं न? फल नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में चारित्र की परिणति चाहिए। वह नहीं हो, तब तक सम्यग्दर्शन-ज्ञान अनाज जैसे, बीज जैसे हैं। वैसा चारित्र, कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना का, वह चारित्र, ऐसा। देव-असुर-मानव से स्तवन किये गये... स्वर्ग के देव, असुरदेव और मानवों (द्वारा) स्तवन किये गये... स्तवन किये गये। पशु और नारकी तो कुछ हैं नहीं। देव वैमानिक, असुर नीचे और मानव। उनसे स्तवन किये गये जैन चरण... अहो! जैन का चारित्र।

(ऐसा जो सुर-असुर मनुष्यों से स्तवन किया गया जिनोक्त चारित्र) परमेश्वर ने कहा हुआ, अन्तर आनन्द की रमणतारूप चारित्र, (उसे) मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ। आहाहा! स्वयं भी मुनि हैं और ऐसे चारित्र को बारम्बार उसमें मेरा स्तवन है, नमन है। आहाहा! परिणमन है और विशेष नमता हूँ। आहाहा! अरे! यह करने की वस्तु, उसे ऐसा करना रह जाए और न करने का करे, और हो गया। गँवावे। आहाहा! अभी तो ऐसी वस्तु है, ऐसी श्रद्धा करने में इसे पसीना उतरता है। नहीं.. नहीं.. अभी तो व्यवहार ही होता है, शुद्ध नहीं होता। लो, ठीक। शुद्ध नहीं होवे तो उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। शुद्ध आचरण, शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र न हो तो उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। निश्चय

होवे तो व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! क्या हो? स्वयं अपने को ठगता है और मानता है कि हम कुछ लाभ में हैं। आहाहा! क्या हो? ऐसे अनादि से जगत लुटता है। ऐसा जैन का चारित्र... ओहो! ऐसे जैन चरण को... भगवान कथित चारित्र को मैं पुनः-पुनः नमन करता हूँ। लो!



श्लोक-१०७

और (इस व्यवहारचारित्र अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(आर्या)

शीलमपवर्गयोषिदनङ्गसुखस्यापि मूलमाचार्याः ।

प्राहुर्व्यवहारात्मकवृत्तमपि तस्य परम्परा हेतुः ॥१०७॥

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-
विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ व्यवहारचारित्राधिकारः चतुर्थः श्रुतस्कन्धः ।

(वीरछन्द)

मुक्ति सुन्दरी का अनंग सुख-मूल शील कहते आचार्य ।

उसका परम्परा कारण है कहा गया चारित व्यवहार ॥

[श्लोकार्थः] आचार्यों ने शील को (निश्चयचारित्र को) मुक्ति सुन्दरी के अनङ्ग (अशरीरी) सुख का मूल कहा है; व्यवहारात्मक चारित्र भी उसका परम्परा कारण है।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं, और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) व्यवहारचारित्र अधिकार नाम का चौथा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

और (इस व्यवहारचारित्र अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) — वह (इससे पूर्व) मार्गप्रकाश का था । मार्गप्रकाश, वे स्वयं भी चारित्र को नमन करते हैं, ऐसा कहते हैं ।

शीलमपवर्गयोषिदनङ्गसुखस्यापि मूलमाचार्याः ।

प्राहुर्व्यवहारात्मकवृत्तमपि तस्य परम्परा हेतुः ॥१०७॥

श्लोकार्थः : आचार्यों ने शील को (निश्चयचारित्र को)... आत्मा के आनन्द की रमणतारूप चारित्र को, मुक्ति सुन्दरी के अनङ्ग (अशरीरी) सुख का मूल कहा है;... परमानन्द की प्राप्ति—ऐसी मुक्ति, यह अनङ्ग अर्थात् अङ्ग रहित, आत्मा का (अशरीरी) सुख का मूल कहा है;... लो, इस चारित्र का फल यह है, ऐसा कहते हैं । स्वरूप का सम्यग्दर्शन, स्वरूप का ज्ञान, अनुभव, आनन्द तदुपरान्त अन्तर में लीनता, ऐसा जो चारित्र, (वह) मोक्षरूपी (अशरीरी) सुख का मूल कहा है; व्यवहारात्मक चारित्र भी उसका परम्परा कारण है । लो, परन्तु किसे ? निश्चय है उसे । परम्परा अर्थात् व्यवहार । उसे छोड़कर होगा, तब होगा । ऐसा गजब है, भाई ! पक्ष का व्यामोह, अपने पक्ष की पुष्टि दे, वैसे अर्थ करे । और कहे वापस हम बराबर भगवान प्रमाण करते हैं ।

व्यवहारात्मक चारित्र भी उसका परम्परा कारण है । लो । किसका ? मुक्ति सुन्दरी अनङ्ग अशरीरी सुख का । परन्तु वह परम्परा, साक्षात् कारण तो यह । यह छूटकर फिर स्थिरता होगी, तब उसे पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप मुक्ति प्राप्त होगी । इसप्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं, और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... यह टीकाकार । ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) व्यवहारचारित्र अधिकार नाम का चौथा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ । सबको एक-एक को श्रुतस्कन्ध कहा है । श्रुतस्कन्ध । चतुर्थ श्रुतस्कन्ध । सम्पूर्ण श्रुत का यह चौथा श्रुतस्कन्ध ।

परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार

श्लोक-१०८

(वंशस्थ)

नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै ।

विनेयपङ्केजविकाश-भानवे विराजते माधवसेनसूरये ॥१०८॥

अथ सकलव्यावहारिकचारित्रतत्फलप्राप्तिप्रतिपक्षशुद्धनिश्चयनयात्मकपरमचारित्रप्रति-
पादनपरायणपरमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः कथ्यते । तत्रादौ तावत् पञ्चरत्नस्वरूपमुच्यते । तद्यथाह
अथ पञ्चरत्नावतारः ।

[अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री माधवसेन
आचार्यदेव को श्लोक द्वारा नमस्कार करते हैंः]

(हरिगीतिका)

ज्ञान अरु संयम गुणों के मूर्तिमन्त स्वरूप जो ।

हैं कामगज कुम्भस्थलों को भेदने वाले अहो ॥

शिष्यरूपी कमल विकसित करें सूर्य समान जो ।

राजते हे सूरि माधवसेन! तुमको नमन हो ॥१०८॥

[श्लोकार्थः] संयम और ज्ञान की मूर्ति, कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को
भेदनेवाले तथा शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान—ऐसे हे विराजमान
(शोभायमान) माधवसेनसूरि! आपको नमस्कार हो ॥१०८॥

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष ऐसा
जो शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण
अधिकार कहा जाता है। वहाँ प्रारम्भ में पञ्चरत्न का स्वरूप कहते हैं। वह इस
प्रकारः—

श्लोक-१०८ पर प्रवचन

अब परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार लो। अब यह निश्चय आया। पहला व्यवहार समझाकर, फिर निश्चय की बात ली है; इसलिए व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा उसमें कुछ नहीं है। यह तो समझाने की पद्धति ऐसी है। इसीलिए व्यवहार पहले आवे और निश्चय बाद में आवे, ऐसा नहीं है। निश्चय के साथ ऐसा व्यवहार पहले समझाया है।

[अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री माधवसेन आचार्यदेव को श्लोक द्वारा नमस्कार करते हैं:] अपना। चन्द्रकीर्ति मुनि थे। इनके कोई बहुत ऊँचे मुनि होंगे, उन्हें वन्दन किया था न? वहाँ मुनि शब्द था। चन्द्रकीर्ति मुनि का निरूपण। यह उनके कोई आचार्य होंगे। उस समय तो सब सोने की खापडूँ जैसे सब पके हुए। मुनि, आचार्य.. आहाहा! ९०० वर्ष पहले की बात है न? सब वीतरागबिम्ब। इन चन्द्रकीर्ति मुनि का... ऐसा कहा न? यहाँ आचार्य को वन्दन करते हैं। नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये.. यह पर की खबर पड़ती है या नहीं? या केवलज्ञानी को खबर पड़ती है? भावलिंगी है या द्रव्यलिंगी, वह केवलज्ञानी को खबर पड़े। लो, यह भावलिंगी हैं, ऐसी यहाँ मुनि को खबर पड़ी है। अपने आचार्य की। पंचम काल के। दोनों पंचम काल के हैं न? आहाहा! छद्मस्थ को इतनी सब खबर पड़ गयी? कि मेरे गुरु ऐसे हैं, मुनि ऐसे हैं। ऐसी खबर पड़ गयी?

मुमुक्षु : छद्मस्थ को ज्ञान न होवे, ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञानी जाने। छद्मस्थ न जाने। (ऐसा लोग कहते हैं)।

मुमुक्षु : तो क्या जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाने।

नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये

स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै।

आहाहा! देखो! यह सब मुनि को पहिचान हुई है या नहीं? पद्मप्रभमलधारिदेव को।

**विनेयपङ्केजविकाश-भानवे
विराजते माधवसेनसूरये ।**

आहाहा! वीतरागी सन्त भी उस समय विराजते थे। आहाहा! संयम और ज्ञान की मूर्ति,... थी, कहते हैं। लो, किस प्रकार यह जानने में आया? परन्तु वह तो अरूपी मति-श्रुतज्ञान में ज्ञात हो गया? केवली जाने और मतिश्रुतज्ञानी जाने या नहीं? आहाहा! संयम और ज्ञान की मूर्ति,... थी। हमारे आचार्य, वे स्वरूप की रमणता और आत्मा का ज्ञान, इसकी तो मूर्ति थे। उनका स्वरूप ही यह था, कहते हैं।

कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले... कहते हैं कि वे कैसे थे? विषय-वासनारूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले। ओहोहो! ऐसे निर्विकारी ब्रह्मानन्द परिणमन जिन्हें था, ऐसा कहते हैं। यह तो अभी ९०० वर्ष पहले की बात है। वे तो केवली भी नहीं थे। उस समय तो चार ज्ञान भी कहाँ थे? अवधिज्ञानी कहाँ थे? मति और श्रुतज्ञान में भी ऐसी निर्मलता से छद्मस्थ का छद्मस्थ जान लेता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल... क्या कहलाता है? ऊपर कुम्भ होता है न हाथी का? उसे कुम्भस्थल कहते हैं। यह सिर नहीं? ऊपर होता है ऊपर?

मुमुक्षु : कांध ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कांध, क्या कहलाता है कांध। भाषा दूसरी है, बड़ा कांध होता है न, वहाँ मारे। वहाँ आगे सब अन्तड़ियों का पिण्ड वहाँ होता है न? बड़ा कांध होता है? वहाँ वह सिंह थाप मारे वहाँ। सब अन्तड़ियाँ खिंच जाती है। कांध, कांध।

कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को... उसके कांध को भेदनेवाले। शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान— लो! शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में निमित्त। निमित्त सम्बन्धी व्याख्या है न? ऐसे हे विराजमान (शोभायमान) माधवसेनसूरि! माधवसेन, इनके गुरु, आचार्य आपको नमस्कार हो। यहाँ से शुरु करके, अब निश्चय अधिकार शुरु करना है न? ऐसे जो निश्चय संयम और ज्ञान की मूर्ति, कामदेव को तो तोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट किया है, ऐसा कहते हैं। हे विराजमान (शोभायमान) माधवसेनसूरि! आपको नमस्कार हो।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नियमसार निश्चयचारित्र अधिकार-प्रतिक्रमण अधिकार । [अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री माधवसेन आचार्यदेव को श्लोक द्वारा नमस्कार करते हैं:] अपने गुरु को नमस्कार करते हैं । पश्चात् प्रतिक्रमण शुरु करेंगे । आहाहा !

नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै ।

विनेयपङ्केजविकाश-भानवे विराजते माधवसेनसूरये ॥१०८॥

अपने गुरु कैसे हैं ? और उन गुरु को नमस्कार क्यों करते हैं ?-कि वे गुरु संयम और चारित्र से भरपूर हैं । संयम और ज्ञान की मूर्ति,... हैं । आहाहा ! देखो, यह पंचम काल के मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव यह टीका करते हैं । अपने आचार्य को नमस्कार करते हैं । हमारे आचार्य संयम और ज्ञान की मूर्ति हैं । ज्ञानस्वरूपी भगवान पूर्ण, भले छद्मस्थ हैं और संयम की मूर्ति (अर्थात्) अन्तर अतीन्द्रिय संयम में स्थिर, ऐसे ज्ञान और संयम की मूर्ति हैं । आहाहा !

कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले... विषयरूपी वासना, कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले हैं । आहाहा ! जिन्हें विषय की वासना का नाश हो गया है । अन्तर अतीन्द्रिय आनन्दपना, मुनिपना । अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद प्रकष्ट-उत्कृष्ट आया है, इससे कामदेव के भाव को छेद डाला है । शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान— हैं । आहाहा ! ये पंचम काल के मुनि ! शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान... हैं । माधवसेन मुनि । आहाहा ! ये मुनिराज स्वयं अपने गुरु को वन्दन करते हुए गुरु के गुणगान करते हैं । आहाहा ! यह तो हजार वर्ष पहले की बात है । ८००-९०० वर्ष पहले की बात है । ऐसे हे विराजमान (शोभायमान) माधवसेनसूरि ! आपको नमस्कार हो । आहाहा ! ज्ञान की मूर्ति और संयम का पूर्ण स्वरूप । संयम की मूर्ति, अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में संयम की मूर्ति, ऐसे माधवसेन मुनि को शिष्य पद्मप्रभमलधारिदेव नमस्कार करते हैं ।

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से... अब क्या कहते हैं ? जितना व्यवहार

क्रियाकाण्ड है, व्यवहार सामायिक, व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार क्षमापना, व्यवहार प्रायश्चित, व्यवहार प्रतिक्रमण इत्यादि यह सब। **व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष...** व्यवहारचारित्र है, वह राग है, राग है और उसका फल, वह बन्धन है। उससे प्रतिपक्ष। आहाहा! **ऐसा जो शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र...** शुद्ध निश्चयस्वरूप, आनन्दस्वरूप में रमणता। ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान आत्मा, उस ज्ञान और आनन्द में जिसकी रमणता है... आहाहा! वह निश्चयचारित्र है। पंच महाव्रतादि विकल्प, वह चारित्र नहीं, वह व्यवहार है। व्यवहार और व्यवहार के फल से निश्चयचारित्र विरुद्ध है। आहाहा! पंचम काल के मुनि कहते हैं। पंचम काल के अपने गुरु को वन्दन करके स्वयं कहते हैं कि व्यवहारप्रतिक्रमण आदि के काम / राग और उसका फल दुःख, उससे विरुद्ध ऐसा निश्चयचारित्र कि जिसका फल आनन्द है, ऐसे निश्चयचारित्र के भेद को, प्रतिक्रमण को मैं कहूँगा। आहाहा! ऐसी बात है।

निश्चयनयात्मक.... शुद्धनिश्चयनयस्वरूप परम चारित्र... आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान में परम लीनता, अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता। **उसका प्रतिपादन करनेवाला..** उसे कहनेवाला **परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है।** परमार्थ-सत्य प्रतिक्रमण सत्य, जो मोक्ष का निर्विकल्प मार्ग, उसे यहाँ कहा जाता है। आहाहा! अभी तो व्यवहार-व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। यहाँ तो कहे, तेरे व्यवहार सामायिक, व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रत्याख्यान, उसका फल राग और उसका फल दुःख है, उससे विरुद्ध जो निश्चयचारित्र है, उसका फल अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अधिकार मैं कहूँगा। आहाहा!

उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है। वहाँ प्रारम्भ में पंचरत्न का स्वरूप कहते हैं। यह गाथा पंचरत्न है। जैसे प्रवचनसार में अन्तिम पाँच (गाथाओं को) रत्न कहा न? उसी प्रकार यह पंचरत्न है। अन्तर आत्मा का आनन्द का रत्न प्रगट हो, वह रत्न है। यह पाँच रत्न की गाथा कही जाती है। आहाहा! कहाँ गये? शान्तिभाई! यह तुम्हारे धूल के रत्न की बात नहीं है। रत्न का बड़ा व्यापारी है न, हीरा-माणिक का बड़ा व्यापारी है। पच्चीस लोग तो हीरा-माणिक का काम करते हैं। एक-एक को पाँच सौ-सात सौ-हजार का एक महीने का पड़ता है। ऐसे पच्चीस लोग

काम करते हैं। धूल के। सुमेरुमलजी! तुम्हारे पीछे बैठे हैं। शान्तिभाई जवेरी... जवेरी। मुम्बई में। भाई! तुम पहिचानते हो? सुमेरुमलजी! बीस-पच्चीस व्यक्ति तो हीरा को घिसते हैं। इतना उनका काम। एक-एक व्यक्ति को महीने में पाँच सौ, सात सौ, हजार रुपये पड़ते हैं, ऐसे पच्चीस व्यक्ति काम करते हैं। धूल का। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही.. आहाहा! निश्चयचारित्र जो प्रतिक्रमण, उसका स्वरूप मैं कहूँगा। वह व्यवहार प्रतिक्रमण और व्यवहार क्रियाकाण्ड से विपरीत है। विपरीत है। आहाहा! अब यह विपरीत है, विपरीत से, व्यवहार से निश्चय होगा?

मुमुक्षु : किसी काल में नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यहाँ तो व्यवहार से निश्चय तो विरुद्ध है। आहाहा!

वहाँ प्रारम्भ में पंचरत्न का स्वरूप कहते हैं। यह पंचरत्न का अवतरण करने को गाथा कहते हैं।

गाथा-७७-८१

अब पाँच रत्नों का अवतरण किया जाता है:—

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७७॥
 णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७८॥
 णाहं बालो बुद्धो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७९॥
 णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८०॥
 णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८१॥
 नाहं नारक-भावस्तिर्यङ्मानुष-देव-पर्यायः ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥७७॥
 नाहं मार्गणास्थानानि नाहं गुणस्थानानि जीवस्थानानि वा ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥७८॥
 नाहं बालो वृद्धो न चैव तरुणो न कारणं तेषाम् ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥७९॥
 नाहं रागो द्वेषो न चैव मोहो न कारणं तेषाम् ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥८०॥
 नाहं क्रोधो मानो न चैव माया न भवामि लोभोऽहम् ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥८१॥

अत्र शुद्धात्मनः सकलकर्तृत्वाभावं दर्शयति । बह्वारम्भपरिग्रहाभावादहं तावन्नारकपर्यायो न भवामि । सन्सारिणो जीवस्य बह्वारम्भपरिग्रहत्वं व्यवहारतो भवति अत एव तस्य नारकायुष्क-हेतुभूतनिखिलमोहरागद्वेषा विद्यन्ते, न च मम शुद्धनिश्चयबलेन शुद्धजीवास्तिकायस्य; तिर्य-क्पर्यायप्रायोग्यमायामिश्राशुभकर्माभावात्सदा तिर्यक्पर्यायकर्तृत्वविहीनोऽहं; मनुष्यनाम-कर्मप्रायोग्यद्रव्यभावकर्माभावान्न मे मनुष्यपर्यायः शुद्धनिश्चयतो समस्तीति । निश्चयेन देवनामधेयाधारदेवपर्याययोग्यसुरससुगन्धस्वभावात्मकपुद्गलद्रव्यसम्बन्धाभावान्न मे देवपर्यायः इति ।

चतुर्दशभेदभिन्नानि मार्गणास्थानानि तथाविधभेदविभिन्नानि जीवस्थानानि गुणस्थानानि वा शुद्धनिश्चयनयतः परमभावस्वभावस्य न विद्यन्ते । मनुष्यतिर्यक्पर्यायकायवयःकृतविकार-समुपजनितबालयौवनस्थविरवृद्धावस्थाद्यनेकस्थूलकृशविविधभेदाः शुद्धनिश्चयनयाभिप्रायेण न मे सन्ति । सत्तावबोधपरमचैतन्यसुखानुभूतिनिरतविशिष्टात्मतत्त्वग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनय-बलेन मे सकलमोहरागद्वेषा न विद्यन्ते ।

सहजनिश्चयनयतः सदा निरावरणात्मकस्य शुद्धावबोधरूपस्य सहजचिच्छक्तिमयस्य सहजदृक्स्फूर्तिपरिपूर्णमूर्तेः स्वरूपाविचलस्थितिरूपसहजयथाख्यातचारित्रस्य न मे निखिल-सन्सृतिक्लेशहेतवः क्रोधमानमायालोभाः स्युः ।

अथामीषां विविधविकल्पाकुलानां विभावपर्यायाणां निश्चयतो नाहं कर्ता, न कारयिता वा भवामि, न चानुमन्ता वा कर्तृणां पुद्गलकर्मणामिति ।

नाहं नारकपर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं तिर्यक्पर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं मनुष्यपर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं देवपर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं चतुर्दशमार्गणास्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहमेकेन्द्रि-यादिजीवस्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं शरीरगतबालाद्यवस्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं रागादिभेदभावकर्मभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं भावकर्मात्मककषायचतुष्कं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

इति पञ्चरत्नाञ्चितोपन्यासप्रपञ्चनसकलविभावपर्यायसन्न्यासविधानमुक्तं भवतीति ।

अब पाँच रत्नों का अवतरण किया जाता है:—

नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं ।

कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥७७॥

मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७८ ॥
 बालक नहीं मैं, वृद्ध नहीं, नहीं युवक तिन कारण नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७९ ॥
 मैं राग नहीं, मैं द्वेष नहीं, नहीं मोह तिन कारण नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥८० ॥
 मैं क्रोध नहीं, मैं मान नहीं, माया नहीं, मैं लोभ नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥८१ ॥

अन्वयार्थः—[अहं] मैं [नारकभावः] नारकपर्याय, [तिर्यङ्मानुषदेवपर्यायः] तिर्यचपर्याय, मनुष्यपर्याय अथवा देवपर्याय, [न] नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका (मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता (-करानेवाला) नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[अहं मार्गणास्थानानि न] मैं मार्गणास्थान नहीं हूँ, [अहं] मैं [गुण-स्थानानि] गुणस्थान [वा] अथवा [जीवस्थानानि] जीवस्थान [न] नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका मैं कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[न अहं बालः वृद्धः] मैं बाल नहीं हूँ, वृद्ध नहीं हूँ, [न च एव तरुणः] तथा तरुण नहीं हूँ; [तेषां कारणं न] उनका (मैं) कारण नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका (मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[न अहं रागः द्वेषः] मैं राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ, [न च एव मोहः] तथा मोह नहीं हूँ; [तेषां कारणं न] उनका (मैं) कारण नहीं हूँ, [कर्ता न हि कारयिता] उनका (मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ; [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[न अहं क्रोधः मानः] मैं क्रोध नहीं हूँ, मान नहीं हूँ, [न च एव अहं माया] तथा मैं माया नहीं हूँ, [लोभः न भवामि] लोभ नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका

(मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

टीका:—यहाँ शुद्ध आत्मा को सकल कर्तृत्व का अभाव दर्शाते हैं ।

बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण मैं नारकपर्याय नहीं हूँ । संसारी जीव को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है और इसीलिए उसे नाकर-आयु के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेष होते हैं, परन्तु मुझे—शुद्धनिश्चय के बल से शुद्धजीवास्तिकाय को—वे नहीं हैं । तिर्यचपर्याय के योग्य मायामिश्रित अशुभकर्म का अभाव होने के कारण मैं सदा तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ । मनुष्यनामकर्म के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने के कारण मुझे मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है । 'देव' ऐसे नाम का अधार जो देवपर्याय उसके योग्य सुरस-सुगन्धस्वभाववाले पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण निश्चय से मुझे देवपर्याय नहीं है ।

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान तथा उतने (चौदह) भेदवाले जीवस्थान या गुणस्थान शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे) नहीं हैं ।

मनुष्य और तिर्यचपर्याय की काया के, वयकृत विकार से (-परिवर्तन से) उत्पन्न होनेवाले बाल-युवा-स्थविर-वृद्धावस्थादिरूप अनेक स्थूल-कृश विविध भेद शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से मेरे नहीं हैं ।

सत्ता, अवबोध, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं ।

सहज निश्चयनय से (१) सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप, (३) सहज चित्शक्तिमय, (४) सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति (-जिसकी मूर्ति अर्थात् स्वरूप सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण है ऐसे) और (५) स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यात चारित्रवाले ऐसे मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं ।

अब, इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों से (भेदों से) भरी हुई विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ और पुद्गलकर्मरूप कर्ता का

(-विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म उनका-)अनुमोदक नहीं हूँ (ऐसा वर्णन किया जाता है)।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं तिर्यचपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं देवपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया, उसी प्रकार कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।)

इस प्रकार पाँच रत्नों के शोभित कथनविस्तार द्वारा सकल विभावपर्यायों के संन्यास का (-त्याग का) विधान कहा है।

गाथा - ७७-८१ पर प्रवचन

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपजाओ ।

कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७७॥

णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७८॥
 णाहं बालो बुद्धो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७९॥
 णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८०॥
 णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८१॥

हरिगीत । यहाँ नकार से लिया है । निर्वाण शब्द का भाई ने लिया है । सवेरे प्रश्न था न ? निर्वाण और सिद्ध । निर्वाण की व्याख्या-निर्वाण वह सिद्ध है । परन्तु निर्वाण में यह लिया है कि पीड़ा नहीं, दुःख नहीं, राग नहीं, कर्म नहीं । ऐसा लेकर निर्वाण की व्याख्या की है । पश्चात् वह निर्वाण, वह सिद्ध है-ऐसे अस्ति से बात की है । भाई ! निर्वाण में । उसमें से तो एक नया निकला कि १८० गाथा है । ओहोहो ! है १८० ? १८०, यह, परम निर्वाण के योग्य परमतत्त्व के स्वरूप का कथन है । है ? अब यहाँ तो दूसरा कहना है । जरा वह प्रदेश-अप्रदेश है न ? (परमतत्त्व) अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण... क्या कहा ? आत्मा... इन इन्द्रियों से जाने, वह तो अमुक-अमुक प्रदेश से जाने परन्तु केवलज्ञानी तो अखण्ड प्रदेश, अखण्ड में से जाने; इसलिए उन्हें परम निर्वाण को अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण... चन्दुभाई ! एकप्रदेशी लिया है । पंचास्तिकाय में भी एकप्रदेशी (लिया है) । वह दूसरी वस्तु (बात) है, वह तो एकरूप अभेद । यहाँ भी एकप्रदेशी अर्थात् ? - यह पाँच इन्द्रियों में एक-एक खण्ड-खण्ड के प्रदेश से जाने, वह नहीं परन्तु अखण्ड प्रदेश एकसाथ अखण्ड प्रदेश से जाने । इसलिए उसे अखण्ड प्रदेशी एकप्रदेशी कहा है । समझ में आया ? आहाहा !

(परमतत्त्व) अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण... पाँच इन्द्रियों से वह जानता नहीं है । पाँच इन्द्रियों का व्यापार नहीं है, ऐसा कहते हैं । नहीं (कहकर) यहाँ तो नकार किया है । आहाहा ! क्योंकि वह परम एकरूप, असंख्यप्रदेशी एकरूप,

एकरूप असंख्यप्रदेश से जानता है। असंख्यप्रदेशी एक प्रदेश किस प्रकार जानता है ? और जो इन्द्रियों का अलग-अलग प्रदेश से जानना है, वह नहीं। समझ में आया इसमें ?

पंचास्तिकाय में ऐसा कहा कि असंख्यप्रदेशी, वह एकप्रदेशी है। वह तो अखण्डता बतायी है। यहाँ कहते हैं, पाँच-पाँच इन्द्रिय के जो प्रदेश हैं, उनसे नहीं जानता। अखण्ड-एक प्रदेश से जानता है। अर्थात् सम्पूर्ण असंख्य प्रदेश एकरूप हैं, उनसे जानता है। आहाहा! इसका नाम यहाँ निर्वाण और परमात्मा और सिद्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? वह इन्द्रियों से नहीं जानता, ऐसे नकार से बात की है। परन्तु वह निर्वाण है और वह सिद्ध है। ऐसी नकार करके, फिर स्वीकार करके सिद्ध किया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं.. हरिगीत आया न 'नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।' यह तो निषेध का आया यह। वह पाँच इन्द्रिय से भगवान जानता नहीं। अखण्ड असंख्य प्रदेश से जानता है। एकप्रदेशी। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! बनियों को समय मिलता नहीं। यह समय.. जेठालालजी! धन्धे के कारण ऐसा निर्णय करने का समय नहीं मिलता। पूरे दिन पाप का समय मिलता है। आहाहा! भले फिर पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये इकट्ठे हों। यह चालीस करोड़ नहीं थे? अपने भाई साहू शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़। दूसरे अपने नहीं कहा? इन पोपटभाई का साला। ये पोपटभाई तुम्हारे पीछे बैठे हैं न? इनके साला के पास दो अरब चालीस करोड़। दो अरब चालीस करोड़, दो सौ चालीस करोड़। ये बैठे देखो! सामने। इनका साला। यह उसका बहनोई है। और अभी एक वैष्णव आया था। चिमनभाई का सेठ वहाँ मुम्बई दर्शन करने आया था। पचास करोड़। वैष्णव है। नाम क्या? रामदास आया था। वैष्णव है। घर में महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन हैं। महिलाएँ सब जैन हैं और आदमी सब वैष्णव हैं।

मुमुक्षु : बहुत सुखी लोग हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुखी नहीं, दुःखी हैं। वह तो बेचारा आकर ऐसा कहे। वैष्णव सही न? अर्थात् ऐसा कि ईश्वर कर्ता है या नहीं? बेचारा ऐसे नम्रता से बोलता था। चरण-स्पर्श करने आया था। पचास करोड़ रुपये अभी हैं और चरण-स्पर्श किये, एक हजार रुपये रखे, नारियल रखा और प्रार्थना की—महाराज! मेरे घर पधारना। घर में महिलाएँ सब अपने मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर जैन हैं। सब महिलाओं को बहुत प्रेम है।

इसलिए कहा - महाराज! घर में पधारना। घर में गये थे। वापस पन्द्रह सौ रुपये दिये। नारियल रखा, परन्तु वैष्णव है न? कर्ता (मानता है)। मैंने उससे कहा, भाई! तुम यदि वैष्णव को कर्ता मानते हो तो नरसिंह मेहता ने तो ऐसा कहा है कि 'ज्यां आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' वहाँ उसने ऐसा नहीं कहा 'ज्यां लगी ईश्वर को कर्ता मान्यो नहीं।' यह आत्मतत्त्व है, उसका जहाँ तक अनुभव नहीं किया, उसका ज्ञान नहीं किया और क्रियाकाण्ड में रहा तो चार गति में मर गया। क्या किया.. अभी आया था एक.. समाचार-पत्र में इतना (आया था)। 'शूं कर्युं सेवा अने तीर्थ अने भक्ति कर्या थकी, शूं कर्युं जात्राने दया दान थकी?' उसमें कुछ धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा! कहा, ऐसा कहते हैं न? फिर सुनते थे बेचारे। संस्कार बहुत पड़ गये थे। ईश्वर कर्ता.. कर्ता कौन? यहाँ तो यह कहेंगे। ईश्वर तो कर्ता नहीं, परन्तु हम नारक नहीं। नारकी की गति, वह मेरी नहीं, मैं उसका कर्ता नहीं। आहाहा!

है न? 'नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।' अर्थ में आयेगा। यह तो टीका है। 'कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं।' मेरी मनुष्य गति आदि का कर्ता मैं नहीं हूँ। ईश्वर तो कर्ता नहीं परन्तु यह गति आदि है, उसका मैं कर्ता नहीं। आहाहा! मैं तो एक जाननेवाला-देखनेवाला भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। यह धर्मी की दृष्टि होती है। आहाहा!

मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७८ ॥
 बालक नहीं मैं, वृद्ध नहीं, नहीं युवक तिन कारण नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७९ ॥
 मैं राग नहीं, मैं द्वेष नहीं, नहीं मोह तिन कारण नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥८० ॥
 मैं क्रोध नहीं, मैं मान नहीं, माया नहीं, मैं लोभ नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥८१ ॥

टीका:—यहाँ शुद्ध आत्मा को... शुद्धस्वरूप जहाँ आत्मा का ज्ञान, भान हुआ। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, अपना शुद्धस्वभाव जहाँ भान में आया, तो

कहते हैं कि शुद्ध आत्मा को सकल कर्तृत्व का अभाव दर्शाते हैं। वह शुद्ध आत्मा किसी का कर्ता नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। यह पंचरत्न कहे हैं।

बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण मैं नारकपर्याय नहीं हूँ। क्या कहते हैं? जेठालालजी! इस नारकी में जो जाते हैं न? नीचे सात नरक हैं। वह बहु आरम्भ और बहु परिग्रह करके मरकर नरक में जाते हैं। है? वह बहु आरम्भ तथा परिग्रह मेरा है ही नहीं और उसका मैं कर्ता हूँ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहु आरम्भ और परिग्रह नहीं तो कितना...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जरा भी परिग्रह... थोड़ा परिग्रह हो, थोड़ी बात है। यह तो सम्यक्त्वी को समकृती और पाँचवें गुणस्थानवाले को भी परिग्रह परिमाण होता है। भले उसके पास दस हजार हों, तथापि परिमाण लाख का करे, तो भी उसे उसकी मर्यादा है। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा का ज्ञान और दर्शन हुआ है और पूँजी है एक लाख रुपये की, तो भी परिमाण पाँच लाख का करे तो भी वह मर्यादावाला है, उसे परिग्रह की मर्यादा है। आहाहा! और अज्ञानी कुछ भी परिग्रह न रखे, परन्तु परिग्रह का कर्ता और भोक्ता है तो सब परिग्रह का आरम्भ और परिग्रह का कर्ता है। आहाहा! यह क्या कहा?

सम्यक्त्वी आत्मज्ञानी आत्मा जो शुद्धचैतन्य है.. यहाँ कहा न शुद्धचैतन्य! ऐसा जो शुद्ध आत्मा का ज्ञान और भान हुआ, उसे आरम्भ और परिग्रह होता है परन्तु नरक में जाए, ऐसा आरम्भ और परिग्रह नहीं है। अल्प आरम्भ भी होता है। वह तो सातवीं प्रतिमा तक अभी आरम्भ करता है और आहार-पानी भी साथ में बनाता है। उसे परिग्रह की मर्यादा है वहाँ, तो भी वह सम्यक्त्वी और पंचम गुणस्थान में है। आहाहा! अज्ञानी, आत्मा शुद्धचैतन्य वस्तु है, उसकी जिसे खबर नहीं, वह भले परिग्रह का माप करे - परिमाण करे, तथापि अन्दर में तो राग की एकताबुद्धि है तो महा आरम्भ और महापरिग्रह है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : तो भी वह नरक में तो जाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जाता। नरक में नहीं जाता न। कहा न? अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह है। पहले आयुष्य बँध गया हो, बाद में सम्यक्त्व हुआ हो तो नरक में जाता है। वह तो पहले बँध गया, उसके कारण (जाता है)। मिथ्यात्वभाव में आरम्भ और परिग्रह

में तीव्र आसक्ति के कारण नरक का आयुष्य बँध गया हो और बाद में समकित हुआ हो।

जैसे श्रेणिक राजा है। श्रेणिक राजा, पहले नरक का आयुष्य बँध गया, मुनि की आसातना की थी। नग्न मुनि दिगम्बर पर मरा हुआ सर्प डाला। करोड़ों चींटियाँ... घर आकर रानी से कहा, चेलना रानी समकितती (थी)। घर में स्त्री थी वह सम्यक्त्वी, स्वयं मिथ्यात्वी-बौद्धमति। उस स्त्री को कहता है कि मैं तेरे गुरु के ऊपर मरा हुआ सर्प डालकर आया हूँ। वह निकाल डाला होगा। प्रभु! अन्नदाता! वे मेरे गुरु ऐसा नहीं करते। आहाहा! चेलना रानी सम्यक्त्वी थी। मेरे गुरु वह परीषह आया, उसे निकाल नहीं डालते। अरे! चल-चल चल, देखने साथ में गये, वहाँ तो आनन्द में, ध्यान में (मुनि) मस्त थे और करोड़ों चींटियाँ। यह चेलना रानी ने... करके सर्प उठाया। लो, स्वामी! नाथ! देखो! यह मरा हुआ सर्प है, करोड़ों चींटियाँ हैं, इन्हें कुछ खबर भी नहीं। यह तो ध्यान में मस्त हैं। सर्प निकाल तो नहीं डाला, परन्तु उस ओर लक्ष्य भी नहीं है। आहाहा!

उस समय वे श्रेणिक राजा... मुनि समझाते हैं, उपदेश देते हैं। उन्हें ऐसा हो गया कि.. ओहोहो! जिनकी ऐसी दशा! जिनके ऊपर मैंने सर्प डाला था, उन्हें खबर भी नहीं। करोड़ों चींटियाँ ऐसे खाती हैं। आहाहा! यह चेलना मेरी स्त्री, उसके ये गुरु! ऐसे गुरु! ओहोहो! गजब बात, भाई! महाराज! प्रभु! मुझे आत्मज्ञान समझाओ। आत्मज्ञान की बात की, प्रभु! तू तो शुद्ध चैतन्यघन है। यह पुण्य और पाप के विकल्प और राग से भिन्न है। आहाहा! ऐसा भान हुआ और किया तो सम्यक्त्व हुआ परन्तु वह (पहले) नरक का आयुष्य बँध गया था। अभी नरक में है। श्रेणिक राजा समकितती हैं, तीर्थकरगोत्र बाँधा है, आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर होनेवाले हैं, तो भी अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की (आयुष्य) स्थिति है। आयुष्य तो बँधी थी तैंतीस सागर की, परन्तु समकित प्राप्त हुए तो स्थिति तोड़ डाली। तैंतीस सागर की स्थिति तोड़कर चौरासी हजार वर्ष की रही।

जो लड्डू होता है, उस लड्डू में से घी निकालकर पूरी-बूरी नहीं होती। वह लड्डू खाना ही पड़ता है। इसी प्रकार नरक का आयुष्य बँध गया, वह कम हो, परन्तु अभाव नहीं होता। आहाहा! सातवें नरक का आयुष्य बँध गया था। जहाँ आत्मज्ञान आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा मैं हूँ। मैं तो राग नहीं, विकल्प भी नहीं, आहाहा! शरीर और स्त्री, कुटुम्ब तो मेरे हैं ही नहीं, वे तो परचीज़ हैं। मेरी चीज़ तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है,

ऐसा अनुभव हुआ.. चौरासी हजार (वर्ष) की स्थिति रही और तैंतीस सागर की स्थिति तोड़ डाली। अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति, ढाई हजार वर्ष व्यतीत हुए। साढ़े इक्यासी हजार (वर्ष की) स्थिति में से निकलने के बाद तीर्थकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर। चारित्र नहीं था, त्याग नहीं था, परन्तु सम्यग्दर्शन-आत्मा का अनुभव (हुआ था)। आहाहा!

यह तीर्थकरगोत्र बाँधा। आगामी चौबीसी में रानी के गर्भ में आयेंगे, तब से इन्द्र आकर उनकी माँ का गर्भ साफ करेंगे, क्योंकि नरक में से निकलकर प्रभु पधारनेवाले हैं। आहाहा! बड़ा व्यक्ति आवे, तब सब साफ करते हैं या नहीं? इसी प्रकार भगवान नरक में से निकलकर माता! तेरे गर्भ में प्रभु आनेवाले हैं। साफ करते हैं। आहाहा! तत्पश्चात् सवा नौ महीने रहते हैं, जन्मते हैं। पहले गर्भ का महोत्सव इन्द्र करते हैं। पश्चात् जन्म का महोत्सव करते हैं। यह सब आत्मज्ञान का प्रताप है। वह राग और पुण्य से भिन्न मेरी चीज़ है, उसका अनुभव वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! बापू! कुछ समझ में आया या नहीं? यह गुजराती भाषा समझते हैं न? वह तो तुम्हारे मुम्बई में जाते होंगे न? आहाहा!

बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण... क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि मुझे आरम्भ और परिग्रह नहीं है, इसलिए नारकपर्याय नहीं है, इसलिए नारकी की पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! इस नरक में गया हुआ जीव भी ऐसा मानता है। मुझे आरम्भ परिग्रह अभी नहीं है और नारकी पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! मेरी पूँजी तो अनन्त आनन्द का सागर प्रभु, अमृत से भरपूर प्रभु वह मैं हूँ। मुझे आरम्भ और परिग्रह नहीं है, इसलिए नारकी की गति मुझे है ही नहीं। आहाहा!

देखो! यह निश्चय प्रतिक्रमण। आहाहा! यह सच्चा प्रतिक्रमण। ऐसे पहाड़े बोले, ऐसे बोले 'मिच्छामि दुक्कडं..' ऐसा तो अनन्त बार किया। परन्तु यह आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञान और आनन्द का सागर, उसकी ओर की दृष्टि करके ज्ञान और आनन्द की पर्याय प्रगट करे, तब वह ऐसा मानता है कि आरम्भ और परिग्रह मुझमें नहीं है। इसलिए वह नारक की गति-पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भले पहले आरम्भ और परिग्रह से नरक का आयुष्य बँध गया हो। वहाँ है परन्तु वहाँ ऐसा मानता है कि मैं नारकी नहीं हूँ। आहाहा!

संसारी जीव को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है... संसारी प्राणी को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है। इसीलिए उसे नारक-आयु के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेष होते हैं,... उसे तो मोह-मिथ्यात्व, राग से लाभ माने, पुण्य से लाभ माने, शरीर आदि मेरी क्रिया है—ऐसा माने, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को मोह-राग-द्वेष होते हैं। आहाहा! परन्तु मुझे—शुद्धनिश्चय के बल से शुद्धजीवास्तिकाय को—वे नहीं हैं। आहाहा! मेरा शुद्धस्वरूप प्रभु, आहाहा! परमानन्द का अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु मैं, ऐसा जो मेरा शुद्ध जीवास्तिकाय। जीवास्तिकाय-ऐसा शब्द लिया है न? अन्य में ऐसा नहीं है। काय लिया है, यह असंख्य प्रदेशी लेना है, इसलिए काय लिया है। आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त आत्मा के असंख्य प्रदेश किसी में देखे ही नहीं। वीतराग जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने आत्मा के असंख्य प्रदेश देखे हैं, इसलिए उसे जीवास्तिकाय कहा है। दूसरे में जीवास्तिकाय, ऐसा शब्द है ही नहीं। आहाहा!

यह कहते हैं कि शुद्धजीवास्तिकाय को—वे... शुद्धनिश्चय के बल से। मेरा परमपवित्र भगवान के आनन्द के बल से, उसके अन्तर के आश्रय के बल से.. आहाहा! शुद्धजीवास्तिकाय... मैं तो शुद्ध जीव का असंख्यप्रदेशी समूह। शुद्ध जीव का असंख्यप्रदेशी समूह, वे उसे आरम्भ और परिग्रह नहीं हैं और नरक की गति नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जिनेश्वर का मार्ग, बापू! वह बाहर से मिले, ऐसा नहीं है। अन्दर जिनस्वरूपी भगवान, जिनस्वरूपी 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही कर्म, इसी वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' वीतराग त्रिलोकनाथ के वचन का मर्म तो यह है, प्रभु! आहाहा! शरीर-बरीर तो मिट्टी-धूल है। आहाहा! मैं नारकी नहीं। मनुष्य को बाद में लेंगे। आहाहा!

तिर्यचपर्याय के योग्य... अब तिर्यच जो पशु होते हैं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पशु, नारकी, मनुष्य, वह घोड़ा, गाय, बैल। उस तिर्यच के योग्य मायामिश्रित अशुभकर्म... कपट से मिश्रित अशुभकर्म का अभाव होने के कारण वह मुझमें है ही नहीं। आहाहा! मायामिश्रित अशुभकर्म, वह मुझमें है ही नहीं। मैं तो शुद्धचिदानन्द आत्मा, उनसे भिन्न हूँ। आहाहा! यह निश्चय-सच्चा प्रतिक्रमण है। आहाहा!

सदा तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ। आहाहा! है? उसमें समुच्चय डाला था। यहाँ तो तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ। ऐसा कहा। तिर्यच की पर्याय के कर्ता से मैं

रहित हूँ। नारकी में समुच्चय डाला था। मुझे मोह, राग, द्वेष नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि तिर्यच में उत्पन्न होने के योग्य मायामिश्रित जो परिणाम है, वह मुझमें नहीं है। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! ऐसा तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ। तिर्यच की शरीर की अवस्था के कर्ता से, उस शरीर की तिर्यच अवस्था मेरी, उसका कर्ता मैं, (-ऐसा) नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसकी ज्ञान की पर्याय का कर्ता हूँ, ऐसा अपेक्षा से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? नहीं तो पर्याय का कर्ता पर्याय है। परन्तु मैं आत्मा जीवास्तिकाय शुद्ध चैतन्य हूँ, वह तिर्यच की पर्याय मेरी नहीं है, उसका मैं कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! है? कर्तृत्वविहीन हूँ। उसमें-नरक में भी कर्तृत्वविहीन हूँ, ऐसा लिया है।

मनुष्यनामकर्म के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने के कारण...
आहाहा! मनुष्यपना प्राप्त करने के योग्य जड़कर्म और उसका भावकर्म / विकार का तो मुझे अभाव होने के कारण। आहाहा! मैं शुद्ध जीवास्तिकाय का पिण्ड प्रभु, मुझमें मनुष्य होने के योग्य जो द्रव्यकर्म और भावकर्म, उसका अभाव होने के कारण मुझे मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है। आहाहा! ऐसी मनुष्यपर्याय मुझे नहीं है। आहाहा! यह शरीर नहीं, हों! शरीर तो जड़ है। वह मनुष्यपर्याय नहीं। अन्दर गति की जो योग्यता उदयभाव की-मनुष्य की पर्याय, वह मैं नहीं हूँ। यह तो शरीर है, यह कहीं मनुष्यगति नहीं है। यह तो जड़ है, मिट्टी-परमाणु है। मनुष्यगति के योग्य जो अन्दर उदयभाव, (वह मनुष्यगति है)। आहाहा!

मैं एक चैतन्य ज्ञायकभाव, उसके भाव के अस्तित्व के कारण, मुझमें मनुष्यगति के योग्य भावकर्म-द्रव्यकर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया? प्रतिक्रमण का अधिकार ऐसा है। निश्चयप्रतिक्रमण। उसमें इन गाथाओं को पंचरत्न कहा है। यह गाथा पंचरत्न है, यह धूल का रत्न नहीं है। ऐई! आहाहा! मनुष्यरूपी जो योग्यता की जो उदय की गति, उसके कारणरूप जो विकारभाव और द्रव्यकर्म, वह मैं नहीं हूँ; इसलिए वह मनुष्यगति की पर्याय, वह मैं नहीं हूँ। मैं नहीं परन्तु मैं उसका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं और अनुमोदक नहीं तथा उसका मैं कारण नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें। शुद्धनिश्चय से नहीं है।

‘देव’ ऐसे नाम का अधार जो देवपर्याय, उसके योग्य सुरस-सुगन्धस्वभाववाले

पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण... आहाहा! देव में सुगन्ध और सुरस आदि भाव है, वह मुझमें नहीं है। देवपर्याय मुझमें नहीं है। मैं तो दिव्यशक्ति का धनी, ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु (हूँ), वह देवपर्याय मेरी नहीं है। सुगन्ध और सुरसवाली जो शरीर की अवस्था, (वह मैं नहीं हूँ)। आहाहा! हजार वर्ष में तो उसे आहार की डकार आती है, पन्द्रह दिन में श्वासोच्छ्वास लेता है। ऊँचा-नीचा श्वास पन्द्रह दिन में लेता है और एक हजार वर्ष में आहार का विकल्प आता है। कण्ठ में से अमृत झरता है। वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो आत्मा में से अमृत झरे, वह आत्मा हूँ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वीतरागमार्ग, अन्तर का सूक्ष्म मार्ग कोई अलौकिक है। जगत को सुनने को मिलता नहीं। वह बेचारा क्या करे? आहाहा! एक तो संसार के काम के कारण फुरसत नहीं और घण्टे भर निवृत्त हो तो सुनने को ऐसा मिलता है कि एक घण्टा उसका सब लुट जाता है। पैसे में धर्म मनावे, या दान में या पूजा में अथवा भक्ति में, व्रत में, तप में। आहाहा! अरे रे! जिन्दगी जाती है। कहते हैं कि सच्चा प्रतिक्रमण करना तुझे नहीं आया।

मैं देवपर्याय नहीं हूँ। आहाहा! देव जो मनुष्यपने को चाहते हैं, उस मनुष्यपने की गति के लिए नहीं। देव, मनुष्यपने को चाहते हैं, वे मनुष्यपने की गति के लिए नहीं। मनुष्यपने में जाकर मुझे मेरे आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित संयम हो, उसके लिए मुझे मनुष्यपना मिले, ऐसी भावना करते हैं। आहाहा! अरे रे! देवगति में संयम नहीं, चारित्र नहीं। इस मनुष्यगति में यह मिले, इसकी प्राप्ति के लिए मनुष्यगति की भावना करते हैं। गति की पर्याय के लिए नहीं परन्तु इस भाव के लिए (भावना करते हैं)। आहाहा!

(सुरस-सुगन्धभाववाले पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव) होने के कारण मुझे देवपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है। आहाहा! है? णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ। कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता... इन तीनों में तीन-तीन ले लेना। मनुष्यगति, नरकगति, देवगति और तिर्यचगति, उसका मैं कर्ता भी नहीं, करानेवाला भी नहीं, अनुमोदन करनेवाला नहीं, उसका मैं कारण भी नहीं। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन-सहित का सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! अरे! लोगों को कठिन पड़ता है। निवृत्ति नहीं होती और दुनिया सब करे साथ में। दुनिया करे, साथ में हम कर देते हैं। हम कहाँ नया करते हैं? पूरी दुनिया करती है, (हम भी) साथ में करते हैं। परन्तु सब भटककर मरेंगे, उसमें तुझे भी भटककर मरना है? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। आहाहा! इन चार गति के कारण और चार गति मैंने की नहीं, मैंने करायी नहीं, उसका अनुमोदन मुझे नहीं तथा उस गति का कारण, वह मैं नहीं। आहाहा! मैं तो शुद्ध जीवास्तिकाय के बल से आनन्द और शान्ति का सागर, वह मैं हूँ। आहाहा! और मेरी पर्याय में तो आनन्द और शान्ति आवे, वह मेरा कर्तव्य है। आहाहा! यह गति आदि का मेरा कर्तव्य नहीं है। भाषा आदि का मेरा कर्तव्य नहीं है, वह तो जड़ है। आहाहा! ऐसी बातें!

पश्चात् कहते हैं, **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान...** इसमें नाम नहीं दिए। चौदह भेदवाले मार्गणास्थान हैं। गति, जाति, ज्ञान के भेद, दर्शन के भेद, भव्य-अभव्य—ऐसे जो सब भेद हैं, वे स्थान मुझमें नहीं हैं। आहाहा! **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान...** आत्मा किस-किस अवस्था में है? लौकिक बाहर। उन सब अवस्थाओं की मार्गणा से तो मैं रहित हूँ। आहाहा! मार्गणा अर्थात् कहाँ, किस अवस्था में मैं हूँ? ऐसी जो मार्गणा—गति, जाति, भव्य, अभव्य, ज्ञान की पाँच दशा, अज्ञान की तीन दशा, श्रद्धादशा आदि भेद, इन सब भेदों में मैं नहीं हूँ। आहाहा!

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान... इसमें नाम नहीं दिये। पहले आ गया है। किसमें आया है? ८७ पृष्ठ। पहले आ गये हैं। चौदह हैं न? वे **गति...** गति, उस गति में मैं नहीं हूँ। आहाहा! **इन्द्रिय..** में मैं नहीं हूँ। पाँच इन्द्रियों में मैं नहीं हूँ। **काय..** में मैं नहीं हूँ। औदारिक आदि। **योग...** में मैं नहीं हूँ। मन, वचन, काया के योग। **वेद..** में मैं नहीं हूँ। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद में मैं नहीं हूँ। आहाहा! वे मेरे शुद्धजीवास्तिकाय में ये सब भेद हैं नहीं। **कषाय..** मुझमें नहीं है। पुण्य और पाप का भाव, वह मुझमें नहीं है। मैं तो शुद्ध जीवास्ति, जीव-अस्ति-काय असंख्यप्रदेशी पिण्ड आनन्द का कन्द हूँ। **ज्ञान...** के भेद मुझमें नहीं है। आहाहा! मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल और तीन अज्ञान—ऐसे आठ भेद मुझमें नहीं है। मैं तो एक अखण्ड ज्ञानस्वरूपी प्रभु हूँ। आहाहा!

संयम.. और असंयम वह मुझमें नहीं है। ये सब भेद पर्याय है। आहाहा! **दर्शन..** चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन आदि भेद मुझमें नहीं है। (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन), अवधिदर्शन, केवलदर्शन, ये चार भेद मुझमें नहीं है। वे तो भेद हैं। मैं तो अभेद त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप हूँ। भारी कठिन काम। **लेश्या...** छह लेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, तेज (पीत), पद्म,

शुक्ल । कषायसहित का योग और लेश्या, वह मैं नहीं हूँ । लेश्या और अलेश्या, वह भी मैं नहीं । अलेश्या भी एक पर्याय है, वह भी मैं नहीं हूँ । आहाहा !

इसी प्रकार **भव्यत्व...** अभव्यत्व मैं नहीं हूँ । देखो ! यह भव्यत्व और अभव्यत्व, मोक्ष के योग्य और मोक्ष के अयोग्य, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो त्रिकाली ज्ञायक हूँ । आहाहा ! यह सच्चा प्रतिक्रमण । प्रति—वापिस हटना । परभेद से हटकर अभेद में आना, इसका नाम प्रतिक्रमण है । आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बोल है, भाई ! **भव्यत्व...** अभव्य मैं नहीं । समकित और सासादन, क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम, ये सब भेद मैं नहीं हूँ । आहाहा ! निमित्त तो मैं नहीं, राग तो मैं नहीं, परन्तु भेद मैं नहीं । शुद्धजीवास्तिकाय मेरा स्वरूप त्रिकाल, प्रभु ! जिसकी सत्ता में यह ज्ञात होते हैं, वह जाननेवाला, जाननेवाला वह पूर्ण स्वरूप से है, वह मैं हूँ । यह सब ज्ञात होते हैं, वह तो जाननेवाला जानता है । यह (शरीरादि) तो मिट्टी परवस्तु है । जिसकी सत्ता में ज्ञात होते हैं कि ये हैं, ऐसी सत्ता मेरे ज्ञान की सत्ता में भेद नहीं है । आहाहा ! इसी प्रकार **संज्ञित्व..** असंज्ञीपना । संज्ञी / मनवाला और मनरहित ये दोनों मैं नहीं हूँ । **आहार..** आहार (अनाहार) दोनों मैं नहीं हूँ, वे मुझमें नहीं हैं । है ?

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान तथा उतने (चौदह) भेदवाले जीवस्थान... एकेन्द्रिय (सूक्ष्म-स्थूल), द्वोन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त ऐसे भेद, वह मैं नहीं हूँ । आहाहा ! मैं पंचेन्द्रिय नहीं, मैं एकेन्द्रिय नहीं, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त मैं नहीं हूँ । ऐसा कब सुने ? आहाहा ! पूरे दिन धमाल । मुम्बई वह तो मोहनगरी । आहाहा ! इतने कहे न ? जीवस्थान, वह मैं नहीं हूँ । जीव के चौदह भेद ।

शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को... आहाहा ! जो दृष्टि / सम्यग्दर्शन का विषय है, जो **शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे) भेद नहीं हैं ।** मार्गणा के चौदह भेद नहीं हैं, जीव (स्थान) के भेद नहीं हैं । गुणस्थान के भेद नहीं हैं । आहाहा ! तीन लिये—चौदह मार्गणा, चौदह जीवस्थान, चौदह गुणस्थान । $१४ \times ३ = ४२$ आहाहा । ये मैं नहीं हूँ । मैं तो शुद्धजीवास्तिकाय, परमानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, वह मैं हूँ । वह पर से मैं विमुख होता हूँ और रहता हूँ यह, इसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण है । आहाहा !

ऐसा सूक्ष्म पड़ता है । फिर बातें करते हैं, यह तो सब सोनगढ़ की बातें हैं । वे भाई

कहते थे। कान्तिभाई आये थे न? वे वहाँ गये थे। कौन सा गाँव उनका? कुचामण। वहाँ साधु होगा। राजमल के साथ उन्हें प्रेम है। एक-दूसरे को मिलान खावे, इसलिए वहाँ जाए। उसमें कितनी ही बातें वहाँ साधु को करते होंगे। साधु ने सुना। बहुत बोले नहीं, परन्तु एक आर्यिका बोली, यह तो सब सोनगढ़ की बात है। कहो, सच्ची बात आवे तो यह सोनगढ़ की और बाहर की व्यवहार की बात आवे, वह (हमारी)। वे कहते थे। भाई गये न? कान्तिभाई कहे, मैं वहाँ गया था। राजमल मेरा मित्र है। राजमल को और उनको एक-दूसरे को मिलान खाता है। वहाँ साधु है, और आर्यिका है, इसलिए कितनी ही बातें कीं। पन्द्रह दिन रहा, ऐसा कुछ कहते थे। इसलिए फिर अन्त में आर्यिका ऐसा बोली की यह बात तो सोनगढ़ की है। चौथे गुणस्थान में अनुभूति, यह बात सोनगढ़ की है। चौथे गुणस्थान में अनुभव नहीं होता, अनुभूति तो सातवें गुणस्थान में होती है। कहो, अब... आहाहा!

मुमुक्षु : किसके आधार से कहते होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग है, वह तो सातवें गुणस्थान में होवे न! नीचे होगा ? आहाहा! वह आर्यिका बोली थी, ऐसा कहकर निकाल डाला।

यह पहले से चौथे गुणस्थान को.. यह बात पण्डितजी ने निकाली थी न? ज्ञानसागर में। ज्ञानसागर ने समयसार (की टीका) बनायी है न? चौथे गुणस्थान में। टीका का उद्देश्य चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग का है, ऐसा लिखा है परन्तु टीका में पाँचवें गुणस्थान के ऊपर की भी बात है, ऐसा नीचे फिर डाला है परन्तु इस टीका का उद्देश्य ऐसा लगता है कि चौथे गुणस्थान में समकित शुद्धोपयोग में होता है। ऐसा लिखा है। आहाहा! यह नहीं न? आहाहा!

शुभ और अशुभराग, वह तो अशुद्ध-उपयोग है। उससे हटकर चैतन्यद्रव्य पर आना, वह तो शुद्धउपयोग है। आहाहा! उस शुद्धउपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। अब उसे मानना नहीं तो क्या करना? शुद्ध उपयोग पहले गुणस्थान में नहीं होता, सातवें गुणस्थान में होता है। बस, हो गया। जाओ। परन्तु सातवाँ होवे तो तू फिर ऐसा कहे कि शुद्धोपयोग सातवें गुणस्थान में होता है तो कितना काल रहता है? थोड़ा काल और फिर छठे गुणस्थान में आवे, तो छठा-सातवाँ गुणस्थान तुमको है? पाटनीजी! भले सातवाँ तू कहे, परन्तु सातवें गुणस्थान में रहे कितना काल? यदि लम्बा काल रहे तो श्रेणी माँडकर सर्वज्ञ हो जाए। वह तो अभी है नहीं। शुद्ध उपयोग में से नीचे छठवें गुणस्थान में आ जाए और छठवें में क्षणिक

रहे और फिर सातवें गुणस्थान में आवे, तो सातवाँ नहीं तो छठा भी नहीं, तो गुणस्थान भी नहीं, तो मुनि ही नहीं। सूक्ष्म बात है। बेचारा क्या करे? व्यवहार से लेकर पड़े हैं, और सोनगढ़ का ऐसा निकला, इसलिए लोगों को बेचारों को कठिन पड़ता है। मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा!

चौथे गुणस्थान में समकित में अनुभूति, सम्यग्दर्शन, स्वरूप का आचरण, यह सब चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है। दर्शन, ज्ञान और स्थिरता का अंश सब चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है। मोक्ष के मार्ग की शुरुआत वहाँ से है। आहाहा! अब यह माने नहीं, कारण कि उसे है नहीं। सातवाँ होवे तो अभी सातवाँ हमारे कुछ आता नहीं। सातवाँ आता नहीं, तो छठा गुणस्थान भी नहीं। छठा नहीं तो मुनि नहीं। हो गया। आहाहा! समझ में आया?

सातवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग कहे तो सातवें का शुद्धोपयोग तो अल्प काल रहता है, अधिक रहने जाए तो श्रेणी माँडे। वह तो अभी है नहीं। तब शुद्धोपयोग वापस हटकर छठवें (गुणस्थान) में आवे, तब यदि छठवें में आवे और क्षण में रहकर वापस सातवें (गुणस्थान) में आवे तो वह तो तुम्हारे सातवाँ है नहीं, तो छठा नहीं, तो मुनिपना भी नहीं। बाबूभाई! आहाहा! तुम्हारे अनादर के लिए नहीं, प्रभु! यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

भगवान! सबको परमात्मपना हो और परमात्मा की बुद्धि होओ। किसी की विपरीत बुद्धि न रहो, यह तो धर्मी की भावना होती है परन्तु वस्तु का स्वरूप है, तत्प्रमाण आता है; दूसरा क्या आवे? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। ऐसे विविध भाव जो चौदह भेद हैं, वे मुझमें नहीं हैं। फिर विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७६, गाथा-७७ से ८१, रविवार, कार्तिक शुक्ल ८, दिनांक २८-१०-१९७९

नियमसार, परमार्थ प्रतिक्रमण । यथार्थ प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ? सूक्ष्म बात है ।

ये चौदह भेदवाले मार्गणास्थान... आहाहा ! ज्ञान की पर्याय के भेद, गति के भेद, दर्शन के भेद, समकित के भेद, ऐसे जो भेद, वे मेरे परमस्वभावभाव में वे नहीं हैं । धर्मी की दृष्टि में त्रिकाली परमस्वभावभाव लेने पर ये भेद उसमें हैं नहीं । आहाहा ! चौदह भेद ये नहीं हैं तथा चौदह जीव (स्थान) के भेद, परमस्वभावभाव वस्तु-ज्ञान आनन्द का स्वभाव परम जो त्रिकाल, ऐसे अभेदस्वभाव में जीव के चौदह भेद नहीं हैं । आहाहा ! तथा चौदह गुणस्थान नहीं हैं । आहाहा ! गुणस्थान जो पर्याय में सब भेद हैं, चौदहवाँ गुणस्थान और तेरहवाँ गुणस्थान-वे पर्याय के भेद त्रिकाली परमस्वभाव की दृष्टि करने पर, उसमें वे भेद नहीं हैं । आहाहा ! तीन (होकर) ४२ आये—१४ मार्गणा, १४ जीव स्थान, १४ गुणस्थान (इस प्रकार कुल ४२ हुए) ।

शुद्धनिश्चय से... परम शुद्धनिश्चय का स्वभावभाव, एकरूप परमस्वभावभाव, एकरूप त्रिकाली सहजात्मस्वरूप त्रिकाली स्वभाव पारिणामिकभाव या ज्ञायकभाव, इस शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को... आहाहा ! मैं तो परमस्वभावभाववाला मेरा आत्मा है । परमस्वभावभाव । परमभावस्वभाववाला - ऐसी भाषा लेना । परमभाव -स्वभाववाला । परमभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, शुद्धपारिणामिकभाव - ऐसे परमभाव -स्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है, ऐसे मुझे) नहीं हैं । आहाहा ! अभेद दृष्टि में वे भेद नहीं हैं । वे सब भेद तो व्यवहारनय का विषय है । है, उतना जाननेयोग्य है; आदरणने योग्य वह नहीं है । आहाहा ! परमभावस्वभाववाला तत्त्व, परमभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव, ऐसा स्वभाववाला तत्त्व, जिसका स्वभाव परमभाव है, उसमें भेद नहीं है । ओहोहो ! यह सम्यग्दर्शन का विषय है । सूक्ष्म पड़े, परन्तु मार्ग तो यह है ।

वर्तमान पर्याय को त्रिकाली परमभावस्वभाव सन्मुख झुकाना, उसमें भी परमस्वभावभाव में वह पर्याय जो झुकायी, वह भी उसमें नहीं है । आहाहा ! आहाहा ! ऐसा मार्ग ! परम शान्त, शीतल चन्द्र स्वभाव जैसे शीतल, वैसे परमशीतलस्वभाव ऐसा आत्मा, पूर्ण स्वभाव, एकरूप भाव, अभेदभाव में यह भेद मुझे नहीं है । आहाहा ! कहो, अब यहाँ

तो अभी धन्धा और व्यापार में... अभी गाया नहीं? 'सरवालो मांडजो' क्या जिन्दगी का योगफल? तुमने जिन्दगी में क्या किया? योगफल निकालना। आहाहा!

मैं.. ऐसा कहा न? परमस्वभाव, **परमभावस्वभाववाले को...** परमस्वभावभाववाले को अर्थात् जिसने दृष्टि में परमस्वभावभाव लिया, उसे - मुझे ये भेद मुझमें नहीं है। आहाहा! यहाँ तक जाना। इसके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होगा, सम्यग्ज्ञान नहीं होगा, (स्वरूप के) आचरण का आनन्द भी अभेद की दृष्टि के बिना नहीं होगा। आहाहा!

भाषा कैसी है? कि **शुद्धनिश्चयनय से...** शुद्धनिश्चय स्वभाव की-त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि से **परमभावस्वभाववाले को...** अर्थात् मुझे। मैं **परमभावस्वभाववाले को...** अर्थात् जिसने परमभावस्वभाव दृष्टि में लिया उसे, मुझे ये गुणस्थान और भेद हैं नहीं। आहाहा! अब यहाँ तो दया, दान, व्रत करो (तो) कल्याण होगा (-ऐसा लोग मानते हैं)। अरे! भाई! यह तो चौथे गुणस्थान में परमस्वभावभाववाले को।

चैतन्यदल वस्तु जो पूरी पड़ी है, सत् तत्त्व, आत्मतत्त्व, जो वस्तु का दल-तत्त्व है, उस परमस्वभावभाववाले को, परमभावस्वभाववाले को.. आहाहा! मेरा परमभावस्वभाववाले को, मुझे यह मार्गणा, जीवस्थान और गुणस्थान नहीं हैं। आहाहा! यहाँ तक जाए तब इसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी जिसका विषय नहीं। चौथा गुणस्थान, तेरहवाँ गुणस्थान भी जिसका विषय नहीं। आहाहा! जो दृष्टि पर के ऊपर और भेद के ऊपर और पर्याय के ऊपर है, उस दृष्टि की गुलाँट खाने पर परमभावस्वभाववाला मैं, ऐसा दृष्टि ने जब परमभावस्वभाव को पकड़ा, तब कहते हैं कि परमभावस्वभाववाले ऐसे मुझे ये भेद नहीं हैं। आहाहा! अब यहाँ तो विवाद (करे)। बाहर का विवाद। निमित्त से होता है और क्रमबद्ध नहीं और पर्याय में भी दया, दान के कषाय मन्दता के भाव करने से, सरागचारित्र करने से वीतरागचारित्र होगा। (ऐसा लोग मानते हैं)। आहाहा!

यहाँ तो (कहते हैं) दृष्टि के विषय में परमभावस्वभाववाला ऐसा मैं, उसे मेरी चारित्र की पर्याय के भेद भी उस मेरी चीज़ में नहीं हैं। आहाहा! आहाहा! है? **परमभाव-स्वभाववाले को...** अर्थात् कि ऐसे मुझे... ऐसे मुझे। कथन में कहना हो तो क्या करे? परमभावस्वभाव निधान, जिसके एक ज्ञानगुण में केवल (ज्ञान) की पर्यायें अनन्त-अनन्त पड़ी हैं, ऐसा एक ज्ञानगुण, क्षायिक समकित की पर्याय जो अनन्त-अनन्त हैं, ऐसा

एक श्रद्धागुण। आनन्द की पर्याय परमात्मा को अनन्त-अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, ऐसे अनन्त आनन्द की अनन्त पर्यायें जिसमें भरी हैं, ऐसे आनन्द में, ऐसे आनन्दादि गुण का स्वभाव, ऐसा परमभाव। आहाहा! ऐसे परमभावस्वभाववाले को... अर्थात् कि ऐसे मुझे, ऐसा। आहाहा! गजब काम है, प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

यहाँ तो बाहर की धमाल से मानो ऐसा किया.. यह किया.. यह किया.. मन्दिर बनाया और पच्चीस लाख का मन्दिर बनाया, पचास लाख का खर्च किया और उससे धर्म होगा। आहाहा! राग की मन्दता की हो तो पुण्य है, परन्तु वह पुण्य भी मेरे परमभावस्वभाववाले को नहीं है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक में रहा हुआ भगवान मेरा स्वरूप, परमभावस्वभाव, परमभावस्वभाव... आहाहा! ऐसे मुझे... ऐसे मुझे ये भेद नहीं हैं। आहाहा! उसका नाम पर से हटकर अभेद में गया, उसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण है। आहाहा!

अब दूसरी बात लेते हैं। मनुष्य और तिर्यचपर्याय की काया के,... नारकी और देव नहीं लिए। क्योंकि वह तो नारकी का शरीर तो... देव का शरीर अनुकूल.. अब यह तिर्यच और मनुष्य दो की बात ली है और वही स्वयं समकित पा सकते हैं। तिर्यच पाँचवाँ गुणस्थान पा सकते हैं, मनुष्य केवल (ज्ञान) पा सकते हैं। नारकी और देव तो चौथे गुणस्थान को पा सकते हैं। आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिए उनकी देह की बात नहीं ली। यहाँ तो मनुष्य और तिर्यचपर्याय की काया... यह शरीर, उसमें वयकृत विकार से... वयकृत विकार। शरीर की अवस्थारूपी वय। बालवय, युवावय, स्थविरवय, वृद्धवय, ऐसे (-परिवर्तन से) उत्पन्न होनेवाले बाल-युवा-स्थविर-वृद्धावस्थादिरूप अनेक स्थूल-कृश विविध भेद... आहाहा! शरीर की अवस्था बाल, युवक, वृद्ध तथा स्थविर। ये सब अवस्थाएँ मुझे नहीं हैं। आहाहा! मैं युवक नहीं, मैं वृद्ध नहीं, मैं बालक नहीं, मैं स्थविर नहीं। आहाहा!

ऐसे भेद शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से... शुद्धनिश्चय का जो अभिप्राय, त्रिकाली परम एकरूप स्वभावभाव के अभिप्राय से, बाल-युवक-वृद्ध अवस्था आदि मुझे नहीं हैं। आहाहा! २५-३० वर्ष की युवक अवस्था। पुष्ट शरीर हो, पाँच-पाँच चूरमे के लड्डू उड़ाता हो, अरबी के (भुजिया) साथ में ले। चले तो जमीन काँपे, जूते पहने हुए हों और... आहाहा! बापू! शरीर की अवस्था की दशा, वह प्रभु आत्मा की नहीं है। आहाहा!

भाई! वह तो जड़ की दशा है। वह वयकृत विकार है। बाल, युवक, वह सब वयकृत विकार है। स्वभाव में नहीं है। आहाहा! वहाँ जाना।

युवा अवस्था। चक्रवर्ती का पुत्र हो, तीर्थकर का पुत्र हो... आहाहा! जिसकी देव सेवा करते हों, उसकी देव भी सम्हाल करते हैं। आहाहा! ऐसा जो युवा शरीर, रूपवान, पहले संहननवाला.. परन्तु यह बाल-युवा-वृद्ध-स्थविर यह वयकृत अवस्था, शरीर की स्थिति / अवस्था है। वह मुझे नहीं है, मैं उसमें नहीं हूँ, मुझमें वह नहीं है। आहाहा! यह अन्तर में उतारना, बापू! यह अपूर्व बात है। आहाहा!

यह बाल अवस्था, युवा अवस्था, स्थविर... ५०-६०-७० वर्ष की उम्र में स्थिर हुआ। वृद्धावस्थारूप अनेक स्थूल... शरीर का स्थूल। कृश... पतला, मोटा, लट्ट। आहाहा! ऐसे विविध भेद शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से... मेरे सम्यग्दर्शन के अभिप्राय से... आहाहा! उसके विषय में जो अखण्ड परमात्मा है, उसमें मुझे ये अवस्थाएँ नहीं हैं। आहाहा! यौवन अवस्था विद्यमान चीज़ है, वह मेरी विद्यमान चीज़ में यह विद्यमान नहीं है। आहाहा! रूपवान शरीर हो, सुन्दर शरीर हो, सब अवयव कोमल हो, मुलायम हो, पतले हों, कहते हैं कि यह सब अवस्थाएँ स्थूल और कृश, लट्ट जैसी हो या पतली हो (वह मुझे नहीं है)। आहाहा! लोग नहीं कहते कि मेरी काठी पतली है, शरीर पतला है, मेरा शरीर दलदार है-पुष्ट है। अरे! प्रभु! वह तो जड़ की दशा है न, वह आत्मा में कहाँ से आयी? आत्मा उस दशा को स्पर्श भी नहीं करता न? आहाहा! युवा-बाल-वृद्ध अवस्था को आत्मा स्पर्श भी नहीं करता न। आहाहा! और युवक की इन्द्रियाँ जो पुष्ट हों, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता और आत्मा से इन्द्रियों की पुष्टि नहीं होती। आहाहा! वह तो जड़ की दशा है। आहाहा! यह लिंग आदि कठिन हो या शिथिल पड़े या पतला पड़े या नपुंसकता हो, वह सब जड़ की दशा है। आहाहा! मुझे नहीं है।

बाह्य में कोई मनुष्य नपुंसक हो, तो भी वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। नारकी तो सब नपुंसक ही हैं। उनकी बात नहीं ली है। देव में नपुंसक है नहीं, वहाँ सब देवी और देव स्त्री और पुरुष ही हैं। यहाँ तिर्यच और मनुष्य में वयकृत भेद पड़ते हैं। बाल, वृद्ध, युवक, स्थविर। आहाहा! ये सब भेद शुद्धनिश्चय मेरा प्रभु स्वभाव, परमस्वभावभाव, ऐसे मुझे ये (भेद) हैं नहीं। आहाहा! पश्चात्...

सत्ता,... मेरी अवबोध,... ज्ञान, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में... आहाहा! लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले... आहाहा! यहाँ तो चौथे गुणस्थान से.. आहाहा! अनुभूति ली है न? सत्ता, अवबोध, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व... ऐसा जो मेरा विशिष्ट आत्मतत्त्व, जो कि मैं आत्मतत्त्व की अनुभूति में हूँ। आहाहा! उसमें शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से... शुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन है, उसके बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं। मोह और सकल राग मेरे स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

देखो! यह प्रतिक्रमण। प्रति-वापस होना, विमुख होना। आहाहा! विमुख होकर, है वहाँ एकाग्र होना। सूक्ष्म बातें, भाई! वीतरागधर्म बहुत अलौकिक है। लोगों ने बाहर से मनवाकर चला लिया है। व्रत किये, उपवास किये, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, इसलिए हो गया धर्म। वह धर्म नहीं है। आहाहा! वह शरीर से क्रिया नहीं हुई, वह मैंने नहीं किया, इसलिए नहीं हुई। आहाहा! और मुझे राग हुआ, इसलिए शरीर की विषय की क्रिया हुई, यह भी झूठ बात है। आहाहा! और मैंने विषय का राग नहीं किया, इसलिए शरीर की विषय की क्रिया नहीं हुई, यह भी झूठ बात है। आहाहा! वह शरीर की अवस्था तो शरीर के कारण से हुई है। वह (तो) मुझमें नहीं, परन्तु मुझमें मोह और राग-द्वेष, वह भी नहीं है। आहाहा! कठिन पड़े।

यहाँ तो ऐसा कहा न? सुख की अनुभूति में लीन... आहाहा! मेरा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, अकेला ज्ञान और आनन्द का कन्द-दल, अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द का दल, ध्रुवसत्त्व, तत्त्व में लीन। आहाहा! ऐसे मुझे, विशिष्ट आत्मतत्त्व... ऐसा जो है, उसे ग्रहण करनेवाला जो शुद्धद्रव्यार्थिकनय है। ऐसा जो तत्त्व है, उसे ग्रहण करनेवाला जो शुद्ध द्रव्यार्थिक—शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, वह उसे पकड़ता है। उसके बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं। आहाहा! भगवान की पूजा और दया का भाव शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से मुझमें नहीं है अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिकनय की दृष्टि का बल आने से शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की जो दृष्टि होने से मुझमें मोह और राग-द्वेष है नहीं। आहाहा! पर्याय में है, वे जाननेयोग्य हैं। आदरनेयोग्य तो यह चीज़ है। आहाहा!

अब (कहते हैं) सहज निश्चयनय से... स्वाभाविक निश्चयदृष्टि से (१) सदा

निरावरणस्वरूप,... मेरा प्रभु त्रिकाली निरावरण है। सकल निरावरण है। वस्तु को कभी आवरण हुआ नहीं। आहाहा! ३२० गाथा में आया है (कि) सकल निरावरण। आहाहा! वस्तु है, तत्त्व है, ज्ञायकभाव से भरपूर, आनन्द से भरपूर पदार्थ है, उसे आवरण कैसा? आहाहा! वह तो पर्याय और राग का सम्बन्ध और आवरण पर्याय में कहलाता है। वस्तु में आवरण-फावरण है नहीं। वस्तु को आवरण होवे तो वस्तु, अवस्तु हो जाए। समझ में आया? वस्तु है, वह यदि ढँक जाए, तब तो अवस्तु हो जाए। आहाहा!

सहज निश्चय के स्वभाव के कारण (१) सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप,... मैं। मैं सदा सहजचैतन्य के निश्चयनय से (१) सदा निरावरण-स्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप, (३) सहज चित्शक्तिमय,... आहाहा! स्वाभाविक चित्शक्ति। आहाहा! यह लिया है। स्वाभाविक चित्शक्ति। स्वाभाविक ज्ञान का दल। स्वाभाविक ज्ञान का दल। यह त्रिकाल जो स्वाभाविक ज्ञान का दल और (४) सहजदर्शन के स्फुरण से... सहजदर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति... आहाहा! (-जिसकी मूर्ति...) सहजस्वरूप। (स्वरूप सहजदर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण है...) पूर्ण है, प्रगट प्रगट है, व्यक्त है। सम्पूर्ण दर्शन प्रगट है, व्यक्त है - परिपूर्ण भरा हुआ तत्त्व पूरा। आहाहा!

और (५) स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... चारित्र लेते हैं। स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यातचारित्रवाले... मेरा स्वरूप तो चारित्र, यथार्थस्वरूप चारित्र त्रिकाल, त्रिकाल यथाख्यातचारित्रस्वरूप मेरा स्वरूप है। आहाहा! सहज निरावरण, सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचित्शक्ति और सहजयथाख्यातचारित्र। आहाहा! यह प्रगट पर्याय की बात नहीं है। वस्तुस्वरूप अकषायस्वरूप है-वस्तुस्वरूप वीतरागस्वरूप है। यह वीतरागस्वरूप है, वह यथाख्यातचारित्रस्वरूप है। आहाहा! पर्याय में जो यथाख्यात प्रगट होता है, वह यथाख्यातचारित्र, स्वभाव में से प्रगट होता है। यथाख्यातचारित्रस्वरूप मैं त्रिकाल हूँ। आहाहा!

ऐसी बात बाहर आवे तो कितने ही कहते हैं, यह तो सोनगढ़ की बात है। व्यवहार की बात आवे तो यह अपनी है। अरे! भगवान! सोनगढ़ अर्थात् सोना। उसे जंग नहीं होती। इसी प्रकार भगवान त्रिलोक के नाथ को जंग और आवरण कैसा? प्रभु! आहाहा! उस लोहे को जंग होती है, सोने को नहीं होती। इसी प्रकार स्वर्ण समान भगवान यथाख्यातचारित्र

सम्पन्न प्रभु... आहाहा! त्रिकाल। आहाहा! कठिन पड़े परन्तु वस्तु तो ऐसी ही है, भाई! उसे किसी प्रकार हल्की, शिथिल और विकारी तथा अल्पज्ञतावाली मानना, वह सब विपरीतता है। आहाहा! समझ में आया ?

सहज... सब लिया। शुद्ध निश्चयनय से (१) सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप, (३) सहज चित्शक्तिमय,... वीर्यवाला चित्शक्ति। दर्शनरूप। परिपूर्ण दर्शन की स्फुरणा और सहज अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यातचारित्रवाले... आहाहा! तत्त्व जो है वस्तु आत्मा, वह यथाख्यातचारित्र के स्वरूप से भरपूर है। आहाहा! यदि ऐसा स्वरूप न हो तो यथाख्यात (चारित्र) पर्याय में आयेगा कहाँ से ? बाहर से आता है ? आहाहा! वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान है। वह ऐसा है तो पर्याय में उसके आश्रय से वीतरागता आती है। आहाहा! पूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान है तो उसके आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। पूर्ण दर्शनस्वरूप है तो उसके आश्रय से पूर्ण दर्शन प्रगट होता है। पूर्ण वीर्य प्रभुस्वरूप है, पूर्ण वीर्यस्वरूप है तो अनन्त वीर्य की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग! यह तो निश्चय की बात है, निश्चय की बात है, परन्तु निश्चय की अर्थात् सत्य बात है। ऐसा कहकर निकाल डालता है (कि) यह तो निश्चय की बात है और बहुत तो ऐसा हो गया है, यह तो सोनगढ़ की बात है। निश्चय की सत्य बात, वह सोनगढ़ की और अपनी व्यवहार की बात, खोटी वह अपनी।

मुमुक्षु : ऐसा भाग करने में क्या दिक्कत है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिक्कत उसे स्वयं को है। उसे खतौना है कि हम भी यह व्यवहार करते-करते धर्मी हैं, ऐसा उन्हें कहना है। हम शुभभाव में रहे होने पर भी हमारे धर्म है। हम साधन करते हैं। आहाहा! क्या हो ? प्रभु! भगवान! तू पूर्णानन्द प्रभु है, नाथ! तुझे ऐसी बुद्धि प्रगटो और पूर्णानन्द को प्राप्त हो। है, ऐसा हो जा। ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। आहाहा! कोई प्राणी विरोध करे और विरोध से हल्के में जाये, वह भाव धर्मी को नहीं होता। आहाहा! चाहे जितना विरोध हो परन्तु प्रभु! तू तो ऐसा है न, नाथ! वह है, उसमें आ न! तो है, उसमें आ तो है ऐसी दशा तुझे प्रगट होगी। आहाहा! ऐसा है। हीरालालजी नहीं आये ? मुम्बई गये होंगे। आहाहा! बहुत सरस बात। आहाहा!

स्वाभाविक निश्चयस्वरूप से, सत्यस्वरूप से यह सहज चित्शक्तिमय,

सहजज्ञानमय, सहजचारित्रमय,... आहाहा! सहजवीर्यमय, सहजदर्शनमय स्वभावस्वरूप। स्वभाव को कोई संख्या, उसे किसी क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। बड़ा क्षेत्र हो तो बड़ा, ऐसा नहीं है। आहाहा! निगोद का जीव एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त रहे हैं, वे भी एक-एक आत्मा ऐसे हैं। आहाहा! सदा ही कहा न? सदा निरावरण कहा है न? कि कभी ऐसा है? आहाहा!

प्रभु! कहते हैं, निगोद के जीव, जिनका एक श्वास आयुष्य समान... परन्तु भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं और वह भिन्न तत्त्व परिपूर्ण ऐसा है। उसमें भी ऐसा ही है। पर्याय में अन्तर है; वस्तु तो ऐसी ही है। आहाहा! निगोद में हो या अभव्य हो, लो न! आहाहा! परन्तु उसका आत्मस्वभाव तो ऐसा ही है। वह पर्याय में प्रगट न हो, उसकी योग्यता न हो, वह अलग वस्तु है। तथापि अभव्य की वस्तु तो ऐसी ही है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आहाहा! वह अभव्य कोई गुण नहीं है, अभव्य पर्याय की लायकात और योग्यता है। भव्य भी ऐसा कोई गुण नहीं है। गुण हो, तब तो त्रिकाल रहे। भव्यता गुण होवे तो त्रिकाल रहे, तो भव्यता कभी जाए ही नहीं और वह भव्यपना, वह तो पर्याय की योग्यता है। यहाँ तो कहते हैं मैं तो ऐसा हूँ, उसमें तो भव्यपना भी मुझमें नहीं है। ऐई! आहाहा! यह चौदह मार्गणा में आ गया न? चौदह मार्गणा। भव्य-अभव्य मैं नहीं हूँ। आहाहा!

अब यहाँ तो अभी ऐसा कहते हैं कि अपन भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी? वह सर्वज्ञ जाने। अपने को खबर नहीं पड़ती। अरे रे! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! यह शोभा नहीं देता, नाथ! महाप्रभु चैतन्य का, आनन्द का सागर है, उसे तू अभी भव्य-अभव्य हैं या नहीं, यह खबर नहीं-ऐसा तू कहे; और काललब्धि पकी है या नहीं, यह केवली जाने। तू क्या कहना चाहता है? भाई! आहाहा! ऐसा कहते हैं। एक ज्ञानमति है न? दिल्ली में पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप मनाया है, वहाँ हस्तिनापुर में, मेरुपर्वत बनाया है। वह ऐसा कहती है समाचार पत्र में आया था। हम भव्य हैं या अभव्य हैं? और काललब्धि पकी, नहीं पकी - यह सर्वज्ञ जाने। अर र! प्रभु! प्रभु! तूने यह क्या बात की? ऐसी बुद्धि तुझे कहाँ से आयी प्रभु? आहाहा! भव्य और अभव्य मैं नहीं हूँ तो त्रिकाली निरावरण अखण्डानन्द प्रभु हूँ। आहाहा! है?

यथाख्यात चारित्रवाले ऐसे मुझे... आचार्य स्वयं कहते हैं। ऐसे मुझे... पंचम

काल के छद्मस्थ मुनि... आहाहा! भगवान के (निर्वाण के दो) हजार वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य पुकारते हैं। आहाहा! ये पद्मप्रभमलधारिदेव (पुकार करते हैं)। ऐसे मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं। आहाहा! मुझे नहीं है, ऐसा कहते हैं। भगवान स्वयं नहीं, केवली नहीं, तो भी स्वयं कहते हैं। आहाहा! ये पंचम काल के मुनि (कहते हैं)। आहाहा! वहाँ काल कहाँ है? वह तो त्रिकाल निरावरण प्रभु है। स्वाभाविक चित्शक्ति, स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक वीर्य, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र, वह जिसका स्वभाव... जिसका स्वभाव है, उसे मर्यादा क्या? जिसका स्वभाव है, वह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहाहा! अनन्त (स्वभाव) जिसका है, जिसकी प्रत्येक गुण की शक्ति का सामर्थ्य ही अनन्त है। ऐसे गुण का धारक ऐसा मैं। आहाहा!

मुझे.. है न? सबमें ऐसा आया। उसमें भी ऐसा आया था, नहीं? मुझे देवपर्याय नहीं, ऐसा आया था न? देखो न! मुझे भेद नहीं है, मुझे मनुष्य-तिर्यच-वयकृत भेद नहीं है, मुझे यह सकल मोह-राग-द्वेष नहीं है। आहाहा! पंचम काल के जीव.. यह पंचम काल का जीव ही नहीं है। आहाहा! इसे कोई काल लागू पड़ता ही नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा.. दो हजार वर्ष पहले... ये तो बाद में हुए, आठ सौ वर्ष हुए, ये पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। कुन्दकुन्दाचार्य के पाठ में है, उसमें से कहा है न? पंचरत्न। गाथा में... है। णाहं णारयभावा है न? मुझे नहीं नरकभाव, तिर्यचभाव नहीं। मुझे नहीं मगगणठाणो णाहं गुणठाण ये कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! मेरा प्रभु स्वभाव से भरपूर त्रिकाल है। उसमें यह सब है नहीं। आहाहा! यह कहीं बातों से बड़ा हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसके अन्तर के वीर्य का काम, अन्तर के परमस्वभावभाव को स्वीकार करे.. आहाहा! मैं यह हूँ, मुझे यह नहीं। मैं यह हूँ, मुझे यह नहीं। आहाहा! अस्ति-नास्ति, अनेकान्त। आहाहा!

भगवान है न सब.. आहाहा! अमृत के सागर से भरपूर प्रभु है न, भाई! अल्पज्ञ और विकार, वह तेरा स्वरूप है ही नहीं। तेरे स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! देह भी तेरा स्वरूप नहीं, राग तेरा स्वरूप नहीं, भेद भी तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! ध्रुव भगवान पूर्णानन्द का नाथ, ज्ञान का सागर, आनन्द का सागर, यथाख्यातचारित्र का पिण्ड प्रभु, आहाहा! अरे! परन्तु यथाख्यातचारित्र तो ग्यारहवें, बारहवें (गुणस्थान) में प्रगट होता है। वह तो पर्याय

की बात है। वह बात यहाँ कहाँ है? यहाँ तो त्रिकाल (की बात है)। यथाप्रसिद्ध—जैसा उसका स्वरूप है, वैसा चारित्रवाला वह स्वयं भगवान है, त्रिकाल है। वह निगोद में भी ऐसा है, परन्तु उसे खबर नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, मैं ऐसा हूँ। आहाहा! ऐसे सब भगवान ऐसे हैं। आहाहा! जैसा मैं हूँ, वैसे ही दूसरे सब आत्मा को मैं मानता हूँ। समस्त आत्माएँ परिपूर्ण प्रभु हैं। आहाहा! शरीर को न देख, पर्याय को न देख, राग को न देख, मेरा प्रभु पूर्ण भगवान से भरपूर है न! भग अर्थात् लक्ष्मी से भरपूर। पूर्ण लक्ष्मी से भरपूर प्रभु है। आहाहा! ऐसे मुझे.. आहाहा! है? नहीं, मुझे नहीं है। आहाहा! ये क्रोध-मान-माया-लोभ मुझे नहीं है।

मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु... संसार का हेतु जो क्रोध-मान-माया-लोभ-कषाय, जो संसार का लाभ, मेरे स्वरूप में है ही नहीं। यहाँ तो आनन्द के लाभवाला भगवान मैं हूँ। आहाहा! आत्मा को मानना, वह कहीं साधारण बात नहीं है। ऐसे आत्मा को मानना। ऐसा आत्मा... आत्मा अर्थात् आत्मा ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसे स्वभाववाला भरपूर, प्रत्येक समय में परिपूर्ण प्रभु! सहज निरावरण चैतन्यशक्ति, ज्ञान, दर्शन और यथाख्यातचारित्र से परिपूर्ण प्रभु, ऐसे मुझे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं है।

अरे...! प्रभु! आप पंचम काल के साधु और भगवान के बाद १५०० वर्ष में हुए। आहाहा! हजार वर्ष, तो यह तुम्हें ऐसी कहाँ से खबर पड़ी? आहाहा! यह हम हैं न, बापू! हम हैं, उसकी खबर पड़ी है। आहाहा! परन्तु आप भगवान को पूछने गये नहीं, कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे परन्तु ये तो समकिति... आहाहा! प्रभु! आप केवली परमात्मा विराजते हैं, वहाँ गये नहीं और पंचम काल के आप साधु, ऐसी बातें करो। हम भगवान के पास गये हैं। हमारा भगवान जो है, वह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण सहज निरावरण, पूर्ण शान्ति और पूर्ण यथाख्यात शान्ति से भरपूर, चारित्र से भरपूर है। आहाहा! ऐसे मुझे... यह मैं हूँ, ऐसे मुझे ये क्रोध-मान-माया-लोभ मुझे नहीं है। आहाहा! हो गया केवलज्ञान? क्रोध-मान-माया (नहीं, ऐसा कहते हो), सुन न अब। केवलज्ञान हुआ, वह तो पर्याय है। यहाँ तो केवलज्ञान, वह पर्याय मैं नहीं; मैं तो महाप्रभु हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान का जनक हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान का पिता । केवलज्ञान वह प्रजा है । उस प्रजा का तो यह पिता है । आहाहा ! पर्याय है, प्रजा अर्थात् पर्याय । आहाहा !

वस्तु का स्वभाव ऐसा ही त्रिकाल है । आहाहा ! यह गाथा में नहीं आया ? 'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए' आता है न, समयसार की तीसरी गाथा में । 'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए' सर्वत्र लोक में सुन्दर भगवान् पूर्णानन्द से त्रिकाल भरपूर है । उसे राग का और बन्ध का सम्बन्ध कैसा, वह तो विसंवाद-झगड़ा खड़ा किया । आहाहा ! तीसरी गाथा से शुरु किया 'एयत्तणिच्छयगदो समओ' पदार्थ 'सव्वत्थ' सर्वत्र । श्रीमद् ने कहा, सत् सत् है । सत् सर्वत्र है । सत् सर्वत्र है । सत् सरल है । ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं । सत्, सत् है । सत् सर्वत्र है, सत् सर्वत्र है, सत् सरल है । सत् समझानेवाले गुरु चाहिए, इतनी बात ली है । आहाहा ! बहुत सरस बात ! गजब बात है । आहाहा !

प्रभु ! तू ऐसा है । यह विशेष अतिशय करके बात नहीं होती है । आत्मा कहते हैं, वह आत्मा ऐसा ही है । नौ तत्त्व में आत्मा कहते हैं, वह आत्मा ऐसा ही है । त्रिकाल आत्मा ऐसा है । चाहे जिस पर्याय में हो परन्तु वस्तु तो त्रिकाल ऐसी ही है । आहाहा ! उसकी दृष्टि करना, उसका आलम्बन लेना । वह निर्जरा अधिकार में आता है न ? ज्ञान का अवलम्बन लेने से ऐसा होता है, फिर ऐसे भ्रान्ति टलती है । आहाहा ! भगवान् ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रभु ! उसका आश्रय लेने से, अवलम्बन करने से भ्रान्ति मिटती है, स्वरूप की प्राप्ति होती है । आहाहा ! निर्जरा अधिकार में है । कर्म टलते हैं और यह सब बहुत बोल लिए हैं । आहाहा ! उसमें होवे (तो) वे टले कहाँ से ? उसमें वे नहीं हैं । आहाहा ! उसमें कर्म तो नहीं परन्तु अल्पज्ञ पर्याय उसमें नहीं । आहाहा ! निर्जरा अधिकार में लिया है न ? भाई ! मति-श्रुतज्ञान वह बढ़ता जाता है, वह सामान्य को अभिनन्दन करता है । तोड़ता नहीं है । आहाहा ! है न ? मति-श्रुत की शुद्धि बढ़ती है, वह भेद नहीं करता । वह अभेद का अभिनन्दन करता है । सामान्य में एकाकार विशेष होता है । आहाहा ! निर्जरा अधिकार में है ।

यहाँ तो मुझे नहीं । प्रभु ! तुम्हें तो अवधिज्ञान नहीं न, मनःपर्ययज्ञान नहीं, केवलज्ञान नहीं । पंचम काल के साधु, मति और श्रुतज्ञान दो हैं । बापू ! इन मति-श्रुतज्ञान में ही यह आत्मा ऐसा ज्ञात होता है । आहाहा ! अवधि और मनःपर्यय की आवश्यकता नहीं है ।

क्योंकि वह साधक नहीं है। मति-श्रुत साधक है और साध्य केवलज्ञान है, ध्येय द्रव्य है। ध्येय परिपूर्ण हूँ, वह द्रव्य ध्येय है। साधक है वह मति-श्रुतज्ञान है। साध्य है, वह उपेय है, वह सिद्ध है। उपाय है, वह साधन है। ध्येय है, वह द्रव्य त्रिकाली - ऐसा है। आहाहा! अरे! भगवान का विरह पड़ा। बाद में लोगों ने आत्मा को किस रीति से कल्पित कर डाला और सत्य था, उसे असत्य कर डाला तथा असत्य को सत्य सिद्ध कर दिया। आहाहा! यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा से होता है, (ऐसा मान लिया)।

निर्जरा अधिकार में कहा, कोई जिन-आज्ञा के बाहर करे... तो भी कुछ नहीं हुआ और जिन-आज्ञा में कहे हुए व्रतादि को करे तो भी मिथ्यादृष्टि है। आता है न? आहाहा! यह जो निश्चय वस्तु है, पूर्ण स्वभाव से भरपूर, ज्ञान से परिपूर्ण, प्रभुता से परिपूर्ण, दर्शन से परिपूर्ण, शान्ति से परिपूर्ण, चारित्र से परिपूर्ण, वीतरागता से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण, जीवत्वशक्ति से परिपूर्ण, कर्ताशक्ति से परिपूर्ण, कर्मशक्ति / कार्यशक्ति से परिपूर्ण... आहाहा! ऐसे परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर मुझे, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं है। आहाहा! हो गये केवली? सुन न अब, केवली तो पर्याय है। हो गया भगवान? मैं भगवान पूर्णानन्द का नाथ भगवानस्वरूप हूँ, वह मैं हूँ। यह पर्याय के भेद-फेद वह मैं नहीं हूँ। यह प्रतिक्रमण है। आहाहा!

इतनी बात करके अब कहते हैं कि अब, इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों से (भेदों से) भरी हुई विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ,... चौदह मार्गणा, चौदह जीवस्थान, चौदह गुणस्थान, क्रोध, मान, माया, लोभ... आहाहा! और काया वयकृत आदि भेद, उनका मैं कर्ता नहीं। आहाहा! तब कौन करता है? सवेरे भाई ने प्रश्न किया था न? राग, राग को करे; मैं कर्ता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! प्रभु का विरह पड़ा और प्रभु का मार्ग रह गया वाणी में। शास्त्र में वाणी रह गयी, वाणी में भाव भरे हुए रहे। उन भाव से भरा हुआ आत्मा, वह रहा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसे भेदों का मैं कर्ता नहीं, वह कराता नहीं, मैं उनका करानेवाला नहीं। चौदह गुणस्थान का कर्ता नहीं, चौदह जीवस्थान का कर्ता नहीं, चौदह... आहाहा! मार्गणास्थान का कर्ता नहीं। ओहोहो!

पुद्गलकर्मरूप कर्ता का (-विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म उनका)

अनुमोदक नहीं... कर्ता सिद्ध किया वापस। (विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म...)
वह तो सब कर्म के निमित्त से सब भेद आदि होते हैं। मेरे स्वभाव में है नहीं। उनका
अनुमोदक नहीं... भले वे निमित्त के आधीन ऐसे हों, परन्तु मैं उनका अनुमोदक नहीं हूँ।
विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-७७, गाथा-७७ से ८१, सोमवार, कार्तिक शुक्ल ९, दिनांक २९-१०-१९७९

आहाहा! कारयिता नहीं। उसका करनेवाला नहीं, करानेवाला नहीं। तथा
पुद्गलकर्मरूप कर्ता का... आहाहा! ये चौदह मार्गणास्थान, चौदह जीवस्थान, चौदह
गुणस्थान, ये भी पुद्गलकर्मरूप कर्ता का अनुमोदक नहीं... बहुत सूक्ष्म बात। (ऐसा
वर्णन किया जाता है)।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता,... आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन करना हो, धर्म की
पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान चढ़ना हो तो उसे अभेद चैतन्यस्वरूप-जिसमें नारकी
की गति की पर्याय का भी मैं कर्ता नहीं। ऐसा करानेवाला नहीं, तथा अनुमोदक नहीं।
आहाहा! है ? नारकी की पर्याय का मैं कर्ता नहीं। गति, हों! गति। शरीर नहीं। नारकी की
पर्याय की जो गति है, उसका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं तथा उसका मैं अनुमोदक नहीं।
क्योंकि वे सब पुद्गल के कार्य के भेद हैं। आहाहा!

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप... भगवान आत्मा स्वाभाविक चैतन्य का विलास
ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से परिपूर्ण से भरपूर प्रभु के चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा
को ही भाता हूँ। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म। बहुत कठिन बात।
जगत को कहाँ से कहाँ...! यह नारक की बात की है। फिर कहेंगे। सहज चैतन्य के
विलासस्वरूप... भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु, ऐसा जो आत्मा है, उसे मैं भाता
हूँ। मेरी पर्याय में उसे मैं भाता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव करता हूँ। भाता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ। त्रिकाली
सहज चैतन्य विलास ऐसा भगवान आत्मा, उसे मैं अनुभव करता हूँ, भाता हूँ, उसकी ओर

की दृष्टि से मेरी अनुभूति की परिणति प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी बातें। अनन्त काल से भटकता है। चौरासी के अवतार (में भटकता है), उसके मिटने का उपाय तो यह एक है। जिसमें कर्म और कर्म के कार्य तथा भेद जिसमें नहीं है, ऐसा जो सहज चैतन्य विलास प्रभु। निर्जरा अधिकार में आ गया है कि उतना सत्य है कि जितना यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप है, उतना ही सत्य है। आहाहा! उसकी रुचि करना, उसकी रति करना, उसका प्रेम करना। आहाहा!

दुनिया के सब भावों की ओर से उदास होकर अपने में भी भेदरूप जो दशा है, उस ओर से भी उदास होकर... आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान प्रभु के विलास को मैं भाता हूँ। वर्तमान में उसकी अनुभूति को मैं करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चैतन्य के विलास का अनुभव करता हूँ। वह धर्म और वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ऐसी बातें! अब कहाँ पहुँचना?

तथा मैं तिर्यचपर्याय को नहीं करता,... तिर्यच की पर्याय एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, वह कर्म का कार्य है। मैं तिर्यचपर्याय को नहीं करता। आहाहा! नारकी का जीव हो, समकित्ती, नारक में भी समकित्ती जीव होते हैं, वे कहते हैं कि नरक की पर्याय को मैं नहीं करता, कराता नहीं, मेरा अनुमोदन नहीं। मैं तो चैतन्य विलास की भावना में अनुभव करता हूँ। वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसा कठिन। यह प्रतिक्रमण-निश्चयप्रतिक्रमण। व्यवहार प्रतिक्रमण तो विकल्प और राग है। वह आत्मा के स्वरूप में नहीं है। आहाहा!

तिर्यच में रहा हुआ समकित्ती जीव। तिर्यच-पशु में सिंह और बाघ और मच्छ। हजार योजन का मच्छ समकित्ती है। वह कहता (मानता) है कि मैं तिर्यच पर्याय को नहीं करता। आहाहा! तिर्यच गति को मैं नहीं करता, नहीं कराता, वह गति जो कर्म के कारण हुई, उसका अनुमोदन नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जन्म-मरण मिटाने की विधि, बापू! बहुत सूक्ष्म मार्ग है। आहाहा! अभी तो मुश्किल हो पड़ी है। बाहर में धमाधम और बाहर में सब मान बैठे हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि तिर्यच की पर्याय में समकित्ती जो है, वह कहता है कि मैं इस तिर्यच की पर्याय को करता नहीं, कराता नहीं, अनुमोदक नहीं। चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। आहाहा! चैतन्यस्वरूप जो भगवान आत्मा, ज्ञानस्वरूपी प्रभु,

आनन्दस्वरूपी प्रभु की भावना की एकाग्रता को मैं भाता हूँ। आहाहा! इसका नाम मोक्ष का मार्ग, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण है। पर से हटकर अन्दर चैतन्य के विलास की क्रीड़ा और आनन्द का अनुभव, वह निश्चय प्रतिक्रमण है। आहाहा! इस (तिर्यच) पर्याय को करता नहीं। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। अब मनुष्य आया।

मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,... आहाहा! शरीर नहीं। मनुष्य की गति की पर्याय जो उदयभाव है, उसे मैं नहीं करता। उस मनुष्य की गति की पर्याय को मैं नहीं कराता तथा उस कर्म से हुई मनुष्य की गति का मैं अनुमोदन (करता) नहीं। ऐसा मार्ग।

पहले निर्जरा अधिकार में आ गया है। उतना ही सत्य है कि जितना ज्ञान है, वह आत्मा; उतना ही कल्याण है कि जितना ज्ञान है, उतना आत्मा; उतना ही अनुभवनीय है कि जितना यह ज्ञानस्वभाव है, उतना ही अनुभवनीय है, वह आत्मा। आहाहा! अरे रे! निवृत्ति कहाँ है? फुर्सत कहाँ है? परिभ्रमण के कारण (फुर्सत नहीं है)। देह की स्थिति तो अल्प काल है। यह स्थिति तो समाप्त हो जाएगी। आत्मा तो अनादि-अनन्त है।

अब कहते हैं कि अनादि-अनन्त ऐसा जो मैं, वह मेरा चैतन्यस्वभाव, उसके विलास की भावना में मैं हूँ। आहाहा! राग नहीं और यह गति नहीं। लोग कहे न कि मनुष्यगति होवे तो धर्म होता है। आहाहा! मनुष्यगति होवे तो केवलज्ञान होता है। यहाँ इनकार करते हैं, भाई! वह गति ही तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! अन्दर चैतन्य का चौका जैसे मैसूर का चौका होता है न? वैसे भगवान आनन्द और ज्ञान का चौका अन्तरदल, आनन्ददल पड़ा है। नित्यानन्द प्रभु, चैतन्य के स्वभाव से भरपूर, आनन्द के स्वभाव से भरपूर, प्रभुता के स्वभाव से भरपूर प्रभु की भावना में मैं मनुष्य की गति की पर्याय को अनुमोदन नहीं करता कि मनुष्य की गति मिली तो मुझे ठीक हुआ। आहाहा! कठिन काम है।

सवेरे समाधिशतक में आया था। मैं दूसरे को उपदेश दूँ और उपदेश सुनूँ... आहाहा! दोनों उन्मत्तता है, दोनों विकल्प है। कठिन बात है, बापू! जन्म-मरणरहित की बात, परमात्मा की; जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं होती। आहाहा! कहते हैं कि मैं आत्मा उपदेश सुनूँ या उपदेश करूँ; यह मेरे चीज निर्विकल्प है, उसमें यह विकल्प है, वह उन्माद है। आहाहा! सवेरे आया था समाधिशतक में? सवेरे आया था।

आहाहा! मैं दूसरों को उपदेश करूँ, ऐसा एक विकल्प है और मैं उपदेश सुनूँ, यह भी एक विकल्प-राग है।

मुमुक्षु : यह तो चारित्र का राग है। श्रद्धा की कहाँ बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग विकल्प है, परन्तु इससे लाभ माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। भले चारित्रदोष है, परन्तु सुनने के विकल्प से मुझे ज्ञान होगा और सुनाने के लिए मैं दूसरों को सुनाऊँ, इससे दूसरे को ज्ञान होगा, (यह) मिथ्यात्व है। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

बीस-बीस वर्ष के, बीस-पच्चीस वर्ष के युवक। ऐसे अनजाने एकदम झट मरते हैं और फिर कहाँ (अवतरित होते हैं)। कल सड़क पर दो कुत्ते मर गये, भाई! इस सड़क पर। रविवार था न! बाहर जाते हैं न? ऐसे जवान कुत्ते, परन्तु ट्रक की चपेट आयी होगी। मरे हुए दो पड़े थे। आहाहा! देखो! यह अवतार! वापस उसे मरकर ढोर में जाने का हो। बेचारा बहुत माँस आदि न खाता हो तो नरक न हो। बाकी मनुष्य, देव तो होता ही नहीं। आहाहा! यह तिर्यच का अवतार और फिर मरकर वापस कहीं गिलहरी, कौआ या कुत्ते में अवतरित हो। आहाहा! ऐसे अवतार कर-करके घानी में पिल गया है। वह दुःखी है, भाई! आहाहा! पैसेवाले दुःखी, राजा दुःखी, रंक दुःखी, देव दुःखी।

भगवान आत्मा में मनुष्य की पर्याय मिली, वह भी मेरा कर्तव्य नहीं है, मेरा कार्य नहीं है। आहाहा! मुझे वह मिली, वह ठीक है—ऐसा अनुमोदन करनेवाला नहीं कि मनुष्यपना मिला, वह मुझे सुनने को मिलेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू!

मुमुक्षु : पुण्य होवे तो सुनने को मिले...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने को मिले तो उससे क्या हुआ? इससे उसके आत्मा को क्या हुआ? आत्मा आनन्दमूर्ति भगवान के ओर की दृष्टि बिना जितना सुनने आदि का करे, वह सब विकल्प है। आहाहा! यह श्लोक समाधिशतक में आया है। 'देह से आत्मा भिन्न है, ऐसा कहे, बोले, सुने, उससे क्या है?' आहाहा! सवरे श्लोक आया था। समाधिशतक और इष्टोपदेश। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मैं नहीं, कहते हैं। यह सुनना और सुनाना, वह भी एक विकल्प है, वह उन्मत्तता है। आहाहा! क्योंकि प्रभु आत्मा में वह विकल्प है ही नहीं, वह तो निर्विकल्प वीतरागमूर्ति प्रभु है। आहाहा! तेरा उत्साह पर में जाता है और पर में स्व के उत्साह में तू अटक गया है। आहाहा! जो स्व में उत्साह से जाना चाहिए, उल्लसित वीर्य से अन्दर में जाना चाहिए। आहाहा! उल्लास के वीर्य से अन्दर में ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा में जाना चाहिए, उसके बदले यह मनुष्यपना मिला, वह ठीक है, सुनने को मिला वह ठीक है, कहते हैं यह सब सत्य का खून करनेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु उपदेश बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुरु उपदेश... यह समाधिशतक में आया था। यह दोनों में आया है। इष्टोपदेश और समाधिशतक में आया था। स्वयं गुरु है, ऐसा आया था। सवेरे आया था? परन्तु ध्यान रखे तो... गुरु स्वयं है। स्वयं अपने को चैतन्यविलासरूपी अनुभव करे, वह गुरु स्वयं है। आहाहा! उसमें आया था। समाधिशतक में और इष्टोपदेश दोनों में आया है। आहाहा!

यहाँ तो निरालम्बी भगवान अन्दर, जिसे किसी का अवलम्बन ही नहीं, ऐसा चैतन्य विलासी भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वरूप के विलास को मैं तो अनुभव करता हूँ और भाता हूँ। बाकी दूसरी कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! पैसा, स्त्री-कुटुम्ब तो कहीं रह गये, बापू! वे तो तेरी पर्याय में भी नहीं। यहाँ तो तेरी पर्याय में गुणस्थान है, जीवस्थान है, मार्गणास्थान है, (वे भी तेरे नहीं हैं, ऐसा कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा द्रव्य और गुण तो ध्रुव है, इसकी पर्याय जो वर्तमान अवस्था, उसमें शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वे पर्याय में नहीं हैं, वे तो उसमें-पर में हैं। आहाहा! परन्तु इसकी पर्याय में जो भेद हैं... आहाहा! इसकी पर्याय में गुणस्थान के, जीवस्थान के, मार्गणास्थान के भेद हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह जीव का स्वरूप कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस त्रिकालीस्वरूप का अवलम्बन लेने पर, वे अपनी चीज़ ही नहीं; यदि अपनी हो तो कायम रहे। आहाहा!

मुमुक्षु : वे तो पुद्गल के परिणाम कहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे पुद्गल के ही परिणाम हैं। भगवान आत्मा का वह स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में तो वहाँ तक कहा है न, कि ऐसे अजीव के भेदों को यदि मैं मेरे मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। एक गाथा है। आहाहा! मैं तो जीव ज्ञायकस्वरूपी प्रभु हूँ। ऐसे भेद को मैं मेरे मानूँ (तो मैं अजीव हो जाऊँ)। आहाहा! विकार को, राग को, भेद, ये सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! उन्हें यदि मैं मेरे मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ और उस अजीव का स्वामी वह अजीव होता है। भैंस का स्वामी पाड़ा होता है; वैसे उस अजीव का स्वामी मैं होऊँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। आहाहा! कहो, भूपतभाई! ऐसी बातें हैं। जगत का उत्साह और जगत के हर्ष का जोश उतर जाये, ऐसा है। आहाहा! प्रवीणभाई!

भगवान आत्मा... यहाँ अपने मनुष्य की पर्याय (की बात) चलती है न? मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,... मैंने मनुष्यपर्याय की नहीं। गति, हों! शरीर नहीं। यह तो जड़-मिट्टी है। यह मनुष्यपर्याय नहीं। यह तो शरीर की जड़ की दशा है। अन्दर मनुष्यगति की पर्याय, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैंने की नहीं। वह मनुष्य की पर्याय मैंने कर्म से करायी नहीं तथा की हुई है, उसे मेरा अनुमोदन नहीं।

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप... स्वाभाविक चैतन्य का विलास जो आनन्द का सागर नाथ, उस पर मेरा झुकाव होने से मैं उसे भाता हूँ। आहाहा! कठिन बात है, भाई! (यह) निश्चयप्रतिक्रमण। अब लोगों को ऐसा कि व्यवहारप्रतिक्रमण करें तो निश्चय होता है। यहाँ कहते हैं, परन्तु व्यवहारप्रतिक्रमण का विकल्प है, वह पुद्गल का परिणाम है। ले! आहाहा!

मैं एक सत्यस्वरूप चैतन्यविलास के स्वभाव से भरपूर प्रभु, जिसमें अनन्त गुण का सागर भरा है। आहाहा! अनन्त गुण के थैले अन्दर भरे हैं। ऐसा जो मैं चैतन्यविलासी आत्मा, उसकी भावना को मैं भाता हूँ। मनुष्य की पर्याय को मैं अनुमोदन भी नहीं करता कि ठीक हुआ, मुझे मनुष्यपना मिला।

वैसे तो श्रीमद् में वह गाया नहीं? 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला, तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला। सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' इसमें सुख है.. इसमें सुख है.. इसमें सुख है.. पैसे में सुख है, इज्जत में सुख है, भोग में सुख है। यह 'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' प्रभु! तेरे आनन्द का वहाँ

नाश होता है। आहाहा! 'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है। तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है...' श्रीमद् राजचन्द्र, सोलह वर्ष में कहते हैं। देह की सोलह वर्ष की उम्र। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। सोलह वर्ष में! 'तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है...' अरे रे! राग और बाहर की पर्याय में (तूने) प्रेम किया। वह क्षण-क्षण भयंकर भावमरण हो रहा है तेरा। चैतन्य की जागती ज्योति का अनादर करके और इन गति, राग, और पुण्य आदि के प्रेम में पड़ा, प्रभु! आहाहा! क्षण-क्षण भयंकर भावमरण हो रहा है। देह के छूटने के काल में तो देह का मरण (होगा) परन्तु यह तो भावमरण तो क्षण-क्षण में हो रहा है। आहाहा! राग में और पुण्य में और मनुष्य में.. आहाहा! यहाँ समाधिगतक में तो यहाँ तक लिया... आहाहा! मैं सुनूँ तो मुझे ज्ञान होता है, मैं दूसरों को सुनाऊँ तो उन्हें ज्ञान होता है। आहाहा! यह तो कहते हैं कि उन्मत्तदशा है, प्रभु! आहाहा! निर्विकल्प भगवान आत्मा में विकल्प उठाना है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इस विकल्प का मैं कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं। मैं तो चैतन्यस्वरूप का विलास, उसमें मैंने मेरी रमणता की है। 'निजपद रमै सो राम कहिये।' आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में रमे, वह राम। बाकी गति आदि राग में रमे, वह हराम है। ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता का पार नहीं, प्रभु! वाणी में भी पूर्ण प्रभुता आयी नहीं। ऐसी एक अपेक्षा से ५ वीं गाथा में पूर्ण कही है।

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचार मात्र रहा वह ज्ञान जब ॥
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ॥
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब ॥

आहाहा! नग्न दिगम्बर मुनि होकर अन्तरध्यान में कब जम जाएँगे। आहाहा! सोलह वर्ष में भावना भाते हैं। आहाहा! सोलह वर्ष की उम्र! पूर्व के संस्कार लेकर आये थे। भगवान के निकट दिगम्बर साधु हुए थे परन्तु द्रव्यलिङ्गी, इसलिए कुछ... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मैं मनुष्य की पर्याय का अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! एक व्यक्ति पण्डित आया था। वह ऐसा कहता था कि मनुष्यपर्याय मिले तो केवलज्ञान होता है। ब्रजनाराचसंहनन होवे तो केवलज्ञान होता है। कहा, भाई! ऐसा नहीं है, बापू! आहाहा! वह केवलज्ञान तो चैतन्य के विलास की रमणता करने से केवलज्ञान होता है। वह संहनन और मनुष्य की गति से केवलज्ञान होता नहीं है। पण्डित था न? कहाँ का? घासीलालजी, कुचामन का था। बहुत वर्ष पहले आया था। बहुत आते हैं, बहुत आते हैं। अरे! प्रभु! क्या हो? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मनुष्य की पर्याय को मैं नहीं करता, नहीं कराता, अनुमोदन नहीं करता। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही... भाषा है? आत्मा को ही। कैसा चैतन्य? कैसा? कि सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही... आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है, उसे मैं तो भाता हूँ। आहाहा! मेरा नाथ अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु है, उसकी मैं भावना भाता हूँ। बाकी दूसरी कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! कहो, भण्डारीजी! यह भण्डार यहाँ है।

मुमुक्षु : दो भण्डार है। एक बाहर में और एक अन्दर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाहर का भण्डार धूल का भण्डार है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु! तेरा भण्डार ऐसा अन्दर भरा है (कि) अनन्त गुण का खजाना निधान है। जिसमें से केवलज्ञान निकले तो भी पार न आवे, इतना खजाना अन्दर भरा है। केवलज्ञान... केवलज्ञान पर्याय निकले तो अनन्त-अनन्त निकले तो पार न आवे, इतना अन्दर खजाना है। आहाहा! भाई! परन्तु उसका विश्वास आना चाहिए। आहाहा! दूसरी ओर का विश्वास छोड़कर, इस स्वरूप का विश्वास आना, इस विश्वास से जहाज तिरता है। आहाहा! यह आनन्द का नाथ उसमें तिरकर मुक्ति को पाता है। आहाहा! बाकी कोई क्रियाकाण्ड और बाहर के कारणों से कुछ मिले, ऐसा नहीं है।

मैं देवपर्याय को नहीं करता,... ठीक। देवपर्याय। सम्यक्त्वी देव है। अभी शकेन्द्र एकावतारी है। पहले देवलोक में बत्तीस लाख विमान, उसमें असंख्य-असंख्य देवों का एक-एक विमान, ऐसे बहुत विमान। कोई संख्यात देव का विमान है। वे असंख्य देव के बत्तीस लाख विमान का स्वामी / चक्रवर्ती अभी शकेन्द्र है। आहाहा! वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। वह देवपर्याय में ऐसा भाता है... आहाहा! मैं देवपर्याय नहीं हूँ। मुझे

देवपर्याय मिली, इसलिए मैं भगवान के पास जा सकता हूँ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! इस देवपर्याय का मैं कर्ता नहीं हूँ; मैं देवपर्याय को करानेवाला नहीं हूँ; देवपर्याय हुई, वह कर्म का कार्य है, उसे मैं अनुमोदन करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! ऊथल-पुथल की बातें हैं, भाई! दुनिया से अलग जाति है, बापू! दुनिया को तो सब जाना है न? देखा है न? आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही...** भाषा यह है। आत्मा को-एकान्त आत्मा को ही। आहाहा! इन भेदों की पर्याय को नहीं। अकेले आत्मा-चैतन्यस्वरूप की ही भावना करता हूँ। भावना शब्द से उसकी ही एकाग्रता है। आहाहा! यह पर्याय में मेरी एकाग्रता नहीं है। आहाहा!

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,... आहाहा! ज्ञान के पाँच भेद और दर्शन के चार भेद तथा समकित के भेदों को और चारित्र के भेदों को, भव्य-अभव्य के भेद.. आहाहा! ऐसे भेदों को मैं नहीं करता। आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आहाहा! स्वाभाविक चैतन्य का विलास भगवान अन्दर अनादि-अनन्त चीज़ पड़ी है। किसी ने की नहीं; हुई है, ऐसा नहीं; नाश होगा, ऐसा नहीं। है, वह वस्तु अविनाशी अन्दर प्रभु है। अनादि-अनन्त ऐसा चैतन्य भगवान, उसके विलास को मैं भाता हूँ। आहाहा! है? सूक्ष्म बात है परन्तु है ऊँची, बापू! प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! दूसरे चाहे जिस प्रकार से ढीला करके बतावे (परन्तु वह मार्ग नहीं है)। आहाहा! तुम मन्दिर बनाओ, करोड़ों रुपये खर्च करो, अरबों खर्च करो, गौशाला बनाओ, दुःखी के आँसू पोंछों, भूखे को अनाज दो, प्यासे को पानी दो, स्थल न हो उसे जमीन आदि रहने के स्थान दो, तो तुम्हें कल्याण होगा। यहाँ कहते हैं कि इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! कौन दे? प्रभु! आहार के रजकण हैं, वे जड़ हैं, वे दे कौन? और ले कौन? पैसा मिट्टी है, धूल है, अजीव जड़ है। उसे ले कौन? दे कौन और रखे कौन? प्रवीणभाई! ये सब करोड़ोंपति बैठे हैं। धूलपति। करोड़ अर्थात् पैसा; पैसा अर्थात् धूल और धूल अर्थात् पति। आहाहा!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं, बापू! तू चैतन्यलक्ष्मी का भण्डार है न, प्रभु! तेरा विलास तो अन्दर कोई अलौकिक है, भाई! ज्ञान का विलास, आनन्द का विलास, प्रभुता का विलास, शान्ति का विलास.. आहाहा! समकित का विलास, चारित्र का विलास.. आहाहा! ऐसे जो भगवान आत्मा में भरे हुए अनन्त गुण, उसके विलास को मैं भाता हूँ। आहाहा! बात थोड़े शब्दों में (की है परन्तु) भाव बहुत भरे हैं, भाई!

लोग नहीं कहते अपने विवाह करते हैं तब ? थोड़ा लिखा बहुत जानना । कहते हैं न, दामाद-बामाद थोड़ा कठोर हो, दो-चार लड़कियाँ हों और दामाद कठोर हो तो ऐसा लिखते हैं कि मण्डप में आना तो शोभा होगी और थोड़ा लिखा बहुत जानना । हमारी लड़की को लेकर आना, मण्डप की शोभा होगी । ऐसा लिखते हैं । ऐसा लिखते हैं न ? किसका मण्डप ? बापू ! सब भटकने का मण्डप है । यह मण्डप अन्दर भगवान चैतन्य का मण्डप अन्दर खोल । आहाहा ! यह खजाना खोल अन्दर, भाई ! यह खजाना अनन्त-अनन्त गुण से भरा है ।

उसमें चौदह मार्गणा के भेद भी नहीं है । आहाहा ! तथा उन्हें मैं कर्ता नहीं हूँ । बाद में कहेंगे । इन चौदह भेदों को मैं कर्ता नहीं हूँ, इन चौदह भेदों को मैं करानेवाला नहीं हूँ, चौदह भेदों का मैं अनुमोदक नहीं हूँ । आहाहा ! गजब बात है । यह सब पाठ में है न ? वहाँ एक-एक लेकर बाद में कहा है ।

प्रभु ! आत्मा चैतन्यविलास अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर भरा है, प्रभु ! आहाहा ! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के विलास में मैं भावना करते हुए, जगत की किसी चीज़ को मैं अनुमोदन नहीं करता । देवपर्याय, अरे ! मुझमें पर्याय के भेद पड़ें, उसे भी नहीं करता । आहाहा ! दूसरी चीज़ की तो बात एक ओर रही परन्तु यह चौदह भेद जो पड़ते हैं... आहाहा ! उन्हें मैं करता नहीं, मैं कराता नहीं । वे तो कर्म के कारण भेद पड़े, इसलिए उन्हें अनुमोदन भी नहीं करता । आहाहा ! मेरा नाथ तो अभेद अन्दर चैतन्य प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी अन्दर विराजमान है । आहाहा ! अरे रे ! ऐसा सुनने को मिले नहीं, वह कब जाए ? कब समझे ? और करे ? आहाहा ! दुःखी.. दुःखी.. दुःखी.. अनन्त काल से भटकता है । आहाहा !

मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता, ... गजब बात है । मिथ्यात्व, अविरत, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ गुणस्थान, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ, नौ, दस, ग्यारह, बारह और तेरह, चौदह - इन चौदह गुणस्थान आदि को नहीं करता । भेद हैं, उन्हें मैं नहीं करता । उन्हें मैं नहीं कराता । भेद पड़े, उन्हें मैं अनुमोदन नहीं करता । आहाहा ! देखो ! यह सच्चा प्रतिक्रमण । शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे, पहाड़े करे.. मिच्छामि दुक्कडं । हम भी दुकान पर सब करते थे, हों ! पर्यूषण के आठ दिन आते हैं न ? तब

१८-१९ वर्ष की उम्र की बात है। ७०-७२ वर्ष पहले। प्रतिक्रमण करते थे। दस वर्ष की उम्र से प्रतिक्रमण कण्ठस्थ था। सामायिक, प्रतिक्रमण सब पहले से किया हुआ है न? वहाँ हमारे दुकान में सब लोग इकट्ठे हों, तब मैं कराता था और आठ दिन में चार उपवास करते थे। चौविहार (चतुर्विध आहार का त्याग), हों! उपवास। दुकान में बैठकर धन्धा करते, परन्तु चतुर्विध (आहार) त्याग (करके) अपवास और शाम को प्रतिक्रमण करते। कुछ भान नहीं होता। प्रतिक्रमण करे तो हमारे गांडाभाई और वे सब बेचारे सुनें। कोई खबर नहीं होती। फिर संघ को इकट्ठा करके भोजन करावे। अपने स्थानकवासी के जितने घर हों, उन सबको भोजन करावे। हमने पर्यूषण मनाये। धूल में भी कुछ नहीं। आहाहा! और वह तो फिर हमारे गांडाभाई थे, वे तो और सत्यनारायण की कथा भी करावे। कुछ खबर नहीं होती लोगों को। जैन नाम धरावे तो भी सत्यनारायण की कथा (करावे)! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्यनारायण वहाँ कैसा सच्चा? सत्यनारायण तो यहाँ है।

मुमुक्षु :पूजे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कबीर को पूजे और वह हमारे कुछ नहीं। कबीर क्या, वह कैसा शाह? हैदरशाह। हैदरशाह को पूजे। हमारे गांडाभाई के हैं न? कुँवरजीभाई के लड़कों ने छोड़ दिया। ये लड़के जो सवेरे आते हैं, इन्होंने छोड़ दिया। इनके परिवार की परम्परा में हैदरशाह यहाँ आये थे। वह हैदरशाह ऐसा कुछ बोले कि कुछ मुझे दो, तुम्हारे घर आया हूँ, तो उन्होंने कहा कि ओहोहो! फकीर को कहाँ से खबर पड़ी? घर में प्रसादी आया था, इसलिए उसमें से उन्हें पूजनीय माना हुआ, उन्हें बहुत माननेवाले हैं। मूढ़ जीव बहुत हैं उमराला में।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी रुपया नहीं। हैदरशाह को मानते थे, तब वे भीख माँगते थे। गांडाभाई के पिता तो कपड़े की फेरी करते थे। वहाँ हैदरशाह कहाँ गया था? और अभी सूरत में उनके लड़के के लड़के के पास करोड़ रुपये हैं। गांडाभाई के पास कुछ नहीं था। दो पाँच हजार रुपये होंगे। अभी करोड़ रुपये हैं। अभी उन्हें अकस्मात् हो गया

है। उसमें होवे, बापू! ये लोग मानें नहीं, अब यहाँ आनेवाले। हैदरशाह यहाँ पालीताणा है। पालीताणा हैदरशाह इस ओर सामने पीर का स्थान है। अरे रे! हैदरशाह कैसा? यहाँ तो तीन लोक के नाथ तीर्थकर परमात्मा को मानना, वह भी राग है। आहाहा! भगवान तीन लोक के नाथ परमात्मा जिनेन्द्रदेव की पूजा करना, वह भी राग-पुण्य है, वह धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं गुणस्थान के भेदों को नहीं करता। आहाहा! तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान मैं नहीं करता। मैं तो अभेद चिदानन्द चैतन्य विलास से भरपूर भगवान हूँ। अभेद की दृष्टि में भेद का विलास आत्मा में है नहीं। आहाहा! हमारे अभेद में वह भेद दिखायी नहीं देता। अन्दर भगवान पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि होने पर, अभेद में दृष्टि होने पर भेद दिखायी नहीं देता, इसलिए वह भेद मेरा कर्तव्य नहीं है, कराता नहीं और मैं भेद को अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! कहो, चिमनभाई! कैसा सुना था? तुम्हारे पिता ने यह सब सुना नहीं था। भक्ति करते थे श्रीमद् की। खबर है न? डेला में तुम्हारे घर बहुत बार आ गये हैं। हिम्मतभाई थे तब। यहाँ तो बहुत वर्ष हुए न? छियासठ वर्ष तो दीक्षा को हुए। यह मगसर शुक्ल नवमी को ६७ वाँ वर्ष लगेगा। नौवीं हुई न आज? कार्तिक शुक्ल नवमी और मगसिर शुक्ल नवमी दीक्षा को ६७वाँ वर्ष लगेगा। छियासठ वर्ष पूरे होंगे। साढ़े तेईस वर्ष में दीक्षा ली थी। आहाहा! बहुत देखा, बहुत पढ़ा, बहुत मिले। यह चीज़ कोई अलग है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव की ध्वनि में ऐसा आया, जितने भेद पड़ते हैं, उन भेद का कर्ता तू नहीं है। आहाहा! इन गुणस्थान के भेद का कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं। आहाहा! है? मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता,... एकेन्द्रिय, (बादर-सूक्ष्म) दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त - ऐसे चौदह भेद हैं। जीव के चौदह भेद, वह मैं नहीं हूँ। भेद मुझमें नहीं हैं, भेद मैंने नहीं किये, मैं कर्ता नहीं और करानेवाला नहीं। आहाहा! यह पंचेन्द्रिय का पर्याप्तपना मैंने नहीं किया। आहाहा! कहो भूपतभाई! कैसा यह सुना नहीं कहीं। ये सब पैसेवाले बैठे। धूल-बूल इकट्ठी की। आहाहा!

तीन लोक का नाथ चैतन्य की लक्ष्मी से भरपूर प्रभु की दृष्टि करने से-अभेद की

दृष्टि में भेद का कर्ता मैं नहीं हूँ। आहाहा! राग का कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं परन्तु भेद का भी कर्ता मैं नहीं। आहाहा! मेरी पर्याय में जो चीज़ नहीं, उसका तो मैं करता, कराता हूँ नहीं। मेरी पर्याय में रागादि हों, उनका भी करता-कराता नहीं, मेरी पर्याय में गुणस्थान के भेद हों उनका कर्ता-कारयिता-अनुमोदन करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! गजब बात है भाई! आहाहा! भाग्यशाली को तो कान में पड़े, ऐसा है। ऐसी वीतराग की बात है, बापू! तीन लोक का नाथ महाविदेह में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। परमात्मा... आहाहा!

एकेन्द्रिय आदि, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। यह पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त वह मैं नहीं। पंचेन्द्रिय पर्याप्त मैं नहीं, पंचेन्द्रिय पर्याप्त मैंने किया नहीं, मैंने कराया नहीं और मैंने अनुमोदन किया नहीं। आहाहा! पंचेन्द्रियपना मिले तो सुनने को तो मिले। सुने तो (सही)। यह बात यहाँ निकाली नहीं। आहाहा! भगवान! यहाँ तो जन्म-मरणरहित की बातें हैं, प्रभु! जिससे भव मिले, वे बातें नहीं। भव मिले तो नरक और निगोद के भव, बापू! चींटी और कौवे के, ओहोहो! यह कल देखा था। यहाँ सड़क पर ऐसे दो लट्टु जैसे कुत्ते थे। परन्तु किसी का धक्का लगा होगा, ट्रक का। लट्टु जैसे थे। मर गये। सिर पर पहिया घूमा होगा। आहाहा! और वापस वे मरकर बेचारे ढोर में जाँ कहीं। तिर्यच में कहीं अवतरित हों। गिलहरी, बकरा, कुत्ता, और... आहाहा! ऐसे अवतार अनन्त किये, भाई!

आत्मा की अन्तर अभेददृष्टि नहीं की। भेद की दृष्टि भी नहीं छोड़ी। दूसरी तो ठीक परन्तु... आहाहा! चौदह गुणस्थान के जो भेद पड़े, जीवस्थान के, मार्गणास्थान के, वे भेद भी दृष्टि मेरी नहीं। आहाहा! मैं होवे उनका जाननेवाला अवश्य, परन्तु वे भेद मेरा कर्तव्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भगवान! प्रभु भगवान है न! अन्दर प्रभु विराजता है। परमात्मा है। माताएँ और लड़कियाँ यह सब शरीर है, अन्दर तो भगवान है। यह तो मिट्टी-धूल का शरीर है। अन्दर परमात्मा चिदानन्द चैतन्य विलासी पड़ा है। प्रभु! आहाहा!

ऐसे भेद को मैं नहीं करता। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही... भाषा देखी! सबमें आत्मा को ही एकान्त किया है। सम्यक् एकान्त। आहाहा! भेद को भाता नहीं, भेद में मैं कर्ता-कारयिता नहीं। मैं एक भगवान चैतन्यस्वरूप, ज्ञानानन्द प्रभु पूर्णानन्द आत्मा को ही मैं भाता हूँ अर्थात् उसी में मेरी एकाग्रता है, वही मेरी चीज़ है। आहाहा!

मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता,... यह शरीर में बालक अवस्था, युवावस्था, वृद्ध अवस्था, वह मैं नहीं करता; वह तो जड़ का कार्य है। आहाहा! शरीरसम्बन्धी बालादि... बाल, युवा, वृद्ध और स्थविर। ऐसी अवस्थाओं को कर्ता नहीं। आहाहा! वृद्धावस्था हो गयी। युवा अवस्था अभी चलती है। बाल अवस्था बीत गयी। यहाँ कहते हैं, बाल अवस्था, युवा अवस्था, वृद्ध अवस्था, वह आत्मा में है ही नहीं, उस अवस्था को मैं करता नहीं, कराता नहीं और वह अवस्था जवानी की होवे तो धर्म में ठीक पड़े, (ऐसा) मैं उसे अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! है ?

बाल, यह चार भाव है, बाल, युवक, वृद्ध और स्थविर। इन चार भाव को मैं नहीं करता। आहाहा! तथा नहीं कराता। आहाहा! युवावस्था को मैं नहीं करता, मैं नहीं कराता। वह तो कर्म का कार्य है। तथा बहुत जवान है, इसलिए ठीक है, ऐसा अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! वृद्ध अवस्था होती है, इसलिए इन्द्रियाँ शिथिल पड़ती है, इसलिए विषय कम होता है (कहते हैं), वृद्धावस्था हो तो वह मैं नहीं करता, नहीं कराता और अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। आहाहा!

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... लो! पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध, ऐसे परिणाम को मैं नहीं करता, मैं उन्हें नहीं कराता, उन्हें होते हुए को मैं अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! ऐसा कहीं सुना नहीं और पैसेवाले को सब लोग प्रसन्न कर दे। पाँच-पच्चीस लाख खर्च करे। प्रसन्न-प्रसन्न कर दे। ओहोहो! तुमने तो ऐसा किया धर्मधुरन्धर। पत्थर की तख्ती लगावे। नाम के लिए मेहनत करके। मेहनत करके तख्ती लगावे। इकट्ठा करके (दिखावे), देखो! मैंने ऐसा किया। हमारे नाम की तख्ती लगाओ। वापस दो-चार नाम लिखे। अमुक के हस्ते, अमुक के नाम से, अमुक के स्मरणार्थ। ऐसा है न? यह तो सब देखा है न? यहाँ तो ९१ वर्ष चलते हैं। बहुत देखा, बहुत सुना, बापू! पूरी जिन्दगी निवृत्ति में गयी है। तेरह वर्ष यहाँ उमराला में जन्मस्थान (में रहे)। नौ वर्ष दुकान में, चार वर्ष तो पिताजी थे (संवत्) १९४९ से १९६३। १९६३ से १९६८ पाँच वर्ष दुकान चलायी थी। १९६८ के वैशाख में दुकान छोड़ दी। १९६८ के वैशाख में। ७० में दीक्षा हुई स्थानकवासी में। आहाहा!

राग, पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, इन भावकर्म के भेदों को मैं नहीं

करता। आहाहा! अभी तो वे पुकार करते हैं। एक श्रुतसागर दिगम्बर है। अभी तो शुभयोग ही होता है, बस! दूसरा कुछ नहीं होता। अरे! प्रभु! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई! ऐसा कहते हैं न कि भाई! शुभयोग ही है मेरे पास, धर्म हमें नहीं। ऐसा कहे तो अभी...

मुमुक्षु : तब तो मुनि मनाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिपना, बापू! मुनिपना कोई अलौकिक बात है, भाई! आहाहा! यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है यह तो। सम्यग्दर्शन में द्रव्य की दृष्टि ही होने से, अभेद की दृष्टि होने से भेद का कर्तव्य मेरा नहीं है, ऐसी बात चलती है। आहाहा! समझ में आया ?

यह रागादि भेद। राग अर्थात् पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के भाव, उन भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... वह भाव का कर्तव्य मेरा नहीं है। वह मैं कराता नहीं। आहाहा! और करता हो, उसे मैं अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! गजब बात है। अब फिर सोनगढ़वालों को ऐसा कहे न कि निश्चय की ही बातें करते हैं। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् उपचारित आरोपित बातें हैं। सत्य तो यह है, प्रभु! सच्चिदानन्द नाथ अन्दर परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसका आश्रय और उसकी अभेद की दृष्टि करना और भेद की दृष्टि छोड़ना, यह वीतराग के मार्ग का अन्तर का रहस्य तो यह है। आहाहा! बाकी सब बातें हैं। आहाहा! रागादि भावों को नहीं करता। आहाहा!

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को नहीं करता,... भावकर्म अर्थात् पुण्य-पापभाव। कषाय की बात यहाँ ली है। वे रागादि लिये थे। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया, उसी प्रकार कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।) पाठ में कर्ता इतना ही है परन्तु कारयिता-अनुमोदक मैं नहीं - ऐसा साथ में समझ लेना। कर्ता शब्द पड़ा है। इस प्रकार पाँच रत्नों के शोभित कथनविस्तार द्वारा सकल विभावपर्यायों के संन्यास का (-त्याग का) विधान कहा है। आहाहा! इन पाँच रत्नों से शोभित गाथा। विस्तार द्वारा सकल विभावपर्याय... सकल विभावपर्याय के त्याग का विधान कहा है।

विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१०९

[अब, इन पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

(वसंततिलका)

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः,
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः ।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पञ्चरत्नात् ॥१०९॥

(वसंततिलका)

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः ।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पञ्चरत्नात् ॥१०९॥

[श्लोकार्थः —] इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है और निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है, वह भव्य जीव निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है ॥१०९॥

प्रवचन-७८, श्लोक-१०९, गाथा-८२, मंगलवार, कार्तिक शुक्ल १०, दिनांक ३०-१०-१९७९

नियमसार, पहली पाँच गाथा का कलश है । १०९ कलश ।

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः,
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः ।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पञ्चरत्नात् ॥१०९॥

श्लोकार्थः— इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा... भेद से भिन्न बताया न ? वास्तव में तो भाई ने तीन शब्द रखे हैं - रंग, राग, और भेद से भिन्न। हुकमचन्द (भारिल्ल ने)। रंग, राग और भेद से भिन्न। रंग शब्द से वर्ण आदि चीज़; राग शब्द से पुण्य-पाप के भाव और भेद शब्द से पर्यायों के भेद। ये गुणस्थान, मार्गणास्थान भेद। रंग, राग, और भेद से भिन्न-ऐसा जो ज्ञानात्मक तत्त्व। पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है... पर की-निमित्त की चिन्ता, राग की, भेद की चिन्ता को छोड़ा है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! जहाँ जाना है, वह चीज़ अभेद है। अखण्ड ज्ञान, आनन्द का कन्द, वह पर के विषय ग्रहण से रहित होकर, पर के विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है। आहाहा! भेद है, उसकी भी चिन्ता छोड़ी है। आहाहा!

और निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में... स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि ऐसा शब्द है। निज द्रव्य, वह वस्तु; उसके जो ज्ञानादि अनन्त गुण और उसकी जो निर्मल पर्याय है, उसमें जिसकी रमणता है। आहाहा! निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है,... निमित्त, संयोग तो अपनी पर्याय में भी नहीं है। कर्म, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, पैसा-लक्ष्मी, वह तो पर्याय में भी नहीं है, वह तो भिन्न है। पर्याय में जो राग-द्वेष है, उनसे भी स्वरूप तो भिन्न है और स्वरूप में, पर्याय का जो भेद दिखता है, वह तो पर्यायदृष्टि से, पर्यायबुद्धि से ज्ञात होता है। वस्तुबुद्धि से उसमें भेद है नहीं। आहाहा!

संसार के किनारे जाना है। आहाहा! जहाँ मुक्ति का मण्डप अन्दर पड़ा है। आहाहा! वह मुक्तस्वरूप ही है। जहाँ रंग और राग से भिन्न तथा भेद से भी भिन्न, ऐसी वह चीज़ मुक्तस्वरूप अभेद चिदानन्द है। आहाहा! वहाँ इसे जाना है।

कितना छोड़ना और किसे ग्रहण करना ? आहाहा!

भेद, रंग और राग का लक्ष्य छोड़कर, अभेद चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द ध्रुव नित्य, जो सत् है, वह तो त्रिकाल है और सत् है, वह तो एकरूप त्रिकाल अभेद है। उसमें एकाग्र होकर। आहाहा! निज द्रव्य-गुण-पर्याय। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय नहीं। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय तो पर में गये। वे तो संयोग में गये। वे तो पर्याय में भी नहीं है। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय तो इस पर्याय में भी नहीं है। मात्र पर्याय में उस ओर की भक्ति आदि का राग है, परन्तु उस राग से भी भिन्न स्वरूप अन्दर है। आहाहा! और राग को जाननेवाली

ज्ञान की अवस्थाएँ, मति-श्रुत आदि के भेद, उससे भी अभेद चीज़ तो अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! अरे रे! अब यहाँ जाना।

ऐसे स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है,... ज्ञानानन्द प्रभु ध्रुव अभेद चीज़ जो है, उसमें ज्ञान की पर्याय को... चित्त को अर्थात् ज्ञान की पर्याय को **एकाग्र किया है**,... आहाहा! अब यहाँ कहाँ जाना? चिमनभाई! यह बाहर की उपाधि और... आहाहा! भाई! हित का पन्थ, हित का पन्थ कोई अलग है। अनन्त काल से इसने हित नहीं किया। इसकी दृष्टि निमित्त पर अथवा राग पर अथवा भेद पर रही है। आहाहा! अभेद में-रागरहित में, संयोगरहित चीज़ है, उसमें एकाग्र कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! एकाग्र अर्थात् उसे-एक को दृष्टि में लेकर उसमें लीनता करना। आहाहा!

चित्त एकाग्र किया है, वह भव्य जीव... वह भव्य जीव अल्प काल में मोक्ष के योग्य है। अल्प काल आयेगा। उसका अर्थ करना पड़ेगा फिर। **वह भव्य जीव निज भाव से भिन्न...** निज भाव जो ज्ञायक और ज्ञानानन्द ध्रुवस्वरूप, जो दृष्टि का विषय जो ध्येय, जो पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, ऐसे निज भाव से भिन्न। परद्रव्य भिन्न, राग भिन्न और पर्याय के भेद भी भिन्न। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुआ, चौरासी के अवतार। चौरासी लाख योनि-उत्पत्ति के स्थान। एक-एक योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। उस अभेद की दृष्टि नहीं की, इसलिए (उत्पन्न हुआ है)। आहाहा! जो पूर्ण सत् है, अनादि शाश्वत् है, एकरूप ज्ञायकभाव, एकरूप ध्रुवस्वभाव, एकरूप भाव है, उसकी एकाग्रता के बिना भव का अन्त आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड की चाहे जितनी करे, वह सब राग की वृत्तियाँ हैं, वे कोई आत्मा का स्वरूप नहीं है।

स्व-रूप। स्व का रूप जो है, स्व का भाव जो है, वह तो त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव चैतन्य है, उसमें एकाग्र होकर.. आहाहा! सकल भाव **निज भाव से भिन्न...** निज भाव, ज्ञायकभाव, चिदानन्दभाव - उससे भिन्न, **ऐसे सकल विभाव को छोड़कर...** अर्थात् भेद के भाव को भी छोड़कर। आहाहा! राग के विकल्प को तो छोड़कर, वह तो ठीक, परन्तु भेदभाव को भी छोड़कर। क्योंकि भेदभाव में भी विभाव है। वह भेदभाव भी कर्म के निमित्त से हुए भेद हैं। वे वस्तु में नहीं हैं। आहाहा!

निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को

प्राप्त करता है। अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है, इसमें क्रमबद्ध कहाँ आया ? यह तो थोड़े काल में प्राप्त करता है, ऐसा कहा। जिस काल में मुक्ति होनी है, उस काल का यहाँ कहाँ आया ? यहाँ तो अल्प काल में कहा है। उसका अर्थ ही यह हुआ, प्रभु! कि जिसने निज भाव को ग्रहण किया और परभाव को छोड़ा, उसे अब अल्प काल में ही, उसके क्रम में केवलज्ञान आनेवाला है। अल्प काल में अर्थात् कुछ काल आगे-पीछे हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? है न ? अल्प काल में शब्द है। **अचिरात्**—संस्कृत में **अचिरात्** है। अल्प काल में। आहाहा! इसका अर्थ ही यह है। जिसने भगवान् पूर्णानन्द के नाथ को पकड़ा, उसमें चित्त को एकाग्र किया, उसे अब थोड़े काल में ही केवलज्ञान की प्राप्ति का क्रम है। क्रमबद्ध में थोड़े काल में ही केवल (ज्ञान) होनेवाला है, उसे लम्बा काल नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। क्रमबद्ध टूटे नहीं और अल्प काल में मुक्ति हो, इसका अर्थ यह है। समझ में आया ? आहाहा!

सकल विभाव को छोड़कर... सम्पूर्ण स्वभाव में एकाग्र होकर। आहाहा! उसे तो अल्प काल में परमानन्द की / मुक्ति की प्राप्ति है। उसे अब लम्बा काल है नहीं। है क्रमबद्ध में। आहाहा! परन्तु ऐसी जिसकी दृष्टि हुई और सर्व विभाव की चिन्ता छोड़कर पूर्ण स्वभाव में एकाग्र हुआ, उसे पूर्ण की प्राप्ति होने का काल ही अल्प है। उसे क्रमबद्ध में अब काल ही अल्प है। आहाहा! समझ में आया ? **अचिरात्** कहा, इसलिए वहाँ क्रमबद्ध बदल जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शब्द तो यह है। इसमें एकाग्र हो, इसलिए उसे क्रम में केवलज्ञान होगा, ऐसा नहीं लिया। उसका अर्थ ही यह हुआ।

भगवान् आत्मा पूर्णानन्द के नाथ को जिसने पकड़ा.. आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वरूप ज्ञायकभाव में जिसकी एकाग्रता हुई, उसकी पर्याय में केवलज्ञान प्राप्त होने का क्रम ही अब अल्प है। आहाहा! होगी तो जिस समय में मुक्ति होनेवाली है, उसी समय में होगी परन्तु ऐसा जिसने किया, उसे अल्प काल में होगी, ऐसा ही उसमें क्रमबद्ध है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरे रे! इसने निवृत्ति नहीं ली। अपने हित के लिए फुरसत नहीं मिलती। अहित के काम में फुरसत का काल सब वहाँ व्यतीत करता है। अरे रे!

यहाँ यह कहते हैं कि एक बार प्रभु! तू परभाव और पर के भेदभाव को भी छोड़कर ज्ञानानन्द ध्रुव सत्.. सत्.. सत्.. शाश्वत अभेद चीज है, उसमें एकाग्र हो और अभेद में एकाग्र होने से, प्रभु! तुझे अल्प काल में अब केवलज्ञान होनेवाला है। उसे लम्बा काल

नहीं होता। आहाहा! उसकी मुक्ति अल्प काल में है। ऐसे क्रमबद्ध में उसकी मुक्ति अल्प काल में होवे, ऐसा ही उसका काल है। आहाहा!

अरे रे! जगत के बाह्य पदार्थों की विस्मयता, अधिकता और उनके माहात्म्य तथा महिमा के समक्ष इसे भगवान की महिमा नहीं सूझती। आत्मा की अन्दर जो महिमा है, उसके अतिरिक्त जगत की शरीर, वाणी, मन चेष्टाएँ, रंग, राग की इसे विस्मयता और अचिन्त्यता तथा अपूर्वता दिखायी देती है, इसलिए उसमें रुककर भगवान ऐसा अपूर्व स्वभाव है, उसे यह भूल गया है। जिसका माहात्म्य करना चाहिए, उसे भूल गया और जिसका माहात्म्य छोड़ना चाहिए, उसके माहात्म्य में घुस गया। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्दर गलगलाहट हो जाए, ऐसा है। माणेचन्दभाई सवेरे कहते थे। आहाहा! बात ऐसी, बापू! क्या करें? आहाहा!

जिसमें भव और भव के भाव नहीं। अरे! जिसमें भेद नहीं। आहाहा! भव और भव का भाव तो जिस चीज़ में नहीं, परन्तु जिस चीज़ का भेद पड़े, वह भेद भी उस चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... शरीर का दिखाव छोड़ दे, भाई! वह चीज़ कहीं तेरी नहीं है। वह कहीं तेरे कारण नहीं है, वह सब तो जड़ के कारण से है। वह सब दिखाव। आहाहा! पंच रत्न की गाथा है न? आहाहा! वे रत्न नहीं तुम्हारे, ऐई! धूल के रत्न नहीं। आहाहा! यह तो चैतन्य रत्न।

अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान, अनन्त-अनन्त वीर्य और अनन्त-अनन्त शान्तिरस का पिण्ड प्रभु! शान्त.. शान्त.. शान्त का समुद्र। आहाहा! 'उपशम रस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में' आता है न? उपशम रस बरसे प्रभु! आहा! जिसमें उपशम रस, अकषायस्वभाव। शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्त। अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें जो एकाग्र हुआ, उसे पर्याय में पूर्ण शान्ति की प्राप्ति का काल ही अब अल्प है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सव्व सिद्धाणं—ऐसा शास्त्र में पाठ है। वह स्वयं भी अल्प काल में सिद्ध होनेवाला है। वह णमो लोए सव्व सिद्धाणं में आ जाता है। समझ में आया? मूल पूरा पद ऐसा है—णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं - ऐसा है। यहाँ तो णमो अरिहंताणं, फिर उसका अन्तिम आता है, णमो लोए सव्व साहूणं। यह अन्तिम पद सबको लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं।

तदुपरान्त परमागम में यह आया है कि त्रिकालवर्ती... आहाहा! कितना काल लक्ष्य में लिया? कि तीनों काल में वर्तते अरिहन्तों को णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। नमस्कार। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। उसमें स्वयं भी अल्प काल में सिद्ध होनेवाला है तो उसे भी नमस्कार पहुँच जाता है। आहाहा!

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आइरियाणं। किसी को आचार्य का पद आनेवाला होवे तो। न होवे तब तो सीधा साधु, अरिहन्त और सिद्ध होगा। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। यह पूरा पद ऐसा है। धवल में ऐसा लिया है। आहाहा! अरे रे! कहाँ कुछ पड़ी है? कौन यह क्या?

त्रिकाल वस्तु, जिसकी प्रतीति में व्यवहार भी त्रिकाल अरिहन्त, त्रिकाल सिद्ध, त्रिकाल आचार्य, उपाध्याय। आहाहा! जिसकी व्यवहार की विकल्प की श्रद्धा में भी यह त्रिकाली पंच परमेष्ठी जहाँ आ जाते हैं। आहाहा! और उन पंच परमेष्ठी का स्वरूप ही आत्मा का है। आत्मा पंच परमेष्ठी स्वरूप ही है। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? वस्तु कहीं पड़ी रही और मार्ग भी कहीं (पड़ा रहा) कहीं दौड़ गया। धर्म के नाम से पन्थ कटे नहीं, पन्थ बढ़ गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसे निज भाव से वह भव्य जीव निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है। आहाहा! अल्प काल में परमात्मा सिद्ध होनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! पंचम काल के प्राणी को भी ऐसा, अप्रतिबुद्ध श्रोता को भी आचार्य ऐसा कहते हैं। पंचम काल के साधु, आचार्य ऐसा कहते हैं कि पंचम काल के जीव भी यदि सर्व भाव को छोड़कर अन्तर एकाग्र होवे तो अल्प काल में मुक्ति होगी। आहाहा! उसे कहते हैं न? यह कहनेवाले पंचम काल के साधु हैं न? सुननेवाले भी पंचम काल के हैं न? आहाहा! भले उन्हें एकाध-दो भव हों, परन्तु वे मुक्ति पानेवाले हैं। आहाहा!

आनन्द के सागर को जहाँ अन्दर में उछाला.. आहाहा! पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उस स्वाद में पंच परमेष्ठी का रूप भी ख्याल में आ गया। आहाहा! और द्रव्यस्वभाव का स्वरूप भी ख्याल में आ गया। वह अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त होगा। पंचम काल के जीव को ऐसा कहे! अभी मुक्ति नहीं न? भाई! सुन न, भाई! ऐसा करेगा,

उसे एकाध-दो भव में भी मुक्ति होगी, वह उसे अल्प काल ही है। टीका में कहीं आता है। वह नहीं आता कहीं पीछे? ऐसा कि ऐसे करेगा उसे मुक्ति होगी। चरमशरीरी और अचरमशरीरी की बात आती है न? उसमें टीका में आता है। 'परम अध्यात्मतरंगिणी' में, दो-तीन भव में मोक्ष जाएगा। भले अचरमशरीरी है, अन्तिम शरीर नहीं है। टीका में है, संस्कृत टीका में। आहाहा! 'परम अध्यात्मतरंगिणी' में है। चरमशरीरी और अचरमशरीरी में यह बात नहीं आती? गाथा में आती है न? तीर्थकर, अरिहन्त, उसमें आती है न? ऐसे किया सबने। वह गाथा आती है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। अल्प काल में मुक्ति होगी। बहुत ही गाथा.. बहुत ही मांगलिक की है। आहाहा! मांगलिक का मण्डप रोपा है। आहाहा! उसका मांगलिक पूर्ण हो जानेवाला है। आहाहा! जिसे बाहर का रस छूट गया, बाहर की विस्मयता, अचिन्त्यता, अधिकता, महिमा, किसी भी चीज़ की महिमा, इन्द्र के पद की भी महिमा जिसे छूट गयी है। आहाहा! जिसे राग और स्वर्ग का विकल्प भी छूट गया है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, भले पंचम काल में रहा हुआ - जन्मा है, परन्तु कहते हैं कि प्रभु! तू पंचम काल में भी पूर्ण स्वरूप से है या अपूर्ण हो गया है? आहाहा! वस्तु तो त्रिकाल पूर्ण है। उसमें पंचम काल में वह पूर्णता न प्राप्त करे और पूर्ण नहीं है... पूर्ण नहीं है, ऐसा कैसे कहना? और पूर्ण है, उसे पूर्ण की प्राप्ति न हो, ऐसा कैसे कहना? कहते हैं। पाटनीजी! आहाहा!

मुमुक्षु : अजब बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, भगवान! आहाहा! छोटी-छोटी उम्र के बालक। यह वाल की व्याधि होती है न? वाल की नहीं? मर जाते हैं बेचारे। दस-दस वर्ष की, पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष की उम्र। वाल होता है कहीं। यहाँ एक अपना जैनशाला का लड़का पढ़ता था। पन्द्रह-सत्रह वर्ष का युवक था। आता था। वह यहाँ मर गया। पहले दूसरे में पोस्टमास्टर के यहाँ था। पहले वहाँ था न वहाँ। वह बाहर उतरा नीचे जहाँ पेशाब करने। उड़ गया। कहीं वाल होता है। एक महिमा भी कहती है कि मुझे वाल होता है। हमेशा दवा करने जाना। अपने उसे भी बाल था न? बीनूभाई को। इस हिम्मत के काका को। आहाहा! उसे भी वाल था। कब, कहाँ देह को क्या होगा? वह तो नाशवान है। उसे किस क्षण में कैसे होगा? उसका तुझे क्या काम है? तेरे क्षण को पकड़ न! आहाहा!

यह श्लोक पंच रत्न का योगफल किया है। आहाहा! अब ८२ गाथा।

गाथा-८२

एरिसभेदबभासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं ।
तं दिढकरणणिमित्तं पडिक्कमणादी पवक्खामि ॥८२॥

ईदृग्भेदाभ्यासे मध्यस्थो भवति तेन चारित्रम् ।
तद्दृढीकरणनिमित्तं प्रतिक्रमणादिं प्रवक्ष्यामि ॥८२॥

अत्र भेदविज्ञानात् क्रमेण निश्चयचारित्रं भवतीत्युक्तम् । पूर्वोक्तपञ्चरत्नाञ्चितार्थपरिज्ञानेन पञ्चमगतिप्राप्तिहेतुभूते जीवकर्मपुद्गलयोर्भेदाभ्यासे सति, तस्मिन्नेव च ये मुमुक्षवः सर्वदा सन्स्थितास्ते ह्यत एव मध्यस्थाः तेन कारणेन तेषां परमसंयमिनां वास्तवं चारित्रं भवति । तस्य चारित्राविचलस्थितिहेतोः प्रतिक्रमणादिनिश्चयक्रिया निगद्यते । अतीतदोषपरिहारार्थं यत्प्रायश्चित्तं क्रियते तत्प्रतिक्रमणम् । आदिशब्देन प्रत्याख्यानादीनां सम्भवश्चोच्यत इति ।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह

(अनुष्टुप्)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥

तथाहि ह

इस भेद के अभ्यास से माध्यस्थ हो चारित लहे ।

चारित्र दृढ़ता हेतु हम प्रतिक्रमण आदिक अब कहें ॥८२॥

अन्वयार्थः—[ईदृग्भेदाभ्यासे] ऐसा भेद-अभ्यास होने पर [मध्यस्थः] जीव मध्यस्थ होता है, [तेन चारित्रम् भवति] इसलिए चारित्र होता है । [तद्दृढीकरणनिमित्तं] उसे (चारित्र को) दृढ़ करने के निमित्त से [प्रतिक्रमणादिं प्रवक्ष्यामि] मैं प्रतिक्रमणादि कहूँगा ।

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से निश्चय-चारित्र होता है, ऐसा कहा है।

पूर्वोक्त पंच रत्नों से शोभित अर्थपरिज्ञान (-पदार्थों के ज्ञान) द्वारा पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर, उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा संस्थित रहते हैं, वे उस (सतत भेदाभ्यास) द्वारा मध्यस्थ होते हैं और उस कारण से उन परम संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है। उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है। अतीत (-भूत काल के) दोषों के परिहार हेतु जो प्रायश्चित्त किया जाता है, वह प्रतिक्रमण है। 'आदि' शब्द से प्रत्याख्यानानादि का सम्भव कहा जाता है। (अर्थात् प्रतिक्रमणादि में जो 'आदि' शब्द है, वह प्रत्याख्यान आदि का भी समावेश करने के लिये है)।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १३१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

'[श्लोकार्थः—] जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं; जो कोई बँधे हैं, वे उसी के (भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं।'

गाथा-८२ पर प्रवचन

एरिसभेदबभासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।

तं दिढकरणणिमित्तं पडिक्कमणादी पवक्खामि ॥८२॥

इस भेद के अभ्यास से माध्यस्थ हो चारित लहे।

चारित्र दृढ़ता हेतु हम प्रतिक्रमण आदिक अब कहें ॥८२॥

यह मुनिराज पंचम काल के सन्त को कहते हैं। पंचम काल में ऐसा हो सकता है। आहाहा! निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान, सत्य प्रतिक्रमण, सत्य प्रत्याख्यान, सत्य वन्दन, सत्य भक्ति, सत्य समाधि, सतयोग, उसे अब मैं कहूँगा। आहाहा! पंचम काल के प्राणी भी उसे पहुँच सकेंगे, इसलिए उसे मैं कहूँगा—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा सहारा न ले कि पंचम काल है, हीनसंहनन है। संहनन हीन है, ऐसा है, वैसा है – ऐसा रहने दे, भाई! वस्तु तो जैसी तीर्थकर के समवसरण में गया, तब पूर्ण थी, वैसी ही पूर्ण अभी है। आहाहा! उस पूर्ण में कोई अपूर्णता और विपरीतता तो एक अंश भी आयी

नहीं है। आहाहा! परन्तु उस पूर्ण की प्रतीति और पूर्ण का अनुभव (होना), वह कोई अलौकिक बातें हैं, भाई! आहाहा! इसके बिना इसका संसार का परिभ्रमण के चक्र का अन्त नहीं आएगा, प्रभु! भले मना ले, बाहर से कुछ प्रवृत्ति करे, दया, दान, व्रत, भक्ति और मना ले कि इसमें से अपने को होगा। यह संसार है। उसमें नहीं आया था? समाधि में आया था, भाई! तन, संसार है। आया था न? यह शरीर, वह संसार है, ऐसा कहा है। राग की तो बात क्या करना? आहाहा! वह तो जड़ है, अजीव है, मिट्टी है, जो आत्मा की पर्याय में भी नहीं। आत्मा के द्रव्य-गुण में तो नहीं परन्तु आत्मा की पर्याय में शरीर नहीं। शरीर तो शरीर में है। आहाहा! उस तन को संसार कहा। आहाहा! दो गाथाएँ आयी थीं। कल सञ्ज्ञाय में। तन-शरीर है तो संसार है, तो राग तो संसार है ही, भाई! आहाहा! जब आत्मा की पर्याय में चीज नहीं, उसे संसार कहा.. आहाहा! तो उसकी पर्याय में राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम पर्याय में हैं, (वह) संसार है। आहाहा! उससे रहित प्रभु मुक्तस्वरूप अन्दर है। उसे यहाँ कहते हैं।

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा... शरीर से भिन्न, राग से भिन्न, भेद से भिन्न। आहाहा! परम सत्य परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकर का परम सत्य कोई अलौकिक है, भाई! आहाहा! उसे अभी विकृत कर दिया है। आहाहा! जिसे इन्द्र सुनने जाते हैं, जिसे गणधर सुनते हैं, एकावतारी इन्द्र उन प्रभु के निकट सुनने जाते हैं, वह बात कैसी होगी? भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा... राग से भिन्न, रंग से भिन्न और भेद से भिन्न। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु परमात्मस्वरूप ही अपना है.. आहाहा! कैसे जँचे? उस परमात्मस्वरूप को भेदविज्ञान द्वारा... शरीर-वाणी तो मैं नहीं, परन्तु दया, दान के राग के परिणाम, वह मैं नहीं और उसमें गुणस्थान के, जीवस्थान के भेद पड़ते हैं, वह भी मैं नहीं। आहाहा! अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसे भेदज्ञान द्वारा। आहाहा! है?

भेदविज्ञान द्वारा... ऐसा नहीं कहा कि राग द्वारा, निमित्त द्वारा तुझे मुक्ति प्राप्त होगी। आहाहा! **भेदविज्ञान द्वारा...** प्रभु पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, उसे पर से भेद करके। आहाहा! अब जिससे भिन्न पड़ना है, उस व्यवहार से निश्चय कैसे होगा? शास्त्र में लेख आवे, वह

तो ज्ञान कराने के लिए (बात है)। आहाहा! जिससे भेद करना है, उससे आत्मा की प्राप्ति होगी.. अरे! प्रभु! वह किस प्रकार बनेगा? इसलिए यहाँ **भेदविज्ञान द्वारा...** लिया है। निमित्त से भिन्न, दया, दान और भक्ति के परिणाम से भिन्न तथा एक समय की पर्याय से भी अभेद वह भिन्न चीज़ है। आहाहा!

यह तो दुनिया का करना या यह करना, अब यह क्या करना? इन स्त्री-पुत्र को सम्हालना कि.. बीस वर्ष की युवा अवस्था होती है, स्त्री से विवाह करे, लड़का हो, उसे सम्हालना, पालन करना। क्या करना? अब यह करना या वह करना? होली। आहाहा! अरे! प्रभु! यह तो होली अनन्त काल से की है न, प्रभु! उस होली को तो अब यहाँ तो शान्त करना है। आहाहा!

कहते हैं कि **भेदविज्ञान द्वारा क्रम से...** क्रम से। आहाहा! पहले राग से भिन्न करे, फिर पर्याय के भेद से भिन्न करे। आहाहा! इस **क्रम से निश्चय-चारित्र होता है...** इस क्रम से निश्चय-चारित्र होता है। **ऐसा कहा है**। अरे रे! यह बात तो पूरी पड़ी रही। निश्चय-चारित्र नहीं, अभी तो शुभयोग ही होता है, शुभराग होता है, लो। आहाहा! श्रुतसागर है, शान्तिसागर के मार्गानुसारी। धर्मसागर आचार्यपद में है और इन्हें आचार्यपद नहीं मिला। वांचन इनका अधिक है। वे ऐसा कहते हैं। समाचार-पत्र में आया था। अभी तो साधु को या सबको शुभयोग ही होता है। यहाँ प्रभु कहते हैं कि शुभयोग है, वह संसार है। अर र! अभी संसार ही होता है, संसाररहित धर्म नहीं होता, (ऐसा) उसका अर्थ हुआ। आहाहा! अभी कान्तिभाई वहाँ गये थे। चातुर्मास वहाँ है न? उस राजमल का गाँव कौन सा? कुचामन, वहाँ चातुर्मास था। राजमल इसके मित्र हैं। कान्तिभाई को उनकी श्रद्धा का मेल खाता है। आहाहा! वहाँ गये थे, थोड़ी बात की, उसमें फिर सुनी परन्तु एक आर्यिका ऐसा बोली कि यह तो तुम सोनगढ़ की बातें करते हो। लो! सच्ची बात होवे, वह सोनगढ़ की और यह उपचारी तथा खोटी बात होवे, वह हमारी - घर की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **भेदविज्ञान द्वारा...** चारित्र कैसे होता है कि पहले राग से भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन होता है; पश्चात् राग की अस्थिरता रहे, उससे छूटकर अन्दर स्थिर हो, तब चारित्र होता है। आहाहा! ऐसा काम बड़ा। कोई सरल नहीं होगा काम? रत्न का हो, हीरा का हो और यह भी हो। दो नहीं होंगे? आहाहा! उसमें

दो-चार लड़कियाँ हों और दो-चार लड़के हों, उनका विवाह करना, उन्हें अच्छी जगह डालना, उन्हें अच्छी जगह अर्थात् इसने माना हुआ अच्छा। अच्छी जगह संसार में है कहाँ? आहाहा!

मुमुक्षु : होवे उसका क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है क्या ? इसके पास कहाँ है और इसके कहाँ हैं वे ?

मुमुक्षु : इसके भले न हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके कब ? सुमनभाई, सुमनभाई में है। रामजीभाई के पास वह कब आया है ?

मुमुक्षु : संयोग में तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग तो संयोग का अर्थ क्या हुआ ? संयोग का अर्थ भिन्न है, संयोग का अर्थ भिन्न है। संयोग का अर्थ एकत्व है, ऐसा नहीं आया ? संयोग न ? यह अंगुली और इस अंगुली का संयोग है। संयोग अर्थात् ये तो दोनों भिन्न पड़े हैं। इस अंगुली में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है वे इसके हैं और इस अंगुली का इसे संयोग है। संयोग अर्थात् भिन्न है। एक नहीं। उस एक के यह नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा.. आहाहा! चीज़ को तो संयोग कही है, परन्तु पुण्य-पाप के भाव को संयोगभाव कहा है। आता है न, कर्ता-कर्म में। ६९-७० गाथा। संयोगभाव है। वस्तु तो संयोग, वह तो बाहर रह गयी। आहाहा! परन्तु पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के परिणाम को संयोगीभाव कहा है। वह संयोग है, स्वभाव नहीं। आहाहा! अरे! भगवान तो वहाँ तक ले गये हैं। वह संयोग बाहर की चीज़ तो कहीं उसके कारण से है; विकार भी संयोगी उसके कारण से है। आहाहा! परन्तु प्रभु त्रिकाली नित्यानन्द के नाथ में पर्याय की उत्पत्ति होती है, वह संयोग है। पंचास्तिकाय में है। आहाहा! क्योंकि वस्तु जो है, उसके साथ यह तो निर्मल पर्याय है, वह संयोगी है। उत्पाद है, वह ध्रुव में संयोग है। आहाहा! अरे रे! सुने कहाँ ?

पंचास्तिकाय में पाठ है। अठारहवीं गाथा। भगवान आत्मा जो नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप जो एकरूप त्रिकाल है, उसमें पर्याय की उत्पत्ति हो, वह संयोग है और पर्याय

का व्यय हो, वह वियोग है। आहाहा! उस ध्रुव के साथ पर्याय का संयोग-वियोग है। आहाहा! ऐसी जो ध्रुववस्तु है, वहाँ दृष्टि करनी है, कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! नया लगे; नहीं सुना हो, इसलिए सूक्ष्म लगे, परन्तु मार्ग यह है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि के लिए है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि, परन्तु पहले श्रद्धा और ज्ञान समकित पहला है या नहीं? पहला भेदज्ञान राग से भेद करना, वह स्वभाव समकिति में है या नहीं? पश्चात् यह तो विशेष स्थिरता.. अस्थिरता से भिन्न करके चारित्र, वह चारित्र की व्याख्या है।

मुमुक्षु : पूरा शास्त्र आचार्यदेव ने स्वयं के लिए लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्यों के लिए ही लिखा है। स्वयं के लिए क्या लिखे? वह तो अपनी भावना के लिए कहा है। निज भावना के लिए। परन्तु लिखा है दूसरे के हेतु का। दूसरे समझे कि ऐसी भावना सन्तों की थी। आहाहा! मैंने मेरी भावना के लिए नियमसार बनाया है, ऐसा पाठ अन्तिम गाथा में है। आहाहा! है अन्तिम, देखो! १८७ गाथा है।

‘णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं। णच्चा जिणोवदेसं’ जिन (देव) का उपदेश सुनकर, जानकर मैंने यह किया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के मुनि हैं, वे कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिए यह बनाया है। वह भी ‘णच्चा जिणोवदेसं’ तीन लोक के नाथ के उपदेश को जानकर मैंने यह बनाया है। है? ‘पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं’ पूर्व और पर में दोषरहित है यह। आहाहा! समकिति को भी राग से भिन्न करके भेदज्ञान करना है। चारित्रवाले को अस्थिरता से भिन्न करके स्थिरता का भेदज्ञान करना है। आहाहा! भेद अभ्यास है न? वह भी इसमें आता है। २०५। २०५ पृष्ठ है न? उसमें यह आता है।

‘एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ’ १०६ गाथा है। १०६ गाथा है। है? ‘एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं।’ ठीक। जीव और कर्म दो का भेदज्ञान जो अन्दर करे, उसे ‘पच्चक्खाणं सक्कदि’ उसे सच्चा प्रत्याख्यान हो सकता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। परन्तु क्या हो? अनादि से भटकता है और बाहर की प्रवृत्ति के कारण इसे निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! भेद-अभ्यास... १०६ गाथा। पृष्ठ २०५, गाथा १०६। भेद-अभ्यास।

आहाहा! वहाँ तो जीव और कर्म का भिन्न अभ्यास कर, ऐसा कहते हैं। यहाँ भी पहले से अन्त तक का भिन्न अभ्यास कर, ऐसा कहा है। वह है, वह निश्चयप्रत्याख्यान है। आहाहा! गजब! इस प्रकार का उपदेश! पकड़ने में कठिन पड़े। कर तो कब सके। आहाहा! मस्तिष्क में, सिर में उतारना कि यह क्या कहते हैं ?

ऐसा शरीर, साथ में कर्म, साथ में राग, साथ में पुण्य-पाप और पर्याय का भेद। ऐसी वस्तु होने पर भी कहते हैं कि उस भेद-राग और वस्तु से अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! तू जिसे परमात्मा का आत्मा कहलाता है, वह तू अत्यन्त भिन्न है। परमात्मा का स्वरूप ही तेरा है। यदि परमात्मा का स्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मपना आएगा कहाँ से ? कहीं बाहर से आता है ?

छोटी पीपर में चौंसठ पहरी पीपर की चरपराहट भरी है। चरपराई-चरपराई। वह छोटी पीपर नहीं होती ? छोटी पीपर ? काली। वह चौंसठ पहरी अन्दर चरपराई, चरपराई भरी है। उसे घोंटते हैं, तब आती है-वह कहाँ से आती है ? घोंटने से आती है ? घोंटने से आवे तो लकड़ी और कोयले को घोंटे नहीं ? उसमें है ? चौंसठ पहरी अर्थात् सोलह आना। रुपया, रुपया (परिपूर्ण) चरपराहट का भाव अन्दर पड़ा है और हरा रंग पूरा पूर्ण... पीपर अवगाहन छोटा, रंग काला तो भी उसके स्वभाव में सोलह आना चरपराई और चरपराहट और हरा रंग पड़ा है।

इसी प्रकार प्रभु इस देह-प्रमाण होने पर भी तथा राग और द्वेष की पर्याय में दिखने पर भी, वह भगवान आत्मा उनसे अत्यन्त भिन्न है। सोलह आना अर्थात् उसमें पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता अन्दर भरी है। अरे रे! यह बाहर की बात माने, परन्तु स्वयं कितना है, (उसकी खबर नहीं होती)। आहाहा!

भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... कहा न ? क्रम से कहने पर पहले राग से भिन्न करके सम्यग्दर्शन करे। पश्चात् राग की अस्थिरता से भिन्न करके स्थिरता करे। क्रम से कहा न ? आहाहा! यह तो भगवान सन्तों के वचन हैं। दिगम्बर मुनियों के वचन हैं। वे तो केवली के मार्गानुसारी हैं। भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थकर के पुत्र हैं वे तो। गणधर को पुत्र कहा है। सन्त नन्दन हैं। परमात्मा के नन्दन, जिनेश्वर के नन्दन हैं। समकित्ती को जिनेश्वर के नन्दन कहा है तो वे (मुनि) तो बड़े पुत्र हैं। आहाहा! मुनि अर्थात्, बापू! यह तो अभी

तो क्या कहना ? आहाहा ! अरे ! सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, वहाँ मुनिपना तो कहाँ रहा ? आहाहा ! कठिन काम, भाई !

यहाँ तो परमात्मा का विचार करने पर सब परमात्मा होओ । कोई भी प्राणी संसार में न रहो । आहाहा ! परमात्म पद को प्राप्त करो, भाई ! परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है । ऐसी स्थिति को समझे बिना, माने बिना, स्थिर हुए बिना, परमात्म पद प्राप्त नहीं होगा, भाई ! आहाहा !

यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... शब्द प्रयोग किया है न ? पहले राग के विकल्प और भेद से भिन्न अभेद है, ऐसी दृष्टि / सम्यग्दर्शन करना, पश्चात् जो अस्थिरता का राग है, उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना । ऐसे **क्रम से निश्चय-चारित्र होता है...** इसमें क्रम से निश्चय-सच्चा चारित्र होता है । आहाहा ! अभी पहले से जिसे भेदज्ञान नहीं, राग से जिसे भेदज्ञान नहीं, उसे तो चारित्र होता ही नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? **भेदविज्ञान द्वारा...** आहाहा ! यह श्लोक रखेंगे । फिर अन्दर श्लोक कहेंगे, हों ! बाद में श्लोक कहेंगे । संवर अधिकार का, समयसार का । अभी तक जो कोई सिद्ध हुए, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए । है देखो पीछे । बाद के श्लोक में । **जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;**... यह संवर अधिकार का श्लोक है । पीछे है । है ? अभी तक जितने मुक्ति को प्राप्त हुए परमात्मा—णमो सिद्धाणं... जितने सिद्ध हुए, वे सब भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं । कोई राग से, विकार से और व्यवहाररत्नत्रय से मुक्त हुए हैं, ऐसा नहीं है । आहाहा ! व्यवहार का विकल्प है, उससे भी भेद करके सम्यग्दर्शन होता है । पश्चात् अस्थिरता का भेद करके स्थिर हुए हैं । आहाहा ! ऐसा स्वरूप है । मार डाले परन्तु यह जगत की जंजाल । बाहर की चमक..

कहा नहीं था ? एक बार हम गये थे । है न वहाँ ? मणिभाई मुम्बई में है । पाँच-छह करोड़ रुपये । आहार करने गये थे । फिर कितने ही वे हॉल... तुम्हारे क्या कहलाते हैं ? हॉल में मखमल बिछाया हुआ । पाँच लाख रुपये का तो वह होगा । फर्नीचर इतना । अपने शान्ताबहिन की बहिन के नन्दोई हैं । वहाँ मुम्बई में रहते हैं । एक बार वहाँ आहार करने गये थे । एक भाई था । गुना का एक भाई बहुत अच्छा लड़का था, होशियार था । विजय । बहुत लड़का वैसा था । प्रेम बहुत था परन्तु एकदम उसे अन्दर से हो गया । फिर उसे दर्शन देने गये थे । वह जमशेदपुर का वहाँ है टाटा का, वहाँ नौकर था । एक वर्ष का विवाहित । बेचारे

को उसकी माँ ने किडनी दी, परन्तु देह छूट गयी। एक वर्ष का विवाहित। बापू! कब देह को क्या (होगा, क्या खबर है)। यह हड्डियाँ चमड़ी। कब कहाँ होगा? यहाँ होगा या यहाँ होगा या यहाँ होगा। आहाहा! वह रूपवान लगे परन्तु वे सब हड्डियाँ हैं। आहाहा!

एक अभी वहाँ स्वाध्यायमन्दिर में एक कौवा कुत्ते का मुख पुरानी हड्डी का... बाहर है न बाहर उस ओर का भाग। स्वाध्यायमन्दिर का। दरवाजे के बाहर। वहाँ हड्डी का इतना पड़ा हुआ। कुत्ते का पुराना सड़ गया हड्डी का मुख। कौवा लाया होगा। वहाँ छोड़कर भाग गया। वहाँ पड़ा था। फिर भंगिन आयी थी, बेचारी ले गयी। आहाहा!

यह हड्डियाँ, यह चमड़ी.. अब उसमें अपनापन मानना और उसके रूप में मोह। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ उलझ गया? तुझमें आनन्द है न! इस राग से भिन्न कर न, प्रभु! ऐसा कहते हैं। वह राग है, वह दुःख है, प्रभु! यह विषय का राग, इज्जत का राग, पैसे का राग, कमाने का राग, वह दुःख है, आकुलता है। माणेकचन्दभाई! आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा होवे तो ही लोग सुखी होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा में धूल भी सुख नहीं। हैरान-हैरान है बेचारा। पूरे दिन सिरपच्ची। इसका यह लाये, इसका यह आया। उसमें छह-छह लड़के, सात-सात लड़के हों, सब कमाते हों और दो-दो लाख की महीने में आमदनी करते हों। मानों ओहोहो! हम कहाँ चढ़े हैं? कितने ऊँचे चढ़े? कितने नीचे उतरे हैं, इसकी खबर नहीं है। गरीब व्यक्ति भी यदि समकित प्राप्त करे तो वह ऊँचा चढ़ गया है और यह सब मिथ्यात्व भ्रान्ति में पड़े हैं, वे सब नीचे पड़े हैं।

यहाँ यह कहते हैं, **भेदविज्ञान द्वारा...** यह आया न? जो कोई सिद्ध हुए, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए, जो कोई बँधे, उसके-भेदविज्ञान के अभाव से बँधे हैं, ऐसा कहा। कर्म से बँधे हैं और कर्म के कारण (बँधे हैं), ऐसा नहीं कहा। पर से भिन्न करने के अभाव से बँधे हैं और जितने छूटे हैं, वे पर से भिन्न करके छूटे हैं। इसलिए भेदज्ञान की पहली बात इसमें ली है। विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७९, गाथा-८२, बुधवार, कार्तिक शुक्ल ११, दिनांक ३१-१०-१९७९

नियमसार, गाथा ८२।

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से निश्चय-चारित्र होता है... क्या कहते हैं? भेदज्ञान द्वारा भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु, राग / विकल्प से भिन्न है, क्योंकि नवतत्त्व में पुण्य-पाप तत्त्व, वह आत्मा से भिन्न है। इस भेदज्ञान द्वारा। व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव, वह राग है। राग से भगवान आत्मा को भेदज्ञान द्वारा-भिन्नता द्वारा.. आहाहा!

यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... क्रम से क्यों लिया है? कि पहले तो आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है। राग और पुण्य-पाप का विकल्प जो है, उससे भिन्न वस्तुस्वभाव शुद्ध परिपूर्ण ऐसा जो आत्मा, (उसका) राग से भिन्न होकर अनुभव होता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। लोगों को बात कठिन पड़ती है।

यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव है, वह विकार की प्रवृत्तिरूप भाव है। उस प्रवृत्ति से निवृत्ति और शुद्धस्वभाव में प्रवृत्ति। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। जन्म-मरण के अन्त लाने की बात है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की आज्ञा में तो यह है। प्रभु! तू शुद्धचैतन्यघन है न! इस व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग है, वह तो आस्रव है, बन्ध का कारण है। उससे भेदज्ञान करना अर्थात् उस ओर का लक्ष्य छोड़ना और शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव से भरपूर प्रभु, उस ओर झुकने से राग से भिन्न होकर प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त काल हुआ परिभ्रमण करते हुए। अपना निज स्वरूप, उस राग के विकल्प से भिन्न शुरुआत में करना चाहिए, वह किया नहीं। आहाहा! पहले वह करना है। आहाहा! यह देह तो मिट्टी, जड़, धूल है। कर्म, वह मिट्टी-अजीव धूल है। वह तो अपनी पर्याय में वह शरीर और कर्म है नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था और द्रव्य-गुण अर्थात् त्रिकाली ध्रुव। पर्याय में शरीर और कर्म नहीं है। पर्याय में राग-द्वेष मिथ्याभ्रम और भ्रान्ति, यह पर्याय में है। इससे भेद करना। इसका अर्थ कि पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि शुद्ध चैतन्य पूर्ण स्वरूप का अनुभव करना, यह प्रथम में प्रथम भेदज्ञान का क्रम है। आहाहा! ऐसा स्वरूप

है। दूसरों को कठिन लगे। दूसरा मार्ग है या यह और कहाँ से निकाला ? ऐसा बेचारे कहते हैं, कहते हैं। क्या हो ? भाई ! मार्ग तो अनादि का यह है।

तीर्थकर, केवली, अनन्त परमात्माओं का यह फरमान है। यह कहेंगे, मैंने मेरी भावना के लिए यह बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य अन्तिम गाथा में कहते हैं। मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। तुम्हें इसमें से समझना हो तो समझ लो। आहाहा ! मेरी भावना तो राग से भिन्न ऐसा मेरा आत्मा है, ऐसा मेरा अनुभव है और आगे क्रम-क्रम से जो राग की अस्थिरता है, उसे भी छोड़कर स्वरूप की दृष्टि में ज्ञायक चिदानन्द आया, उसमें राग से भिन्न होकर ज्ञायकभाव में स्थिर होना, रमणता करना, वह चारित्र है। आहाहा ! कठिन काम है। नग्नपना या पंच महाव्रत के परिणाम, वे कोई चारित्र नहीं हैं। नग्न (शरीर की दशा) तो जड़, मिट्टी, धूल है। वह आत्मा में नहीं है।

आत्मा में पर्याय में विकार है। तो कहते हैं कि उस विकार से भेद करना। आहाहा ! पर्याय / अवस्था में पुण्य-पाप के भाव हैं, उन्हें अपना मानकर अनादि से मिथ्यात्व भ्रम में भटकता है, तो एक बार प्रभु ! उससे भेदज्ञान कर। आहाहा ! जैसे कंकर से गेहूँ भिन्न है। कंकर। गेहूँ, गेहूँ कंकर से भिन्न है; इसी प्रकार अन्दर पुण्य और पाप के भाव मलिनरूपी कंकर से प्रभु तो भिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ? यह 'क्रम' शब्द लिया है। है ?

भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... क्रम से अर्थात् सम्यग्दर्शन के पहले एकदम चारित्र नहीं होता। आहाहा ! सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन, पूर्ण आनन्ददल प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान का अनन्त स्वभाव, बेहद जिसका ज्ञान-आनन्दस्वभाव, ऐसी चीज़ जो अनन्त गुण का धाम। भगवान अनन्त गुण का गोदाम है। तुम्हारे गोदाम में तो करोड़-अरब की चीज़ रहती है। इस गोदाम में तो अनन्त गुण रहते हैं। आहाहा ! कितने अनन्त ? कि जिस अनन्त का अन्त नहीं। आहाहा ! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. उसे अनन्त गुणा गुणित करो तो भी पार नहीं आता, इतने अनन्त गुण अन्दर हैं। ध्रुव। अनन्त गुण का पिण्ड, प्रभु ! प्रथम में प्रथम क्रम में चारित्र प्राप्त होने से पहले, उस राग से भिन्न होकर, चैतन्य की दृष्टि / सम्यग्दर्शन उत्पन्न करना, वह प्रथम मार्ग है। माणिकलालभाई ! ऐसा स्वरूप है, भाई ! क्या हो ? लोगों ने तो यह सुना नहीं होगा। यह करो.. यह करो.. यह करो.. व्रत करो, तप करो, अपवास करो, यह करो। यह तो अनन्त

बार किया है, भाई! यह तो राग की क्रिया है। धर्म के नाम से धमाधम चली है। राग की क्रिया में धर्म माना है।

जो तत्त्व ज्ञायकतत्त्व से भिन्न राग पुण्यतत्त्व है। नव तत्त्व है न? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत के परिणाम तो पुण्यतत्त्व है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह पापतत्त्व है। दोनों आस्रवतत्त्व है, दोनों बन्ध है। आहाहा! इन पुण्य-पाप के आस्रव और बन्धतत्त्व से भगवान् अन्दर अबन्धस्वरूप चिदानन्द है, (वह भिन्न तत्त्व है)। शब्दों से पार नहीं पड़ता, प्रभु! वस्तु ऐसी है। आहाहा!

अपनी सत्ता पूर्ण है, उसका अवलम्बन लेकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रथम क्रम में प्रगट करना, यह क्रम है। और इस क्रम के पश्चात् निश्चय-चारित्र होता है... पश्चात् राग की अस्थिरता रहती है। आत्मा को राग से भिन्न किया होने पर भी राग की अस्थिरता रहती है। अतः उस राग की अस्थिरता से भी भिन्न होकर ज्ञायक चैतन्यमूर्ति जो दृष्टि में आया है, वह ज्ञायकभाव जो दृष्टि में आया है, उसमें लीन होना, राग से भिन्न होकर लीन होना, वह चारित्र है। अब ऐसी व्याख्या कठिन पड़ती है। बनियों को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती और ऐसी बातें। आहाहा! समझ में आया?

पहली लाईन, लीटी को क्या कहते हैं? पंक्ति। पहली लाईन में इतना भरा है। पश्चात् कहते हैं कि पूर्वोक्त पंच रत्नों से शोभित... पाँच गाथा कही न? पंच रत्न गाथा। गाथा को रत्न कहा है। यह आत्मा / रत्न को बतलानेवाली है, इसलिए पंच रत्न कहा है। भगवान् सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द और प्रभुता के स्वभाव से अतीन्द्रिय प्रभुता-ईश्वरता के स्वभाव से भरा प्रभु है। इन पंच रत्न को रत्न कहा था। इन पंच रत्नों से शोभित... पंच रत्नों से शोभित। आहाहा!

अर्थपरिज्ञान (-पदार्थों के ज्ञान) द्वारा... पदार्थ अर्थात् भगवान् आत्मा और पुण्य-पाप भी पदार्थ हैं। नौ पदार्थ हैं। नौ पदार्थों में अपने आत्मा का पदार्थ ज्ञान करके, पुण्य-पाप पर है, ऐसा ज्ञान करके पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य अपनी बात करते हैं। पंचम काल में दो हजार वर्ष पहले हुए। भगवान् के पास गये थे। सीमन्धर भगवान् विराजते हैं, वहाँ गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे। आकर यह सन्देश लाये

हैं। आहाहा! कोई व्यक्ति परदेश में जाए तो कहे, साहेब! क्या लाये? हमारे लिए क्या लाये? इसी प्रकार उस परदेश में परमात्मा के पास गये थे। आहाहा! भरतक्षेत्र के मनुष्य पूछते हैं, प्रभु! तुम क्या लाये? वहाँ जाकर क्या लाये? तो कहते हैं, यह लाये। आहाहा! ऐई!

पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत... चार गति नहीं। नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति, यह तो चार गति भटकने के दुःख हैं। चार गति, वह तो दुःख है। आहाहा! **पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत, ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर,...** आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु तथा पुण्य और पाप सब पुद्गलस्वरूप, ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर,... आहाहा! भेद-अभ्यास का अर्थ कि भेद का अनुभव करने पर.. आहाहा! अन्दर परमात्मस्वरूप आत्मा 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो हि है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' जिन सो ही है आत्मा, जिन वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। अरे! कैसे जँचे? आहाहा! जिन सो ही है आत्मा—भगवान आत्मा जिनस्वरूपी है। पुण्य-पाप के राग से भिन्न है। 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो हि है कर्म।' पुण्य और पाप आदि दो भेद किये न? दो भेद किये न?

जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास... आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो हि है कर्म।' यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, यह सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! 'यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' तीन लोक के नाथ वीतराग परमात्मा की वाणी का सार यह है। आहाहा! **जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर,...** भेदज्ञान से अनुभव किये जाने पर। आहाहा! **उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा संस्थित रहते हैं,...** राग से भिन्न होकर आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् उस स्वरूप में स्थित रहते हैं। आहाहा! मुमुक्षु-मोक्ष के अभिलाषी जीव। **उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा संस्थित रहते हैं,...** सर्वदा। आहाहा! चारित्र की व्याख्या चलती है न? आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द में सर्वदा संस्थित। सर्वदा और संस्थित। सर्व काल में अन्दर आनन्द में विशेष रमण करते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में स्थित रहते हैं। वह पंचम गति का हेतु है। सिद्ध का हेतु यह है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? आहाहा! **जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर, उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा...** आत्मा में लीन रहते हैं। आहाहा! वीतरागस्वभाव में लीन रहते हैं, वह चारित्र है। आहाहा! **मुमुक्षु सर्वदा**

संस्थित रहते हैं,.. सर्वदा और सं-सम्यक् प्रकार से स्थित। आहाहा! आनन्द का नाथ भगवान् अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उसके स्वाद में लीन रहते हैं। आहाहा! अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन रहना, वह चारित्र है। अरे! ऐसी व्याख्या।

वे उस (सतत भेदाभ्यास) द्वारा... ऐसा सतत अभ्यास। आहाहा! निरन्तर रटन। राग से मेरी चीज भिन्न है, ऐसी निरन्तर रटन अन्दर में करते-करते अन्दर में संस्थित हो जाना। है ? (सतत भेदाभ्यास) द्वारा मध्यस्थ होते हैं.. मध्यस्थ अर्थात् वीतरागभाव में स्थिर होते हैं। आहाहा! यह पंचम काल के सन्त, पंचम काल के श्रोता को कहते हैं कि मेरी भावना तो यह है। ऐसा मार्ग है। आहाहा! सर्वत्र से वृत्ति उठा ले और जहाँ भगवान् शुद्ध चैतन्य प्रभु है, वहाँ दृष्टि लगा दे। ज्ञानस्वरूपी, आनन्दस्वरूपी प्रभु को दृष्टि में पकड़ ले और पकड़कर उसमें स्थित हो जा। सतत्-निरन्तर संस्थित हो जा। आहाहा! अरे! पंचम काल है न, प्रभु! काल-फाल आत्मा को बाधक नहीं है। आहाहा!

मध्यस्थ होते हैं... मध्यस्थ अर्थात् वीतरागभाव। किसी अनुकूल-प्रतिकूल में राग-द्वेष नहीं। मध्यस्थ है। सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् स्वरूप में लीनता करके मध्यस्थ हुआ, वीतराग हुआ। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। आहाहा! पंचम काल के सन्त, उसकी टीका करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (टीका करते हैं)। आहाहा! यह नियमसार पढ़ा भी नहीं होगा। है ? रखा है ? घर में रखा तो होगा। है या नहीं ? होगा तो अवश्य न! आहाहा! रत्न भरे हैं। नियमसार में तो अन्तर के रत्न हैं। आहाहा!

अपने आनन्द में सतत् स्थिर होता है। आहाहा! वह मध्यस्थ होते हैं और उस कारण से उन परम संयमियों को... आहाहा! इस कारण से परम संयमियों को, अन्तर आनन्द में स्थित रहने से उन परम संयमियों को। वे संयमी हैं। आहाहा! है ? वास्तविक चारित्र होता है। पहले ज्ञान तो करना पड़ेगा न कि चारित्र किसे कहना ? उसे वास्तविक चारित्र सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में आया और कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं (कहते हैं), मेरी भावना के लिए मैंने तो यह बनाया है। आहाहा! बनाया है। थोड़ा गुजराती आ जाता है। आहाहा! गाथा बहुत अलौकिक है। यह तुम्हारे पैसे, वह सब धूल है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! करोड़पति, दो करोड़पति, दस करोड़पति है। यह तो आत्मपति है।

आहाहा! स्वस्वामी सम्बन्ध। पूर्णानन्द का नाथ स्व-अपना स्वामी, उस स्व का स्वामी होना, इसका नाम दर्शन और चारित्र है। आहाहा! जिसमें राग, दया, दान का भी स्वामी नहीं। प्रभु! मार्ग कठिन है, भाई! आहाहा! अनन्त काल गँवाया है। कुछ-कुछ हल्का मार्ग और धीरे से आगे जाया जाए, ऐसा करके कुछ उल्टे रास्ते चढ़ गया है। मूलमार्ग में चढ़ा नहीं। आहाहा!

श्रीमद् में आता है न? श्रीमद् में, नहीं? उसमें आया है 'मूल मारग सुनो जिन का रे' श्रीमद् में आता है। 'मूल मारग सुनो जिन का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख...' श्रीमद् राजचन्द्र, गृहस्थाश्रम में थे। तैंतीस वर्ष में देह छूट गयी। बाईस वर्ष में आत्मज्ञान हुआ था। लाखों का जवाहरात का धन्धा था परन्तु अन्दर निर्लेप दृष्टि में जैसे नारियल में गोला पृथक् रहता है, नारियल का गोला; उसी प्रकार समकित्ती राग से भिन्न रहता है। आहाहा! 'मूल मारग सुनो जिन का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख...' तेरी परिणति जो पर्याय है, उसे द्रव्य सन्मुख अखण्ड कर। आहाहा! लो, ऐसा कहते हैं। मेरी भक्ति करना, उसमें तेरा कल्याण है, ऐसा नहीं कहते। तेरी वृत्ति जो परिणति है पर्याय की, उसे अन्दर अखण्ड सन्मुख कर। आहाहा! यह जैन का मूल मार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव का यह हुक्म और आज्ञा है। आहाहा!

यह कहते हैं, ऐसे संयमी परम संयमियों... आहाहा! अरे! पंचम काल के मुनि कहते हैं कि हम परम संयमी हैं। आहाहा! जिन्हें अन्दर रमणता जमी है। अतीन्द्रिय आनन्द में जैसे... आहाहा! गन्ना.. गन्ना, गन्ने का रस होता है न? गटक-गटक पीते हैं, हमारी गुजराती में (गन्ने को) शेरडी कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? गन्ना? उसका रस गटक-गटक पीते हैं। इसी प्रकार कहते हैं, धर्मात्मा संयमी अतीन्द्रिय आनन्द का रस गटक-गटक पीते हैं। आहाहा!

द्रव्यदृष्टि प्रकाश में आया है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न? तुम्हें दिया है न? पढ़ा है या नहीं? पढ़ा नहीं होगा, रखा होगा।रखा। भाई को दिया था न? सोगानी। बापू ने पढ़ा है या नहीं? सेठ को नहीं दिया? उसमें है। पुस्तक है न? सोगानी, अजमेर में बहुत बड़े लाखोंपति थे। पश्चात् तो वैराग्य हुआ और यहाँ आत्मज्ञान को प्राप्त हुए थे। समिति में, समिति के कमरे में पूरी रात ध्यान में रहे, पश्चात् उन्होंने यह बनाया। लालचन्द भाई और

शशीभाई! मोढ़... मोढ़... शशीभाई आये थे न? मोढ़... वैष्णव थे। ये दो, इन्होंने एकत्रित करके पुस्तक बनायी है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश यह पुस्तक का नाम है। उसमें यह लिया है। सोगानी, 'निहालचन्द्र सोगानी' अजमेर के थे। अभी कलकत्ता में, अभी आये थे। (वह कहते हैं), धर्मी तो... आहाहा! चारित्रवन्त जो अन्दर है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का, जैसे गन्ने का रस गटक-गटक कर पीवे, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द का रस पीते हैं। आहाहा! उसका नाम संयम और चारित्र कहने में आता है। आहाहा! क्या कहा? देखो!

उस कारण से उन परम संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है। वास्तव में उन्हें चारित्र होता है। आहाहा! अभी तो चारित्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। यह क्रिया करना, नग्न हो गये, पंच महाव्रत के परिणाम भी सब समझने जैसे हैं। अभी तो उनके लिए चौका बनाकर (आहार) लेते हैं। मूलगुण के व्यवहार का ठिकाना नहीं है। मूलगुण का छेद करे, उसे एक भी गुण सच्चा नहीं है, ऐसा अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। गन्ने का रस निकाले, आम का रस निकाले, मौसम्बी का रस, दाल, भात, सब्जी। आहाहा! बनावे। और बोले ऐसा - आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध। सब झूठा है। बनावे उनके लिए और कहे आहार शुद्ध है।... बहुत फेरफार हो गया है, प्रभु! वीतरागमार्ग में बहुत फेरफार (हो गया है)। संयमी तो प्राण जाए तो भी उनके लिए पानी की एक बूँद बनी हो (प्रासुक की गयी हो) तो नहीं लेते। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। जल.. जल की एक बूँद में असंख्य जीव। आहाहा! उसमें निगोद के जीव अन्दर होते हैं। आहाहा! अनन्त.. पानी छाने तो भी अन्दर चले जाते हैं। शास्त्र तो यहाँ तक प्रभु कहते हैं कि पानी चाहे जितना छाने.. गरणूं कहते हैं? क्या कहते हैं? मोटा कपड़ा। चाहे जितने मोटे कपड़े से तू पानी छान, परन्तु प्रभु तीर्थकरदेव ऐसा कहते हैं कि उसमें इतने त्रस हैं कि अंगुली के असंख्य भाग में त्रस उत्पन्न होते हैं। उस पानी में त्रस भी आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? पानी की एक बूँद को चाहे जितने जाड़े छत्रे (कपड़े)... गरणूं कहते हैं। कपड़ा। परन्तु उसमें अंगुल के असंख्य भाग में पानी में त्रस-कीड़े होते हैं। अंगुल का असंख्यवाँ भाग। बारीक कीड़े। उस पानी में, छाने तो भी त्रस आ जाते हैं। आहाहा! वह पानी जिसके लिए बनाया, उसके लिए तो त्रस की हिंसा, पानी की हिंसा (होती है)। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं **संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है**। जिन्हें पानी की एक बूँद भी, प्राण जाए तो भी उनके लिए बनाया हुआ ले नहीं। आहाहा! और अन्तर की आनन्द की रमणता में इतनी शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति के रस के रस में पर की कोई दरकार नहीं है। परीषह आओ, उपसर्ग आओ परन्तु उसकी दरकार नहीं है। बापू! संयम किसे कहते हैं? पंच परमेष्ठी, जिन्हें गणधर नमस्कार करते हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। पंच नमस्कार। गणधर जो शास्त्र रचते हैं, तब उसमें आता है या नहीं? णमो लोए सव्व साहूणं। चार ज्ञान के धनी, चौदह पूर्व की अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले, वे गणधर भी जिन्हें वन्दन करें, वह मुनिपना कैसा होगा? भाई! आहाहा!

भगवान तीर्थंकर बादशाह। गणधर उनके दीवान, वे भी जब शास्त्र रचते हैं, तब णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं। णमो लोए तो... णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आइरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। ऐसा गणधर नमस्कार करते हैं। आहाहा! जिनके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे, प्रभु! वह चारित्र कैसी दशा होगी! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है**। उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से... स्वरूप की अन्तर रमणता, ऐसा जो चारित्र, उस चारित्र की अविचल स्थिति... वहाँ से चलती न हो ऐसी स्थिति के हेतु से प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, भक्ति, निश्चय आवश्यक, यह क्रिया कही जाती है। निश्चयक्रिया अन्दर की क्रिया को कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! साधारण लोग, पंचम काल.. आहाहा! और ऐसी बातें। मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि **उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से...** आत्मा के सम्यग्दर्शन अनुभवसहित स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से प्रतिक्रमणादि... प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, भक्ति, आवश्यक ऐसी निश्चयक्रिया... आहाहा! स्वरूप की रमणता की निश्चयक्रिया कही जाती है। यह क्रिया।

क्रिया तीन प्रकार की है। एक यह शरीर जड़, मिट्टी, यह क्रिया जड़ की है। नाक, कान, यह जड़ की क्रिया है। अन्दर दया, दान का भाव, वह पुण्य-राग की क्रिया है।

हिंसा, झूठ के परिणाम, वह पाप की क्रिया है और इस पुण्य-पाप से रहित स्वरूप की रमणतारूपी निश्चयक्रिया है। अरे रे! आहाहा! ऐसा मार्ग है। फुरसत निकालकर, निवृत्ति लेकर इसका अभ्यास करना चाहिए। भाई! ऐसा अवसर कब मिलेगा? मनुष्यपना.. आहाहा!

एक फूल, नीम-नीम। नीम का फूल कहते हैं न? एक फूल, एक फूल में असंख्य शरीर और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, उनसे अनन्त गुने जीव हैं। आहाहा! नीम, नीम। नीम का पान है, वह प्रत्येक (वनस्पति) है। उस एक पान में असंख्य शरीर और एक शरीर में एक जीव है परन्तु जो फूल है, उसमें एक राई जितना टुकड़ा लो, उसमें असंख्य तो औदारिक शरीर हैं। एक शरीर में अभी तक छह महीने आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति को प्राप्त हुए, अभी तक जो सिद्ध की संख्या हुई, उससे अनन्त गुने जीव तो एक शरीर में हैं। आहाहा! वह प्रत्येक जीव भगवान परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! द्रव्य तो ऐसा का ऐसा है। पर्याय में और विकार की अवस्था में सब अन्तर है। निगोद और नारकी, देव, यह तो सब पर्याय की बात है। वस्तु तो द्रव्यस्वभाव। आहाहा! ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु! उस एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव का ऐसा स्वभाव है। आहाहा! यह वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने देखा है, वह कहा है। वह बात जिनेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं है। किसी ने माना नहीं है। आहाहा! असंख्य प्रदेश सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने माने नहीं हैं। जीव के असंख्य प्रदेश हैं। आहाहा! जैसे सोने की चैन में होते हैं न? चैन, उस चैन की सौ-दो सौ कड़ियाँ होती हैं न? इसी प्रकार भगवान आत्मा में असंख्य प्रदेश कड़ी अर्थात् प्रदेश, असंख्य प्रदेश का भगवान आत्मा है। अरे रे! इन असंख्य प्रदेशों में एक-एक प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं। आहाहा!

यह ऐसा कहते हैं, कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। इन सबसे तेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। ऐसी अविचल स्थिति। ज्ञान और आनन्द और ईश्वरशक्ति, ऐसा अनुभव हुआ। अब उसमें लीन होने की क्रिया, वीतरागीक्रिया, निश्चयक्रिया, सत्यक्रिया, वास्तविक आत्मा की शुद्धपरिणतिरूपी क्रिया, यह निश्चयक्रिया कहा जाता है। आहाहा! ऐसी... कही है। कुन्दकुन्दाचार्य हैं न? परन्तु पंचम काल के लोगों को, साधारण प्राणी को... बापू! साधारण नहीं, भगवान है।

मुमुक्षु : भगवान होने की योग्यता चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अरे! भगवान ही है। इसका स्वरूप तो भगवान है। यह भगवान है तो पर्याय में भगवान होनेवाला है। आहाहा! वह भगवानपना कहीं बाहर से नहीं आता है।

छोटी पीपर का दृष्टान्त नहीं कहा था ? छोटी पीपर। पीपर है न ? रंग में काली, अवगाहन इतना छोटा परन्तु अन्दर चरपराई और हरा रंग, सोलह आने—चौंसठ पहरी भरी है। चौंसठ पहरी को तुम क्या कहते हो ? चौंसठ पहरी चरपराई, चरपराहट और हरा रंग सोलह आने अर्थात् चौंसठ पहरी भरी है। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा क्षेत्र से भले शरीर प्रमाण दिखायी दे, परन्तु अन्दर में सोलह आने पूर्ण ज्ञान, आनन्द, शान्ति ऐसी पूर्ण शक्ति से भरपूर है, प्रभु! उस शक्ति में स्थिरता हो, उसकी बात हम करेंगे। आहाहा! अरे रे! ऐसा सुनने को नहीं मिलता और सुनने को मिले तो (कहता है), अरे! यह तो निश्चय की बातें हैं अकेली सत्य की। व्यवहार की बातें... परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या ? सुन न प्रभु! व्यवहार तो अभव्य भी अनन्त बार करता है। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, अविचल स्थिति आनन्द में—स्वरूप में रमणता करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, जिसका स्वभाव, जिसकी हद नहीं—मर्यादा नहीं। ऐसा बेहद आनन्द, बेहद ज्ञान, बेहद त्रिकाली श्रद्धा, बेहद शान्ति त्रिकाली – ऐसा जो स्वरूप, उसमें स्थिर होने की निश्चयक्रिया की बात हम करेंगे। आचार्य कहते हैं कि हम निश्चयक्रिया कहेंगे। व्यवहारक्रिया का निषेध है। आहाहा! कब ऐसी निवृत्ति मिले ? आहाहा!

उद्योगपति ऐसा कहते थे न ? अपने शाहूजी हैं न ? शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़। उद्योगपति। उद्योगपति न ? उद्योग बनाया, कारखाना बनाया। कौन बनावे ? सुन न, प्रभु! मिथ्यात्व और राग-द्वेष किये हैं। पर को बनाता हूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। कठिन बात, भाई! आहाहा! चिमनभाई (का) सेठ वैष्णव, मुम्बई दर्शन करने आये थे। आवें तो सब आवें, राजा आवे, करोड़पति, अरबपति आवें, सब आवें। नाम सुनें, पुण्य दिखायी दे कि पुण्यशाली है। पचास करोड़ है। ये चिमनभाई उसमें नौकर थे। पचास करोड़। मुम्बई में है। आये थे। व्याख्यान में आये थे। महिलाओं को लेकर। महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन,

महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन और लड़के और आदमी सब वैष्णव और पचास करोड़। धूल में भी है नहीं, कहा।

मुमुक्षु : सुविधा से सब वस्तु ले सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुविधा किसे कहना ? सुविधा तो आत्मा के आनन्द में रमे, वह सुविधा है। बाकी तो सब दुविधा है। ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म पड़ती है, भाई! अरे! इसने कभी सुना नहीं और सत्य कान में पड़े तो इसे ऐसा लगता है कि अरे! यह तो निश्चय, यह तो निश्चय (तो) ऐसा करके निकाल डालता है। आहाहा! निश्चय अर्थात् सत्य। परमसत्य प्रमाण निश्चय। यह कहते हैं। आचार्य कहते हैं, निश्चयक्रिया कहूँगा। व्यवहारक्रिया कहूँगा, ऐसा नहीं कहते। आहाहा!

पंचम काल के मुनि कहते हैं, हम प्रतिक्रमण आदि निश्चयक्रिया जो अन्तर में रमणता, निर्विकल्प समाधि और शान्ति होती है। आहाहा! वह निष्क्रियक्रिया—राग की प्रवृत्ति की अपेक्षा से निष्क्रिय और स्वरूप में प्रवृत्ति की अपेक्षा से सक्रिय। यह आया न? वह क्रिया कहते हैं न? निश्चयक्रिया। वह क्रिया तो प्रवृत्ति स्वरूप में रमणता, वह क्रिया है। राग की अपेक्षा से निवृत्ति है, परन्तु स्वरूप में रमणता की अपेक्षा से सक्रिय-क्रिया है। आहाहा! एक गाथा में कितना समाहित किया है।

प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है। अतीत (-भूत काल के) दोषों के परिहार हेतु... भूतकाल के दोष के त्याग के लिए प्रायश्चित्त किया जाता है,... प्रायश्चित्त, यह निश्चय। आहाहा! वह प्रतिक्रमण है। उसे प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! पूर्व में जितने पुण्य और पाप आदि मिथ्याभ्रान्ति आदि जो दोष किये, उन सबका प्रतिक्रमण करना, उनसे हटकर स्वरूप में रमना.. आहाहा! वह प्रतिक्रमण की निश्चयक्रिया कहने में आती है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का पुकार है। सभा के बीच आकर कहा है। आहाहा! समाज संगठित रहेगा या कैसे, उसकी दरकार उन्हें नहीं है। यह समाज मानेगा या नहीं, उसकी दरकार नहीं है। नागा बादशाह से आघा। वस्तु यह है।

हम निश्चयक्रिया कहेंगे। यह पुण्य और पाप आदि दोष, इनका अभाव करना, वह प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त है। शुभ-अशुभभाव से रहित अपने में लीनता करना, वह प्रायश्चित्त और वह प्रतिक्रमण है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : हम करते हैं, वह व्यवहारप्रतिक्रमण कहलाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ व्यवहार ? निश्चय बिना व्यवहार कैसा ? कठिन बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग परमेश्वर... भरतक्षेत्र में परमात्मा का विरह पड़ा। परमात्मा रह गये वहाँ (विदेहक्षेत्र में)। आहाहा! यहाँ केवलज्ञान नहीं होता। केवलज्ञानी का विरह पड़ा, प्रभु! यह बात पीछे रह गयी। कुन्दकुन्दाचार्य... आहाहा! अवधिज्ञानी-मनःपर्ययज्ञानी कोई रहे नहीं, तथापि मैं तो सत् क्रिया कहूँगा। अन्तर की अविचल स्थिति आत्मा को सम्यग्दर्शनसहित, स्थिरता करने को मैं निश्चयक्रिया कहूँगा। आहाहा! प्रभु! परन्तु यह समाज तुलना करेगी या नहीं? समाज मानेगी या नहीं? समाज, समाज के घर रहे। मार्ग यह है। आहाहा! नग्न मुनि हैं, वीतरागी हैं। जगत की कुछ नहीं पड़ी है। अपने कहा जाता है न? नागा बादशाह से आघा। बादशाह को नहीं गिने, वह नग्न। अन्दर से नग्न और बाहर से नग्न। अन्दर से रागरहित और बाहर से वस्त्ररहित। आहाहा! वे मुनिराज केवलज्ञानी परमात्मा की बात अविचल स्थिति से रहने के लिए (कहेंगे)। आहाहा! निश्चयप्रतिक्रमण और निश्चय प्रायश्चित्त, निश्चय प्रत्याख्यान, पच्चक्खाण, वह क्रिया मैं कहूँगा। यह निश्चयक्रिया मैं कहूँगा - ऐसा कहते हैं। है? आहाहा!

‘आदि’ शब्द से प्रत्याख्यानदि का सम्भव कहा जाता है। प्रत्याख्यान भी निश्चय क्या है, निश्चयक्रिया प्रत्याख्यान क्या है, वह कहेंगे। निश्चयभक्ति क्या है? भगवान की भक्ति नहीं। भगवान की भक्ति तो राग है। आहाहा! आगे आयेगा। निश्चयभक्ति कहूँगा, निश्चय समाधि कहूँगा, निश्चयप्रतिक्रमण कहूँगा, निश्चय प्रायश्चित्त कहूँगा, निश्चय प्रत्याख्यान कहूँगा, निश्चय संवर और आलोचना कहूँगा। आहाहा! प्रभु! पंचम काल के लोग हैं न? साधारण प्राणी को। वे साधारण नहीं, भाई! अनन्त गुण से ओपता-शोभता प्रभु है। ऊपर नहीं आया था? पंच रत्नों से शोभित। उसके भाव से, हों! आहाहा!

भगवान तो मार्गणास्थान से भिन्न, जीवस्थान से भिन्न, गुणस्थान से भिन्न, चौदह गुणस्थान से भिन्न है। आहाहा! ऐसा जो पंचरत्न। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु अभेद, जिसमें मार्गणास्थान ज्ञान की पर्याय, मति, श्रुत, अवधि आदि भेद; रंग, राग और भेद से भिन्न बात करूँगा। रंग शब्द से जड़ आदि पदार्थ; राग शब्द से भावकर्म विकारी; भेद शब्द से गुणस्थान आदि के भेद और प्रकार। इन रंग-राग और भेद से (भिन्न) अभेद बात

करूँगा। आहाहा! अमृत बहाया है। आहाहा! भगवान सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने अमृत बहाया है। कहीं यह बात है नहीं। मुनि के सिवाय यह बात कहीं नहीं है। आहाहा!

जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त,
समझाया उन पद नमो श्री सद्गुरु भगवन्त।
हे गुणवन्ता रे ज्ञानी अमृत बरसा रे पंचम काल में।

अमृतचन्द्राचार्य के कथनों ने अमृत बरसाया है। दिगम्बर सन्तों ने तो वन में रहकर सिद्ध के साथ बातें करते हुए अमृत बरसाया है! आहाहा! ऐसी बातें हैं। कहो, दिवाकरभाई! तुम्हारा वह लड़का... उसके भतीजे का.. क्या कहलाता है वह ?...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल। ...धूल में कुछ है नहीं। आहाहा!

शरीर में निर्धनपना, शरीर में रोग हो, वृद्ध अवस्था आवे, निर्धनता आवे, भोजन के लिए पाँच-पच्चीस रुपये भी न मिलते हों परन्तु जिसे आत्मज्ञान है, वह तो महाप्रभु भगवान है, महारत्न का धनी है। आहाहा! ऐसी बात है। एक-एक श्लोक में रत्न भरे हैं। मुनिराज ने, दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है। केवलज्ञानी के पथानुसारी, अल्प काल में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। एक-दो भव में केवलज्ञान लेकर मोक्ष पधारनेवाले हैं। आहाहा! अभी तो वैमानिक में हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव अभी तो वैमानिक में हैं। आहाहा! पंचम काल में, इसलिए पुरुषार्थ नहीं कि केवलज्ञान हो, उसका अभाव है परन्तु अल्प काल में केवलज्ञान लेंगे, ऐसे केवलज्ञान की झंखना करते हैं। आहाहा! वहाँ से मनुष्यपना पाकर केवलज्ञान लेकर मोक्ष में चले जाएँगे। आहाहा! ऐसी स्थिति उनकी है। वे मुनिराज ऐसा कहते हैं, मैं निश्चयक्रिया कहूँगा अर्थात् प्रतिक्रमण आदि। जो आदि शब्द है, वह प्रत्याख्यान आदि का भी समावेश करने के लिए है। प्रत्याख्यान के और उन सबके अधिकार बहुत हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १३१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

आहाहा! भगवान् अमृतचन्द्राचार्य का पुकार है कि भेदज्ञान सिद्धा है ? जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;... है ? श्लोक है या नहीं ? आहाहा! अभी तक जो परमात्मा-णमो सिद्धाणं, जो सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। अभी यहाँ से नहीं होते, महाविदेह में से होते हैं। महाविदेह में से छह महीना आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं। आहाहा! वे सब सिद्ध हुए, भेदविज्ञान से सिद्ध हुए। आहाहा!

इस राग के विकल्प से भिन्न करके, अपने निर्विकल्प अनुभव में आकर भेदविज्ञान से परमात्मा हुए हैं। जो राग की क्रिया है, उससे तो नहीं, क्योंकि उससे तो भेद करना है। आहाहा! तो व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात नहीं रही। यह तो पहले प्रतिपक्ष आ गया। आहाहा! उसमें आ गया पहले। शुरुआत में अपने आ गया है न ? प्रतिक्रमण का अधिकार चलता है, उसमें आ गया है।

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष ऐसा जो शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है। पहली गाथा है शुरुआत की। आहाहा! अरे! बहुत कठिन पड़े। क्या हो ? लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती और एकाध घण्टे सुनने जाएँ, वहाँ ऐसा सुनें, यह व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, यात्रा करो। अरे रे! यहाँ तो कहते हैं कि हम निश्चयक्रिया कहेंगे। क्योंकि भेदविज्ञान से अभी तक अनन्त सिद्ध हुए हैं। कोई राग से सिद्ध हुए हैं, ऐसी बात जैनदर्शन में नहीं है।

भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं; जो कोई बँधे हैं,... अभी तक वे उसी के (भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं। राग का भेद किया नहीं तो बँधा है। आहाहा! श्लोक बहुत ऊँचा है। संवर अधिकार में है। अभी तक जितने सिद्ध हुए हैं, वे सब राग से भिन्न होकर भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं और जो कोई अभी तक बंधन में पड़े हैं, वे भेदज्ञान के अभाव से बंधन में पड़े हैं। राग मेरी चीज़ है, मुझे राग से लाभ होगा, ऐसा (मानकर) भेदविज्ञान के अभाव से बंधन में आये हैं। विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्लोक-११०

और (इस ८२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) :—

(मालिनी)

इति सति मुनि-नाथस्योच्चकैर्भेद-भावे,
स्वय-मय-मुपयोगाद्राजते मुक्त-मोहः ।
शम-जल-निधिपूर-क्षालितांहः कलङ्कः
स खलु समयसारस्यास्य भेदः क एषः ॥११०॥

(वीरछन्द)

इस प्रकार जब मुनिवर को होता अत्यंत भेद-विज्ञान ।
मोह रहित हो जाता है तब स्वयं अहो उपयोग महान ॥
शम-जलनिधि के महापूर से पाप मैल धो लेता है ।
सचमुच कैसा समयसार का भेद अहो यह शोभित है ॥११०॥

[श्लोकार्थः] इस प्रकार जब मुनिनाथ को अत्यन्त भेदभाव (-भेदविज्ञान-परिणाम) होता है, तब यह (समयसार) स्वयं उपयोग होने से, मुक्त मोह (मोहरहित) होता हुआ, शमजलनिधि के पूर से (उपशमसमुद्र के ज्वार से) पापकलंक को धोकर, विराजता (-शोभता) है;—वह सचमुच, इस समयसार का कैसा भेद है! ॥११०॥

प्रवचन-८०, श्लोक-११०, गाथा-८३, गुरुवार, कार्तिक शुक्ल १२, दिनांक ०१-११-१९७९

नियमसार, कलश आ गया । भेदविज्ञान का आ गया न ? अब ११०वाँ कलश ।

इति सति मुनि-नाथस्योच्चकैर्भेद-भावे,
स्वय-मय-मुपयोगाद्राजते मुक्त-मोहः ।
शम-जल-निधिपूर-क्षालितांहः कलङ्कः
स खलु समयसारस्यास्य भेदः क एषः ॥११०॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार जब मुनिनाथ को... मुख्यरूप से मुनि की बात की है। मोक्ष का मार्ग तो वह है न? आहाहा! प्रथम सम्यग्दर्शन, वह भी राग के विकल्प से भिन्न पड़कर चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की अनुभूति हो, अनुभव हो, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। वह प्रथम मार्ग है। पश्चात् अन्तर में लीन होना। मुनिनाथ कहा है न? मुनिनाथ हैं, मुनि के नाथ। आहाहा! अन्तर वीतरागी आनन्दकन्द प्रभु में लीन हैं, ऐसे जो **मुनिनाथ को अत्यन्त भेदभाव (-भेदविज्ञान-परिणाम) होता है,...** उन्हें। पर से अत्यन्त भिन्न आनन्दस्वरूप होता है। आहाहा! यह चारित्र।

मुमुक्षु : यह तो सिद्धदशा हो, तब होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चारित्र सिद्धदशा होने के पहले की बात है। किसने कहा? यह पहले से होता है। आहाहा! ३८ गाथा में नहीं कहा? कलश में, कलश में। **'मज्जन्तु'** भगवन्तस्वरूप प्रभु! तू निर्विकल्प है, अभेद है, शुद्ध है, शुद्धनय से अत्यन्त परमस्वभावभाव है, उसमें **'मज्जन्तु'** वहाँ जा, मग्न हो, प्रभु! आहाहा! ३८ गाथा का कलश है। सर्व जीव उसमें मग्न होओ, भाई!

आनन्दस्वरूप भगवान जो शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न है, परन्तु पुण्य-पाप के, दया, दान के, व्रत के विकल्प से भी भिन्न है। आहाहा! यह समयसार की १५६ गाथा में आ गया। समयसार। **'मोत्तूण णिच्छयट्टं'** विद्वान शास्त्र पढ़कर व्यवहार निकालकर व्यवहार में वर्तते हैं। परन्तु... आहाहा! निश्चय से वस्तु शुद्ध चैतन्यघन वीतरागस्वरूप है। उसे छोड़ देते हैं और व्यवहार में वर्तते हैं। मुक्ति तो निश्चयस्वभाव शुद्ध चैतन्य के आश्रय से होती है। आहाहा! पुण्य-पाप का अधिकार है न? (समयसार) १४४ गाथा (तक) कर्ता-कर्म (अधिकार है), पश्चात् पुण्य-पाप (अधिकार की) १५६ गाथा। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य को उस समय ऐसा कहना पड़ा... आहाहा! कि निश्चयवस्तु आनन्द का नाथ, निर्विकल्प वीतरागमूर्ति की दृष्टि छोड़कर, उसकी सन्मुखता छोड़कर विद्वान शास्त्र पढ़कर उसमें से निकाला और उस व्यवहार में वर्तन करते हैं, परन्तु मुक्ति तो निश्चय के आश्रय से, स्वभाव के आश्रय से होगी। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! प्रभु का तो ऐसा पुकार है। एक ऐसी नहीं, ऐसी तीन बात है। **'मज्जन्तु'** वहाँ कहा। यहाँ व्यवहार के वर्तन करनेवाले को बन्धन होता है, (ऐसा कहा)। वस्तु का स्वभाव शुद्ध चैतन्य में

अन्दर में रमे, उसे मुक्ति होती है। ३८वें कलश में ऐसा कहा, सर्व लोक... 'मज्जन्तु' आनन्द के स्वरूप में आकर सब जीव मग्न होओ। आहाहा!

इसी प्रकार द्रव्यसंग्रह में अपाय के अधिकार में कहा, धर्मध्यान का विचार करनेवाला धर्मी... आहाहा! ऐसा विचार (करता है), इतना सब शुद्ध और परमस्वभाव की भावना करता है कि मैं तो परिपूर्ण परमात्मपद को प्राप्त करूँ, सब जीव प्राप्त हों। कोई जीव दुःखी न होओ। आहाहा! सब आत्मा के स्वरूप में मग्न होओ और सुखी होओ। आहाहा! ऐसा बन्ध अधिकार और सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में (कहा है कि) यह समयसार समझकर, ज्ञान करके कर्तव्य क्या? करना क्या? कि करना यह कि मैं निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य हूँ। शुद्धबुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द तीन काल में, तीन लोक में, मन, वचन और काया, कृतकारित अनुमोदन से भिन्न पूर्ण मेरी चीज़ है। मैं तो शुद्ध चिदानन्द आनन्द से भरपूर भगवान हूँ। जगतत्रय, कालत्रय—तीन काल और तीन लोक में... आहाहा! मन, वचन और काया से, करना, कराना, अनुमोदन से भिन्न मेरी चीज़ है। आहाहा! ऐसी भावना, हे जीव! तू कर और सर्व जीव निरन्तर ऐसी भावना करो – ऐसा पाठ है। आहाहा! सर्व जीवा... अरे! कौन दुःखी हो?

प्रभु! तू आनन्द है न! आहाहा! दुनिया से उदास हो जा, प्रभु! और स्वभाव में प्रेरक होकर अन्दर में लीन हो और वह भावना ऐसी कर कि मैं भी पूर्णानन्द शुद्ध हूँ और सब जीव पूर्णानन्द शुद्ध हैं, ऐसी निरन्तर भावना कर्तव्य है। आहाहा! गजब है। सब जीव, बाल-गोपाल। सब आत्मा है न, प्रभु! तुम परमेश्वर पद में पड़े हो, भगवत्स्वरूप तेरा है, नाथ! आहाहा! तो सब भगवत्स्वरूप में लीन होओ। ऐसे सर्व जीवों की भावना धर्मी तो ऐसी करता है। कोई दुःखी होओ और भटको, ऐसी भावना नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार, गाथा) ३८ में कहा, वह अपाय में कहा और अन्त में बन्ध तथा मोक्ष अधिकार, सर्वविशुद्ध में अन्त में कहा। सर्व जीव, उसे जीव कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, अनन्त ज्ञान का सागर, अनन्त-अनन्त पारिणामिकस्वभावभाव से भरपूर, महाप्रभु में लीन होओ, ऐसा मैं हूँ। मैं अल्पज्ञ नहीं, मैं राग नहीं, मैं निमित्त नहीं। आहाहा! मैं तो पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, ऐसी भावना सर्व जीव करो और सर्व जीव निश्चय को प्राप्त होओ।

आहाहा! ऐसा है। यहाँ तो वीतरागभाव की बात है, प्रभु! आहाहा! और यह बात बदलते हैं क्या? वह १२वीं गाथा है न? 'व्यवहारादेसिदा' इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि निचले प्राणी को तो व्यवहार का ही उपदेश करना। ऐसा अर्थ करते हैं।

मुमुक्षु : निचला किसे कहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें विद्यानन्द ने लिखा है परन्तु उसका अर्थ ही टीकाकार ने किया। टीकाकार को कहे, टीकाकार ने दुरुह कर डाला, ऐसा कहा। ऐसा कहकर टीकाकार आचार्य को उड़ा दिया। अमृतचन्द्राचार्य महाभगवन्तस्वरूप, उन्हें उड़ा दिया और निचले जीव को तो व्यवहार का उपदेश करना, ऐसा उसका अर्थ है ही नहीं।

जिसे परमात्मपद प्राप्त हुआ है, उसे तो अब कुछ करना रहा नहीं परन्तु जो कोई अन्दर परमात्मपद में लीन होना चाहते हैं, उस लीनता में अभी कमी के कारण जो रागादि हों, तो उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान है। राग है—ऐसा जानना, वह प्रयोजन है। आहाहा! राग का उपदेश करना, यह प्रभु! उसमें है नहीं। अरे! क्या हो? ऐसे अर्थ करते हैं। उसमें यह अर्थ किया है। टीकाकार ने दुरुह कर दिया, (ऐसा वे लोग कहते हैं)। टीकाकार ने जैसा अर्थ होता हो, वैसा किया है। अमृतचन्द्राचार्य को (तुझे) मिथ्या सिद्ध करना है? जहाँ भगवत्स्वरूप काम किया है न! आहाहा! व्यवहार बीच में आवे, पूर्ण आनन्दस्वरूप का आश्रय लिया होने पर भी पूर्णता प्राप्त न हो तो बीच में अशुद्धता का राग आता है, परन्तु वह राग जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ; आदरणीय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अब इसमें अर्थ दूसरे करे, उसका क्या करना? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **मुनिनाथ...** आहाहा! जिन्हें अत्यन्त भेदभाव होता है। आहाहा! जिन्हें अन्दर विकल्प से तो भिन्न, परन्तु पर्याय से लक्ष्य छूटकर भेदभाव होता है। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु अन्दर पूर्णानन्द परमेश्वर परमात्मा में उसकी पर से भिन्न पड़कर लीनता होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! वह अत्यन्त भेदविज्ञान होता है। **तब यह (समयसार) स्वयं उपयोग होने से,...** आहाहा! यह भगवान स्वयं तो स्वयं ज्ञानदर्शन उपयोगस्वरूप है। त्रिकाल, हों! पर्याय (नहीं)। यह तो स्वयं उपयोगस्वरूप है। आहाहा! ज्ञानदर्शन का उपयोगरूप, यह इसका स्वरूप है। इसमें कोई राग, दया, दान, व्रत, विकल्प इसके स्वरूप में कोई नहीं है। आहाहा!

यह स्वयं उपयोग होने से,... आहाहा! स्वयं भगवान ज्ञान और दर्शनरूपी उपयोग होने से। आहाहा! मुक्त मोह... है। स्वयं उपयोग अन्दर ज्ञान और दर्शन का स्वभाव है। ऐसा उपयोगस्वरूप है, उसमें उपयोग जम गया। आहाहा! आठ वर्ष का बालक भी केवलज्ञान पाता है, प्रभु! उसे कुछ उम्र की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अन्दर प्रभु विराजता है, भाई! तुझे उसकी महिमा की खबर नहीं है। उसकी महिमा का पार नहीं है। जिसकी महिमा सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरी कही जा सके, ऐसी नहीं है। वचनातीत, विकल्पातीत ऐसी वह कोई चीज़ है। आहाहा!

यह कहते हैं कि स्वयं उपयोगरूप है न, प्रभु! आहाहा! इन दया, दान के रागरूप तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञरूप भी नहीं। आहाहा! स्वयं उपयोग, ज्ञानदर्शन का स्वयं उपयोग त्रिकाल.. आहाहा। ऐसे उपयोग में एकाकार हुआ, वह पर्याय। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो जन्म-मरण छोड़ने की बात है, बापू! चौरासी के अवतार कर-करके कचूमर निकाल गया है। आहाहा! एक-एक अवतार में अनन्त-अनन्त दुःख सहन किये हैं। कहीं शान्ति नहीं, कहीं सुख का स्वाद नहीं। यह शान्ति और सुख तो आत्मा में है। आहाहा! शान्तिभाई! शान्ति कहाँ है? आहाहा!

प्रभु! तू शान्तरस से भरपूर है न! स्वयं उपयोग कहा न? स्वयं उपयोग है। वह तो ज्ञान-दर्शन का समुद्र है। आहाहा! त्रिकाली जानन और दर्शन ऐसे स्वभाव से भरपूर, ऐसा तेरा स्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! ऐसा स्वयं उपयोग होने से, मुक्त मोह (मोहरहित) होता हुआ,... वह स्वयं उपयोग में एकाकार होने से मुक्त मोह हो गया। रागादि मोह छूट गया और स्वयं उपयोगस्वरूप जितना है, उतना पर्याय में प्रगट हो गया। माणिकलालभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! अरे! जगत को कहाँ.. कहाँ.. वीतरागमार्ग को कहाँ जोड़ दिया? आहाहा!

स्वयं उपयोग होने से,... आहाहा! मुक्त मोह होता हुआ, शमजलनिधि के पूर से... आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे पानी की बाढ़ आती है, वैसे भगवान दर्शन-ज्ञान और आनन्द का समुद्र भरा है। उसमें एकाग्र होने से उसकी पर्याय में आनन्द की बाढ़ आती है। अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़। बाढ़... बाढ़ तुम्हारी हिन्दी भाषा में (कहते हैं)। आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, वह अन्दर भरा है, उसमें से आती है। कहीं ऊपर से

नहीं आती। समुद्र में पच्चीस इंच बरसात गिरे, परन्तु जब उसे पीछे हटने का हो (भाटा आने का हो)... क्या कहलाता है ? भाटा आने का हो परन्तु पच्चीस इंच तो भी कुछ बाढ़ नहीं लाती। आहाहा! और ११८ डिग्री का ताप हो, परन्तु फिर भी जब बाढ़ का काल हो (तो) वह ताप रोक नहीं सकता। आहाहा! और उसमें जहाँ पूर्णिमा का चन्द्र हो, उससे पानी पूरा अन्दर से उछाला मारता है। ऐसा चन्द्र को और उसे (समुद्र को) दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। समझ में आया ? पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र हो अन्दर, वहाँ समुद्र बाढ़-बाढ़ ऐसे अन्दर से उछाला मारता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा.. आहाहा! चन्द्रमा समान शीतलस्वरूप प्रभु में एकाग्र होने से शमजलनिधि के पूर से... आया ? (उपशमसमुद्र के ज्वार से)... लो, ज्वार आया। आहाहा! प्रभु! शान्ति का मार्ग बहुत अलग है। आहाहा! अरे! सत्य का सुनना मिले नहीं, वह सत्य के, सुख के पन्थ में कब जाए ? दुःख के पन्थ में दौड़ गया, प्रभु! अनन्त काल से दुःख के पन्थ में दौड़ गया है, वह महादुःखी है। पैसेवाला दुःखी बड़ा भिखारी है। शास्त्र में रांका-वारांका गिना है। यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. परन्तु मुझमें आनन्द भरा है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! मुझमें उपशमरस और आनन्द का कन्द प्रभु स्वयं आनन्द और ज्ञान के-दर्शन के उपयोगस्वरूप हूँ। वह ज्वार उसमें से पर्याय में आवे, वह मुझे चाहिए। दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

शमजलनिधि के पूर से... भाषा देखो! शमजल-समतारूपी, उपशमरूपी जल की निधि अर्थात् समुद्र, उसका पूर। इतने शब्द प्रयोग किये हैं। शमजलनिधि का पूर! यह समता का सागर वीतरागमूर्ति प्रभु, आनन्द का कन्द सागर, वह समता अर्थात् उपशमरस से भरपूर प्रभु, उसमें एकाग्र होने से उसकी पर्याय / अवस्था में शमजलनिधि के पूर से (उपशमसमुद्र के ज्वार से) पापकलंक को धोकर,... आहाहा! धोकर अर्थात् यह एक उपदेश है। ऐसे जहाँ गया तो वह पाप होता नहीं, उसे धो डाला, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ में जहाँ लीन होता है, वहाँ उसकी पर्याय में पूर्ण शान्तरस, अकषायभाव, उपशमरस की बाढ़ आती है। आहाहा! तब पाप का कलंक है, वह छूट जाता है। आहाहा! यह मार्ग है, प्रभु! कठिन पड़े, जैसा पड़े परन्तु इसके बिना इसका जन्म-मरण नहीं मिटेगा, प्रभु! बाहर से भले मन को मना लेगा। बाहर से कुछ क्रिया करके, यह किया... यह किया... आहाहा! वह दुःख के समुद्र में डूब गया है, भाई!

यह तो शमजलनिधि के पूर... जहाँ अन्दर बहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि पूर्ण भरपूर तो है ही, परन्तु जहाँ उसमें एकाग्र हुआ, वहाँ शमजलनिधि का पूर, पर्याय में बाढ़ आयी। आहाहा! उसकी वर्तमान दशा में शान्तरस, अकषायरस, वीतरागरस, वह पर्याय में उछल आया, उछाला मारा। आहाहा! उसे यहाँ ज्वार कहते हैं। गुजराती भाषा तो सादी है, बहुत कुछ वैसी (कठिन) नहीं है। समझ में आये ऐसा है या नहीं? यह भाई हिन्दी है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! इसमें वाद-विवाद, झगड़ा, बापू! इसमें कुछ (नहीं है)। आहाहा!

सत्य ही प्रभु ऐसा अन्दर है। शमजलनिधि का पूर। यह तो पर्याय में कहा। शमजलनिधि का पूर तो स्वयं है ही। आहाहा! वह मुक्तमोह हुआ अर्थात् उपशमरस का ज्वार आया, उसने पाप-कलंक को धो डाला। आहाहा! धोकर, विराजता... अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति में भगवान आत्मा विराजता है, उसका नाम मुक्ति और उसका नाम सिद्धपद है। अरे रे! ऐसी बातें हैं। कठिन पड़े परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! कुछ सरल (मार्ग) बताओ न, कोई ऐसा पूछता है। भभूतमलजी! सरल कहो या यह कहो, बापू! दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

शमजलनिधि-समतारूपी जल से भरपूर समुद्र भगवान में एकाग्र होने से मुक्त मोह (अर्थात्) मोह से रहित होने से, ज्वार से सहित होने से। मोह से मुक्त होने से और आनन्द की बाढ़ से सहित होने से... आहाहा! वह पाप कलंक को धो डालता है। आहाहा! इस प्रकार से शोभता है।

वह सचमुच,... मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वह सचमुच, इस समयसार का कैसा भेद है! वह इस समयसार की कैसी दशा है! कहते हैं। आहाहा! भगवान समयसारस्वरूप है, उसका भान होकर स्थिरता हुई, वह इस समयसार का कैसा भेद है! वह यह कैसा प्रकार है! आहाहा! कठिन पड़े। व्यवहार क्रियाकाण्डी के रसवाले को ऐसा लगे, यह रूखा लगे। वहाँ वह रस है न, वह तो अनादि का रस पड़ा है।

अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वीतराग का पिण्ड है, अकषायस्वभाव का सागर है। निर्विकल्पोऽहं, उसमें लिखा है। देखा? अन्तिम है न, अन्तिम? भावना का लिखा है। बन्ध अधिकार में अन्त में है। बन्ध है न? उसमें लिखा है। बन्ध अधिकार में अन्त में है। मोक्ष अधिकार है, यह तो। बन्ध-बन्ध, हों! देखो! आहाहा!

क्या कहते हैं, देखो! 'तस्य बन्धस्य विनाशार्थ'—बन्ध के नाश के लिए प्रभु! तुझे क्या करना? बन्ध के नाश के लिए, प्रभु! तुझे क्या करना? 'विनाशार्थ विशेषभावनामाह' यह। विशेष अन्तर की भावना करना। अर्थात् क्या? 'सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं' 'सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं' आहाहा! है? दो-तीन जगह है। बन्ध अधिकार में है, अन्त में सर्वविशुद्ध अधिकार में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में है। प्रभु! ऐसी भावना तो कर एक बार। आहाहा! यह पैसे की, इज्जत की, स्त्री की, पुत्र की, अमुक की सब... आहाहा! पाप का पोथा, सब बन्ध की भावना करे, उसकी अपेक्षा यह तो कर एकबार। कैसा लिया?

यह एक बार कहा था। (संवत्) १९६४ के वर्ष। संवत् १९६४। बहत्तर वर्ष पहले की बात है। उम्र अठारह वर्ष की थी। दुकान का माल लेने जाते थे। बड़ोदरा माल लेने गये, अठारह वर्ष की उम्र। दुकान चलती थी, बड़ी (दुकान) थी। अन्दर माल लेने जाते थे। दिन में माल लिया, रात हुई तो वहाँ एक नाटक था। अनुसूईया का नाटक। भरुच के किनारे नर्मदा है न? वह नर्मदा और अनुसूईया दो बहनें थीं। सती (थी)। यह तो उस दिन की बात है, चौंसठ के वर्ष की बात है, बहत्तर वर्ष पहले की। वह नाटक देखने गये, रात्रि को निवृत्ति हो, उस समय वैराग्य के नाटक बहुत (आते थे)।

उसमें एक महिला थी, अनुसूईया, वह स्वर्ग में जा रही थी तो स्वर्ग में से इनकार आया। वे लोग ऐसा कहते हैं न? 'अपुत्रस्य गति नास्ति' जिसे पुत्र न हो, उसे गति नहीं मिलती क्योंकि वह श्राद्ध करनेवाला नहीं होता इसलिए। वे लोग मानते हैं परन्तु यह सब बात मिथ्या है। परन्तु वह महिला गयी तो स्वर्ग में से इनकार किया। बड़ा नाटक था। अठारह वर्ष की उम्र की बात है। तब कहे—अब मुझे कहाँ जाना? कि स्वर्ग नहीं मिलेगा। पुत्र होगा तो मिलेगा। नीचे हो उसे वरण कर, तो नीचे अन्धा ब्राह्मण था, उससे विवाह किया, उसे पुत्र हुआ। वह पुत्र कहीं से ले आये थे। वे सब तो आदमी थे न, परन्तु गाती थी। आहाहा! उस दिन की बात है। बहत्तर वर्ष पहले की बात है। यह है वह। बेटा! तू निर्विकल्प है, सहजानन्द है, उदासीन है, बुद्ध है, इतने शब्द याद हैं। बाकी तो बहुत गाये थे। यहाँ इसमें तो बहुत हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इन तीनों में हैं, यह तो कहा न ? तीनों में हैं । उसमें दो में है और एक अन्यत्र, तीन जगह है परन्तु वहाँ उस समय वह बहिन पुत्र को लोरियाँ गाती है । नाटक में वह बात थी । अभी तो सब कुकर्म हो गये हैं । स्त्री ऐसे देखे, हाथ डाले, यह अनीति के बाहर के दिखाव, नीति के आचरण का ठिकाना नहीं होता । उस समय तो नाटक में वैराग्य (की बात थी) ।

पुत्र को झुलाते हुए (कहती है), बेटा! तू निर्विकल्प है, ऐसा कहती थी । तू विकल्प रहित अभेद चिदानन्द प्रभु है । शुद्ध है-शुद्ध है । बुद्ध है-ज्ञान का पिण्ड है । उदासीन है, रागादि सबसे उदास प्रभु तेरी दशा है । ऐसे चार भाग याद रहे । उस समय तो पुस्तक ली थी । उस समय ऐसी आदत थी । टिकट तो ली बारह आने की, परन्तु मैंने कहा (कि) तुम क्या बोलते हो, वह पुस्तक लाओ । पुस्तक के पैसे लो, परन्तु तुम बोलते हो, वह समझ में आना चाहिए न । समझे बिना हम क्या सुनेंगे । पहले से ऐसी आदत थी न । किसी भी बात को परीक्षा किये बिना ऐसी की ऐसी मानना नहीं । तुम क्या बोलते हो, उसकी पुस्तक लाओ । बारह आने की पुस्तक ली थी और बारह आने की टिकट ली थी । डेढ़ रुपया । उसमें यह सब लिखा हुआ था और वह बहिन अन्दर बोलती थी । आहाहा ! उस समय अन्दर से धुन चढ़ जाती थी, हों ! वाह ! बेटा ! तू निर्विकल्प है न ! शुद्ध है न ! ज्ञान का पिण्ड है, उदास है । पूरी दुनिया से तेरा आसन अन्दर भिन्न है, प्रभु ! आहाहा ! भूपतभाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, यह कहते हैं, देखो ! 'सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं' आहाहा.. ! कहाँ से मिले ? भावना यह कर, कहते हैं । 'निर्विकल्पोहं, उदासीनोहं, निरंजननिजशुद्धात्म-सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय-रत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतराग-सहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन' मेरे आनन्द के ज्ञान से मैं ज्ञात होऊँ ऐसा हूँ, बाकी दूसरे प्रकार से ज्ञात होऊँ, ऐसा नहीं । पहले ऐसी भावना कर, कहते हैं । आहाहा ! है ? 'स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः' मैं तो मेरे ज्ञान से प्रत्यक्ष मुझे जानूँ, ऐसा मैं हूँ । मुझे राग की और निमित्त और देव-गुरु-शास्त्र की आवश्यकता (अपेक्षा) नहीं है । आहाहा ! यह पाठ अन्दर है, हों ! यह तो संस्कृत है । है ?

'प्राप्यः, भरितावस्थोऽहं' 'भरितावस्थो' पूर्ण भरपूर हूँ । आहाहा ! जैसे पानी का

घड़ा पूर्ण भरा हुआ हो, वह मिट्टी का घड़ा है; वैसे यह चैतन्य घड़ा अन्दर आनन्द का कन्द पूर्ण भरपूर है। आहाहा! है? 'भरितावस्थो' भरित अवस्था। यहाँ पर्याय नहीं लेना। 'भरितावस्थो' भरपूर, अवस्थित - मेरा स्वरूप पूर्ण भरपूर है। आहाहा!

'राग-द्वेष-मोह-क्रोध-मान-माया-लोभ-पंचेन्द्रियविषयव्यापार, मनोवचनकाय -व्यापारभावकम-नोकर्म-ख्याति-पूजा-लाभ-दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदान-मायामिथ्याशल्यत्रयादि-सर्वविभावपरिणामरहितः शून्योऽहं' आहाहा! 'शून्योऽहं' पर से मैं शून्य हूँ। मेरे स्वरूप से परिपूर्ण भरपूर हूँ। पर से मैं शून्य... शून्य हूँ। आहाहा! वह रजनीश शून्य कहता है परन्तु यह वस्तु भरपूर अलग है, इसके बिना तुझे शून्य कहाँ से आया? अन्दर परिपूर्ण वस्तु भगवान अन्दर परिपूर्ण भरपूर है। वह भरित अवस्था कहने के पश्चात् 'शून्योऽहं' कहा है। समझ में आया? पर से शून्य हूँ। आहाहा! है?

'जगत्रये' तीन जगत में, तीन लोक में 'मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन' शुद्धनिश्चय से मेरा स्वरूप तो ऐसा है। परमानन्दस्वरूप भगवान वीतरागमूर्ति, निर्विकल्प शून्य और पर से भिन्न मेरा स्वरूप है। ऐसा 'तथा सर्वे जीवाः इति निरन्तर'... 'सर्वे जीवाः इति निरन्तर भावना कर्तव्या' सब जीव ऐसे हैं, प्रभु! ऐसी भावना कर। आहाहा! कैसे श्लोक पड़े हैं, देखो न! अरे! कान में पड़े नहीं। ऐसी चीज़ है, इसे सुनने को मिलती नहीं, वह कब जाए? कठिन बात है, बापू! यहाँ तो कहते हैं कि 'सर्वे जीवाः' अभव्य (भी)? यहाँ अभव्य-फव्य की बात ही नहीं है। सब जीव पूर्णानन्द से भरपूर और पर से शून्य हैं, ऐसी भावना कर्तव्य है। निरन्तर भावना कर्तव्य है। आहाहा! यह तीन जगह है।

यहाँ क्या शब्द आया है? शमजलनिधि का पूर। आहाहा! जैसे पानी का घोड़ा पूर आता है न? घोड़ा पूर समझते हो? हमारी नदी में... हमारा जन्मस्थल उमराला है न? वह नदी बहुत बड़ी है। बड़ी नदी। उसमें लड़के खेलते हों तो पच्चीस कोस दूर वर्षा हो और यहाँ तो धूप हो। पानी इतना आवे पानी, घोड़ा पूर, इतना ऊँचा दल पानी भरे और नहरों में से इकट्ठा होकर इतना ऊँचा घोड़ा पूर आवे एकदम। लड़के खेलते हों तो बाहर से चिल्लाहट मचावे। सब निकल जाओ... निकल जाओ... पानी का घोड़ा पूर आता है। इतना ऊँचा पूर चला आता है। इसी प्रकार यह आत्मा घोड़ा पूर अन्दर भरपूर है। आहाहा!

उमराला की बड़ी नदी है। 'करियाणा' पच्चीस कोस दूर से बरसात बरसी हो तो वहाँ पानी दोनों किनारे भर जाता है। तीन-तीन माथोड़ा (सिर डूब जाए, इतना) पानी, चार-चार माथोड़ा पानी। वह पूर कहलाता है।

यहाँ यह कहते हैं - शमजलनिधि का पूर। आहाहा! (उपशमसमुद्र के ज्वार से) पापकलंक को धोकर, विराजता (-शोभता) है;— अरे रे! वह सचमुच, इस समयसार का कैसा भेद है! मुनिराज ऐसा कहते हैं कि आहाहा! ऐसे आत्मा के अनुभव की स्थिरता की रमणता, वह तो कोई समयसार का कैसा प्रकार है! जिसमें पूर आया है, कहते हैं। पर्याय में आनन्द का पूर आया है। अतीन्द्रिय शान्ति का रस झरता है। अरे! यह कोई समयसार का कैसा भेद है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा वहाँ सुना नहीं। वहाँ उन हीरे-माणिक की अदला-बदली करे। वहाँ कहाँ है? अभी तो बाड़ा में भी नहीं है। मार डाला बेचारे को। क्या करे? यह करो और यह करो में जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

यहाँ परमेश्वर की बात मुनिराज करते हैं। अरे रे! ऐसा भगवान आनन्दसहित भरपूर, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसकी पर्याय में बाढ़ आयी, वह तो कैसा समयसार का प्रकार होगा! अर्थात् कि समयसार का अनुभव, वह समयसार का एक प्रकार है। यह ११० श्लोक (पूरा) हुआ। ८३ गाथा।

गाथा-८३

मोत्तूण वयण-रयणं रागादी-भाव-वारणं किच्चा ।
 अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं ॥८३॥
 मुक्त्वा वचन-रचनां रागादि-भाव-वारणं कृत्वा ।
 आत्मानं यो ध्यायति तस्य तु भवतीति प्रतिक्रमणम् ॥८३॥

दैर्नं दैर्नं मुमुक्षुजनसन्तूयमानवाङ्मयप्रतिक्रमणनामधेयसमस्तपापक्षयहेतुभूतसूत्रसमुदय-
 निरासोऽयम् । यो हि परमतपश्चरणकारणसहजवैराग्यसुधासिन्धुनाथस्य राकानिशीथिनीनाथः
 अप्रशस्तवचनरचनापरिमुक्तोऽपि प्रतिक्रमणसूत्रविषमवचनरचनां मुक्त्वा सन्सारलतामूलकन्दानां
 निखिलमोहरागद्वेषभावानां निवारणं कृत्वाऽखण्डानन्दमयं निजकारणपरमात्मानं ध्यायति, तस्य
 खलु परमतत्त्वश्रद्धानावबोधानुष्ठानाभिमुखस्य सकलवाग्विषयव्यापारविरहितनिश्चय-प्रतिक्रमणं
 भवतीति ।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह

(मालिनी)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-

रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।

स्वरस-विसर-पूर्ण-ज्ञान-विस्फूर्तिमात्रा-

न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥

तथाहि ह

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेष का परित्याग कर ।

ध्याता निजात्मा जीव जो होता उसी को प्रतिक्रमण ॥८३॥

अन्वयार्थः—[वचनरचनां] वचनरचना को [मुक्त्वा] छोड़कर, [रागादि-
 भाववारणं] रागादिभावों का निवारण [कृत्वा] करके, [यः] जो [आत्मानं] आत्मा

को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य तु] उसे [प्रतिक्रमणं] प्रतिक्रमण [भवति इति] होता है।

टीका:—प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत सूत्रसमुदाय उसका यह निरास है (अर्थात् उसका इसमें निराकरण-खण्डन किया है)।

परम तपश्चरण के कारणभूत सहज वैराग्यसुधासागर के लिए पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव (-परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर उसे उछालने के लिए अर्थात् उसमें ज्वार लाने के लिए जो पूर्ण चन्द्र समान है ऐसा जो जीव) अप्रशस्त वचनरचना से परिमुक्त (-सर्व ओर से मुक्त) होने पर भी प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर संसारलता के मूल-कन्दभूत समस्त मोह-राग-द्वेष-भावों का निवारण करके अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को ध्याता है, उस जीव को—कि जो वास्तव में परमतत्त्व के श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठान के सन्मुख है उसे—वचनसम्बन्धी सर्व व्यापार रहित निश्चयप्रतिक्रमण होता है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में २४४ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

‘[श्लोकार्थः] अधिक कहने से तथा अधिक दुर्विकल्पों से बस होओ, बस होओ; यहाँ इतना ही कहना है कि इस परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो; क्योंकि निज रस के विस्तार से पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार (-परमात्मा) उससे ऊँचा वास्तव में अन्य कुछ भी नहीं है (-समयसार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सारभूत नहीं है)।’

गाथा-८३ पर प्रवचन

मोत्तूण वयण-रयणं रागादी-भाव-वारणं किच्चा ।

अप्पाणं जो ज्ञायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं ॥८३॥

सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहना, उसकी बात परमात्मा फरमाते हैं। आहाहा! ऐसे तो

सब मिच्छामि दुक्कडम्... मिच्छामि दुक्कडम् कर-करके अनन्त बार मर गया। आहाहा! परन्तु पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसमें अन्दर स्थिर होकर राग से हट जाता है और स्वरूप में स्थिर होता है, तब उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! हम भी पहले दुकान पर प्रतिक्रमण करते थे, हों! पहाड़े बोलते थे। एक भी अर्थ की खबर नहीं होती।

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेष का परित्याग कर।

ध्याता निजात्मा जीव जो होता उसी को प्रतिक्रमण ॥८३॥

टीका:—प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा... अब क्या कहते हैं? सवेरे-शाम में प्रतिदिन धर्मी जीव प्रतिक्रमण करता है। वह प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा... मोक्षार्थी जीवों द्वारा उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण... वचनमय प्रतिक्रमण। मिच्छामि दुक्कडं.. इच्छामि पडिक्कमणा। वह नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत... वह तो पाप के परिणाम के अभावस्वरूप पुण्य। वह पुण्य है। व्यवहार प्रतिक्रमण, वह सब पुण्य है। पाप का जरा क्षय हो और पुण्य के परिणाम हों। धर्म नहीं। आहाहा!

प्रतिदिन मुमुक्षु जीव को। आहाहा! सवेरे और शाम उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत सूत्रसमुदाय... सिद्धान्त के वचन उसका यह निरास है... उसके निषेध के लिए यह प्रतिक्रमण की व्याख्या है। आहाहा! यह वचनमय प्रतिक्रमण है, वह विकल्पवाला है, वह तो बन्ध का कारण है। उसके निरास के लिए, उसके अभाव करने के लिए यह बात है। आहाहा! यहाँ तो उसके व्यवहार प्रतिक्रमण के अर्थ की खबर नहीं हो। णमोत्थुणं आता है न? णमोत्थुणं किया था? भभूतमलजी! पहले किया था? ठीक। उसमें आता है। लोगस्स में आता है। लोगस्स है न? 'लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे...' उसमें 'विहूयरयमला' आता है। 'विहूयरयमला' लोगस्स में (आता है)। अर्थ की खबर नहीं होती। फिर एक महिला बोलने लगी, वहाँ लींबड़ी में विशाश्रीमाली और दशाश्रीमाली को विवाद (चलता था)। इसलिए दशाश्रीमाली महिला यह बोली - विहूयरयमला अर्थात् वीहा रोई मलया। अर्थ की खबर नहीं होती। लोगस्स में आता है। अन्तिम नहीं 'अेवंमअे अभिथुआ, विहूयरयमला पहीणजरमणा...' 'लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।' यह तो दस वर्ष की उम्र से किया हुआ है। उसमें 'विहूयरयमला' आता है। एक महिला अर्थ करने लगी कि वीहा रोई

मल्या। वे कहे अपना विवाद इसमें कहाँ से आया ? उसमें तो ऐसा अर्थ नहीं है। (सच्चा अर्थ) क्या है ?

विहूय – हे परमात्मा ! विशेष हुय अर्थात् टाले हैं (अभाव किया है), रयमला— रय अर्थात् कर्म की रज और मला अर्थात् पुण्य-पाप का मेल। आपने मिटाया है, तब आप परमात्मा हुए हो। ऐई ! है ? अर्थ की खबर थी ? आहाहा ! नमोत्थुणं में ऐसा आता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सरणगईपईट्टा'। 'दीवोताणं सरणगईपईट्टा' नमोत्थुणं में आता है। 'नमोत्थुणं, अणिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं' –आता है न ? उसमें 'दीवोताणं सरणगईपईट्टा' (आता है)। अब महिला अर्थ करने लगी। सामने विरोध था। 'दीवाटांणे संघवी पीठ्या' उसमें से ऐसा निकाला। 'दीवोताणं सरणगईपईट्टा' का अर्थ आवे नहीं। 'दीवाटांणे संघवी पीठ्या'। कहा, यह नमोत्थुणं में कहाँ से आया ऐसा ? देखो तो सही। 'दीवोताणं सरणगईपईट्टा' जैसे समुद्र में द्वीप होता है, वैसे इस संसार तरने का उपाय भगवान आत्मा में अन्दर है, वह शरण है। अन्दर शरणभूत भगवान आत्मा है। अर्थ की खबर नहीं होती और विपरीतता सेवन करते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि उस प्रतिक्रमण के वचन का विकल्प और उसका जो राग, उसे निरास करने की व्याख्या है। उसका खण्डन करते हैं कि व्यवहार नहीं, व्यवहार संसार बन्ध का कारण है। आता है, होता है। आहाहा ! (अर्थात् उसका इसमें निराकरण-खण्डन किया है)।

परम तपश्चरण के कारणभूत... आहाहा ! देखो ! लेंगे। **परम तपश्चरण के...** आनन्द का नाथ अन्दर स्वरूप सम्यग्दर्शनसहित, स्वरूप की चारित्र की रमणतासहित, स्वर्ण जैसे गेरु से शोभित होता है, वैसे अन्तर आत्मा की शोभा वीतरागभाव से शोभता है, उसे यहाँ तपस्या कहते हैं। अरे.. अरे ! तपस्या की व्याख्या अलग है। यह कहते हैं, देखो !

परम तपश्चरण के कारणभूत सहज वैराग्यसुधासागर के लिए पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव... आहाहा ! जैसे पूनम का चन्द्र पूर्ण उदित हो, (तब) समुद्र में ज्वार आता है। इसी प्रकार मुनिराज... आहाहा ! अन्दर वीतराग की भावना का रसीले रस में चढ़ गया (तो पर्याय में) ज्वार आया। आहाहा ! है ?

पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव... उस जीव को ही चन्द्रमा कहा। (-परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर...) आहाहा! भगवान तो अमृत का सागर है, सुख का सागर है। अमृत अर्थात् सुख। आहाहा! उस अमृत का सागर ऐसा भगवान। अमृत के सागर को उछालने के लिए, अन्दर अमृत का सागर भगवान भरा है। चन्द्र में जैसे पूर्णिमा का उछले, वैसे जो मुनि अपने स्वरूप में रमते हैं, उनकी पर्याय में आनन्द उछलता है। आहाहा! यह निश्चय प्रतिक्रमण। अरे रे! ऐसी बातें हैं। सब बातों में अन्तर है। इसलिए कितने ही कहते हैं न कि सोनगढ़वालों ने नया निकाला है। भूपतभाई! नया नहीं निकाला, भगवान! अनादि का भगवान कहते हैं, वह यह है। बापू! तूने सुना नहीं, इसलिए तुझे नया लगता है। यह मार्ग तो अनादि का है। अन्दर है या नहीं? आहाहा! कहते हैं कि वे मुनि कैसे हैं? कि जैसे पूर्णिमा का चन्द्र होता है और जैसे ज्वार आता है, वैसे वे मुनि अपने आनन्दस्वरूप में एकाग्र होकर... आहाहा! पर्याय में, अवस्था में अमृत का उछाला आता है, अमृत की बाढ़ आती है, उसका नाम निश्चय प्रतिक्रमण कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए कहते हैं सोनगढ़वालों ने व्यवहार को उत्थापित कर डाला है, अमुक ऐसा किया है। सब सुना है, सब सुना है, बापू! सुन न अब। यहाँ क्या कहते हैं? व्यवहार को तो निरास करते हैं। व्यवहार आवे, परन्तु वह खण्डन करनेयोग्य है, निषेध करने योग्य है। आहाहा! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते बन्ध होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तो बन्ध परन्तु व्यवहार स्वयं बन्धस्वरूप है। बन्ध स्वरूप से बन्ध ही होगा और आत्मा मुक्तस्वरूप है, उसके आश्रय से मुक्तदशा होगी। आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार में आता है। विकार है, वह बन्धस्वरूप ही है। उसमें बन्ध ही होता है और भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है तो मुक्तस्वभाव के आश्रय से मुक्तपना ही आता है। समयसार में पुण्य-पाप के अधिकार में है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी... क्या कहते हैं? (परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी...) पर से एकदम उदास। आहाहा! दुनिया के विकल्प से भी जो उदास है। आहाहा! परचीज से तो उदास है परन्तु शुभविकल्प जो प्रतिक्रमण का व्यवहार आता है, उससे भी परम उदास वैरागी है। आहाहा! कठिन बात, भाई! परिचय नहीं, अभ्यास नहीं; इसलिए कठिन लगता है।

वस्तु तो स्वयं भरी है। भगवान पड़ी है। भगवत्स्वरूप है। सब भगवान हैं, कोई अपूर्ण और कोई विकारी आत्मा है ही नहीं। आहाहा! सब भगवानस्वरूप अनन्त हैं। आहाहा! ऐसे भगवानस्वरूप को पहचान कर अन्दर में स्थिर हुआ, वह चन्द्रमा जैसे पूनम से उगे और पानी का ज्वार आवे, वैसे पर्याय में (सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर उसे उछालने के लिए अर्थात् उसमें ज्वार लाने के लिए जो पूर्ण चन्द्र समान है...) मुनि। आहाहा! पंचम काल के सन्त कहते हैं। यह टीकाकार तो नौ सौ वर्ष पहले हुए। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा है। मुनि की दशा, बापू! मुनि कोई वस्त्र छोड़े और नग्न हो गया, इसलिए मुनि है? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, अन्दर में इतना उदास है कि जिसे विकल्प भी नहीं रुचता, नहीं सुहाता। आहाहा! शरीर, वाणी, और परपदार्थ की तो क्या बात करना परन्तु जिसे व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प जो राग है, वह जिसे नहीं पोसाता, नहीं रुचता, नहीं सुहाता। आहाहा!

(पूर्ण चन्द्र समान है, ऐसा जो जीव)... आहाहा! अप्रशस्त वचनरचना से परिमुक्त... कहते हैं कि अशुभभाव से तो परिमुक्त है। ऐसा होने पर भी प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर... अशुभभाव तो छोड़ा है, परन्तु प्रतिक्रमण का, व्यवहार का जो प्रतिक्रमण का विकल्प है, उसे भी छोड़कर। अरे.. ऐसी बातें हैं। शास्त्र में देखे नहीं, पढ़े नहीं, विचार करे नहीं और सोनगढ़ के नाम से तो ऐई! सोनगढ़ तो निश्चयाभास है। व्यवहार से तो बात करते नहीं। भगवान!

मुमुक्षु : बात ही सब व्यवहार की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प उठता है, वह भी व्यवहार है, वाणी वह सब व्यवहार है परन्तु वह आदरनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि सत्य प्रतिक्रमण करनेवाला अप्रशस्तराग से तो उदास है, छूट गया है। है? परन्तु प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर.. आहाहा! इच्छामि पडिकमणूं... इन सब शब्दों को छोड़कर और उनकी ओर के विकल्प को छोड़कर, ऐसा कहते हैं। अब ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' परमार्थ का पन्थ तो यह एक ही होता है। दूसरा व्यवहार भी एक (मार्ग) है, ऐसा नहीं है। आहाहा! उस विकल्प को भी छोड़कर... आहाहा! है?

संसारलता के मूल-कन्दभूत समस्त मोह-राग-द्वेष-भावों का निवारण करके... संसाररूपी बेल / लता। संसाररूपी बेल फलती है। उस संसारलता के मूल-कन्दभूत, उसका मूल... **समस्त मोह-राग-द्वेष...** ये समस्त मोह-राग-द्वेष, उस संसारलता का मूल है। चाहे तो दया, दान और व्रत का व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प हो, परन्तु संसारलता का मूल है। आहाहा! सुनना कठिन पड़ता है। अन्दर है या नहीं? वे बहियाँ देखी, परन्तु ये बहियाँ देखी नहीं होगी, अन्दर पढ़ा भी नहीं होगा। आहाहा!

संसारलता के मूल-कन्दभूत... मूल कन्द-जड़। संसार की बेल का मूल। कौन? मोह-राग-द्वेष-भाव। आहाहा! मिथ्यात्व और पुण्य-पाप का भाव, वह संसारलता बेल का मूल है। आहाहा! उसमें संसार बेल फलती है। आहाहा! कठिन पड़े, बापू! जरा विचार करना चाहिए, भाई! उसका **निवारण करके अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को ध्याता है...** आहाहा! देखो! है? कहते हैं कि परसंयोग से तो उदास है, अप्रशस्त राग अशुभराग तो छूट गया है, परन्तु शुभराग को भी छोड़कर... आहाहा! **अखण्ड-आनन्दमय..** प्रभु! अन्दर अखण्ड आनन्दमय प्रभु है। आहाहा! जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, ऐसा अखण्ड आनन्दमय प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसवाला, ऐसा आत्मा।

ऐसा **निज कारणपरमात्मा...** अपना कारणपरमात्मा, निज कारणपरमात्मा। आहाहा! देखो! **अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को...** यहाँ आत्मा को निज कारणपरमात्मा कहा है। आहाहा! दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब तो भाईसाहब को पाखाने में दस्त उतरे। ऐसे अपलक्षण। उसे ऐसा कहना कि अन्दर निज कारणपरमात्मा (तू स्वयं है) किस माप से माप करे? आहा!

यहाँ तो परमात्मा पंचम काल के सन्त भी जगत को प्रसिद्ध करके पुकार करते हैं। आहाहा! पंचम काल के हीन पुण्य और साधारण, ऐसा नहीं मानना। वह तो बाहर की दशा है। प्रभु! तू तो परिपूर्ण भगवान है न! आहाहा! कैसा? **अखण्ड-आनन्दमय...** आनन्दवाला भी नहीं। **अखण्ड-आनन्दमय...** जैसे शक्कर मिठासमय है, वैसे अखण्ड अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु आत्मा है। आहाहा! कौन? अखण्ड आनन्दमय कौन? निज कारणपरमात्मा। त्रिकाली द्रव्य कारणपरमात्मा को मुनि ध्याते हैं, उसे मुनि ध्यान में ध्येय में लेकर उसका ध्यान करते हैं। आहाहा! उस जीव को क्या है, वह विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८१, श्लोक-१११, गाथा-८४, शुक्रवार, कार्तिक शुक्ल १३, दिनांक ०२-११-१९७९

नियमसार ८३ गाथा के पीछे कलश है न? कलश। समयसार का, १११ पहले।

अलमलमतिजल्पैर्दुविकल्पैरनल्पै-

रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः।

स्वरस-विसर-पूर्ण-ज्ञान-विस्फूर्तिमात्रा-

न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥

समयसार का श्लोक है। आहाहा! '[श्लोकार्थः—] अधिक कहने से... क्या, आचार्य कहते हैं, तुम्हें क्या विशेष कहें? प्रभु! तथा अधिक दुर्विकल्पों से... क्या? अनेक प्रकार के विकल्प, वृत्तियाँ उठें, उनसे क्या? वे चीज़ (आत्मा) में है नहीं। बस होओ,... अनेक विकल्प जो दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के हैं, उनसे बस होओ। वह राग है। भगवान उससे भिन्न है। अलम विकल्प से पृथक् होओ अब। और उससे छूटकर बस होओ,...

यहाँ इतना ही कहना है.. आहाहा! पूरा समयसार भगवान की दिव्यध्वनि में इतना कहना है कि इस परम अर्थ का एक का... आहाहा! परमपदार्थ भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड प्रभु जो वस्तु है। जैसे बर्फ की.. क्या कहलाता है? शिला। बर्फ की शिला होती है न? मुम्बई में, नहीं? पचास-पचास मण की, शीतल-शीतल, पचास मण की शीतल (शिला होती है)। इसी प्रकार भगवान आत्मा शीतल.. शीतल.. अविकारी वीतरागस्वरूप की शिला है - पाट है। अरे रे! कैसे जँचे? आहा! अन्तरस्वरूप तो वीतरागस्वरूप का पाट आत्मा है।

कहते हैं परम अर्थ का एक का... परम पदार्थ आत्मा। आहाहा! दूसरी बात, विकल्पों की वृत्ति आदि छोड़ दे, भाई! उससे तुझे कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! परम पदार्थ भगवान अन्दर सच्चिदानन्द—सत् ज्ञान और आनन्द से भरपूर प्रभु, उस अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो;... यह बात है, भाई! कठिन है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव करो, वह धर्म और मोक्षमार्ग है। आहाहा! कठिन बात है।

अमृतचन्द्राचार्य समयसार की बहुत टीका कह गये हैं। (टीका) करते-करते

अन्त में ऐसा बोले, प्रभु! अब बस होओ, तेरी बात करते-करते। तेरी चीज़ अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर ध्रुवशिला अन्दर है, ऐसे का आत्मा का अन्तर अनुभव करो, उससे तुझे मोक्ष का मार्ग प्रगट होगा। आहाहा! यह सब व्यवहार का क्या समझना? व्यवहार आता है, वह राग है; वह धर्म नहीं है। आहाहा! शीतल चैतन्य पाट प्रभु, नित्य ध्रुव अविनाशी विषय है। सम्यग्दर्शन पर्याय का विषय अविनाशी पदार्थ आत्मा है। उसका एक का-एक का अन्तर्मुख होकर अनुभव करो, वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसी बात है। यहाँ तो व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो। यह शुभभाव बीच में आता है, परन्तु यह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! वीतराग परमात्मा जो वीतरागस्वरूप था, तो उससे वीतरागस्वरूप हुआ; तो वीतरागस्वरूप आत्मा है। आहाहा! परमेश्वर भगवत्स्वरूप आत्मा, उस एक पदार्थ का ही अनुभव करो। बहुत संक्षिप्त बात की है।

मुमुक्षु : परन्तु काम बहुत है, करे कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ काम बहुत ? व्यर्थ का हैरान होकर मर जाता है पूरे दिन। भभूतमलजी ! काम बहुत स्टील का और लोहे के बेचने का। वह शान्तिलाल नहीं कहा था ? शान्तिलाल खुशाल, दो अरब चालीस करोड़। पूरे दिन काम.. काम.. काम। एक-एक लाख का एक-एक छोटा जहाज था, ऐसे तीन सौ जहाज घर में थे। वह चुम्बक लोहा.. लोहा था। समुद्र कुछ सत्तर लाख की जमीन ली थी, उसमें अरबों रुपये का चुम्बक निकला, लोहा। वह एक गाँव से दूसरे पहुँचाने के लिए तीन सौ तो जहाज थे। एक-एक लाख के ऐसे तीन सौ (जहाज)। पूरे दिन होली सुलगती है। यह करो.. यह करो.. यहाँ भेजो, यहाँ करो। उसके पैसे निपटाना, इतने ऐसे लाना, और ऐसा रखना। आहाहा! अरे रे! मजदूरी के विकार के परिणाम से निवृत्त नहीं होता। यह सब संसार की मजदूरी है।

यहाँ तो आचार्य महाराज कहते हैं कि बहुत क्या कहें प्रभु, तुझे अब ? बहुत कहा तुझे। अब उसका योगफल यह है कि एक **परम अर्थ...** परमपदार्थ भगवान द्रव्यवस्तु, चैतन्य द्रव्यस्वभाव, शुद्ध मूर्ति प्रभु, **एक का ही...** एक का ही (कहकर) एकान्त किया है। व्यवहार भी करो और यह भी करो, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! यह भगवान आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप चिन्तामणि रत्न प्रभु, नित्यानन्द चिन्तामणि नित्य वस्तु, ऐसा एक परमपदार्थ आत्मा, उसका एक का ही अन्तर अनुसरण कर अनुभव करो। आहाहा! यह

बारह अंग का सार है। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में परमार्थ का यह स्वरूप है। निवृत्त कब होना? ऐसा रामजीभाई कहते हैं। आहाहा!

अरे! बहुत किया, भाई! पाव घण्टे में, (१५ मिनट में) उड़ गया अभी एक, लो! यह प्रेमचन्दभाई की बहू। राणपुर 'प्रेमचन्दभाई मगन' नहीं थे? १५ मिनट, एक घण्टे दुःख आया जरा। (बाकी) कुछ नहीं होता। दो दिन पहले। एक लड़के का पत्र आया है। मुम्बई से सब आये हैं। जरा दर्द उठा तो एक घण्टे में तो समाप्त हो गया। देह छूट गयी। घण्टे भर पहले कुछ नहीं था परन्तु देह को छूटने का तो एक समय है न, बापू! आहाहा! उसकी स्थिति पूरी हुई, इसलिए एक समय में एकदम देह छूट जाएगी। तेरे लाख डॉक्टर आवे और इन्द्र उतरे तो भी एक समय अधिक बढ़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! आज लड़के का-महासुख का पत्र आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परमात्मा, सन्त कहते हैं, वह परमात्मा के आढृतिया हैं। वे कहते हैं, प्रभु! तेरी कितनी बात करें? नाथ! तुझे क्या कहना प्रभु अब? एक परमपदार्थ ऐसा आत्मा द्रव्यस्वभाव... आहाहा! उसका अनुभव करना। उसमें तुझे आनन्द आयेगा, तुझे शान्ति मिलेगी, तुझे वीतरागता होगी। आहाहा! यह सब व्यवहार और प्यवहार सब गया कहाँ तब? भभूतमलजी! आठ लाख का मन्दिर बनाया।

भरत ने करोड़ों रुपये के बनाये। तीन काल के तीर्थकरों के (मन्दिर) बनाये। उसमें है, परमागम में है। यहाँ है? तीन काल के तीर्थकरों के तीन चौबीसी के मन्दिर बनाये। परन्तु वह तो परमाणु की पर्याय उस काल में वहाँ होनेवाली है। करनेवाले के भाव में भाव हो तो शुभ है, पुण्य है। आहाहा! वह कोई धर्म नहीं, वह कोई धर्म का कारण भी नहीं। वह शुभभाव धर्म में सहायक हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

परमपदार्थ ऐसा जो आत्मा अन्दर भगवान है, उसका प्रभु! तू अनुभव कर। है? परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो;... आहाहा! सार है। अब यह तो स्त्री, पुत्र को पालना कब? उन्हें बचाना.. आहाहा! आज एक व्यक्तिगत गुप्त पत्र आया है। बहुत दुःखी हूँ, बहुत ऐसा हूँ... ऐसा हूँ.. अब कोई साधन नहीं है। आठ-दस वर्ष चलाया, अब तो देह छूटने का अवसर आया है। हमारे से माँगता है। हमारे पास क्या है? आहाहा! मैं

वहाँ आऊँ तो कुछ पैसा दे तो फैक्ट्री करूँ, धन्धा चलाऊँ। आहाहा! अरे! प्रभु! यहाँ तो शुभविकल्प है, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा!

क्या कहते हैं? कि समयसार सिद्धान्त का सार यह है कि एक आत्मा का निरन्तर.. एक का ही... एक का ही। एकरूप स्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द, एक का ही... निश्चय कहा। आहाहा! अनुभव करो। क्योंकि निज रस के विस्तार से पूर्ण जो ज्ञान... आहाहा! इस राग के रस से भिन्न रस के फैलाव (स्वरूप), ऐसा जो पूर्ण ज्ञान, आनन्द पूर्ण स्वरूप भगवान, उसके स्फुरायमान होनेमात्र... आहाहा! अन्तर पूर्णानन्द का नाथ, उसमें अन्तर अनुभव करने से परमात्मा पर्याय में स्फुरायमान होता है। आहाहा! पर्याय में परमात्मा होता है। द्रव्य में परमात्मा है, वस्तु (स्वरूप से) तू परमात्मा है, प्रभु! आहाहा! अन्दर सब आत्मा भगवान हैं। उस भगवान का अर्थ एकाग्र हो तो तुझे भगवानपना पर्याय में प्रगट होगा। पर्याय में प्रगट होगा। आहाहा! ऐसा सब। ऐसी बातें, लो! यह व्यवहार-प्यवहार क्या करना? लोग व्यवहार का बहुत पक्ष करते थे। आज कान्तिभाई का पत्र आया है। कान्तिभाई ईश्वर का। बहुत सरस बात है। वह पहले विरोध करता था। समाचार-पत्र में विरोध (करे) अज्ञानी ऐसा करता है और अज्ञानी ऐसा करता है, ऐसा लिखता था। और आज ऐसा आया। यहाँ थोड़े दिन रह गया न? कान्तिलाल ईश्वर। आहाहा! बात तो ऐसी सत्य है। बराबर है, वही बात है। भाई! मार्ग तो यह है, धीमे से कहो, उतावल से कहो, बड़ी आवाज में कहो, चाहे जिस प्रकार से दृष्टान्त देकर कहे परन्तु वस्तु तो यह प्रभु अन्दर पूरा विराजता है। एक का ही अनुभव करना, यह इसका सार है। अब ऐसा समय कब मिले इसमें? ऐई! इस लोहे के व्यापार के कारण तुम्हें समय कहाँ है? लोहे का है? या पत्थर का है? टाईल्स.. टाईल्स का। आहाहा!

मुमुक्षु : छह खण्ड का राज चलावे इसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह खण्ड का राज कौन चलावे? प्रभु! क्या कहें? यह परमाणु की पर्याय उस-उस काल में उसके कारण से वह परिणमित होती है। अज्ञानी उसका कर्ता होकर अभिमान में मिथ्यात्व सेवन करता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई!

हमारे भाई को हमने कहा था न? हमने कहा नहीं? हमारा भागीदार फुई (बुआ) का लड़का कुँवरजीभाई दुकान में (हिस्सेदार था)। दुकान तो अभी चलती है। उनकी

बुद्धि कम थी परन्तु कुछ पुण्य था, इसलिए दुकान चलती है। वे गुजर गये, तब थोड़ी आमदनी थी, दो लाख की। अभी बढ़ गयी है। दो लाख की आमदनी थी, दस लाख रुपये थे। सब था। इसलिए उन्हें तो मैंने किया... मैंने किया.. मैंने किया यह सब, ऐसा अभिमान (था)। आहाहा! वे तो इतना बोले... इतना बोले.. इसका ऐसा करना.. इसका ऐसा करना.. इसका ऐसा करना.. इस प्रकार दुकान चले। बहुतों की दुकान टूट गयी। हम काम करते हैं तो दुकान चलती है। भाई! तुम यह रहने दो बापू! कहा। (संवत्) १९६६ की बात है। बीस वर्ष की उम्र। सत्तर वर्ष पहले की बात है। भाई! तुम यह क्या करते हो? बापू! दुकान तो मैं भी चलाता हूँ परन्तु इतना अभिमान तुम्हें! भाई! क्या कहूँ? मुझसे चार वर्ष बड़े थे।

अभी मुझे शरीर के नब्बे (वर्ष) चलते हैं। जन्म के। गर्भ के ९१। उन्हें ९५ वर्ष, बड़े थे। सुनते थे। भगत है.. भगत है.. यह भगत है। बोलने दो, बोलने दो। मेरे सामने कोई बोले नहीं। भाई! क्या कहूँ? मुझे तो ऐसा लगता है, भाई! मरकर तुम देव तो नहीं होओगे, नरक में तो नहीं जाओगे। अपने तो कुछ माँस, अण्डा खाते नहीं, इसलिए नरक में नहीं जाओगे, भाई! सत्तर वर्ष पहले की बात है। बीस वर्ष की उम्र थी। (संवत्) १९४६ में जन्म और १९६६ की बात है यह। दुकान में शामिल जीमते थे। उनकी बहुत ममता देखकर एक दिन मुझसे बोला गया, यह क्या करते हो पूरे दिन तुम? याद रखो, कहा, मरकर तुम नरक में तो नहीं जाओगे देव के लिए तुम्हारी योग्यता नहीं है, मनुष्यपने की योग्यता नहीं है। भाई! मैं कहूँ तो मरकर ढोर में जानेवाले हो। दुकान में बैठे थे, गद्दी पर बैठे थे, बोले नहीं, हँसने लगे। भगत है। भगत बोले वह सुनो। भाई! यह क्या करते हो? पूरे दिन तुम... कहाँ जाना है? बापू! यह जिन्दगी तो पूरी हो जाएगी। जितना आयुष्य है, वहाँ तक है। अब कहाँ जाओगे? बापू! आहाहा! भविष्य में अनन्त काल रहना है, नाथ! तेरा कुछ नाश हो, ऐसा है? भविष्य तो अनन्त काल रहेगा तो कहाँ रहेगा? प्रभु! ऐसी दृष्टि और यह करूँ.. करते-करते ऐसी बुद्धि में रहेगा। भविष्य में मिथ्यात्व के दुःख में अनन्त काल व्यतीत करना पड़ेगा, प्रभु! आहाहा! परन्तु लोगों को वर्तमान की मिठास के कारण.. सब सुविधा देखे, पैसे की, इज्जत की, दुकान की, अमुक की, नौकरों की, नौकर भी ऐसे अच्छे मिले, सब मानो ऐसा। ओहो! परन्तु क्या है?

यहाँ कहते हैं, करना हो तो प्रभु! एक यह है। यह आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु ध्रुव

नित्यानन्द प्रभु परमपदार्थ अन्दर वस्तु है। एक का ही अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! दूसरा क्या कहें? कहते हैं, आहाहा! तुझे क्या कहें? भाई! तुझे ठीक नहीं लगता। बाहर के रस के रसिक को यह बात ठीक नहीं लगती। प्रभु! ठीक न लगे तो भी बात तो यह है। आहाहा! अरे रे! यहाँ कहाँ जाना है? क्षण में देह उड़ जाती है। आहाहा! देखो न, कल आया है न? आणंदभाई के बहनोई। आठ दिन में दो बार तो यह आया... क्या कहलाता है? हार्टअटैक। आणंदभाई हैं। नानालालभाई करोड़पति, नानालाल करोड़पति, आणंदभाई अभी थे न? उनके बहनोई। आठ दिन में दो बार अटैक आया। साठ वर्ष की उम्र। लड़के का पत्र आया, भाई! तुम आओ। ऊपर रक्त चढ़ गया है, बोलना बन्द हो गया है। परमाणु की भाषा जड़ है, बापू! वह कब बन्द हो और कब चले, यह तो तेरे आधार से नहीं है। आहाहा! यह शरीर भी कब चले और कब स्थिर हो, वह भी तेरे आधार से नहीं है। अरे रे! तो फिर शरीर और वाणी भी तेरे आधार से नहीं है तो इस जगत की बाहर की चीज़ें चलें, रहें और टिकें, प्रभु! तेरी भ्रमणा है। आहाहा! एक बार परम अर्थ का.. ऐसी गाथा है।

परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो; क्योंकि निज रस के विस्तार से पूर्ण.... प्रभु भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान के पूर्ण रस से (भरा है)। आहाहा! जैसे कोठी में अनाज भरा हो, ऐसा नहीं, परन्तु जैसे शक्कर में मिठास भरी है; वैसे इस भगवान में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान पूर्ण भरा है। आहाहा! ऐसा जो भगवान, उसके विस्तार से पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होनेमात्र... आहाहा! उस चैतन्य भगवान की एकाग्रता से, जो ज्ञान और आनन्द की दशा स्फुरित हो... आहाहा! वह समयसार (-परमात्मा) उससे ऊँचा वास्तव में अन्य कुछ भी नहीं है... वह परमात्मा है और परमात्मा की एकाग्रता से पर्याय में परमात्मा बनते हैं, इसके अतिरिक्त कोई उत्कृष्ट चीज़ जगत में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : उत्कृष्ट होवे तो कुछ हल्की है, ऐसा कैसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब हल्की क्या? उल्टा है। अरे रे! ऐसी बातें हैं। दुनिया को निवृत्ति नहीं मिलती। निर्णय करने का समय नहीं मिलता। आहाहा! यह तो क्या है? द्रव्य, जिसे आत्मा कहें, वह आत्मा क्या चीज़ है? उसमें क्या भरा है? वह नित्य है या अनित्य है? विकृत है या अविकृत है? क्या है वह चीज़? क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प हमारी भाषा में शब्द ही प्रयोग नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! क्या करें ? प्रभु! आहाहा! यहाँ यही कहते हैं ?

एक स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार (-परमात्मा)... आहाहा! वस्तु स्वयं परमात्मा है। अरे रे! कैसे जँचे ? दो बीड़ी पीवे वहाँ इसे तलब चढ़ जाए तो अन्दर ऐसे.. आहाहा! बीड़ी पीवे। पाखाने में दस्त के लिए जाए, तब दो बीड़ी पीवे, तब दस्त उतरे। अब आत्मा के ऐसे अपलक्षण। उसे ऐसा कहे कि तू परमात्मा है, प्रभु! आहाहा! तुझे तो परद्रव्य के बिना चले, ऐसी तेरी चीज़ है। आहाहा! परद्रव्य के सहारे से तेरा टिकना हो, ऐसी तू चीज़ है नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, वह स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार (-परमात्मा) उससे ऊँचा वास्तव में अन्य कुछ भी नहीं है... उससे उत्कृष्ट दुनिया में कोई इन्द्रासन और सर्वार्थसिद्धि के देव, (ये कुछ भी) उससे उत्कृष्ट चीज़ नहीं है। आहाहा! (-समयसार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सारभूत नहीं है)। आहाहा!

और (इस ८३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— यह अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है और यह श्लोक अब पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार का श्लोक है, १११।

श्लोक-१११

और (इस ८३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(आर्या)

अति-तीव्र-मोह-सम्भव-पूर्वार्जितं तत्प्रतिक्रम्य ।

आत्मनि सद्बोधात्मनि नित्यं वर्तेऽहमात्मना तस्मिन् ॥१११॥

(हरिगीतिका)

अतितीव्र मोहोत्पत्ति से पहले उपार्जित कर्म का।

प्रतिक्रमण कर इस ज्ञानमय नित आत्मा में वर्तता ॥१११॥

[श्लोकार्थः—] अति तीव्र मोह की उत्पत्ति से जो पूर्व में उपार्जित (कर्म)

उसका प्रतिक्रमण करके, मैं सद्बोधात्मक (सम्यग्ज्ञानस्वरूप) ऐसे उस आत्मा में आत्मा से नित्य वर्तता हूँ ॥१११॥

श्लोक-१११ पर प्रवचन

अति-तीव्र-मोह-सम्भव-पूर्वार्जितं तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि सद्बोधात्मनि नित्यं वर्तेऽहमात्मना तस्मिन् ॥१११॥

आहाहा! अति तीव्र मोह की उत्पत्ति से... आहाहा! पर की ओर के अति तीव्र मोह की उत्पत्ति से जो पूर्व में उपार्जित (कर्म)... आहाहा! अपने शुद्ध निजस्वरूप भगवत् स्वरूप को भूलकर परसन्मुख का तीव्र उत्साह और तीव्र मोह के कारण जो कुछ कर्म उत्पन्न हुए, उसका प्रतिक्रमण करके,... प्रभु! अब प्रतिक्रमण कर। वहाँ से अब विमुख हो जा, अब विमुख हो, ऐसा कहते हैं। वह प्रतिक्रमण यह। वहाँ से हट जा। विकल्प से, पुण्य-पाप से हट जा। हट, बस! आहाहा!

एक क्षुल्लक थे, यहाँ आते थे। बेचारे गुजर गये। भीलवाड़ा के थे। क्या नाम? आदिसागर क्षुल्लक थे। बुद्धि थोड़ी थी, परन्तु यहाँ की बात उन्हें बहुत सुहाती-रुचती थी। फिर दूसरों को ऐसा कहते थे 'पर से खस, आत्मा में बस, इतना तेरे लिए बस।' आहाहा! पर से हट। राग से हट जा, स्वभाव में बस, इतना तेरे लिए बस। बस। ऐई! बेचारे की बुद्धि कम थी तो ऐसा एक संक्षिप्त में लोगों को कहते थे। बहुत बार यहाँ आते थे। वहाँ रखियाल भी आते थे।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, वह बाहर के विकल्प में गया है, उसमें से हट जा, हट जा और स्व में बस। ज्ञानानन्द प्रभु में बस, तुझे प्रतिक्रमण होगा, तुझे आनन्द होगा। आहाहा! पर में रहने से तुझे दुःख होगा। पुण्य और पाप के विकल्प में रहने से तो तुझे दुःख होगा। वहाँ से हटकर भगवान ज्ञानस्वरूप में पर से हटकर प्रतिक्रमण करके... है? मैं सद्बोधात्मक... सद्बोधात्मक (सम्यग्ज्ञानस्वरूप) ऐसे उस आत्मा... ज्ञानस्वरूप, जाननस्वरूप है वह तो। आहाहा! जानन अर्थात् शास्त्र का जानना, वह ज्ञान नहीं। जानन उसका (आत्मा का) स्वभाव है। जिसकी सत्ता में यह ज्ञात होता है। यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. यह तो उसकी सत्ता में ज्ञात होता है। जड़ की सत्ता में ज्ञात होता है?

चैतन्यसत्ता, सद्बोध ज्ञानस्वरूप की सत्ता में वह ज्ञात होता है। निश्चय से वह ज्ञात नहीं होता। निश्चय से तो उस ओर का अपना ज्ञान अपने में ज्ञात होता है। आहाहा! यह सब दिखता है। आँख इतनी, दिखे कितना? अन्दर ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान की सत्ता के अस्तित्व में यह सब ही यह है, ऐसा जाननेवाला तत्त्व है, वह पर्यायतत्त्व है। पर्यायतत्त्व इतना है कि जिसमें यह जानता वह अपनी पर्याय है। उसे जानना अर्थात् उसकी पर्याय है, ऐसा नहीं। आहाहा! उस पर्याय में अन्तर आत्मा भगवान पूर्ण आनन्द पड़ा है, उसका तू लक्ष्य कर। आहाहा! स्फुरायमान होने से सद्बोधात्मक.. वह सद्ज्ञान बोधस्वरूप है। आहाहा!

ज्ञानरूपी चन्द्र, चन्द्र के प्रकाश का पुंज प्रभु! ज्ञान के प्रकाश का पुंज ध्रुव, ऐसा सद्बोधात्मक स्वरूप, ऐसे उस आत्मा में आत्मा से नित्य वर्तता हूँ। आत्मा में आत्मा से अर्थात् क्या कहा? मेरा त्रिकाल शुद्धस्वभाव जो है, उसकी पर्याय में, स्वभाव से मैं पर्याय में वर्तता हूँ। शुद्धपर्याय से शुद्ध स्वभाव में मैं वर्तता हूँ। राग से मेरी चीज़ मैं वर्तता हूँ, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! अपना स्वभाव जो ज्ञान और आनन्द है, उसकी पर्याय में जो स्वभाव उत्पन्न हुआ, उस स्वभाव से मैं अन्तर में वर्तता हूँ। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है इसलिए... पूरे दिन वह सुना हो कि ऐसा करना... ऐसा करना... और ऐसा करना। बड़ा गजरथ निकालना, रथयात्रा निकालना, कोई फिर पाँच, दस ब्रह्मचर्य ले तो उनकी रथयात्रा निकाले, उनके गुणगान करे कि ओहो! लोग मानो... आहाहा! अरे! प्रभु! ऐसी बातें तो अनन्त बार की हैं। सुन न! आहाहा!

सद्बोधात्मक (सम्यग्ज्ञानस्वरूप) ऐसे उस आत्मा में... सद्बोधस्वरूप, सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा सद्बोधस्वरूप आत्मा **ऐसे उस आत्मा में आत्मा से...** स्वभाव की निर्मलता से पूर्ण निर्मलता में **नित्य वर्तता हूँ।** इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। अरे रे! अब ऐसी बातें। फिर बहुत से कहते हैं, सोनगढ़ का निश्चय.. निश्चय.. निश्चय.. व्यवहार का तो ना ही। अरे! परन्तु सुन न, प्रभु! निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् आरोपित बात, वह तो कथन है। परम सत्य उसका नाम निश्चय। आहा! परमानन्द का नाथ भगवान अन्दर.. आहाहा! उसे आत्मा में निज रस से, निजस्वभाव से वर्तता हूँ। उसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा जाता है। यह ८३ गाथा हुई। ८४ गाथा।

गाथा-८४

आराहणाइ वट्टइ मोत्तूण विराहणं विसेसेण ।
 सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८४॥
 आराधनायां वर्तते मुक्त्वा विराधनं विशेषेण ।
 स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात् ॥८४॥

अत्रात्माराधनायां वर्तमानस्य जन्तोरेव प्रतिक्रमणस्वरूपमुक्तम् । यस्तु परमतत्त्वज्ञानी जीवः निरन्तराभिमुखतया ह्यनुत्पत्परिणामसन्तत्या साक्षात् स्वभावस्थितावात्माराधनायां वर्तते अयं निरपराधः । विगतात्मराधनः सापराधः, अत एव निरवशेषेण विराधनं मुक्त्वा...।

विगतो राधो यस्य परिणामस्य स विराधनः । यस्मान्निश्चयप्रतिक्रमणमयः स जीवस्तत एव प्रतिक्रमणस्वरूप इत्युच्यते ।

तथा चोक्तं समयसारे ह्य

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्टं ।
 अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो ॥३९॥^१

छोड़े समस्त विराधना आराधनारत जो रहे ।
 प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण उसको ही कहें ॥८४॥

अन्वयार्थः—[विराधनं] जो (जीव) विराधन को [विशेषेण] विशेषतः [मुक्त्वा] छोड़कर [आराधनायां] आराधना में [वर्तते] वर्तता है, [सः] वह (जीव) [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है, [यस्मात्] कारण कि वह [प्रतिक्रमणमयः भवेत्] प्रतिक्रमणमय है ।

टीकाः—यहाँ आत्मा की आराधना में वर्तते हुए जीव को ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है ।

* राध=आराधना; प्रसन्नता; कृपा; सिद्धि; पूर्णता; सिद्ध करना वह; पूर्ण करना वह ।

जो परमतत्त्वज्ञानी जीव निरन्तर अभिमुखरूप से (-आत्मसंमुखरूप से) अटूट (-धारावाही) परिणामसंतति द्वारा साक्षात् स्वभावस्थिति में—आत्मा की आराधना में—वर्तता है, वह निरपराध है। जो आत्मा के आराधन रहित है, वह सापराध है; इसीलिए निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर—ऐसा कहा है। जो परिणाम 'विगतराध' अर्थात् *राध रहित है, वह विराधन है। वह (विराधनरहित—निरपराध) जीव निश्चयप्रतिक्रमणमय है, इसीलिए उसे प्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३०४ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

(हरिगीतिका)

संसिद्धि, साधित, सिद्ध, आराधित सभी एकार्थ हैं।
अपराध अथवा राध बिन जो जीव वह अपराध है ॥

[गाथार्थ:—] संसिद्धि, राध, सिद्ध, साधित और आराधित—यह शब्द एकार्थ हैं; जो आत्मा 'अपगतराध' अर्थात् राध से रहित है, वह आत्मा अपराध है।

गाथा-८४ पर प्रवचन

आराहणाइ वट्टइ मोत्तूण विराहणं विसेसेण ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८४॥
छोड़े समस्त विराधना आराधनारत जो रहे ।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण उसको ही कहें ॥८४ ॥

टीका:—यहाँ आत्मा की आराधना में वर्तते हुए... आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, ज्ञान का पिण्ड आत्मा, उसके सन्मुख होकर आराधना में वर्तते हुए, उसकी सेवना में वर्तते हुए। आहाहा। सेव्य-सेवक। सेवक मैं और भगवान आत्मा सेव्य है, यह भी जिसमें नहीं है। आहाहा! मैं सेव्य और सेवक भी मैं। सेव्य अर्थात् परमात्मस्वरूप, वह मेरा सेवनयोग्य है और मेरी वर्तमान निर्मल पर्याय से वह सेवनयोग्य है। आहाहा!

यहाँ आत्मा की आराधना में वर्तते हुए जीव को ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। उसने प्रतिक्रमण किया है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप की आराधना में रहता है, अन्तर

की सेवा में (रहता है), उसे ही निश्चय प्रतिक्रमण कहते हैं । आहाहा ! भाषा से प्रतिक्रमण बोले, अन्दर विकल्प उठे, वह प्रतिक्रमण नहीं है । आहाहा ! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहाहा !

सर्प है, वह साँडसे से पकड़ा जाता है । साँडसा समझते हो ? सर्प होता है न सर्प ? साँडसा को क्या कहते हैं ? लकड़ी का । शुकनलाल गये ? भावनगर । साँडसा कहते हैं न ? उस साँडसे से सर्प पकड़ में आता है । परन्तु साँडसा से मोती पकड़ में आता है ? यह महिलाएँ मोती जड़ती हैं न ? साँडसे से पकड़कर मोती रखे जाते हैं ? बारीक साँडसी चाहिए । लोहे की बारीक (साँडसी) और या हाथ (चाहिए) ।

इसी प्रकार भगवान को पकड़ने के लिए... आहाहा ! पुण्य और पाप स्थूल-स्थूल, मोटी चीज़, उससे वह पकड़ में नहीं आता । आहाहा ! समझ में आया ? पुण्य-पाप के अधिकार में (लिया है), अतिस्थूल संक्लेश परिणाम और अतिस्थूल विशुद्ध परिणाम । शुभभाव को अतिस्थूल विशुद्ध परिणाम कहा है । शुभभाव । आहाहा ! भगवान तो विशुद्ध और शुभ-अशुभभाव से रहित, निजस्वरूप की आराधना में वर्तता है, वह निश्चयप्रतिक्रमण है । आहाहा ! परन्तु उसका कुछ साधन होगा ? या सीधे वह होगा ? सीधे कोई साधन-बाधन (है या नहीं) ? साधन यह, राग से भिन्न करके प्रज्ञाछैनी मारना, वह साधन है । आहाहा !

समयसार में आगे आता है । प्रज्ञाछैनी । जैसे छैनी मारकर लोहे के टुकड़े करते हैं न ? छैनी मारे (तो) दो टुकड़े हो जाते हैं । इसी प्रकार भगवान आत्मा और पुण्य-पाप के, दया, दान के विकल्प-राग, दोनों के बीच भेदज्ञान की छैनी मारे तो दोनों भिन्न पड़ जाते हैं । दोनों भिन्न तो हैं ही । दोनों के बीच साँध है । राग और स्वभाव के बीच दरार है, तड़ । तड़ समझते हो ? साँध, दरार । आहाहा ! यह पत्थर होता है न ? लाखों मण पत्थर (हो), उसमें छोटी रग होती है । बारीक-बारीक लाल डोरी, सफेद रग होती है, वहाँ अन्दर सुरंग मारे तो लाखों मण का पत्थर निकल जाता है । क्योंकि एक दूसरे के बीच में संधि है, वहाँ मारते हैं । इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु और पुण्य-पाप का राग, दो के बीच साँध और दरार है । आहाहा ! अब ऐसी बातें ।

यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, सन्त उनकी बात परमात्मा की ओर से कहते हैं । आत्मा की आराधना में वर्तते हुए... देखा ? वर्तते हुए पुरुषार्थ से । स्वभाव में अन्तर में

पुरुषार्थ से शान्ति और आनन्द की दशा में वर्तते हुए। अन्तरस्वरूप निर्मल प्रभु में पर्याय में निर्मलता से वर्तते हुए। आहाहा! जीव को ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। वह जीव ही प्रतिक्रमणस्वरूप है। राग से भिन्न होकर अपने स्वरूप का अनुभव करे, वही प्रतिक्रमणस्वरूप जीव है। देखो! आये लगते हैं दोनों। शुक्नलालजी आये न? शशीभाई आये हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

आत्मा की आराधना में वर्तते हुए जीव को ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। जीव को प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। कोई विकल्प और राग, वह प्रतिक्रमणस्वरूप नहीं है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें सुनने को नहीं मिलती और सुनने को मिले तो (ऐसा कहे), यह तो निश्चय है.. निश्चय है.. ऐसा करके निकाल डाले। प्रभु! तेरे स्वभाव का अनादर कर दिया। आहाहा! भाई! दूसरा कोई पन्थ नहीं है। तेरी चीज़ का आदर सत्कार और सेवन के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। कोई दया, दान, व्रत आदि के परिणाम तो संसार है, राग है। वहाँ शरीर को संसार कहा है न? समाधिशतक में आया था। यह शरीर, वह संसार है, वह तो जड़ है। वह तो आत्मा की पर्याय में नहीं है। शरीर (तो) आत्मा की पर्याय में नहीं है, भिन्न है, परन्तु आत्मा की पर्याय में पुण्य और पाप तथा वे मेरे-ऐसा मिथ्यात्व, इसकी पर्याय में है, वह संसार है। आहाहा!

यह आत्मा जो त्रिकाली द्रव्य है और त्रिकाली गुण, उसमें तो वर्तमान पर्याय भी नहीं है। उस पर्याय में परद्रव्य नहीं। उस पर्याय में अहंकार, पर का राग और द्वेष और मिथ्यात्व का अहंकार, वह पर्याय में है परन्तु वह द्रव्य-गुण में नहीं है। कहते हैं कि तुझे प्रतिक्रमण करना हो तो उनसे हटकर स्वभाव की आराधना कर। वह जीवमय आराधना है, वह जीवमय प्रतिक्रमण है। आहाहा! अन्दर विकल्प उठे, वह प्रतिक्रमण नहीं है। ऐसी बात है। आहाहा! अरे रे! मुश्किल से अनन्त काल में (मनुष्यपना मिला), उसमें करना तो यह है। आहाहा! जो मूल चीज़ है, वह करना रह गयी और जो नहीं करना है, वह करके भटक मरा है। कोई धणीधोरी नहीं है। आहाहा! हार्ट की पीड़ा देखी है। हमने देखी है।

(संवत्) १९७६ के वर्ष की बात है। १९७६ के वर्ष। 'ध्रांगध्रा' थे। इसके बाद उसे बहुत पीड़ा हुई, इसलिए (कहा)। महाराज को बुलाओ। मांगलिक सुनाने के लिए (बुलाओ) उपाश्रय के साथ में 'ध्रांगध्रा' ७६ के वर्ष की बात है। उसे पलंग पर तो सुलावे

नहीं परन्तु नीचे सोवे वहाँ रह सके नहीं, इतनी पीड़ा। नीचे तड़फड़ाहट किया करे। मांगलिक सुनने का समय मिले नहीं। इतनी पीड़ा थी। कोई संघवी था। विसाश्रीमाली। उपाश्रय है न? 'धांगधा' में उसका साथ में मकान है। सूरचन्द संघवी रहता था। आहाहा! कपड़े की बड़ी दुकान थी। वह भी था। परन्तु उसकी पीड़ा.. नीचे शैय्या में बैठ तो सके नहीं, सो सके नहीं। आहाहा! प्रभु! उसकी पीड़ा कितनी होगी? आहाहा! ऐसी पीड़ाएँ प्रभु! तूने अनन्त बार सहन की है। आहाहा! भाई! तेरा आत्मतत्त्व आराधनेयोग्य है, सेवनयोग्य है। आहाहा! उसकी प्रसन्नता प्राप्त करनेयोग्य है। वह प्रसन्न होवे, तब वीतरागता होती है। आहाहा! राग की प्रसन्नता होवे तो उसमें दुःख होता है। जगत से उल्टा तो है, भाई! आहाहा!

ऐसे तो बहुत देखे हैं। 'वढ़वाण' में (संवत्) १९८२ के वर्ष में एक था। वे.. आहाहा! वह शरीर की पीड़ा है, वह आत्मा की पर्याय में नहीं है। क्या कहा? शरीर की जो पीड़ा है, वह तो जड़ की अवस्था है। वह आत्मा की पर्याय में नहीं है। आत्मा की पर्याय और देह के रोग की पर्याय दोनों अत्यन्त भिन्न हैं परन्तु अज्ञानी की बुद्धि वहाँ है, वह मुझे ऐसा होता है... मुझे ऐसा होता है, (ऐसा मानता है)। इस ओर की नजर नहीं, इसलिए मुझे ऐसा होता है, ऐसा करके मिथ्यात्व में दुःख का सेवन करता है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। प्रभु! तू जीव को ही प्रतिक्रमणस्वरूप जान। आहाहा! जो परमतत्त्वज्ञानी जीव... परमतत्त्व ऐसा जो भगवान आत्मा, अकेला अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का दल, ऐसा जो परमतत्त्व, उसका जिसे ज्ञान हुआ... आहाहा! दूसरा ज्ञान एक ओर रखो, कहते हैं। परमतत्त्व भगवान का जो ज्ञान हुआ... आहाहा! वह ज्ञानी जीव निरन्तर अभिमुखरूप से (-आत्मसंमुखरूप से)... आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन में आत्मसन्मुख पर्याय की है। आहाहा! मिथ्यादर्शन है, वह आत्मा से विमुख और राग तथा विकार के सन्मुख होकर मिथ्यात्व सेवन किया है। आहाहा! उसे छोड़कर जिसने आत्मा के अभिमुख परिणाम किये हैं। आहाहा! है?

परमतत्त्वज्ञानी जीव निरन्तर अभिमुखरूप से (-आत्मसन्मुखरूप से) अटूट (-धारावाही) परिणामसंतति द्वारा... आहाहा! शब्द तो शब्द है न! रामबाण है। जैसे राम का बाण फिरे नहीं, वैसे यह बाण फिरे नहीं। आहाहा! परमतत्त्वज्ञानी जीव। शास्त्र को

पढ़नेवाला, ऐसा नहीं कहा तथा पुण्य-पाप को जाननेवाला, ऐसा भी नहीं कहा। परमतत्त्वज्ञानी.. आहाहा! उसमें पुण्य-पाप आदि नहीं, ऐसा उसमें ज्ञान आ जाता है। परन्तु परमतत्त्वज्ञानी जीव निरन्तर अभिमुखरूप से... आहाहा! निरन्तर स्व के-स्वभाव के सन्मुख, स्वभाव के सन्मुख परिणामसंतति द्वारा... परिणामस्वभाव की संतति द्वारा, स्वभाव के सन्मुख द्वारा, परिणाम की संतति द्वारा अर्थात् परिणाम का प्रवाह स्वभाव सन्मुख बहा ही करता है। आहाहा! राग से और निमित्त से उपयोग हटकर, उपयोग सतत निरन्तर स्वभाव के अभिमुख वर्तता हुआ.. आहाहा! साक्षात् स्वभावस्थिति में... ऐसी परिणामसंतति द्वारा निर्मल स्वभाव की पर्याय द्वारा साक्षात् स्वभावस्थिति में—आत्मा की आराधना में—वर्तता है,... आहाहा! बापू! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई!

आत्मा अन्दर वस्तु महा भगवान्, उसके सन्मुख वर्तता हुआ। उसके सन्मुख वर्तता हुआ। राग और पर्याय से विमुख होता हुआ। आहाहा! अरे! पंचम काल के सन्त ऐसी बातें करें! पंचम काल तो हल्का काल कहलाता है और उसके प्राणी भी हल्के कहलाते हैं, ऐसा नहीं, प्रभु! हल्का नहीं। वह जीव तो भगवान्स्वरूप है। त्रिकाल वह भगवान्स्वरूप है। किसी काल वह परमात्मा स्वयं निर्बल और दरिद्र हुआ ही नहीं। अनन्त गुण का धारक सधन-लक्ष्मीवाला वह है। आहाहा!

दुनिया से सब उल्टा है। आहाहा! जिस रास्ते से संसार, उसे रास्ते से मोक्ष नहीं है। जिसे रास्ते से मोक्षमार्ग, उस रास्ते से संसार नहीं है। आहाहा! बाहर का यह सब छोड़कर... आहाहा! बड़ी दुकान हो, पाँच-पाँच दस-दस लाख रुपये के मखमल का गलीचा बिछाया हो। आहाहा! एक बार कहा था न? मुम्बई में है। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। एक मणिभाई हैं। अपने यहाँ आते हैं। उनकी... क्या कहलाती है? उनके पास पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। उसे क्या कहते हैं? अरबस्तान में दुकान है। आमदनी बहुत है। पश्चात् उसने आहार करने शाम को आमन्त्रण दिया था। आहार करने गये थे परन्तु मकान में कमरे इतने सब, उसमें सर्वत्र मखमल बिछाया हुआ। पाँच लाख रुपये का तो मखमल बिछाया होगा। मुझे तो देखकर ऐसा लगा कि अरे रे! इसमें से निकलना इसको मुश्किल पड़ेगा। आहाहा! ऐसे में से निकलना.. आहाहा! देह से छूटने के काल में हाय.. हाय.. मुझे कोई रखो, मुझे कोई मदद करो। डॉक्टर कहता है परन्तु उसमें हमारा अभी कुछ चले ऐसा

नहीं है, भाई! हाथ धो डालता हूँ। आहाहा! और डॉक्टर ऐसा कहता है कि हाथ धो डालता हूँ, वहाँ तो अन्दर शोर मचाये, हाय.. हाय.. अब मैं नहीं बचूँगा तब? तू तो त्रिकाल बचा हुआ ही है। आहाहा! उस बचे हुए पर तेरी दृष्टि नहीं है, प्रभु! आहाहा! इस शरीर और राग पर दृष्टि है। आहाहा!

इसलिए उसे छोड़कर साक्षात् स्वभावस्थिति में—आत्मा की आराधना में—वर्तता है,... आहाहा! प्रतिक्रमण की व्याख्या चलती है। आत्मा की आराधना। शुद्धस्वरूप प्रभु के सन्मुख होकर उसकी आराधना में वर्तता है। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग! वह निरपराध है। आत्मा की आराधना में—वर्तता है, वह निरपराध है। और राग में वर्तता है—चाहे तो दया, दान, भक्ति का राग हो, वह अपराध है, अपराध है। आहाहा!

पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में अमृतचन्द्राचार्य ने तो ऐसा कहा कि पर की दया का भाव, वह तेरी हिंसा है। क्योंकि पर की दया का भाव राग है। राग, वह तेरी हिंसा है। आहाहा! यहाँ तो (ऐसा लोग कहते हैं) दया पालो तो धर्म होगा। 'दया वह सुख की बेलड़ी दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति गये...' ऐसी बातें करते हैं, अरे! प्रभु! कौन सी दया? पर की या इसकी? आहाहा! यह अनन्त आनन्द का नाथ, इसकी दया तो पाल। यह इतना जैसा है, उतना मान, तब इसकी दया पाली कहलायेगी। जितना है और जैसा है, वैसा न माने तो इसकी हिंसा की कहलायेगी। आहाहा! है न? ८४ है न? पृष्ठ फिर गया है।

आत्मा की आराधना में—वर्तता है, वह निरपराध है। जो आत्मा के आराधन रहित है,... आत्मा के आराधनरहित है, वह सापराध है;... अपराधी है। अपने में रहा है, वह निरपराध है। है? आत्मा की आराधना में—वर्तता है, वह निरपराध है। भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप में वर्ते, वह निरपराध है और आत्मा की आराधनरहित—चाहे तो दया, दान, भक्ति के परिणाम वर्ते और स्वभाव में से हट जाए, वह सापराध है। आहाहा! अब ऐसा कठिन। अब यहाँ तो निवृत्ति मिले नहीं, अभी धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। उसे कहे कि तेरे पुण्य परिणाम, वे भी अपराध हैं। आहाहा! उसमें है या नहीं? पढ़ा नहीं परन्तु कभी वहाँ। आहाहा!

दो बातें की हैं। आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप शुद्धस्वरूप पवित्र चिद्घन, उसमें जो

वर्तता है पर्याय में वह निरपराधी जीव है। वह मोक्षमार्ग में है। उसका अल्प काल में मोक्ष होगा। और जो आत्मा के (शुद्धस्वरूप में) आराधन रहित है,... राग और पुण्य के परिधान को आराधता है, वह प्राणी सापराधी है, अपराधी है। आहाहा! इन पैसेवालों को यह सब क्या करना? आहाहा! यह पैसावाला है कब? 'एक वाला' निकले तो दुःख होता है। पैर में वह वाला नहीं (होता)। पानी में वाला आता है न? चिल्लाहट मचाता है। यहाँ तो स्त्रीवाला, पुत्रवाला, पैसेवाला, मकानवाला, इज्जतवाला,... कितनेवाला? तुझे कितने 'वाला' लगे हैं? आहाहा! प्रभु! क्या हुआ यह? अरे रे! तूने तेरा क्या बिगाड़ा?

जो आत्मा के आराधन रहित है, वह सापराध है;... वह गुनहगार है। आहाहा! चाहे तो वह पुण्य-पाप में वर्ते तो वह गुनहगार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इतने सब जाना, कुछ दूसरा रास्ता नहीं? परन्तु रास्ता तो जो होगा, वह होगा या दूसरा रास्ता होगा? आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप आनन्द का दल, उसके आनन्द में वर्तना, वह निरपराधी दशा है, निर्दोष दशा है, वह मोक्षमार्ग की दशा है और निरपराधी प्रभु, राग में, पुण्य में वर्ते.. आहाहा! उदारता... अपने स्वरूप को छोड़कर और जो स्वरूप में नहीं है, ऐसे राग और दया, दान, व्रत, भक्ति में वर्ते, वह गुनहगार है। अरे! इसमें वाद-विवाद करना कहाँ? पार आवे? आहाहा!

वह सापराध है; इसीलिए निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर.... इस कारण से अपराध है, उसे बिल्कुल छोड़ दे। पुण्य का एक कण हो, राग का निरविशेष—कुछ भी बाकी रखे बिना, विराधना हो, वह छोड़ दे। आहाहा! है? इसीलिए निरवशेषरूप से... कुछ बाकी रखे बिना। कुछ भी राग करूँ तो मदद होगी, कुछ पुण्य करूँ तो, व्यवहार करूँ तो कुछ निश्चय में जाया जाएगा, ऐसा छोड़ दे। निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर— ऐसा कहा है। जो परिणाम 'विगताराध' अर्थात् राध रहित है, राध=आराधना... रहित है। नीचे अर्थ है। वह विराधक है। विराधन है। उस विराधनरहित निरपराध है। जीव निश्चयप्रतिक्रमणमय है, इसीलिए उसे प्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

उक्तं हि समयसारव्याख्यायां च ह

(मालिनी)

अनवरत-मनन्तैर्बध्यते सापराधः,

स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु ।

नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो,

भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ॥

तथाहि ह

श्री समयसार की (अमृतचन्दाचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में भी (१८७वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(हरिगीतिका)

अपराध सह जो आत्मा बँधता निरन्तर कर्म से ।

अपराध बिन जो आत्मा छूता न बँधन को कभी ॥

नियम से निज को विकारी भजे अपराधी अहो ।

होता निरपराधी सदा शुद्धात्म सेवी साधू तो ॥

‘[श्लोकार्थः—] सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है; निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता । जो सापराध आत्मा है, वह तो नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ सापराध है; निरपराध आत्मा तो भलीभाँति शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है ।’

प्रवचन-८२, श्लोक-११२, शुक्रवार, कार्तिक कृष्ण १२, दिनांक १६-११-१९७९

नियमसार, पृष्ठ १६०, पहला कलश है न ?

श्री समयसार की (अमृतचन्दाचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में भी (१८७वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— इसके पहले आ गया । प्रतिक्रमण की व्याख्या है न ? सापराध आत्मा निरन्तर... सापराधी आत्मा अर्थात् ? जो कुछ अशुद्ध परिणाम शुभाशुभभाव और कर्म के कारण से प्राप्त सामग्री को अपनी जो मानता है, वह अशुद्ध आत्मा है, वह अपराधी आत्मा है । आहाहा ! वह चोर है, चोर । अपनी चीज़ जो शुद्ध

चिदानन्द है, उसके अतिरिक्त शुभ-अशुभभाव और अघातिकर्म के कारण से प्राप्त सामग्री; घाति के निमित्त से हुआ पुण्य-पाप का भाव, अघाति से प्राप्त बाहर की सामग्री को जो अपनी मानता है, (वह अपराधी है)। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरी दुनिया मानती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं कि वह अपराधी प्राणी है, वह गुनहगार है, वह चोर है। ऐसी बात है। आहाहा! अपनी ज्ञान और आनन्द लक्ष्मी छोड़कर, जो अपराध पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), वह घाति का निमित्त है। निमित्त है। है तो स्वयं से और बाहर की सामग्री पैसा, स्त्री, पुत्र, अनुकूलता या प्रतिकूलता, वह अघाति का फल है। वे मेरे हैं—ऐसा माननेवाला अपराधी है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने लड़के को लड़का नहीं मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का कब था ? किसका ? लड़के का आत्मा लड़के का; लड़के का शरीर शरीर का, जड़ का। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवाला परमपारिणामिक ज्ञायकभाव को छोड़कर, उससे विरुद्ध चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों या चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, क्रोध, मान, माया के हों, या चाहे तो बाहर की सामग्री अनुकूल-प्रतिकूल हों, परन्तु उसे मेरी मानना, वह अपराधी प्राणी गुनहगार है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन काम है। प्रतिक्रमण है न ? जिससे विमुख होना है, उसमें जाकर अपना मानना है! आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आत्मा ही अरूपी चिदानन्द भगवन्तस्वरूप है, जिसमें शुभ-अशुभपरिणाम की गन्ध नहीं है। पर की सामग्री तो है ही नहीं परन्तु जिसके शुभ-अशुभभाव, उनकी भी जिसमें गन्ध नहीं है। उसमें तो ज्ञान और आनन्द की गन्ध है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञानानन्दस्वभावी, आनन्दस्वभावी आत्मा है।

सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है;...
अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा उन संयोगी चीजों और संयोगी भाव को अपना माने, वह निरन्तर नये कर्म से बँधता है। ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : नींद आ जाए, तब तो कुछ काम नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नींद आ जाए, तब सब जड़ का काम करता है। निद्रा वह मेरी, निद्रा में सो गया प्रमाद वह मेरा। वह सब उसमें करे, मानता है। ज्ञानी तो निद्रा में भी जागृत है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! निद्रा, वह प्रमाद है। उस प्रमाद में अपनापन मानकर सोता है, वह तो अपराधी / गुनहगार है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वह **सापराध आत्मा...** आत्मा सापराध नहीं। आत्मा तो निरपराधी शुद्धचैतन्य (स्वरूप है)। वह अपने स्वरूप को न मानकर, संयोगी भाव और संयोगी चीज़ (को अपनी मानता है)। संयोगी भाव अर्थात् पुण्य और पाप तथा संयोगी चीज़ अर्थात् स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, धन्धा, व्यापार। ये संयोगी भाव और संयोगी चीज़ें हैं। उन्हें असंयोगी ऐसा जो आत्मा अबन्धस्वरूप, (उन) संयोगी चीज़ों को और संयोगी भावों को अपना मानता है, वह अपराधी / गुनहगार / चोर है। आहाहा! समझ में आया? वह अपराधी है। वह निरन्तर... आहाहा!

स्वभाव ज्ञायकस्वरूप चैतन्य, अनाकुल आनन्द का रस चैतन्य चमत्काररस, ज्ञानरस, श्रद्धारस, शान्तरस, वीतरागरस, आनन्दरस, वीर्यरस, स्वच्छतारस – ऐसे अनन्त गुण के रस से भरपूर भगवान वीतरागी मूर्ति प्रभु आत्मा... आहाहा! उसे छोड़कर राग का छोटे में छोटा कण और संयोगी चीज़ को अपनी मानता है, वह गुनहगार / अपराधी है। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है। सवेरे बात सूक्ष्म थी, और अभी वापस यह (सूक्ष्म बात आयी)। आहाहा!

एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर राम-आतमराम। सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति और पूर्ण वीतरागता से भरपूर भगवान; और एक ओर पुण्य तथा पाप के परिणाम से लेकर संयोगी चीज़। यह आतमराम अपने स्वरूप को भूलकर, जो इसमें नहीं है, जो इसके नहीं है, जिन्हें इसने वास्तव में स्पर्श भी नहीं किया है। (समयसार) ६ वीं गाथा में आ गया है न कि ज्ञायकस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव; ये शुभ-अशुभभाव जो अचेतन, इन अचेतनरूप आत्मा ज्ञायक हुआ ही नहीं। आहाहा! ६ वीं गाथा में आया है। 'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो' आया था न यह? आया था या नहीं? आहाहा!

एक ओर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु और एक ओर विकल्प से लेकर संयोगी चीज़

—लक्ष्मी का ढेर और स्त्री, पुत्र, परिवार, लड़के-लड़कियाँ, मकान-महल, शुभ और अशुभभाव इनमें से कोई भी चीज़ मेरी है, (ऐसा माननेवाला) ऐसा वह अपराधी आत्मा.. आहाहा! वह गुनहगार आत्मा है। जिसमें से विमुख होना चाहिए, उसमें से विमुख न होकर उसमें जुड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? यशपालजी! ऐसी बात है। जिसमें से विमुख होना है अर्थात् जिसमें यह है ही नहीं। अपने में यह है नहीं, इसमें स्वयं नहीं। राग में आत्मा नहीं और आत्मा में राग नहीं। संयोगी चीज़ में अबन्धस्वरूप भगवान नहीं... आहाहा! और अबन्धस्वरूपी में संयोगी चीज़ नहीं। आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है, भाई!

ऐसा जो अपराधी निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है; निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता। एक भाषा ली है। अज्ञानी कुछ बन्धन को स्पर्श करता है, ऐसा नहीं। अज्ञानी, बन्धन जड़ है, उसे स्पर्श करता है—ऐसा नहीं परन्तु उसमें स्वयं को मानता है, ऐसी मान्यता में खड़ा है। स्पर्श करता है अर्थात् कुछ छूता है, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! अज्ञानी कर्म को स्पर्श करता है अर्थात् कुछ कर्म को छूता है, ऐसा नहीं है। अज्ञानी अपने स्वरूप को नहीं जानकर, अज्ञान में अनन्त कर्म के सम्बन्ध में जुड़ता है, उसे स्पर्श करता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

ज्ञानी निरपराधी आत्मा... आहाहा! मैं तो एक ज्ञायक चैतन्यस्वरूप आनन्द और शान्ति का सागर नित्यानन्द प्रभु ध्रुव, वह मेरा स्वभाव और वह मैं। मेरा स्वभाव और यह मैं, यह भी भेद है। आहाहा! मैं शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप, अकषाय वीतरागी स्वरूप ऐसा जो आत्मा, उसे जो माननेवाला है, वह निरपराधी है। आहाहा! निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता। तब वह अज्ञानी बन्ध को स्पर्श करता है, यह भाषा है। बन्धन को स्पर्श नहीं करता। बन्धन उसे साथ में आता है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द-स्वरूप के साथ कर्म के रजकण आते हैं, उससे बँधता है, स्पर्श करता है—ऐसा कहने में आता है। बाकी एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श करे, इस बात का तो तीसरी गाथा में निषेध किया है। समझ में आया? आहाहा!

यह हाथ है, वह इस वस्त्र को स्पर्श करता है? (कहते हैं) कि नहीं। आहाहा! एक चीज़ (और) दूसरी चीज़ के बीच अत्यन्त अभावस्वभावरूप भाव है। आहाहा! वह दूसरे

को कैसे स्पर्श करे ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को और दूसरे द्रव्य के गुण को या दूसरे द्रव्य की पर्याय को कभी स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता, स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य अपने गुण और पर्याय को चुम्बन, स्पर्श करता है, छूता है। भले विभावरूप हो या स्वभावरूप हो परन्तु वह परिणमता है। यह आया न ? (समयसार) ४०४ गाथा। प्रयोगि। चाहे तो आत्मा प्रयोगि कर्म के निमित्त से होनेवाला विकार हो या स्वभाव हो, परन्तु उससे परद्रव्य को वह ग्रहण कर ही नहीं सकता। आहाहा ! वह परद्रव्य को ग्रहण नहीं करता।

यहाँ शब्द समझाना है, इसलिए ऐसा कहा कि **निरपराध आत्मा...** तब सापराध आत्मा स्पर्श करता था ? इसका अर्थ कि बँधता था। समझ में आया ? आहाहा ! तथापि वे दोनों भिन्न-भिन्न रहते थे। कर्मपने का बन्धन जड़रूप और चैतन्य का चैतन्यरूप, परन्तु उसमें निमित्त-निमित्त सम्बन्धरूप से था। आहाहा ! उसे अपना माननेवाला अपराधी अनन्त परमाणुओं से बँधता है। बँधता है। भाषा थोड़ी, भाव बहुत गम्भीर हैं। आहाहा ! बहुत निवृत्ति चाहिए, भाई ! इसे निवृत्ति में अन्दर में भेदज्ञान करना चाहिए। भेदज्ञान है ही, भेदरूप है ही परन्तु इसने माना नहीं है। आहाहा !

ऐसा जो भेदज्ञान (वह) जिसे हुआ, वह **निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता**। आहाहा ! 'जातु' शब्द है न ? जातु.. जातु.. शब्द अर्थात् उसका कदापि। किसी काल में भी निरपराधी आत्मा, चैतन्यज्ञान और आनन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसा अनुभव करनेवाला, ऐसा माननेवाला, ऐसा जाननेवाला, उसमें रहनेवाला, वह कदापि उस कर्म को स्पर्श नहीं करता अर्थात् उसे कर्म नहीं बँधते। कर्म को स्पर्श नहीं करता अर्थात् कर्म उसे नहीं बँधते। आहाहा ! सामने पुस्तक है न ? आहाहा ! और परम सत्य बात गुप्त हो गयी है और अन्तर की बातें छोड़कर बाहर की ऊपर-ऊपर की जंजाल में पड़ाव डाला है। बाहर में पड़ाव डाला है। भगवान का पड़ाव तो अन्दर में है। आहाहा ! उसे राग और राग के फलरूप से प्रतिकूल या अनुकूल संयोग (प्राप्त होते हैं)। आहाहा ! उनसे रहित मैं हूँ। ऐसा **निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता**। अज्ञानी स्पर्श नहीं करता। अज्ञानी के साथ में होता है परन्तु होता है, उसके बदले स्पर्श करता है, ऐसा कहा है। यहाँ स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहा है। आहाहा !

जो सापराध आत्मा है, वह तो नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... अब कहते हैं कि क्या किया ? अपराधी का अर्थ अब क्या करना ? सापराधी आत्मा बँधता है, ऐसा कहा, तो वह सापराधी अर्थात् क्या ? सापराधी अर्थात् क्या ? कि नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... वह सापराधी । आहाहा ! यह सब चमक सब पैसा, स्त्री, पुत्र, बड़ा मकान... आहाहा ! और दुकान की गद्दी पर बैठा हो, कपड़े का धन्धा हो, दो-पाँच लाख, दस लाख का कपड़ा हो, हमेशा दो-चार-पाँच हजार की आमदनी होती हो और दो-पाँच-पच्चीस नौकर हों, धमाल चलती हो । अब उसमें ऐसा मानना कि यह मेरा नहीं है ।

मुमुक्षु : चक्रवर्ती....

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्रवर्ती मानता है कि मैं तो यहाँ हूँ । कोई मेरा नहीं है । राग का कण मेरा नहीं है तो स्त्री, पुत्र, फिर मेरे कहाँ से आये ? आहाहा ! जिसका आत्मा भिन्न, जिसके शरीर के रजकण भिन्न, (वे मेरे कहाँ से हुए ?) आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि निरपराध आत्मा... पहले सापराध आत्मा... अर्थात् क्या ? ऐसा कहते हैं । वह नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसे पुण्य और पाप के भाववाला और संयोगी चीज़वाला मानना, वह अशुद्ध सेवन करता है, वह अशुद्धता का सेवन करता है । आहाहा ! यह सब पैसा-वैसा दो-पाँच करोड़ हो, बड़ा मकान पच्चीस लाख का-पचास लाख का हो, लो ! उसे क्या करना ? तू करे क्या ? वे तो हैं वह है । वे उनमें हैं । तुझमें कहाँ थे ? यह बड़ा छब्बीस लाख का मकान है, लो, छब्बीस लाख । यह तो साढ़े पाँच वर्ष पहले की बात है । अब तो अभी वापस महँगा हो गया, वह तो उसके परमाणु जगत की चीज़ है, वह क्षेत्रान्तर होकर उसे जो स्थान मिला है, वहाँ रहे हैं । आहाहा !

मुमुक्षु : आप विराजमान थे...

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं । रामजीभाई प्रमुख थे, इसलिए हुआ है । ऐसा भी नहीं है । वजुभाई.. क्या कहलाते हैं ? इंजीनियर थे, इसलिए हुआ है, ऐसा भी नहीं है । आहाहा !

मुमुक्षु : आप विराजमान न होते तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके काल में, उस क्षेत्र में जो आनेवाला हो, वह आता है। उसमें इसके कारण से आता है, यह बात ही कहाँ है ? इस परमाणु का जिस क्षेत्र का जो समय आने का है, उस समय में वहाँ आता है।

मुमुक्षु : उसका कोई निमित्त होवे न !

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ निमित्त होवे अर्थात् उसका अर्थ यह कि उससे कुछ नहीं। निमित्त का अर्थ ही यह है कि निमित्त से कुछ नहीं होता। वहाँ होता है, तब वह चीज़ है, उसे निमित्त कहने में आता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। धर्म के नाम से वे व्रत, तप पालन करें, वह भक्ति-पूजा करे, वह वस्त्र छोड़कर नग्न हो, प्रतिमा धारण करे। अरे, भगवान ! परन्तु तू कौन है, उस चीज़ को जाने बिना तुझे किसका त्याग ? जिसे अभी मिथ्यात्व का त्याग नहीं, वहाँ बाहर का त्याग ? बाहर का त्याग तो त्रिकाल है। बाह्य का त्याग (तो है ही) त्योगापादानशून्यत्वशक्ति (आत्मा में त्रिकाल है)। पर का ग्रहण और पर के त्याग से तो आत्मा शून्य है, त्रिकाल शून्य है। आहाहा ! जो अन्दर मिथ्यात्व का अपराध है, उसे छोड़ना चाहिए। वह स्वभाव के आश्रय से छूटता है, इस बात की तो खबर नहीं होती। छोटाभाई ! ऐसी बातें हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : यहाँ तो हाँ करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार करना कि एक तत्त्व है। यह अंगुली है, इसका अस्तित्व है। इसमें उसका नास्तित्व है। इसका उसमें नास्तित्व है, तब इसका अस्तित्व टिक रहा है। इसके कारण वह हो तो टिक सके नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने से है और पर से नहीं है, तब तो स्व-रूप से टिक रहा है। आहाहा ! ऐसा उपदेश और ऐसी शैली अब। सोनगढ़ के नाम से एकान्त है, (ऐसी) पुकार करते हैं। एकान्त है, निश्चयाभास है। बापू ! जैसा है, वैसा है, भाई ! आहाहा ! बापू ! प्रभु का मार्ग अलग है, भाई !

सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर विराजता है, महाप्रभु (विराजता है), उसे पामर ऐसे राग और पामर ऐसी परचीज़ को अपनी प्रभुता में रचना, (वह कलंक है)। आहाहा ! अनन्त-अनन्त प्रभुता से भरपूर भगवान, अनन्त प्रभुता, ज्ञानप्रभुता, ज्ञान अनन्त प्रभुता, दर्शन अनन्त प्रभुता, आनन्द अनन्त प्रभुता, जीवत्वशक्ति अनन्त प्रभुता, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व,

अकार्यकारण। पर का कारण भी नहीं और पर का कार्य भी नहीं, ऐसी अकारण (कार्य) अनन्त शक्ति से भरपूर भगवान तू है। यह क्या कहा ?

तेरे अतिरिक्त कोई भी राग और परचीज का तू कारण भी नहीं और वह तेरा कार्य नहीं। ऐसा ही तेरा अकार्यकारण नाम का अनादि-अनन्त गुण उपादान शुद्धरूप से पड़ा है। आहाहा! इसमें कठिन पड़ता है। उसमें फिर युवा शरीर हो, उसमें पाँच-पच्चीस लाख, दो-पाँच करोड़ रुपये मिले हों, उसमें नौकर, लोग, कुटुम्बी, भाई-बन्धु सब ठीक मिले हों। फिर मैं... यह मैं... मैं... मैं... हो जाता है। आहाहा! यह मैं... यह मैं... मैं वह तू और तू वह मैं। आहाहा! (ऐसा जो हो जाता है)। यह यहाँ कहते हैं।

नियम से अपराधी जीव अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... कर्म के कारण सेवन करता हुआ, ऐसा नहीं कहा। यह क्या कहा ? सापराधी आत्मा, वह तो निश्चय से नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ.. कर्म का जोर है, इसलिए अशुद्ध सेवन करता है, यह बात यहाँ नहीं है और ऐसा है नहीं। आहाहा! कठोर निकाचित बन्ध, निद्धतकर्म हो कठोर, उसके कारण इसे अशुद्धता सेवन करनी पड़ती है। नहीं, नहीं। उस तेरी भूल के कारण अशुद्ध सेवन करता है, वह तेरा विपरीत पुरुषार्थ है। कर्म का कुछ कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! आचार्यों ने भी थोड़े शब्दों में कितना भरा है! बहुत-बहुत भरा है।

सापराध आत्मा है, वह तो नियम से... नियम से-वास्तव में अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... मैं तो दया का पालनेवाला हूँ, रागवाला हूँ, प्रशस्तरागवाला हूँ, शुभराग तो मेरा है न ? आहाहा! समयसार में १४८ (कर्म) प्रकृति ली है न ? १४८ प्रकृति। वहाँ तो ऐसा कहा, मैं तीर्थकर नामकर्म के फल को नहीं भोगता। आहाहा! प्रकृति का फल संयोग। प्रकृति भिन्न, जो शुभभाव बँधा वह भिन्न। प्रकृति बँधी वह भिन्न, उसका फल यह संयोग समवसरण, वह सब भिन्न है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा मानता है, मैं तीर्थकर प्रकृति के फल को भी नहीं भोगता। आहाहा!

मुमुक्षु : उदय में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आवे, अपने आप आकर खिर जाता है, वह उसमें-जड़ में (होता है)। आत्मा को कुछ नहीं मिलता। आहाहा! ऐसा काम है। फिर लोग ऐसा ही कहे

न (कि) सोनगढ़वालों ने... वह तो निश्चय की बातें... निश्चय की बातें (करते हैं), व्यवहार की तो बातें करते नहीं... परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य; व्यवहार अर्थात् उपचार और आरोप से कथन । छोटाभाई ! ऐसा है, बापू ! आहाहा !

प्रभु ! तेरी प्रभुता अन्दर बड़ी है, भगवान ! उस बड़े को छोटा मानना, उस बड़े को राग के अपराधवाला और पर के संयोगवाला मानना, वह पामर माना, तूने प्रभु को पामर माना । आहाहा ! बाहर की महिमा से मैं बड़ा हूँ, ऐसा माना, उसने आत्मा की हीन दशा कर डाली । उसने आत्मा की महिमा को मार डाला । आहाहा ! बाहर की कुछ पुण्य की प्रकृति, शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, इज्जत, कीर्ति । साधु होवे तो इज्जत कीर्ति बाहर में बहुत फैलती है, लो न ! परन्तु उन सब चीजों में मैं हूँ और वे मुझे हैं... मुझे हैं । आहाहा ! (ऐसा मानता है, वह) गुनहगार है । आहाहा !

यह अमृतचन्द्राचार्य का समयसार का कलश है । नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ... देखा ! निश्चय से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ । आहाहा ! सापराध है ; निरपराध आत्मा... आहाहा ! जो राग और राग के फल की प्रकृति और प्रकृति का फल संयोग, तीन से तो रहित मेरी चीज त्रिकाल है । ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यशक्ति का रस आनन्द का रस, शान्त का रस, वीतरागी रस, ध्रुव रस, वह आत्मा हूँ । आहाहा ! ऐसा जो निरपराध आत्मा तो भलीभाँति... भलीभाँति अर्थात् ? मात्र धारणा में रखा कि आत्मा ऐसा है, वैसा है - ऐसा नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? भलीभाँति शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है । आहाहा ! शुद्ध हूँ, ऐसा जो धार रखा है, वह नहीं । आहाहा !

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप जैसा है, उस प्रकार से भलीभाँति सेवन करता हुआ, उस शुद्ध को सेवन करता हुआ, उस शुद्ध को आराधन करता हुआ, उस शुद्ध में एकाकार होता हुआ... आहाहा ! उस शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है । लो ! आहाहा ! वह भी व्यवहार से है । शुद्ध आत्मा और उसका सेवन करनेवाला । समझाना है न ? आहाहा ! पवित्र भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु त्रिकाल अतीन्द्रिय आनन्द के रस से पूर्ण भरा हुआ, त्रिकाल ज्ञान और शान्ति के, वीतराग के रस से पूर्ण भरा हुआ, उसे सेवन करता हुआ अर्थात् उसमें एकाग्र होता हुआ । आहाहा ! वह निरपराधी है, वह गुनहगार नहीं है ।

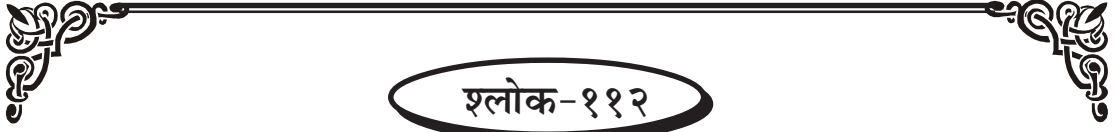
आहाहा! वह गुनाह से रहित है। समझ में आये उतना समझना, भाई! यह मार्ग तो, बापू! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव... आहाहा! जिनके समक्ष सौ इन्द्र.. आहाहा! पिल्ले / कुत्ते के बच्चे की भाँति सुनने बैठते हैं। वह चीज़ कैसी होगी? बापू! आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ मैं निरपराधी आत्मा हूँ, मुझमें राग का कण नहीं, कर्म का संयोग नहीं, कर्म से फली हुई-मिली हुई चीज़ / सामग्री वह तो उसकी उसमें उसे है। आहाहा! उसे यहाँ निरपराधी आत्मा (कहते हैं)। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वरूप है, उसमें वाद-विवाद किसके साथ करना? झगड़ा, वाद करो। खानिया चर्चा करो, उसे झूठी सिद्ध करते हैं। उसका अन्तिम उत्तर हमने दिया नहीं। अन्तिम तुम्हारा उत्तर रह गया। यह फूलचन्दजी के साथ किया है। आहाहा! अरे प्रभु! तेरी प्रभुता को, पर के आधीन प्रभुता को प्रगटाना, ऐसा मानना, वह प्रभुता को पामर मानकर अपराधी होता है, भाई! आहाहा! दुनिया तो प्रसन्न होगी। ऐसा करूँ, शुभभाव करके एक-दूसरे को मदद करना, सहायता करना, वह पामर है, इसलिए उसे अच्छा लगता है। आहाहा! अपने को देने का, मदद करने का करते हैं। गरीब लोग हैं तो पैसेवाले को ऐसा कहे मदद करो। प्रसन्न होता है। अरे, भगवान! बापू! वह प्रसन्न होने का स्थान नहीं है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है। अर्थात् शुद्ध का अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह दया, दान, व्रत, शुभव्यवहाररत्नत्रय का सेवन करनेवाला वह नहीं है। आहाहा! अब, उस व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय हो.. आहाहा! जो अपराध है, उससे निरपराध हो, बापू! चर्चा से पार नहीं आता। शास्त्र में निमित्त को हस्तावलम्ब देखकर बातें बहुत की हैं परन्तु उससे क्या? वह तो ज्ञान कराया है। आहाहा! निमित्त का ज्ञान कराया है।

भगवन्त! तू तो एक अतीन्द्रिय आनन्द का.. आहाहा! जैसे बर्फ की बड़ी शिला होती है... बर्फ की शिला.. वैसे ही अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय वीतरागता की अरूपी स्वभावी शिला है। आहाहा! वह मुम्बई में आता है न? पचास-पचास मण की शिला ट्रक में निकलती है, ट्रक में देखते हैं। पचास-पचास मण की शीतल शिला होती है। वह तो रूपी है, वजनदार है। यह अरूपी है, तोल (वजन) रहित चीज़ है। वजनरहित चीज़ की तुलना की नहीं जा सकती, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा!

बेहद ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता की शक्ति, संख्या का तो पार नहीं होता परन्तु एक-एक शक्ति की सामर्थ्य का पार नहीं होता। ऐसा जो भगवान आत्मा, अपने को सेवन करता है, वह निरपराधी है। भगवान को नहीं। सेव्य-सेवक मैं। मैं सेवक और भगवान सेवन करनेयोग्य, यह यहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसा आया या नहीं इसमें? आत्मा का सेवन करनेवाला हो, ऐसा आया न? भगवान का सेवन करनेवाला हो, ऐसा आया? सेवन करनेयोग्य भी मैं और सेवा करनेवाला भी मैं। सेवा करनेवाला मैं और सेवा के योग्य भगवान, यह तो व्यवहार हो गया। यह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! बहुत कठिन बातें हैं, बापू! इसमें चारों ओर फँस गया हो, उसमें से ऐसी बातें करना एकदम... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक्... पृथक् है, वह पृथक् हो। आहाहा! यह श्लोक पूरा हुआ।



श्लोक-११२

और (इस ८४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

(मालिनी)

अपगतपरमात्मध्यानसम्भावनात्मा,

नियतमिह भवार्तः सापराधः स्मृतः सः ।

अनवरत-मखण्डाद्वैतचिद्धावयुक्तो,

भवति निरपराधः कर्म-सन्न्यास-दक्षः ॥११२॥

(हरिगीतिका)

परमात्मा के ध्यान की सम्भावना से रहित जो ।

वह भवदुःखी माना गया है सापराधी नियम से ॥

जावे युक्त एक अखण्ड चेतन भाव से है अनवरत ।

जो निरपराधी जीव है वह दक्ष कर्म सन्न्यास में ॥११२॥

[श्लोकार्थः] इस लोक में जो परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है (अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है—परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है) वह भवार्त जीव नियम से सापराध माना गया है; जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है, वह कर्मसंन्यासदक्ष (-कर्मत्याग में निपुण) जीव निरपराध है ॥११२ ॥

श्लोक-११२ पर प्रवचन

और (इस ८४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— वह श्लोक तो अमृतचन्द्राचार्य का था। अब स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव इस नियमसार की टीका करनेवाले, वे स्वयं श्लोक कहते हैं।

अपगतपरमात्मध्यानसम्भावनात्मा,

नियतमिह भवार्तः सापराधः स्मृतः सः ।

अनवरत-मखण्डाद्वैतचिद्धावयुक्तो,

भवति निरपराधः कर्म-सन्न्यास-दक्षः ॥११२ ॥

श्लोकार्थः—इस लोक में जो परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है... आहाहा! परमात्मा-परमात्मा-परमस्वरूप। परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप। जो परम ज्ञायकभाव, परमपारिणामिकस्वभावभाव, अरूपी परन्तु परमस्वभाव- ऐसा जो परम आत्म परमस्वभाव, वह परमात्मध्यान। उसका जिसे ध्यान है। उस परमस्वरूप की जिसे एकाग्रता है, उसका जिसे सेवन है, उसमें जिसकी एकाग्रता है, ऐसी परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है... वह रहित है। ऐसे ध्यान की सम्भावना से रहित है। जैसी अन्दर एकाग्रता (चाहिए), उससे रहित राग और संयोग में आ गया है। आहाहा!

जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है... परमानन्द का नाथ प्रभु, उससे रहित। राग के कण में, एक छोटे में छोटा कण, गुण-गुणी के भेद का विकल्प, उसमें भी जो ध्यान में लीन / एकाकार है। आहाहा! (अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है...) राग से ध्यान में एकाकार है, वह परमात्मा के ध्यान

से रहित है। आहाहा! जिसके ध्येय में शुभराग आदि है, उस शुभराग के ध्यान में मस्त है, वह परमात्मा के ध्यान से रहित है। आहाहा!

इस लोक में जो जीव परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है... सम्भावना अर्थात् अनुभव, उसकी एकाग्रता। (अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है—परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है)... आहाहा! परमस्वरूप चिद्घन आनन्द का सागर प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र आत्मा है, उसके ध्यान से जो रहित है, जिसे उसका परिणमन नहीं है और राग तथा पुण्यादि का परिणमन है, वह भवार्त जीव... वह भव में भ्रमण करनेवाला जीव। आहाहा! एक-एक श्लोक और एक-एक कलश...!

भवार्त... भव में पीड़ित। आहाहा! परमात्मा के ध्यान से रहित है, वह भव में पीड़ित है। चाहे तो वह शुभराग हो, वह भव / संसार है। आहाहा! वह शुद्धात्मध्यान से रहित है। वह भवार्त अर्थात् भव—संसार की पीड़ा में पड़ा है। चाहे तो भले शुभराग में हो, (वह) भवार्त की पीड़ा में है। नियम से सापराध माना गया है;... वह निश्चय से निरपराधी नहीं परन्तु सापराधी माना गया है। कहो, अब भगवान का - परमात्मा का ध्यान करे। अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ (का ध्यान करे), ज्ञानार्णव में आता है। पहले ऐसे करे... पहले ऐसे करे, फिर छोड़कर अन्दर जाए। आहाहा!

परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है... अर्थात् दया, दान के रागादि या शुभ-अशुभभावरूप परिणमित हुआ है। आहाहा! वह भवार्त जीव... भव से पीड़ित, भव में पीड़ित जीव नियम से सापराध माना गया है;... निश्चय से उसे अपराधी कहा गया है। आहाहा! यहाँ तो अभी शुभभाव करे, ऐसा करे, त्याग करे तो... ओहोहो! तुमने बहुत अच्छा काम किया। सदाचार किया-सदाचार। वह असदाचार है। शुभभाव, वह असदाचार है। शुद्धस्वभाव की शुद्धता, वह सदाचार है। सत्स्वरूप जो भगवान पूर्णानन्द, उसकी एकाग्रता, वह सदाचार है। आहाहा!

बात-बात में अन्तर है। 'आनन्द कहे परमानन्दा, माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले ने एक त्र्याम्बियाना तेर' भगवान कहते हैं कि अनादि संसार के प्राणी से बात-बात में अन्तर है, प्रभु! आहाहा! कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! दृष्टान्त देते हैं। इस जगह ऐसा किया, देखो! इसने ऐसा किया। तीर्थकरगोत्र बाँधा, देखो! इससे इसने संसार

तोड़ डाला। (वास्तव में) था शुभभाव। तीर्थकरगोत्र बाँधा और उससे केवलज्ञान होगा, (ऐसा अज्ञानी मानता है)। अरे, भाई! वह शुभभाव है, वह अधर्म था। अधर्म से तीर्थकर प्रकृति बँधती है, धर्म से नहीं बँधती। आहाहा! धर्मी जीव वह भाव आता है, उसे जानता है, अपना नहीं मानता। तीर्थकर प्रकृति बँधी; इसलिए बहुत अच्छा हुआ.. आहाहा! ऐसा नहीं मानता। यशपालजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा! तेरी महिमा की क्या बात करना! कहते हैं। आहाहा! वचन से पार, विकल्प से पार, ऐसा तेरा नाथ परमात्मस्वरूप अन्दर विराजता है। प्रभु! तू स्वयं ही परमेश्वर है। आहाहा!

जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... अब सुलटी बात है। जो जीव... उसमें निरन्तर लिया था। आहाहा! आहाहा! उसमें निरन्तर आया था। पहले श्लोक में। सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है;... पहले श्लोक में आया था। इस लोक में जो जीव परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है (अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणामन से रहित है—परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है) वह भवार्त जीव नियम से सापराध माना गया है; जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... आहाहा! जिसकी दृष्टि में निरन्तर अखण्ड; पर्याय का भेद भी नहीं, अद्वैत-एकरूप चैतन्यभाव से युक्त है,... एकरूप चैतन्यभाव से युक्त है। आहाहा!

अन्दर भगवान आत्मा देह से, कर्म से, राग से तो भिन्न है, परन्तु जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं... आहाहा! ऐसा निरन्तर अखण्ड-अद्वैत... निरन्तर सत्.. सत्.. सत्.. सत्.. सत्स्वरूप निरन्तर है... है... है... पूर्णानन्द का नाथ। पूर्णस्वभाव से भरपूर निरन्तर अखण्ड है, अद्वैत है। दो नहीं। द्रव्य और पर्याय दो नहीं। द्रव्यरूप अखण्ड अद्वैत है। आहाहा! समझ में आया? ३२० गाथा में द्रव्य और पर्याय का जोड़ा कहा है, वह तो बतलाया है। यहाँ तो आश्रय करनेयोग्य (द्रव्य बतलाया है)। आश्रय करती है पर्याय, परन्तु वह पर्याय किसका आश्रय करती है? कि निरन्तर अखण्ड चैतन्यभाव से युक्त है। आहाहा! पर्याय में निरन्तर अखण्ड चैतन्यभाव से युक्त है। ध्रुव तो ध्रुव है अखण्ड, परन्तु पर्याय को वहाँ झुकाया है। आहाहा!

जो शुभ और अशुभभाव में झुकी हुई अपराधी थी... आहाहा! उस पर्याय को,

निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... वापस निरन्तर अखण्ड-अद्वैत... वह तो परमाणु में भी लागू पड़ता है परन्तु यह प्रभु स्वयं निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... चैतन्यभाव, ज्ञायकभाव, जाणकस्वभाव, सत्त्व जिसका ज्ञायक। सत् का सत्त्व जिसका ज्ञायक सत्त्व, ध्रुव सत्त्व। आहाहा! ऐसे चैतन्यभाव से सहित है! वह कर्मसंन्यासदक्ष... लो! संन्यास आया। त्याग (आया)। वह (-कर्मत्याग में निपुण) कर्मसंन्यासदक्ष.. वह कर्म के त्याग में दक्ष अर्थात् निपुण है। आहाहा!

जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... पर्याय अखण्ड चैतन्यभाव की ओर झुकी हुई है। झुकी हुई है तो पर्याय, परन्तु कहाँ? कि अखण्ड अद्वैत चैतन्यभाव (की ओर)। आहाहा! उससे जो पर्याय में युक्त है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश लोगों को किस प्रकार का लगे? आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तू वस्तु है या नहीं? वस्तु है या नहीं? तत्त्व है या नहीं? तो तत्त्व है, वह आदि रहित है या शुरुआतवाला है? अनादि है। और है, उसका नाश हो, ऐसा वह तत्त्व है? वह है, वह उस स्वभाववाला तत्त्व है या स्वभावरहित है? आहाहा! तो तत्त्व है वह स्वभाव है, तत्त्वस्वभाववान है। उसका स्वभाव चैतन्यभावस्वभाव। अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव... स्वभाव। आहाहा! दया, दान के विकल्प से तो रहित, परन्तु पर्याय से रहित। पर्याय की दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, कहते हैं। आहाहा! यह किस प्रकार का उपदेश? छोटाभाई! वहाँ दिगम्बर सम्प्रदाय में सुना था? नहीं? दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्मे हैं। ऐसी बातें बहुत (सूक्ष्म हैं), बापू! आहाहा!

निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव... भाववान प्रभु का चैतन्यभाव। आहाहा! निरन्तर अखण्ड-अद्वैत... वे अद्वैत कहते हैं, वह नहीं, हों! वेदान्त सर्व व्यापक आत्मा कहता है, सर्व व्यापक एक आत्मा, वह अद्वैत नहीं। वह तो यह आत्मा अद्वैत अर्थात् एकरूप, ऐसा। ऐसे-ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं। वेदान्त तो ऐसा कहता है, व्यापक एक ही आत्मा है—सर्व-व्यापक है। वह निश्चयाभास है। यहाँ तो निरन्तर अखण्ड चैतन्य एक। अद्वैत कहा न? अद्वैत अर्थात् स्वयं एक है। एक चैतन्यभाव से युक्त है। आहाहा!

वह कर्मसंन्यासदक्ष... है। वह जीव ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है, ऐसे चैतन्यभाव पर जिसकी दृष्टि पड़ी है, उसमें जिसका दक्षपना जिसके स्वरूप में है, वह कर्मसंन्यास में दक्ष

है। वह कर्म के त्याग में चतुर है। (-कर्मत्याग में निपुण)... है। आहाहा! निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... उसमें जो निपुण है, वह कर्मसंन्यासदक्ष में निपुण है। समझ में आया? आहाहा! जो निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त (सहित) है,... आहाहा! वह कर्मसंन्यास, कर्म के त्याग में चतुर है। आहाहा! वह (सापराधी जीव) कर्म राग आदि ग्रहण में चतुर है और रागसहित ही आत्मा है, ऐसा मानता है। यह (निरपराधी) तो निरन्तर अखण्ड चैतन्यभावयुक्त कर्मसंन्यासदक्ष—रागादि कर्म के त्याग में चतुर है। आहाहा! इस अपेक्षा से समझाना है न? (-कर्मत्याग में निपुण) जीव निरपराध है। उस जीव को निरपराधी माना गया है। आहाहा! ऐसी व्याख्या है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-८५

मोक्षतूण अणाचारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८५॥

मुक्त्वानाचारमाचारे यस्तु करोति स्थिरभावम् ।
स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात् ॥८५॥

अत्र निश्चयचरणात्मकस्य परमोपेक्षासंयमधरस्य निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपं च भवती-
त्युक्तम् । नियतं परमोपेक्षासंयमिनः शुद्धात्माराधनाव्यतिरिक्तः सर्वोऽप्यनाचारः, अत एव
सर्वमनाचारं मुक्त्वा ह्याचारे सहजचिद्विलासलक्षणनिरञ्जने निजपरमात्मतत्त्वभावनास्वरूपे यः
सहजवैराग्यभावनापरिणतः स्थिरभावं करोति, स परमतपोधन एव प्रतिक्रमणस्वरूप इत्युच्यते,
यस्मात् परमसमरसीभावनापरिणतः सहजनिश्चयप्रतिक्रमणमयो भवतीति ।

जो जीव त्याग अनाचरण आचार में स्थिरता करे ।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८५॥

अन्वयार्थः—[यः तु] जो (जीव) [अनाचारं] अनाचार [मुक्त्वा] छोड़कर
[आचारे] आचार में [स्थिरभावम्] स्थिरभाव [करोति] करता है, [सः] वह
(जीव) [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है, [यस्मात्] कारण कि
वह [प्रतिक्रमणमयः भवेत्] प्रतिक्रमणमय है ।

टीका:—यहाँ (इस गाथा में) निश्चयचरणात्मक परमोपेक्षासंयम के धारण
करनेवाले को निश्चयप्रतिक्रमण का स्वरूप होता है - ऐसा कहा है ।

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त सब
अनाचार है; इसीलिए सर्व अनाचार छोड़कर सहजचिद्विलासलक्षण निरञ्जन निज
परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप *आचार में जो (परम तपोधन) सहजवैराग्यभावनारूप

* सहजचैतन्यविलासात्मक निर्मल निज परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभवन करना वही आचार का स्वरूप है;
ऐसे आचार में जो परम तपोधन स्थिरता करता है, वह स्वयं ही प्रतिक्रमण है ।

से परिणमित हुआ स्थिर भाव करता है, वह परम तपोधन ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ सहज निश्चयप्रतिक्रमणमय है।

प्रवचन-८३, श्लोक-११३, गाथा-८५, शनिवार, कार्तिक कृष्ण १३, दिनांक १७-११-१९७९

नियमसार गाथा ८५।

मोक्षूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८५॥
जो जीव त्याग अनाचरण आचार में स्थिरता करे ।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८५ ॥

टीका:—यहाँ (इस गाथा में) निश्चयचरणात्मक... निश्चय चरण आचार । स्वरूप-आत्मस्वरूप में आचरण करना । निजानन्द भगवान आत्मा में आचरण करने का नाम आचार है । आहाहा ! वह निश्चय चरणस्वरूप, उसका नाम निश्चयचारित्रस्वरूप । वह परमोपेक्षासंयम... राग की अपेक्षा छोड़कर व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प की भी अपेक्षा छोड़कर... सूक्ष्म बात है, भाई ! परमोपेक्षासंयम... जिसे कोई राग की अपेक्षा नहीं । चिदानन्द सहजानन्दस्वरूप प्रभु के अवलम्बन में स्थिरता करता है, स्थिर करता है, उसका नाम परमोपेक्षासंयम कहा जाता है । उसके धारण करनेवाले... ऐसे परमोपेक्षासंयम को धारण करनेवाले को निश्चयप्रतिक्रमण का स्वरूप होता है... उसे सच्चा प्रतिक्रमण होता है । सच्चा प्रतिक्रमण कहो, सच्ची सामायिक अन्तर वीतरागदशा कहो, सच्ची अन्दर वीतराग की स्तुति कहो, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की स्तुति-अन्दर एकाग्रता । शुद्धस्वरूप में एकाग्रता का आचरण, उसे यहाँ आचार कहा जाता है । आहाहा ! ऐसी बात है । उसका स्वरूप होता है - ऐसा कहा है । अब विशेष (कहते हैं) ।

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को... अर्थात् ? जिसे भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की जिसे अपेक्षा और आश्रय है, उसे रागादि दया, दान का व्यवहाररत्नत्रय का राग, उसकी भी जिसे उपेक्षा है । जिसे स्वभाव की अपेक्षा है, उसे विभाव की उपेक्षा है । ऐसी

बातें हैं। इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। इसका नाम सच्चा संयम और सच्चा आचार कहा जाता है। यह आचार! आहाहा!

नियम से... निश्चय से **परमोपेक्षासंयम...** जिसे कोई विकल्प की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र को पढ़ने की ओर के झुकाव का राग, उसकी भी जिसे उपेक्षा है, क्योंकि वे तीनों बन्धन का कारण है। आहाहा! समझ में आया? प्रतिक्रमण है न? परमार्थप्रतिक्रमण अर्थात् दोषों से विमुख होना। ऐसा न कहकर, यहाँ निर्मलानन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा में रमणता करना, वह ही पर से उपेक्षा है। आहाहा!

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त... आहाहा! शुद्ध चिदानन्द प्रभु, अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, उसकी रमणता के अतिरिक्त-उसकी आराधना के अतिरिक्त, उसकी लीनता के अतिरिक्त **सब अनाचार है;**... आहाहा! भगवन्त! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। लोगों ने व्यवहार के प्रेम में फँसकर अनादि काल से चैतन्य आनन्द शक्ति है, उसे गँवायी है। आहाहा! यह सच्चिदानन्द प्रभु; सत् अर्थात् शाश्वत्; चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु की अपेक्षा रखकर पर की अपेक्षा छोड़ी है, क्योंकि इस आत्मा के स्वभाव की अपेक्षा के अतिरिक्त **सब अनाचार है;**... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग है, वह अनाचार है। कठिन बात है, भाई! है?

शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त... आहाहा! शुद्ध ज्ञायकभाव ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर भगवान पूर्ण ध्रुव, ज्ञान और आनन्द और शान्ति की पूर्णता से भरपूर प्रभु भगवान की आराधना, उसकी सन्मुखता के अतिरिक्त जितनी परसन्मुखता है, वह सब अनाचार है। आचार और अनाचार की यह व्याख्या है। लोग तो बाहर के क्रियाकाण्ड कुछ करे, वह सदाचार है-ऐसा लोग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु!

तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! भगवत्स्वरूप अन्दर, परमेश्वरस्वरूप आत्मा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय वीतरागता, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का समूह वह प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसे पामर राग की दशा है, वह पामर दशा है। देहादि की बात

क्या करना ? वे तो जड़, मिट्टी, धूल हैं। यह मिट्टी है, वह तो आत्मा में है नहीं, आत्मा की है ही नहीं। वाणी और शरीर और मन, ये तीनों जड़ हैं, उनमें, आत्मा नहीं है, वे आत्मा में नहीं हैं, उनकी तो भिन्नता है, परन्तु अन्दर में उत्पन्न हुआ व्यवहाररत्नत्रय का राग.. आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या करे ? एकान्त लगे, ऐसा लगता है। एकान्त है, ऐसा लोगों को लगता है। कहते हैं बेचारे। क्या करे ? है, एकान्त ही है; सम्यक् एकान्त ही यह है। सम्यक् एकान्त। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ, उस ओर की सन्मुखता और एकाग्रता, वह सम्यक् एकान्त है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

निश्चय से, नियम से अर्थात् निश्चय से **परमोपेक्षासंयमवाले को...** परम उपेक्षा। जिसे राग की-व्यवहार की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा तो है ही नहीं। बाह्यनिमित्त। अन्दर का निमित्त जो व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं है। ऐसा जो भगवान आत्मा परमसंयमी को **शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त...** सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के अतिरिक्त **सब अनाचार है;...** व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, वह भी दुःख है। यह जँचे कैसे ? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प है, वह राग है। वह राग है, सो दुःख है। भगवान आत्मा तो अनाकुल आनन्दस्वरूप है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा... परम आनन्द और परम ज्ञान और परम शान्ति / वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान, पूर्ण से भरपूर ऐसे **शुद्ध आत्मा की आराधना...** उस शुद्ध आत्मा की सेवना। शुद्ध आत्मा की सन्मुखता करके सेवना, सन्मुखता करके एकाग्रता, इसके **अतिरिक्त सब अनाचार है;...** है ? आहाहा! मार्ग प्रभु! ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को ऐसा लगता है। सोनगढ़वाले निश्चय एकान्त करते हैं, एकान्त करते हैं, ऐसा बेचारे कहते हैं। व्यवहार की बात तो उड़ा देते हैं। व्यवहार से कुछ लाभ होता है, यह बात करते ही नहीं। बात तो सत्य है न, प्रभु! तेरी बात सत्य है। मार्ग यह है, बापू! अरे रे! चौरासी के अवतार में अनन्त काल से भटकते हुए इसे पर की उपेक्षा आयी ही नहीं और स्व की अपेक्षा हुई ही नहीं। पर की अपेक्षा रखी है और स्व की उपेक्षा की है। भाषा सादी है, भगवान! आहाहा!

भगवन्त! तू परमात्मस्वरूप अन्दर है, प्रभु! परन्तु कैसे जँचे ? आहाहा! परमानन्द का नाथ, कहते हैं कि उसकी सेवा के अतिरिक्त, उसकी सन्मुखता आराधना के अतिरिक्त **सब अनाचार है;...** कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि हे नाथ! आत्मा! तेरा शुद्धस्वरूप अन्दर है, उसकी सेवा के अतिरिक्त हमारी ओर का तेरा लक्ष्य जाए, वह भी

राग और अनाचार है। आहाहा! यह वीतरागी सन्तों की वाणी! आहाहा! एक लाईन में कितना भरा है! आहाहा! भाई! यह तो मोक्षमार्ग की बात है बापू! मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव होता है। रागभाव, वह तो दुःखरूप भाव होता है। मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव, आनन्दमय होता है, अनाकुल भाव होता है, शान्तभाव होता है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा की आराधना... आहाहा! एक ही शब्द में तो गजब किया है! पूर्ण सच्चिदानन्द आत्मा ध्रुव नित्यानन्द, अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु अन्दर है। भगवान! तू भगवान है। उसकी आराधना के अतिरिक्त, उसकी सन्मुखता के अतिरिक्त, जितनी परसन्मुखता होती है, वह सब अनाचार है। है इसमें? आहाहा! ऐसा है, भगवन!

यह दूसरी दो पुस्तकें आयी हैं वे किसी की हैं, हों! उस विद्यासागर ने बनायी है न? रयणसार में वह व्यवहार छापा है न? उसने पुस्तक दी है, वह भेजी है। हुकमीचन्दजी को। आहाहा! क्या हो? प्रभु! अध्यात्म का एकान्त का स्वरूप इन्दौर में से निषेध करके डाला है, ऐसा समाचार-पत्र में आया है। निषेध कर डाला। इन्दौर में... अध्यात्म का एकान्त है। अरे! प्रभु! सुन न, भाई! भगवान! बापू! तेरे सन्मुख की बातें हैं, वे तुझे सुहाती नहीं और परसन्मुख की बातें जो विराधना और राग और दुःख है, वह तुझे रुचता है, प्रभु! वह तेरी प्रभुता को लांछन है, नाथ! आहाहा! बात यह है, प्रभु! आहाहा!

सब प्रभु हैं और सब प्रभु होओ। आहाहा! यह भूल निकालकर प्रभु होओ। प्रभु है, वैसा हो। सब जीव भगवन्त हैं। आहाहा! शुद्धस्वरूप से विराजमान अनाकुल आनन्द का रसकन्द ध्रुव है, ऐसी तेरी पर्याय में तुझे अनाकुल आनन्द की दशा होओ, सब आत्माएँ ऐसी होओ। आहाहा! धर्मी को तो यह भावना होती है न!

यह यहाँ कहते हैं, **शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त...** हिन्दी में भी जरा समझ लेना। शुद्ध आत्मा की सेवा बिना, ऐसा। इसीलिए भाषा गुजराती भी सादी है। **आराधना के अतिरिक्त सब...** सब। गजब किया है न? आहाहा! नग्न मुनि! नागा बादशाह से आघा!! जिन्हें समाज की कुछ पड़ी नहीं है कि समाज संगठित रहेगी या नहीं? यह बात बाहर प्रसिद्ध करने से भाग पड़ जाएँगे या नहीं? आहाहा! प्रभु! तू इस मार्ग में है और यह मार्ग यह है।

शुद्धस्वरूप भगवान् पूर्ण आनन्द, जिसमें दया, दान के विकल्प की गन्ध नहीं। दया, दान भी हिंसा है। पर की दया का भाव, वह हिंसा है, राग है। आहाहा! भगवान् परमात्मा है, उनकी भक्ति का भाव भी राग है और हिंसा है। वह अनाचार है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! है या नहीं इसमें? आहाहा! प्रभु! तू तेरे पक्ष में चढ़। इस राग के पक्ष से हट जा, नाथ! आहाहा! इस विकल्प का जो राग उठता है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पंच महाव्रत या शास्त्र पढ़ना, वह सब राग है। भगवन्त! उस राग के पक्ष से हट जा, वह राग तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त सब अनाचार है;... आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। भगवान् की भक्ति करते हैं, भगवान् का स्मरण करते हैं.. णमो अरिहंताणं... अरिहंताणं... यह तो कहते हैं कि यह स्मरण कर तो वह राग है, विकार है और दुःख है। परद्रव्य की ओर का लक्ष्य करके जो भाव होता है, वह राग है। आहाहा! कठिन लगता है। सोनगढ़ के नाम से एकान्त है, (ऐसा कहते हैं) आज आया है, भाई! करुणादीप (जैन समाचार-पत्र) में (कि) इन्दौर में से अध्यात्म के एकान्त का खण्डन किया—दूर कर दिया है, ऐसा आया है। इन्दौर में से सोनगढ़ का। नाम सोनगढ़ का नहीं दिया, अध्यात्म का एकान्त है, उसे इन्दौर में से दूर कर दिया। आहाहा! प्रभु! प्रभु! क्या किया? प्रभु तूने।

यहाँ कहते हैं, यह पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका है। मुनिराज है न? पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त, मुनि, भावलिंगी सन्त पंच परमेष्ठी में हैं। जिन्हें पंच परमेष्ठी में गणधर नमस्कार करते हैं, उनकी यह वाणी है। यह वाणी है कुन्दकुन्दाचार्यदेव का श्लोक, परन्तु इसकी उन्होंने टीका की है, स्पष्टीकरण किया है। थोड़ा कहा परन्तु बहुत करके जानना, प्रभु! भाई! आहाहा! सब बड़ी-बड़ी बातें तो बहुत आयेंगी और उसमें तू तेरे राग में रंजित हो जाएगा। राग में रंग जाएगा। प्रभु! तेरा स्वभाव तो वीतराग है न? आहाहा! वह राग में रंगा हुआ... आहाहा!

रंग का दृष्टान्त दिया है न? (प्रवचनसार ४७ नय में) रंगरेज का दृष्टान्त दिया है। जैसे रंगरेज रंग करता है, उसमें आत्मा भी राग को करता है। वह भी एक उसमें नय है। ४७ नय आते हैं न? भाई! ४७ नय। उसमें वह कर्तानय है न? उसमें उस रंगरेज का दृष्टान्त दिया है कि जैसे रंगरेज रंग को करता है? वस्त्र डुबोता है। हमने तो देखा था। हमारे भाई

का लड़का है न वहाँ? मुम्बई, 'भूपेन्द्र डार्इंग वर्क्स' वहाँ उसे बड़ा खाता, अब तीनों अलग हो गये। इकट्ठे थे तब बड़ा चलता था। वहाँ एक बार दुकान पर चरण करने ले गये थे। वहाँ उसके नौकर रंगते थे। बहुत नौकर। तीनों इकट्ठे थे, तब एक दिन की पाँच हजार की आमदनी थी। अभी तो क्या? धर्म-बर्म की कुछ नहीं। मुम्बई जावें तो सुनने आवे नहीं।

मुमुक्षु : पैसा बहुत है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा धूल है। आहाहा!

मुझे तो दूसरा कहना था। मैं वहाँ गया तब उसके नौकर रंगते थे। हाथ में तो कपड़ा लिया जाए नहीं। गर्म होवे न, इसलिए लकड़ी में डालकर वस्त्र को रंग में डुबोते थे। ऐसे ऊँचा-नीचा करते थे। रंगरेज रंग लगाते थे। इसी प्रकार प्रभु! तुझे पुण्य और पाप का रंग अनादि से लग गया है। रंग गया है। उस रंग को अब छोड़। आहाहा! यह प्रतिक्रमण है न? आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! महँगी पड़े, ऐसी है परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! अनन्त निगोद और नरक के भव किये, वह भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था—ऐसा कैसे (कहा जाए)? भाई! आहाहा! आत्मा अनादि का है। अनादि का रहा कहाँ? नरक, निगोद लट, चींटी, कौआ, और कुत्ते के भव करके रहा। आहाहा! और जहाँ मनुष्य हुआ, वहाँ भूल गया। हो गया। मानो हम मनुष्य हैं। हम यह सब हैं। हम ऐसे हैं।

मुमुक्षु : इसका नाम पर्यायदृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायदृष्टि, बाहर दृष्टि, यह सब चमक। आहाहा! लड़का और लड़के के लड़के और उसके लड़के के लड़के की बहुएँ, वे सब वस्त्र पहनकर निकले तो अपनी आँख स्थिर हो.. कि आहाहा! पाँच-पाँच हजार की साड़ी हो और पहनकर निकले तो दूसरे नजर करें। तो कहे, अपनी साड़ी दिखती है। इसमें अपनी शोभा दिखती है। अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? तू कहाँ जाता है? आहाहा! यहाँ तो प्रभु वहाँ तक कहते हैं कि एक आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान की अन्दर में सेवा के अतिरिक्त सब अनाचार है। भाई! तुझे क्या कहना है?

मुमुक्षु : तुझमें से निकल जाए तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझमें निकल जाए, तुझमें वह है ही नहीं। तू वह आत्मा ही नहीं—रागादि तो अनात्मा, विकार है। आहाहा!

वह सब अनाचार है; इसीलिए... अब कहते हैं कि क्या कारण ? कि वह शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त... सिवाय कहते हैं न ? हिन्दी में क्या कहते हैं ? अलावा ? उसके अलावा । सब अनाचार है;... पंच महाव्रतधारी सन्त मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्यदेव की (गाथा की) टीका करते हैं । ऐसे मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य कहना चाहते हैं । तुमको जँचे, न जँचे, बापू ! आप स्वतन्त्र हैं परन्तु भाई ! इसीलिए सर्व अनाचार छोड़कर... आहाहा ! है ? सर्व अनाचार छोड़कर... प्रभु ! आहाहा !

ज्ञानाचार और दर्शनाचार जो व्यवहार है, व्यवहार । वह सब भी अनाचार है, कहते हैं । आहाहा ! व्यवहार । निश्चय ज्ञानाचार तो आत्मा ज्ञान में रमे, वह ज्ञानाचार है और शास्त्र का पढ़ना और उसका ध्यान रखना, वह व्यवहार ज्ञानाचार है, वह राग है । राग है, वह सब अनाचार है और अनाचार है, इसीलिए सर्व अनाचार छोड़कर... आहाहा ! ऐसा नहीं कहा कि अमुक जाति का राग रख और अमुक जाति का राग छोड़ । आहाहा ! सर्व अनाचार छोड़कर... आहाहा ! परन्तु प्रभु ! हमें गृहस्थाश्रम में रहना है, अब आप कहो कि यह कुछ नहीं करना । लाभ हो (नहीं)... तो अब हमें करना क्या ? परन्तु गृहस्थाश्रम में है ही कहाँ ? तू तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है । आहाहा ! गृहस्थाश्रम की पर्याय तो तेरी नहीं परन्तु मुनि की पर्याय जितना भी तू नहीं है । आहाहा !

भगवन्त ! तेरा आचार जो आराधना, उसके अतिरिक्त सब अनाचार छोड़कर... सर्व अनाचार छोड़कर... आहाहा ! लोग दया, दान, व्रत, तप को सदाचार कहते हैं, वह सदाचार नहीं है; वह असदाचार है । वह राग है, विकल्प है, प्रभु ! मार्ग सूक्ष्म है, प्रभु ! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई ! आहाहा ! उसे श्रद्धा करने में अभी दिक्कत आती है । आचरण करना, वह तो फिर एक ओर रहा । मार्ग यह है ।

शुद्धचैतन्य स्वभाव की रमणता के अतिरिक्त सब अनाचार है... इसलिए सर्व अनाचार छोड़कर सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन निज... आहाहा ! अब आचार की व्याख्या करते हैं । सर्व अनाचार छोड़कर... अब आचार अर्थात् क्या ? स्वाभाविक चिद्ज्ञान विलास लक्षण । स्वाभाविक भगवान, ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान लक्षण से लक्ष्य हो, ऐसा जो सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन निज परमात्मतत्त्व... निरंजन... आहाहा ! निरंजन - जिसमें अंजन / मैल, राग नहीं, पुण्य नहीं, संसार नहीं । जिसमें उदयभाव संसार नहीं ।

आहाहा! वह तो मुक्तस्वरूप प्रभु अन्दर है। अरेरे! द्रव्यस्वरूप जो वस्तु है, वह तो मुक्तस्वरूप है। उस मुक्तस्वरूप को। **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** भाषा तो देखो! पर भगवान, ऐसा नहीं। अरिहन्त और सिद्ध, वह नहीं। **निरंजन निज परमात्मतत्त्व की भावना...** आहाहा! कैसे जँचे? आहाहा!

माप निकालना आता नहीं न? माप निकालने का मापक ही अलग है। आहाहा! जिसका स्वभाव उससे माप क्या? हृदय क्या? जिसका स्वरूप शुद्ध सहज है, उसकी हृदय और परिमितता-मर्यादा क्या? आहाहा! भले क्षेत्र शरीर प्रमाण हो, परन्तु सहज चिद्विलास, वह तो अपार स्वभाव जिसका है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा सहज चिद्विलास। चिद् अर्थात् ज्ञान। ज्ञान का विलास लक्षण। वह तो उस ज्ञान का विलास लक्षण है, दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प, वह कोई आत्मा का लक्षण नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन... जिसे अंजन नहीं, मैल नहीं। निरंजन निराकार परमात्मा अन्दर है। ऐसा जो द्रव्यस्वभाव भगवान परमात्मा **निज परमात्मतत्त्व...** अपना परमात्मा। पर परमात्मा, वह तो व्यवहार हो गया। पंच परमेष्ठी को मानना और पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जाना, होता है, आता है परन्तु है राग। आहाहा! स्वद्रव्य के सन्मुख जाना। निज परमात्मतत्त्व-ऐसा लिया है न? **निज परमात्मतत्त्व...** परपरमात्मतत्त्व नहीं। आहाहा! **निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप...** अब देखो! यहाँ कितने ही ऐसा कहते हैं न कि भावना, वह तो कल्पना है। वह आता है न? भाई! श्रावक का। उस दिन उन्होंने कहा था न? दयाचन्द्रजी। श्रावक को सामायिक में शुद्ध उपयोग की भावना होती है। तब वह कहे, भावना अर्थात् भावे। परन्तु यहाँ तो शुद्ध उपयोग की भावना, वह तो शुद्धोपयोग है। यह देखो! क्या कहते हैं?

निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप आचार... भावनास्वरूप आचार। आहाहा! गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी है। आहाहा! निज परमात्मा। निज अर्थात् अपना परमस्वरूप भगवान, नित्यानन्दनाथ की **भावनास्वरूप...** उसकी भावनास्वरूप अर्थात् अन्तर एकाग्रता स्वरूप। **आचार...** उसका नाम आचार है। बाकी तो अथाणा को आचार कहते हैं न? क्या कहलाता है? अथाणा क्या कहलाता है। वह आम का... उसे अचार कहते हैं या नहीं? आम, गुँदा को अचार कहते हैं। इस आचार के अतिरिक्त वे सब (अचार) अथाणा है।

आहाहा! अरे! निवृत्ति कहाँ? प्रभु! समय चला जा रहा है। देह के गिरने की सन्मुखता तो होती है। जो अवधि है, उस अवधि प्रमाण यहाँ रहेगा, उसमें तो अवधि निश्चित हो गयी है। आहाहा!

यह निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप... ऐसा लिया है न? अकेली भावना.. भावना.. कल्पना ऐसा नहीं। परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप आचार... इसका अर्थात् आचार है, नीचे अर्थ है। सहजचैतन्यविलासात्मक... आत्मक अर्थात् स्वरूप। निर्मल निज परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभवन करना... अन्तर अनुभव करना। अतीन्द्रिय आनन्द—स्वभाव भगवान को अनुभव करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को अनुभव करने का नाम आचार है। आहाहा! है या नहीं? छोटाभाई! अन्दर है न? आहाहा!

निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप... भावना अर्थात् विकल्प नहीं। एकाग्रता स्वरूप, शुद्ध चैतन्यमूर्ति वीतरागमूर्ति प्रभु में एकाग्रतास्वरूप आचार। कि जो आचार परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभवन करना, वही आचार का स्वरूप है;... यह आचार का स्वरूप है। यह आचार करते हैं या नहीं? कौन सा आचार? कि यह (आचार) आहाहा! समझ में आया? ऐसी कठिन बातें। निवृत्ति नहीं मिलती। सूक्ष्म पड़े, कठिन पड़े, ऐसा लगता है और यह सब करते हैं, वह इसे सरल पड़ता है। अनादि का राग और द्वेष और विकल्प। राग-द्वेष और विकल्प करता है, हों! दूसरा कुछ करता नहीं। पर का कुछ वस्त्र बदल सके या किसी को कोई चीज़ दे सके-ले सके, वह तो तीन काल में कर नहीं सकता। कर सकता है वह पुण्य और पाप, राग और द्वेष तथा मिथ्यात्वभाव। आहाहा! समझ में आया?

यह ऐसा आचार। भाषा तो देखो! टीका, ओहोहो! भरतक्षेत्र में ऐसी टीका अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर सन्तों ने तो परमात्मा को नीचे उतारा है। प्रभु! यहाँ आओ, मुझे वहाँ आना है। आहाहा! सिद्ध के साथ बातें की हैं। सिद्ध यह आत्मा, हों! आहाहा! 'सिद्धसमान सदा पद मेरौ' आता है न?

'चेतनरूप अनूप अमूरत; सिद्ध समान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ।
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगम केरौ।'

आहाहा! 'घट वास बसै... मिटे..' (वेगि मिटै भववास बसेरौ)। आहाहा!

ऐसे आचार में जो परम तपोधन... ऐसे आचार में जो परम तपोधन मुनि। आहाहा! परम तपरूपी जिनका धन है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है, अतीन्द्रिय आनन्द, वह उनका धन है। अतीन्द्रिय आनन्द का जो अनुभव है, वह उनका धन है। वह तपरूपी धन है। इस लोक को धूलरूपी धन है। आहाहा! पूर्व-पश्चिम का बड़ा अन्तर लगे। बात तो सत्य है, भाई!

ऐसे सहजवैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ... ऐसी भावना के स्वरूप में आचार में रहा और सहजवैराग्य-पर से वैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ... ऐसा। अस्तिरूप से स्वरूप में आचार में रहा हुआ, नास्तिरूप से सहजवैराग्यभावनारूप से रहा हुआ। आहाहा! पुण्य-पाप के अधिकार में कहा है न? भाई! शुभ और अशुभभाव से विरक्त, वह वैराग्य है। श्लोक है न? समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में। वैराग्य किसे कहते हैं? यह स्त्री, पुत्र छोड़कर, दुकान छोड़कर बैठे, वह वैराग्य? वह वैराग्य नहीं है। समयसार में अधिकार है। शुभ और अशुभभाव, राग से विरक्त होने का नाम वैराग्य है। आत्मा में रक्त होना और विकार से विरक्त होना.. आहाहा! वैराग्य की व्याख्या अलग। आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप भगवान में अन्दर प्रेम-रति-लीनता और पुण्य-पाप के भाव से विरक्तता को वैराग्य कहा जाता है। आहाहा! शब्द-शब्द में अन्तर है। दुनिया से दूसरा प्रकार लगे, भाई! पूरे दिन यह सुना हो कि यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो... यह करो.. सवेरे उठकर भगवान की भक्ति करो, पूजा करो, स्तुति करो, यह करो। थोड़ा पाँच-दस मिनट पढ़ो। छह आवश्यक है न? भाई! यह तो सब विकल्प की-राग की बातें हैं। होता है, पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा राग होता है परन्तु वह राग है, वह अनाचार है। आहाहा! इसमें है या नहीं?

वह सहजवैराग्यभावनारूप से... सहज क्यों कहा? वहाँ हठ नहीं है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का दल भगवान जहाँ अनुभव में आया, वहाँ सहजरूप से राग से वैराग्य हो गया, विरक्त हो गया। सहजवैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ... राग के अभाव-स्वभावरूप परिणमित होता हुआ। आहाहा! गाथा के एक-एक शब्द में इतना भरा है, लो!

स्थिर भाव करता है,... आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम। स्वयं ज्योति सुखधाम, उसमें जो अन्दर स्थिरता करता है। स्थिर... स्थिर। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन हो जाता है। आहाहा! वह परम तपोधन ही... वह परम तपोधन। जिसे वह तपरूपी धन है। वह तप, यह अपवास करो, यह व्रत नहीं। यह तो सब लंघन है। अमृत के सागर को उछालना, सोने को जैसे गेरु लगाने से ओपता-शोभता है। गेरु, गेरु। इसी प्रकार भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित इच्छा का निरोध करके अन्दर अमृतसागर में डूबे, उसका नाम तप कहने में आता है। आहाहा! व्याख्या एक-एक अलग है 'विजयन्ति इति तपः' जिसमें आत्मा की विजय हो। शुद्धता की, वीतरागता की वृद्धि हो। वह विजय होती है, उसका नाम तप कहने में आता है। भाषा तो सादी है, परन्तु प्रभु! भाव तो है, वह है। क्या हो? इसमें कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है और समाज का बड़ा भाग, बेचारा कुछ विचार में भी नहीं पड़ा है। धन्धे-पानी में पड़ा हो, कहीं सुनने जाए (तो) ऊपर - पाट पर बैठा हो, वह जो कहे, उसे जय नारायण। आहाहा! जय, जय! हो गया। बेचारे की तुलना करके सत्य और असत्य क्या है? उसकी तुलना करने का भी अवसर और निवृत्ति नहीं है। आहाहा! यहाँ तो पुण्य और पाप के भाव से भी निवृत्त होकर फुरसत निकालना है, ऐसा कहते हैं। वह वैराग्य परायण है। आहाहा!

सहजवैराग्यभावनारूप से... देखो! वहाँ भी भावना आयी। उसमें भी भावना आयी थी। परमात्मतत्त्व की भावना अस्तिरूप से थी। यह सहज वैराग्यभावना पर से नास्तिरूप है। परिणामित हुआ स्थिर भाव करता है,... अन्तर आनन्द में जो स्थिर होता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु! प्रभु आत्मा आनन्द का दल है, उसमें जो स्थिर होता है... आहाहा! वह परम तपोधन ही... देखा? वह परम तपोधन ही... दूसरे नहीं। ऐसे जो परम तपोधन हैं, (वे) ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,... उन्हें प्रतिक्रमण कहा जाता है। उसने प्रतिक्रमण किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अब इसमें धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। स्त्री, पुत्र सम्हालना, कमाना... उन्हें वापस भूखे रखना? वस्त्र, कपड़े देना। करना क्या? अब इसमें यह कहाँ निवृत्त है? आहाहा! अरे रे! ऐसे के ऐसे अनादि काल के वर्ष गँवाये। ऐसे क्षण को प्रगट कर कि भूल जा पर को और भगवान को सम्हाल। सम्हाल अर्थात् अन्दर भगवान है, उसमें लीन हो। आहाहा!

ऐसे तपोधन ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,... इस प्रतिक्रमण का यह स्वरूप है। आहाहा! अब दोपहर-शाम जाकर मिच्छामि दुक्कडम् अमुक करके हो गया प्रतिक्रमण। वह तो राग की क्रिया है; और वाणी को क्रिया मेरी है, ऐसा माने, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन काम। **कारण कि वह...** वह प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, उसका कारण आहाहा! **कि वह परम समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** आहाहा! पहले इसका ज्ञान तो करे कि वस्तु यह है। आहाहा! **परम समरसीभावनारूप से...** देखो! वापस यह भावना आयी। तीसरी बार आयी। पहले परमतत्त्व की भावना थी, पश्चात् सहज वैराग्य भावनारूप से परिणमित हुआ; पश्चात् समरसीभावना। भावना अर्थात् अन्दर एकाग्रता है, वह (भावना है)। आहाहा! **परम समरसीभाव...** अकेला समरसी नहीं। परमवीतरागभावरूप परिणमित हुआ। समरसी भाव अर्थात् वीतरागता। परम वीतरागभावनारूप से **परिणमित हुआ...** आहाहा! **सहज निश्चयप्रतिक्रमणमय है**। पहले कहा था कि उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। प्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है, ऐसा कहा था। अब कहते हैं कि वह जीव प्रतिक्रमणमय ही है। आहाहा! उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है कि जो सहज निज परमात्मतत्त्व की आराधना में रमता है और पर से वैराग्य में रमता है, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। वह प्रतिक्रमण कहलाता है। अब उस आत्मा को प्रतिक्रमणमय कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। वह प्रतिक्रमण और आत्मा दोनों अलग नहीं हैं, ऐसा। आहाहा! है ?

प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से... परम वीतरागभावरूप से। वह हो सके नहीं, यह अलग, परन्तु उसकी श्रद्धा और ज्ञान तो करे पहले। (कि) सच्चा वस्तु का स्वरूप यह है। जिसे अभी श्रद्धा-ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे वीतरागता, चारित्र, आचार-फाचार कहाँ से आता था? आहाहा! **कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** अब अभेद कहना है न? वह प्रतिक्रमण कहलाता है, ऐसा कहा, परन्तु अब कहते हैं कि वह **समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** वह प्रतिक्रमणमय ही है। प्रतिक्रमणमय-प्रतिक्रमणस्वरूप ही वह है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेद निकाल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद निकाल दिया। प्रतिक्रमणस्वरूप उसे कहना। अन्दर निज परमात्मतत्त्व में रमे और वैराग्य से—पर से भिन्न हो, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। फिर

कहते हैं प्रतिक्रमण कहलाता है, यह तो बात की, परन्तु वह आत्मा ही प्रतिक्रमणमय है। आहाहा!

कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से... वह समतारूप से परिणमा है, वह वीतरागभावरूप हुआ है। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द और वीतरागरूप से हुआ प्रभु, उसे सहज निश्चयप्रतिक्रमणमय कहा जाता है। निश्चयप्रतिक्रमणमय। उस निश्चयप्रतिक्रमण स्वरूप ही वह है। आहाहा! पाँच लाइनें हैं। पाँच लाइनों में तो कितना भरा है! आहाहा! अब वह ऐसा का ऐसा पढ़ जाए। कहे पढ़ गए। बापू! यह बहियों का पढ़ना अलग और यह बहियाँ (शास्त्र) अलग हैं। आहाहा! श्लोक आया न?



श्लोक-११३

[अब इस ८५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

अथ निज-परमानन्दैक-पीयूष-सान्द्रं,
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा ।
निज-शम-मय-वार्धिर्निर्भरानन्द-भक्त्या,
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः ॥११३॥

(हरिगीतिका)

अद्वितीय परमानन्द अमृत से भरा भरपूर जो।
उस सहज ज्ञान स्वरूप निर्भर प्रगटरूप निजात्म को ॥
आनन्द-भक्तिपूर्वक नहलाओ निज शम-नीर से।
बहुभाँति लौकिक वचनजालों से प्रयोजन क्या तुम्हें ॥११३॥

[श्लोकार्थः] आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए,

स्फुरित-सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को निर्भर (-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा स्नान कराओ; बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन (अर्थात्) अन्य अनेक लौकिक कथनसमूहों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ? ॥११३ ॥

श्लोक-११३ पर प्रवचन

अथ निज-परमानन्दैक-पीयूष-सान्द्रं,
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा ।
निज-शम-मय-वार्भिर्निर्भरानन्द-भक्त्या,
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः ॥११३॥

आहाहा ! [श्लोकार्थः —] आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए, ... आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं पैसे में सुख है, भोग में सुख है । इज्जत में, कोई महिमा करे, उसमें सुख है । धूल में भी सुख नहीं । जहर है । आहाहा ! तू बहुत अच्छा, बहुत होशियार, बहुत विद्वान और पण्डित, यह गुणगान सुनकर प्रसन्न होता है, जहर है ।

मुमुक्षु : महिमा सुनकर कद्रदान....

पूज्य गुरुदेवश्री : कद्रदान । उसकी कद्र की, कहलाता है । यह तुझे मान हुआ है । आहाहा ! कद्र करे, न करे, न इससे कुछ तुझमें हीनाधिकता हो जाती है ? कद्र करे तो अधिक हो जाए और न करे तो हीनता हो जाए, ऐसा है ? आहाहा ! ऐसा बहुत कठिन काम, बापू ! एकान्त अध्यात्म को छोड़ दो । यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... ऐसा (अभी लोग) । कहते हैं । प्रभु ! तू क्या करेगा ? विकल्प करना, वह भी एक जहर का प्याला पीने (जैसा है) । आहाहा ! राग को करना, शुभ को करना, वह भी जहर का प्याला-विषकुम्भ है । जहर का घड़ा है । समयसार में मोक्ष अधिकार में पाठ है । आहाहा ! प्रभु ! करना तो यह है । निर्विकल्प अमृत को पी । आहाहा !

आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत... आहाहा ! गाढ़ भरे हुए, ... ओहोहो ! कैसा है प्रभु ? निज परमानन्दरूपी... परम अतीन्द्रिय आनन्द, उस स्वरूपी अद्वितीय

अजोड़-अमृत। ऐसा अमृत अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसे अमृत से भरपूर भगवान है। यह आत्मा आनन्दमूर्ति से भरपूर अन्दर भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस भरा हुआ है। आहाहा! गाढ़ भरे हुए,... वापस भाषा देखी? आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय... अजोड़ एक अमृत से गाढ़ भरे हुए,... आहाहा! ऐसे स्फुरित-सहज-ज्ञानस्वरूप... ऐसे प्रगट सहज ज्ञानस्वरूप। प्रगट ज्ञानस्वरूप भगवान है। आत्मा को निर्भर (-भरपूर)... आहा! निर्भर। भर से भी निर्भर। यह गाड़ी में भूसा नहीं भरते? वह भर और यह तो निर्भर। उससे विशेष गाढ़ भरा हुआ है। आहाहा! (-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा स्नान कराओ;... यह बात विशेष आयेगी।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८४, श्लोक-११३-११४, रविवार, कार्तिक कृष्ण १४, दिनांक १८-११-१९७९

नियमसार ११३ कलश है। सार... सार... है। सत्।

आत्मा निज परमानन्दरूपी... आत्मा का स्वभाव त्रिकाल निज परमानन्द (स्वरूप है)। जैसे गुड़ का स्वभाव मीठा, शक्कर का स्वभाव मीठा है, वैसे भगवान आत्मा अपने निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से... आहाहा! अद्वितीय अजोड़ अमृत से गाढ़ भरे हुए... आहाहा! वस्तु है न? वस्तु है, वह अपने अतीन्द्रिय आनन्द से गाढ़ भरे हुए... आहाहा! यहाँ तो अकेला तत्त्व है। ऐसा अद्वितीय, अजोड़ एक यह गाढ़ भरे हुए, स्फुरित... प्रगट है। अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर प्रगट है। शक्तिरूप, स्वभावरूप प्रगट है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा है, उसे सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को... ऐसे सहजज्ञान... आनन्द और ज्ञान दो इकट्ठे लिए हैं। स्वाभाविक जो त्रिकाल ज्ञान है, आत्मा का त्रिकाली सहज ज्ञानस्वभाव, जैसा सहज आनन्द से गाढ़ से भरा हुआ, ऐसे सहजज्ञान से भरा हुआ, प्रगट ऐसे आत्मा को... आहाहा!

निर्भर... भर से भी निर्भर। (-भरपूर)... भरा हुआ। ज्ञान और आनन्द से गाढ़ निर्भर भरचक भरा हुआ भगवान है। आहाहा! यह उसका ध्रुवस्वरूप है। वह स्वतः

अनादि अपना सत् का वह सत्व है। सत् का वह सत्व है। आहाहा! ऐसे निर्भर (-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भजन। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के शममय जल द्वारा स्नान कराओ;... आहाहा! स्नान कराओ;... है न? निज अतीन्द्रिय आनन्द शममय जल। भरचक भरा हुआ भगवान, उसमें एकाग्र होकर स्नान कराओ। मलिनता का नाश करो। आहाहा! यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय भी मल है। आहाहा! उसे निज शममय जल द्वारा... समता, ज्ञान, आनन्द ऐसे तीन लिए हैं। वीतरागता, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा को शममय जल द्वारा स्नान कराओ;... अर्थात् उसके सन्मुख होकर, वीतरागभाव द्वारा अशुद्धता का नाश करने के लिए स्नान कराओ। यह स्नान है। सवेरे उठकर स्नान करते हैं। मैल चढ़ता है, मैल। ऐसे होता है। शत्रुंजय नदी में नहावे तो मैल टले, गंगा में जाए तो यह हो। आहाहा! यह तो वह गंगा है। ओहो! संक्षिप्त भाषा। एकदम रहस्य भरा है।

निमित्त और व्यवहार की तो यहाँ बात ही नहीं। वह वस्तु में है ही नहीं। वस्तु में तो अतीन्द्रिय आनन्द, शमजल वीतरागता और सम्यक् आनन्द, ज्ञान। आहाहा! ज्ञान, आनन्द और वीतरागभाव द्वारा स्नान कराओ। संसार की दशा का नाश करो। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। यह करूँ.. यह करूँ.. क्रिया करना। यह (आत्मा) तो अक्रियस्वरूप है। वास्तव में परिणति निर्मल है, वह भी उस वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो अक्रिय आनन्द से भरपूर भगवान अक्रिय ज्ञान से भरपूर सहज स्वभाव को वीतरागभाव द्वारा एकाग्रता करो, उसे स्नान कराओ। आहाहा! उससे संसार का मैल मिटेगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! निमित्त को तो दूर किया। उसमें तो नहीं है, परन्तु उसकी पर्याय में जो विकार है, उसे भी द्रव्यस्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान और वीतरागभाव से उसे स्नान कराओ। आहाहा!

ऐसी बात कठिन लगती है। फिर व्यवहार ऐसा है... व्यवहार ऐसा है... आहाहा! व्यवहार साधक है। जयसेनाचार्य में बहुत आता है। यह ज्ञान कराया है। इससे उस विद्यासागर ने लिखा है कि जयसेनाचार्य हैं, वे परम्परा के आचार्य हैं और अमृतचन्द्राचार्य तो काष्ठासंघी हैं, परम्परा के नहीं हैं। अरे! प्रभु! अर र .र! ऐसी सूझ कहाँ से पड़ी प्रभु तुझे? आहाहा! अमृत का सागर भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने अमृत का प्रवाह बहाया है।

आहाहा! उन्हें काष्ठासंघी कहना, प्रभु प्रभु! सुनने जैसा (नहीं है)। उसने ऐसा लिखा है। जयसेनाचार्य परम्परा के आचार्य हैं और ये नये काष्ठासंघी नये (हैं), परम्परा के नहीं हैं। आहाहा! प्रभु! प्रभु! ओहो! सुनकर रुदन आ जाए ऐसा है। आहा! अरे! ऐसी बात? प्रभु! अमृत से भरा हुआ भगवान, उसे अमृतचन्द्राचार्य ने... यह पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। आहाहा! दोनों ने टीका करके अमृत का प्रवाह बहाया है। आहाहा! अनादि सनातन तीर्थंकर, केवली, मुनि और समकिति जो... आहाहा!

अब यहाँ तक ऐसा कहते हैं, महाव्रत धारे बिना अनुभूति आनन्द और सम्यक्त्व नहीं होता। अर र! अरे रे! ऐसा? प्रभु! तू यह क्या करता है? सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकिति... आहाहा! श्रेणिक राजा। हजारों राजा सेवा करते थे। (वे) क्षायिक समकिति। भरत चक्रवर्ती, कि जिन्हें छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक। कोई नहीं, मैं हूँ वह पूर्ण हूँ। आहाहा! मुझमें पूर्णानन्द में पर्याय की अवस्था की गन्ध नहीं। राग की तो गन्ध कहाँ से होगी? प्रभु! आहाहा! ऐसा कहा न?

अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए,... और **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! विकल्प के दुःख भक्तिपूर्वक से वह नहीं समझ में आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प जो है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो, उस दुःख से नहीं ज्ञात होता। **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय की भक्ति। उस अतीन्द्रिय आनन्द में एकाग्रता, वह भक्ति है। आहाहा! भगवान की भक्ति तो राग है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत से भरा हुआ, उसे आनन्द भक्तिपूर्वक। आनन्द भक्तिपूर्वक, अतीन्द्रिय आनन्द की परिणतिपूर्वक। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

अतीन्द्रिय अमृत के ज्ञान से तो गाढ़ भरा हुआ। ध्रुव, वज्र, वज्र से भरपूर। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा को राग की भक्ति और पर की भक्ति से नहीं परन्तु आनन्द की भक्ति से.. आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय से उसे स्नान कराओ। यशपालजी! दूसरों को ऐसी बात कठिन लगती है। क्या हो? आहाहा! प्रभु! इसकी महिमा की इसे खबर नहीं है। यह (आत्मा) पामर नहीं है। यह पर्याय की निर्मलता का अंश है, इतना-इतना वह नहीं है। आहाहा! वह ध्रुव अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान से गाढ़ भरपूर है। उसे आनन्द भक्ति

से स्नान कराओ। आहाहा! भक्ति शब्द क्यों लिया? भगवान की भक्ति है, उससे कुछ निर्मल स्नान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह राग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग है; इसलिए (यह) शब्द प्रयोग किया है—आनन्दभक्ति। भगवान की भक्ति, वह रागभक्ति है, प्रभु! आहाहा! ऐसी बातें। भगवान अतीन्द्रिय अमृत के स्वभाव से (भरपूर) तत्त्व है, वस्तु है तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और वीतरागता के स्वभाव से गाढ़ पूर्ण भरपूर है। उसे पर्याय में आनन्द की भक्ति से स्नान करा। आहाहा! पूरा तत्त्व भगवान पूर्ण है, उसके सन्मुख होकर आनन्दरूपी भक्ति से उसे स्नान करा। आहाहा! पानी से स्नान नहीं, तेल से नहीं, दूसरी बाहर की किसी भी ऊँची चीज़ से नहीं, अशुभराग से नहीं, शुभराग से नहीं। आहाहा!

आनन्द-भक्ति... गजब शब्द प्रयोग किया है न! **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** अतीन्द्रिय आनन्द के झरने उसमें से बहते हैं। तू ज्ञायकस्वरूप भगवान है न, प्रभु! तुझमें अनन्त गुण की प्रभुता भरी है न, नाथ! पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द भरा है न! तो पर्याय में आनन्द की भक्ति से उसे स्नान करा। यहाँ पर्याय की बात है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। बापू! भगवान! आत्मा अर्थात् क्या? भाई! आहाहा! आत्मा अर्थात् परमात्मा के पूर्ण शक्ति के स्वभाव का सागर भगवान। उसे आनन्द की भक्ति से स्नान करा। राग की भक्ति रहने दे। आहाहा!

देखो! यह पंचम काल के मुनिराज! यह तो अभी अमृतचन्द्राचार्य के पश्चात् हुए हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव, आहाहा! पंचम काल के सन्त हैं। वे श्रोता को ऐसा कहते हैं। उन्हें ऐसा नहीं लगता कि यह श्रोता हीन है और छोटे-साधारण हैं। उन्हें ऐसी बात कैसे करूँ? आहाहा! भगवान! उन्हें पंचम काल लागू नहीं पड़ता। उन्हें हीन, हीन अवस्था भी लागू नहीं पड़ती। आहाहा! ऐसी जो आनन्दशक्ति से भरपूर भगवान परम ज्ञायकस्वभाव पारिणामिक-स्वभाव सहज स्वभाव, अकृत्रिम स्वभाव, अनादि स्वभाव—ऐसे आनन्दभक्ति से उसे स्नान करा। आहाहा! है?

आनन्द-भक्तिपूर्वक... इस कारण यह शब्द प्रयोग किया है कि राग भक्ति नहीं। तथा आत्मा गुणी और गुण है, ऐसे भेद के विकल्प की भक्ति, वह भी भक्ति नहीं है। आहाहा! छोटाभाई! यह बड़े भाई की बात है। आहाहा! अन्दर बड़ा भगवान स्थित है,

प्रभु! आहाहा! अरे! तुझे तेरी महिमा नहीं जँचती, प्रभु! विद्यमान चीज़ नहीं जँचती... आहाहा! और अविद्यमान, नहीं टिकती चीज़ पर तुझे विश्वास? संयोग और रागादि जो नहीं टिकती चीज़ है, प्रभु! उसका तुझे विश्वास? और तेरा जो गुण और अनन्त गुण का धाम ध्रुव, गाढ़ स्वभाव से भरपूर ऐसा नित्य.. आहाहा! उसका तुझे भरोसा नहीं, उसका तुझे विश्वास नहीं, उस ओर का पोषण नहीं, पोषण नहीं और पोषण नहीं। पोसाता नहीं, इसलिए उसका पोषण नहीं। आहाहा! अमृत का झरना बहाया है। पंचम काल में अमृत बहाया है।

सब भगवान है न, प्रभु! आठ वर्ष के बालक को भी यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा! शरीर की करोड़ पूर्व के आयुष्यवाला जीव हो, वह तो देह की स्थिति है। आठ वर्ष का बालक, वह तो देह की स्थिति है। राग होता है वह भी क्षणिक स्थिति है। तेरी स्थिति तो अन्दर ध्रुव नित्यानन्द भगवान अन्दर स्थित है न पूरा! आहाहा! ऐसे प्रभु को आनन्द-भक्तिपूर्वक स्नान करा।

आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा... देखा? वापस। निज अर्थात् अपना वीतरागभाव, अपना जो वीतरागभाव जल है, उसके द्वारा स्नान कराओ। गजब भाषा है। आहाहा! एक कलश में तो गजब किया है न! भगवान! तुझे न सुहावे, ऐसी यह बात नहीं है। प्रभु! तू पूर्ण है और तुझे कैसे नहीं रुचे? आहाहा! पूर्ण भरपूर है न, प्रभु! आहाहा! आचार्य, तुझे भगवानरूप से सम्बोधन करते हैं। आहाहा! तू पामरता में खप जाए, यह तुझे शोभा नहीं देता, प्रभु! आहाहा!

ऐसे **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** यह भाषा क्यों ली है? कि भक्ति तो है। देव, गुरु, शास्त्र आदि की भक्ति है, होती है, परन्तु वह कहीं आत्मा के मलिन जल का नाश हो... वीतराग जल द्वारा मैल का नाश होता है। उस राग द्वारा मलिनता का नाश नहीं होता। आहाहा! यह अतीन्द्रिय दरबार है, उसमें जा। अतीन्द्रिय दरबार अन्दर भरा है। आहाहा!

ऐसे में **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! **निज शममय जल द्वारा...** अपना जो वीतरागभाव है, उस जल द्वारा। आहाहा! गजब काम किया है न? यह पंचम काल के सन्त, ये पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। तू छोटा है, आलसी है, यह कर तो होगा-ऐसा (नहीं कहते)। भगवान! तू बड़ा प्रभु है न? बापू! तुझे उसका विश्वास क्यों नहीं बैठता?

आहाहा! शरीर प्रमाण और राग के वेश के भेष में तू घुस गया। परन्तु प्रभु! राग का वेश ही तेरा नहीं है। शरीर तो तेरा है ही नहीं। आहाहा! परन्तु दया, दान की भक्ति का राग, वह भी तेरा भेष नहीं है। आहाहा! ओहोहो!

समयसार में तो ऐसा कहा, मोक्ष भी एक भेष है। आहाहा! पर्याय है। आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह वेश / दशा है। वह पूरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! उसमें कहा है न? मोक्ष का वेश प्रवेश होता है। उसे जानकर निकल जाता है। संवर, निर्जरा प्रवेश करते हैं। आहाहा! मोक्षरूपी पर्याय को वेश भी तेरा पूरा मूल स्वरूप नहीं है। वह भी एक वेश / अवस्था है। आहाहा! ऐसा जो अवस्थायी प्रभु, जिसे केवलज्ञान आदि मोक्ष भी एक अवस्था का वेश है, एक समय की पर्याय का वेश है, स्वांग है। आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप तो उस वेश से पार है। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पर्याय तो नाशवान है। मोक्ष की पर्याय भी एक समय रहती है और दूसरे समय में उसका नाश होता है। यह तो भगवान ध्रुव अन्दर भरपूर, वीतरागस्वभाव और आनन्द से भरपूर है। उसे... आहाहा! **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** वीतराग शममय जल। निज शममय जल। अपना जो वीतराग स्वभावभाव पर्याय, उस द्वारा **स्नान कराओ;**... प्रभु! आप क्या कहते हो? आहाहा! किसे सुनाते हो यह? समाज साधारण है, पंचम काल है।

मुमुक्षु : यह लागू नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लागू नहीं पड़ता, प्रभु! आहाहा! यह बालक है और यह अनजान आये हैं, कभी सुना नहीं। प्रभु! ऐसा रहने दे। तू भगवान है, यह सुन। आहाहा!

इस श्लोक में बहुत-बहुत भरा है। **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** राग है, वह तो दुःख है। इसलिए **आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल...** अर्थात् वीतरागभाव। आहाहा! **आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा...** अपनी वीतरागी पर्याय द्वारा **स्नान कराओ;**... आहाहा!

अब जरा कहते हैं, **बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन...** लौकिक व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प आदि तो लौकिक हैं। आहाहा! बाहर की देह की क्रिया और वाणी, वह तो जड़ है, उसके साथ कुछ नहीं परन्तु तुझमें जो कुछ लौकिक व्यवहार, दया, दान की क्रिया, व्यवहाररत्नत्रय के (विकल्प उठें), वह लौकिक जाल है, भाई! वह लोकोत्तर स्वरूप नहीं है। आहाहा!

बहुत लौकिक आलापजालों से... व्यवहार के कथन बहुत आवें, उनमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। देखो व्यवहार... देखो व्यवहार... व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है, व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है। प्रभु! सुन, भाई! आहाहा! ऐसे बहुत लौकिक... बहुत प्रकार के वीतराग के शास्त्र में भी व्यवहार की बातें आती हैं, उस व्यवहार और बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन... आहाहा! अब (आजकल) यह कहते हैं कि महाव्रत धारण करे उसे अनुभूति होती है। आहाहा! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। इसमें लिखा है। इसमें कहीं है। कहीं है, हों! पढ़ा अवश्य था, चिह्न किया है। कहीं है। 'रत्नत्रय अर्थात् महाव्रत के स्वीकार बिना यदि आत्मध्यान की इच्छा करता है, वह मूर्ख माना जाता है।' अररर! महाव्रत बिना आत्मा का ध्यान करने जाए, अरे! प्रभु! तू क्या कहता है? प्रभु! आहाहा!

अष्टपाहुड़ में तो यहाँ तक कहा है कि प्रभु! समकित का ध्यान कर। भाई! आता है न? श्लोक आता है। आहाहा! अब ऐसे लेख आवे साधु नाम धराकर...। प्रभु! प्रभु! क्या करे? भाई! कहते हुए शर्म आती है। तुझे ऐसा कहना और यह बात बाहर प्रसिद्ध करना, वह भी शर्म आवे ऐसी बात है। आहाहा! 'रत्नत्रय, महाव्रत के स्वीकार बिना जो आत्मध्यान की इच्छा करता है, वह मूर्ख माना जाता है।' आहाहा! वीतराग स्वसंवेदन, वीतराग सम्यग्दर्शन, वीतराग चारित्र, शुद्ध उपयोग, स्वरूपाचरणचारित्र। शुद्ध उपयोग है, वह चारित्र है। निश्चय-विश्चय नहीं। आहाहा! ऐसा बहुत लिखा है। ऐसी पुस्तकें प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु.. प्रभु! जवान है, छोटी उम्र है। शरीर में जवान... बाह्य क्रिया में मस्त है, इसलिए ऐसी मस्ती हो गयी है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन... सम्यग्दृष्टि भी स्वरूप का ध्यान करता है। भले व्रत नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी होने के काल में शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् भी कितने ही काल में किसी को आठ दिन, महीने, दो महीने में शुद्धोपयोग में आता है, ज्ञाता-ज्ञान को भूल जाए, ऐसी दशा चौथे गुणस्थान में भी होती है। अरे! प्रभु! यह महाव्रत धारण करे, उसे इस प्रकार से (होता है), महाव्रत राग है, उसे धारण करे, उसे ऐसा होता है। (ऐसा वे कहते हैं)। आहाहा! अरेरे! क्या कहा?

बहुत लौकिक... लौकिक शब्द से व्यवहार। नियमसार में आता है नहीं? बहुत कथन व्यवहार का किया है। एक श्लोक नहीं? नियमसार में एक श्लोक आता है, व्यवहार के बहुत कथन से क्या है? वह कुछ (नहीं है)। लौकिक आता है। आहाहा! यह नियमसार है न? कहीं आता है। कहाँ? इस ओर है। बहुत कथन से क्या? १३२ पृष्ठ पर है। १३२ पृष्ठ, १२१ वाँ कलश। १२१ वाँ कलश है। सहज ही हाथ आया। अपने ११३ वाँ कलश चलता है न? तो १२१ कलश, पृष्ठ १७२। है? जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (कहनेमात्र) कारण है, उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (अनेक भवों में) सुना है... देखा? है? भाई! सुजानमलजी! हाथ आया या नहीं? क्या हुआ? १७२ पृष्ठ, १२१वाँ कलश।

जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (कहनेमात्र) कारण है,... आहाहा! उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (अनेक भवों में) सुना है और आचरा (आचरण में लिया) है परन्तु अरेरे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को) जीव ने सुना-आचरा नहीं है, नहीं है। है? आहाहा! अकेला अमृत रखा है। आहाहा! यह तो लौकिक कहा न? यह यहाँ लौकिक है। ऐसा व्यवहार अनन्त बार सुना। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत ऐसे व्यवहाररत्नत्रय तो अनन्त बार सुने और अनन्त बार आचरण किये। आहाहा! उससे क्या? लोगों को बहुत कठिन लगता है। शुरुआत ही यहाँ से होती है।

पूर्णानन्द का नाथ, आनन्द और ज्ञान और वीतरागस्वभाव से परिपूर्ण भरपूर तत्त्व, अनादि-अनन्त है, उसे आनन्द की भक्तिपूर्वक उसका स्नान कर। आहाहा! लौकिक जाल रहने दे। यह व्यवहाररत्नत्रय लौकिक जाल है। भव-भव में किया। आ गया न? भव-भव में.. आहाहा! यह किसमें से निकाला। बहुत लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन... वह सब लौकिक है, लोकोत्तर नहीं। व्यवहाररत्नत्रय है, वह लौकिक है। आहाहा! क्योंकि भव-भव में अनन्त बार किया है। आया न? भव-भव में अनन्त बार। आहाहा!

मुमुक्षु : जगपंथ कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जगपंथ है। लौकिक कहो या जगपंथ कहो, व्यवहार कहो,

व्यवहार जाल कहो, वह दुःख का भाव कहो, राग का जाल कहो। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें। नये सुननेवाले को तो ऐसा लगे कि ऐसा कहाँ से (निकाला)? यह तो सब ऐसा। भगवान! यह तो अनादि की बात ऐसी ही है, प्रभु!

तीन लोक के नाथ, भगवान विराजते हैं, वहाँ यह बात हो रही है। यह बात वहाँ से आयी है। तब वे इनकार करते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये, यह बात सत्य नहीं है। अर रर! अब शास्त्र पाठ है। समयसार के, पंचास्तिकाय के जयसेनाचार्य की टीका का पाठ। दर्शनसार में पाठ, अष्टपाहुड़ में पाठ है। दर्शनसार के पाठ में तो यहाँ तक कहा, अरे रे! परमात्मा! कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में जाकर यदि यह बात न लाये होते तो हम मुनिपना कैसे पाते? आहाहा! अब उसे ये इनकार करते हैं। क्या हो? प्रभु! कौन रोके ऐसा है। जीभ चले उसमें... आहाहा! इस जीभ का जीह्वाग्र चले, उसे कौन रोके? आहाहा!

यहाँ तो आचार्य, मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, वे कहते हैं कि **बहुत लौकिक...** व्यवहार की बातें शास्त्र में भी आती है। समयसार की ११वीं गाथा में आता है न? भाई! हस्तावलम्ब जानकर (ऐसा) बहुत आता है, परन्तु उसका फल तो संसार है। समयसार की ११वीं गाथा। भगवान का कहा हुआ व्यवहार पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति यह और वह, यह भी व्यवहार है, राग है, उसका फल संसार है। यह महाव्रत आदि सब संसार है। तब वे कहते हैं कि महाव्रत बिना आत्मध्यान नहीं होता। अर र! प्रभु! प्रभु! तू क्या करता है? आज सवेरे खीमचन्दभाई ने दो पुस्तकें दीं। जरा थोड़ा पढ़ा। बारीक अक्षर है न? आँख में जरा कचास है। बहुत बारीक अक्षर दिखते नहीं। आँखें जलती है। आँख में कुछ फेर है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **बहुत... बहुत... बहुत... बहुत... बहुत...** कहना, लौकिक जाल, ऐसे आलापजालों से क्या प्रयोजन (अर्थात्) अन्य अनेक लौकिक कथनसमूहों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है? उससे तेरा क्या कार्य सधे, ऐसा है? यह व्यवहार के क्रियाकाण्ड के लौकिक से तेरा क्या कार्य सधे, ऐसा है? ऐसा कहते हैं। एक श्लोक (पूरा) हुआ।

श्लोक-११४

(स्रग्धरा)

मुक्त्वानाचार-मुच्चैर्जनन-मृतकरं सर्व-दोष-प्रसङ्गं,
स्थित्वात्मन्यात्मनात्मा निरुपमसहजानन्ददृग्ज्ञप्तिशक्तौ ।
बाह्याचार-प्रमुक्तः शम-जलनिधिवाबिन्दु-सन्दोहपूतः,
सोऽयं पुण्यः पुराणः क्षपितमलकलिर्भाति लोकोद्घसाक्षी ॥११४॥

(हरिगीतिका)

जन्म-मरण की सब दोष प्रसंगों से जो अन्-आचार ।
उसे छोड़कर सहज अनुपम दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुखकार ॥
आत्म में आत्म से स्थित होकर बाह्याचार विमुक्त ।
शमरूपी सागर जलकण से होता है जो परम पवित्र ॥
ऐसा परम पवित्र सनातन मैल क्लेश क्षय करता है ।
क्षण भर में वह तीन लोक का उत्तम साक्षी होता है ॥११४॥

[श्लोकार्थः] जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले अनाचार को अत्यन्त छोड़कर, निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में आत्मा से स्थित होकर, बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ, शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है, ऐसा वह पवित्र पुराण (-सनातन) आत्मा मलरूपी क्लेश का क्षय करके लोक का उत्कृष्ट साक्षी होता है ॥११४॥

श्लोक-११४ पर प्रवचन

११४ (कलश) ।

मुक्त्वानाचार-मुच्चैर्जनन-मृतकरं सर्व-दोष-प्रसङ्गं,
स्थित्वात्मन्यात्मनात्मा निरुपमसहजानन्ददृग्ज्ञप्तिशक्तौ ।

बाह्याचार-प्रमुक्तः शम-जलनिधिवाबिन्दु-सन्दोहपूतः,

सोऽयं पुण्यः पुराणः क्षपितमलकलिर्भाति लोकोद्घसाक्षी ॥११४॥

आहाहा! [श्लोकार्थः —] जो आत्मा... भाई! यह कुछ कथा-वार्ता नहीं, नाथ! तीन लोक के नाथ वीतराग की सभा में इन्द्र बैठे हों, चार ज्ञान के धनी गणधर बैठे हों, वे बातें बापू! कैसी होंगी? आहाहा! सभा में-इस तिर्यच सभा में हजारों सिंह और हजारों बाघ और हजारों नाग बैठे होते हैं। आहाहा! मनुष्य सभा में इन्द्र, गणधर... आहाहा! उनकी सभा में भगवान की वाणी ॐध्वनि खिरे। 'ॐध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारै।' आहाहा! वह भगवान का मार्ग-वाणी कैसी होगी? भाई! समझ में आया?

अनन्त-अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी समझा नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, ऐसी क्षमा भी परलक्ष्यी की, परन्तु एक क्षण भी आत्मा आनन्द का नाथ सागर है, उसकी नजर इसने नहीं की। उसका इसे विश्वास नहीं आया। मैं ऐसा? आहाहा! एक बीड़ी बिना चले नहीं। एक बार में रोटी (मिले), जहाँ दो बार का एक बार हो जाए तो ठीक न पड़े। वहाँ इसे ऐसा आत्मा, अनाहारी आत्मा... आहाहा! आहार बिना टिकता आत्मा, राग बिना टिकता आत्मा, लौकिक व्यवहाररत्नत्रय से रहित टिकता आत्मा (यह कैसे जँचे?) आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले... दोष का संग। शुभ और अशुभराग का संग, उसका प्रसंग.. आहाहा! उसका सम्बन्ध, उसका सहवास, उसका जुड़ान। भगवान अमृत का सागर, उसे रागरूपी दुःख के साथ जुड़ान। आहाहा! अमृत का सागर पूर्ण स्वरूप भरपूर, निर्भर-भर से भी निर्भर। गाड़ी के भार को भर कहते हैं न? पूरी गाड़ी भरे, उसे भर कहते हैं। यह तो निर्भर। इससे भी नि-उपसर्ग करके (निर्भर कहा है)। आहाहा! भरचक भगवान अन्दर आनन्द और शान्ति से भरपूर पूर्ण है। ऐसे आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले अनाचार को अत्यन्त छोड़कर,... आहाहा! ये सब अनाचार हैं। शुभरागादि क्रिया भी अनाचार है। आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों के प्रसंगवाले... सहवासवाला, ऐसा जो अनाचार है (उसे) अत्यन्त छोड़कर,... आहाहा! उस राग के परिणाम को

अत्यन्त छोड़कर। आहाहा! वीतरागस्वभावी भगवान को अत्यन्त प्रेम और भक्ति से अन्दर देख। आनन्द और शान्ति की भक्ति से उसे देख। आहाहा! ऐसे जन्म-मरण के करनेवाले, सर्व दोषों... इसमें सर्व दोष लिए हैं न? राग का कणमात्र भी, गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी दोष है। आहाहा! वह भगवान आत्मा के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! कहो, यशपालजी! यह लोग एकान्त कहते हैं न फिर सोनगढ़ का! नहीं कहते? एकान्त है निश्चयाभास है, मिथ्यात्व है। प्रभु! तुझे कहने का हक है, बापू! आहाहा! तेरी दशा में तू कह। तुझे-प्रभु को शोभा नहीं देता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं सर्व दोषों के प्रसंगवाले... सहवास। उनका सहवास, उनका संग ही छोड़। उस शुभराग का संग छोड़। आहाहा! शुभराग का सहवास, सम्बन्ध छोड़।

मुमुक्षु : वर्षा (बादल) गरजी...

पूज्य गुरुदेवश्री : गरजी न? गरजी। आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले,... अर्थात् भव के करनेवाले। सर्व दोषों के... शुभ और अशुभभाव, वह संसार है, वह दोष है। आहाहा! उसके प्रसंग को-सहवास को छोड़कर। आहाहा! उसका संग, सम्बन्ध और सहवास छोड़कर, उसका जुड़ान छोड़कर। आहाहा! त्रिलोक के नाथ आनन्द के सागर में जुड़ान करके राग का जुड़ान छोड़ दे। आहाहा! प्रसंगवाले अनाचार को अत्यन्त छोड़कर,... वापस अकेला छोड़कर, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर है न! आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत के सागर के स्वाद से भरपूर प्रभु पूर्ण है न! आहाहा! उसका आश्रय लेकर इस राग का संग छोड़ दे। असंग चीज़ का संग कर और संग जो राग है, उसे छोड़ दे। आहाहा!

निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में... अब छोड़कर भी जाना कहाँ? कि निरुपम... जिसकी कोई उपमा नहीं। आहाहा! ऐसा सहज आनन्द... भगवान सहजात्म आनन्द, जिसे कोई उपमा नहीं। उपमा क्या होगी? इन्द्र के सुखों से आत्मा का सुख अनन्तगुना, ऐसा है? इन्द्र का सुख तो जहर है। आहाहा! उसे आत्मा के सुख के साथ मिलान करे कि अनन्तगुना सुख है, यह बात है ही नहीं। आहाहा! संसारी जो सुख कल्पना है, वह तो जहर है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं निरुपम... जिसे कोई उपमा नहीं। उसकी उपमा उसे। ऐसा

स्वाभाविक आनन्द, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक वीर्यवाला आत्मा है। ऐसा आत्मा है, कहते हैं। आहाहा! वह रागवाला, विकारवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में आत्मा से... आत्मा में आत्मा से। आत्मा में राग से नहीं परन्तु आत्मा से, उसके स्वभाव से। आहाहा! आत्मा में आत्मा से... लो, 'से' लिया। व्यवहार से, निमित्त से-ऐसा नहीं लिया। आहाहा! ऐसे आत्मा से स्थित होकर,... आत्मा में आत्मा से अर्थात् वीतराग पर्याय से। आहाहा! वीतरागमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसे अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागी पर्याय से... आहाहा! स्थित होकर,... उसमें स्थित होकर। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव में स्थित होकर। आहाहा! उसे (अनाचार को) छोड़कर और इसमें (आत्मा में) स्थिर होकर। अनाचार, रागादि को छोड़कर-अत्यन्त छोड़कर और सहज आत्मा में स्थित होकर।

बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ,... आहाहा! बाह्य आचार जितना विकल्प का है, उससे मुक्त होता हुआ,... ओहोहो! शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है,... पर्याय लेनी है न? समतारूपी समुद्र के वीतरागरूपी पर्याय में शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं... निर्मल वीतरागी पर्याय के समूह से... आत्मा पवित्र होता है,... आहाहा! अपने स्वभाव से ही आत्मा पवित्र होता है। अलिंगग्रहण में आता है न? छठा बोल। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। राग से, निमित्त से, व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा स्वरूप नहीं है। आहाहा!

बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ,... आहाहा! यह उसमें कहा है न? समयसार में (कहा है), द्रव्यलिंग को छोड़कर। पश्चात् अर्थ किया कि द्रव्यलिंग को छोड़कर अर्थात् व्रत को छोड़कर, अव्रत में जाना-ऐसा नहीं है। उन व्रतादि को छोड़कर अन्दर में जाना, ऐसा कहना है। तू मानो व्रत छोड़कर अव्रत में जाना, ऐसा नहीं है। आहाहा!

शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है,... उससे प्रभु पर्याय में पवित्र होता है। पर्याय में समतारूपी जल से आत्मा पवित्र होता है। वह राग के भाव से आत्मा पवित्र नहीं होता। आहाहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, परन्तु उस भाव से आत्मा पवित्र नहीं होता। आहाहा! क्योंकि वह राग है।

यहाँ कहते हैं कि शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं... यह भगवान तो समता का पूरा

समुद्र है। समता का सागर-समुद्र है। परन्तु उसमें से पर्याय में जलबिन्दुओं के समूह से... शुद्धपरिणति को प्रगट करके। आहाहा! रागादि को छोड़कर, उससे पवित्र होता है,... बाह्य कोई व्यवहार क्रियाकाण्ड से आत्मा, व्यवहाररत्नत्रय से आत्मा पवित्र नहीं होता। आहाहा! अब यह सबको कहे, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। जयसेनाचार्य की टीका में आता है, वह सर्वत्र डालते हैं। यह (वहाँ) तो ज्ञान कराते हैं। जिसने पर से भिन्न किया और साधन निश्चय हुआ, तब इस व्यवहार को व्यवहार का आरोप देकर व्यवहार साधन कहा है। निमित्त का ज्ञान कराया है परन्तु बहुत कठिन बात है, भाई। आहाहा! शमरूपी समुद्र के... यह स्वयं भगवान, इसके जलबिन्दुओं के समूह से... इसकी पर्याय में वीतरागभाव से। भव का नाश करके केवलज्ञान और केवलदर्शन, उत्कृष्ट साक्षी होता है। केवली होता है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा-८६

उम्मगं परिचत्ता जिणमगो जो दु कुणदि थिरभावं ।
 सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८६॥
 उन्मार्गं परित्यज्य जिनमार्गे यस्तु करोति स्थिरभावम् ।
 स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात् ॥८६॥

अत्र उन्मार्गपरित्यागः सर्वज्ञवीतरागमार्गस्वीकारश्चोक्तः । यस्तु शङ्काकाङ्क्षा-
 विचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशन्सासन्तवमलकलङ्कपङ्कनिर्मुक्तः शुद्धनिश्चयसदृष्टिः बुद्धादिप्रणीत-
 मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रात्मकं मार्गाभासमुन्मार्गं परित्यज्य व्यवहारेण महादेवाधिदेवपरमेश्वरसर्वज्ञ-
 वीतरागमार्गे पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिपञ्चेन्द्रियनिरोधषडावश्यकाद्यष्टाविंशतिमूल-
 गुणात्मके स्थिरपरिणामं करोति, शुद्धनिश्चयनयेन सहजबोधादिशुद्धगुणालङ्कृते सहजपरम-
 चित्सामान्यविशेषभासिनि निजपरमात्मद्रव्ये स्थिरभावं शुद्धचारित्रमयं करोति, स मुनिर्निश्चय-
 प्रतिक्रमणस्वरूप इत्युच्यते, यस्मान्निश्चयप्रतिक्रमणं परमतत्त्वगतं तत एव स तपोधनः सदा
 शुद्ध इति ।

उन्मार्ग का कर परित्यजन जिनमार्ग में स्थिरता करे ।

प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८६॥

अन्वयार्थः—[यः तु] जो (जीव) [उन्मार्ग] उन्मार्ग का [परित्यज्य] परित्याग
 करके [जिनमार्गे] जिनमार्ग में [स्थिरभावम्] स्थिरभाव [करोति] करता है, [सः]
 वह (जीव) [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है, [यस्मात्] कारण
 कि वह [प्रतिक्रमणमयः भवेत्] प्रतिक्रमणमय है ।

टीका:—यहाँ उन्मार्ग के परित्याग और सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार का
 वर्णन किया गया है ।

जो शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और *अन्यदृष्टिसंस्तवरूप मलकलंकपंक से विमुक्त (-मलकलंकरूपी कीचड़ से रहित) शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव) बुद्धादिप्रणीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्गाभासरूप उन्मार्ग का परित्याग करके, व्यवहार से पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक इत्यादि अट्टाईस मूलगुणस्वरूप महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम करता है, और शुद्धनिश्चयनय से सहजज्ञानादि शुद्ध गुणों से अलंकृत, सहज परम चैतन्यसामान्य तथा (सहज परम) चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निज परमात्मद्रव्य में शुद्धचारित्रमय स्थिरभाव करता है, (अर्थात्) जो शुद्धनिश्चय-सम्यग्दृष्टि जीव व्यवहार से अट्टाईस मूलगुणात्मक मार्ग में निश्चय से शुद्ध गुणों से शोभित दर्शनज्ञानात्मक परमात्मद्रव्य में स्थिरभाव करता है, वह मुनि निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, कारण कि उसे परमतत्त्वगत (-परमात्मतत्त्व के साथ सम्बन्धवाला) निश्चयप्रतिक्रमण है, इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है।

इसी प्रकार श्री प्रवचनसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत तत्त्वदीपिका नामक) टीका में (१५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

है पुराण पुरुषों द्वारा जो सावधान होकर सेवित।
उत्सर्ग और अपवाद मार्ग से विविध भूमिकाओं में व्याप्त ॥
चरण प्राप्त करके फिर यतिगण क्रमशः अतुल निवृत्ति करो।
चित् सामान्य-विशेष प्रकाशमयी निज में ही लीन रहो ॥

‘ [श्लोकार्थः —] इस प्रकार विशिष्ट १आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चरण (-चारित्र) उसे यति प्राप्त करके, क्रमशः अतुल निवृत्ति करके, चैतन्य सामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निजद्रव्य में सर्वतः स्थिति करो।’

* अन्यदृष्टिसंस्तव=(१) मिथ्यादृष्टि का परिचय; (२) मिथ्यादृष्टि की स्तुति। (मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना, वह अन्यदृष्टिप्रशंसा है और मिथ्यादृष्टि की महिमा के वचन बोलना, वह अन्यदृष्टिसंस्तव है।)

१. आदर=सावधानी; प्रयत्न; बहुमान।

प्रवचन-८५, गाथा-८६, सोमवार, कार्तिक कृष्ण १५, दिनांक १९-११-१९७९

नियमसार, ८६ गाथा

उम्मगं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं ।

सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८६॥

टीका:— यहाँ उन्मार्ग के परित्याग... प्रतिक्रमण कहते हैं। सत्य प्रतिक्रमण उसे कहते हैं कि जिनमार्ग के अतिरिक्त जितने अन्यमार्ग हैं, उनका उसे त्याग हो। किसी भी अन्यमति के मार्ग की प्रशंसा या पक्ष उस ओर का हो, वहाँ तक वह उन्मार्ग है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा पाठ है न? 'उम्मगं परिचत्ता' - उन्मार्ग के परित्याग और सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार का वर्णन किया गया है। निश्चय से तो कुन्दकुन्दाचार्य, अष्टपाहुड़ में ऐसा कहते हैं कि 'णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया' (सूत्रपाहुड़, गाथा २३), बाह्य में नग्नपना और अभ्यन्तर में विकल्परहित नग्नदशा, आनन्द की दशा, वह मार्ग है। उससे अन्य उन्मार्ग है। 'णग्गो विमोक्खमग्गो' नग्नपने में मोक्षमार्ग है। अकेला बाह्य नग्न नहीं। 'सेसा उम्मग्गया' इसके अलावा जितने मार्ग (है, वे) सब उन्मार्ग हैं।

उम्मगं परिचत्ता पहला शब्द यह है। उन्मार्ग के परित्याग... कठिन पड़े ऐसा है। जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्यमत हैं, वे सब एकान्त मत मिथ्यादृष्टि हैं। जैन में भी यह स्थानकवासी और श्वेताम्बर है, वह भी उन्मार्ग है; वह जैनमार्ग नहीं। कठिन लगता है।

कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान (सीमन्धर) के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। सम्यग्दर्शनसहित चारित्र था, परन्तु विशेष निर्मलता हुई, आकर इन शास्त्रों की रचना की और यह भी शास्त्र (नियमसार में) कहते हैं कि मैंने मेरे लिए रचा है। यह नियमसार। आहाहा! समयसार में 'वंदित्तु सव्व सिद्धे' है न? 'वोच्छामि समयपाहुड़'-इसका अर्थ ऐसा किया उसने कि कुन्दकुन्दाचार्य तो वक्ता हैं, कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु वक्ता और कर्ता स्वयं हैं। मैं निज वैभव से कहूँगा - ऐसा आया न? पहले आया 'वोच्छामि' (अर्थात्) कहूँगा। फिर कहा, निज वैभव से कहूँगा। मेरे निज वैभव से मैं समयसार कहूँगा। अकेले वक्ता ही हैं और कर्ता नहीं - ऐसा नहीं है। उसमें - अष्टपाहुड़ में ऐसा

लिखा है। वे वक्ता थे, कर्ता नहीं। अरे! प्रभु! क्या करता है? और यह कहते हैं कि मैंने मेरे आत्मा के लिये यह नियमसार बनाया है। मोक्षमार्ग के कर्ता और वक्ता दोनों थे। समझ में आया? आहाहा! मात्र वक्ता ही हैं, और कर्ता नहीं – ऐसा नहीं है।

इसलिए यहाँ आया कि उन्मार्ग के परित्याग और सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार का वर्णन किया गया है।

जो शंका,... कुछ भी शंका वीतरागमार्ग, निर्ग्रन्थमार्ग पूर्ण वीतरागस्वभावीमार्ग में कुछ शंका और कुछ अन्यत्र भी होगा, कुछ होगा – ऐसी शंका जिसे न हो, उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! अब अभी सब एक होओ... एक होओ... एक होओ.. ऐसा कहते हैं। यहाँ इनकार करते हैं। उन्मार्ग को छोड़ दे। अभी यह चला है – सब एक होओ.. एक होओ.. सबका धर्म एक है। आहाहा! कठिन काम, भाई! वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने कहा, ऐसा कहा न? सर्वज्ञ वीतराग-मार्ग के स्वीकार... आहाहा! और वह मैं मेरे लिये यह कहता हूँ। मेरे लिये यह बनाया है, ऐसा कहते हैं। इसलिए मार्ग का कर्ता भी मैं हूँ और वक्ता भी मैं हूँ। ऐसा हुआ न, भाई? तो इसमें इनकार करते हैं। वह लेख आये थे न उसमें? अरे रे! क्या हो?

शंका... कुछ भी गहरे-गहरे वीतराग सर्वज्ञ निर्विकल्पस्वरूप, यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप रमणता, यह चारित्र, इसमें से कुछ भी शंका हो कि दूसरे में कुछ-कुछ तो होगा। ऐसे सब बड़े राजा मानते हैं, सेठ मानते हैं, अरबोंपति मानते हैं, जिनकी सभा में लाखों लोग इकट्ठे होते हैं, तो उसमें कुछ होगा या नहीं?

मुमुक्षु : सच्चा न हो परन्तु कुछ होता तो अवश्य है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी सच्चा नहीं है। आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है। किसी व्यक्ति के लिए नहीं। यह तो प्रभु! तेरा सत्स्वरूप है। वीतरागस्वरूप ही तेरा है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार से राग से, निमित्त से, भेद से, कुछ भी धर्म मनाया हो, वह सब उन्मार्ग है। आहाहा! कहो, पहली यह बात करते हैं। उसे प्रतिक्रमण होता है, जिसे उन्मार्ग का एक भी अंश न हो और त्याग किया हो और यथार्थ वीतरागमार्ग में कहा हुआ जो आत्मा, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो, उसे सच्चा प्रतिक्रमण और सच्चा धर्म कहने में आता है।

शंका, कांक्षा,... कुछ भी इच्छा रहे। अन्यमत में कुछ भी इच्छा, कुछ तो होगा, कुछ तो थोड़ा-बहुत होगा। वीतराग ने कहा है, वह सब पूरा कह सके नहीं, एक व्यक्ति ऐसा कहता है, इसलिए कुछ दूसरा भी होगा। यह कहा है, इसके अतिरिक्त दूसरा भी कुछ होगा। यह कौन कहते हैं? जिनेन्द्र! 'जिनेन्द्र' है न? पानीपत का वर्णी। ऐसा कहते हैं, जो वस्तु है, वह पूरी कही नहीं गयी; इसलिए वीतराग के कहे हुए के अतिरिक्त का कुछ दूसरा भी मार्ग होगा। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करे?

यहाँ तो कहते हैं, जरा भी अन्य के मार्ग का विपरीत अंश हो, उसे छोड़ दे। आहाहा! हम इतने वर्ष से इस सम्प्रदाय में पोसाये, इतने साधुओं को माना और यह सब माना। भले चाहे जो माना हो, छोड़ दे। उन्मार्ग है, वह छोड़ दे। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने कहे हुए इस मार्ग को अंगीकार कर, तब सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है। **कांक्षा...** इच्छा नहीं होती। आहाहा! आत्मा के स्वभाव की भावना के अतिरिक्त, वीतरागभाव के अतिरिक्त दूसरी कोई इच्छा के विकल्प का आदर नहीं है।

विचिकित्सा,... आहाहा! पहले में शंका अर्थात् राग नहीं, कांक्षा अर्थात् द्वेष नहीं, शंका अर्थात् शंका नहीं, कांक्षा अर्थात् राग नहीं। **विचिकित्सा,...** अर्थात् द्वेष का अंश नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग अकेला है। वीतराग के मार्ग में कड़क बात लगे, कठिन बात लगे परन्तु उस पर द्वेष नहीं, ग्लानि नहीं, ऐसा कहते हैं। एक समय में पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त ज्ञान, आनन्द, शान्ति से भरपूर; जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं, ऐसा परमात्मा स्वयं है। उसमें जरा भी अनादर, ग्लानि करना नहीं। आहाहा! ऐसा सब स्वरूप कहाँ होगा? शरीर में तो कुछ दिखता नहीं। आँखें बन्द करे तो अन्धकार दिखता है परन्तु वह अन्धकार दिखता है, उसे देखनेवाला कौन है? किसके अस्तित्व में वह अन्धकार दिखता है? यह सब दिखता है, वह ज्ञान की पर्याय दिखती है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान की पर्याय का स्वरूप ऐसा है कि स्व-पर को जाने। वह पर को जाने, इसलिए पर से जानती है और पर है, इसलिए जानती है - ऐसा भी नहीं है। ऐसा वीतरागमार्ग है, उसके प्रति ग्लानि करना नहीं। आहाहा! कहीं अन्दर में गहरे से भी अनादर करना नहीं। यह क्या कहते हैं? इतना आत्मा! निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव, एक अंगुल के असंख्य भाग में, निगोद का एक राई जितना टुकड़ा लो, (उसमें) असंख्य शरीर और एक

शरीर में अनन्त जीव और एक जीव परिपूर्ण आनन्द का कन्द, शक्ति का सागर आत्मा है। यशपालजी! आहाहा! पूर्ण स्वरूप क्षेत्र से बड़ा नहीं, इसलिए भाव से ऐसा बड़ा कैसे होगा? ऐसी ग्लानि करना नहीं, प्रभु! यह विचिकित्सा ऐसे करना नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अन्यदृष्टिप्रशंसा... चौथा बोल है न? उसका नीचे अर्थ किया है। अन्यदृष्टिसंस्तव=(१) मिथ्यादृष्टि का परिचय; (२) मिथ्यादृष्टि की स्तुति। (मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना वह अन्यदृष्टिप्रशंसा है...) चौथा बोल है? चौथा बोल है न? जिसकी श्रद्धा विपरीत है, वह अंश भी कहीं... उसकी स्तुति, उसका परिचय, उसका संग, उसकी सोबत में रहना, उस सोबत में रहने से ठीक अपने को लाभ मिलेगा, यह मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना, वह अन्यदृष्टिप्रशंसा है। वह अन्यदृष्टि की प्रशंसा है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! आहाहा! अब यह सब इकट्ठा डालते हैं। आता है न जगत... क्या कहलाता है? पत्र। जगत-जगत। जैनजगत? पत्र। उसमें सब डालते हैं। सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य, सर्वज्ञ... अमुक मुनि ऐसे स्थानकवासी में थे। दिगम्बर में ऐसे मुनि... सबका इकट्ठा खिचड़ा...

मुमुक्षु : जगत.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला जगत? है। आया था। जैनजगत। जैनजगत। जैनजगत अर्थात् तीनों का सब। कठिन पड़े, भाई! आहाहा! ऐसे-ऐसे बड़े हेमचन्द्राचार्य जैसे हो गये। यशोविजयजी जैसे हो गये। हरिभद्राचार्य हो गये। चाहे जो हो गये।

मुमुक्षु : यशोविजयजी स्वयं कहते थे कि हम साधु ही नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो स्वयं बेचारे बाद में कह गये थे कि हम साधु नहीं हैं, हम तो संघवीजी हैं। बाहर निकलने नहीं दिया। यह बहुत बुद्धिवाला व्यक्ति और विचारक बहुत। उन्हें लगा कि साधुपना अपना यह नहीं है, बापू! साधुपना अलग बात है। बाहर बात प्रसिद्ध की, वहाँ लोगों ने बन्द किया कि बाहर निकलना नहीं। यहीं के यहीं रहो। ऐसा सुना है। लेख में आया, ऐसा सुना है। आहाहा! कठिन बात, भाई! किसी की निन्दा की बात नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

सर्वज्ञदेव वीतराग, ऐसा कहा न? सर्वज्ञदेव वीतराग ने जो मार्ग वर्णन किया, उस

मार्ग का स्वीकार और उसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पना से (मार्ग कहा, उसका अस्वीकार)। सर्वज्ञ हैं, उन्होंने तीन काल, तीन लोक देखे हैं। उन्होंने जो कहा है, वह यथार्थ वस्तु है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त कल्पित बातें करने में मोक्षमार्ग मनवाया, उस मार्ग का स्वीकार छोड़ दे। आहाहा! तब इसकी पहिचान करनी पड़ेगी न, कि विपरीत कौन है? अविपरीत कौन है? सत्य क्या है? असत्य क्या है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा!

किसी के प्रति ग्लानि नहीं। किसी के प्रति बैर-विरोध नहीं। वह भगवान है। पर्याय में भूला है। पर्याय छोड़ेगा, तो भगवान होगा परन्तु जो है, उस अनुसार तो इसे जानना चाहिए। आहाहा! नेमचन्द्रभाई तो ऐसा कहते थे, भाई! कि यह विद्यासागर कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में अनुभूति नहीं होती, अनुभूति मुनि को होती है, बस! आहाहा! जो सम्यग्दर्शन अनन्त काल में नहीं हुआ (ऐसा) अपूर्व, अपूर्व आनन्द का स्वाद, अनुभूति का स्वाद... आहाहा! पूरा परिपूर्ण परमात्मा की अन्दर भानसहित की प्रतीति... आहाहा! लोग बाह्य त्याग की महिमा में रुककर वास्तविक तत्त्व की महिमा छोड़ देते हैं। बाह्य त्याग देखे, नग्नपना, वस्त्र छोड़े, यह छोड़ा, यह पकड़ा। आहाहा! कठिन बात है।

यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं ने स्वयं के लिए लिखा है। जगत को सुनाते हैं। मार्ग के कर्ता भी हैं और मार्ग के वक्ता भी हैं। अकेले वक्ता हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! टीका में तो बहुत जगह आता है न, हम ऐसा अनुभव करते हैं, हम जानते हैं। सर्वविशुद्ध... में (आता है), हम जानते हैं कि ऐसा आत्मा है। आहाहा! गाथायें हैं न सर्वविशुद्ध की? उनमें आया है। हम जानते हैं। आहाहा! हम अनुभव से कहते हैं। अनुभव से-हम अनुभव में हैं, उसमें से कहते हैं। आहाहा! स्वरूप के कर्ता भी हैं और वक्ता भी हैं। उन्हें मात्र वक्ता कहना, वह अनादर है। समझ में आया? आहाहा! थोड़ा अन्तर, अब कहाँ अन्तर है। बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

यह यहाँ कहते हैं **अन्यदृष्टिप्रशंसा...** बहुत विद्वत्ता हो, लाखों लोग सभा में आते हों, इसलिए उसमें कुछ तो होगा या नहीं? ऐसे अन्यदृष्टि की प्रशंसा छोड़ दे। आहाहा! परन्तु अन्यदृष्टि कहना किसे, यह खबर बिना छोड़े क्या? आहाहा! **अन्यदृष्टिप्रशंसा और...**

मिथ्यादृष्टि की महिमा के वचन बोलना। आहाहा! यह तो भाई! महाविद्वान है। लाखों लोगों को उपदेश देता है। लाखों लोगों को जैनधर्म में झुकाता है। दृष्टि मिथ्यात्व है और उसकी ऐसी महिमा करना नहीं, कहते हैं। आहाहा! तब तो सब ऐसा कहते हैं। प्रत्येक मार्ग ऐसा कहता है।

मुमुक्षु : हमारा मार्ग सच्चा, कोई ऐसा कहे कि हमारा मार्ग मिथ्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई ऐसा कहे कि हमारा मार्ग मिथ्या है ? सच्चा-झूठा कौन है, इसकी परीक्षा करनी पड़ेगी न ? बापू! आहा! कपड़ा लेने जाए तो भी जाँच करता है। कपड़े में कोई खजूरा नहीं, गाँठ पड़ी हुई हो न खजूरा ? सरीखा बुना हुआ नहीं। ऐसे वस्त्र होता है न ? गाँठ पड़ जाए न ? खजूरा होवे तो। खोट होवे तो वह न ले। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टि...** की महिमा, वचन बोलना, वह **अन्यदृष्टिसंस्तवरूप...** है। आहाहा! कठिन काम। यह तो अलग-थलग हो जाए ऐसा है। लोग कहते हैं न कि अमिलनसार है। बापू! मार्ग तो यह है। प्रभु! तेरे हित का, तेरे कल्याण का पन्थ यह है न, भाई! आहाहा! सर्व जीव इस पन्थ में आओ, इस पन्थ में आओ। कल्याण करो, प्रभु! तुम्हारा कल्याण करो। आहाहा! **अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव...** स्तुति। स्तुति अर्थात् महिमा। ऐसे **मलकलंकपंक से विमुक्त...** ऐसे **मलकलंकपंक...** मलकलंकपंक-कादव। आहाहा! ऐसे **मलकलंकपंक से विमुक्त (-मलकलंकरूपी कीचड़ से रहित)...** आहाहा!

नियमसार है। अन्तिम गाथा में स्वयं कहते हैं, मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। आहाहा! 'णियभावणाणिमित्तं' कुन्दकुन्दाचार्य जैसे... आहाहा! जो तीसरे नम्बर में आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। वे ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरे लिए बनाया है, बापू! आहाहा! यह तो कर्म की पनौती उतर जाए, उसकी बात है और आत्मा की पवित्रता प्रगट हो, उसकी बात है। लोग कहते हैं न कि यह कर्म की पनौती इसे लगी है, परन्तु वह धूल भी नहीं, सुन न! तूने उल्टी दृष्टि लगायी है, वह पनौती है। आहाहा!

अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तवरूप... महिमा करना और उसकी प्रशंसा करना, वह सब छोड़ दे। आहाहा! चाहे जैसा विद्वान हो, लाखों लोग इकट्ठे होते हों।

जवाहरलालजी यहाँ भावनगर आये थे। जवाहरलाल (नेहरू) गुजर गये न? गाँधीजी के बाद थे जवाहरलाल। लाखों लोग इकट्ठे होते थे। होवे न? लौकिक बात, सब धर्म समान... सब धर्म समान... ऐसी बातें करे तो सबको बहुत पसन्द आवे। आहाहा!

यहाँ तो एक सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कोई भी मार्ग सत्य है नहीं। उन्मार्ग है। आहाहा! और वह भी दिगम्बर सम्प्रदाय में भी वाड़ा में बँधा हुआ है, उसमें वास्तविक भूल हो, वह भी सत्य नहीं है। आहाहा! कहो, मोहनभाई! तुम तो बहुत वर्ष से आये हो। (संवत्) १९८० के वर्ष से। बोटाद नहीं? १९८०। कितने वर्ष हुए? २० और ३६ = ५६। उसमें आये थे न? उपाश्रय के साथ। ८० के साल में। आहाहा! भाई! मार्ग कोई अलग प्रकार है। मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

पाँच प्रकार का जो मैल है, उसे छोड़ दे। और शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव)... आहाहा! शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव)... आहाहा! यह कहीं छठे-सातवें गुणस्थानवाले की बात नहीं है। चौथे गुणस्थानवाला शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? यह विद्यासागर ऐसा कहते हैं कि चौथे (गुणस्थान) में अनुभूति नहीं होती। मुनि को ही होती है। भाई कहते थे। नेमचन्दभाई के साथ बहुत चर्चा हुई थी परन्तु बाहर त्याग, जवान व्यक्ति है। शरीर कुछ दिखता भी है। आचार्यपद है। लोग मानते हैं। क्या हो? प्रभु! आहाहा!

शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव) बुद्धादिप्रणीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक... बुद्ध अर्थात् बौद्धमत है न? क्षणिकवाद? वे आदि सब पन्थ। बुद्धादिप्रणीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्गाभासरूप... मार्ग नहीं परन्तु मार्गाभास। आहाहा! मार्गाभासरूप... मार्गाभास अर्थात् मार्ग नहीं परन्तु मार्ग जैसा दिखायी दे। आहाहा! नग्न मुनि हो, अकेला रहता हो, अकेला आवे, अकेला जावे, जंगल में रहे। ऐसा दिखायी दे कि... आहाहा! परन्तु दृष्टि विपरीत। क्या है, इसकी जगत को खबर नहीं है। आहाहा! आता है न? वनवास में रहते हैं। आया था। बहुत बार वनवास में अनशन आदि किये, वनवास रहा, उससे क्या हुआ? वनवास में अकेला रहा, किसी की सहायता बिना... आहाहा! छह-छह महीने तक आहार न ले। वह चीज़ क्या है? प्रभु!

निर्विकल्प आनन्द का सागर पूर्णानन्द प्रभु, पर्याय भी जहाँ ऊपर तैरती है—ऐसा जो द्रव्यस्वभाव.. आहाहा! अकेला वीतराग और निर्मल आनन्द से भरपूर तत्त्व पूर्ण.. पूर्ण..

पूर्ण.. पूर्ण.. अभेद है, ऐसी जो दृष्टि है... आहाहा! वह शुद्धनिश्चयदृष्टि है। वह शुद्धनिश्चय-सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! अब इसमें अधिक लोग प्रसन्न हों, ऐसा कहाँ है? अधिक लोग इकट्ठे हों, प्रसन्न हों (ऐसा कहाँ है)। आहाहा!

बुद्धादिप्रणीत... अन्यमति का कहा हुआ। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्गाभासरूप उन्मार्ग का परित्याग करके,... वह सब उन्मार्ग है। आहाहा! तुम्हारे मक्षी में तो भारी गड़बड़ उठी थी। फूलचन्दजी! मक्षी में भी यह मार्ग और यह मार्ग और यह मार्ग। यहाँ तक श्वेताम्बर दर्शन करे, पश्चात् दिगम्बर दर्शन करे। इस दरवाजे से ऐसे निकलना... अर र र! प्रभु! प्रभु! प्रभु! क्या हो? सर्वज्ञदेव का विरह पड़ा, समकिति देव आकर मदद करे, उसका विरह पड़ा। आहाहा! यह मार्ग रह गया। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ प्रभु में कुछ भी राग से लाभ होता है, निमित्त से लाभ होता है, आत्मा अल्पज्ञ ही है, सर्व व्यापक है-आदि अनेक विपरीतताओं को छोड़ दे। आहाहा!

उन्मार्ग का परित्याग करके,... परित्याग कर कहा है। देखा? पाठ में है न? 'उम्मगं परिचत्ता' मात्र 'चत्ता' नहीं। मात्र उन्मार्ग को छोड़ना, ऐसा नहीं। 'उम्मगं परिचत्ता' समस्त प्रकार से छोड़कर। आहाहा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। परि है (अर्थात्) समस्त प्रकार से छोड़ दे। भाई! ऐसा अवसर कब मिलेगा? प्रभु! मुश्किल से समय मिला है न! दुनिया को नहीं पहुँचाए। दुनिया तो अनेक प्रकार से बोलेगी, बाँधेगी परन्तु यह मार्ग है, इसमें तू पहुँच सकेगा। क्योंकि तेरा स्वरूप ही यह है। आहाहा!

यह सैंतालीस शक्ति का वर्णन, भाई! अमृतचन्द्राचार्य में आता है। जयसेनाचार्य में नहीं आता। सैंतालीस नय, जयसेनाचार्य में नहीं आते। अव्यक्त का भी जैसा वर्णन अमृतचन्द्राचार्य ने किया है, वैसा अव्यक्त का भी वर्णन उसमें-जयसेनाचार्य की टीका में नहीं है। भाई! यह अभी देखता था। अव्यक्त के छह बोल का वर्णन जैसा अमृतचन्द्राचार्य ने किया है, वैसा वर्णन नहीं है। प्रवचनसार में सैंतालीस नय कहे हैं, वह नहीं। सैंतालीस शक्तियों का वर्णन किया है... आहाहा! वह भी नहीं। अमृतचन्द्राचार्य अर्थात्... आहाहा! अमर.. अमर बना दिया। सैंतालीस शक्तियों में कितना वर्णन! इत्यादि अनेक शक्तियाँ वापस। आहाहा! और सैंतालीस नय। ऐसे अनन्त नय वापस। ऐसा है न? जितने वचनपंथ उतने नयपंथ। आता है न? आहाहा! ऐसा वर्णन।

प्रवचनसार में तो ऐसा कहा, प्रभु! यह मार्ग कहता हूँ न, तू आज ही अंगीकार करना, हों! वायदा करना नहीं, प्रभु! यदि तुझे रुचता हो, रुचा हो, उसे वायदा क्या? आहाहा! सुहाता हो और रुचा हो, उसे वायदा किसका? आहाहा! देखो! उनके वचन तो देखो! कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करनेवाले। अब उन्हें इसमें (कुछ लोग) काष्ठासंगी सिद्ध करते हैं। अरर र! जैनधर्म की परम्परा में वे नहीं हैं, ऐसा लिखा है। परम्परा में जयसेनाचार्य हैं। आहाहा! अरे प्रभु! प्रभु! बाहर त्याग, नग्नपना, जवान अवस्था, आचार्य (हो)। क्या हो? प्रभु!

उन्मार्ग का परित्याग करके, व्यवहार से पाँच महाव्रत,... अब कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार दोनों जो वीतराग ने कहा हुआ है, उसमें आ जा—ऐसा कहते हैं। दूसरे में तो व्यवहार भी नहीं है। निश्चय तो है ही नहीं परन्तु दूसरे का व्यवहार भी नहीं है। वीतराग ने जो मुनि के पंच महाव्रत कहे, पंच महाव्रत। वे पाँच महाव्रत, पाँच समिति,... व्यवहार। समिति, भगवान ने जो पाँच समिति कही। तीन गुप्ति, पाँच इन्द्रियों का निरोध,... आहाहा! व्यवहार के अट्टाईस मूलगुण। ये वीतरागमार्ग में निश्चयसहित व्यवहार है। अन्यत्र कहीं ऐसे है नहीं। आहाहा!

पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक... सामायिक चऊविंशतु वन्दन, प्रतिक्रमण (आदि छह)। इत्यादि अट्टाईस मूलगुणस्वरूप... आहाहा! इन अट्टाईस मूलगुणस्वरूप महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम करता है,... ऐसे महाव्रत आदि लेकर, अव्रत में से छूटकर व्यवहार से इतना स्थिर करता है। व्यवहार में पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, इन्द्रिय निरोध करके पर से छूटकर इतना व्यवहार से स्थिर करता है। व्यवहार कहते हैं। अब बाद में निश्चय कहेंगे। आहाहा! ऐसा व्यवहार भी अन्यमत में नहीं है। आहाहा! माने, अब ऐसा मानने से क्या होगा? अट्टाईस मूलगुण श्वेताम्बर में नहीं है। वहाँ साधु के सत्ताईस गुण कहे हैं। यह तो अट्टाईस मूलगुण विकल्प है। ऐसा विकल्प सर्वज्ञ के वीतरागमार्ग में निश्चयसहित पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा!

यह वीतरागसर्वज्ञ परमेश्वर महादेवाधिदेव... ने कहा हुआ व्यवहार, हों! ऐसा कहते हैं। अज्ञानियों ने कहा हुआ व्यवहार, वह नहीं। महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-

वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम... अव्रत आदि को छोड़कर ऐसे व्रत के व्यवहार में आवे, परन्तु वह निश्चयसहित। आहाहा! समझ में आया? अट्टाईस मूलगुण में तो यह आता है कि वस्त्ररहित नग्नपना 'जन्मे प्रमाणेरूप भासित'— भगवान ने तो ऐसा कहा है। जैसा जन्म होता है, ऐसा मुनि का नग्नरूप होता है परन्तु मात्र नग्न नहीं। वह निश्चयसहित व्यवहार ऐसा होता है। आहाहा! यह व्यवहार है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। यह सर्वज्ञ देवाधिदेव परमेश्वर ने-वीतराग ने (जो) व्यवहार कहा; वीतराग होने से पहले ऐसा निश्चयसहित व्यवहार आता है। अकेला निश्चय नहीं होवे और व्यवहार (पालन करे), वह व्यवहार नहीं है। तथा सर्वज्ञ के अतिरिक्त (किसी) ने कहा हुआ जो व्यवहार, वह व्यवहार नहीं है। आहाहा! ऐसा मूलगुण स्वरूप... आहाहा! अष्टपाहुड़ में आता है न? कि जो मूलगुण में दोष है, उसे सब दोष ही है। मूलगुण। उसके लिए बनाया हुआ आहार, चौका बनाकर आहार ले, उसके मूलगुण में से ही उसका सब खोट है। आहाहा! क्या हो? गाँव में आये हों, तब क्या उन्हें मरने देना? जो प्रमुख सामने हों, उन्हें करना पड़ता है। बापू! इसमें दुनिया की लज्जा और शर्म भी रखने जैसी नहीं है। भगवान की लज्जा रखनी हो, उसे दुनिया की लज्जा छोड़ देनी पड़ेगी। आहाहा!

इसलिए शब्द प्रयोग किया है न? कि ऐसे जो मूलगुण महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम करता है, और शुद्धनिश्चयनय से... यह व्यवहार है, ऐसे को निश्चय ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेला व्यवहार, वह नहीं। शुद्धनिश्चयनय से सहजज्ञानादि... स्वाभाविक ज्ञान, आनन्द आदि। अन्तर भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान अकृत्रिम जो अनादि स्वभाव, वस्तु का स्वभाव जो ज्ञान अनन्त महिमावन्त, अनन्त आनन्द, अनन्त श्रद्धा / दर्शन / प्रतीति, अनन्त वीर्य, अनन्त पुरुषार्थ, प्रभुता, ऐसी स्वाभाविक वस्तु का जो स्वभाव है। सहजज्ञानादि शुद्ध गुणों से अलंकृत,... आहाहा! शुद्ध पर्याय है। गुण तो त्रिकाल है न? उसके आश्रय से पर्याय (होती है)।

शुद्ध गुणों से अलंकृत,... ऐसे शुद्ध गुणों से जो (अलंकृत है)। यह उसका अलंकार है। जैसे शरीर में गहने सोने के, हीरा-माणिक के रखते हैं। हीरा और माणिक के अलंकार बनाते हैं। आहाहा! जामनगर का दरबार था न? उसके पास नीलमणि का पूरा कोट था, कोट। हीरा का, नीलमणि का कोट। वह जब मार्ग में निकले, तब पहनता था।

जामनगर का दरबार। करोड़ों रुपये की आमदनी थी, इसलिए फिर पहले से बहुत वर्ष से चले। अकेला नीलमणि का कोट। एक-एक नीलमणि की लाखों की कीमत, उसका पूरा कोट, पूरा मुकुट। आहाहा! वह अलंकार नहीं, कहते हैं। यह हीरा-माणिक के चैतन्य भरपूर, भगवान भरपूर अन्दर ऐसे अनन्त गुणों से अलंकृत, ऐसा बादशाह, राजा आत्मा है। आहाहा!

शुद्ध गुणों से अलंकृत, सहज परम चैतन्यसामान्य... स्वाभाविक परम सामान्य त्रिकाली, दर्शन सामान्य त्रिकाल। (सहज परम) चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निज परमात्मद्रव्य... आहाहा! पहले तो अनन्त शुद्ध गुण आदि से अलंकृत है, (ऐसा कहा)। उसके पश्चात् मुख्य इतने शब्द लिये हैं। चैतन्यसामान्य और चैतन्यविशेष, यह उसका प्रकाश है। दर्शन और ज्ञान का जिसका प्रकाश, जिसका स्वरूप ही दर्शन और ज्ञान, अनन्त दर्शन और ज्ञान, उसका-चैतन्य का प्रकाश का उसका स्वभाव है, ऐसा चैतन्यरत्न। आहाहा!

(सहज परम) चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निज परमात्मद्रव्य में... आहाहा! देखा? ऐसा निज परमात्मा, निज-स्वयं का परमात्मद्रव्य, यह प्रतिक्रमण कहते हैं, धर्म कहते हैं, सामायिक कहते हैं, भगवान की स्तुति कहते हैं, भक्ति आवश्यक कहते हैं। यह आवश्यक है। आहाहा! निज परमात्मद्रव्य में शुद्धचारित्रमय स्थिरभाव करता है,... दो बातें ली हैं। उसमें ऐसा लिया था कि स्थिर परिणाम करता है। व्यवहार में था न? वीतराग के मार्ग में स्थिर परिणाम व्यवहार से करता है। व्यवहार-शुभभाव; और यह निश्चय शुद्धभाव। निश्चय शुद्धभाव स्थिर करता है, वहाँ शुभभाव व्यवहार का वीतराग न हो, तब होता है। दोनों को स्थिर भाव करता है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! ऐसा जो प्रकाश। ऐसे निज परमात्मद्रव्य में... निज / अपना द्रव्य; भगवान परमात्मा नहीं, तीर्थकर नहीं। निज परमात्मद्रव्य में शुद्धचारित्रमय स्थिरभाव करता है,... शुद्ध वीतरागमय स्थिरभाव करता है। आहाहा!

(अर्थात्) जो शुद्धनिश्चय-सम्यग्दृष्टि जीव व्यवहार से अट्टाईस मूलगुणात्मक मार्ग में... इसका स्पष्टीकरण किया है, और निश्चय से शुद्ध गुणों से शोभित दर्शनज्ञानात्मक परमात्मद्रव्य में स्थिरभाव करता है,... यह व्यवहार-निश्चय का स्पष्टीकरण किया। आहाहा! निश्चयसहित ऐसा व्यवहार वीतरागमार्ग में होता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र

कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! परम सत् दिगम्बर जैनधर्म अनादि सनातन सत्य में यह निश्चयसहित का ऐसा व्यवहार वहाँ होता है। आहाहा!

वह मुनि.... आहाहा! ऐसा जो हो, वह मुनि.... प्रतिक्रमण की उत्कृष्ट बात है न अन्तिम। निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,... वह व्यवहार है और यहाँ निश्चय है, उसे निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,... आहाहा! वह निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है। आहाहा! एक कलश में कहीं व्यवहार और निश्चय आता है। निश्चय और व्यवहार का मार्ग आदरे, ऐसा आता है। दो शब्द एकसाथ आते हैं। साथ में होते हैं न? निश्चय और व्यवहार। वही निश्चय है, वहाँ ऐसा कहा है। कहीं श्लोक है। प्रवचनसार में है।

यहाँ यह कहा, निश्चयस्वरूप ज्ञान, दर्शन और आनन्द में स्थिर करता है और शुभभाव अन्दर इन्द्रिय का निरोध आदि, उस शुभभाव में स्थिर करता है। ऐसा निश्चय और व्यवहार होता है। आहाहा! अर्थात् निश्चयवाले को व्यवहार चाहे जैसा हो, ऐसा नहीं है, इसके लिए यह बात करते हैं। निश्चय जो आत्मा का श्रद्धा, ज्ञान-चारित्र जिसे निश्चय है, उसे व्यवहार फिर चाहे जिस प्रकार का हो, ऐसा नहीं है। ऐसा ही व्यवहार होता है। आहाहा! वह मुनि निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,... आहाहा!

कारण कि उसे परमतत्त्वगत (-परमात्मतत्त्व के साथ सम्बन्धवाला)... परमतत्त्व भगवान परमात्मा... आहाहा! पूर्ण परमात्मा निर्विकल्प शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु के साथ संगवाला, सम्बन्धवाला। परमतत्त्वगत... है न? अर्थात् (-परमात्मतत्त्व के साथ सम्बन्धवाला) निश्चयप्रतिक्रमण है, इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है। आहाहा! इसलिए वह मुनि तपोधन, जिसे आनन्द और ज्ञान का तपरूपी धन प्रगट हुआ है, वह आत्मा मुनि शुद्ध है। आहाहा!

स्वयं नियमसार में कहते हैं कि तुझसे पालन न किया जा सके परन्तु जैसी है, वैसी श्रद्धा तो रखना। भाई! आता है न? इसमें नियमसार में अन्त में। श्रद्धा तो करना। फेरफार नहीं करना कि नहीं, नहीं, मैं पालन नहीं कर सकता, इसलिए यह भी एक मार्ग है, ऐसा रहने देना। आहाहा! श्रद्धा तो जैसा भगवान ने कहा है, वैसी ही श्रद्धा रखना। ध्यान-ब्यान इतना सब न हो सकता हो तो भी श्रद्धा में तो बराबर रखना कि वस्तु यह है, वह मार्ग है।

है न इसमें? पीछे है न? १५४? १५४ गाथा। सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि, परद्रव्य से पराङ्मुख और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले, पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह के धारी, परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखकमल से शोभायमान हे मुनिशार्दूल! संहनन और शक्ति का प्रादुर्भाव हो तो मुक्तिसुन्दरी के प्रथम दर्शन की भेंटस्वरूप निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रायश्चित्त, निश्चयप्रत्याख्यान आदि शुद्धनिश्चय क्रियाएँ ही कर्तव्य है। यदि इस दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है। इसमें अन्तर करना नहीं कि ऐसा भी होता है... ऐसा भी होता है। श्रद्धा में तो बराबर रखना कि बापू! निश्चय तो यही होता है और व्यवहार तो यही होता है। पालन न कर सके, इसलिए तू यह भी मार्ग है, ऐसा करना नहीं। देखो न, कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। आहाहा! यह कहते हैं। इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है। लो। फिर श्लोक कहेंगे।

विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

तथा चोक्तं प्रवचनसारव्याख्यायां ह

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्येवं चरणं पुराण-पुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गा-दपवादतश्च विचरद्द्वहीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्ति-मतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम् ॥

इसी प्रकार श्री प्रवचनसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत तत्त्वदीपिका नामक) टीका में (१५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

है पुराण पुरुषों द्वारा जो सावधान होकर सेवित।
उत्सर्ग और अपवाद मार्ग से विविध भूमिकाओं में व्याप्त ॥
चरण प्राप्त करके फिर यतिगण क्रमशः अतुल निवृत्ति करो।
चित् सामान्य-विशेष प्रकाशमयी निज में ही लीन रहो ॥

‘[श्लोकार्थः] इस प्रकार विशिष्ट १आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चरण (- चारित्र) उसे यति प्राप्त करके, क्रमशः अतुल निवृत्ति करके, चैतन्य सामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निजद्रव्य में सर्वतः स्थिति करो ।’

प्रवचन-८६, श्लोक-११५, गाथा-८७, मंगलवार, मागशर शुक्ल १, दिनांक २०-११-१९७९

नियमसार, गाथा के बाद कलश है न ? ८६ गाथा के बाद कलश है । ११५ नहीं, उसके ऊपर । उसे अंक नहीं है । अमृतचन्द्राचार्य का है । ११५ के ऊपर ।

इत्येवं चरणं पुराण-पुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गा-दपवादतश्च विचरद्वहीः पृथग्भूमिकाः ।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्ति-मतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम् ॥

आहाहा ! यह नियमसार है ।

[श्लोकार्थः—] इस प्रकार... जरा सूक्ष्म बात है, भाई ! अनन्त-अनन्त काल के परिभ्रमण में आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द शुद्ध चैतन्य अमृत सागर है, उसकी कभी इसने दृष्टि नहीं की । इसके बिना यह सब बाहर में धमाल-पाप की । संसार का धन्धा आदि तो पूरे दिन पाप है । धर्म के नाम से आवे तो भी पूजा, भक्ति, व्रत, तप आदि वह भी शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं है । वह कहीं जन्म-मरण के अन्त का कारण नहीं है । आहाहा !

कहते हैं, इस प्रकार विशिष्ट आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया,... अर्थात् क्या कहते हैं ? जो धर्मात्मा अन्तर शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि करके जिसकी सेवना, स्वरूप में स्थिर होता है, वह निश्चय प्रतिक्रमण और निश्चय धर्म है । आहाहा ! भगवान आत्मा... यह देह तो जड़ मिट्टी है । पैसा, इज्जत, कीर्ति जड़, वह तो जड़ है, पर है । अन्दर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी विकार, दोष और संसार है । उनसे रहित चैतन्य ज्ञायक, चैतन्यमूर्ति प्रभु की अन्तर्दृष्टि करके सेवना करना । वह

१. आदर = सावधानी; प्रयत्न; बहुमान ।

विशिष्ट आदरवाले सावधानी पुरुष । प्रसन्न स्वरूप में प्रसन्न आनन्दवाले । आहाहा !

जिनका आदर राग और पर में अनादि से वर्तता है, वह तो संसार के भटकने के मार्ग परिभ्रमण के, नरक और निगोद के वे सब पन्थ हैं । वह दृष्टि छोड़कर, विशिष्ट पुरुषों ने । विशिष्ट कहा न ? विशिष्ट आत्मार्थी पुरुषों ने, आदरवाले पुराण पुरुषों ने, अन्तरस्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्दघन का सावधानरूप से आदर किया । उनका **सेवन किया गया, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा...** यह मार्ग बहुत सूक्ष्म है, प्रभु !

मुख्यमार्ग तो उत्सर्ग अर्थात् ? ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु आत्मा में रमना, एकाग्रता वह उत्सर्ग अर्थात् मोक्ष का मूल मार्ग, वह धर्म मार्ग है । उसका भान होने पर भी उसके सेवन में एकाग्र नहीं रह सके तो अपवादिक मार्ग अर्थात् देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति, पूजा, व्रत, तप का भाव, वह अपवादमार्ग है । वह मूलमार्ग नहीं है परन्तु भान हुआ होने पर भी अन्दर स्वरूप में जब नहीं रह सके, (तब ऐसा अपवादमार्ग होता है) । आहाहा !

चिदानन्दस्वरूप आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है । वह पुरुषोत्तम पुरुष मात्र ज्ञान और शान्ति और वीतरागता की मूर्ति प्रभु आत्मा है । उसकी दृष्टि करके अन्दर में रमना, वह तो उत्सर्गमार्ग, मोक्ष का वास्तविक मार्ग है । उसमें भान होकर नहीं रह सके, भान हुआ हो कि मैं शुद्धचैतन्य हूँ, उसकी दृष्टि हुई हो, उसे शान्ति का और आनन्द का जरा वेदन भी होता है परन्तु ध्यान में स्थिर नहीं रह सके तो उसे अपवादमार्ग लेना । अपवाद अर्थात् व्यवहारमार्ग । देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, व्रत, तप के परिणाम उसे होते हैं, वह व्यवहार है, वह पुण्यबन्ध का कारण है । जन्म-मरण के अन्त का वह कारण नहीं है, परन्तु वह आये बिना रहता नहीं है । अरे रे ! इसमें क्या समझना ?

उत्सर्ग और अपवाद... उत्सर्ग तो यह सच्चिदानन्द प्रभु, (जो) दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के विकल्प राग हैं, उनसे भिन्न है । आहाहा ! उसे आदरकर, सावधान होकर, उसमें प्रसन्नता करके । आहाहा ! है अन्दर ? सावधानी करके, अन्तर प्रयत्न में शुद्ध चैतन्य में प्रयत्न करना, वह मूलमार्ग है । मूल धर्ममार्ग वह है परन्तु ऐसी दृष्टि और ज्ञान हुआ होने पर भी, अन्दर में जरा स्थिरता भी होने पर भी, ध्यान में अन्दर लीन न हो सके तो उसे उस आत्मा के लक्ष्य और दृष्टिपूर्वक की दशा में उसे अपवादमार्ग अर्थात् पूजा, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प का राग आता है, उसे यहाँ अपवादमार्ग कहा जाता है । अरे रे ! ऐसी बातें आवे ।

कहीं बहियों में होती नहीं, व्यापार में होती नहीं। अकेला पाप का धन्धा पूरे दिन। सवेरे से शाम यह किया... यह किया... यह किया। अकेला पाप। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं। अकेला पाप (करके) दुर्गति में जाने के लक्षण। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी सब मौज-मजा मना रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौज अर्थात् यह दुःखी है। मौज-मजा किसका ? राग के द्वेष के परिणाम में खड़ा है, वह दुःखी है। उसे सुखी कौन कहे ? अरबोंपति प्राणी दुःखी है। क्योंकि उसकी दृष्टि पर के ऊपर जाती है और यह ठीक है, इसलिए उसे राग होता है। यह राग, वह दुःख है, आकुलता है; शान्ति की जलहल ज्योति वहाँ जल जाती है। आहाहा! ऐसा स्वरूप बहुत कठिन, बापू!

भगवान आत्मा की शक्ति की विशेषता, विस्मयता और विशिष्टता वह विशिष्ट चीज़ है। उसके ऊपर का आश्रय, विस्मयता छोड़कर बाहर की कोई भी चीज़—इन्द्र का इन्द्रासन हो, या अरबोंपति पैसा हो, आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ की अधिकता, विशिष्टता, उत्साह, वीर्य में राग का रंग चढ़ जाए, वह प्राणी दुःखी और पापी है।

मुमुक्षु : पैसा न होवे, वह दुःखी और पैसा होवे, वह सुखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा मिलता है, वह पुण्य के कारण, परन्तु पैसावाला है, वह पापी है। यह क्या कहा ? पैसे मिलें, यह धूल दो-पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच करोड़, वह मिले, वह पूर्व के पुण्य के कारण (मिलती है)। परन्तु चीज़ है, वह परिग्रह है, वह पाप है। आहाहा! दुनिया जिसे पुण्यशाली कहे, पूर्व के पुण्य के कारण मिला, इसलिए (ऐसा कहे)। ज्ञानी उसे पापी कहते हैं क्योंकि पैसा, इज्जत, कीर्ति, दो-पाँच करोड़, पचास करोड़, दस करोड़, अरब करोड़। पैसेवाले भी बहुत मिले हैं न!

अपना भाई भी मर गया न ? शान्तिलाल खुशाल। दो अरब चालीस करोड़। शान्तिलाल खुशाल। वीरचन्दभाई! नाम सुना है ? गोवा में अपना दशाश्रीमाली बनिया था। उसका बहनोई यहाँ आता है। पोपटभाई। क्या पोपटभाई नाम है ? पोपटभाई लीबड़ी के। उनका बहनोई, यहाँ आता है। उनकी लड़की बालब्रह्मचारी है। उनका साला शान्तिलाल खुशाल, गोवा। दो सौ चालीस करोड़, दो अरब चालीस करोड़। अभी लड़के हैं। वह तो डेढ़-पौने दो वर्ष पहले मर गया। ६१ वर्ष की उम्र थी। स्त्री को हेमरेज हुआ, यहाँ मुम्बई

दवा कराने आये थे। वहाँ गोवा में तो बड़े साठ लाख के मकान हैं। एक चालीस लाख का, दस-दस लाख के दो। बड़ा गृहस्थ दशाश्रीमाली बनिया था। पाणसणा का था। उसकी स्त्री को कुछ हुआ, इसलिए बम्बई आया था। पौने दो वर्ष हुए। उसमें एकदम दो-चार दिन हुए होंगे। रात्रि में कहे, मुझे दुःखता है। डॉक्टर को बुलाओ, ऐसा कहा। डॉक्टर आता है, वहाँ भाईसाहब रवाना। ढोर आदि में जानेवाला। बहुत से तो पशु में जानेवाले हैं। पाप करते नहीं। माँस और अण्डा, यह न (खाते) हों, पुण्य भी न हो, इसलिए ऐसे पाप के परिणाम में बहुत से तो मरकर वक्रता के कारण पशु आड़ा तिर्यच होनेवाले हैं। ये क्रोध और मान-माया जो कषायभाव है, वह वक्रता का भाव है। उस वक्रता के कारण मरकर आड़ा शरीर होनेवाला है। ऐसे मनुष्य खड़े हैं, यह मरकर आड़े होनेवाले हैं। गिलहरी, बन्दर, कुत्ता। आहाहा! इतनी बात भी न जँचे, बापू! क्या हो? प्रभु का तो यह पुकार है।

तिर्यच कैसे होता है? तिर्यच-तिरछा। यह गायें, भैंस ऐसे आड़े होते हैं न? आड़ा शरीर। गाय, भैंस, गिलहरी, नेवला, मूस (बड़ा चूहा) यह सब तिर्यच ढोर आड़े हैं। ये आड़े क्यों हुए हैं? कि पूर्व में वक्रता बहुत की है। वक्रता अर्थात्? क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, तृष्णा आदि सेवन किये, यह स्वरूप से वक्रता की है। इस वक्रता के कारण उनका आत्मा तो वक्र हुआ, परन्तु उसके फल में शरीर वक्र हो गया। ऐसा बाँका-आड़ा शरीर मिला। आहाहा! ऐसा!

जिसे दुनिया सुखी कहे, उसे परमात्मा पापी कहते हैं। अब ऐसा कहाँ मिलान खाये? वह परिग्रह है न? पैसा है, वह परिग्रह है और चौबीस प्रकार का परिग्रह है। चौदह अन्तरंग परिग्रह—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ (और नौ नोकषाय) तथा दस प्रकार का बाह्य परिग्रह—क्षेत्र, वस्तु, पैसा-लक्ष्मी इत्यादि। ये सब बाह्य परिग्रह हैं, वह पाप है। मिला है पुण्य से परन्तु अब अभी मिला है, वह पाप है। आहाहा! और उस पाप में पड़े हुए जीव तिर्यच के-पशु के अवतार में जानेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार तेरी सम्हाल कर न! सावधान किया है न? आदर करनेयोग्य कहा न? यह आत्मा अन्दर आनन्दकन्द है, प्रभु! यह पुण्य और पाप के विकल्प के राग से भिन्न है। यह पूर्णानन्द से भरपूर है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आहाहा! इससे कोई ऊँची चीज़ जगत में है नहीं। यह समयसार के अन्तिम कलश में

आया है न ? भाई ! समयसार से उत्कृष्ट कोई नहीं अनुभव में । वस्तु तो वस्तु है । महाप्रभु है । आहाहा ! जिसे केवलज्ञानी परमात्मा भी एक समय की पर्यायवाला आत्मा नहीं मानते । पूरा पूर्णानन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द के स्वभाव से भरपूर भण्डार, ऐसे भगवान की जिसे सावधानी है, सम्हाल है, प्रसन्नता है... आहाहा ! बहुमान है, उसके प्रति का प्रयत्न है... आहाहा ! ऐसे जीव आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और सेवना करनेवाले हैं । समझ में आया ? आहाहा !

एक स्तवन में-स्तुति में आता है । चार सज्जायमाला है । यहाँ तो पहले छोटी उम्र से यही धन्धा था न ! दुकान में पाँच वर्ष व्यापार किया, परन्तु दुकान में यह पढ़ता था । सज्जायमाला चार है । एक-एक सज्जायमाला में दो सौ-ढाई सौ सज्जाय है । चार सज्जायमाला है । यह तो तब दुकान पर पढ़ी थी । बीस वर्ष की उम्र । अभी तो नब्बे वर्ष हुए । सत्तर वर्ष पहले की बात है । पढ़ा था । उसमें एक गायन-सज्जाय ऐसी थी । 'होंशीडा मत होंश न कीजे' ए... होंशीडा ! पर में उत्साह नहीं करना, नाथ ! मरकर दुर्गति में जाएगा, भाई ! आहाहा ! दुकान पर ये पढ़ते थे । पिताजी की-घर की दुकान थी । अभी दुकान है तो न, बड़ी दुकान है । अभी चालीस लाख रुपये हैं । दुकान की चार लाख की आमदनी है । पालेज । भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज है । सब पाप का धन्धा । आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि हे सम्हालवाले ! किसकी सम्हाल ? इस आत्मा की । है न ? **इस प्रकार विशिष्ट आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा...** इसका अर्थ यह है । प्रभु ! तेरी प्रभुता का अन्दर पार नहीं है । प्रभु ! तूने तेरी प्रभुता को परखा नहीं और पामर चीज़ की अन्दर कीमत और बहुमान, विशेषता और विस्मयता करके चौरासी के अवतार में भटक मरा है । आहाहा ! यहाँ प्रभु कहते हैं कि इस प्रकार खास **आदरवाले पुराण पुरुषों...** अनादि परमात्मास्वरूप आत्मा, ऐसे पुराण पुरुषों, उसे आनन्द में स्वरूप की सावधानी से... आहाहा ! **सेवन किया गया,**... आत्मा की शान्ति और पुण्य-पाप के राग से रहित भगवान आत्मा के आनन्द को सेवन किया गया अर्थात् जो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आया हुआ । आहाहा !

यह जो इन्द्रियों के विषय का स्वाद है, वह तो जहर का प्याला है । जहर का प्याला, विकार का प्याला - जहर का प्याला है । भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसकी अन्तर में रुचिपूर्वक की रमणता (करता है), वह अमृत का प्याला पीता है ।

आहाहा! वह धर्म है। अरे! ऐसा धर्म, भाई! किस प्रकार का? आहाहा! ऐसे जीवों को खास... कहा न? विशेषण खास। **आदरवाले पुराण पुरुषों...** अन्तर की चीज़ पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर, अतीन्द्रिय ज्ञान का समुद्र... आहाहा! जिसके गुण की संख्या का पार नहीं, ऐसे अनन्त गुण का समुद्र, प्रभु! और एक-एक गुण की शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। ऐसी एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य और ऐसी अनन्त शक्तियों का सामर्थ्य, ऐसे आत्मा का आदर करके, सम्हाल करके, प्रसन्नता करके... आहाहा! **सेवन किया गया,**... ऐसे आत्मा का जिसने सेवन किया है, वह उत्सर्गमार्ग है। मोक्ष का मूल मार्ग यह है। उत्सर्ग कहा। है न? **सेवन किया गया, उत्सर्ग...** सूक्ष्म बात है, भाई! अपने आप पढ़े तो कुछ पकड़ में आये ऐसा नहीं है।

पूरे दिन पाप की बहियाँ पढ़ा करे, उसमें यह क्या समझे कि इसमें क्या लिखा है? आहाहा! अरे रे! जिन्दगी गवाँकर चले जाते हैं। कहा न? वह पाँच मिनट में मर गया। दो अरब चालीस करोड़। और चालीस लाख का बँगला और दस-दस लाख के दो साठ लाख का बँगला है। अभी मुम्बई हम गये थे, तब लड़का आया था। लड़का कहता है—महाराज! मेरे पिता को दर्शन करने का बहुत भाव था। बातें तो करे बेचारे। मर गया। आहाहा! यह सब पशु में अवतरित होनेवाले हैं। नरक में तो नहीं जायें, माँस, शराब आदि का खुराक तो नहीं होता। धर्म का तो भान नहीं होता। दो-चार घण्टे सत्समागम, सच्चा समागम मिलकर वाँचन, श्रवण, मनन करे तो उसे पुण्य भी हो। वह भी नहीं होता। आधा घण्टा-घण्टा मिले तो सुनने जाए। वह भी ऐसा सुनने को मिले (कि) व्रत करो, तप करो, पूजा करो, भक्ति करो धर्म होगा। वह भी मिथ्यात्व के सेवन में जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अन्तर के आदरवाले पुरुष... आहाहा! पुण्य की क्रिया के परिणाम में भी जिनकी सावधानी नहीं। पुण्य की क्रिया में भी जिनकी प्रसन्नता और उत्साह नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

यह तो पहले से हमारे पूर्व के संस्कार थे, इसलिए १८ वर्ष से यह सब होता है। १८ वर्ष की उम्र से। ७२ वर्ष हुए। (अभी) शरीर को ९० हुए हैं। इस वैशाख शुक्ल द्वितीया को ९१ वाँ लगेगा। ७२ वर्ष पहले मैं तो सबको कहता था। दुकानदार को कहता था। यह क्या करते हो पूरे दिन? दुकान तो मैं भी चलाता था, परन्तु एक ओर शास्त्र पढ़ूँ, गाँव में

साधु आवे तो दुकान छोड़ दूँ और वे तो रात्रि को आठ बजे जाए। साधु आये हों तो आठ बजे जाए। पूरे दिन दुकान और धन्धा। पुण्य भी नहीं होता। धर्म तो नहीं होता परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा!

हमारी फुई (बुआ) का पुत्र भाई भागीदार था। कुँवरजीभाई थे। लड़के अच्छे हैं बेचारे। मरकर ढोर-तिर्यच होगा, बापू! याद रखना। (संवत्) १९६६ के वर्ष की बात है। (संवत्) १९६६ का वर्ष कितने वर्ष हुए? ७०। तब कहा था, भाई! तुम पूरे दिन यह क्या करते हो? मर के पशु में जाने के तुम्हारे लक्षण हैं, कहा। याद रखना। भले तुझे वर्ष की दो लाख की आमदनी है। मर गया तो दो लाख की आमदनी, दस लाख की आमदनी (थी) अभी तो चालीस लाख है। लड़के तो वाँचन करें, भक्ति-पूजा-वाँचन करें, पश्चात् दुकान में जाएँ। उसको तो एक ही बात। अरे रे! क्या होगा? बापू! कहा, भाई!

यहाँ यह कहते हैं कि जिसे आत्मा का आदर नहीं, उसकी तो बात हम करते नहीं। वह तो भटकनेवाला है। जिसे आत्मा का आदर है... आहाहा! जिसे दया, दान और व्रत के परिणाम आवें, तथापि उसका आदर नहीं। क्योंकि राग है, बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें। वह आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया, उत्सर्ग... आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को जिसने सेवन किया है। आहाहा! उसमें जब नहीं रह सकता, तब अपवाद द्वारा... अपवाद अर्थात् तब उसे पुण्य के परिणाम आते हैं। दृष्टि में भान है कि मैं ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, पूर्णानन्दस्वरूप हूँ। ऐसी दृष्टि होने पर भी, स्वरूप में स्थिर नहीं रह सकता और शुद्धदशा है, तब उसे ऐसा दया का, दान का, पूजा का, भक्ति का ऐसा शुभभाव आता है, वह अपवाद है।

आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की सेवा, वह उत्सर्ग और मूलमार्ग है। उस मार्ग में अन्दर स्थिर नहीं रह सके और भान होने पर भी, उसे अपवाद अर्थात् बीच में शुभभाव आता है, जो पुण्यबन्ध का कारण है। उसे यहाँ अपवादमार्ग कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें जिन्दगी में सुनी भी नहीं होगी। एक तो पूरे दिन धन्धा और निवृत्त होवे तो उसे जोड़ दे व्रत, तप, भक्ति और पूजा में। दोनों पाप है। आहाहा! 'पुण्य को पुण्य तो सब कोई कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' (योगसार, दोहा-७१) आहाहा! कठिन काम, प्रभु!

अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में... क्या कहते हैं यह? अन्तरस्वरूप

अतीन्द्रिय आनन्द की, इसकी भी सेवना है और सेवना में रहने पर भी स्थिर नहीं हो सकता, तब अपवादमार्ग में अर्थात् व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव में आता है। ऐसी अनेक पृथक्-पृथक् भूमिका... सूक्ष्म-सूक्ष्म बात है, प्रभु! पृथक्-पृथक् भूमिका... उत्सर्ग और अपवाद... उत्सर्ग और अपवाद। अपवाद राग आवे और छोड़कर स्वरूप में स्थिर ध्यान में आ जाए। उसमें न रह सके, तब फिर ऐसा शुभभाव आवे। समझ में आया? आहाहा! यह बहियाँ नहीं कि पढ़कर अपने आप समझ जाए। पाप की बहियाँ सब भरी है। आहाहा!

उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में.... यह क्यों कहा? कि आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव सम्यग्दर्शन है और अन्तर में आनन्द का सेवन है, परन्तु उसमें स्थिर नहीं रह सकता, तब उसे अपवादमार्ग ऐसा शुभभाव व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान का भाव आता है। वह पृथक्-पृथक् भूमिका। फिर स्वरूप में स्थिर हो, तब वह भाव नहीं होता; फिर स्थिर नहीं हो सके, तब वह भाव होता है—ऐसी पृथक्-पृथक् दशाएँ आती हैं। अरे! अब ऐसा मार्ग। समझ में आया?

ऐसी अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्यास जो चरण... है न? (-चारित्र)... स्वरूप है भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, जिसमें दया, दान, पूजा, भक्ति के विकल्प का भी अवकाश नहीं है। वह तो निर्मलानन्द प्रभु है। ऐसे भगवन्त की सेवा, वह उत्सर्गमार्ग है परन्तु जब उसमें नहीं रह सकता और भान होने पर भी, राग की परिणति शुभ में आती है। दया, भक्ति, पूजा, व्रत आदि वाँचन, श्रवण। वाँचन, श्रवण, वह सब शुभराग है। आहाहा! उन पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्यास जो चरण (-चारित्र) उसे यति प्राप्त करके,... आहाहा! मुनि की उत्कृष्ट बात है न? यति अर्थात् स्वरूप का यत्न जिसने किया है। यह यति अर्थात् वे जोगी, वे यति नहीं। जिसे आनन्द के नाथ के सागर का यत्न किया है, जिसने पुण्य और पाप से जीव को अन्दर में बचाया है। आहाहा! उसे यहाँ यति कहने में आता है। उसने स्वरूप का जतन, यत्न किया है। आहाहा! ऐसे यति। है?

(उसे) यति प्राप्त करके,... अन्तर के आनन्दस्वरूप को प्राप्त करके, उसमें रह न सके तो आनन्द की दृष्टि तो है और शुभभाव में आवे, फिर वहाँ से हटकर अन्तर में आवे, फिर वहाँ स्थिर न हो सके तो राग में आवे ऐसी बहुत पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्यास जो चरण (-चारित्र) उसे यति प्राप्त करके, क्रमशः... क्रमशः। अतुल निवृत्ति करके,...

आहाहा! क्रम से करके अतुल निवृत्ति। विकल्प से अत्यन्त रहित निर्विकल्प में स्थिर हो जाना, तब उसे मोक्ष होता है। ऐसा मार्ग है। सुनना कठिन पड़े। सम्प्रदाय में यह बात चलती नहीं। ४५ वर्ष देखे हैं न। ४५ यहाँ हुए। ४५ वर्ष उसमें थे। ९० हुए। आहाहा! यह ऐसा करो। हमारे हीराजी महाराज (कहते थे), दया करो, व्रत करो, तप करो, यह किया करे बेचारा।

यहाँ कहते हैं कि इस प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द के सागर के सेवन में रहकर अन्तर में ध्यान में स्थिर नहीं रह सके तो शुभराग में आवे, फिर वहाँ से हटकर स्थिर में आवे, फिर वहाँ स्थिर न रह सके तो राग में आवे। ऐसे पृथक्-पृथक् दशाओं को सेवन करके। आहाहा! है? ऐसा चारित्र। **क्रमशः अतुल निवृत्ति करके,...** अतुल निवृत्ति। अन्त में अन्तर अकेला आत्मा आनन्द का सागर, जहाँ विकल्प का अवकाश नहीं। ऐसा **अतुल निवृत्ति करके, चैतन्य सामान्य...** दर्शन, दृष्टापना भगवानस्वरूप आत्मा है। दृष्टा-दर्शनस्वरूप आत्मा और ज्ञानस्वरूप आत्मा विशेष। **चैतन्य सामान्य...** यह दर्शन। **और चैतन्यविशेषरूप...** यह ज्ञान। वह **जिसका प्रकाश है,...** वह तो दृष्टा और ज्ञाता, उसका प्रकाश चैतन्य सूर्य प्रभु है। चैतन्य चन्द्र में अन्दर शीतल आनन्द भरा हुआ है। आहाहा! उसे **अतुल निवृत्ति करके,...** जिसका प्रकाश है, **ऐसे निजद्रव्य में सर्वतः स्थिति करो।** ओहोहो! निजद्रव्य में। परमात्मा में भी नहीं। परमात्मा परद्रव्य है। परद्रव्य में भक्ति आदि हो, वह राग है; वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! कहो, यशपालजी! ऐसा मार्ग है। जगत को कहाँ निवृत्ति है? आहाहा! निज धन्धा क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! परधन्धा में विचिक्षण, परधन्धा में चतुर, वह धर्म में मूर्ख है। धर्म में चतुर, वह संसार का मूर्ख। संसार में उसकी चतुराई काम नहीं आती। आहाहा! ऐसा है, प्रभु!

उस **निजद्रव्य में...** निजद्रव्य अर्थात् अपना स्वरूप। अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान में **सर्वतः...** सर्व प्रकार से बिल्कुल विकल्प छोड़कर **स्थिति करो।** इस मनुष्यपने में करने का कर्तव्य यह है। यदि धर्म और मुक्ति करनी हो तो; बाकी तो अनन्त काल से भटककर मरता है। आहाहा! एक कलश में कितना भरा है! देखा? आहाहा! यह प्रवचनसार का श्लोक है।

श्लोक-११५

और (इस ८६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

(मालिनी)

विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,
तपसि निरतचित्ता शास्त्रसङ्घातमत्ताः ।
गुणमणि-गणयुक्ताः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
कथ-ममृतवधूटी-वल्लभा न स्युरेते ॥११५॥

(हरिगीतिका)

जो विषय-सुख से विमुख हैं शुद्धात्म में अनुरक्त हैं ।
तपलीन जिनका चित्त है श्रुत-पुञ्ज में जो मत्त है ॥
गुण-मणिगणों से युक्त, सब संकल्प से जो मुक्त हैं ।
वे मुक्तिरूपी सुन्दरी के क्यों नहीं वल्लभ बनें ॥११५॥

[श्लोकार्थः] जो विषयसुख से विरक्त हैं, शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं, तप में लीन जिनका चित्त है, शास्त्रसमूह में जो मत्त हैं, गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं, वे मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे ? (अवश्य ही होंगे) ॥११५॥

श्लोक-११५ पर प्रवचन

और (इस ८६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :— अब ११५वाँ श्लोक आया । अब श्लोक ।

विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,
तपसि निरतचित्ता शास्त्रसङ्घातमत्ताः ।

१. मत्त = मस्त; पागल; अति प्रीतिवन्त; अति आनन्दित ।

गुणमणि-गणयुक्ताः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,

कथ-ममृतवधूटी-वल्लभा न स्युरेते ॥११५॥

आहाहा! भाई! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, वहाँ से यह वाणी आयी है। आहाहा! यह समझना कठिन पड़े, ऐसी है। आहाहा!

श्लोकार्थः जो... व्याख्या विषयसुख से विरक्त हैं,... बाह्य के ओर के झुकाव में जो सुख माने, वह कल्पना है, धर्मी उससे विरक्त है। आहाहा! पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में, सुन्दर शरीर में, आत्मा के अतिरिक्त किसी भी दूसरी चीज़ में कुछ भी विशेषता लगे, कुछ अधिकता लगे... आहाहा! कुछ उसमें विस्मयता की अचिन्त्यता लगे, वह सब मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव है।

उस विषयसुख से विरक्त हैं,... धर्मी तो विषय के सुख, बाहर के विस्मय से विरक्त है। आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में जिसकी रक्तता है, लीनता है और बाहर के विषयसुख से विरक्त है। यहाँ रक्त है, वहाँ से विरक्त है। अज्ञानी स्वभाव से विरक्त है, तब विभाव में रक्त है। आहाहा! अनादि काल से अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर, उससे विरक्त है और राग की क्रिया में अन्दर में रक्त है। वह संसार में भटकने के लक्षण हैं। आहाहा!

यहाँ जो विषयसुख से विरक्त हैं,... यहाँ कहाँ सुख है? धूल में? सुख तो यहाँ प्रभु में है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसमें सुख है। आहाहा! इन इन्द्रियों के विषय में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में, पैसे में, शरीर की सुन्दरता में, मकान आदि की विशेष की विस्मयता में जो सुख मानता है, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि अनन्त जन्म-मरण के गर्भ को करने के कारणरूप भाव का सेवन करता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जो विषयसुख से विरक्त हैं,... भारी कठिन काम। शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं,... शब्द सब सरीखे हैं। देखा? विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,... सब मेलवाले शब्द हैं। विषयसुख से विरक्त हैं,... आत्मा के आनन्द के स्वभाव के अतिरिक्त किसी भी जीव में जिसे कुछ रति, प्रसन्नता उठती ही नहीं। शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं,... वहाँ से विरक्त है तो यहाँ से अनुरक्त है। अतीन्द्रिय आनन्द के सागर प्रभु में अनुसरण कर

रक्त है। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा परन्तु यह! मुश्किल-मुश्किल से पकड़ में आये, ऐसा उपदेश। वह तो (क्रियाकाण्ड का उपदेश तो) सीधा-सट्ट था।

मुमुक्षु : इसे पकड़ में आवे ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है न। अनन्त काल में अभ्यास में आया नहीं, इसलिए इसे कठिन लगता है। सत् प्रभु अन्दर (विराजता है)। यह (शरीरादि) तो नाशवान चीज़-धूल है, यह तो मिट्टी है, यह तो हड्डियाँ हैं। पैसा तो कहीं धूल है। पैसा तो इसकी पर्याय में भी नहीं। क्या कहा यह? इस शरीर के रजकण जो धूल हैं, वे तो आत्मा की पर्याय जो अवस्था, उसमें भी वे नहीं हैं। वह तो पर्याय से भिन्न चीज़ है। आत्मा जो द्रव्य-गुण त्रिकाली ध्रुव है, उसमें तो वर्तमान जो पर्याय / अवस्था है, वह भी नहीं है। अब इसकी जो पर्याय है, उसमें यह शरीर और कर्म इसकी पर्याय में नहीं है। इसकी पर्याय में अनादि से अज्ञान और राग-द्वेष तथा विकार है। इसमें होवे तो अज्ञानी को पर्याय में राग-द्वेष और अज्ञान है। द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। इसकी पर्याय में पैसा नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। कर्म पर्याय में नहीं। कर्म तो भिन्न चीज़ है। शरीर भी भिन्न चीज़ है। मकान, पैसा, इज्जत, कीर्ति तो कहीं धूल बाहर में रह गये। इसकी पर्याय में भी नहीं, वे तो बाहर हैं। आहाहा! उनसे तो विरक्त है परन्तु पर्याय में पर में सुख मानना, उससे भी विरक्त है। ऐसी बातें हैं, भाई! सोनगढ़ की बातें करे, फिर निश्चय की बातें। ऐसा है और वैसा है। अरे! बापू! करो। मार्ग तो है वह है। आहाहा!

शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं, तप में लीन जिनका चित्त है,... तप अर्थात् यह अपवास आदि नहीं। शुद्ध चैतन्य आनन्द का घन, उसकी उत्कृष्ट निर्मलता का नाम तप है। जैसे सोने को गेरु लगाने से सोना ओपता और शोभता है; वैसे भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्रसहित स्वरूप की रमणता में शुद्धता से ओपता और शोभता है, उसे तप कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **तप में लीन जिनका चित्त है,...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें जिसकी लीनता है, उसका नाम तप कहा जाता है। तपयन्ते इति तपः जिसमें से अशुद्धता टलती है और अतीन्द्रिय आनन्द जागृत होता है, उसे यहाँ परमात्मा तप कहते हैं। बाकी सब लंघन है।

शास्त्रसमूह में जो मत्त हैं,... आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने कहे हुए

जो शास्त्र, उनमें जो मस्त हैं, पागल हैं। दुनिया को पागल जैसे लगें। दुनिया पागल है, इसलिए शास्त्रज्ञानवाले को पागल जैसा लगता है। आहाहा! पागल हैं।

यह पहले वहाँ पालेज में हमारी दुकान में एक सगे-सम्बन्धी थे। वे वैष्णव थे। फिर यह सत् क्या कहलाता है वह? सत्यनारायण की कथा, नहीं? सत्यनारायण की कथा करते। वैष्णव थे। फिर वहाँ अन्दर गाते, 'जगतड़ा कहे छे रे भगतडा घेला छे, पण घेला न जाणसो रे, प्रभु ने त्यां पहला छे।' यह तब (संवत्) १९६४-६५ की बात है। संवत् ६४ और ६५। वे वैष्णव थे। घोघा के। लाती का बड़ा व्यापार था। लाती थी। अब उनके लड़के तो भरूच में रहते हैं परन्तु सब वहाँ सगे-सम्बन्धियों में सम्बन्ध है न? वहाँ सत्यनारायण की कथा होवे तो जाना तो पड़े। वहाँ गाते थे। 'जगतड़ा रे कहे छे रे भगतडा घेला छे, पण घेला न जाणसो रे, प्रभु ने त्यां पहला छे।' आहाहा! वह कुछ दूसरी भाषा थी।

मुमुक्षु : काला।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'जगतड़ा रे कहे छे रे भगतडा काला छे, पण काला न जाणसो रे, प्रभु ने त्यां ई वहाला छे।' तब ऐसा गाते थे। यह तो ७२ वर्ष पहले की बातें हैं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, ज्ञानी **शास्त्रसमूह में...** पागल हैं। है? मत्त है, मत्त है। शास्त्र के ज्ञान में मस्त हैं। दुनिया को पागल जैसा, मत्त जैसे लगते हैं। क्या ऐसी बातें करते हैं? यह जो पूरे दिन बातें चलती है, उसमें कोई ऐसी बात ही नहीं आती। नयी-नयी बातें। ऐसा करे, वैसा करे, अमुक। आहाहा! **शास्त्रसमूह में...** सिद्धान्त सर्वज्ञ वीतराग के शास्त्र में, उनके ज्ञान के समूह में जो मत्त हैं। नीचे (फोटोनोट में अर्थ) है न? **मस्त... है, पागल... है अति प्रीतिवन्त...** है। अन्तर सम्यग्ज्ञान में अतिशय प्रतीतिवन्त धर्मात्मा हैं। आहाहा! यह लौकिक ज्ञान यह वकालात, डॉक्टर और यह सब पागल ज्ञान है, पागल का ज्ञान है। आहाहा! वह पागल है। अन्तरस्वरूप के ज्ञान में वीतराग ने कहा हुआ जो शास्त्रज्ञान, उसमें धर्मात्मा पागल हैं, मस्त हैं। आहाहा! जिनकी मस्ती जगत को पागल जैसी लगे, ऐसा है। आहाहा! और दुनिया के पागल उस धर्मी को पागल जैसा, पागल जैसे लगते हैं। परमात्मप्रकाश में है। परमात्मप्रकाश शास्त्र है न? उसमें यह लेख है। पागलों को धर्मात्मा पागल जैसे लगते हैं। धर्मात्मा को दुनिया पागल जैसी लगती है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो में से सच्चा कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा तो जो यह सच्चा है, वह सच्चा है। आत्मा के ज्ञान में शास्त्रसमूह में मत्त हैं, वे सच्चे हैं। दुनिया के ज्ञान में प्रवीण हैं, वे उन्मत्त और पागल हैं। दुनिया की बातें करने बैठे तो मानो बड़े देव के पुत्र उतरे। पाँच-पच्चीस लोग बैठे हों और बातें करते हैं ऐसा है, वैसा है, अमुक है, अमुक है। अलक-मलक की लगावे। अगम्य गम्य की नहीं परन्तु अलक-मलक की। आहाहा!

धर्मात्मा... आहाहा! जो विषयसुख से विरक्त हैं,... विषयसुख में रुचि उड़ गयी है। आहाहा! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं। पर में सुखबुद्धि रहे और आत्मा में सुखबुद्धि रहे, ऐसे दो नहीं रह सकते। आहाहा! जिसे पर में सुखबुद्धि (नहीं है), इन्द्र के इन्द्रासन हों, परन्तु समकिति धर्मी को सुखबुद्धि उड़ गयी है और अपने में **अनुरक्त हैं**,... शुद्धतत्त्व जो आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें अनुरक्त है। आहाहा! कलश भी आये हैं न! अमृत से भरपूर कलश हैं। जो अन्तर में लीन हैं, शास्त्रसमूह में जो पागल-मत्त हो गये हैं। **गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं**... लो, यह दुनिया मणि और रत्न से युक्त है। आहाहा! सब पागल जैसे लगें। मुम्बई, तुम्हारा सेठ मिला था या नहीं? चिमनभाई नौकर थे। वैष्णव है। पचास करोड़ रुपये हैं। पचास करोड़। नाम क्या?

मुमुक्षु : रामदास कीलाचन्द देवचन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था। दर्शन करने आवे न! पचास करोड़। वैष्णव। महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन। महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन और आदमी सब वैष्णव। इसलिए दर्शन करने आये थे। आये थे। एक हजार रुपये रखे थे, नारियल रखा था। महिलाएँ श्वेताम्बर जैन हैं न? महाराज! घर में चरण करेंगे? वे तो वैष्णव। उन्हें प्रेम से बताता था। वैष्णव तो ईश्वरकर्ता मानते हैं न? मैंने कहा, परन्तु ईश्वरकर्ता मानते हो किन्तु तुमने नरसिंह मेहता का नहीं सुना? नरसिंह मेहता ने क्या कहा है? 'जहाँ लगी आत्मतत्त्व चिन्हयो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' यह तुम्हारे वैष्णव जूनागढ़ के नरसिंह मेहता ने कहा है। 'जहाँ लगी आत्मतत्त्व चिन्हयो नहीं...' आत्मा का ज्ञान और अनुभव नहीं किया तब तक साधना, यह भक्ति, पूजा, व्रत, दान सब बड़े शून्य हैं। एक के बिना के शून्य। यह अंक के शून्य गिने नहीं जाते। बेचारे सुनते थे। हमें कहाँ उनसे लेना था। पचास करोड़ रुपये।

यहाँ तो कहते हैं, गुणरूपी मणि। धर्मी के पास तो अन्तर गुणरूपी मणि होती है।

ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि मणि अन्दर है। उस गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त है। उस गुणरूपी मणियों के समुदाय... समुदाय अर्थात् गुण का पूरा भण्डार है। आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का महासमुदाय, भण्डार है। आहाहा! परमेश्वर है, भगवन्त है, प्रभु है। आहाहा! उस गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं,... यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेनी है न? धर्म की धर्मदशा होने पर संकल्पों से मुक्त हैं,... उसे प्रभु के स्मरण का संकल्प भी जिसे नहीं है। उससे मुक्त है और आत्मा के स्वरूप में मस्त हो गये हैं। आहाहा!

वे मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे? आहाहा! ऐसे जीव मुक्ति अर्थात् मोक्ष, परम आनन्द का लाभ ऐसी मुक्ति। परम अतीन्द्रिय का लाभ, ऐसी जो मुक्ति। ऐसे जीव उस मुक्ति के वल्लभ क्यों नहीं होंगे अर्थात् उन्हें मुक्ति क्यों नहीं होगी? आहाहा! मुक्ति होगी ही। आहाहा! पागल जैसा लगे। परन्तु हमने इतने वर्ष से यह सब सुना है, उसका क्या करना? शून्य लगाना। यह तो नया एकड़ा घोंटने की बात है। आहाहा! है?

मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे? ऐसे जीव अन्तर में... आहाहा! जिन्हें विषयसुख की विरक्तता, शुद्ध तत्त्व की लीनता, अन्तर के तप में जो मस्त, शास्त्र समुद्र में मत्त... आहाहा! गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं,... आहाहा! उन्हें मुक्ति मिलती है, उन्हें मुक्ति-मोक्ष होता है। दूसरे को मोक्ष नहीं होता। आहाहा! ये दो कलश हुए।

गाथा-८७

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि ।
 सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८७॥
 मुक्त्वा शल्यभावं निःशल्ये यस्तु साधुः परिणमति ।
 स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात् ॥८७॥

इह हि निःशल्यभावपरिणतमहातपोधन एव निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप इत्युक्तः ।

निश्चयतो निःशल्यस्वरूपस्य परमात्मनस्तावद् व्यवहारनयबलेन कर्मपङ्कयुक्तत्वात्
 निदानमायामिथ्याशल्यत्रयं विद्यत इत्युपचारतः । अत एव शल्यत्रयं परित्यज्य परमनिःशल्य-
 स्वरूपे तिष्ठति यो हि परमयोगी स निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप इत्युच्यते, यस्मात् स्वरूपगत-
 वास्तवप्रतिक्रमणमस्त्येवेति ।

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे ।
 प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८७॥

अन्वयार्थः—[यः तु साधुः] जो साधु [शल्यभावं] शल्यभाव [मुक्त्वा]
 छोड़कर [निःशल्ये] निःशल्यभाव से [परिणमति] परिणमित होता है, [सः] वह
 (साधु) [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है, [यस्मात्] कारण कि
 वह [प्रतिक्रमणमयः भवेत्] प्रतिक्रमणमय है ।

टीका :—यहाँ निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही निश्चय-
 प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है ।

प्रथम तो, निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा को व्यवहारनय के बल से
 कर्मपङ्कयुक्तपना होने के कारण (-व्यवहारनय से कर्मरूपी कीचड़ के साथ सम्बन्ध
 होने के कारण) 'उसे निदान, माया और मिथ्यात्वरूपी तीन शल्य वर्तते हैं' ऐसा

उपचार से कहा जाता है। ऐसा होने से ही तीन शल्यों का परित्याग करके जो परम योगी परम निःशल्य स्वरूप में रहता है, उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है, कारण कि उसे स्वरूपगत (-निज स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला) वास्तविक प्रतिक्रमण है ही।

गाथा-८७ पर प्रवचन

८७ गाथा । ८७ गाथा ।

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८७॥

यह प्रतिक्रमण की व्याख्या चलती है। शुभ-अशुभ राग से हटकर स्वरूप में रमे, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। प्रतिक्रम। प्रति अर्थात् विमुख होकर। चाहे तो दया, दान के, व्रत के परिणाम हों परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। उनसे विमुख होकर स्वरूप में स्थिर हो, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। यह शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे - णमो अरिहंताणं, णमो... मिच्छामि दुक्कडं, लो हो गया प्रतिक्रमण। अरे! भाई! एक समय का प्रतिक्रमण इसे मुक्ति दे, ऐसी दशा है। ऐसे प्रतिक्रमण के थोथा (ढोंग) तो अनन्त बार किये। आहाहा!

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८७॥

नीचे (हरिगीत)

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८७॥

टीका : यहाँ निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही निश्चयप्रतिक्रमण-स्वरूप कहा है। क्या कहते हैं? निःशल्य। मिथ्या शल्य, निदान शल्य, माया शल्य। तस्सउत्तरी में आती है। तस्सउत्तरी करणेणं प्रायश्चित्त करणेणं विशल्य करणेणं। इसे अर्थ की भी खबर नहीं होती। तस्सउत्तरी, तस्सउत्तरी, पहला पाठ। पहला णमो अरिहंताणं, दूसरा तीकखुतो, तीसरा इच्छामि पडिक्कमणा, चौथ सूत्री, विशल्यीकरण, शल्यरहित होने

के लिए। वह शल्य—मिथ्या शल्य, निदान शल्य, माया शल्य। आहाहा! इन तीन शल्यरहित निःशल्यभाव से परिणमे... आहाहा! ऐसे महातपोधन को ही निश्चयप्रतिक्रमण... अर्थात् निश्चयधर्म होता है। उसे निश्चयप्रतिक्रमण होता है।

विशेष कहा जायेगा....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८७, गाथा-८७, बुधवार, मागशर शुक्ल २, दिनांक २१-११-१९७९

नियमसार, ८७ गाथा।

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।

सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८७॥

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।

प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८७॥

साधु की मुख्यता से बात की है।

टीका : यहाँ निःशल्यभाव से परिणत... आहाहा! निःशल्य आता है। तस्सउत्तरी में? उस समय कहा था न प्रवीणभाई! तस्सउत्तरी किया था या नहीं स्थानकवासी में? तस्सउत्तरी निःशल्य-शल्यरहित। मिथ्या शल्य, माया शल्य, निदान शल्य। बहुत विस्तार है। मिथ्या शल्य में बहुत अनन्त प्रकार मिथ्यात्व के हैं। संक्षिप्त में असंख्य। आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप से विरुद्ध जो रागादिभाव को अपना मानना, वह मिथ्यादर्शन शल्य है। वह शल्य है, वह चार गति में भटकने का कारण है। आहाहा! वह यहाँ तीन शल्यरहित है।

यहाँ निःशल्यभाव से परिणत... तीन जो शल्य हैं। एक राग का कण और रजकण, वह मेरा है और मैं उसका हूँ, ऐसी जो अन्तर मान्यता है, वह महामिथ्यात्व शल्य है। आहाहा! करोड़पति, अरबपति, लखपति कहलाता है, वह लखपति कहलाता है परन्तु जो पति मानता है, लख का पति हूँ, करोड़ का पति हूँ, वह मिथ्यादर्शन शल्य बड़ी शल्य है। आहाहा! जो अनन्त जन्म और मरण की उत्पत्ति का गर्भ है। मिथ्यात्व गर्भ है। आहाहा! यहाँ कहते हैं **निःशल्यभाव से परिणत...** ये तीन शल्यरहित जिसकी दशा होती है। त्रिकाली आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव होकर निर्मल शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द की

दशा (होती है)। जैसे समुद्र के किनारे ज्वार आता है, वैसे आत्मा की पर्याय में, वर्तमानदशा में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है, उसे निःशल्यरूप से परिणमित कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ऐसे निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही... महामुनि सन्तों को ही निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। आहाहा! व्यवहार प्रतिक्रमण करे, मिच्छामि... उसे नहीं। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, उसके अनुभव में शल्यरहित होकर परिणति करे, पर्याय में वीतरागी दशा उत्पन्न करे, उसे निःशल्यभाव से परिणत तपोधन, परमार्थ प्रतिक्रमण कहा गया है। आहाहा!

प्रथम तो, निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा... क्या कहते हैं? यह परमात्मा जो स्वयं आत्मा, वह तो निःशल्य है। उसके स्वरूप में शल्य है नहीं। आहाहा! परमात्मा—आत्मा उसे कहते हैं कि जो निश्चय से प्रथम अर्थात् मुख्य तो यह कहना है कि भगवान् आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति—ऐसा जो निःशल्यस्वभाव, वह परमात्मा है अर्थात् वह आत्मा है। क्या कहा समझ में आया? यह आत्मा है, वह निःशल्य आत्मा परमात्मा ही है। आहाहा! रागादि तो नहीं परन्तु अल्पज्ञता भी उसमें नहीं है। ऐसा जो यह आत्मा निःशल्यभाव से (विराजमान है)। आहाहा! क्या कहते हैं।

निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा... आहाहा! यह आत्मा जो अन्दर है, उसे तो परमात्मा ने निःशल्य परमात्मस्वरूप ही कहा है। उसमें मिथ्यात्व, निदान, माया, क्रोध, और राग, उसके परमात्मस्वरूप / द्रव्यस्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यक्धर्म की पहली दशा... आहाहा! जन्म के अन्त को लाने की पहली दशा (अर्थात्) सम्यग्दर्शन। उसका जो विषय आत्मा है, वह तो निःशल्य परमात्मा है। आहाहा! किसका? यह (निज आत्मा)। भगवान् हो गये, उनकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो पहले से उठाया है। मूल बात यह कहनी है कि सच्चा धर्म और सच्चा निःशल्यपरिणमन किसे होता है? कि जो प्रथम अपने आत्मा को निःशल्य परमात्मारूप से जानता है उसे। आहाहा!

दूसरी बात यह कहनी है कि ऐसा परमात्मा कहते हैं, निश्चय से तो वास्तव में

निःशल्यस्वरूप परमात्मा है। आहाहा! अन्दर भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप केवल सत्य और पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, ध्रुवस्वरूप भगवान अनादि-अनन्त एकरूप जिसकी स्थिति है, ऐसा निःशल्य परमात्मा निश्चय से तो यह परमात्मा निःशल्य है, शल्यरहित ही है। आहाहा! उसे शल्यवाला मानना, मनवाला मानना, रागवाला मानना, पैसावाला मानना, वह तो मिथ्यादर्शन शल्य है। आहाहा! मिथ्या-श्रद्धा की महाशल्य। चौरासी में भटकने की शल्य है। क्योंकि आत्मा तो निःशल्य परमात्मा है। किसका? प्रत्येक का। परमात्मा हो गये, उनकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

वास्तव में मुख्य मुद्दे की बात यह है कि निःशल्यस्वरूप परमात्मा... आहाहा! परमस्वरूप जो आत्मा अन्दर भगवत्स्वरूप अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, ऐसी शक्तियों का सागर भगवान आत्मा निश्चय से तो शल्यरहित ही परमात्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कठिन पड़ता है। यह तो दया पालना और व्रत करना और भक्ति करना, यह सब राग, स्वरूप में है ही नहीं। यह तो निःशल्य परमात्मा है। आहाहा! कठिन काम है।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण कब होगा?

यह आत्मा शरीर, वाणी, मन, कर्म, लक्ष्मी-पैसे से तो भिन्न हैं, वे मेरे नहीं परन्तु अन्दर पुण्य दया, दान और व्रत के भाव भी मेरे नहीं हैं, मुझमें नहीं हैं, उनमें मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, मुख्य बात तो यह कहनी है कि निःशल्यस्वरूप परमात्मा, यह आत्मा है। आहाहा! इसमें समझ में आया? यह देह तो मिट्टी-धूल है। पैसा-वैसा वह तो मिट्टी-धूल, जगत की जड़ पुद्गल मिट्टी है। वह मेरे हैं, यह मान्यता तो मिथ्यात्व शल्य है। मिथ्यात्व शल्य है, वही अप्रतिक्रमण है अर्थात् दोष है। आहाहा! तदुपरान्त अन्दर में माया, निदान, पुण्य और पाप के भाव मुझे करने योग्य है और यह पुण्य करूँ तो इसका फल मुझे कुछ स्वर्ग आदि या पैसा आदि, धूल आदि मुझे मिलेगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उस मिथ्यात्वभाव के शल्य से रहित परमात्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ ही जाते हैं। एक जाए तो तीनों साथ में जाते हैं।

निःशल्लीकरणेन-ऐसा कहा है न ? पहले स्थानकवासी में तस्सउत्तरी किया था ? नहीं किया । तस्सउत्तरी आता है । पहला णमो अरिहंताणं, पश्चात् तिक्खुत्तो पश्चात् तस्सउत्तरी करणेन । उसमें निःशल्लीकरणेन (अर्थात्) शल्यरहित होकर मैं मेरा कायोत्सर्ग अर्थात् राग से दूर होकर स्वरूप में स्थिर होता हूँ । आहाहा ! तस्सउत्तरी किया था या नहीं ? न्यालभाई ! नहीं किया होगा । पैसा आदि में निवृत्त कहाँ थे । आहाहा !

मुमुक्षु : मिथ्या जो शल्य है....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन शल्य है । मिथ्याशल्य, निदानशल्य कि यह कुछ पुण्य करूँ तो इसका फल मुझे वहाँ अच्छा मिले । (और तीसरी मायाशल्य है) ।

मुमुक्षु : यह तो मिथ्यात्वशल्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निदानशल्य की बात और निदान... है । और मायाशल्य, कपट, कुटिलता । कपट करके सरलता बतलाना, वह भी एक शल्य है । आहाहा !

मुमुक्षु : माया, क्रोध, मान....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों शल्य एकसाथ ही है ।

यहाँ तो दूसरा कहना है कि यह जो आत्मा जो अन्दर वस्तु है, जिसे नौ तत्त्व में आत्मतत्त्व कहते हैं, वह तत्त्व तो निःशल्यस्वरूप परमात्मस्वरूप ही है । आहाहा !पाँच, पचास करोड़ रुपये, बड़ा बँगला पचास-पचास लाख का, स्त्री, पुत्र और धन्धा... ओहोहो ! फला-फूला । पाप में फला-फूला दिखायी दे । पाप में ।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु ! मुख्य बात यह कहनी है कि **प्रथम तो, निश्चय से...** वास्तव में **निःशल्यस्वरूप परमात्मा को...** यह आत्मा निश्चय से तो निःशल्यस्वरूप परमात्मा है । उसे व्यवहार से यह शल्य लागू पड़ गये हैं, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! सूक्ष्म बात, बापू ! वीतरागमार्ग । वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म । यह बाहर से ऐसा करो, यह किया, यह किया, यह किया... पैसा उगाहना, मन्दिर बनाना, उसमें लाभ मानना... आहाहा ! यह मिथ्यात्वशल्य है ।

जगत की चीज़ जगत के कारण टिककर बदलती है । दूसरे प्रकार से कहें तो कोई द्रव्य निकम्मा नहीं है । अर्थात् क्या ? कोई भी द्रव्य अपनी पर्याय की अवस्था के कार्यरहित नहीं है । आहाहा ! कहाँ जाना जगत को ? जगत में, परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा

कहते हैं कि इस जगत में कोई भी द्रव्य निकम्मा नहीं है अर्थात् पर्यायरूपी कार्यरहित द्रव्य नहीं है। द्रव्य और गुण तो सब त्रिकाली हैं परन्तु उनका कार्य-पर्यायरूपी कार्यरहित द्रव्य नहीं है, उसे दूसरे ऐसा कहते हैं कि इसकी पर्याय, इसका कार्य मैं करूँ, यह मिथ्यादर्शनशल्य और महापाप है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

सत्यस्वरूप परमात्मा, जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा कहा, दूसरों ने वह कहा नहीं। परमेश्वर जिनेश्वर सर्वज्ञ वीतराग ने जो आत्मा कहा, वह निःशल्यस्वरूप परमात्मा है। आहाहा! उसमें राग का अंश नहीं और राग मेरा, ऐसा मिथ्यात्व नहीं और राग करूँ तो उसका कुछ फल मिले, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं। आहाहा! थोड़ा परन्तु बहुत समाहित किया है। अन्दर है या नहीं? आहाहा!है न? अन्दर है। निश्चय है न? ... है न? आहाहा! बात तो एक यह सुननी चाहिए, प्रभु! अन्दर भगवान जो आत्मा है, वह तो तीन शल्यरहित ही है। त्रिकाल। चाहे तो निगोद में हो, प्याज में हो, लहसुन में हो परन्तु जिसे आत्मा कहते हैं, परमात्मा कहते हैं... आहाहा! वह आत्मा तो निःशल्यस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुरुआत....

पूज्य गुरुदेवश्री :नहीं रखा? राग से रहित होकर निःशल्यस्वरूप मेरा है, ऐसी अन्तर्दृष्टि और अनुभव करना, वह करने का है। बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! है या नहीं इसमें? न्यालभाई! यह न्याल करने का रास्ता है। सब सब अन्य मार्ग में... हैं। भटकने के। आहाहा!

मुमुक्षु : अब क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कल ही कहता था कि पति-पत्नी दो ही हैं। पैसे बहुत हैं। करोड़, दो करोड़ दे दे तो। परन्तु उसे कुछ कह नहीं सकते। पति-पत्नी दो ही हैं। चार करोड़ से ऊपर रुपये हैं उसके पास। धूल-धूल, मिट्टी। वह मिट्टी मेरी है और मैं उसका हूँ और उसे मैं खर्च कर सकता हूँ, रक्षण कर सकता हूँ, उसका ब्याज कमा सकता हूँ और किसी जगह लगाकर बहुत पैसा अर्थात् व्यापार में भी किसी-किसी को पाँच-दस लाख देकर रुपयों का ब्याज और आधा भाग, ऐसा करके सब व्यवस्था मैं कर सकता हूँ - यह सब मान्यता मिथ्यादर्शन शल्य है।

मुमुक्षु : हम करते हैं, वह कुछ तो सत्य होगा या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य है न, सत्य है। मिथ्याश्रद्धा है, यह सत्य है। मिथ्याश्रद्धा, यह सत्य है। वह मिथ्याश्रद्धा झूठ नहीं, मिथ्याश्रद्धा सच्ची है। आहाहा! गजब काम, भाई!

वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर का हुकम है, उनकी आज्ञा में दिव्यध्वनि में यह आया है, वह सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! एक लाईन में महा (बहुत) भरा हुआ है। सवेरे यह आया था न कि आत्मा परमार्थ से स्वयं से अकारक है। सवेरे आया था न? आत्मा स्वयं से अकारक है। वही यह बात है। आहाहा! वह निमित्त परद्रव्य पर इसका लक्ष्य जाता है, इसलिए वह विकार खड़ा करता है, वह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध खड़ा करता है, तब उस राग और विकार का कर्ता मिथ्यादृष्टि होता है। उसके स्वभाव में राग का करना और राग के फल को चाहना, ऐसा उसके स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? है इसमें? यह तो पहली लाईन का अर्थ होता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े... परन्तु सब बातें... यह तुमने पाँच लाख दिये थे और बारह आने के ब्याज से अभी तक खाया। अब मूल रकम है, वह तो लाओ। ब्याज एक ओर रहा, रकम (लाओ)। रकम नहीं है। ब्याज बारह महीने दूँगा। पहले बारह आने था न, आठ आने (था), अब बढ़ गया है। मुद्दे की रकम है? इसी प्रकार यह मुद्दे की रकम निःशल्य परमात्मा है या नहीं? आहाहा! या राग, पुण्य, दया, दान, विकल्प यही है? आहाहा! कठिन काम, प्रभु! क्या हो? कम हुए। ... थोड़ा। ... आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह जाए कहाँ? आहाहा!

प्रथम तो,... मुख्य बात यह कहनी है कि निश्चय अर्थात् वास्तव में तो सच्ची, सत्य बात कहें तो निःशल्यस्वरूप परमात्मा है। स्वयं परमात्मा निःशल्य स्वरूप ही परमात्मा है। आहाहा! सुना न हो तो जँचे कहाँ से? ...आहाहा! यह दान का आता है या नहीं? दान अधिकार में। वहाँ आया है न? ... पद्मनन्दिपंचविंशति

मुमुक्षु : खुरचन की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : खुरचन की बात है। मिट्टी का जो यह वासाण - हंडी है, उसमें

चावल की खिचड़ी जरा जल जाती है। यह तो चावल-खिचड़ी जो हो वह खाये। फिर वह जली हुई खुरचन खाये। जली हुई को खुरचन कहते हैं। पद्मनन्दि में सिद्धान्त है। वह खुरचन निकाल डाले, तब नीचे नहीं डालते। हमारे यहाँ पालेज में हमारी दुकान के पीछे एक मुसलमान था। वह पत्थर का ऐसा रखता था। पत्थर का... जो बड़ा-घटा (हो वह) इसमें डाले। बाहर डाले तो धूल हो जाए न! यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। हमारे पालेज की बात है। हमारी दुकान थी, उसके पीछे था। वह खुरचन में डाले। वह खुरचन अकेला कौआ नहीं खाता। कुत्ता अकेला खाता है। अकेला वह खावे और दूसरा आवे तो भौंकने लगे। यदि दूसरा कुत्ता आवे तो भौंकने लगे। कौवे का ऐसा स्वभाव नहीं है। वह जली हुई खुरचन अकेला नहीं खाता। दो-पाँच सबको कांव.. कांव.. कांव.. करके खाता है। वहाँ पद्मनन्दिपंचविंशति में दृष्टान्त दिया था। पद्मनन्दी मुनि भावलिंगी सन्त, दिगम्बर मुनि हैं। वह खुरचन अकेला खाये, वह कुत्ता कहलाता है और उस खुरचन को इकट्ठे करके खाये वे कौवे। इसी प्रकार यह खुरचन बाहर की धूल तुझे खुरचन मिली है। क्यों? कि पूर्व में तेरी शान्ति जली थी, तब यह पुण्यभाव हुआ था। तेरी शान्ति जली थी, यह शुभभाव जली खुरचन है। इस शुभभाव में से यह पैसा मिला - धूल। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खुरचन कहा, इसी प्रकार पूर्व के पुण्य के कारण (संयोग) मिला है, परन्तु प्राप्त हुई चीज़ है, वह पाप है। यहाँ मिला हुआ, वह परिग्रह है। चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह और दस प्रकार के बाह्य परिग्रह हैं। उसमें प्राप्त हुई चीज़, वह पाप है। मिली है, वह पूर्व के पुण्य के कारण परन्तु मिली है, वह पाप है। इसलिए मिली हुई चीज़ोंवाला पापी है। वह अन्दर पुण्यवन्त नहीं है। उसे ऐसा कहा कि खुरचन कौआ अकेला नहीं खाता। उसी प्रकार तुझे कुछ पूर्व के पुण्य के कारण वर्तमान में पाप मिला हो, पूर्व के पुण्य के कारण वर्तमान में पाप (बाह्य परिग्रह मिला हो)... यह क्या कहा? पूर्व के पुण्य के शुभभाव, परमाणु पड़े थे। वह शुभ। मिला वह पुण्य नहीं परन्तु चीज़ मिली है, वह परिग्रह पाप है। जो परिग्रह है, वह पाप है। उस पाप की खुरचन में यदि अकेला खायेगा... आहाहा! और यदि भाग नहीं करेगा तो कौवे से भी जाएगा। वहाँ ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : कौवे में से जाएगा, इसी प्रकार बनियों में से जाएगा, ऐसा नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया तो कहाँ रहा अब । बनिया था कब ? अरे ! जगत को कहाँ बेचारा... कहाँ का कहाँ भटकता है । वहाँ ऐसा कौवे का कहा है, आचार्य ने कहा है, हों ! मुनि स्वयं भावलिंगी सन्त हैं, नग्न मुनि दिगम्बर हैं, उनकी पुकार है कि यह प्राप्त हुई चीज़ है, वह पाप है । वह तुझे मिला है । पूर्व का पुण्य था, परन्तु मिला है, वह पाप—परिग्रह है । परिग्रह है अर्थात् पाप है । उस पाप में यदि पाप के परिणाम से खुरचन अकेला खर्च करेगा तो कौवे में से जाएगा, ऐसा है ।

यहाँ तो इससे आगे बढ़कर कहते हैं... आहाहा ! कि उन देने के परिणाम में जो पुण्य का भाव हुआ, वह पुण्य परिणाम मेरा है, यह भी मिथ्यादर्शन शल्य है । आहाहा ! दुनिया कहाँ पड़ी और मार्ग कहाँ रह गया ? नाम धरावे जैन; जैन की गन्ध की खबर नहीं होती । समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो यह कहते हैं ।

वहाँ जरा शुभभाव कराने को ऐसा कहा । पाप की वस्तु मिली, उसे घटाने के लिए, राग को घटाने के लिए वहाँ ऐसी बात की है परन्तु राग घटा है, वह पुण्य है । वह धर्म है और उससे मुझे लाभ है, ऐसा माने वह मिथ्यात्व का शल्य है । जो त्रिकाल महा शल्य संसार में भटकने का कारण है । आहाहा ! समझ में आया ? यह यहाँ कहा ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प है, वह पाप है । मैंने दिया, मैंने पैसे दिये, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है । पैसे कहाँ तेरे थे ? वे तो जड़ के हैं । वे पैसे मेरे हैं, यह मान्यता मिथ्यात्व शल्य है और वह पैसे मैं दूसरे को देता हूँ... वे तो जड़ हैं, जड़ का स्वामी होवे तब देता हूँ, ऐसा मानता है । यह तो मिथ्यात्व शल्य है । आहाहा !

मुमुक्षु : शल्यरहित मिथ्यात्व कौन सा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व वही शल्य है । शल्यरहित भगवान आत्मा है, वह तो यहाँ सिद्ध करना है न ? आत्मा शल्यरहित है । वह पुण्य और पाप मेरे हैं, ऐसी मान्यतारहित और पुण्य-पापरहित है । वह पुण्य और पाप मेरे हैं, इससे रहित और पुण्य-पाप मेरे मैं करता हूँ, मुझे उसमें लाभ होता है, इससे रहित आत्मा है । आहाहा ! कठिन काम है, भाई ! जगत को बाहर में धमाल हो-हा (करना सुहाता है) । वे मुरझा जानेवाले हैं, मरकर सूख जानेवाले हैं । आहाहा ! इसमें सुख दिखता है, वे सब मुरझा जानेवाले हैं ।

यहाँ यह कहते हैं, प्रभु तो शल्यरहित है। आहाहा! जिसमें तीन शल्य की गन्ध नहीं, ऐसा तू परमात्मा अन्दर है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मा, उन्हें व्यवहारनय के बल से... अब आया। निश्चय से शल्यरहित परमात्मा स्वयं है, यह सत्य है। परन्तु व्यवहारनय के बल से, अब व्यवहारनय के बल से कर्मपंकयुक्तपना होने के कारण... कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से होने के कारण... आहाहा! (-व्यवहारनय से कर्मरूपी कीचड़ के साथ सम्बन्ध होने के कारण) 'उसे निदान, माया और मिथ्यात्वरूपी तीन शल्य वर्तते हैं'... व्यवहार से। आहाहा! भगवान तो निःशल्य परमात्मस्वरूप ही है। आत्मतत्त्व है, वह (ऐसा है), यह निश्चय है परन्तु उसे व्यवहारनय से अर्थात् पर के आश्रय से होनेवाली दशा और उस दशा को अपनी मानना, ऐसी व्यवहारनय से तीन शल्य... तीन युक्त होने से तीन सहित व्यवहारनय से गिनने में आता है। आहाहा! है... ?

दो नय कहे हैं। निश्चयनय से परमात्मा निःशल्यस्वरूप है परन्तु कर्म और निमित्त की अपेक्षा से कर्म के सम्बन्ध के कारण उसमें व्यवहारनय से मिथ्यात्व, निदान, माया, इन शल्यसहित व्यवहारनय से दिखता है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से तो रहित ही है परन्तु व्यवहार के कारण यह अनादि से अज्ञानी जैन का साधु हुआ, दिग्म्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत लिए परन्तु वह महाव्रत का राग है, वह दुःख है। उसे स्वयं को सुख का कारण मानकर मिथ्यात्व का सेवन किया है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! यह सुनना कठिन पड़े, ऐसा है। सुनने में एक तो मिले, ऐसा नहीं है। बाहर की हो-हा.. आहाहा!

भगवान आत्मा निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा... स्वरूप होने पर भी व्यवहारनय के बल से... पर की-निमित्त की अपेक्षा को लेकर, कर्मयुक्त होने से तीनों शल्यसहित सम्बन्धवाला होने के कारण, वे तीन शल्य वर्तते हैं... पर्याय में तीन शल्य वर्तते हैं। द्रव्य और गुण में नहीं। अरे रे! अब ऐसी बातें। द्रव्य जो वस्तु भगवान आत्मा, जो परमात्मा हुए, वे परमात्मा अन्दर था, वह हुआ। अन्दर था, वह हुआ। परमात्मा कहीं बाहर से नहीं आता। वह परमात्मा-शक्ति-स्वभाव था, वह प्रगट हुआ। इसी प्रकार यह परमात्मस्वरूप ही है परन्तु व्यवहारनय से कर्म के युक्त के सम्बन्ध के कारण व्यवहार से तीन शल्य वर्तते हैं। आहाहा! है? तीन शल्य वर्तते हैं... वापस व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं

है। व्यवहार झूठा है और वह तो पर्याय में भी परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

तीन शल्य वर्तते हैं... पर्याय में, ऐसा कहा। निश्चय से परमात्मस्वरूप होने पर भी व्यवहारनय से... परचीज़ है, उसके सम्बन्ध में होने से, उसे वर्तमान में भी तीन शल्य वर्तते हैं। आहाहा! ... बहुत कहा। निश्चय और व्यवहार। अरे रे! जीव को कहाँ पड़ी है? क्या होगा मेरा? यहाँ से मरकर कहाँ जाऊँगा? देह छूटने का अवसर है, अब अधिक लम्बा कुछ है? पचास-साठ वर्ष हुए, वह पचास-साठ वर्ष अब कोई जीने वाला नहीं है। आहाहा! देह तो छूटनेवाला है। यह मिथ्यात्व शल्य विपरीत मान्यता सेवन करके... नरक और निगोद, कौवा और कुत्ते के भव में भटकेगा। वापस अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना मुश्किल (पड़ेगा), ऐसी दशा होगी। भाई! आहाहा! है?

ऐसा उपचार से कहा जाता है। आहाहा! यह क्या कहा? भगवान आत्मा निश्चय से परमात्मस्वरूप होने पर भी व्यवहारनय से कर्म के सम्बन्ध से शल्यवाला वर्तता है, ऐसा उपचार से / व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! यह संसार उपचार से आत्मा को कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो परमात्मा हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा ही है। व्यवहारनय से उपचार से तीन शल्यवाला कहने में आता है। आहाहा!

‘तीन शल्य वर्तते हैं’ ऐसा उपचार से कहा जाता है। मुझे तो दूसरा कहना है। तीन शल्य व्यवहार से वर्तते हैं, ऐसा कहा है परन्तु व्यवहार से पैसेवाला, शरीरवाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला वर्तता है, यह बात यहाँ नहीं (की है)। आहाहा! जिसे सम्बन्ध नहीं है, स्त्री का आत्मा अलग, तेरा आत्मा अलग; उस शरीर के रजकण अलग, तेरे शरीर के रजकण अलग। अनन्त काल में कहीं मेल नहीं मिलता? इसलिए वे मेरे हैं, इस मान्यता में वर्तता है, परन्तु उस चीज़ में यह वर्तता नहीं है। आहाहा! समझ में आया इसमें? भाषा तो देखो! टीका... आहाहा!

मुमुक्षु : इस गाथा में तो उपचार अर्थात् झूठी बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार है। उपचार भी व्यवहार। व्यवहार कहो या उपचार कहो, दोनों हैं। नहीं है, ऐसा नहीं है। त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा है, उसकी अपेक्षा से सच्चा है। त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा है परन्तु पर्याय में वर्तता है, इस अपेक्षा से नहीं है, ऐसा नहीं है। संसार और शल्य पर्याय में नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा काम है।जैनधर्म मेंभगवान की मूर्ति हो, एक फोटो हो उसकी पूजा करे, भक्ति करे। हो गया धर्म, जाओ। वह भटक मरता है तेईस घण्टे। उसमें धूल भी धर्म नहीं है, सुन न! उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य है और पुण्य है, वह मेरा है, यह तो मिथ्यात्व शल्य है। आहाहा! वह भी व्यवहार से वहाँ पर्याय में है। निश्चय में-वस्तु में है नहीं। आहाहा!

यहाँ क्या कहना है ? कि तेरी पर्याय में वर्तता है, उसे उपचार कहते हैं। वस्तु यह शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, बँगला, मकान कहीं तेरी पर्याय में नहीं वर्तते। वे तो उनके कारण वर्त रहे हैं। तेरे कारण नहीं वर्त रहे। इसलिए वे तुझमें वर्तते हैं, ऐसा हम नहीं कहते। आहाहा! और तेरे कारण वे वर्तते हैं, यह तो हम कहते ही नहीं। आहाहा! तुझमें व्यवहारनय से कर्म का सम्बन्ध होने से तीन शल्य वर्तते हैं, ऐसा कहते हैं। वे तीन शल्य वर्तने पर कर्मसहित वर्तते हैं, स्त्रीसहित वर्तते हैं, परिवारसहित वर्तते हैं, लक्ष्मीसहित वर्तते हैं, ऐसा हम व्यवहारनय से नहीं कहते। वे तो उन्हें वर्तने को और तुझे वर्तने को कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! यह कैसा उपदेश होगा!

मुमुक्षु : है उसे असद्भूत व्यवहार कैसे कहा जाए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : असत् है। इस वस्तु की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं। इस स्वद्रव्य की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं, अक्षेत्र हैं, अकाल हैं, अभाव हैं। उनकी अपेक्षा से वे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं। इसकी अपेक्षा से अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल-अभाव हैं। इस आत्मा की पर्याय में हैं, ऐसा कहा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? इसकी पर्याय में वर्तता होवे तो तीन शल्य वर्तते हैं। आहाहा! ऐसा उपचार से अर्थात् व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! इसलिए वह व्यवहार से और उपचार से जो पर्याय में कहा जाता है उसे... **ऐसा होने से ही तीन शल्यों का परित्याग करके...** क्योंकि वे तो पर्याय में हैं, इसलिए बदल सकती है। इसके द्रव्य-गुण में नहीं। आहाहा! यह पुण्य और पाप के परिणाम के शल्य मेरे हैं और मैं इनका हूँ, ऐसे शल्य का त्याग करके... **इन तीन शल्यों का**

परित्याग करके... यह क्या कहा ? स्त्री, पुत्र, पैसे को छोड़कर, ऐसा नहीं कहा क्योंकि वे तो छूटे पड़े हैं। वे कहीं तेरे हैं नहीं। कुछ लेना और देना (है नहीं)। आहाहा! यह पैसा, तेरा बँगला, यह बगीचा, यह तो धूल उसके कारण से है। वह तुझमें है नहीं। तेरी पर्याय में वह तो है ही नहीं, वह तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में वर्तते हैं। तुझमें वर्तता होवे तो व्यवहारनय से शल्य वर्तते हैं। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, बापू! परन्तु क्या हो ? सवेरे प्रतिक्रमण की व्याख्या थी। यह भी प्रतिक्रमण की व्याख्या है। प्रतिक्रमण कहो, या धर्म कहो। आहाहा!

इन तीन शल्यरहित होना, वह धर्म है। तीन शल्यसहित रहना, वह अधर्म और संसार है। समझ में आया ? यह सब... पैसा-वैसा बहुत, करोड़ों रुपये, ये बँगले बड़े पचास-पचास लाख के और करोड़ के। ये... कहाँ बात करना ? यह कहाँ तेरी पर्याय में है ? यह तो उनके द्रव्य-गुण-पर्याय में वर्तते हैं। तेरी पर्याय में तो ये मेरे हैं, ऐसा शल्य है, उसमें तू वर्तता है। उस शल्य को त्याग, तेरी पर्याय में होवे, उसे त्याग। ऐसा त्याग-ग्रहण - पर का त्याग-ग्रहण तो है ही नहीं। आहाहा! आत्मा में पर का त्याग और ग्रहण तो है ही नहीं। यह शल्य है, उसे छोड़। आहाहा! ऐसा सुनना बहुत सूक्ष्म पड़ता है...

मुमुक्षु : भाई

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाई थे न ? हाँ, यह सत्य। वे ... लाये थे। मेहमान लेकर आते हैं। अब इसमें क्या समझे ? बड़ी शत्रुंजय की यात्रा करने आये हों, ९९ बार यात्रा करे तो कल्याण हो जाए। यहाँ कहते हैं, अनन्त बार यात्रा की... राग की मन्दता होवे तो पुण्य है और पुण्य मेरा है, पुण्य धर्म है तो यह मिथ्यात्व है, लो! आहाहा! यह स्वीटजरलैण्ड में मिले, ऐसा नहीं है, हों! वहाँ तो पाप मिले ऐसा है। कहाँ गये हिम्मतभाई ? यह तुम्हारे भतीजे की बात करते हैं। कहते थे, पति-पत्नी दो जनें। रुपये करोड़ों हैं। एकाध करोड़ धर्म के नाम पर दे देते हों तो ? क्योंकि पाप से तो पैदा किया है और पाप से रखते हैं और वापस किसी को देंगे तो पाप देंगे। ऐसा कोई कहता था... भाई या कोई कहता था। आहाहा! अरे! क्या हो ?

अनन्त काल से भटकता इन शल्यों का त्याग कहते हैं। पर का त्याग कर, ऐसा नहीं कहा। पर का त्याग तो है ही, परन्तु मेरा (निज का) माने तो भी त्याग ही है। वे तुझमें नहीं हैं, उनमें तू नहीं है, परन्तु तेरी पर्याय में तीन शल्य हैं, अस्ति है। है, उसका त्याग कर।

आहाहा! समझ में आया? व्यवहार की बातें... ऐसा लगे। सभा भरे, लाखों लोग एकत्रित हों, हो-हा... हो-हा... ऐसी बात।

‘तीन शल्य वर्तते हैं’ ऐसा उपचार से कहा जाता है। ऐसा होने से ही... अर्थात् उपचार और व्यवहार से ही तीन शल्यों का परित्याग... यहाँ तो वस्तु में है नहीं। निःशल्य परमात्मस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके तीन को छोड़ दे। आहाहा! यह व्यवहार का कथन है। यह जब अन्दर में स्थिर होता है, (तब) ये तीन उत्पन्न नहीं होते, उन्हें छोड़ता है— ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो ऐसा अर्थ है। परित्यागी का अर्थ यह है। आनन्दस्वरूप भगवान में स्थिर होता है, तब मिथ्यात्व शल्य उत्पन्न नहीं होती, उसका परित्याग करता है, ऐसा कथनमात्र से कहने में आता है। आहाहा!

परित्याग करके जो परम योगी... परम योगी मुनि धर्मात्मा परम निःशल्य स्वरूप में रहता है,... परम निःशल्य स्वरूप भगवान, राग के विकल्परहित चीज़ में जो अन्दर रहता है, स्वरूप में रहता है,... उसका नाम प्रतिक्रमण है। उसका नाम सामायिक और उसका नाम धर्म है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! है? स्वरूप में रहता है, उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है,... शल्य से... निःशल्यस्वरूप भगवान में स्थिर हुआ, इसलिए उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है,... आहाहा!

कारण कि उसे स्वरूपगत (-निज स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला) वास्तविक प्रतिक्रमण है ही। उसे स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला वास्तविक प्रतिक्रमण है। पर के साथ स्थिर था, वह अप्रतिक्रमण था। स्वरूप में स्थिर है, आनन्दस्वरूप भगवान... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र दशा में रहता है, उसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-११६

[अब इस ८७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं :]

(अनुष्टुप्)

शल्यत्रयं परित्यज्य निःशल्ये परमात्मनि ।
स्थित्वा विद्वान्सदा शुद्धमात्मानं भावयेत्स्फुटम् ॥११६॥

(हरिगीतिका)

त्रय शल्य का परित्याग कर निःशल्य जो परमात्मा-
में लीन जो विद्वान नित शुद्धात्मा भायें सदा ॥११६॥

[श्लोकार्थ :] तीन शल्यों का परित्याग करके, निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर, विद्वान को सदा शुद्ध आत्मा को स्फुटरूप से भाना चाहिए ॥११६॥

प्रवचन-८८, श्लोक-११६-११७, गाथा-८८, गुरुवार, मागशर शुक्ल ३, दिनांक २२-११-१९७१

८७ गाथा का कलश । कलश है न ? ११६वाँ कलश ।

शल्यत्रयं परित्यज्य निःशल्ये परमात्मनि ।
स्थित्वा विद्वान्सदा शुद्धमात्मानं भावयेत्स्फुटम् ॥११६॥

[श्लोकार्थ :] तीन शल्यों का परित्याग करके... यह तो मूल बात है न ! मिथ्या शल्य, निदान शल्य और माया शल्य । तीन शल्यों का परित्याग करके, ... परि अर्थात् समस्त प्रकार से त्याग करके । फिर से उत्पन्न न हो, इस प्रकार से (त्याग करके) । यह शब्द प्रयोग किया है—परित्याग करके । तीन प्रकार के शल्य छोड़कर, सर्वथा छोड़कर निःशल्य परमात्मा में... क्योंकि परमात्मस्वरूप जो है, वह तो निःशल्य है । अपना परमात्मस्वरूप, भगवत्स्वरूप, शुद्ध परमेश्वरस्वरूप, वह तो निःशल्य है । वस्तु है, वह तो निःशल्य है । वस्तु में शल्य नहीं, आवरण नहीं, वस्तु में कोई अल्पज्ञता भी नहीं, ऐसा

निःशल्य परमात्मा (स्वयं है)। आहाहा! यह बात जँचना कठिन (पड़ती है)। प्रथम सम्यग्दर्शन में, यह निःशल्य परमात्मा है, ऐसा इसे दृष्टि में—अनुभव में आना चाहिए। परमात्मा परमस्वरूप जो भगवान, उसमें कोई राग-द्वेष तो नहीं, शल्य नहीं। निःशल्य परमात्मा। पहले आ गया है। पहले आया था न?

निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा... कल पहली लाईन आयी थी। ८७ गाथा की पहली लाईन। आहाहा! चैतन्यस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा, परमस्वरूप परमात्मा, वह निःशल्य है। वस्तु में शल्य है नहीं परन्तु पर्याय में जो शल्य है, इसलिए कहते हैं **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** वस्तु है तो शल्यरहित परन्तु पर्याय में जो शल्य था, उसे छोड़कर **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** परमस्वरूप परमानन्दमूर्ति प्रभु, भगवत्स्वरूप में स्थित रहकर। यह प्रतिक्रमण, यह सामायिक, यह धर्म, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग यह है। आहाहा!

पहली बात यह की, त्रिशल्य परमात्मा परित्यागी। पर्याय में शल्य है परन्तु परमात्मस्वरूप त्रिकाली द्रव्य है, उसमें शल्य नहीं है। इसलिए परमात्मा का ध्यान करके और निःशल्य ऐसे परमात्मा में स्थित हो। **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** चैतन्यबिम्ब आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर-समुद्र, ऐसा जो परमात्मा स्वयं आत्मा, उसे सर्वथा शल्यरहित अर्थात् फिर से शल्य न हो, इस प्रकार। आहाहा! ऐसा काम है।

इसलिए **परमात्मा में स्थित रहकर, विद्वान को...** विद्वान उसे कहते हैं। आहाहा! बहुत शास्त्र को जाना हो, पढ़ा हो, दुनिया को समझाना-कहना आया हो, उसकी यहाँ बात नहीं है। यह विद्वान। निःशल्य परमात्मा में स्थिर रहे, वह विद्वान। आहाहा! वह पण्डित, विद्वान। भले जानपना थोड़ा हो, दूसरे को समझाना भी न आता हो... आहाहा! परन्तु निःशल्य परमात्मा में स्थिर रहे, वह विद्वान है। जो काम मोक्ष के लिए करना है, वह किया। आहाहा! मोक्ष के मार्ग का सेवन किया, वह विद्वान है। आहाहा!

विद्वान को सदा शुद्ध आत्मा को... आहाहा! पण्डित उसे कहते हैं कि **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर, विद्वान को सदा...** कोई क्षण ऐसा करके नहीं; सदा। आहाहा! **शुद्ध आत्मा को स्फुटरूप से...** वस्तु जैसी शुद्ध है, परमात्मस्वरूप ही है, उसे प्रगट स्फुटरूप से। पर्याय में प्रगट स्फुटरूप से... आहाहा! सदा आत्मा को स्फुटरूप से-

प्रगटरूप से (भाना चाहिए) । शक्ति और द्रव्यस्वभाव तो है, परमात्मा ही है परन्तु विद्वानों को पर्याय में प्रगट करके... शक्ति स्वभाव की व्यक्ति पर्याय में प्रगट करके **भाना चाहिए** । बहुत थोड़े शब्द हैं ।

सदा शुद्ध आत्मा को स्फुटरूप से... प्रगटरूप से, व्यक्तरूप से **भाना चाहिए** । इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग, इसका नाम भावप्रतिक्रमण है । यह तो ऐसे बहुत प्रतिक्रमण किये । वह प्रतिक्रमण नहीं । जिससे हटा और जिसमें बसा, उसमें से हटे नहीं, उसका नाम यहाँ प्रतिक्रमण कहने में आता है । आहाहा ! यह क्या कहा ? प्रतिक्रमण शब्द है न ? वह शल्य और विकार से हटा और त्रिकाली परमात्मा निःशल्य में बसा, उसमें स्थिर हुआ, उसने सदा आत्मा को स्फुटरूप से भाना चाहिए । पर्याय में वह परमात्मा है, ऐसी भावना करनी चाहिए । आहाहा ! ऐसा कठिन पड़े । परन्तु इसका कोई व्यवहार साधन नहीं होगा ? ऐसा साधन ! साधन यही है ; दूसरा साधन नहीं है । दूसरा कहने में आया हो, व्यवहार उपचार से कथन (आये हों), वह वास्तविक वस्तु नहीं है ।

जैसा यह प्रभु पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा अन्दर है, उसे स्वभाव है और परमात्मा की शक्ति है, उसे पर्याय में प्रगटरूप से परमात्मा की भावना करके प्रगट करना । आहाहा ! इसका नाम प्रतिक्रमण, इसका नाम प्रत्याख्यान, इसका नाम आत्मा की भक्ति, इसका नाम आत्मा की समाधि, इसका नाम आत्मा का ध्यान, इसका नाम आत्मा की भावना, आहाहा !

शुद्ध आत्मा को... जो त्रिकाल शल्यरहित प्रभु आत्मा को भाना अर्थात् त्रिकाली शुद्ध परमात्मा निःशल्यस्वरूप है, उसमें एकाग्र होना, यह परमात्मा की भावना है । भावना शब्द से विकल्प, ऐसा नहीं । भाना अर्थात् कल्पना से भाना, ऐसा नहीं । यह वस्तु भावस्वरूप, शुद्ध पूर्ण आनन्द का धाम 'स्वयं ज्योति सुखधाम' स्वयं चैतन्य प्रकाश और आनन्द का धाम है, उसे पर्याय में भाना । आहाहा ! उसे ध्येय बनाकर पर्याय में उसकी भावना करनी । निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प भाव करना, इसका नाम भावना, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण है । झूठा प्रतिक्रमण तो अनन्त बार किया, उसमें कुछ हुआ नहीं । आहाहा ! भव का अभाव हुआ नहीं । लन्दन का पत्र आया है, वीरचन्दभाई ! प्रेमचन्द लन्दन का पत्र आया है । बहुत प्रसन्नता बतायी है । भगवानजीभाई अभी वहाँ गये होंगे । मुम्बासा, लन्दन, वाँचन किया होगा लन्दन, पचास एक व्यक्ति इकट्ठे होने पर । आमन्त्रण थोड़ों को दिया था, जगह थोड़ी

थी। नहीं तो कहते हैं बहुत लोग (आते)। यह बात लन्दन में चली है। आहाहा!

घर में पुस्तकें बसायी हैं। टेपरिकार्डिंग कितनी ही बसायी हैं। टेपरिकार्डिंग कितनों को दिये। लन्दन में प्रचार करते हैं। बापू! यह मार्ग है। दूसरे मार्ग में जाएगा तो यह भव तो यह के यह रहेंगे - चौरासी के अवतार भवाटवी का तुझे भाव, यह भवाटवी का भाव भी अनादि का है, प्रभु! आहाहा! इससे रहित भाव हुए बिना भवाटवी टले, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत प्रसन्नता बतायी है। तीन-चार पन्ने आये हैं।

यह ११६वाँ कलश हुआ।

श्लोक-११७

(पृथ्वी)

कषायकलिरञ्जितं त्यजतु चित्तमुच्चैर्भवान्,
भवभ्रमणकारणं स्मरशराग्निदग्धं मुहुः।
स्वभावनियतं सुखं विधिवशा-दनासादितं,
भजत्वमलिनं यते प्रबलसन्सृतेर्भीतितः ॥११७॥

(हरिगीतिका)

भवभ्रमण का कारण तथा कामाग्नि से जो दग्ध है।
कषाय दुःख से जो रंगा उस चित्त को तू छोड़ दे ॥
जो कर्मवशता से अप्राप्त, स्वभाव में निश्चित सदा।
हे यती! तू प्रबल भव-भय से विमल आनन्द भज ॥११७॥

[श्लोकार्थ :] हे यति! जो (चित्त) भवभ्रमण का कारण है और बारम्बार कामबाण की अग्नि से दग्ध है—ऐसे कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को तू अत्यन्त छोड़; जो विधिवशात् (-कर्मवशात् के कारण) अप्राप्त है, ऐसे निर्मल *स्वभावनियत सुख को तू प्रबल संसार की भीति से डरकर भज ॥११७॥

* स्वभावनियत=स्वभाव में निश्चित रहा हुआ; स्वभाव में नियम से रहा हुआ।

श्लोक-११७ पर प्रवचन

११७ (कलश)

कषायकलिरञ्जितं त्यजतु चित्तमुच्चैर्भवान्,
 भवभ्रमणकारणं स्मरशराग्निदग्धं मुहुः।
 स्वभावनियतं सुखं विधिवशा-दनासादितं,
 भजत्वमलिनं यते प्रबलसन्सृतेर्भीतितः ॥११७॥

[श्लोकार्थ :] हे यति!... मुनि की मुख्यता से बात की है न ? हे यति!... हे मुनि ! हे स्वरूप का यत्न करनेवाले, जतन करनेवाले यति ! स्वरूप परमात्मा जो निःशल्य है, उसकी जतना, यतना, रक्षा करनेवाले यति ! जो (चित्त) भवभ्रमण का कारण है... आहाहा ! जो चित्त शल्यसहित है, वह भवभ्रमण का कारण है । आहाहा ! मिथ्यात्व शल्य, निदान शल्य, माया शल्य । जो (चित्त)... अर्थात् भाव । भवभ्रमण का कारण है... बाहर में संयोग को भवभ्रमण का कारण नहीं कहा । भवभ्रमण का कारण अन्दर की चित्त मलिनता है । पर्याय में मिथ्यात्व, रागादि की मलिनता, वह भवभ्रमण का कारण है । संयोगी चीज़ अनन्त हो, वह भिन्न है । वह कहीं भवभ्रमण का कारण नहीं है । आहाहा ! तेरी पर्याय में द्रव्यस्वभाव का अनादर करके, रागादि शल्य को अपना मानकर आदर करे, वह भवभ्रमण का कारण है । आहाहा ! प्रवृत्ति के कारण इसे ऐसी निवृत्ति लेना... आहाहा !

यह भवभ्रमण का कारण है... कौन ? मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्यानिदान और माया (शल्य), वह भवभ्रमण का कारण है । भगवान् द्रव्यस्वभाव त्रिकाल निरावरण और भव के स्वभाव के भाव से अभावरूप है । उसे पर्याय में भवभ्रमण के कारणवाले भाव से.. आहाहा ! और बारम्बार कामबाण की अग्नि से दग्ध है... आहाहा ! भगवान् आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप है । उसे बारम्बार विकल्प उत्पन्न करके... आहाहा ! पुण्य और पाप के विकल्पों को उत्पन्न करके कामबाण की अग्नि से दग्ध है... ये विकल्प के भाव हैं, वह कामबाण है, उनसे आत्मा अशान्ति में जल रहा है । आहाहा ! सूक्ष्म पड़ता है । कामबाण अर्थात् इच्छा । आत्मा में इच्छा नहीं है । आत्मा तो इच्छारहित शुद्ध है । उसे इच्छा के कामबाण । एक के बाद एक इच्छा के कामबाण से... आहाहा ! अग्नि से दग्ध है... इच्छा के बाण से, अग्नि से दग्ध है ।

भगवान् निर्मलानन्द शान्त, वह इन इच्छाओं के बाण से दग्ध है। आहाहा! चाहे तो यह शुभ-अशुभ की कल्पना हो, परन्तु उस इच्छा के बाण से शान्तमूर्ति भगवान् पर्याय में दग्ध अर्थात् जल गया है। आहाहा! इच्छारहित आत्मा है, उसे इच्छा के बाण से उत्पन्न करके और वर्तमान पर्याय में शान्ति से जल रहा है। द्रव्य तो द्रव्य है। आहाहा! परन्तु पर्याय में इच्छा का जाल खड़ा करके आत्मा की शान्ति जल रही है। आहाहा! इच्छारूपी अग्नि से 'क्या इच्छत खोवत अबे, है इच्छा दुखमूल।' 'क्या इच्छत खोवत अबे, है इच्छा दुखमूल।' आहाहा! यह इच्छा-वृत्ति का उत्पन्न होना, स्वभाव-स्वभाव की भावना के अतिरिक्त... आहाहा! अपने द्रव्य के अतिरिक्त अनन्त-अनन्त द्रव्य पर हैं, उनकी ओर के इच्छारूपी बाण से स्वरूप की पर्याय जल गयी है, जल रही है। शान्ति सुलगती है। पर्याय से, हों! वस्तु का शान्तिस्वरूप तो त्रिकाल ध्रुव नित्य है। समझ में आया ?

यह इच्छारूपी... आहाहा! बारम्बार कामबाण... बारम्बार अर्थात्? एक के बाद एक इच्छाएँ किया ही करता है। कहीं न कहीं, कहीं न कहीं। जैसे क्या कहलाता है वह? रहट में सांधे (जोड़े) न एक के बाद एक पुणी वापस एक। इसी प्रकार इसमें एक के बाद एक इच्छा की पुणी सांधा ही करता है। आहाहा! उससे आत्मा की शान्ति दग्ध है। चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। आत्मा निर्विकार शान्तस्वरूप का सागर, उसकी पर्याय में शुभाशुभभाव की इच्छा से वह जलता है, दाह है। आहाहा!

ऐसे कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को... रंजित है न? रंजित? इच्छारूपी कषाय, ऐसे कषायरूपी क्लेश, उनसे रंगा हुआ चित्त। रंजित है न? आहाहा! स्वभाव भगवान् वीतरागस्वरूप, वीतरागस्वभाव से रंगना चाहिए। वीतरागस्वभाव का रंग लगना चाहिए। वीतरागस्वभाव की मस्ती प्रगट होना चाहिए। उसके बदले राग के रंग से रंगा हुआ चित्त है। आहाहा! उसे तू अत्यन्त छोड़;... ऐसे राग से रंगा हुआ चित्त, चाहे तो शुभ हो, या अशुभ हो, ऐसे रंगे हुए राग से रंजित हुए चित्त को छोड़। आहाहा! परवस्तु छोड़, ऐसा नहीं कहा। परवस्तु तो छूटी हुई पड़ी ही है। शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, कर्म, यह कहीं आत्मा में चिपटे हुए नहीं हैं। आहाहा!

यह चित्त, पर्याय में रंगा हुआ चित्त है, उसे छोड़। कि क्यों? अत्यन्त छोड़। आहाहा! ऐसे राग को अत्यन्त छोड़ कि फिर से राग का अंकुर न हो। आहा! सन्तों की

वाणी अप्रतिहत है। राग का रँगा हुआ छूटने पर, फिर से राग का रंग लगे, ऐसा है नहीं, प्रभु! राग के रंग को अत्यन्त छोड़। स्वरूप में राग का रंग है ही नहीं, ऐसे स्वरूप की तुझे प्राप्ति होगी। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यह स्त्री छोड़, पुत्र छोड़, परिवार छोड़, धन्धा छोड़ – ऐसा नहीं कहा। वह तो छूटा हुआ ही है। ग्रहण कब किया है कि छोड़े? यह तो ग्रहण किया है। चित्त में कषाय का, इच्छा का भाव पकड़ा है। राग से रँग गया है। पर से रँगा हुआ नहीं है। परवस्तु तेरी पर्याय में स्पर्श भी नहीं करती। आहाहा! तेरी पर्याय में, हालत में परवस्तु स्पर्श ही नहीं हुई है, इसलिए उसे त्यागना, वह शब्द यहाँ है नहीं। मात्र तेरी पर्याय में, चित्त में राग का रंग रँग गया है। जो स्वरूप में नहीं है, ऐसा जो चित्त राग से रँगा हुआ, उसे अत्यन्त छोड़। **अत्यन्त छोड़;**... ऐसा कहा है। पहले में आया था न? परित्याग। पूर्ण रीति से त्याग कर। यह अत्यन्त छोड़। दूसरी भाषा कही। उसका ही कलश है न? उस गाथा का कलश है न? आहाहा!

यह तो भवभ्रमण से घबराये हुए की बातें हैं, बापू! भवभ्रमण। यह देह छूटकर कहाँ जाएगा? आत्मा तो नित्य है। कायम रहेगा। यह सब छोड़कर, देह का टुकड़ा भी साथ में नहीं जाएगा। लोग ऐसा कहते हैं न? वह जीव गया। जीव मर गया, ऐसा कहते हैं? यह सब पड़ा रहा। उसकी सब इकट्टी की हुई शामत। मनुष्य का जाल... आहाहा! घर प्रयोग की चीजें, स्त्री, पुत्र... आहाहा! अग्नि का घेरा डाला था, वह छूट गया। गया भटकने। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ जाएगा? भविष्य के अनन्त काल में अनन्त काल रहना है। भविष्य में अनन्त काल में तुझे अनन्त काल रहना है। तेरा नाश हो, ऐसा कुछ नहीं है। तब अब तुझे कहाँ रहना है? प्रभु! उसमें तो रहा अब, चित्त के रंगे हुए राग में तो अनन्त काल रहा। उससे तो दुःखी है।

अब **अत्यन्त छोड़;**... उसे छोड़। आहाहा! भवभ्रमण का नाश करना हो तो राग के रंग को छोड़। राग की प्रीति को छोड़। अस्थिरता का राग हो परन्तु उसकी रुचि और प्रीति है, उसे छोड़। आहाहा! **चित्त को तू अत्यन्त छोड़; जो विधिवशात्...** आहाहा! अब जो कर्म जड़ हैं, उनके वश पड़ा हुआ प्रभु तू, उस वस्तु की प्राप्ति नहीं, अप्राप्त है। कर्म के वश में पड़ा हुआ तुझे आत्मा अप्राप्त है। आहाहा! भाषा है न! आहाहा! तेरा जो चैतन्यस्वभाव परमात्मस्वरूप, उसे वश में न करके, कर्म के वश में रहा। कर्म के कारण, ऐसा नहीं कहा। कर्म के कारण भटकता है, ऐसा नहीं कहा। क्या कहा?

विधिवशात्... तू कर्म के वश हो गया है। ऐसे (आत्मा के) वश होना चाहिए। आहाहा! अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु, अनादि-अनन्त अकषायस्वभाव की मूर्ति के वश न रहकर तू कर्म के वश पड़ा है। कर्म ने तुझे वश में किया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कर्म के वशात्। आहाहा! (-कर्मवशात् के कारण) अप्राप्त है... तू अप्राप्त है। कर्म के वश पड़ा हुआ तुझे तो विकार की, दोष की, दुःख की प्राप्ति है। भगवान की तो अप्राप्ति है। आहाहा! यह तो शान्ति की बातें हैं। यह कहीं बड़ी कथावार्ता नहीं है। कारण नहीं बड़ा। आहाहा! यह तो अन्तर अध्यात्म की बात है। प्रेमचन्दभाई ने विचारे ने बहुत (लिखा है)। भगवानजीभाई ने परसों वाँचन किया था। बहुत प्रसन्न हुए। (बड़ा पत्र था)। आहाहा!

अरे! ऐसी बात कहाँ है? लोगों का पुकार यह है, कर्म के कारण भटक रहा है। चार गति में कर्म के कारण से भटकता है। प्रभु का वचन ऐसा है कि तू कर्म के वश पड़ा है, इसलिए भटकता है। ऐसा अन्तर है। आहाहा! कहाँ अन्तर है, यह सुननेवाले को खबर नहीं पड़ती और जी हाँ किया करता है। आहाहा! समझ में आया? स्थानकवासी में पहले व्याख्यान पढ़े न? तब पाँच-दस मिनट स्तुति करते हैं। 'कर्मों राजा कर्मों रंक, कर्म ने वाल्यो आढो अंक।' यह सवरे में बोले। फिर व्याख्यान चालू करे। अब ऐसा कि... यह पहले करते न! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू परमात्मा है न! उस परमात्मा के आश्रय में जाना चाहिए, वश पड़ा चाहिए। उसे छोड़कर तू कहीं वश तो है। किसके वश है? कि तू कर्म के वश पड़ा है। कर्म ने तुझे वश किया नहीं है। कर्म ने तुझे दबाया नहीं है। तू कर्म के वश में दब गया है। आहाहा! वे कहें कि निमित्त से नैमित्तिक होता है। निमित्त से नैमित्तिक न माने, वह मिथ्यात्व है। प्रभु! प्रभु! अभी समाज साधारण है, उसमें यह बात चलेगी। भाई! प्रभु का विरह है, इसलिए चाहे जिस तरह बात को चलावे, बापू! ऐसा नहीं चलता, भाई! निमित्त आवे, तदनुसार नैमित्तिक होता है—ऐसा न माने, वह मिथ्यात्वी है—ऐसा (वे) कहते हैं।

वीतराग की वाणी दिव्यध्वनि है, उससे नैमित्तिक ज्ञान होता है। अरे! भगवान! तू कर्म के वश पड़ा है, तुझे समझ में नहीं आता। कर्म का वश छोड़ तो यह वाणी कान में पड़े

परन्तु ज्ञान तो तुझसे होता है। वह भी ज्ञान परलक्षी, वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहाहा! दिव्यध्वनि कान में पड़े, वह तो परमाणु है। इससे यहाँ ज्ञान की पर्याय होती है, ऐसा तो नहीं। यहाँ उस काल में उसे ज्ञानपर्याय क्रम से क्रम काल में आनेवाली है, वह हो, तब वाणी निमित्त कही जाती है। वह ज्ञान की पर्याय हुई, वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है, क्योंकि वह अभी परवश का ज्ञान, परसत्तावलम्बी ज्ञान है। आहाहा!

परमार्थवचनिका में आया है न? भाई! परसत्तावलम्बी ज्ञान को धर्मी मोक्षमार्ग नहीं कहते। स्वसत्तावलम्बी को मोक्षमार्ग कहते हैं। है न? बनारसीदास। और यह केवली वचन अनुसार कहता हूँ, ऐसा लिखा है। अन्तिम बोल ऐसा लिखा है - केवली वचन अनुसार हैं ये वचन। आहाहा! बनारसीदास। समकित तो तिर्यच और सिद्ध का समकित तो समान है। समकित में क्या अन्तर है? आहाहा! चारित्र में-स्थिरता में अन्तर है।

यहाँ ऐसा कहते हैं... आहाहा! विधि अर्थात् कर्म। विधि अर्थात् कर्म के वशात्। उसके वशपने के कारण, प्रभु अप्राप्त है। ऐसे निर्मल स्वभावनियत... आहाहा! कर्म के वश पड़ा हुआ। अप्राप्त है, ऐसे निर्मल स्वभावनियत... स्वभाव में निश्चित रहा हुआ; स्वभाव में नियम से रहा हुआ। प्रभु! आहाहा! स्वभाव में रहा हुआ भगवान। उस स्वभावनियत सुख को तू प्रबल संसार की भीति से डरकर भज। आहाहा! क्या कहते हैं? प्रभु! तू स्ववश हो। परवश को छोड़कर, कर्म की अधीनता को, वशपने को छोड़कर ऐसी जो निर्मल स्वभावनियत... स्वरूप स्वभाव में निश्चित रहा हुआ स्वरूप। स्वभाव में नित्य रहा हुआ ऐसा सुख। आत्मा के स्वभाव में नियत अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। कर्म के वश पड़कर, वश रहकर प्रभु! तुझे दुःख होता है। उसे छोड़कर स्वभाव के वश में जा। वह स्वभाव कैसा है? कि निर्मल स्वभावनियत सुख... निर्मल स्वभाव में रहा हुआ सुख, निर्मल स्वभाव में नियत-निश्चय से रहा हुआ आनन्द। आहाहा!

जो विधिवशात् (-कर्मवशात् के कारण) अप्राप्त है ऐसे निर्मल स्वभावनियत सुख को तू प्रबल संसार की भीति से डरकर भज। इस ओर मुड़ जा। आहाहा! कर्म-जड़ के वश में... अब जो न दिखायी दे, उसकी बातें। कर्म इन्द्रियों से दिखायी नहीं देते। आत्मा का दुःख है, वह इन्द्रियों से दिखायी नहीं देता। आत्मा का सुख है, वह इन्द्रियों से दिखायी नहीं देता। आहाहा! भगवान! परन्तु है न? इन्द्रियों से दिखायी दे या न दिखायी

दे परन्तु वस्तु है या नहीं ? उस कर्म के आधीन हुआ है या नहीं ? क्योंकि तुझे आत्मा जो स्वभाव में रहा हुआ सुख, स्वभाव में नियत आनन्द रहा हुआ सुख, उसकी अप्राप्ति है, इसलिए तू पर के वश में पड़ा है, ऐसा है और परवश को छोड़ तो स्वभाव में रहा हुआ सुख प्रबल संसार की भीति से डरकर... आहाहा! ये चार गति के भव... ओहो! यहाँ से निकलकर कहाँ जाएगा ? प्रभु! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यच... आहाहा!

इस प्रबल संसार की भीति से डरकर... कर्म के वश पड़ा हुआ है, ऐसा जो आत्मा वह निर्मल स्वभाव नियत सुख है, उसे भज। उस आत्मा में आनन्द है, उसे भज। आहाहा! भाषा थोड़ी और भाव बहुत। ऐसे वश पड़ा है, उसकी अपेक्षा स्वभाव में नियत सुख है, वहाँ आ जा न! ऐसा कहते हैं। कर्म के वश पड़कर संसार में भटक रहा है, तो उस संसार के भय से डरकर... आहाहा! कहाँ उत्पन्न होऊँगा ? कहाँ जाऊँगा ? वहाँ से फिर मुझे कैसा भव मिलेगा ? मनुष्य भव गया, पश्चात् मनुष्यभव कब मिलेगा ? और मिले तो भी अनन्त बार मिल गया है। आहाहा!

भव, संसार के भव की भीति अर्थात् भय, उससे डरकर भज। आहाहा! दुःख से डरकर... यह तो नरक का, तिर्यच का दुःख, ऐसा नहीं। दुःख से डरकर भज, ऐसा नहीं। संसार पूरा परिभ्रमण का, चारों गतियाँ दुःखरूप हैं। आहाहा! चारों गति के। पूरा संसार लिया है न ? यह कहाँ नरक और तिर्यच का दुःख ही इतना है। स्वर्ग में भी राग का दुःख है। अकेली आकुलता है। आहाहा!

प्रबल संसार की भीति से... वापस ऐसा कहते हैं। उग्र संसार का डर ला। आहाहा! निर्मल स्वभावनियत सुख... कब मिले ? कि प्रबल संसार के डर से... तुझे संसार का डर लगे... आहाहा! अरे! मैं आत्मा हूँ तो सही। यह देह तो अमुक काल रहेगी, पश्चात् कहाँ जाऊँगा ? चौरासी के अवतार सब पड़े हैं। कहीं पता नहीं मिलेगा। ऐसे संसार के परिभ्रमण के दुःख से डरकर। स्वर्ग का सुख है, वह दुःख है। संसार शब्द से यहाँ कोई नरक और तिर्यच अकेली (दोनों गतियाँ) नहीं; चारों ही गतियाँ (उनकी बात है)। आहाहा! यह सेठाई है या बड़ा राजा है, इसलिए सुखी है, (ऐसा नहीं है)। बेचारे सब दुःखी हैं और फिर मरकर वापस कहीं ढोर में जानेवाले हैं। आहाहा! भाषा कैसी! ऐसे वश हुआ है न तू ? उनके कारण नहीं, तेरे कारण।

अब तेरा परवश के कारण अप्राप्त है तो ऐसे निर्मल स्वभाव नियत में रहा हुआ सुख, इस प्रबल संसार की भीति से डरकर... सुख को भज न। संसार के भव के डर से... आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसे भज न! आहाहा! ऐसा उपदेश है। आहाहा! संक्षिप्त श्लोक। प्रबल संसार की भीति से... प्रबल संसार का भय। अकेला साधारण नहीं। आहाहा! कहाँ जाऊँगा? किस जगह पडूँगा? निगोद में गया तो अनन्त काल में वापस त्रस होना मुश्किल पड़ेगा। आहाहा!

प्रबल संसार के... डर से, भय से। भय से डरकर भज। भय से डरकर भज। वह किसे भज? आत्मा आनन्द को (भज)। आत्मा में रहा हुआ आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द नियत निश्चय भरा हुआ है। नित्य है, ध्रुव है, कायम है, एकरूप है। आहाहा! उसे भज। प्रबल संसार के भय से डरकर भज। यदि इसमें से हटा तो कहाँ जाएगा? कहाँ होगा? आहाहा! एक बार तो ढीला कर दे, ऐसा है।भाई! यह लड़के ऐसे हुए हैं, पैसा ऐसा पैदा हुआ, अमुक... अपन बढ़े। पहले साधारण थे और माँ-बाप के पास थोड़ा था। अपन बढ़ गये। कहाँ बढ़े? किसमें बढ़े? आहाहा!

प्रबल संसार के... भय से डर। कहाँ जाऊँगा? कहाँ होगा? इससे डरकर आत्मा में है ही। नियत है। आत्मा में आनन्द भरा है। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! वह इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है; मन से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है; राग से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय नियत, निश्चय आत्मा में रहा हुआ, उसे प्रबल संसार की भीति से डरकर भज। आहाहा! ११७ हुआ। ११७वाँ कलश हुआ न?

गाथा-८८

चत्ता अगुप्तिभावं तिगुप्तिगुप्तो हवेइ जो साहू ।
 सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८८॥
 त्यक्त्वा ह्यगुप्तिभावं त्रिगुप्तिगुप्तो भवेद्यः साधुः ।
 स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात् ॥८८॥

त्रिगुप्तिगुप्तलक्षणपरमतपोधनस्य निश्चयचारित्राख्यानमेतत् । यः परमतपश्चरण सरः-सरसिरुहाकरचण्डचण्डरश्मिरत्यासन्नभव्यो मुनीश्वरः बाह्यप्रपञ्चरूपं अगुप्तिभावं त्यक्त्वा त्रिगुप्तिगुप्तनिर्विकल्पपरमसमाधिलक्षणलक्षितं अत्यपूर्वमात्मानं ध्यायति, यस्मात् प्रतिक्रमणमयः परमसंयमी अत एव स च निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपो भवतीति ।

जो साधु छोड़ अगुप्ति को त्रय-गुप्ति में विचरण करे ।
 प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

अन्वयार्थः—[यः साधुः] जो साधु [अगुप्तिभावं हि] अगुप्तिभाव [त्यक्त्वा] छोड़कर, [त्रिगुप्तिगुप्तः भवेत्] त्रिगुप्तिगुप्त रहता है, [सः] वह [साधु] [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है, [यस्मात्] कारण कि वह [प्रतिक्रमणमयः भवेत्] प्रतिक्रमणमय है ।

टीका :—त्रिगुप्तिगुप्तपना (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्तपना) जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन को निश्चयचारित्र होने का यह कथन है ।

परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य समान ऐसे जो अति-आसन्नभव्य मुनीश्वर बाह्य प्रपञ्चरूप अगुप्तिभाव छोड़कर, त्रिगुप्तिगुप्त-निर्विकल्प परमसमाधिलक्षण से लक्षित अति-अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं, वे मुनीश्वर प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से ही निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप हैं ।

गाथा-८८ पर प्रवचन

अब, ८८ वीं गाथा। ८८ गाथा।

चत्ता अगुत्तिभावं तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८८॥

जो साधु छोड़ अगुत्ति को त्रय-गुत्ति में विचरण करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

आहाहा! निमित्त को तो कहीं उड़ा दिया, परन्तु अन्दर का निमित्त व्यवहारप्रतिक्रमण आदि, उसे भी उड़ा दिया। आहाहा! इस निमित्त से यहाँ होता है और इस निमित्त से यहाँ होता है। अरे रे! प्रभु! आहाहा! उस समय की पर्याय तुझसे होती है, वहाँ दूसरा निमित्त तुझे क्या करे? स्पर्श नहीं करता। जिसे स्पर्श नहीं करता। तू स्पर्श नहीं करता, वह स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

जो साधु छोड़ अगुत्ति को त्रय-गुत्ति में विचरण करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

टीका : त्रिगुत्तिगुत्तपना (-तीन गुत्ति द्वारा गुत्तपना)... अब क्या कहते हैं? मन, वचन और काया जो परसन्मुख झुकती है, वह अगुत्ति है। उसे अब गुत्त-छोड़ दे। आहाहा! भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिक्रमण की व्याख्या (की है)। क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिक्रमण के दोष हैं या नहीं? दोष भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं न? उन भिन्न-भिन्न प्रकार के दोषों से विमुख होना, अन्दर में स्थिरता के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की बात करते हैं। आहाहा! त्रिगुत्तिगुत्तपना (-तीन गुत्ति द्वारा गुत्तपना) जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन को... आहाहा! जो मन, वचन और काया के लक्ष्य से छूट गया है। आहाहा! मन, वचन, काया की प्रवृत्ति की ओर के झुकाव से छूट गया है। मन, वचन, काया तो जड़ है, परन्तु उसकी ओर के झुकाववाली जो अगुत्ति, उससे गुत्ति में छूटा है। आहाहा! यह प्रतिक्रमण कहते हैं, यह सच्ची सामायिक कहते हैं। आहाहा!

त्रिगुत्तिगुत्तपना (-तीन गुत्ति द्वारा गुत्तपना)... मन, वचन और काया, जो यह तीन हैं, उनकी ओर के झुकाव का भाव, वह अगुत्ति है। उसे छोड़कर गुत्त हो, अन्दर में जा।

आहाहा! यह प्रतिक्रमण है। आहाहा! ऐसा तो सुना भी नहीं होगा। सुना होवे तो दरकार नहीं की। अनन्त काल से। ओहो! भव के भय का डर। **ऐसे परम तपोधन को...** मुनि की बात मुख्य ली है न? मन, वचन और काया ये तीन तो जड़ हैं। इनकी ओर के झुकाव का भाव, वह अगुप्ति भाव है। उस अगुप्ति भाव को छोड़कर अन्दर में गुप्त हो। आहाहा! मन, वचन, काया जड़ है, उन्हें छोड़ना नहीं। **त्रिगुप्तिगुप्तपना (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्तपना)...** ऐसा कहा न? मन, वचन और काया जड़ से गुप्त हो, ऐसा नहीं। वे तो जड़ हैं। मन, वाणी, उनकी ओर का जो झुकाव है, वह अगुप्ति भाव है, उसे छोड़कर गुप्त हो। ऐसी बातें।

जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन... महामुनि, उन्हें **निश्चयचारित्र होने का...** उन्हें सच्चा चारित्र होने का **यह कथन है।** सच्चा प्रतिक्रमण कहो या सच्चा चारित्र कहो (या) निश्चयचारित्र (कहो)। व्यवहार पंच महाव्रत, वह नहीं। पंच महाव्रत के विकल्प, वह सब मन-वचन-काया की ओर के झुकाववाली बात है। व्यवहार पाँच समिति, गुप्ति आदि। उनसे छूटकर अन्दर में जा। **ऐसे परम तपोधन को निश्चयचारित्र होने का यह कथन है। विशेष कहेंगे.....** (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८९, श्लोक-११८, गाथा-८८-८९, शुक्रवार, मागशर शुक्ल ४, दिनांक २३-११-१९७९

गुजराती लिया। वह तो हिन्दी कहते थे। वे तो चले गये। नियमसार। ८८ गाथा। ८८ में... गुप्ति का अधिकार है। गुप्ति-गुप्ति। मन-वचन-काया की ओर का झुकाव, जो भाव वह अगुप्ति है। वह अगुप्ति है, उसे छोड़ना। मन-वचन-काया के ओर के झुकाव की जो अगुप्ति है, उसे छोड़ना।

परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य समान... यहाँ तो उत्कृष्ट-मुनि की बात चलती है न! प्रतिक्रमण-निश्चय प्रतिक्रमण; निश्चय सत्य प्रतिक्रमण किसे होता है, यह चलता है। परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार चलता है। कहते हैं **परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमल...** आहाहा! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान् पूर्णानन्द भरा हुआ है, उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिरता करना, इसलिए उसे **परम**

तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य समान... जैसे सूर्य उगे और कमल खिले, सूर्य उगे और कमल खिले; वैसे अन्तरस्वरूप की एकाग्रता होने पर शान्ति और आनन्द खिलते हैं। आहाहा! इसका नाम प्रतिक्रमण है। है ?

परम तपश्चरण... अर्थात् आनन्दस्वरूप, आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। उस आनन्दरूपी सरोवर में कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य... जिसकी दशा राग से रहित होकर अगुप्तिभाव को रुचि और गुप्त मन-वचन-काया के परिणाम को छोड़कर शुद्धस्वरूप में ही गुप्त होता है, उस सरोवर में जैसे कमल को खिलने में सूर्य है; वैसे ये धर्मात्मा आनन्दरूपी कमल को खिलाने में सूर्य समान हैं। आहाहा! ऐसी बात है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसे वर्तमान में उसकी ओर के झुकाव से, परसन्मुख के झुकाव को रोककर शुद्धस्वभाव में एकाग्रता से, सरोवर में जैसे कमल खिलते हैं; वैसे आनन्द की कलियाँ और अनन्त गुण की कलियाँ पर्याय में खिलती हैं। ऐसी बात है। उसे यहाँ प्रतिक्रमण कहा जाता है। इसे सुनना मुश्किल पड़ता है।

परमतपश्चरण (स्वरूप जो) मुनि, वे मुनि कैसे होते हैं ?

जिन्हें अन्दर परमतपस्या अर्थात् आनन्दरूपी दशा की उग्रता। उसके कमल को खिलने के लिए जिसकी वर्तमान में अन्तर एकाग्रता की दशा खिल गयी है, उसे यहाँ निश्चय प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। जिसे अब संसार (अन्त) निकट आ गया है, मोक्ष होने की तैयारी है। आहाहा!

अति-आसन्नभव्य... मोक्ष के लिए जिसकी योग्यता अति निकट हो गयी है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, मुनीश्वर बाह्य प्रपंचरूप अगुप्तिभाव छोड़कर,... आहाहा! मन, वचन और काया की ओर के विकल्प, वह सब प्रपंच है। चाहे तो शुभविकल्प और राग हो तो भी वह प्रपंच है। आहाहा! है ? बाह्य प्रपंचरूप अगुप्तिभाव... बाह्य की ओर ढलते हुए विकल्प, वह सब प्रपंच है, उसे छोड़कर। आहाहा!

त्रिगुप्तिगुप्त-निर्विकल्प परमसमाधिलक्षण से लक्षित... अन्दर में गुप्त होकर, आनन्द में लीन होकर जो निःशल्य-निर्विकल्प रागरहित वीतरागदशासहित परमसमाधिलक्षण से... परमशान्ति... परमशान्ति... परमसमाधि अर्थात् परमशान्ति, ऐसी परमशान्ति के लक्षण से लक्षित अति-अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं,... ऐसा जो अति अपूर्व

भगवान आनन्द, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा, उसे अगुप्ति भावना प्रपंच से छोड़कर, अन्दर में जो आत्मा को ध्याते हैं, उन्हें सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! यह तो कहते हैं कि ऊँचे गुणस्थान की बात है। तेरहवें गुणस्थान की, चौदहवें गुणस्थान की। यहाँ तो अभी छठे गुणस्थान की बात है। मुनि को ऐसा चारित्र होता है। नहीं तो चारित्र नहीं हो सकता। आहाहा!

स्वरूप जो शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें चरना और अगुप्तिभाव को छोड़कर स्वरूप में गुप्त होना, इसका नाम यहाँ से निश्चयप्रतिक्रमण अथवा निश्चयगुप्ति कहने में आता है। वे मुनीश्वर प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से... आहाहा! ऐसा मुनिपना। पंचम काल के जीव को ऐसा कहते हैं। पंचम काल के मुनि पंचम काल के जीव को सम्बोधन कर ऐसा कहते हैं, प्रभु! तुझमें इस शक्ति को प्रगट करने की सामर्थ्य है। पंचम काल है, इसलिए नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

वे मुनीश्वर... वे मुनि, आहाहा! प्रतिक्रमणमय... वह तो प्रतिक्रमणमय हो गये। तीन अगुप्ति से हटकर अन्दर में गुप्त हुए, आनन्दस्वरूप में लीन हुए, वे प्रतिक्रमणमय हो गये। प्रतिक्रमण करते हैं, ऐसा नहीं; वे प्रतिक्रमणस्वरूप ही हो गये। ऐसी बातें, ९०० वर्ष पहले तो मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव हुए, वे तो टीका करते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले हुए। पंचम काल में हुए। उन्होंने तो यह स्वयं के लिए पुस्तक बनायी है। आहाहा! उसे यहाँ धर्म प्रतिक्रमणमय धर्म, प्रत्याख्यानमय धर्म, ऐसे जीव को कहा जाता है। आहाहा!

यहाँ तो तीन अगुप्ति को छोड़कर, (ऐसा कहा है)। परवस्तु को छोड़कर, ऐसा नहीं। परवस्तु तो छूटी हुई ही पड़ी है। पर्याय में जो मन-वचन-काया के विकल्प उठते हैं, जो राग उठता है, चाहे तो शुभ हो परन्तु वह सब प्रपंच है। पर्याय में शुभराग भी प्रपंच है। उस प्रपंच को छोड़कर। आहाहा! ऐसे वीतरागी मुनि को सच्चा प्रतिक्रमण होता है। उसमें है या नहीं?

प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से... परमसंयमी हैं। अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान, उसके महल में पदार्पण। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान में जिनकी स्थापना हो गयी है, उसमें अन्दर प्रविष्ट हैं, स्थिर हो गये हैं। आनन्द की लहर में समता के सागर

वीतरागभाव से रमते हैं। वे प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से ही निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप हैं। प्रतिक्रमणमय कहा है न? प्रतिक्रमणवाला, ऐसा नहीं। प्रतिक्रमणमय। वे प्रतिक्रमणमय हैं। आहाहा! ऐसा पहले तो कथन सुनना। पहले समझे तो सही कि चारित्र कैसा होता है? समकित कैसा होता है, यह व्याख्या तो हो गयी है। अब चारित्र कैसा होता है? आहाहा! यह कोई वस्त्र छोड़ दिये, नग्न हो गया, पंच महाव्रत के परिणाम हुए; इसलिए चारित्र है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द दल में जो लीन हो गया है और रागादि प्रपंच का अगुप्ति भाव जिसने छोड़ा है, वह मुनि प्रतिक्रमणमय है। प्रतिक्रमणवाला है, ऐसा भी नहीं है, वह प्रतिक्रमण करनेवाला है, ऐसा भी नहीं है; वह प्रतिक्रमणमय है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिए यह बनाया है। जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। मार्ग यह है, बापू! आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की अनुभव की प्रतीतिसहित; शुभराग के प्रपंच को छोड़कर और शुद्धता में लीनता जम जाए, वह प्रतिक्रमणमय ही आत्मा हो गया। प्रतिक्रमण करनेवाला प्रतिक्रमणमयस्वरूप वह हुआ। आहाहा!



श्लोक-११८

[अब इस ८८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—]

(हरिणी)

अथ तनुमनोवाचां त्यक्त्वा सदा विकृतिं मुनिः,
सहज-परमां गुप्तिं सञ्ज्ञान-पुञ्ज-मयी-मिमाम्।
भजतु परमां भव्यः शुद्धात्म-भावनया समं,
भवति विशदं शीलं तस्य त्रिगुप्तिमयस्य तत् ॥११८॥

(हरिगीतिका)

मन-वचन-तन की विकृति को छोड़कर हे भव्य मुनि ।
 यह ज्ञान सम्यक् पुञ्जमय जो परम गुप्ति को सहज-
 शुद्धात्मा की भावना से युक्त हो उत्कृष्ट भज ।
 मुनिराज का चारित्र निर्मल जो सहित हैं गुप्ति त्रय ॥११८ ॥

[श्लोकार्थ :] मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर, भव्य मुनि सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को शुद्धात्मा की भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो । त्रिगुप्तिमय ऐसे उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है ॥११८ ॥

श्लोक-११८ पर प्रवचन

[अब इस ८८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—] कोई कहे कि भाई! समयसार में सब है । परन्तु इस नियमसार में भी क्या बाकी है ? आहाहा! कितनी ही बातें तो नियमसार में समयसार से भी विशेष की है । आहाहा! अपने आपके अनुभव के लिए, स्थिरता के लिए यह बनाया है । इसमें कितने ही विशेषताएँ हैं । शीतलप्रसादजी ने भी ऐसा लिखा है कि समयसार से भी नियमसार में कितनी ही बातें बहुत ऊँची हुई हैं । शीतलप्रसादजी ने नियमसार के हिन्दी अर्थ किये हैं । हिन्दी-हिन्दी । दूसरा छोटा नियमसार ।

यहाँ कहते हैं मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर,... आहाहा! भगवान आत्मा मन-वचन-काया से तो रहित है । वह तो रहित है परन्तु मन, वचन और काया की ओर के विकल्प से भी रहित है । यह मन, वचन और काया की विकृति कही है । मन-वचन-काया की ओर की विकृति अर्थात् अगुप्ति-विकल्प । आहाहा! मन-वचन-काय की विकृति... मन-वचन-काया पर है परन्तु उनके ओर की जो विकृति, परद्रव्य के ओर के झुकाव का जो विकृतिभाव... आहाहा! उसे सदा छोड़कर,... आहाहा! देखो! यह चारित्र, यह प्रतिक्रमण, यह संयम । आहाहा!

मन-वचन-काया तीन वस्तुएँ तथा एक और प्रभु । मन-वचन-काया के ओर की विकृति, उसकी ओर का झुकाव, उसके ओर की सन्मुखता जो विकार, उस विकृति को

सदा छोड़कर,... उस विकृति को सदा छोड़कर। आहाहा! यह तो बाहर से स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा छोड़े, वस्त्र कुछ बदले तो हो गया त्यागी और सेठ भी उसे त्यागीरूप से मानते हैं। भाई! अपनी अपेक्षा से तो त्यागी है। कुछ छोड़ा है। मार्ग बहुत कठिन, बापू! मार्ग बहुत सरल है। वस्तु है, वहाँ जाना है तो सरल है। जिसमें नहीं उसमें से हटना है, जिसमें यह आत्मा नहीं... आहाहा! यह मन-वचन-काया में तो आत्मा नहीं परन्तु उस ओर की विकृति में भी आत्मा नहीं है। आहाहा! उस अविद्यमान चीज़ में से हटकर विद्यमान चीज़ में आना है। आहाहा! ऐसा काम है।

मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर,... भाषा समझे? मन-वचन-काया को छोड़कर नहीं। वे तो पृथक् ही पड़े हैं। आहाहा! काया, वचन और मन तो छूटे हुए ही पड़े हैं। उन्हें और आत्मा को कोई सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! परन्तु उन मन-वचन-काया के ओर की विकृति, स्वभाव से विरुद्ध, परसन्मुख के झुकाव की विकृति को सदा तजकर। आहाहा! इतने शब्दों में बहुत भरा है। एक ओर भगवान पूर्ण शक्ति सम्पन्न परमेश्वर, उस परमेश्वर को पर्याय में मन-वचन-काया की ओर का जो झुकाव है, उस पर्याय के झुकाव को छोड़कर। वस्तु तो पूरी पड़ी है, विद्यमान चीज़ है, विद्यमान परमेश्वर है, भगवत्स्वरूप है, उस विकृति को छोड़कर... आहाहा!

भव्य मुनि... योग्य मुनि। मोक्ष के लिए जिसकी नजदीकता है, ऐसा लायक मुनि। सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी... अब क्या कहा? आहाहा! एक ओर मन, वचन और काया; एक ओर आत्मा। अब इन मन-वचन-काया की ओर का झुकाव, एक ओर परमानन्द पूर्ण शुद्ध। अब इस विकृतिभाव को छोड़कर ज्ञान का पुंज ऐसा आत्मा, (वहाँ मुनि का झुकाव है)। आहाहा! जगत से भाषा अलग है, भाव अलग। भाई! मोक्ष का मार्ग कोई अलग है न! आहाहा! सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को... देखो! आहाहा! सम्यग्ज्ञान का पुंज, प्रभु! ऐसी सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति... यह गुप्ति ही स्वयं ज्ञानमय है, कहते हैं। जैसे भगवान सहज ज्ञानमय है तो उसकी ओर का झुकाव हुआ, वह सहज ज्ञानमय दशा है। उसमें अगुप्तिभाव, पर की ओर के विकल्प का बिल्कुल अभाव है। आहाहा! यह नियमसार।

सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को शुद्धात्मा की भावना सहित...

आहाहा! गुप्ति, यही शुद्धात्मा की भावना है। परमानन्द का नाथ परमात्मा, शुद्ध आनन्दकन्द की भावना। लो, यह भावना आयी। भावना अर्थात् कि कल्पना, ऐसा नहीं। भावना अर्थात् उसका विकल्प करना, विचार करना, यह नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मा की भावना सहित...** परमानन्द ऐसा भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रतासहित। भावना अर्थात् एकाग्रता। वस्तु तो वस्तु है। इस ओर से तीन अगुप्ति से हटकर त्रिगुप्ति अर्थात् इस ओर ज्ञान के पुंज की पर्याय में एकाग्र होना। आहाहा! उस **भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो**। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज करुणा करके जगत को कहते हैं। वे ऐसा नहीं देखते कि यह पंचम काल है, ये लोग हल्के हैं, समाज साधारण है। मैं यह बात किसके समीप करता हूँ? कि मैं भगवान के पास बात करता हूँ। आहाहा! पामर के पास बात नहीं करता। पामर तो पर्याय में है, वह पामरता कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! दया, दान और विकल्प है, वह तो पामरता है, वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। मैं उसे नहीं कहता हूँ।

परमानन्द का नाथ, जिसकी गुप्ति में ज्ञानपुंजपना प्रगट होता है, राग का पुंजपना जो था, उसमें से हट गया है और आत्मा में उस ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय प्रगट हुई है। वह अनन्त गुण के पुंज की पर्याय प्रगट हुई है, ऐसी जो गुप्ति... आहाहा। उसे **शुद्धात्मा की भावनासहित...** शुद्धात्मा में एकाग्रता। शुद्ध परमात्मा भगवत्स्वरूप, परमात्मस्वरूप, परमेश्वरस्वरूप की भावना अर्थात् एकाग्रता को भज। आहाहा! **भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो**। यह हीनदशारूप से तीन गुप्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अगुप्ति छोड़ी, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! देखो! यह पंचम काल के सन्त। ऐसे **उत्कृष्टरूप से भजो**। उसका भजन कर। परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका भजन-एकाग्रतारूप से, उत्कृष्टरूप से भजन कर। आहाहा!

त्रिगुप्तिमय ऐसे उस मुनि का... वह त्रिगुप्ति मन, वचन से हटकर गुप्त हुआ है। **उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है**। उसका चारित्र निर्मल है। आहाहा! कहो, यशपालजी! यह चारित्र आया! यह पाँच, सात, दस प्रतिमा लेकर बैठे, ग्यारह प्रतिमा, पंचम महाव्रत और नग्नपना। दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... आहाहा! कहते हैं। **उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है**। उसके चारित्र को निर्मल कहते हैं। आहाहा! मन-वचन-काया की ओर का झुकाव, वह अचारित्र है। शुद्धस्वभाव की ओर का उत्कृष्टरूप से अन्दर जघन्य अर्थात्

एकाग्रता (होना) वह चारित्र निर्मल है। आहाहा! ऐसी बात है। दूसरा सरल मार्ग कोई होगा या नहीं? वहाँ लगे हैं न? जयसेनाचार्य में व्यवहार साधक, निश्चय साध्य – ऐसा आया था। वह पसन्द किया। अमृतचन्द्राचार्य की टीका सख्त, वह पसन्द नहीं की। आहाहा! ये पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य नहीं। अमृतचन्द्राचार्य के बाद हुए पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। आहाहा! वे यह टीका करते हैं।

भगवान! तू है या नहीं? या यह सब यही है? और यह सब ज्ञात होता है, वह भी तेरी पर्याय में ज्ञात होता है। उस पर्याय में ज्ञात होता है, उस पर्याय जितना तू है? आहाहा! जिसकी सत्ता में, जिसकी मौजूदगी में यह सब ज्ञात होता है, उतना पर्याय का जानपना, उतने में वह ज्ञात नहीं होता, वास्तव में तो वह पर्याय ज्ञात होती है। उस पर्याय जितना भी तू नहीं है। आहाहा! जिसकी वर्तमान दशा में यह सब है, ऐसा जानता कौन है? जाननेवाले की दशा जानती है। जाननेवाले की दशा वास्तव में तो स्वयं को जानती है परन्तु उसका लक्ष्य पर के ऊपर है; इसलिए मानो मैं उसे जानता हूँ, (ऐसा लगता है)। परन्तु जिसमें ज्ञान नहीं, उसे जानने का, उसमें से जानने का कहाँ से आया? उसका ज्ञान उसमें नहीं, उसका ज्ञान जड़ में नहीं, वह ज्ञान वहाँ से (जड़ में से) यहाँ कैसे आवे? ज्ञान तो यहाँ (अन्दर) है। उस ज्ञान की पर्याय में यह ज्ञात होता है। यह (पर) ज्ञात होता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। वह सब है, ऐसी ज्ञान की पर्याय की सत्ता जानती है, परन्तु उस पर्याय जितना भी तू नहीं। आहाहा! तू त्रिकाली शुद्धात्मा है, वहाँ जा। उसे भज। कहा न? शुद्धात्मा की भावना सहित उत्कृष्टरूप से भजो। आहाहा! शब्द थोड़े, भाव बहुत भरे हुए।

निवृत्ति नहीं मिलती। अपने हित के पन्थ के लिए फुरसत नहीं मिलती। अहित के लिए घण्टों के घण्टों (निकालता है)। क्यों बाबूभाई! यह घड़ी, मशीन, अमुक-अमुक, ग्राहक आये, बिक्री की और पचास-सौ की आमदनी हुई। अर र! पूरे दिन अहित के पन्थ में दौड़ गया, कहते हैं। आहाहा! यह तो विकल्पों में दौड़ गया है। इसे छोड़कर जिसमें वह विकल्प नहीं है परन्तु ज्ञान का पुंज प्रभु है, उसे पर्याय में ज्ञान के पुंजरूपी दशा-गुप्ति प्रगट कर। आहाहा! उसे भज। भजन तो कर परन्तु उसे भज। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं... माला गिने। वह माला रहने दे, यह माला ले। वह माला गिनने में भी अहित ही है। वह

भी अगुप्ति है। आहाहा! व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार है ही नहीं? किसने कहा नहीं? व्यवहार है, वह सब बन्धन का कारण है। आहाहा! व्यवहार वह सब बन्ध का साधन है। शुद्धस्वरूप का साधन उसमें नहीं है। आहाहा!

ऐसे उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है। बाकी कहते हैं कि सब मलिन है। आहाहा! वह मुनि का चारित्र, वह निर्मल कहलाता है। वह चारित्र, उन पंच परमेष्ठी के वन्दन में आवे। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। ऐसे निर्मल चारित्रवन्त त्रिकाल चारित्रवन्त नमस्कार में आते हैं। आहाहा! यह ८८ वीं गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-८९

मोत्तूण अट्टरुहं झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा ।
सो पडिकमणं उच्चइ जिणवर-णिहिट्ट-सुत्तेसु ॥८९॥

मुक्त्वार्तरौद्रं ध्यानं यो ध्यायति धर्मशुक्लं वा ।
स प्रतिक्रमण-मुच्यते जिनवर-निर्दिष्ट-सूत्रेषु ॥८९॥

ध्यानविकल्पस्वरूपाख्यानमेतत् । स्वदेशत्यागात् द्रव्यनाशात् मित्रजनविदेशगमनात् कमनीयकामिनीवियोगात् अनिष्टसंयोगाद्वा समुपजातमार्तध्यानं, चौरजारशात्रवजनवध-बन्धननिबद्धमहदद्वेषजनितरौद्रध्यानं च, एतद्वित्तयं अपरिमितस्वर्गापवर्गसुखप्रतिपक्षं सन्सारदुःखमूलत्वान्निरवशेषेण त्यक्त्वा, स्वर्गापवर्गनिःसीमसुखमूलस्वात्माश्रितनिश्चय-परमधर्मध्यानं, ध्यानध्येयविविधविकल्पविरहितान्तर्मुखाकारसकलकरणग्रामातीतनिर्भेद-परमकलासनाथनिश्चयशुक्लध्यानं च ध्यात्वा यः परमभावभावनापरिणतः भव्यवर-पुण्डरीकः निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपो भवति, परमजिनेन्द्रवदनारविन्दविनिर्गतद्रव्यश्रुतेषु विदितमिति । ध्यानेषु च चतुर्षु हेयमाद्यं ध्यानद्वितयं, त्रितयं तावदुपादेयं, सर्वदोषादेयं च चतुर्थमिति ।

तथा चोक्तं ह

(अनुष्टुप्)

निष्क्रियं करणातीतं ध्यान-ध्येय-विवर्जितम् ।
अन्तर्मुखं तु यद्बुद्ध्यान् तच्छुक्लं योगिनो विदुः ॥

जो आर्त रौद्र विहाय वर्त्ते धर्म-शुक्ल सुध्यान में ।
प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेव के आख्यान में ॥८९॥

अन्वयार्थः—[यः] जो (जीव) [आर्तरौद्रं ध्यानं] आर्त और रौद्र ध्यान [मुक्त्वा] छोड़कर [धर्मशुक्लं वा] धर्म अथवा शुक्लध्यान को [ध्यायति] ध्याता है [सः] वह (जीव) [जिनवरनिर्दिष्टसूत्रेषु] जिनवरकथित सूत्रों में [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है ।

टीका :—यह, ध्यान के भेदों के स्वरूप का कथन है।

(१) स्वदेश के त्याग से, द्रव्य के नाश से, मित्रजन के विदेशगमन से, कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न होनेवाला जो आर्तध्यान, तथा (२) चोर-जार-शत्रुजनों के बध-बन्धन सम्बन्धी महा द्वेष से उत्पन्न होनेवाला जो रौद्रध्यान, वे दोनों ध्यान स्वर्ग और मोक्ष के अपरिमित सुख से प्रतिपक्ष संसारदुःख के मूल होने के कारण उन दोनों को निरवशेषरूप से (सर्वथा) छोड़कर, (३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान, तथा (४) ध्यान और ध्येय के विविध विकल्प रहित, *अन्तर्मुखाकार, सकल इन्द्रियों के समूह से अतीत (-समस्त इन्द्रियातीत) और निर्भेद परम कला सहित ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान, उन्हें ध्याकर, जो भव्यवरपुंडरीक (-भव्योत्तम) परमभाव की (पारिणामिक भाव की) भावनारूप से परिणामित हुआ है, वह निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप है—ऐसा परम जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए द्रव्यश्रुत में कहा है।

चार ध्यानों में प्रथम दो ध्यान हेय हैं, तीसरा प्रथम तो उपादेय है और चौथा सर्वदा उपादेय है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(हरिगीतिका)

जो इन्द्रियों से पार, निष्क्रिय, ध्यान-ध्येय विमुक्त है।
अन्तर्मुखी वह ध्यान शुक्लध्यान यह योगी कहें ॥

[श्लोकार्थः] जो ध्यान निष्क्रिय है, इन्द्रियातीत है, ध्यानध्येयविवर्जित (अर्थात् ध्यान और ध्येय के विकल्पों रहित) है और अन्तर्मुख है, उस ध्यान को योगी शुक्लध्यान कहते हैं।

गाथा-८९ पर प्रवचन

८९ गाथा। ८९ आयी न ?

मोत्तूण अट्टरुदं ज्ञाणं जो ज्ञादि धम्मसुक्कं वा ।

* अन्तर्मुखाकार=अन्तर्मुख जिसका आकार अर्थात् स्वरूप है ऐसा।

देखो! यहाँ धर्मध्यान आया। चौथे से धर्मध्यान होता है। चौथे गुणस्थान से धर्मध्यान आता है, निश्चय धर्मध्यान, हों! टीका में आयेगा।

सो पडिकमणं उच्चड़ जिणवर-णिद्धि-सुत्तेसु ॥

जिनवर ने कहे हुए शास्त्रों में ऐसा कहा है। आहाहा!

जो आर्त रौद्र विहाय वर्त्ते धर्म-शुक्ल सुध्यान में।

प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेव के आख्यान में ॥८९ ॥

आहाहा! टीका : यह, ध्यान के भेदों के स्वरूप का कथन है। ध्यान के भेदों का स्वरूप। फिर कहे, किसका ध्यान और किसका स्वरूप? यह ध्यान का स्वरूप है।

(१) स्वदेश के त्याग से, द्रव्य के नाश से, मित्रजन के विदेशगमन से, कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न होनेवाला जो आर्तध्यान,... आर्तध्यान की व्याख्या की है। आर्तध्यान किसे कहना? कि जो छोड़नेयोग्य है। स्वदेश के त्याग से,... अपना देश हो, उसमें से अन्यत्र जाना, पहिचाने नहीं (कोई तो) आर्तध्यान होगा। अभी तो कमाने जाते हैं। महाजन लोग बाहर गये हैं। करोड़ोंपति हो गये। कुटुम्ब-कबीला छोड़कर जाना... आहाहा! यह स्वदेश के त्याग से,... आर्तध्यान होता है।

द्रव्य के नाश से,... वस्तु है या मकान, पैसा, इसके नाश से आर्तध्यान होता है। मित्रजन के विदेशगमन से,... प्रिय के वियोग से, प्रिय मित्र हो, उसका वियोग हो। हम तो परदेश में जाते हैं। उसके कारण आर्तध्यान होता है। कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से... ऐसे बात लेनी है। इष्ट और सुन्दर कामिनी के वियोग से... उसे अन्दर... आहाहा! ऐसी सुन्दर स्त्री थी, नागरानी जैसी रूपवान। अरे रे! मर गयी। उससे आर्तध्यान होता है।

अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न होनेवाला... प्रतिकूल संयोग। रोग, प्रतिकूलता, निर्धनता, दुश्मन का संयोग, ऐसे संयोग के कारण उत्पन्न होनेवाला जो आर्तध्यान,... वह आर्तध्यान, पापध्यान है। आहाहा! ऐसा आर्तध्यान तो पूरे दिन चलता रहता है। इतने प्रकार में से कोई प्रकार तो चलता है। स्वदेश का त्याग, परद्रव्य में पैसा, मकान, बाहर के

सुखसाधन का नाश, मित्रजन के वियोगगमन से, प्रिय स्त्री के वियोग से और अनिष्ट के संयोग से। अनिष्ट—जो प्रिय नहीं, उसका संयोग हो। शत्रु, अनाज-पानी, रहने के स्थान, ऐसे मकान-ऐसे वस्त्र न सुहाते हों, ऐसे अनिष्ट के संयोग में आर्तध्यान होता है। वह पापध्यान है। आहाहा! उसे छोड़कर, ऐसा कहना है। अब रौद्रध्यान।

चोर-जार... लम्पटी शत्रुजनों के वध... उनकी आयु का घात करे। बन्धन सम्बन्धी महा द्वेष से उत्पन्न होनेवाला... चोर आकर बाँधे। लाओ चाबी, तिजोरी की चाबी लाओ। पलंग के साथ बाँधकर लाओ, तोड़ डालेंगे नहीं तो यह बन्दूक... आहाहा! उस समय देखो इसका रौद्रध्यान। आहाहा! जार-लम्पटी ऐसे लम्पटियों का दिखाव हो घर में आकर। अरे! यह मनुष्य लम्पटी है। यह कहाँ से? घर में गड़बड़ लगती है। उसमें फिर रौद्रध्यान होता है। आर्तध्यान से कठोर। शत्रुजनों के... शत्रुजन आकर वध करे। बन्धन सम्बन्धी... बाँधे। आहाहा! यह पलंग से बाँधे, खम्भे से बाँधे, किबाड़ से बाँधे और घर में लूटे।

मुमुक्षु : कितने ही मकान को ताला लगाकर सो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो दुःख होता है। आहाहा! ऐसे प्रकार से रौद्रध्यान होता है। प्रतिकूल संयोग से रौद्रध्यान होता है, रौद्रध्यान। आहाहा!

वे दोनों ध्यान स्वर्ग और मोक्ष के अपरिमित सुख से प्रतिपक्ष... हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों स्वर्ग और मोक्ष के सुख को सर्वथा छोड़कर। वह स्वर्ग और मोक्ष का अपरिमित सुख, उससे विरुद्ध संसार-दुःख का मूल, उन्हें दोनों छोड़कर।

(३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,... अब यह आया। आर्तध्यान, रौद्रध्यान को छोड़कर और आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान का आश्रय कर, (वह) निश्चय धर्मध्यान, उसका नाम सच्च धर्मध्यान है। स्व-आत्मा, जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, ऐसे आत्मा का अन्दर आश्रय कर। है? स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल... क्योंकि जरा व्यवहार शुभराग हो, उससे स्वर्ग मिलता है और जितना आत्मा के स्वाश्रित चैतन्यमूर्ति भगवान पुण्य और पापरहित, ऐसा जो आत्मा, उसका आश्रय ले, उसका नाम धर्मध्यान कहने में आता है। आहाहा! इसका नाम निश्चय धर्मध्यान कहने में आता है और उसमें विकल्प जो बाकी रह जाए, उसे व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। विकल्प

बाकी रहे, उससे स्वर्ग है और आत्मा के आश्रय से जो आनन्द, शुद्ध चैतन्य के आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का ध्यान, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! यह धर्मध्यान। बाहर से कहते हैं न, हम यह धर्मध्यान करते हैं। बापू! धर्मध्यान सूक्ष्म चीज़ है, भाई!

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है। उस आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर अन्तर एकाग्र हो, वह निश्चय धर्मध्यान है। वह मोक्ष का कारण है। बीच में जरा देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का शुभराग रह जाता है, उस राग का फल स्वर्ग है।

धर्मध्यान के दो प्रकार—(१) निश्चय धर्मध्यान, (२) व्यवहार धर्मध्यान। निश्चय धर्मध्यान आत्मा के आनन्द का ध्यान, निश्चय स्वाश्रित ध्यान। है न? (३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित... स्व आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु! अन्तर वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा तो है। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अन्दर स्वरूप है, परन्तु खबर कहाँ है? आहाहा!

ऐसा जो स्व आत्मा, उसके आश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,... देखा? आहाहा! उसे धर्मध्यान कहते हैं। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप और अतीन्द्रिय ज्ञान तथा वीतरागमूर्ति आत्मा है। आत्मा भगवत्स्वरूप है, परमेश्वरस्वरूप है, स्वभाव से परमेश्वरस्वरूप है। उसका स्वभाव, उसकी शक्ति भगवत्स्वरूप है। उसका जो ध्यान, ऐसे आत्मा के परम पवित्र स्वभाव के आश्रय से ध्यान, वह निश्चय धर्मध्यान मोक्ष का कारण है। वह निश्चय धर्मध्यान धर्म है। बीच में जरा देव-गुरु, धर्म की भक्ति का शुभराग आता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, स्वर्ग का कारण है। वह धर्म नहीं है; वह पुण्य है। आहाहा! कहाँ जाना इसे? आर्तध्यान और रौद्रध्यान छोड़कर धर्मध्यान में आ जा।

धर्मध्यान अर्थात्? कि स्व-आत्मा जो चिदानन्द प्रभु; सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा वीतरागमूर्ति देखा है। वीतरागस्वरूप न हो तो वीतरागदशा आवे कहाँ से? वीतराग होते हैं, वह वीतरागदशा स्वभाव है, उसमें से आती है और भगवान को अनन्त आनन्द प्रगट होता है, वह कहाँ से आता है? कहीं बाहर से आता है? अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु अन्दर है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल आत्मा है। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप, ऐसा जो स्व-आत्मा... स्व-आत्मा; पर नहीं। है? जो अन्तरलीनता

होती है, निर्विकल्प रागरहित दशा होती है, उसे यहाँ निश्चय धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

जगत कहाँ पड़ा है ? कहाँ आया ? यह तो आर्त और रौद्रध्यान से निवृत्त नहीं होता। पूरे दिन व्यापार और धन्धा, यह और वह, यह किया और वह किया। उसमें फिर पाँच-पचास लाख मिले तो हो गया, मैं चौड़ा और गली सकरी हो गयी। यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि पर के आश्रय से जितने भाव होते हैं, वे आर्त और रौद्रध्यान हैं। उन्हें छोड़कर स्व-आश्रित... स्व-आश्रित कहा न ? पर के आश्रय से जितने भाव हों, वे बुरे ध्यान है। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा, व्यापार के आश्रय से जितने भाव होते हैं, वे सब बुरे ध्यान हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान हैं। आहाहा! यह स्व-आश्रित....

भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति प्रभु! मन-वचन और काया से भिन्न तथा पुण्य और पाप के विकल्प से, राग से भी भिन्न, ऐसे स्व-आत्मा का आश्रय करे, उसे निश्चय सच्चा धर्मध्यान होता है। वह धर्मध्यान मोक्ष का कारण होता है। उसमें राग थोड़ा बाकी रह जाए, उससे स्वर्ग मिलता है। राग के फल में स्वर्ग मिलता है और वीतरागी ध्यान में मोक्ष मिलता है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है, बापू! निवृत्ति नहीं मिलती। दुनिया के कारण, बाहर की प्रवृत्ति के कारण जीव को फुरसत नहीं मिलती।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव वीतराग त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल... इसमें स्वर्ग का भी लिया है। मोक्ष का सुख तो बेहद। 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' आता है न ? लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' अन्तर अनन्त आनन्द, जो सिद्ध का सुख, ऐसा अनन्त आनन्द यहाँ आत्मा में भरा है। आहाहा! वह आनन्द प्रगट कहाँ से हो ? अन्दर है, उसमें से आता है। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसा स्व आत्मा; पर आत्मा नहीं। भगवान नहीं। भगवान की भक्ति आदि राग का कारण है। निश्चय धर्मध्यान नहीं। आहाहा! कठिन काम, भाई! भगवान की भक्ति, पूजा, भक्ति, यात्रा, आदि यह सब शुभराग है। आत्मा अन्दर स्व-आत्मा आश्रय अन्दर, अकेला राग और विकल्प से रहित स्व आत्मा के आश्रय से... है ?

निश्चय-परम-धर्मध्यान,... परम धर्मध्यान... आहाहा। जिसका फल मोक्ष और

स्वर्ग है। जितना अन्तर वीतरागी स्वभाव में-ध्यान में आवे, उतना मोक्ष का कारण और परमेश्वर की भक्ति या पूजा आदि का जरा राग बाकी रहे, उस राग का फल स्वर्ग होता है। पुण्य का फल स्वर्ग मिलता है, उसमें से मोक्ष नहीं मिलता। आहाहा! कठिन काम, प्रभु!

अन्दर परमात्मा विराजता है। पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यस्वरूप भगवत्स्वरूप है। वह भगवत्स्वरूप न तो भगवत्स्वरूप परमात्मा केवलज्ञान कहाँ से लाये? केवलज्ञानी परमात्मा केवलज्ञान लाये कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? अरिहन्त परमात्मा-णमो अरिहंताणं, अनन्त सिद्ध, (वे) अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति लाये कहाँ से? वह अन्दर भरी है। आहाहा! अन्दर पूर्ण आनन्द पूर्ण शान्ति, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, ऐसी अनन्त शक्तियों का संग्रह भगवान् आत्मा है। कैसे जँचे? ऐसे आत्मा का आश्रय करे, उसका अवलम्बन ले, उसे निश्चय सच्चा धर्मध्यान होता है। है इसमें?

स्वात्माश्रित... स्वात्माश्रित। आहाहा! पर आत्मा आश्रित नहीं। जितना भगवान् पराश्रित पर का आश्रय ले तो राग होता है और जितना स्वाश्रित अन्दर भगवान् आत्मा में एकाग्र हो, उतना वीतराग और उतना मोक्ष का मार्ग होता है। आहाहा! ऐसे परम धर्मध्यान। चार ध्यान वर्णन करने हैं न? आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों छोड़ने योग्य हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान दोनों आदरनेयोग्य हैं। धर्मध्यान आत्मा के आश्रय से होता है। स्व आत्मा के आश्रय से होता है। देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से भी निश्चय धर्मध्यान नहीं होता। वे परद्रव्य हैं। उन परद्रव्य के आश्रय से हो, वहाँ शुभभाव होता है, पुण्य होता है। स्वाश्रय से आत्मा जो चिदानन्द प्रभु है... आहाहा! उसके अवलम्बन से अन्दर एकाग्र हो, उतना उसे सच्चा / सत्य धर्मध्यान होता है। उसका फल उसे मोक्ष होता है और शुक्लध्यान तो अभी है नहीं परन्तु व्याख्या करे, तब तो सब व्याख्या करे न!

(४) ध्यान और ध्येय के विविध विकल्प रहित,... ध्यान और ध्येय के विकल्प / रागरहित... आहाहा। अन्तर्मुखाकार,... अन्तर्मुख जिसका आकार अर्थात् स्वरूप है ऐसा। सकल इन्द्रियों के समूह से अतीत (-समस्त इन्द्रियातीत) और निर्भेद... भेदरहित अन्दर ध्यान। परम कला सहित ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान,... यह अभी नहीं है।

वस्तु आवे, तब तो सब वर्णन करे न ? ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान, उन्हें ध्याकर,... ऐसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान को ध्याकर। आर्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़कर। आहाहा! फुरसत नहीं मिलती। पूरे दिन पाप धन्धा। सवेरे से शाम तक यह किया... यह किया... यह किया... लिया और दिया। अकेला पाप। उसमें धर्म तो कहाँ आया ? निवृत्त होवे तो भक्ति और यात्रा आदि करे, वह शुभभाव पुण्य है; निश्चय नहीं, धर्म नहीं। निश्चय धर्मध्यान स्व आत्मा के आश्रय से होता है। कठोर जँचे, भाई! स्व आत्मा के आश्रय से निश्चय होता है और शुक्लध्यान तो बहुत ऊँची चीज़ है। उससे तो एकदम केवलज्ञान हो जाता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९०, श्लोक-११९-१२०, गाथा-८९, शनिवार, मागशर शुक्ल ५
दिनांक २४-११-१९७९

नियमसार। ध्यान की व्याख्या। अन्तिम है। चार ध्यानों में... चार ध्यान कहे न ? आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। उनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान हेय है, छोड़नेयोग्य है। धर्मध्यान पहले उपादेय है। पहला ध्यान यह... शुद्धता की अल्पता। स्व-आश्रय आया था न ? स्व-आत्माश्रित निश्चयधर्मध्यान। टीका में आया था। स्व आत्मा... सूक्ष्म बात बहुत, भाई! ...कहते थे। नैरोबीवाले... थे न ? ...वाले नहीं... गये, वे तो गये। ऐसा सूक्ष्म वहाँ नहीं चलता, नैरोबी में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, स्व जो आत्मा, यह स्वाश्रित जघन्य धर्मध्यान हो, वह पहले उपादेय है। पश्चात् शुक्लध्यान होता है, वह तो उपादेय है ही। यहाँ धर्मध्यान में शुभभाव उपादेय है-ऐसा नहीं है। समझ में आया ? कहीं आ गया है न ? स्व-आत्मा-आश्रित निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान। बात यह है कि यह चैतन्य परम अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति, अविकारी त्रिकाल स्वभाव का आश्रय लेने से धर्मध्यान होता है। लाख दूसरी बात हो तो भी। शुभाभाव हो।

मुमुक्षु : व्यवहार धर्मध्यान कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार धर्मध्यान अर्थात् पुण्य । यह निश्चयधर्मध्यान अर्थात् शुद्ध । आहाहा ! शुद्ध सत् स्वरूप अस्ति है न ? अस्ति है, वह तत्त्व है । तत्त्व है तो वह तत्त्व स्वभाव से खाली नहीं होता । स्वभाववान है । स्वभाव है, उसकी हद नहीं होती । अनन्त-अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियाँ अर्थात् स्वभाव, वह आत्मा । ऐसे आत्मा के आश्रय से जो जघन्य पाये, उसे यहाँ धर्मध्यान कहा जाता है । यहाँ शुभभाव की बात ही नहीं है । सूक्ष्म बात है । लड़के हैं न । सात, आठ, दस पैसा बहुत । ऐसा कहे, यह बहुत सूक्ष्म । आत्मा अकारक है । निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से काल कहा जाता है । उस काल से पर्याय में अकारक कहा जाता है । इसके बाप-दादा ने सुना नहीं होगा । आहा ! प्रभु का मार्ग तो यह है, भाई ! प्रभु ! तू प्रभु होने के योग्य है, हों ! ...इसका अर्थ प्रभु होने के योग्य अर्थात् तू प्रभु है । आहाहा ! भगवान है, परमेश्वर है, अनन्त-अनन्त गुण का सागर है, गुण का सागर है । अरूपी है, क्षेत्र छोटा है, इससे स्वभाव की हद नहीं हो सकती । शरीरप्रमाण क्षेत्र छोटा, इसलिए स्वभाव की मर्यादा नहीं होती । मर्यादा तो अपरिमित जिसका स्वभाव है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेना, अवलम्बन लेना, उसे ध्येय बनाकर ध्यान में रहना । यह निचला धर्मध्यान, जघन्यदशा धर्मध्यान कही जाती है ।

तीसरा प्रथम तो उपादेय है... प्रथम यह श्रेणी इस अपेक्षा से उपादेय है, आदरणीय है । और चौथा सर्वदा उपादेय है । पूर्णानन्द के नाथ में पूर्ण आश्रय करके स्थिर रहना, यह तो उपादेय है ही । इससे ही केवल (ज्ञान) होता है । आहाहा ! इसमें बाह्य क्रिया की कोई बात नहीं आयी । ऐसी बाह्य क्रिया करे, ऐसा करे तो ऐसा हो, ऐसे निमित्त करे, भक्ति करे, पूजा करे, साधर्मियों की सहायता करे, साधर्मियों को मदद करे, कर्म से गिरते को स्थिर करे - ये सब विकल्प हैं । आहाहा !

स्व-आश्रय । प्रभु आत्मा सत् सत् अस्ति, सत् रूप से अस्ति और अपरिमित स्वभावरूप से अस्ति, ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय लेने पर जो दशा होती है, उसे धर्मध्यान कहा जाता है । यह पहले धर्मध्यान शुरुआत में उपादेय है । पूर्ण शुक्लध्यान न हो, तब तक उपादेय है ।

और चौथा सर्वदा उपादेय है । पूर्ण आत्मा आनन्द में पूर्ण रीति से स्व-आश्रय में

एकदम लीन हो जाना, वह तो सर्वदा उपादेय है। यह धर्मध्यान के भेद हैं। आहाहा! परिभ्रमण करते हुए अनन्त काल हुआ, कभी इसने सच्ची समझ, सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करना, इसका समझ भी नहीं की। आहाहा! दूसरी सब बातें कीं। मूल चीज कैसे प्राप्त हो, उसका इसने प्रयत्न / प्रयास नहीं किया। प्रथम में प्रथम प्रयत्न और प्रयास को धर्मध्यान कहते हैं। उत्कृष्ट प्रयत्न और प्रयास को शुक्लध्यान कहते हैं। वह शुक्लध्यान सर्वदा उपादेय / आदरणीय है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:— श्लोक, ऊपर का।

निष्क्रियं करणातीतं ध्यान-ध्येय-विवर्जितम् ।

अन्तर्मुखं तु यद्भुज्यान् तच्छुक्लं योगिनो विदुः ॥

[श्लोकार्थः] जो ध्यान निष्क्रिय है, ... कठिन पड़े, भाई! जिस ध्यान में राग की क्रिया का अंश भी नहीं है। राग है, वह सक्रिय है। उस राग की सक्रिय अपेक्षा से ध्यान है, वह निष्क्रिय है। द्रव्य की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह सक्रिय है। द्रव्य की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह राग की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह द्रव्य की अपेक्षा से सक्रिय है। क्या कहा है? निष्क्रिय कहा वह तो राग की अपेक्षा से। बाकी ध्यान है, वह तो परिणति है। परिणति है वह सक्रिय है। त्रिकाली द्रव्य, वह निष्क्रिय है। आहाहा!

निष्क्रिय ध्यान इन्द्रियातीत है, ... इन्द्रियों से अतीत अनीन्द्रिय। भगवान् अनीन्द्रिय स्वरूप है। आहाहा! ऐसा कठिन लगा न? यह प्रतिक्रमण की व्याख्या सब कठिन आयी न! नैरोबीवाले भाई को ऐसा हुआ न कि सरल कहना सरल। गुजराती चलेगी, परन्तु यह कठिन पड़ेगा। पहला-पहला है। आहाहा! क्या बनता है? कैसे करे? जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। उसमें किसी की की हुई होगी... आहाहा! की होवे परन्तु उस प्रकार से पर्याय होने के काल में होती है, उसे की होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ध्यान, शुक्लध्यान, उत्कृष्ट ध्यान। निष्क्रिय है, ... जिसमें राग का अंश भी नहीं। इन्द्रियातीत है, ... अनीन्द्रियमय ध्यान है। इन्द्रिय से अतीत भिन्न है। आहाहा! ध्यानध्येयविवर्जित... है। यह ध्यान करनेयोग्य द्रव्य है और मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा ध्यान और ध्येय का विकल्प-राग से रहित है। वहाँ ध्यान और ध्येय का विकल्प भी नहीं है। आहाहा! पंचम काल के मुनि जगत के लिए प्रसिद्ध करते हैं। उन्हें खबर नहीं (कि) यह

पंचम काल है ? हल्का काल है । काल हल्का है तो यह आत्मा कहाँ हल्का है ? आहाहा ! आत्मा तो प्रभु है न, बापू ! तेरी मान्यता में कमी है । मान्यता में यह बात किसी प्रकार जँचती नहीं । यह प्रभु है, भगवान है, परमेश्वर पूर्ण स्वरूप है । उसका जो ध्यान, वह ध्यान और ध्येय... ध्येय, वह आत्मा और ध्यान, वह पर्याय - ऐसे ध्यान-ध्येय के विकल्प से अतीत है । ऐसे ध्यान-ध्येय का भी वहाँ विकल्प नहीं है । ऐसा शुक्लध्यान । इसे सुनकर निर्णय तो करना पड़ेगा न ? शुक्लध्यान किसे कहना ? परमध्यान किसे कहना ? आहाहा !

(अर्थात् ध्यान और ध्येय के विकल्पों रहित) है और अन्तर्मुख है,... वह ध्यान तो अन्तर्मुख है । अन्तर्मुख अर्थात् अन्तर्मुहूर्त ऐसा नहीं । अन्तर्मुहूर्त अलग और अन्तर्मुख अलग है । अन्तर्मुहूर्त, वह काल बताता है । यहाँ अन्तर्मुख, वह त्रिकाली स्वभाव सन्मुखता बताता है । आहाहा ! ऐसा उपदेश है । भगवान पूर्ण स्वरूप परमेश्वर भगवत्स्वरूप, उसके अन्तर्मुख, उसके सन्मुख । आहाहा ! उस ध्यान को योगी शुक्लध्यान कहते हैं । उस ध्यान को सन्त शुक्लध्यान कहते हैं । उस शुक्लध्यान द्वारा केवल (ज्ञान) होता है । किसी क्रियाकाण्ड से और व्यवहार से केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं - ऐसा बतलाना है । आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपने लिए बनाया है न ? उसमें से यह कहा । मैं भी जब पूर्ण ध्यान और ध्येय के विकल्परहित पूर्ण द्रव्य का आश्रय अन्तर्मुख लेकर होऊँगा, तब केवलज्ञान होगा । इसके बिना होगा नहीं । भले अभी यह है नहीं परन्तु ऐसा करूँगा, तब केवलज्ञान होगा, ऐसा अभी से स्वीकार करते हैं । आहाहा ! भले पंचम काल में इस प्रकार से शुक्लध्यान का अभाव है परन्तु इस भगवान आत्मा में शुक्लध्यान होने की योग्यता है । वह शुक्लध्यान करेगा, तब केवलज्ञान प्राप्त होगा । ऐसी पुकार करते हुए देह छोड़कर स्वर्ग में चले गये हैं । ऐसे अन्दर में भावना करते-करते देह छूटकर स्वर्ग में चले गये हैं । आहाहा !

श्लोक-११९

[अब, इस ८९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]

(वसंततिलका)

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति,
व्यक्तं सदा-शिवमये परमात्म-तत्त्वे ।
सास्तीत्युवाच सततं व्यवहार-मार्ग-
स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम् ॥११९॥

(हरिगीतिका)

प्रत्यक्ष शिवमय सदा जो उस आत्मा में है नहीं ।
ध्यानावली किञ्चित् अहो यह शुद्धनय कहता यही ॥
' ध्यानावली है आत्मा में ' वचन यह व्यवहार का ।
यह तत्त्व जो जिनवर कथित है इन्द्रजाल अहो महा ॥११९ ॥

[श्लोकार्थ :] प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्व में *ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता । ' वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है) ' ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है । हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है ॥११९ ॥

श्लोक-११९ पर प्रवचन

[अब, इस ८९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:] ११९वाँ श्लोक ।

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति,
व्यक्तं सदा-शिवमये परमात्म-तत्त्वे ।

*ध्यानावली=ध्यानपंक्ति; ध्यान परम्परा ।

सास्तीत्युवाच सततं व्यवहार-मार्ग-

स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम् ॥११९॥

आहाहा! हे नाथ! तेरी नय की व्याख्यान इन्द्रजाल जैसी है। एक ओर इन्द्रजाल जैसा विस्तार करे और वापस एक ओर समेट ले। एक ओर नय के विस्तार की व्याख्या करे, एक ओर समेटकर अन्दर में चला जा। आहाहा!

[श्लोकार्थ :] प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय)... भगवान् आत्मा सदा शिवमय है, सदा कल्याणमय है, ऐसा पहले इसे अनुभव में बैठना चाहिए। यह आत्मा प्रगटरूप से... शक्ति है, वह शक्ति भी प्रगट है। प्रगटरूप से सदाशिवमय... आहाहा! व्यक्त है, उस पर्याय की अपेक्षा से भले इसे अव्यक्त कहा; द्रव्य की अपेक्षा से तो द्रव्य व्यक्त है। सदाशिवमय... सदा कल्याणमय भगवान् है। आहाहा! जिसमें अकल्याण का अंश नहीं, जिसमें संसार की गन्ध नहीं। अतीन्द्रिय पूर्णानन्द की जहाँ गन्ध है, ऐसा स्वभाव शिवमय भगवान् आत्मा है। आहाहा! आत्मा को छोड़कर सब बातें... धर्म करो.. धर्म करो.. परन्तु धर्म करे कौन ? और करनेवाला कौन ? करनेवाला कौन और करता है, वह कितना ? धर्म करे। धर्म तो पर्याय है परन्तु धर्म करनेवाला है कितना ? आहाहा! वर को छोड़कर बारात जोड़ दी है। आहाहा!

भगवान् आत्मा... यह अतिशयोक्ति नहीं, हों! विशेष-विशेष महिमा करके यह बात नहीं है, वस्तुस्वरूप ऐसा है। सदाशिवमय... आहाहा! सदाशिवमय नहीं हो तो कल्याण में सदाशिवमय होगा कहाँ से ? लोगस्स में नहीं आता ? शिवमय... श्वेताम्बर में आता है। णमोत्थुणं... शिवमय... अपने में दिगम्बर में भी णमोत्थुणं आता है। सामायिक में आता है। सामायिक में दिगम्बर में यह णमोत्थुणं लोगस्स आता है। पाठ है, शास्त्र है। सब पढ़े हैं। यहाँ पर है। णमोत्थुणं भी है। दिगम्बर में परिचय नहीं। श्वेताम्बर में तो पहले से सामायिक सीखे, तब सीखते हैं।

शिवमय अचल। शिवमय है प्रभु। आहाहा! कल्याणस्वरूप। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप है। शिव अर्थात् वे शिव-शंकर नहीं। यह तो भगवान् स्वयं शिवस्वरूप ही है। आहाहा! यह बात विश्वास में लेने के बाद इसे समकित होता है। आहाहा!

भगवान् आत्मा सदाशिवमय... सदाशिवमय, त्रिकाल शिवमय। कभी अकल्याण

और अन्दर अल्पकल्याणमय वह स्वरूप नहीं है। सदाकल्याणमूर्ति प्रभु है। आहा! ऐसी बात आत्मा है यहाँ तो। आत्मा के बिना सब वररहित बारात (जोड़ी है)। (उसे) बारात नहीं कहा जाता। लोगों का झुण्ड कहा जाता है। मुख्य आत्मा नहीं मिले, फिर यह व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार। उस व्यवहार का कहाँ? आहाहा!

प्रगटरूप से सदाशिवमय... है? आहाहा! है न? ११९ है न? **व्यक्तं सदा-शिवमये...** दूसरा पद है। **व्यक्तं सदा-शिवमये..** आहाहा! व्यक्त अर्थात् प्रगट। (समयसार) ४९ गाथा में ऐसा कहें कि व्यक्त की अपेक्षा से द्रव्य अव्यक्त है। आता है न? भाई! पर्याय को व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान मिश्रित होने पर भी, व्यक्त को वह स्पर्श नहीं करता। यह क्या कहा? ४९ गाथा में है। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। दोनों का ज्ञान एक साथ होने पर भी, वह द्रव्य व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें कहाँ हैं? मूल बात रह गयी। ऊपर से छिलके कूटने लगे।

मुमुक्षु : मूल बात कौन सी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल बात यह। **सदाशिवमय...** त्रिकाल शिवमय, त्रिकाल कल्याणमय। कल्याण पर्याय में करना, वह अलग वस्तु है। यह तो वस्तु सदा कल्याणमय है। शिव। आहाहा! **प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय)...** सदा अर्थात्। ऐसा जो भगवान, **ऐसे परमात्मतत्त्व में...** ऐसे परमात्मतत्त्व को। सदाशिवमय, ऐसा परमात्मतत्त्व। देह से भिन्न भगवान, राग से भी भिन्न भगवान, सदा कल्याणमय-ऐसा परमात्मतत्त्व। आहाहा! बाल-गोपाल आदि सब। शरीर चाहे जो हो। स्त्री का शरीर हो या पुरुष का शरीर हो, तिर्यच का शरीर हाथी, घोड़ा, चींटी, कौआ का शरीर हो; भगवान अन्दर तो सदा शिवमय है। आहाहा!

वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? अस्ति है या नहीं? अस्ति है तो वह शाश्वत् है या नहीं? शाश्वत् है तो वह पर की अपेक्षा बिना है या नहीं? पर की अपेक्षा बिना है तो सदाशिवमय है। आहाहा! ऐसा उपदेश कहीं सुना था? वीरचन्दभाई! लाठी में (संवत्) १९८५ के वर्ष में सब प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे।यह किया, यह किया, यह छोड़ा, यह छोड़ा। आहाहा!

प्रभु! तू पहली एक बात निश्चित कर। दूसरी सब बातें बाद में। छहठाला में आता है 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' आहाहा! 'छोड़ि द्वन्द्व-फन्द...' द्वैत भी छोड़कर। द्वन्द्व भेद द्वन्द्व पद छोड़कर निज आत्म उर ध्याओ। निज उत्तम आत्मभगवान, आहाहा! वह सदाशिवमय निज परमात्मा ही है। स्वयं निज परमात्मस्वरूप है। आहाहा! एक पैसा खो जाए तो ढूँढ़ने के लिए रात्रि में कितना लगता है। दीपक जलावे, वह कहाँ गया? कहाँ गया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपया नहीं, दो रुपये कहो। गिन्नी गयी हो, लो न गिन्नी। आहाहा! धूल के लिए खोजने के लिए दीपक और लोगों को दौड़ावे। मेरी नजर पहुँचती नहीं, तुम देखो कहाँ है। गिन्नी पड़ी है। यह पड़ा रहा बड़ा सदाशिवमय कल्याणमय (पदार्थ है)। आहाहा! उसे खोजने के लिए निवृत्त हो न! वहाँ दीपक का प्रकाश, चैतन्य का प्रकाश वहाँ रख। पर्याय में चैतन्य का प्रकाश वहाँ रख। आहाहा!

ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! मुनियों की दशा तो देखो! ऐसा जो सदा कल्याणमय, परमात्ममय तत्त्व, उसका यह धर्मध्यान कर न, शुक्लध्यान कर न, यह कर। ऐसी पर्याय के भेदों की उपाधि नहीं कहते, कहते हैं। ऐसा है परन्तु पढ़ा नहीं था कभी। यह पढ़ा था? आहाहा! श्वेताम्बर के शास्त्र दुकान पर पढ़ते थे। उसमें थे न (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन। परन्तु यह कहाँ है? बापू! यह तो अकेले हीरे के झरने हैं। अरे! ऐसा एक-एक पद, एक-एक लाईन कहाँ है? भाई! दूसरे को पक्ष लगे। पक्ष नहीं, प्रभु! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्व में... उसमें यह ध्यान, धर्म और यह शुक्लध्यान और इन भिन्न-भिन्न ध्यान की पर्यायें, पूर्ण स्वरूप में भगवान नहीं कहते। आहाहा! ...बहुत सूक्ष्म। नैरोबी में तो आना पड़ेगा। वहाँ के योग्य वहाँ आयेगा, यहाँ के योग्य यहाँ आता है। आहाहा! अरे रे! प्रभु तो अनन्त अमृत का समुद्र है। आहाहा! क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश है। यहाँ प्रदेश का काम नहीं। उसमें भरा हुआ अमृत स्वभाव है। अमृत, अतीन्द्रिय अमृत। शिव अर्थात् उपद्रवरहित अमृत। अमृत का सागर ऐसा परमात्मतत्त्व, उसमें तीन लोक के नाथ... आहाहा! ध्यानावली

होना भी शुद्धनय नहीं कहता। अत्यन्त शुद्धनय है, वह तो त्रिकाली परमात्म तत्त्व है, ऐसा कहता है। त्रिकाली परमात्मतत्त्व है, ऐसा शुद्धनय कहता है।

ध्यानपंक्ति; ध्यान परम्परा। ध्यान की परम्परा, वह भी पर्याय है। त्रिकाली जो ज्ञायकस्वभाव अमृत का सागर पूर्ण प्रभु अकेला अमृत का सागर ध्रुव वज्र का बिम्ब पड़ा है, अमृत का सागर, उसमें शुद्धनय जो है, परम शुद्धनय, वह इसका धर्मध्यान और यह शुक्लध्यान और यह ध्यान की पर्याय की बातें शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! वीतराग का मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

प्रभु! तीन लोक के नाथ वहाँ कहते होंगे व्याख्यान में प्रभु। महाविदेह में करोड़ों वर्ष, करोड़ों वर्ष रहनेवाले हैं। सभा में दिव्यध्वनि कैसी होगी! आहाहा! ऐसे मुनियों की यह श्रेणी, छद्मस्थ की... आहाहा! भगवान! तू दूसरा भूल जा, कहते हैं। दूसरा तो भूल जा, परन्तु शुद्धनय त्रिकाली द्रव्य के अतिरिक्त ध्यान करना और ध्यान की धारा बढ़ना, ऐसी पर्याय की बात शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! पागल लगे ऐसा है। यह क्या कहते हैं? आहाहा!

यह सब भगवान है। आबाल-गोपाल, वह परमतत्त्व सदा कल्याणमय है। उसमें शुद्धनय अकेला परम शुद्धनय, वह तो यह ध्रुव परमात्मतत्त्व है कल्याणमय, इसे कहता है। इसका ध्यान कर और इसका ऐसा कर, यह शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! धन्धा-पानी दमदार चलता हो... देखो! पागल देखो! आहाहा! यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. यह लो.. यह करो.. यह यहाँ फिरा दो। कठिन बात है। आहाहा! दमदार धन्धा चलता हो। धन्धे में रचपच जाता है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु वहाँ तक कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले पंचम काल के साधु (ऐसा कहते हैं)। ओहोहो! प्रभु! परन्तु तुम्हें नहीं शुक्लध्यान, नहीं शुक्लध्यान का फल, यह सब कहते हैं, ध्यान और ध्यानावली की बात ही हमारे में नहीं है। हम तो सदाशिवमय हैं। सुन। आहाहा! छोटाभाई! भगवान... आहाहा! ऐसी वाणी कहाँ? एक बार तो शान्त कर दे। जानपना कम-ज्यादा हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। सभा को रंजन करना न भी आवे, उसके साथ क्या है? इसे रंजन करना आवे। परन्तु यह कहते हैं रंजन करना आवे, वह पर्याय भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! यह क्या कहा? भगवान

आत्मा का रंजन अर्थात् निर्मल ध्यान, यह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव बढ़ता हुआ, शुद्धता बढ़ती हुई, बढ़ती हुई शुद्धता, बढ़ता-बढ़ता शुक्लध्यान, केवलज्ञान (होवे) ऐसी धारा को शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! रमणीकभाई! समझ में आता है यह? ऐसा है, बापू! आहाहा!

प्रभु! तेरी प्रभुता में ध्यान की पर्याय को भी, कहते हैं इन्द्रजाल है। आहाहा! तेरी प्रभुता, पूर्ण परमेश्वरता, पूर्ण कल्याणमय नाथ में ध्यानावली (अर्थात्) ध्यान की धारा, स्वरूप के ध्यान की धारा, वह तो पर्याय है। भले धर्मध्यान हो, धर्मध्यान बढ़ता हो, शुक्लध्यान हो, वह तो पर्याय है। वह धर्मध्यानावली होना भी (शुद्धनय नहीं कहता)। आहाहा!

प्रभु! तुझमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं; कर्म संयोगी तो नहीं; विकार तो नहीं; तेरे द्रव्य में तेरी विकारी पर्याय तो नहीं, परन्तु द्रव्य में निर्विकारी धर्मध्यान की धारा, शुद्धता जो बढ़ती जाए। शुद्धध्यानावली... आहाहा! उसका होना भी... दूसरे की तो क्या बात करना? कहते हैं। 'भी' शब्द प्रयोग किया है न? दूसरे की तो क्या बात करना कि उसमें राग है, पुण्य है, कर्म है, शरीर है-उसकी तो क्या बात करना? बापू! वह तो है ही नहीं। है, परन्तु उसमें है; तुझमें नहीं। आहाहा! जिसका अस्तित्व है, वह उसमें है और ध्यान का अस्तित्व तो पर्याय में है। आहाहा! उस ध्यान की धारा की अवस्था, शुद्धनय त्रिकाल कल्याणमय परमात्मा में वह नहीं है। वह पर्याय शुद्ध त्रिकाली स्वभाव में नहीं है। आहाहा! कठिन लगे, भाई! यह पंचम काल के साधु हैं। दिगम्बर तो मुनि हैं। वे तो श्रोता को कहते हैं। लज्जा नहीं आती? कि क्या सभा कैसी है और उसे तुम ऐसी बड़ी बात करते हो। समाज को देखकर बात करो। यह सुन... सुन... तू। हम तो आत्मा को देखकर बात करते हैं। आहाहा! गजब बात है।

प्रगटरूप से सदाशिवमय... वस्तु जो है आत्मा, वह प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय)... निरन्तर आनन्दमय, निरन्तर पूर्णमय... आहाहा! निरन्तर प्रभुमय, निरन्तर ईश्वरमय, निरन्तर अखण्ड वीर्यमय, अखण्ड वीर्य पूर्ण पुरुषार्थ वीर्यमय अखण्ड है। आहाहा! ऐसे परमात्मतत्त्व में... ऐसा कहा न? प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्व में... ऐसा परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा (उसमें)

आहाहा! थोड़ा कठिन लगे परन्तु प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। तेरी महिमा की पर्याय की बात करते हुए कहते हैं हमें लज्जा आती है। आहाहा! हम दूसरी बात तो क्या करें? परन्तु तू अखण्डानन्द सदा निरन्तर आनन्दमय कल्याणमय ध्रुव आनन्द है, उसे ध्यान करने की पर्याय कहते हुए भी लज्जा आती है। आहाहा! है ?

वह ध्यानावली होना भी... 'भी' क्यों कहा? कि दूसरा तो क्या कहना? उसमें फिर दया, दान और व्रत के परिणाम हैं, अमुक है, भक्ति के (परिणाम हैं), उनकी तो बात क्या करना? प्रभु! परन्तु ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु सदा कल्याण की मूर्ति, त्रिकाल कल्याणस्वरूप में कल्याण का ध्यान करना, ऐसी जो पर्याय, वह भी शुद्धनय नहीं कहता। शुद्धनय तो सदा परमात्मा कल्याणमय है, ऐसा कहता है। आहाहा! भाग्य है न, बापू! ऐसी बात भाग्यशाली बिना कान में नहीं पड़ती। आहाहा!

भगवान की वाणी है, यह सन्तों की वाणी है। दिगम्बर सन्त एकाध भव में मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव, उसमें एक शैली मस्तिष्क में आयी, भविष्य में तीर्थकर होनेवाले लगते हैं। पढ़ते हुए ऐसा मस्तिष्क में आया था। आहाहा! मुनि हैं। ऐसी शैली उसमें थी। आहाहा! जिन्हें समाज की पड़ी नहीं है। जिन्हें समाज का समुदाय मानेगा या नहीं मानेगा? भाग पड़ेंगे या नहीं पड़ जाँएँगे, उन्हें कुछ पड़ी नहीं है। उन्हें एक ही कल्याणमय परमात्मा का झुकाव (वर्तता है) परन्तु वह झुकाव भी कहते हैं कि शुद्धनय तो नहीं कहता, बापू! आहाहा! शुद्धनय पर्याय को स्वीकार नहीं करता। देवीलालजी! ऐसा कहाँ सुनने को मिले? स्थानकवासी में है? मन्दिरमार्गी में है? कहीं नहीं है, बापू! दिगम्बर में है परन्तु उन्हें कहाँ खबर पड़ती है? उनमें बहुत सब पड़ा है परन्तु अभी कुछ करते हैं। आहाहा! पुण्य से त्याग होता है, ऐसे लेख आते हैं। आज करुणादीप में आया है। त्याग है। त्याग विशेष करता है, वह पुण्य के कारण त्याग करता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धनय परमसत्ता कल्याण की मूर्ति प्रभु ध्रुव के ध्यान की बात शुद्धनय नहीं कहता। देवीलालजी! भगवान! आहाहा! तेरे पूर्ण प्रभु की बात तो देख! आहाहा! इसमें झगड़ा क्या? वाद-विवाद क्या? भाई! भले न जँचे और इसे जँचानेवाले थोड़े हों। वस्तु सब है। वस्तु (अपेक्षा से) सब भगवान हैं, सदा कल्याणमय परमात्मा हैं, परन्तु जँचने की बात, बापू! बहुत थोड़ों को होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ध्यानावली होना भी... दूसरी बात तो क्या करना ? शुद्धनय नहीं कहता। 'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)'... आहाहा! यह शुक्लध्यान और धर्मध्यान, निश्चय निर्मल पर्याय की शुद्धि की वृद्धि। पर्याय में, हों! शुद्धि, शुद्धि की वृद्धि... शुद्धि की वृद्धि... शुद्धि की वृद्धि... आहाहा! यह ध्यानावली ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है। गजब बात है, बापू! आहाहा! यह तो शुद्धता के पर्यायभेद व्यवहारमार्ग में कहे हैं। यशपालजी! आहाहा! प्रभु! इसमें किसका विवाद लेना ? बापू! आहाहा!

सत्ता का स्वीकार करनेवाली पर्याय को भी शुद्धनय स्वीकार नहीं करता। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, निरन्तर शिवमय, सदा कल्याणमय परमात्मा, उसे निरन्तर रहनेवाला तत्त्व; उसे निरन्तर नहीं रहनेवाली पर्याय-धर्मध्यान की, शुक्लध्यान की, हों! निरन्तर नहीं रहनेवाली धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय (को भी शुद्धनय स्वीकार नहीं करता) क्योंकि पर्याय, वह व्यवहार है और द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! पंचाध्यायी में है, पंचाध्यायी में। पर्याय, व्यवहार है; द्रव्य, निश्चय है। यह पर्याय है न यह ? ध्यानावली, ध्यान और शुद्धता की पर्याय बढ़े और बढ़े और एक के बाद एक बढ़े, यह तो भेद पड़ा और त्रिकाल की अपेक्षा से वह भेद है। शुद्धनय ध्यानावली को भी नहीं कहता। आहाहा! उसे व्यवहारनय कहता है। अरे! आहाहा! देखो तो सही! दया, दान, व्रत, भक्ति को व्यवहार कहा। वह तो असद्भूतव्यवहार है। यह ध्यानावली सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! यह भी व्यवहारनय कहता है। आहाहा! 'ऐसा मात्र'... वापस भाषा देखी ?

'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)' ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में... आहाहा! कहा है। त्रिकाली द्रव्य कल्याणमय प्रभु में उसके ध्यान की, आनन्द की धारा बढ़ती जाए और पूर्ण आनन्द का, ज्ञान शुक्लध्यान में हो, यह बात; अरे! पूर्ण आनन्द हो जाए - मोक्षपर्याय, वह भी शुद्धनय नहीं कहता। शुद्ध तो कहता है सदा कल्याणमय त्रिकालमय प्रभु आत्मा है। आहाहा! कठिन पड़े ऐसा है। आहाहा! परन्तु इसमें है या नहीं ? या घर का कहा जाता है ?

मुमुक्षु : एक ओर हों तथा दूसरी ओर न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

हे जिनेन्द्र!... मुनिराज कहते हैं—हे जिनेन्द्र!... एक ओर शुद्धनय में ध्यान की पर्याय नहीं कहते और एक ओर ध्यान की पर्याय को व्यवहार कहते हैं, प्रभु! यह तो तुम्हारा इन्द्रजाल नय है। इसमें से पहुँचना जगत को कठिन हो। आहाहा! ऐसे सन्त जगत में सिद्ध समान। नग्न दिगम्बर मुनि जब होंगे तब... आहाहा! धन्य घड़ी! धन्य काल! आहाहा!

मुमुक्षु : भावी तीर्थकर की बात २१२ कलश में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावी तीर्थकर का मस्तिष्क में आया था। तीर्थकर होनेवाले हैं। वाँचन में कहीं आया था। कहीं सब याद रहता है? आहाहा!

शुद्धनय नहीं कहता। व्यवहारमार्ग में कहते हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय, वह व्यवहारमार्ग में कहते हैं। वे दया, दान और व्रत व्यवहाररत्नत्रय की तो बात भी नहीं है। यह तो अभी आगे आएगा। अभी आगे कहेंगे। दूसरे पृष्ठ पर आएगा (कलश १२१)। जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (-कहनेमात्र) कारण है उसे भी (अर्थात् व्यवहार -रत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है;... इसके बाद के (कलश में) है, एक पृष्ठ के अन्तर से। बाद के एक पृष्ठ के अन्तर से है। जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र, व्यवहार नाममात्र है। आहाहा! यह तो मोक्ष का कारण है—ध्यानावली तो कारण है। व्यवहार तो कथनमात्र है। आहाहा! कहनेमात्र है। आहाहा!

हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है। अहो! प्रभु! इन्द्रजाल है। एक ओर पर्याय की बातें करना। पर्याय-पर्याय मात्र निर्मल हो, उसकी बात करना; एक ओर द्रव्य एकरूप है, वह बात करना। प्रभु! यह तो इन्द्रजाल जैसा है। पर्याय की बात करने पर विस्तार पाती है और द्रव्य की बात करने पर संक्षिप्तता पाती है। इन्द्रजाल की तरह संक्षिप्तता पा जाती है। आहाहा! इन्द्र की जाल जैसे ऐसे विस्तार पावे और सिमट जाए; वैसे शुद्धनय से संक्षिप्तता पावे, व्यवहारनय से पर्याय की बात करे। आहाहा! हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१२०

(वसंततिलका)

सद्बोध-मण्डन-मिदं परमात्म-तत्त्वं,
मुक्तं विकल्पनिकरैरखिलैः समन्तात् ।
नास्त्येष सर्व-नय-जात-गत-प्रपञ्चो
ध्यानावली कथय सा कथमत्र जाता ॥१२०॥

(हरिगीतिका)

ज्ञान-सम्यक् का विभूषण तत्त्व यह परमात्मा ।
है सब विकल्पों से रहित सब ओर से यह आत्मा ॥
इसमें नहीं नयपुञ्ज सम्बन्धी प्रपञ्च जरा अहो ।
ध्यानावली फिर किस तरह उत्पन्न हो सकती कहो ॥१२०॥

[श्लोकार्थ :] सम्यग्ज्ञान का आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहों से सर्वतः मुक्त (-सर्व ओर से रहित) है । (इस प्रकार) सर्व नयसमूह सम्बन्धी यह प्रपञ्च परमात्मतत्त्व में नहीं है तो फिर वह ध्यानावली इसमें किस प्रकार उत्पन्न हुई (अर्थात् ध्यानावली इस परमात्मतत्त्व में कैसे हो सकती है) सो कहो ॥१२०॥

प्रवचन-९१, श्लोक-१२०, गाथा-९०, रविवार, मागशर शुक्ल ६, दिनांक २५-११-१९७९

सद्बोध-मण्डन-मिदं परमात्म-तत्त्वं,
मुक्तं विकल्पनिकरैरखिलैः समन्तात् ।
नास्त्येष सर्व-नय-जात-गत-प्रपञ्चो
ध्यानावली कथय सा कथमत्र जाता ॥१२०॥

आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। कहते हैं, यह धर्मात्मतत्त्व है। अन्दर आत्मतत्त्व है, वह परमात्मतत्त्व ही है। उसकी शक्ति और स्वरूप परमेश्वर परमात्मस्वरूप है। ऐसे परमात्मतत्त्व में सम्यग्ज्ञान का आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व... है। वह सम्यग्ज्ञान के

स्वभाववाला परमात्मतत्त्व है। ऐसा आत्मा है। उसके सम्यग्ज्ञान की शोभा से यह परमात्मतत्त्व है। उसमें पुण्य और पाप, दया और दान, काम और क्रोध—ये परिणाम / विकल्प उसमें है ही नहीं। आहाहा! चैतन्यतत्त्व को पहुँचना कठिन काम है। **सम्यग्ज्ञान का आभूषण...** है वह तो। सम्यग्ज्ञान की शोभावाला तत्त्व है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प का समूह है नहीं। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं, और उस आत्मा की अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली शुरुआत कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान का आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहों से सर्वतः मुक्त... है। कोई भी विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति, गुण-गुणी के भेद का भी विकल्प / राग, उस वस्तु में नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मा कहते हैं, जिसे आत्मा-परमात्मा कहते हैं, जो आत्मा नवतत्त्व में भिन्न आत्मा कहते हैं; उस आत्मा की दृष्टि करने से उस आत्मा में विकल्प का राग, विकल्प की, राग की वृत्ति का समूह उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन है। यह तो बाहर से यह करो... यह करो... यह क्रिया करो... यह सब तो राग की क्रिया है। इनमें धर्म मनवाया है, (यह) मिथ्यात्व का सेवन (है और) वह सब संसार में भटकने का लक्षण है।

यहाँ तो यह कहते हैं कि इसकी शोभा तो सम्यग्ज्ञान की शोभा से है। विकल्प का कोई भी समूह उसमें नहीं है। अस्ति-नास्ति की है। ऐसे आत्मा को अन्दर पहिचानना। ऐसे आत्मा को अन्दर पहिचानकर श्रद्धा करना, इसका नाम धर्म की पहली शुरुआत है। आहाहा! ऐसा काम है। है? **समस्त विकल्प समूह...** विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति; कोई भी गुण-गुणी भेद का विकल्प / राग या दया, दान के विकल्प का राग। यह ज्ञान की शोभावाला तत्त्व है, उसमें विकार है ही नहीं। आहाहा! यह विकल्प है, वह तो मलिनता है और प्रभु तो ज्ञान की शोभावाला तत्त्व है। आहाहा!

अनन्त काल से यह बात जँची नहीं। चौरासी के अवतार में भटककर मरा है। साधु हो, बाहर का त्यागी हो तो भी उस राग की क्रिया को अपनी मानता है। जो राग, स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत और भक्ति, वह तो विकल्प / राग है। वह **समस्त विकल्प समूह...** ज्ञान की शोभावाला तत्त्व ज्ञान से भरपूर, अकेला ज्ञान से भरपूर शोभावाला तत्त्व, उसमें अज्ञान और विकल्प, विकार के समूह का अभाव है। यह प्रतिक्रमण है।

इसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! बाकी तो शाम-सवेरे पहाड़े बोल जाए। प्रतिक्रमण कर ले, मिथ्यात्व है। आहाहा! एक बात (हुई)। दूसरी।

सर्व नयसमूह सम्बन्धी यह प्रपंच... आहाहा! भगवान आत्मा परमात्मतत्त्व है, वह ज्ञान से शोभावाला है। उसे विकल्प से प्राप्त करना - ऐसी वह चीज़ नहीं है। नय, नय का विकल्प, व्यवहारनय का विकल्प, निश्चयनय का विकल्प। आहाहा! विकल्प, वह राग की वृत्ति है। **सर्व नयसमूह सम्बन्धी यह प्रपंच...** आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान में, नयसमूह का तो प्रपंच है। आहाहा! इस विकल्प की वृत्ति में निश्चय के-व्यवहार के आश्रित... यह सब विकल्प की वृत्तियों का समूह, यह सब ज्ञान की शोभावाले तत्त्व में प्रपंच है। आहाहा! ऐसा तत्त्व है।

तो फिर वह ध्यानावली इसमें किस प्रकार... होगी? आहाहा! यह न्याय देकर बात की है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! सम्यग्दर्शन-प्रथम धर्म, उसका जो विषय चैतन्य परमात्मतत्त्व ज्ञानभूषण ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसमें विकल्प का समूह तो नहीं, परन्तु व्यवहारनय और निश्चयनय के विकल्पों का प्रपंच भी जिसमें नहीं। आहाहा! है? मूलमार्ग है। वाड़ा में तो यह चले, ऐसा नहीं है। यह बात चलती नहीं। सम्प्रदाय में तो क्रियाकाण्ड, राग की क्रिया—यह करो... यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो। यह मिथ्यात्व का सेवन है। जो स्वरूप में नहीं, ऐसे राग का सेवन, वह मिथ्यात्व का सेवन है। आहाहा! और जिसमें राग और विकल्प नहीं, ऐसा ज्ञान के स्वभाववाला तत्त्व, उसकी सेवा, वह सम्यक्तत्त्व है। आहाहा! सूक्ष्म है। मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! दुनिया अभी चलती है, उससे पूरा प्रकार अलग है।

जब ज्ञानस्वभाववाला तत्त्व अर्थात् सर्वज्ञस्वरूपी पूर्ण ज्ञानस्वभाववाला तत्त्व आत्मा पूर्ण ज्ञान से भरपूर, अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञान जिसका स्वभाव है। ऐसे तत्त्व से शोभित आत्मा को सर्व विकल्प के समूह का तो अभाव है, परन्तु व्यवहार और निश्चय के विकल्प का उसमें प्रपंच नहीं है। जब वह नहीं... आहाहा! तो तीसरी बात।

तो फिर वह ध्यानावली इसमें किस प्रकार उत्पन्न हुई... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द की पर्याय में उसका ध्यान, ध्यान करना और पर्याय की निर्मलता प्रगट करना और पर्याय की निर्मलता बढ़ाना, ऐसी पर्याय का ध्यान का विषय, वह वस्तु में कहाँ है? आहाहा! कहाँ ले गये?

पहले तो विकल्प समूह का निषेध किया। ऐसा वह तत्त्व ही है, भगवान परमेश्वरस्वरूप ही है। भगवत्स्वरूप में जगत की ओर का विकल्प अर्थात् राग का समूह तो नहीं, परन्तु उसके व्यवहार और निश्चयनय के विकल्प के राग का प्रपंच भी नहीं है। जब वह नहीं है तो फिर ऐसा एकरूप जो ज्ञानस्वरूप भगवान, उसमें ध्यानावली अर्थात् ध्यान की श्रेणी-धारा... आहाहा! ध्यान की श्रेणी की धारा एक के बाद एक, एक के बाद एक शुद्धि, उस शुद्धि की धारा, वह पर्याय है। वह पर्याय, द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा तत्त्व है। सूक्ष्म पड़े, बापू! क्या हो? कभी किया नहीं। अनन्त काल परिभ्रमण में गया और यह समझे बिना वहाँ का वहीं चौरासी के अवतार में जानेवाला है, परिभ्रमण में भटकने। कौआ, कुत्ता, पशु में अवतार। आहाहा!

तीन प्रकार कहे। यह (आत्मा) तो ज्ञान और आनन्द से शोभित तत्त्व है। उसमें राग के विकल्पों का समूह तो नहीं, परन्तु नय के विकल्पों का प्रपंच उसमें नहीं, तो ध्यानावली-ध्यान की श्रेणी शुद्ध-शुद्ध, वह ध्यान की श्रेणी शुद्ध, पर्याय की शुद्धि बढ़े, शुद्धि बढ़े... शुद्धि बढ़े... ऐसी शुद्धता की धारा, वह पर्याय है। वह द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : ऐसी बात अफ्रीका में नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है। दुनिया को मार्ग मिलता नहीं। बेचारे धर्म के नाम पर कहीं भटकते हैं। दया, व्रत, तप, अपवास... आहाहा! मर गया उसी और उसी में। प्रतिमा ले लो, दो प्रतिमा लो, चार प्रतिमा लो, व्रत लो। पहला व्रत, दूसरा व्रत, परन्तु मूलतत्त्व नहीं मिलता, उसमें व्रत आये कहाँ से? जो चीज़ है, जिसमें स्थिर होना है; वह चीज़ दृष्टि में आये बिना स्थिर किसमें होना? स्थिरता, वह व्रत है।

जो चीज़ अन्दर है, अनादि-अनन्त नित्यानन्द का दल, ध्रुव, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता और अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता का प्रभु स्वयं है। आहाहा! उसकी शोभा उसके गुण से है। यहाँ ज्ञान से कही, परन्तु ज्ञान कहने से पूरे अनन्त गुणों से उसकी शोभा है। उसमें विकल्प के जाल, राग कहाँ से आया? भाई! उसमें राग कहाँ है? वह तो नहीं, परन्तु इस यह निश्चयनय से ऐसा है, व्यवहारनय से ऐसा है - ऐसे विकल्प के राग का प्रपंच जाल भी उसमें कहाँ है? यह तो ठीक। यह तो राग आया। यह

तो दोनों राग आये, परन्तु विकल्प का समूह और नय का प्रपंच यह तो विकल्प / राग आया। अब यहाँ तो प्रभु शुद्ध चैतन्य ज्ञान-आनन्द से शोभता ध्रुव चैतन्य में उसके ध्यान के पर्याय की ध्यान की धारा, निर्मल धारा पर्याय, वह पर्याय की श्रेणी भी ध्रुव में कहाँ है ? आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! क्या हो ? अनादि से सुनने को मिलता नहीं। सुना नहीं, मिला नहीं।आहाहा!

यहाँ करोड़ोंपति बनिया हो, मरकर ढोर होता है। बहुत से पशु होनेवाले हैं। नरक में नहीं जाएँ, क्योंकि माँस और अण्डा यह नहीं (खाते)। देव और मनुष्य में तो जाए नहीं, क्योंकि पुण्य नहीं। धर्म तो है नहीं। आहाहा! ये अरबोंपति और करोड़ोंपति सब पशु में जानेवाले हैं। अन्तिम चौदह बोल आये हैं न ? उन सबमें पशु कहा है। पशु... पशु... पशु... फिर एकेन्द्रिय में जाए, निगोद में जाए या पंचेन्द्रिय में जाए परन्तु सब पशु हैं, तिर्यच हैं। आहाहा! तत्त्व का बहुत-बहुत विरोध करे, वे निगोद में लहसुन और प्याज में जाते हैं। आहाहा! इसे तो खबर भी नहीं होती कि मैं तत्त्व का विरोध करता हूँ या नहीं। वहाँ 'पशु' शब्द लिया है। पशु का मूल अर्थ ऐसा है, पशु - पश्यति इति बधति इति पशु। कर्म से और विकार से बँधे, वह पशु है। आहाहा!

भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप है, उसे बन्धन के भाव से लाभ मानना, उस विकल्प के जाल से लाभ मानना, वह मिथ्यात्वभाव, वह पशु में जाने का लक्षण है। आहाहा! बहुत विराधना होवे तो निगोद में जाए, साधारण विराधना होवे तो पंचेन्द्रिय ऊँट, गाय, भैंस, गिलहरी हो। भटके वहाँ से मरकर। आहाहा! देखो न, इस रास्ते में अभी कुत्ते मर जाते हैं। रास्ते में बड़े-बड़े कुत्ते मरे हुए सड़क पर पड़े होते हैं। ट्रक सिर पर घूम जाता है। हो गया (भव पूरा), फिर मरकर बेचारे कहीं पशु में जाएँ। माँस खाते हों तो नरक में जाएँ। आहाहा! आत्मा तो अनादि-अनन्त है। यह देह छूटा तो कहीं आत्मा नष्ट होता है ? आत्मा वहाँ से जाता है और यहाँ पशु था परन्तु भान तो कुछ था नहीं। आहाहा! रास्ते में मरे हुए पशु पड़े होते हैं। आहाहा! आत्मा कहीं भटकता था। ऐसे अनन्त भव (किये)।

चैतन्य की शोभा ज्ञान और आनन्द से है। ज्ञान कहने से वहाँ विकल्प नहीं, ऐसा कहना है। सर्वज्ञस्वभावी है, पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी है। ऐसे परमात्मतत्त्व में बाहर की जितनी राग की सब वृत्तियाँ (उत्पन्न होती है), वह सब विकल्प का समूह कहलाता है। स्त्री

सम्बन्धी, पुरुष सम्बन्धी विकल्प, व्यापार सम्बन्धी, धन्धा सम्बन्धी, पैसा सम्बन्धी... आत्मा के अतिरिक्त दूसरे परपदार्थ सम्बन्धी जितने विकल्प उठते हैं, वह सब विकार-राग है। आहाहा! आत्मा सम्बन्धी में भी नय के विचार आवें, वह भी प्रपंच है, कहते हैं। आहाहा! यह तो ठीक, परन्तु शुद्धचैतन्य शुद्धनय जो चैतन्यद्रव्य है, उसका जो ध्यान होता है, ध्यान की धारा-शुद्धता की धारा, मोक्षमार्ग की पर्याय धारा, वह भी ध्यानावली / ध्यान की श्रेणी, वह भी स्वरूप में कहाँ है? वह तो व्यवहार का विषय है। त्रिकाली वस्तु निश्चय का विषय है। यह सम्यग्दर्शन का विषय तो त्रिकाली ध्रुव है। ध्यान की धारा, वह भी कहीं सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! ऐसा सुनना क्या? पूरे दिन... अब इसे यहाँ कहना कि ध्यान की धारा की परिणति भी तुझमें नहीं है। वहाँ दृष्टि कर न! आहाहा!

वस्तु जो ध्यान का ध्येय है, उस ध्येय में ध्यान की धारा नहीं है। आहाहा! ऐसा जिनेश्वर, परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग की ध्वनि ऐसी है। अरे रे! सुनने को मिलता नहीं। जिन्दगी पशु की तरह चली जाती है। मृत्यु के समीप जाता है। आयुष्य तो जो निश्चित है, उस समय में देह छूटना है। जितने दिन और रात्रि जाते हैं, वे सब मृत्यु के समीप जाते हैं। आहाहा! इसे (देह को) छोड़कर भटकने चला जाएगा। आहाहा! अरे! प्रभु! तुझे दया नहीं आती? तुझे तेरी दया नहीं आती?

प्रभु कहते हैं कि ध्यानावली पर्याय है, वह भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र तो कहीं रह गये। स्वद्रव्य के अतिरिक्त, स्वद्रव्य जो ज्ञान से शोभित चैतन्यमूर्ति प्रभु, जिसका अलंकार, चैतन्य आनन्द और शान्ति जिसका अलंकार है—ऐसा वह परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा है। उसे कहते हैं कि बाहर परद्रव्य के सम्बन्धी का झुकाववाला राग, वह तो उसमें है नहीं परन्तु स्वद्रव्य सम्बन्धी निश्चयनय और व्यवहारनय के विकल्प, वे हैं नहीं परन्तु उसके लक्ष्य से होनेवाली ध्यान की धारा की पर्याय-वह ध्यानावली की श्रेणी भी उसमें नहीं है। आहाहा! यहाँ तक जाना। जरा भी निवृत्त नहीं होता। भटकने के रास्ते चढ़ा है। यह श्लोक उत्कृष्ट है। तीन आये न? भाई! आहाहा!

ऊपर कहा गया कि शुद्धनय ध्यानावली को कहता नहीं। वह तो व्यवहारनय कहता है। आत्मा ज्ञायक त्रिकाली ध्रुव प्रभु की ध्यान की पर्याय शुद्ध। शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... बड़े, उस सब पर्याय को तो व्यवहारनय कहता है। निश्चयनय तो उसे

कहता ही नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश है। तो फिर वह ध्यानावली... ध्यानावली समझे? ध्यान की श्रेणी-धारा। एक के बाद एक शुद्ध परिणति शुद्ध, शुद्ध, हों! वह शुद्ध मोक्षमार्ग की पर्याय। विकल्प-नय विकल्प और पर की ओर के विकल्प तो बन्ध के कारण हैं। यह तो मोक्ष का मार्ग, (वह भी स्वरूप में नहीं है)। आहाहा!

ध्रुवधाम भगवान परमात्मा... वस्तु कठिन बहुत, प्रभु! सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् सत् चिदानन्द ज्ञान-आनन्द से शोभित, ऐसा जो ध्रुवतत्त्व, उसमें विकल्प का तो अवकाश है नहीं परन्तु ध्यानावली भी उसमें कहाँ से आयी? उससे बाहर रहती है। ध्यानावली भी ध्येय जो है, उससे ध्यानावली तो ऊपर रहती है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प है, वह तो राग है, दोष है, दुःख है परन्तु मोक्ष का मार्ग है, वह शुद्ध है। आहाहा! परन्तु यह ध्रुवस्वरूप भगवान जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, जो दृष्टि का विषय ऐसी जो चीज़ है, उसमें पर्याय-ध्यानावली की पर्याय आयी कहाँ से? वह तो व्यवहार का विषय है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा है। कितनों ने तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। बात सुनी नहीं होगी तो समझे कहाँ से? भटकने के रास्ते... अर र!

मुमुक्षु : ऐसा आत्मा दिखता नहीं, वह हमें जानना-पहिचानना किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दिखता नहीं, यह निर्णय किसने किया? दिखता नहीं, यह निर्णय देखनेवाले ने किया। मनसुखभाई! मैं समझता नहीं, यह किसने जाना? मैं दिखता नहीं, यह कौन कहता है? कौन जानता है यह? मैं दिखता नहीं, यह जानता कौन है? यह देखनेवाला जानता है। आहाहा! यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा!

श्रीमद् ने गाथा ली है 'नाना नास्ति विचार, यही अस्ति वही सूचवे।' यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह कौन निर्णय करता है? निर्णय किसने किया? किस सत्ता में निर्णय हुआ? किसकी अस्ति में यह ज्ञान हुआ? जिसकी अस्ति में ज्ञान हुआ, वह भगवान आत्मा है। आहाहा! 'करि कल्पना दृढ़ करे, नाना नास्ति विचार, पर यही सूचवे अस्ति...' निषेध करे कि मैं नहीं, मैं नहीं। किसने निर्णय किया? राग ने किया? जड़ ने किया? निर्णय किसने किया? कभी विचार किया है? अन्ध का अन्ध चला जाता है। अन्धे देखनेवाले को देखते नहीं और अन्धे को सामने करके अन्धे को देखता है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से, यह है-यह किसमें ज्ञात होता है ? उसमें ज्ञात होता है ? यह शरीर है, वह शरीर में ज्ञात होता है ? यह स्त्री, पुत्र, देह, परिवार है, वह उसमें ज्ञात होता है ? या आत्मा की पर्याय में ज्ञात होता है ? जो पर्याय का अस्तित्व है, उसमें वह ज्ञात होता है । यह वास्तव में वह ज्ञात नहीं होता, वास्तव में तो इसकी पर्याय ज्ञात होती है । वह पर्याय भी जिसमें नहीं है । आहाहा ! लॉजिक से कुछ न्याय पकड़ेगा या नहीं ?

जिसकी सत्ता में इस सत्ता का स्वीकार होता है, उस चैतन्य की पर्याय की सत्ता में यह है, (ऐसा ज्ञात होता है) । पैसा है, स्त्री है, यह पुत्र है, यह कहीं इसकी पर्याय में वह चीज़ नहीं आती । पर्याय अर्थात् अवस्था । जानने की अवस्था । त्रिकाल द्रव्य और त्रिकाल गुण तथा वर्तमान पर्याय की अवस्था; उस अवस्था में वह चीज़ कहीं नहीं आती, परन्तु वह चीज़ है - ऐसा जानता है । वह भी उस चीज़ को नहीं जानता । आहाहा ! वह चीज़ तो आती नहीं, परन्तु उस चीज़ को नहीं जानता । यह जाननेवाले को जानता है । आहाहा ! ऐसा है, प्रभु ! यह तो वीतराग जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है, बापू ! लोगों ने पामररूप से निकाल डाला । एकेन्द्रिय की दया पालो, अमुक की दया पालो, यह व्रत करो, ऐसा करके जैनधर्म को पामर कर डाला है । जिसकी प्रभुता का पार नहीं, जिसकी महिमा का पार नहीं । आहाहा !

जो इस जगत में चीज़ें हैं, यह है । शरीर है, यह है । शरीर है । शरीर है, लो न । शरीर है तो उसमें शरीर को खबर पड़ती है ? शरीर है, यह शरीर को खबर पड़ती है ? इस आत्मा की पर्याय में खबर पड़ती है कि यह शरीर है, तथापि उस पर्याय में-अवस्था में यह शरीर नहीं आता । वास्तव में पर्याय शरीर को नहीं जानती । आहाहा ! पर्याय, पर्याय को जानती है क्योंकि शरीर को नहीं जानती अर्थात् शरीर में तन्मय नहीं होती, तो तन्मय हुए बिना उसे जानना कहना, यह बराबर नहीं है ।

यह शरीर है, वाणी है, राग है, यह पैसा-धूल है, यह मिट्टी है, मकान है, जो आत्मा की पर्याय अर्थात् अवस्था की सत्ता में ज्ञात होते हैं । ये ज्ञात होते हैं, वह आत्मा की सत्ता की अवस्था ज्ञात होती है, यह वस्तु नहीं । जिसे मुख्य करके ज्ञात होता है, उसे मुख्य करके न रखना, अन्य को मुख्य करके रखना-ऐसी भ्रमणा, यह सब चौरासी में भटकने के रास्ते हैं । जिसकी एक समय की पर्याय में यह है, सब यह है ।

एक बार पर्वत पर चढ़ते थे, उतरते थे। गिरनार चढ़ते तो ऐसे नजर जाए। उतरते हुए सब दिखायी दे। उतरते हुए सब दिखायी दे। इतना आत्मा, इतने भाग में इतना सब दिखायी दे। कितने दूरी से दिखायी दे? गिरनार के ऊपर से जैतपुर दिखायी दे। आहा! यह सब दिखायी देता है, वह क्या है? वह दिखता है? उसमें आत्मा की पर्याय गयी है, वह उसे देखती है? पर्याय, पर्याय में रहकर पर्याय को देखती है। आहाहा! अरे रे! ऐसा कहाँ से करना? निवृत्ति कहाँ से? संसार के पाप के कारण निवृत्त कहाँ होता है? पाप की पीजण कातता रहता है। पाप की पीजण पूरे दिन। धर्म तो कहीं रहा? परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! यह सब दिखता है। यहाँ तो इतना ऐसा दिखायी दिया। वास्तव में तो असंख्य प्रदेश में दिखता है। वह तो यहाँ निमित्त है। असंख्य प्रदेश में पर्याय में ज्ञात होता है। उस पर्याय में पर्याय की शक्ति से पर्याय को जानता है। पर्याय की शक्ति से पर्याय को पर्याय जानती है।

जब एक पर्याय ऐसी शक्ति को जाने, इतनी ताकतवाली, तो उस पर्याय का धारक पर्यायवान, जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं, जिसमें ध्यानावली का प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है परन्तु भाव भाई! आहाहा! प्रचलित भाव से अलग प्रकार है, बापू! वीतराग जिनेश्वर परमेश्वर त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा। उसके पीछे (बाद में) जिनेश्वर के नाम से अनेक प्रकार से स्वच्छन्द मार्ग को लोगों ने सेवन किया। आहाहा! मार्ग तो दूसरा रह गया। यह मार्ग है। आहाहा! यह क्या कहा? देखो न!

जिस पर्याय में ज्ञात होता है, वह पर्याय भी अन्दर में नहीं है, ध्रुव में नहीं है। आहाहा! परन्तु कब पाप के कारण विचार का समय मिले? पूरे दिन पाप की पीजण करता है। आहाहा! उसका योगफल आएगा। कुदरत के नियम में वह योगफल आएगा। आहाहा! क्या आचार्यों ने संक्षिप्त भाषा में किस प्रकार सबको प्रसिद्ध किया है!! आहाहा!

प्रभु! तू तो ज्ञान अर्थात् गुण से शोभायमान है न! आहाहा! तू तो आनन्द और ज्ञान और शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता इन तेरे गुणों से शोभायमान है न! उसमें पर के विकल्पों से तुझे तो अशुद्धता और कलंक लगता है और उसमें से तुझे शोभा लगती है कि यह मैंने किया, यह मैंने किया, मैंने इसका यह किया, मैंने इसका यह किया। क्या तुझे भ्रमणा हुई है? प्रभु! आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, भगवान! आहाहा!

आनन्द और ज्ञान से शोभित तत्त्व, ऐसा जो परमात्मतत्त्व स्वयं प्रभु निज परमात्मा की पर्याय में यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... वह चीज़ तो यहाँ आती नहीं और तेरी पर्याय उस चीज़ में जाती नहीं, तो पर का करूँ, यह तो उसमें आता नहीं परन्तु पर को जानना कहना, वह भी व्यवहार है, असद्भूतव्यवहार है, क्योंकि पर में तन्मय नहीं होता। मात्र अपनी पर्याय को जानता है, यह कहना, वह सद्भूतव्यवहार है। वह भी पर्याय की धारा... आहाहा! प्रभु! तेरे ध्रुव में कहाँ से आयी? वह तो ध्रुव के ऊपर तैरती है। तेरे दृष्टि का विषय, वह कहीं ध्यानावली नहीं है। ध्यान की धारा, वह दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। इस गाथा के कलश में बहुत भरा है। तीन बोल कहकर तो बहुत भरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रीतिभोज है, उसे लड़ाया...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है। परन्तु इसमें है या नहीं यह? एक परमात्म शब्द कहो तो उसमें क्या बाकी है? फिर उसे लडाना अर्थात् अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों और ऐसा का ऐसा। वह तो ऐसा है, उसका कहने का है। आत्मा निज परमात्मा परमेश्वरस्वरूप ही है। यदि शक्ति और स्वभाव से परमेश्वर न होवे तो पर्याय में परमेश्वर अरिहन्त हुए, वे कहाँ से हुए? कहीं बाहर से परमेश्वरपना आता है? अन्दर पड़ा है, उसमें से आता है। आहाहा! उस पड़े हुए परमेश्वर में ध्यान की ध्यानावली का भी अवकाश नहीं है। आहाहा! वह व्यवहार का विषय है। आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! जँचे न जँचे, परन्तु सत्य तो यह है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का तो ऐसा कहना है। उससे कम, अधिक, विपरीत मानेगा, वह मिथ्यात्व सेवन कर चार गति में भटकेगा। नरक और निगोद में जाएगा। आहाहा! वहाँ कोई सहारा नहीं है। वहाँ कोई सिफारिश लागू नहीं पड़ती। हमने इतना पुण्य किया था, इतना दान दिया, हमने यह किया था। यह तेरा दान-पुण्य तो कहाँ...? ऐरण की चोरी और सुई का दान। पूरे दिन पाप के पोटले बाँधे और उसमें कभी सहज पुण्य का भाव करे, वह सुई का दान और ऐरण की चोरी। तेरे पुण्य का भी कहाँ ठिकाना है? धर्म का तो ठिकाना कहाँ है? आहाहा! यह एक श्लोक हुआ। पौन घण्टे में एक श्लोक हुआ। आहाहा! बहुत भरा है, बहुत भरा है।

द्रव्य और पर्याय तथा व्यवहार और निश्चय दोनों की बात बहुत भरी है। एक परद्रव्य के विकल्प से भरी हुई है, उससे रहित हुआ। पश्चात् स्वद्रव्य के नय और निषेध के व्यवहार के विकल्प से रहित कहा; पश्चात् स्वद्रव्य की ध्यानावली की पर्याय से रहित कहा। आहाहा! इसमें है या नहीं?

स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, धन्धा तो कहीं रह गया, उसकी तो यहाँ बात भी नहीं है। उसके सम्बन्धी का जो राग होता है, वह तेरी पर्याय में है। वे चीजें तो उनमें रही है। वे कहाँ तेरे पास है और तेरे पास अन्दर आती है? राग होता है, उसे पहले उड़ाया। उस राग का समूह तुझमें नहीं है। पर्याय में है, वह द्रव्य में नहीं है। अन्य चीज तो पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! यह क्या कहा? स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, इज्जत, मकान, पैसा, वह तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं। वे तो बाहर उनमें रहते हैं परन्तु इसकी पर्याय में उनके सम्बन्धी का विकल्प है, उसकी बात की है। आहाहा! विकल्प अर्थात् राग। उसके सम्बन्धी का तुझे जो राग होता है, वह तेरी पर्याय में है परन्तु वह द्रव्य में नहीं है। जहाँ पूरा परमात्मतत्त्व पड़ा है, उसमें वे नहीं हैं। एक बोल ऐसा कहा।

दूसरा बोल ऐसा कहा कि... यह निश्चय से ऐसा और व्यवहार से ऐसा, सद्भूत से ऐसा और असद्भूत से ऐसा, यह तेरे आत्मा में भेद पाड़कर ज्ञान के भेद... आहाहा! वह समूह भी प्रपंच है। आहाहा! प्रभु! वह तुझमें नहीं है। वहाँ दृष्टि कर।

तीसरा, पहले में विकल्प है, वह भी दुःखरूप है - ऐसा कहा। पहले और दूसरे दोनों विकल्प में दुःख है। और तीसरे में सुख है। तीसरे में सुख है, अतीन्द्रिय सुख है परन्तु उस पर्याय में सुखधारा... कम, बढ़ते.. बढ़ते.. बढ़ते सुख की धारा बढ़ती है, ऐसी पर्याय बढ़ती है, एकरूपता नहीं है। इस एकरूप वस्तु में वह पर्याय की धारा एकरूप वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा है। ऐसा उपदेश किस प्रकार का? आहाहा!

इसे डर नहीं लगता। उस सर्प को देखकर डर लगता है, बिच्छु को देखकर डर लगता है परन्तु भवभ्रमण कितने होंगे, उसका इसे डर नहीं लगता। कोई शत्रु छुरी लेकर मारने आवे तो डर लगता है। आहाहा! अनन्त भवों का भव करने का भाव, इसे भव का डर नहीं लगता। आहाहा! यह ८९ गाथा हुई।

गाथा-९०

मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं ।
सम्मत्त-पहुदि-भावा अभाविया होंति जीवेण ॥९०॥

मिथ्यात्वप्रभृतिभावाः पूर्णं जीवेन भाविताः सुचिरम् ।
सम्यक्त्व-प्रभृति-भावाः अभाविता भवन्ति जीवेन ॥९०॥

आसन्नानासन्नभव्यजीवपूर्वापरपरिणामस्वरूपोपन्यासोऽयम् । मिथ्यात्वाव्रतकषाय-
योगपरिणामास्सामान्यप्रत्ययाः, तेषां विकल्पास्त्रयोदश भवन्ति 'मिच्छादिद्वीआदी जाव सजोगिस्स
चरमंतं' इति वचनात्, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादिसयोगिगुणस्थानचरमसमयपर्यन्त-स्थिता इत्यर्थः ।
अनासन्नभव्यजीवेन निरञ्जननिजपरमात्मतत्त्वश्रद्धानविकलेन पूर्वं सुचिरं भाविताः खलु
सामान्यप्रत्ययाः, तेन स्वरूपविकलेन बहिरात्मजीवेनानासादितपरम-नैष्कर्म्यचरित्रेण
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि न भावितानि भवन्तीति । अस्य मिथ्यादृष्टे-र्विपरीतगुणनिचय-
सम्पन्नोऽत्यासन्नभव्यजीवः ।

अस्य सम्यग्ज्ञानभावना कथमिति चेत्? तथा चोक्तं श्रीगुणभद्रस्वामिभिः ह

(अनुष्टुप्)

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः ।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः ॥

तथाहि ह

मिथ्यात्व आदिक भावकी की जीव ने चिर भावना ।

सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना ॥९०॥

अन्वयार्थः :—[मिथ्यात्वप्रभृतिभावाः] मिथ्यात्वादि भाव [जीवेन] जीव ने
[पूर्वं] पूर्वं में [सुचिरम्] सुचिर काल (अति दीर्घ काल) [भाविताः] भाये हैं;
[सम्यक्त्वप्रभृतिभावाः] सम्यक्त्वादि भाव [जीवेन] जीव ने [अभाविताः भवन्ति]
नहीं भाये हैं ।

टीका :—यह आसन्न भव्य और अनासन्न भव्य जीव के पूर्वापर (-पहले के और बाद के) परिणामों के स्वरूप का कथन है।

मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योगरूप परिणाम सामान्य प्रत्यय (आसन्न) हैं; उनके तेरह भेद हैं, कारण कि 'मिच्छादिद्विआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं' ऐसा (शास्त्र का) वचन है; मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगीगुणस्थान के अन्तिम समय तक प्रत्यय होते हैं—ऐसा अर्थ है।

निरंजन निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धानरहित अनासन्नभव्य जीव ने वास्तव में सामान्य प्रत्ययों को पहले सुचिर काल भाया है; जिसने परम नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है, ऐसे उस स्वरूपशून्य बहिरात्म-जीव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को नहीं भाया है। इस मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत गुणसमुदायवाला अति-आसन्नभव्य जीव होता है।

इस (अतिनिकटभव्य) जीव को सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २३८ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(हरिगीतिका)

पहले न भायी भावनायें कभी भव-आवर्त में।

भव नाश करने के लिए अब भा रहा वे भावना ॥

[श्लोकार्थ :] ^१भवावर्त में पहले न भायी हुई भावनाएँ (अब) मैं भाता हूँ। वे भावनाएँ (पहले) न भायी होने से मैं भव के अभाव के लिये उन्हें भाता हूँ (कारण कि भव का अभाव तो भवभ्रमण के कारणभूत भावनाओं से विरुद्ध प्रकार की पहले न भायी हुई ऐसी अपूर्व भावनाओं से ही होता है)।

गाथा-९० पर प्रवचन

९०वीं गाथा।

१. अर्थ—(प्रत्ययों के, तेरह प्रकार के भेद कहे गये हैं—) मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगकेवलीगुणस्थान के चरम समय तक के।

२. भवावर्त=भव-आवर्त; भव का चक्र; भव का भँवरजाल; भव-परावर्त।

मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं ।

सम्मत्त-पहुदि-भावा अभाविया होंति जीवेण ॥९०॥

नीचे हरिगीत

मिथ्यात्व आदिक भावकी की जीव ने चिर भावना ।

सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना ॥९० ॥

टीका : यह आसन्न भव्य... कहते हैं कि निकट में जिसकी मुक्ति है, उसकी बात । और अनासन्न भव्य... कभी मुक्ति नहीं हुई, उसका भाव । वह पूर्वापर (-पहले के और बाद के) परिणामों के स्वरूप का कथन है । जिसकी मुक्ति निकट है, उसका कथन है और जिसकी मुक्ति बिल्कुल नहीं, उसका कथन है । आहाहा ! अरे ! तूने भाई ! मिथ्यात्वभाव अनन्त बार सेवन किया है । आहाहा ! मिथ्यात्व—विपरीत मान्यतायें । आहाहा ! राग मेरा, स्त्री मेरी, पैसे मेरे, परिवार मेरा, मकान मेरा, इज्जत मेरी, पुत्र मेरा, पुत्री मेरी, दामाद मेरा... आहाहा ! गहने मेरे, कपड़े मेरे, शरीर मेरा, अमुक मेरा, मन मेरा, वाणी मेरी—ऐसे मिथ्यात्वभाव को तूने अनन्त बार सेवन किया है, प्रभु ! आहाहा ! ऐसा उपदेश ।

मिथ्यात्व,... भाव और अव्रत,... भाव । राग का त्याग नहीं और मिथ्यात्वसहित अव्रतभाव भी अनन्त बार सेवन किया है । कषाय... भी अनन्त बार सेवन की है । क्रोध, मान, माया, लोभ अनन्त बार किये हैं । अनन्त भव में अनन्त बार (किये हैं) । और योग... अनन्त भव में अनन्त बार योग-कम्पन किया । ये परिणाम सामान्य प्रत्यय... ये चार सामान्य आस्रव हैं । प्रत्यय अर्थात् आस्रव । आस्रव अर्थात् नये बन्धन के कारण । मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग'.. ये चार परिणाम नये आवरण के कारण हैं । इन्हें प्रत्यय कहा । समझ में आया इसमें ? ये चार प्रत्यय (आस्रव) हैं; उनके तेरह भेद हैं,... तेरह गुणस्थान है न ? पहले गुणस्थान से सयोगी तक । तेरह प्रत्यय हैं, तेरह आस्रव हैं । आहाहा !

प्रतिक्रमण है न ? यह प्रतिक्रमण की व्याख्या है । विमुख हुआ नहीं, प्रभु ! जहाँ है, वहाँ का वहीं रुका है । आहाहा ! मिथ्यात्व से लेकर सयोगी केवली । तेरह गुणस्थान से ये प्रत्यय-आस्रव हैं । तेरहवें गुणस्थान में भी ईर्यापथ आस्रव आता है न ? कारण कि 'मिच्छादिद्वीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं' ऐसा (शास्त्र का) वचन है;... मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी तक, शास्त्र का वचन है । मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगीगुणस्थान

के अन्तिम समय तक प्रत्यय... अर्थात् आस्रव । होते हैं—ऐसा अर्थ है। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा का पाप, अव्रत का पाप, कषाय का पाप, योग का पाप—ऐसा आस्रव वह ठेठ तेरहवें (गुणस्थान) तक आता है। आहाहा! मिथ्यात्व के पाप से लेकर।

निरंजन निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धान रहित... आहाहा! अब मिथ्यात्व की बात करते हैं। निरंजन परमात्मा-आत्मा है। निरंजन—अंजनरहित, मलरहित, मैलरहित—ऐसा भगवान् चैतन्य द्रव्यस्वरूप, चैतन्य पदार्थ है। वह निरंजन निज परमात्म... वापस निरंजन पर परमात्मा नहीं। निरंजन निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धान रहित... ऐसे परमात्मा की श्रद्धारहित। आहाहा! जिसे उसकी श्रद्धा की खबर भी नहीं। आहाहा! मेरा प्रभु निरंजन निज परमात्मा शुद्ध चैतन्य है, वह पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है। पर्याय के भेद से भी रहित है। ऐसा निज परमात्मतत्त्व-ऐसा लिया है न? पर्याय नहीं। आहाहा! निरंजन निज परमात्मतत्त्व। निज परमात्मतत्त्व। अन्दर स्वयं भगवान् है। आहाहा! परमेश्वर स्वयं आत्मा अन्दर है। ऐसे निज परमेश्वर के श्रद्धान रहित... उसकी श्रद्धारहित। उसकी श्रद्धा नहीं होती (और) दूसरे सबकी श्रद्धा। एक की नहीं होती। आहाहा! वररहित बारात। निरंजन निराकार परमात्मा शुद्ध-बुद्ध पूर्ण स्वरूप की श्रद्धान रहित...

नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है... आहाहा! अन्दर निष्कर्म (अर्थात्) पुण्य-पाप के विकल्परहित चारित्र अन्दर स्वरूप की रमणता प्राप्त नहीं की। स्वरूप की श्रद्धा तो नहीं, इसलिए स्वरूप का चारित्र भी नहीं, ऐसा कहते हैं। श्रद्धा पहले कही न? आहाहा! स्वरूप की श्रद्धा बिना चारित्र नहीं होता। स्वरूप की श्रद्धा निरंजन निज परमात्मा शुद्ध अखण्ड अभेद है, उसमें पर्याय का भी भेद नहीं। ऐसे परमात्मा की श्रद्धारहित जीव चारित्ररहित है। इसलिए चार गति में भटकते हैं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नियमसार ९० गाथा । तीसरा पैराग्राफ है ।

निरंजन निज परमात्मतत्त्व... यहाँ है न ? पहले आ गया है । मिथ्यात्व की पहली बात आ गयी है । अब यहाँ तो निरंजन निज परमात्मतत्त्व... यह परमात्मतत्त्व निज-अपना । उसके श्रद्धानरहित अनासन्नभव्य जीव ने... चारित्र प्राप्त सामान्य प्रत्ययों को पहले सुचिर काल भाया है;... श्रद्धान रहित अनासन्नभव्य जीव ने वास्तव में सामान्य प्रत्ययों... अर्थात् मिथ्यात्व आदि को सुनिश्चितरूप से पूर्व में भाया है । क्या कहा, समझ में आया ? अनासन्न भव्य जीव । जिसे संसार निकट नहीं है, संसार दूर है ऐसे अनासन्न जीव । है न अनासन्न भव्य जीव ? उसने मिथ्यात्व आदि भाव वास्तव में परमात्मतत्त्व के श्रद्धानरहित... सामान्य प्रत्ययों... अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना मिथ्यात्व आदि पहले सुचिर... अनन्त काल । सुचिर काल । भाया है;... आहाहा ! उसने मिथ्यात्व और अज्ञान और राग-द्वेष तो अनादि काल से भाया है ।

जिसने परम नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है... स्वरूप की रमणता, स्वरूप का अनुभव होकर, स्वरूप की रमणता जिसने प्राप्त नहीं की । ऐसे उस स्वरूपशून्य बहिरात्म-जीव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को नहीं भाया है । आहाहा ! अनन्त-अनन्त काल से, अनादि काल से उसने इन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना नहीं भायी है ।

मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत... मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत । गुणसमुदायवाला... गुण का पिण्डवाला प्रभु भगवान अति-आसन्नभव्य जीव... निकट में जिसकी मुक्ति है, अल्प काल में जिसकी मुक्ति है, ऐसे अति-आसन्नभव्य जीव होता है । दो प्रकार कहे । अनादि अति आसन्न भव्य से रहित, उसने मिथ्यात्व आदि भाव अनन्त बार किये हैं और आसन्न भव्य, निकट भव्य है, (जिसने) सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र को सेवन किया है । आहाहा !

अब इस (अतिनिकटभव्य) जीव को... अति निकट भव्य-अल्प काल में जिसका संसार का परिभ्रमण का अन्त आनेवाला है । अल्प काल में जिसके संसार का

अन्त आनेवाला है, ऐसे जीवों को सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है... कहते हैं कि वे जीव सम्यग्ज्ञान की भावना... राग की, दया, दान की या व्रत की यह नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, यह व्यवहार में जाता है। यह कहेंगे। वह तो कथनमात्र है, वस्तु कोई नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो कथनमात्र व्यवहार है, वस्तु नहीं। आहाहा!

उस जीव को सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २३८ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः ।

भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः ॥

सब 'भ' आते हैं। आहाहा!

[श्लोकार्थ :] भवावर्त में पहले... जीव के परिभ्रमण में अनन्त-अनन्त भव किये हैं। नरक के, तिर्यच के, मनुष्य के, सेठ के, राजा के, देव के, नौवें ग्रैवेयक रूप के देव के और अरबोंपतिरूप से... सेठ - ऐसे भव के आवर्तन—भटकने के भव में। पहले न भायी हुई भावनाएँ (अब) मैं भाता हूँ। अब उस भवावर्त को छोड़कर पहले न भायी हुई भावनाएँ (अब) मैं भाता हूँ। आहाहा! देखो! पंचम काल के सन्त मुनि ऐसा कहते हैं कि हम शुभभाव में हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! हम तो भवावर्त में पहले न भायी हुई भावनाएँ (अब) मैं (स्वयं) भाता हूँ। आहाहा!

वे भावनाएँ (पहले) न भायी होने से... ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना नहीं भायी होने से, मैं भव के अभाव के लिए... भव के अभाव के लिए। आहाहा! भव ही नहीं चाहिए। स्वर्ग का भव भी नहीं, सर्वार्थसिद्धि का भव भी नहीं। भव के अभाव के लिये उन्हें भाता हूँ (कारण कि भव का अभाव तो भवभ्रमण के कारणभूत भावनाओं से विरुद्ध प्रकार की पहले न भायी हुई ऐसी अपूर्व भावनाओं से ही होता है)। आहाहा! भव का अभाव, पूर्व में नहीं भायी हुई भावना से—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना से ही होता है। कोई इस प्रकार की क्रिया—व्रत, तप और भक्ति से नहीं होता ऐसा तो अनन्त बार किया है। परन्तु अभी तो यह सब मनाया है। हो-हा.. हो-हा। अब वापस इससे विरुद्ध।

श्लोक-१२१

और (इस १०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

(मालिनी)

अथ भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्व,
किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत् ।
तदपि भव-भवेषु श्रूयते बाह्यते वा,
न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम् ॥१२१॥

(हरिगीतिका)

मोक्ष का जो कथनमात्र उपाय है व्यवहार से।
भव-सिन्धु डूबे जीव ने भव-भव सुना है आचरा ॥
पर अरे रे! खेद है जो सर्वदा एक ज्ञानमय।
उसको सुना है ही नहीं, अरु आचरा नहीं इस जीव ने ॥१२१॥

[श्लोकार्थ :] जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (-कहनेमात्र) कारण है, उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है; परन्तु अरे रे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है, उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को) जीव ने सुना-आचरा नहीं है, नहीं है ॥१२१॥

श्लोक-१२१ पर प्रवचन

और (इस १०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

अथ भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्व,
किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत् ।

तदपि भव-भवेषु श्रूयते बाह्यते वा,
न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम् ॥१२१॥

आहाहा! आचार्य स्पष्टीकरण करते हैं।

[श्लोकार्थ :] जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र... है। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र, वह तो कथनमात्र है। कोई वस्तु नहीं। आहाहा! अभी यह हो पड़ा है। व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो, व्यवहार साधन। यहाँ कहते हैं ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया है, तथापि उसमें कुछ हाथ नहीं आया। राग और जहर की क्रिया में, अराग को अमृत प्रभु कहाँ से हाथ आवे? आहाहा! अब इसे साधन मानकर इससे निश्चय साध्य होगा, ऐसी अभी बड़ी चर्चा बाहर चली है। पहले तो यह करना पड़े न? यह करे तो होवे न? यह करे तो होवे न? शास्त्र में भी ऐसे लेख आते हैं। जयसेनाचार्य की टीका में व्यवहार साधन, निश्चय साध्य, (ऐसा आता है)।

.... राग से प्रज्ञा भिन्न करके जिसने आत्म-अनुभव किया है, अन्दर आनन्द के वेदन में आया है, उसे अन्तर का साधन प्रगट हुआ है, उसे व्यवहार जो राग है, उसे व्यवहार से साधन कहने में आता है परन्तु व्यवहार करने से साध्य होगा, ऐसा कहने का आशय नहीं है। वहाँ... है न? पण्डित जयचन्द्रजी, यद्यपि ज्ञानसागर (ने) पण्डित जयचन्द्रजी में से टीका की है। अमृतचन्द्राचार्य की नहीं की। आचार्य भी दूसरे हैं, वह ज्ञानसागर की टीका, पहली जयचन्द्र... परम्परा ... था। अमृतचन्द्राचार्य परम्परा... नहीं थे। उन्होंने परम्परा तोड़ डाली। व्यवहार से साधन बात उन्होंने तोड़ डाली, ऐसा चला है। यहाँ तो यह पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य नहीं, ये पद्मप्रभमलधारिदेव, वे कहते हैं।

मुमुक्षु : सभी ज्ञानियों का एक ही मत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही मत है परन्तु अभी पूरा बदल गया है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, वह यहाँ रखा है।

जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र... कुछ कथनमात्र (-कहनेमात्र)... व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण, वह कहनेमात्र है, कथनमात्र है। वस्तु का स्वरूप नहीं है। बन्ध का कारण है, उसे कहनेमात्र कथन में (कहने में आया है)। आहाहा! व्रत करना, तप करना, भक्ति

करना, पूजा करना, मन्दिर बनाना, दया, दान करके एक-दूसरे के सम्प में रहना, संघ में एकता करना तो संघ टूटे नहीं। संघ एक हो, इसलिए उसमें से एकत्वबुद्धि हो। उसमें से एकत्व से साधकपना प्रगटे - ऐसी प्ररूपणा अभी चलती है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सिद्धान्त में जितना व्यवहार कहा है, बारह अंग में जितना व्यवहार का कथन है, वह तो मोक्ष का कथनमात्र **कुछ कथन...** कुछ कथन (मात्र है)। आहाहा! अर्थात् निमित्त है, उतना कथन करनेमात्र बात की है। आहाहा! महीने-महीने के अपवास करे, वर्षी तप करे, रूखा आहार करे, एक ग्रास खाकर दूसरा छोड़ दे, ऊनोदरी करे, प्रायश्चित्त ले, अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसत्याग... एक रस (के अतिरिक्त) दूसरे रस चलें नहीं, ऐसा अनन्त बार किया है। आहाहा! यह सब व्यवहार कथनमात्र है। वस्तु में कुछ माल नहीं है। आहाहा! यह तो नियमसार है। समयसार में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है, वह ये कहते हैं। ये कहते हैं, वह अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं और अनन्त आचार्य ऐसा ही कहते हैं। आहाहा!

व्यवहारमोक्षमार्ग, ऐसा कहने में जो आया है, वह कथनमात्र है। **कुछ कथन...** कुछ कथन अर्थात् एक निमित्त है, ऐसा कथनमात्र है। निमित्त है। कुछ कथन अर्थात् है, ऐसी कथनमात्र बात है। आहाहा! व्यवहार **कुछ कथनमात्र (-कहनेमात्र) कारण है, उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी)...** देव-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, शास्त्र का नवपूर्व का ज्ञान, वह सब व्यवहार अनन्त बार किया है। आहाहा! कठिन काम है। दो घड़ी की निवृत्ति मिलती नहीं, उसे कहना, विकल्प से रहित ही तू तत्त्व है। आहाहा! स्वरूप तत्त्व में विकल्प ही नहीं। आहाहा! बहुत हटकर आगे बाहर से बढ़े तो विकल्प में आवे, वहाँ से हटकर आवे तो पर्याय पर दृष्टि रहे परन्तु यह वह का वह है। पर्याय में से हटकर द्रव्य पर आना चाहिए। आहाहा! द्रव्य तो कभी देखा नहीं। पर्याय का अनादि अभ्यास और पर्याय के अभ्यास में तो पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, राग के ऊपर, पुण्य के ऊपर, दया, दान के ऊपर जाता है। उसमें स्वयं मानता है कि मैं कुछ धर्म करता हूँ। ऐसा व्यवहार कथनमात्र **भवसागर में डूबे हुए जीव ने...** आहाहा! **भवसागर में डूबे हुए जीव ने...** यह व्यवहाररत्नत्रय अनन्त बार किया।

मुमुक्षु : उसे तो भवसागर में डूबा हुआ कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : डूबा हुआ कहा। आहाहा! क्योंकि यह व्यवहार है, वह स्वयं भव है। भगवान, भव के स्वभावरहित है और यह पुण्य के परिणाम, वे भव हैं, संसार है। संसार है। नियमसार में विकल्प को घोर संसार कहा है। विकल्प घोर संसार है। आहाहा! उसे पूर्व में अनन्त बार **भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में...** आहाहा! भवभव में अर्थात्? लगातार कहीं अनन्त मनुष्यभव नहीं मिलते और लगातार अनन्त सुनते नहीं, तथापि भवसागरवाला है। छोटाभाई! भवभव में है। परन्तु इसका अर्थ कि जो मनुष्य के भव मिले, उसमें यह सब सुनकर उसमें रहा, बस।

भवभव में (-अनेक भवों में)... इसका अर्थ यह है। इसका अर्थ ऐसा निकालते हैं कि भवभव में अर्थात् प्रत्येक भव में—तिर्यच के, मनुष्य के, निगोद के, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? तिर्यच के, मनुष्य के भव, नारकी का भव होवे तो सुने। कुछ सब भव में सुनने का नहीं मिला, तथापि इसका अर्थ इन बहुत भवों में। मनुष्य के बहुत भवों में, तिर्यच के भी बहुत भवों में, नारकी के भी बहुत भवों में, देवों के भी बहुत भवों में। व्यवहाररत्नत्रय की बात तो भवभव में सुनी है। आहाहा! इसे मीठी भी लगी है। यह व्रत करो, तप करो, रस छोड़ो... आहाहा! समकित बिना आत्मा का ध्यान करो। बारह तप में आता है न? विकल्प शुभ-शुभ। शुभविकल्प का ध्यान (करे) और शान्ति दिखायी दे, ऐसा अनन्त बार किया है। आहाहा!

भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है;... वापिस सुनकर अमल में लाया है। व्यवहाररत्नत्रय से धर्म होगा, ऐसा अनन्त बार सुना और अनन्त बार अमल में लाया, अनन्त बार आचरण किया है। आहाहा! भव-भव में आचरण किया है अर्थात् बहुत भव में। आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय इन भव में तो सुनने को भी मिले, ऐसा नहीं है। इसीलिए जिस भव में सुनने को मिले, वे भव लेना। उन भवभव में। आहाहा!

डूबे हुए जीव ने... आहाहा! राग की एकता में डूब गया है। चैतन्यरत्न, निर्मलानन्द की सत्ता को एक समय की राग की सत्ता और पर्याय की सत्ता में गँवा बैठा है। वह डूबे हुए जीव ने ऐसा किया। उसने आचरण किया है। सुना है इतने से नहीं। आचरण भी व्यवहाररत्नत्रय में जुड़ गया है। व्यवहार आचरण किया है, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन

किये हैं। शास्त्रज्ञान ग्यारह अंग अनन्त बार किये हैं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा अनन्त बार की है। आहाहा! ऐसी बात यह पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं।

आचरण में-अमल में लाया है। ऐसा सुना। व्यवहार, दया, दान, देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान, विनय, प्रतिष्ठा, मन्दिर बनाना, रथयात्रा निकालना, गजरथ करना, ऐसा अनन्त बार अमल में लाया है। सुनकर अनन्त बार ऐसा किया है। लाखों-करोड़ों रुपये गजरथ में खर्च किये हैं। भव में डूबे हुए ने ऐसा सब अनन्त बार किया है। आहाहा! कठिन काम लगता है। भव तो उड़ाता है, ऐसा कहते हैं। भव को उड़ाता नहीं। भव है, उसमें तू भटकता है, ऐसा कहते हैं। भव है, उसमें तू भटकता हुआ डूबा हुआ है। आहाहा! संसाररूपी भव, भवसागर। आहाहा! कहीं भव का अन्त नहीं। ऐसे अनन्त भवसागर में डूब गया है, भाई! आहा! ऐसे डूबे हुए ने सुना और आचरण किया है, ऐसा कहते हैं।

भवसागर में डूबे हुए... आहाहा! है न? भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है;... आहाहा! परंतु अरेरे! मुनिराज, खेद है कि... (खेद करते हैं) राग है न? अरेरे! आहाहा! 'न च न च बत कपटं' खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है,.... भगवान तो एक ज्ञानस्वरूप है। उसमें राग भी नहीं, दया भी नहीं, व्रत भी नहीं। भगवान की भक्ति आत्मा में नहीं। वह एक ज्ञानस्वरूप है। है? एक ज्ञान है,.... सर्वदा एक ज्ञान है। त्रिकाली ज्ञायक एकरूप है। वह ज्ञायक कभी राग में नहीं आया। आहाहा!

(समयसार की) ६वीं गाथा में कहा है न? कि ज्ञायकभाव, शुभाशुभभावरूप नहीं हुआ। (यदि) होवे तो जड़ हो जाए। आहाहा! क्योंकि ज्ञानस्वरूप चैतन्यप्रकाश का पुंज, चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर, अकेला चैतन्य तेज का सागर, पुण्य और पाप के भाव अचेतन जड़—ज्ञान के अंश से खाली... ऐसा चैतन्यस्वभाव वह ज्ञान के अंश के खालीरूप कैसे हो? आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। त्रिकाल निरावरण... त्रिकाल निरावरण... आहाहा! सकल अखण्ड एकरूप, एकरूप ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... चैतन्यप्रकाश... चैतन्यप्रकाश... चैतन्यप्रकाश... चैतन्यप्रकाश... अनादि अनन्त सर्वदा। आहाहा। इस चैतन्यप्रकाश में विकल्प है, वह तो अन्धकार है, वह तो है नहीं परन्तु इसके प्रकाश में अल्पता भी नहीं। आहाहा!

यहाँ जरा अनुकूलता पाँच-पच्चीस लाख मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! अच्छा जरी का कपड़ा, सोने के गहने लटकावे इस मुर्दे-मुर्दे के ऊपर। मेरी शोभा, शोभा अधिक लगे। उसे ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू सर्वदा चैतन्य, चैतन्य के प्रकाश का पूर है न! पूर है न। तुझमें पुण्य-पाप के अन्धकार का तो त्रिकाल अभाव है। पुण्य-पाप में तेरा अभाव है और चैतन्यप्रकाश की सत्ता-अस्तित्व जो प्रकाश का नूर जो चैतन्य, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प का तो अभाव है। एक समय की उसकी पर्याय का अभाव है तो विकल्प तो अन्धकार है। पर्याय तो प्रकाश है। चैतन्य त्रिकाली प्रकाश पिण्ड है। उसकी एक समय की पर्याय है, वह प्रकाश है। एक समय का प्रकाश भी जहाँ पिण्ड नहीं, वहाँ पुण्य-पाप तो अन्धकार है, अंधेरा है। वह उसमें कहाँ से आया? आहाहा! अलौकिक बात है, बापू! आहाहा! साधारण लोगों को तो विवाद होता है। ये व्यवहार उड़ाते हैं... ये व्यवहार उड़ाते हैं। परन्तु यह क्या कहते हैं? कौन कहते हैं? सिद्धान्त कहता है? कौन कहता है? भाई! तुझे खबर नहीं।

आठ वर्ष की बालिका भी जहाँ चैतन्य के प्रकाश त्रिकाली के ऊपर नजर पड़ने पर जिसकी नजर राग पर तो रहे नहीं, परन्तु पर्याय पर रहे नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्यपुंज आनन्द का गंज, चैतन्य शक्ति का संग्रहालय, सुख का सागर; उसमें अपूर्णता नहीं तो अन्धकार तो कहाँ से होगा। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह अन्धकार है। अन्धकार से प्रकाश होगा? कहाँ से होगा? ऐसा कठिन काम है। वस्तु है न, प्रभु! भगवानरूप से बुलाया है। आचार्य ने भगवानरूप से बुलाया है। भगवान! तू पूर्णस्वरूप है न! अनन्त गुण से पूर्ण स्वरूप है। अनन्त गुण कभी अपूर्ण और विपरीत तो है ही नहीं। आहाहा!

ऐसे स्वरूप को, खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है, ... 'एक ज्ञान है' भाषा ऐसी है न? सर्वदा... और एक... (इन) दो शब्दों पर जोर है। तीनों काल एक है। एक मिटकर दो हुआ नहीं। आहाहा! द्रव्य मिटकर पर्याय नहीं हुई। सर्वदा एक है। आहाहा! क्यों नजर में न पड़े? क्यों न ज्ञात हो? क्यों न ज्ञात हो, वह जाननेवाला कौन है? उसे कभी देखा? देखने की ओर ध्यान किया? नहीं ज्ञात होता—ऐसा जाना, नहीं ज्ञात होता—ऐसा जाना, यह किसने (जाना)? मैं ज्ञात नहीं होता। यह कहता है कि मैं ज्ञात होता हूँ, दूसरा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। व्यवहार भवसागर में डूबे हुए, भवभव में सुना और आचरण किया।

सर्वदा एक ज्ञान है, ... एक ज्ञान है। उसमें पाँच भेद नहीं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, वह पर्याय है। एक ज्ञान है, ... एक ज्ञान है। सर्वदा तीनों काल, वह एकरूप है। कभी उसमें अपूर्णता तो नहीं है। विकार की तो बात ही क्या करना? आहाहा! ऐसा सर्वदा एक ज्ञान है, उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को)... ऐसे परमात्मतत्त्व को, ऐसे परमस्वरूप तत्त्व को, ऐसे परमस्वभावभाव को, ऐसे परमस्वभावभाव को इसने कभी देखा नहीं। आहाहा! कभी इसने सुना नहीं, ऐसा कहते हैं। नौवें ग्रैवेयक गया, ग्यारह अंग पढ़ा, सुना नहीं? सुना उसे कहते हैं (कि) सुनकर अन्दर में उतरे तो सुना कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह तो पूरे दिन एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं; उसमें से वापस धर्म के नाम से प्रवृत्ति के कारण निवृत्त नहीं। धमाल! इसका ऐसा करना... इसका ऐसा करना... इसका ऐसा करना। आहाहा!

जो सर्वदा एक ज्ञानरूप है। उसे इसने सुना नहीं आचरा नहीं है, ... फिर एक शब्द नीचे डाला 'न च न च बत' कलश में ऐसे शब्द दो बार रखे हैं। नहीं सुना, नहीं आचरण किया। सुना नहीं, आचरण नहीं किया। आहाहा! दिगम्बर साधु होकर नववें ग्रैवेयक गया, हजारों रानियाँ छोड़कर, पाँच इन्द्रियों का दमन करके, परन्तु यह चैतन्य एकरूप ज्ञायक है-तत्त्व है, अस्ति है, सत्ता है, एकरूप है, स्वभावस्वरूप है, भाववान है, उसे तूने कभी सुना नहीं। आहाहा! सुना नहीं अर्थात् आचरण नहीं किया। 'नहीं' दो शब्द आये न? सुना नहीं, आचरण नहीं किया। सुना नहीं, नहीं। आचरा नहीं है, नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

अब यह श्लोक पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि का है। स्वयं टीका करने से पहले कहते हैं कि यह टीका कुछ मैं करता हूँ, ऐसा नहीं है। इसकी टीका तो चली ही आती है। गणधरों से चली आती है। मैं तो कर्ता कौन? आहाहा! आधार दिया है। यह बात सब गणधरों से चली आती है। पहले आता है न? आहाहा! मैंने कही है, ऐसा नहीं। ये भाव, टीका के ये भाव गणधरों से चले आये हैं। मेरे मन अभी रहा है कि इसकी टीका हो - ऐसा विकल्प रहा करता है, इसलिए होती है। आहाहा! अब इसमें व्यवहार से निश्चय हो, यह बात कहाँ रहती है? यशपालजी! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा नहीं? तो यह व्यवहार सब झूठा? व्यवहार भगवान ने कहा है या नहीं? भगवान ने कहा है परन्तु भगवान ने उसका फल संसार कहा है। व्यवहार कहा है, परन्तु उसका फल संसार कहा है। अस्ति है न?

व्यवहार भी अस्ति है परन्तु उसका फल संसार है। आहाहा! अब इसे फुर्सत नहीं होती, निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा!

वस्तुस्वरूप पूर्णानन्द एकरूप चीज़ है। समस्त आत्माएँ ऐसे हैं। सब भगवान् स्वरूप पूर्ण है। सर्वदा ज्ञान एकरूप सर्वदा है। प्रत्येक आत्मा, हों! अभव्य का आत्मा भी ऐसा है। आहाहा! जिसका सत्व है, सत् है, उसका सत्व है, वह अपूर्ण कैसे होगा? पूर्ण सत्व से भरपूर सत् है, इसलिए एक ज्ञान है – ऐसा कहा न? **एक ज्ञान है...** सत्, द्रव्य सत्, उसमें गुण सत्, पर्याय सत्। उस पर्याय से तो जानता है और गुण सत्—ऐसा एकरूप सत् है। जानती है वह पर्याय। एकरूप को एकरूप नहीं जानता। आहाहा! एकरूप है, उसे पर्याय जानती है। वह भी एकरूप होकर जानती है। भेद बिना। वस्तु सत्, गुण सत्, (ऐसा) कौन जानता है? किसकी सत्ता में ज्ञात होता है? किसके अस्तित्व में वह ज्ञात होता है? द्रव्य-गुण के अस्तित्व में नहीं। पर्याय के अस्तित्व में, सर्वदा एक ज्ञान है—ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा! व्यवहार को उड़ाकर, वापस निश्चय की बात की है। ऐसा नहीं कि अकेले व्यवहार को उड़ाया।

अरे रे! खेद है कि... अरे! ऐसा भगवान् विराजता है, जिसके सामने परमात्मा स्वयं है, अग्रगम्य है, परिपूर्ण प्रभु है। अरे रे! उसके सन्मुख देखते नहीं, सुनते नहीं। दूसरी बात कही नहीं। अमुक को सुनते नहीं, इस वार्ता और कथा को। इसे सुनते नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! यह बात अधिक सभा में ठीक नहीं लगती। वार्ता, कथा व्यवहार धमाल चलाती हो तो ऐसी लगे... आहाहा! प्रसन्न-प्रसन्न हो। आहाहा!

यहाँ **सर्वदा एक ज्ञान है,...** यह कौन जानता है? यह पर्याय। तीनों आ गये। पर्याय जानती है कि सर्वदा एकरूप ज्ञान है। विकल्प से नहीं। निर्विकल्प ज्ञान से, निर्विकल्प ज्ञान और द्रव्य सर्वदा एकरूप है, ऐसा वह जानती है। अज्ञानी ने यह बात सुनी नहीं, कभी आचरी नहीं। आहाहा! व्यवहार का अर्थात् सब अभी... सोनगढ़ के नाम से ऐसा कहते हैं, सोनगढ़ व्यवहार का लोप करता है। व्यवहार को मानते नहीं। मानते नहीं परन्तु व्यवहार नहीं? व्यवहार का फल नहीं? दोनों हैं परन्तु व्यवहार का फल तू निश्चय कहे तो वह नहीं है। व्यवहार अस्ति है। वीतराग ने कहा हुआ व्यवहार होता है, उसका फल भी संसार होता है। है, वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। अभी तो बाहर से बातें चलती हैं। व्रत,

विकल्प और व्रत तथा तप और अनशन ऊनोदर, व्रती हूँ और पाँच महाव्रत, ऐसे मिलावे ऐसे मिलावे और लड़ावे, सभा प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। अब उसमें क्या कहते हैं यह ? सदा एक ज्ञान है,... सदा एक ज्ञान है अर्थात् क्या ? ज्ञान अर्थात् यह शास्त्र है वह ? आहाहा !

शास्त्र को जानती है, वह पर्याय है। वह भी शास्त्र को जानती नहीं। वास्तव में पर्याय, पर्याय को जानती है। आहाहा ! वह पर्याय, द्रव्य को जानती है। आहाहा ! वह पर्याय यह जानता हूँ... यह जानता हूँ... यह जानता हूँ... यह जानता हूँ... ऐसे उसकी वर्तमान दशा में ऐसे झुकाव है, वह सब झुकाव मिथ्या है। वह झुकाव जिसकी (पर्याय) है, उसमें झुकाकर, वह ज्ञान एकरूप है, ऐसा पर्याय में ज्ञात होता है। पर्याय में ज्ञान एकरूप है, ऐसा ज्ञात होता है। पर्याय, भेद है परन्तु उसका विषय है, वह अभेद है। समझ में आया इसमें ? पर्याय स्वयं भेद है। जाननेवाला स्वयं भेदरूप है परन्तु जानता है, वह अभेद है। आहाहा ! और वह जाननेवाली है, वह सदा नहीं रहती। वह पलटा खाती है परन्तु जो ज्ञात होता है, वह एकरूप त्रिकाल रहता है। जाननेवाली पर्याय एकरूप नहीं रहती परन्तु जाननेवाली पर्याय का विषय जो सदा एकरूप, वह ज्ञान त्रिकाल है। निगोद से लेकर सिद्ध तक। सिद्ध भी द्रव्य नहीं, सिद्ध भी पर्याय है। आहाहा ! मोक्ष भी पर्याय है। आहाहा ! वह मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय भी पर्याय है, वह गुण नहीं है। आहाहा ! उस पर्याय ने सदा एकरूप है, उसे जाना है। वह पर्याय सदा एकरूप है, उसे शामिल हुए बिना जानती है। उस पर्याय ने एक ज्ञायक में शामिल हुए बिना अपने अस्तित्व में रहकर, द्रव्य-गुण के अस्तित्व में प्रवेश न करके (द्रव्य-गुण को जानती है)। आहाहा ! ऐसी बातें।

सर्वदा एक ज्ञान... ऐसा शब्द कहकर गजब किया है। आहाहा ! सर्वदा एकरूप नित्य है, प्रभु ! आहाहा ! वह पलटती पर्याय में ज्ञात होता है परन्तु ज्ञात होता है, वह सदा एकरूप है। आहाहा ! तथापि ज्ञात होता है, उसकी पर्याय का ज्ञान करे, तब प्रमाणज्ञान होता है। यह पर्याय, द्रव्य को जाने, वह निश्चय ज्ञान है। पर्याय, द्रव्य को जाने, वह निश्चय ज्ञान है परन्तु पर्याय वापस पर्याय को अपने को जाने, वह व्यवहार हुआ, प्रमाणज्ञान हुआ। ऐसा सब सूक्ष्म है। आहाहा !

परन्तु करना क्या ? करना यह, भाई ! एक समय में सर्वदा ज्ञानरूप प्रभु तत्त्व है, उसके सन्मुख देखना है, उसे देखकर मानना है, उसे देखकर वहाँ स्थिर होना है। उसे

जानकर मानना है और उसे जानकर वहाँ स्थिर होना है, यह करना है। आहाहा! व्यवहार को तो कथनमात्र डाला। देखा? भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्व, किमपि वचनमात्रं निर्वृते: ऐसा लिखा है न? वचनमात्र कहा न? पाठ में है। वचनमात्रं निर्वृते: कारणं आहाहा! कथनमात्र कारण है। वह तो कहनेमात्र कारण है। आहाहा! शब्द 'कारण' प्रयोग किया। कारण शब्द प्रयोग किया। आहाहा! कारण प्रयोग किया अर्थात् क्या? व्यवहार कारण कहा। शास्त्र में कहा न? जयसेनाचार्य की टीका में (कहा) परन्तु उसका अर्थ यह है। कथनमात्र साधक है। कथनमात्र - कहनेमात्र कारण है। आहाहा! व्यवहार को कारण तो कहा है। वह कारण कहा न? परन्तु वह कहनेमात्र कारण है। क्योंकि वह कहनेमात्र कारण है। वास्तविक नहीं। आहाहा! बहुत भरा है। कारण कहा, व्यवहार है, सुना है, आचरा है परन्तु वह कथनमात्र, कहनेमात्र कारण है। वास्तव में वह कारण है नहीं। कारण शब्द प्रयोग किया है। अब इसमें से निकालते हैं। भले कथनमात्र कहे परन्तु कारण है न? आहाहा! कारण शब्द प्रयोग किया है। वापस कहनेमात्र कारण। कारण कहा परन्तु कहनेमात्र कारण। आहाहा!

एक यथार्थ कारण है, एक कहनेमात्र कारण है। त्रिकाल स्वभाव सर्वदा एक, त्रिकाल स्वभाव सर्वदा एक, वह यथार्थ कारण है। व्यवहार है, वह कथनमात्र व्यवहार है। आहाहा! निर्मल पर्याय प्रगट हो, वह कारण सद्भूतकारण है। त्रिकाल जो ज्ञान सर्वदा एकरूप है, वह कारणपरमात्मा है। वह कारण लगा दे सबमें। त्रिकाल सद्भूत जो ज्ञानरूप है, वह कारणपरमात्मा है और जिसने जाना है, वह पर्याय है। वह पर्याय भी साधकरूप से कारण है। मोक्ष के मार्गरूप से कारण है परन्तु वह यथार्थ कारण है और विकल्पमात्र जो कथनमात्र है, वह कहनेमात्र कारण है। लो, कारण के तीन प्रकार। त्रिकाल कारणपरमात्मा सदा एकरूप, वह कारणपरमात्मा। आहाहा! जिसकी दृष्टि से कार्यपर्याय आवे ही। उस कार्यपर्याय को मोक्ष का कारण कहा जाता है। वह यथार्थ कारण है और विकल्प उत्पन्न होता है, वह कथनमात्र व्यवहारकारण है। कथनमात्र व्यवहारकारण है। यथार्थ है नहीं।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९१

मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण ।
 सम्मत्तणाणचरणं जो भावइ सो पडिक्कमणं ॥९१॥
 मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रं त्यक्त्वा निरवशेषेण ।
 सम्यक्त्वज्ञानचरणं यो भावयति स प्रतिक्रमणम् ॥९१॥

अत्र सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां निरवशेषस्वीकारेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणां निरवशेष-
 त्यागेन च परममुमुक्षोर्निश्चयप्रतिक्रमणं च भवति इत्युक्तम् ।

भगवदहृत्परमेश्वरमार्गप्रतिकूलमार्गाभासमार्गश्रद्धानं मिथ्यादर्शनं, तत्रैवावस्तुनि वस्तु-
 बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं, तन्मार्गाचरणं मिथ्याचारित्रं च, एतत्त्रितयमपि निरवशेषं त्यक्त्वा, अथवा
 स्वात्मश्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानरूपविमुखत्वमेवमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रात्मकरत्नत्रयं, एतदपि त्यक्त्वा ।
 त्रिकालनिरावरणनित्यानन्दैकलक्षणनिरञ्जननिजपरमपारिणामिक-भावात्मककारणपरमात्मा
 ह्यात्मा, तत्स्वरूपश्रद्धानपरिज्ञानाचरणस्वरूपं हि निश्चयरत्नत्रयं, एवं भगवत्परमात्मसुखाभिलाषी
 यः परमपुरुषार्थपरायणः शुद्धरत्नत्रयात्मकं आत्मानं भावयति स परम-तपोधन एव
 निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप इत्युक्तः ।

जो जीव त्यागे सर्व मिथ्यादर्श-ज्ञान-चरित्र रे ।
 सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्र भावे प्रतिक्रमण कहते उसे ॥९१॥

अन्वयार्थः :—[मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रं] मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और
 मिथ्याचारित्र को [निरवशेषेण] निरवशेषरूप से [त्यक्त्वा] छोड़ कर
 [सम्यक्त्वज्ञानचरणं] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को [यः] जो (जीव)
 [भावयति] भाता है, [सः] वह (जीव) [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण है ।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष
 (-सम्पूर्ण) स्वीकार करने से और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष त्याग करने
 से परम मुमुक्षु को निश्चयप्रतिक्रमण होता है, ऐसा कहा है ।

भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभास में मार्ग का श्रद्धान, वह मिथ्यादर्शन है; उसी में कही हुई अवस्तु में वस्तुबुद्धि, वह मिथ्याज्ञान है और उस मार्ग का आचरण, वह मिथ्याचारित्र है—इन तीनों को निरवशेषरूप से छोड़कर। अथवा, निज-आत्मा के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठान के रूप से विमुखता, वही मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक (मिथ्या) रत्नत्रय है;—इसे भी (निरवशेषरूप से) छोड़कर। त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है ऐसा, निरंजन निज परमपारिणामिक-भावस्वरूप कारणपरमात्मा वह आत्मा है; उसके स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण का रूप वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है;—इसप्रकार भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी ऐसा जो परम पुरुषार्थपरायण (परम तपोधन) शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है, उस परम तपोधन को ही (शास्त्र में) निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।

प्रवचन-९३, गाथा-९१, शनिवार, मागशर शुक्ल १३, दिनांक ०१-१२-१९७९

नियमसार, गाथा ९१।

मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण ।

सम्मत्तणाणचरणं जो भावइ सो पडिक्कमणं ॥९१॥

जो जीव त्यागे सर्व मिथ्यादर्श-ज्ञान-चरित्र रे ।

सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्र भावे प्रतिक्रमण कहते उसे ॥९१ ॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष (-सम्पूर्ण) स्वीकार करने से... प्रतिक्रमण है न ? निश्चयप्रतिक्रमण । आहाहा ! तीनों इकट्ठे लिये हैं न ? दर्शन, ज्ञान और चारित्र । तीनों निरविशेष । पूर्ण परमात्म कारण प्रभु की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता । यह पूर्ण स्वीकार करने से... (-सम्पूर्ण) स्वीकार करने से... ऐसा है न ? आहाहा !

अब यहाँ पच्चीस-पच्चीस लाख की मोटरें, पचास-पचास लाख की मोटर में बैठकर लहर करता हो । अब उसे मरकर नरक में जाना... आहाहा ! गजब बात, प्रभु ! चक्रवर्ती को तो रिद्धि इससे बहुत होती है परन्तु वह सम्यग्दृष्टि है । यह तो क्षण में और पल में परभाव का अभिमान, विशेषता, अधिकता, हृदय में परसम्बन्धी अहंकार भासित ही

हुआ करता है। स्वचैतन्यमूर्ति परमस्वभावभाव की तो खबर भी नहीं। उसके अतिरिक्त जितने परभाव हैं, उनकी अधिकता, विशेषता, अचिन्त्यता, विस्मयता में रुका हुआ है। आहाहा! गजब कहते हैं। यह पचास लाख की मोटर में बैठनेवाले मरकर नरक में जाए... अर..र..! गजब बात!आहाहा! एक तो माने कौन? इसे उसका अभिमान तो कितना होगा! सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त की बात है न? चक्रवर्ती की धर्मी की अलग बात है। आहाहा! बाहर की यह रिद्धि देखे... आहाहा! बीस लाख की मोटर में तो बैठकर आया था। वह मुम्बई छोड़ने आया था न, पूनमचन्द। वह बीस लाख की मोटर। जिन्दगी में पहली-पहली देखी। वह तो कहता था कि हम रहते हैं, वहाँ तो पचास-पचास लाख की मोटर है। आहाहा! उसकी इसे विशेषता, अधिकता, महिमा (लगती है)। प्रभु! अन्दर आत्मा महाप्रभु है। पहले यह बात ली है न!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष (-सम्पूर्ण) स्वीकार... आहाहा! मैं परमात्मस्वरूप हूँ-ऐसा सम्पूर्ण श्रद्धा में स्वीकार, ज्ञान में सम्पूर्ण स्वीकार और चारित्र में सम्पूर्ण रमणता। आहाहा! उत्कृष्ट बात ली है न? तब इसे प्रतिक्रमण निश्चय कहा जाता है। आहाहा! **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष...** है न? पाठ में ऐसा है न? **गिरवसेसेण**। ऐसा है न पाठ? कुछ बाकी रखे बिना। ओहोहो! एक समय में प्रभु! अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण... कारण लेंगे। टीका में कारणपरमात्मा लेंगे। कारणपरमात्मा... आहाहा! वह मोक्ष की पर्याय का कारण है। उसका कारण भले मोक्ष का मार्ग है परन्तु मोक्ष के मार्ग का कारण है, वह कारणपरमात्मा है। आहाहा! कठिन बातें हैं। यह तो जिन्हें संसार का डर है, भवभ्रमण (का डर है, उसके लिए बात है)। देह छूटेगी, तब कहाँ जाएगा? भाई! तू तो नित्य है, शाश्वत् है, तेरा तत्त्व अविचल है। वह पड़कर कहीं मिल जाए, ऐसा वह तत्त्व नहीं है। आहाहा!

अविचल नित्य कारणपरमात्मा का पूर्ण स्वीकार-सम्पूर्ण स्वीकार। आहाहा! दर्शन में सम्पूर्ण स्वीकार, ज्ञान में सम्पूर्ण स्वीकार, रमणता में सम्पूर्ण रमणता। इन तीन का स्वीकार करने से और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष त्याग करने से... यहाँ निरवशेष लिया है। है न? पाठ में निरवशेष है, इसलिए सबमें लागू करते हैं। आहाहा!

आंशिक भी मिथ्यात्व, अज्ञान और राग न रहे। अकेला सम्यग्दर्शन, उसका विषय

स्वीकार परमात्मा पूर्ण स्वरूप तत्त्व है न ? तत्त्व है तो वह पूर्ण स्वरूप है। वह कारणपरमात्मा है, परन्तु कारणपरमात्मा है, वह कब हो ? वह तो है। कारणपरमात्मा तो सबको है, परन्तु उस कारणपरमात्मा का स्वीकार हो, तब कारणपरमात्मा उसके लिए होगा। आहाहा! है न ?

यह प्रश्न हुआ था न ? वीरजीभाई के लड़के त्रिभुवनभाई ने प्रश्न किया था कि यह कारणपरमात्मा कहते हो और कार्य नहीं आवे तो वह कारण किसका ? बात सच्ची, परन्तु कारणपरमात्मा का अस्तित्व जितना और जैसा है, उतना प्रतीति और ज्ञान में न आवे, उसके लिए कहाँ है ? समझ में आया ? होने पर भी उसकी नजर में न आवे, तब तक उसे नहीं है। आहाहा!

भगवान अन्दर परमात्मा स्वयं परमेश्वर, जिसे अभी कारणपरमात्मा कहेंगे, वह कारणपरमात्मा है। सिद्ध हैं, वे कार्यपरमात्मा हैं। सिद्ध हैं, अरिहन्त हैं, वे पर्याय में (कार्यपरमात्मा हैं), कार्य है न ? पर्याय, वह कार्य है। पर्याय कार्य अर्थात् कार्यपरमात्मा है और यह वस्तु है वह कारणपरमात्मा है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! अब ऐसे बाहर से करोड़ों रुपये, अरबों रुपये, लाखों, दस-दस, बीस-बीस लाख खर्च करे, उत्साह-हर्ष का पार न हो। अरे रे! उसमें क्या होता है ? प्रभु! उसमें क्या हानि होती है, उसकी इसे खबर नहीं है। आहाहा!

जिसमें उत्साह करनी है, वह तो कारणपरमात्मा में (करना है)। उत्साह करना अर्थात् स्वीकार करो। स्वीकार कहा न ? आहाहा! स्वीकार कब होगा ? इसके ज्ञान में उसकी महिमा ख्याल में आवे कि यह वस्तु है, परिपूर्ण है, ध्रुव है, अनन्त-अनन्त गुण से परिपूर्ण भरपूर भण्डार है। एकरूप है, चलनरहित-परिणमनरहित वह चीज है। परिणमती है तो पर्याय। ऐसी परिणमनरहित एक चीज यह वस्तु है, ऐसा इसे अन्दर विश्वास प्रतीति में आवे, तब इसे स्वीकार करे, तब इसे कारणपरमात्मा हुआ। दूसरे को है, तथापि नहीं है। आहाहा! है, तो भी माना नहीं तो उसे तो नहीं है। है, तो भी माना है कि मैं तो रागी हूँ, एक समय की पर्यायवाला हूँ, दयावाला हूँ, दानवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, पापवाला हूँ, सेठाई है, मूर्खाई है, पण्डिताई है... आहाहा! अब इतना माना, उसने यह कहाँ माना ? आहाहा! वह तो सब पर्याय के भेद हैं। भगवान पूर्णानन्द में तो पण्डिताई नहीं। वह तो पूर्णानन्दस्वरूप है। आहाहा!

पूर्ण स्वरूप अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर महाभण्डार है। उसके अतिरिक्त कोई उत्कृष्ट चीज़ नहीं है। ऐसा अन्तर में ज्ञान-दर्शन में स्वीकार हो और तदुपरान्त फिर उसमें रमणता हो, उसका नाम यहाँ प्रतिक्रमण कहने में आता है। आहाहा! अब ऐसी व्याख्या। कितने प्रतिक्रमण किये होंगे? आसन फाड़े होंगे या नहीं? चिमनभाई! आहाहा! अरे! भाई!

दो शब्द लिए हैं न? मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन। विमुख होना और है, उसमें आना, ऐसा। विमुख होना। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से विमुख होना और है, उसमें आना; है, उसमें आना, तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के स्वीकार में यह आवे। स्वीकार करे, तब उसमें आया कहलाये। आहाहा! वह भी (-सम्पूर्ण) स्वीकार... ऐसा शब्द है न? निरवशेष है न? निः अवशेष - निः अवशेष - कुछ भी बाकी रखे बिना। उसे अपूर्ण या विपरीतता या अधूराश या कोई खामी / त्रुटि कुछ भी उसमें डाले बिना, अकेला परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, ऐसे अनन्त गुण सम्पूर्ण, ऐसा निरवशेष सम्पूर्ण स्वीकार करने से... आहाहा! यह अस्ति ली है।

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष त्याग करने से... नास्ति ली है। एक भी अंश, कुछ भी राग का अंश भी लाभदायक (मानना), अन्यमति के अनेक प्रपंच-३६३ पाखण्ड का कोई भी धर्म का अंश ठीक है, यह सब मिथ्यात्व है। आहाहा! उसकी प्रशंसा, उसका स्तवन, उसकी स्तुति, कुछ ठीक लगे तो उसकी स्तुति हो। वह सब मिथ्यादर्शन है। आहाहा! वीतरागमार्ग के सिवाय जितने अन्यमत ३६३ पाखण्ड मार्ग हैं, उन सबका निरवशेष त्याग करने से... कुछ भी बाकी रखे बिना। थोड़ा तो इसका रखो। दूसरे में है ही नहीं। यह वस्तु ऐसी सर्वज्ञ ने कही हुई और ऐसी है। कही तो है ऐसी जानकर कही है न? जैसी है, परिपूर्ण परमात्मा, ऐसी ही भगवान ने जानी, ऐसा भगवान ने कहा। आहाहा!

अमृत के सागर भगवान का अन्दर में पूर्ण स्वीकार हो और मिथ्यादर्शन आदि का निरवशेषरूप से त्याग हो। इसका स्वीकार हो, उसका त्याग हो। आहाहा! इसका ज्ञान न हो, ऐसी समझ न हो, वह त्याग और स्वीकार कहाँ से करे? आहाहा! धन्धे के कारण निवृत्ति भी नहीं मिलती। आहाहा! धन्धा तो यह करना है। अनन्त काल में मुश्किल से यह समय मिला है। आहाहा! सब छोड़कर करने जैसा यह एक है। यह सवेरे आया था न? करने जैसा किया सब। यह करने जैसा यह किया, वह सब किया। आहाहा!

भगवान आत्मा परिपूर्ण है। पर्याय में अव्यक्त है, अप्रगट है, उसे पर्याय में-प्रगट पर्याय में पूरा प्रगट स्वीकार करना। आहाहा! समझ में आया? (समयसार) ४९ (गाथा के) छह बोल। व्यक्त से अव्यक्त भिन्न है। व्यक्त अर्थात् पर्याय से द्रव्य भिन्न है। छह बोल है न? भाई! व्यक्त और अव्यक्त का एक साथ में ज्ञान होने पर भी, व्यक्त से वह प्रभु अव्यक्त भिन्न है। आहाहा! एक समय की पर्याय में पूरा द्रव्य ज्ञात हो, तथापि उस पर्याय से द्रव्य तो भिन्न है। आहाहा! यह बात! छह बोल में है न? व्यक्त और अव्यक्त एक साथ; व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, एक समय में दोनों ज्ञात होने पर भी, व्यक्त के प्रति उदास है। व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। द्रव्य, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! पर्याय में पूरे द्रव्य का स्वीकार हुआ, श्रद्धा-ज्ञान में पूरा स्वीकार हुआ, रमणता में भी पूरे स्वरूप में रमणता हुई, तथापि उस पर्याय को द्रव्य छूता नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें। व्यक्त-अव्यक्त एक साथ दोनों ज्ञान में आवें। ज्ञान में दोनों आवें तो भी अव्यक्त है, वह व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। ऐसे व्यक्त, अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अर्थात्? द्रव्य वस्तु है, वह पर्याय के अंश को स्पर्श नहीं करती। पर्याय का अंश जो है, वह त्रिकाली महाप्रभु कारणपरमात्मा को स्पर्श नहीं करता। जानता है, मानता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

निरवशेष त्याग करने से परम मुमुक्षु को... वापस परम मुमुक्षु (अर्थात्) मात्र मोक्ष का कामी है। एक मोक्ष की ही पर्याय प्राप्त करनी है। दूसरा कुछ चाहिए नहीं। ऐसे **परम मुमुक्षु को निश्चयप्रतिक्रमण होता है...** उसे सच्चा प्रतिक्रमण होता है। आहाहा! व्यवहार से निश्चय होवे और इससे यह हो, इससे यह हो... बहुत कठिन काम। व्यवहार सुधारे बिना निश्चय आवे? पहले व्यवहार सुधारना चाहिए। भाई! यहाँ तो पहले-पश्चात् कुछ नहीं है। आहाहा! पहले यह भगवान और अन्तिम यह भगवान और मध्य में यह भगवान है। आहाहा! समझ में आये, उतना समझना, बापू! यह तो परमात्मा का घर है। आहाहा! अन्तर की चीज़ परमात्मस्वरूप है, उसका पूर्ण स्वीकार करने से और उससे विरुद्ध जितने अंश हैं, ३६३ पाखण्ड आदि चाहे जो (हों), आहाहा! उनका सर्वदा **त्याग करने से परम मुमुक्षु को निश्चयप्रतिक्रमण होता है, ऐसा कहा है।** ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! कोई ऐसा कहे कि यह तो आचार्य ने ऐसा कहा है, अमुक ने ऐसा कहा है। भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा!

भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल... भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग

परमात्मा, ऐसे महिमावन्त भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से... उनके कहे हुए मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभास... भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग, उससे अंश भी फेरफार (होवे), वह मार्गाभास है। मार्ग जैसा दिखता है, मार्ग नहीं है। आहाहा! कठिन काम है, बापू!

‘नगगो मोक्खो भणियो, सेसा ऊमग्गो’ ऐसा पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य को-नग्न मुनि को जगत की कहाँ पड़ी है कि लोग क्या मानेंगे। उस समय श्वेताम्बर मत निकला था। जब कुन्दकुन्दाचार्य हुए, तब श्वेताम्बर मत निकला था। (उन्होंने तो) यह लिखा, कहा। नागा बादशाह जो बाहर और अन्दर, वह मोक्षमार्ग है। उसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है, जैनमार्ग नहीं। आहाहा! कठिन पड़े। वह सबको कैसा अच्छा लगता है कि सब धर्म अच्छे, ऐसा है, एक है, ऐसा है, वैसा है। सबको मीठा लगे। आहाहा! वाड़ा में भी धर्म है, धर्म नहीं – ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो सूक्ष्म बात है। आहाहा!

दिग्म्बर सन्तों ने, जो सर्वज्ञ भगवान ने कहा, वह कहा है। उससे एक अंश भी कहीं फेरफार होवे तो सब मार्गाभास है, मार्ग नहीं। दुनिया माने, न माने; दुनिया में आदर हो, न हो; दुनिया तिरस्कार करे कि यह एकान्त है। लोगों को संगठित कराना चाहिए, एकता करानी चाहिए। परन्तु किसकी एकता? भाई! किसके साथ एकता? वे सब भगवान हैं। वे भगवान हैं, इस प्रकार से एकता है, परन्तु पर्याय में मार्गाभास, उस मार्ग का श्रद्धान वह मिथ्यादर्शन है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए मार्ग के अतिरिक्त, सब मार्ग है, वह उन्मार्ग है। आहाहा! यह तो अब खुली बात कही जाती है। कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में कहा है। ‘नगगो मोक्खो भणियो, सेसा ऊमग्गो’ वह सब मार्ग उन्मार्ग हैं। मात्र नग्न नहीं; ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार लिया है। अन्दर निर्विकल्प परमात्मा को स्वीकार करके, आत्मा को अन्दर रूखा-सूखा करके, जिससे विकल्प की भी वृत्ति नहीं, ऐसा नग्न भगवान अन्दर परमात्मा का स्वीकार करके और बाहर में नग्न हो, उसे बाहर में नग्नपना होता है। ऐसे मुनि को बाहर में नग्नपना ही होता है। अन्दर में मुनिपना प्रगट हुआ हो और बाहर में वस्त्र-पात्र हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है। आचार्य तो स्पष्ट रखते हैं।

भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभास में मार्ग का श्रद्धान

वह... भी मार्ग है, वह भी धीरे-धीरे रास्ते धीरे-धीरे जाया जाता है। यह उतावल से जाए, यहाँ धीरे-धीरे जाया जाता है। ऐसा जो श्रद्धान, वह मिथ्यादर्शन है, ... आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन लगता है। अभी इन्दौर में एकता करावे, सबको एकता... समन्वय। अन्य धर्मियों और जैनधर्मी, महिमा की है न? बहुत महिमा की है। सब... आहाहा! समन्वय कराया, ऐसा कराया। क्या हो? प्रभु! क्या हो? आहाहा! मार्ग को-सत् को संख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई अधिक माने तो सच्चा मार्ग है और थोड़े माने (तो मिथ्या), ऐसा कुछ है नहीं। सत् तो सत् ही है, उसे एक माने या करोड़ माने। आहाहा! वह सत्स्वरूप, उससे विरुद्ध जो है, उसे मिथ्यादर्शन है।

उसी में कही हुई अवस्तु में वस्तुबुद्धि... मार्गाभास। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त जो मार्गाभास हैं, उनमें अवस्तु में वस्तुबुद्धि वह मिथ्याज्ञान है... वस्तु नहीं है, उसे वह वस्तु मानता है। राग में धर्म नहीं है, उसे धर्म मानता है। द्रव्य परिपूर्ण है, उसे नहीं मानता। आहाहा! अरे! वास्तव में तो आत्मा के प्रदेश असंख्य हैं, वे पूरे नहीं मानते। यह अन्तर है। आहाहा! यह ३४३ राजु लोक है, उसके जितने प्रदेश हैं, वे प्रदेश मिलते नहीं, उनके हिसाब से। इतने तो प्रदेश जीव के हैं, एक जीव के भी मिलते नहीं। आहाहा! मार्ग फेर है, प्रदेश फेर है, सब अन्तर है। कठिन काम, भाई! भले थोड़े हों (परन्तु) मार्ग तो यह है।

अवस्तु में वस्तुबुद्धि, वह मिथ्याज्ञान... आहाहा! वस्तु नहीं है और कल्पना से सब किया है। कल्पना से खड़ा किया है। यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने देखकर कहा है। वह तो वस्तु को वस्तुरूप से कहा है। आहाहा! और नहीं देखकर कहनेवाले, देखा नहीं, जाना नहीं, सर्वज्ञपना है नहीं और कल्पना से वस्तु को अवस्तु सिद्ध करे और अवस्तु को वस्तु सिद्ध करे—ऐसा जो ज्ञान, वह मिथ्याज्ञान है।

और उस मार्ग का आचरण, वह मिथ्याचारित्र है... आहाहा! उस मार्ग की श्रद्धासहित उसमें आचरण करना—व्रत, तप, भक्ति, वह सब अनाचरण—मिथ्याचारित्र है। ऐसा है। गले उतरना कठिन पड़े। एक तो परमात्मा एक समय में पूर्ण... आहाहा! असंख्यप्रदेशी सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह किसी ने कहा ही नहीं। श्वेताम्बर की शैली में असंख्यप्रदेशी जो है, वह मिलता नहीं। आहाहा! एक अंश का भी अन्तर, (वह) मार्गाभास है। सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा, जाना; उससे विरुद्ध जो कुछ अंश हो, उसका ज्ञान,

अवस्तु को वस्तु (जाने, वह) मिथ्याज्ञान और उसमें आचरण — व्रत पाले, महाव्रत पाले, त्याग करे, वह सब मिथ्याचारित्र है। आहाहा! ऐसा है। तो एक यही मार्ग सच्चा? सब मिथ्या? वीतरागमार्ग एक ही सच्चा, बाकी सब मिथ्या। किसी ने कुछ कम, किसी ने अधिक, किसी ने विपरीत कुछ का कुछ करके अनेक प्रकार की बातों की हैं। आहाहा! उन्हें मानना और उसमें आचरण (होना), वह मिथ्याचारित्र है। **इन तीनों को निरवशेषरूप से छोड़कर। देखा? तीनों को निरवशेषरूप से छोड़कर।** आहाहा! कुछ भी अंश बाकी रखे बिना। कहीं थोड़ा तो रखूँ, थोड़ा तो रखूँ। आहाहा! ऐसा कठिन।

त्रिकाल-निरावरण,... अब किसका स्वीकार करना? किसका अनुभव करना? आहाहा! त्रिकाल निरावरण परमात्मद्रव्य जो है। द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। यह तो पर्याय में आवरण का निमित्त है। द्रव्य को आवरण-फावरण है नहीं। द्रव्य को आवरण होवे तो अद्रव्य हो जाए। वस्तु है, उसे आवरण होवे तो अवस्तु हो जाए। पर्याय को आवरण है तो पर्याय में अन्तर पड़ता है। आहाहा! वस्तु जो है, भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव (है) वह तो त्रिकाल निरावरण है। उसे कभी आवरण हुआ ही नहीं। पर्याय में, एक समय की पर्याय में राग के आवरण का निमित्त है और एक समय की पर्याय के आवरण को छोड़ना है। बाकी द्रव्य में छोड़ना और त्यागना कुछ है नहीं। आहाहा! कितने ही लोगों को कठिन लगता है। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है... नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण। नित्य आनन्द; दुःख जरा भी नहीं। दुःख तो पर्याय में एक समय की अवस्था में है। द्रव्य में जरा भी दुःख नहीं है। आहाहा! वस्तु जो तत्त्व है भगवान चैतन्यस्वरूप द्रव्यस्वभाव। **त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** नित्य आनन्द जिसका लक्षण, आनन्द जिसका लक्षण। दुःख, राग-द्वेष, वह तो पर्याय की विकृत अवस्था है। वस्तु में कुछ है नहीं। वस्तु तो **नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण...** जिसका एक लक्षण। थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख और पर्याय में दुःख है, इसलिए थोड़ा दुःख द्रव्य में गिना जाए... क्या कहा यह? पर्याय में दुःख है, इसलिए द्रव्य में वह दुःख गिना जाए, आनन्द गिना जाए, आनन्द भी गिना जाए और दुःख भी गिना जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा सुनने को कभी मिलता है। उसमें बाहर में अटककर पड़े। आहाहा! एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता। उसमें बाहर के ठाट। आहाहा! मार डाले जगत को।

आज समाचार-पत्र में बात आयी थी। एक राजा था न। राजा है, देश है। उसने विवाह किया, तो विवाह की पहली रात्रि में एक करोड़ खर्च किया, एक करोड़। पहली रात्रि में... आहाहा! उसे क्या होता होगा? आहाहा! पागल गहलता हुई। पागल एक रात में... विवाह के पहले दिन में करोड़ रुपये खर्च किये। धामधूम... आहाहा! अरे! प्रभु! क्या है? भाई!

तीन लोक का नाथ चैतन्यप्रकाशी नित्य विराजमान हैं। नित्य निरावरण हैं। नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है... नित्य आनन्द जिसका एक ही लक्षण है। उसमें कोई राग करना, राग छोड़ना... आहाहा! ऐसा उसके स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है ऐसा, निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप... निज परमपारिणामिकभाव। परमपारिणामिक क्यों लिया? पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। पर्याय को। इसलिए यहाँ द्रव्य को लेना है। आहाहा!

निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा... आहाहा! निरंजन नित्य आनन्द जिसका लक्षण है, ऐसा... आहाहा! निरंजन निज परमपारिणामिकभाव... अपना निज पारिणामिकभावस्वरूप। भगवान का पारिणामिकभाव भगवान के पास रह गया। आहाहा! निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा वह आत्मा है;... उसे आत्मा कहा। आहाहा! इन नौ तत्त्व में उसे आत्मा कहा। आस्रव, पुण्य, पाप, बन्ध, वह तो नहीं परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष भी नहीं क्योंकि वह तो पर्याय है। आहाहा! परमपारिणामिकभाव ज्ञायकभाव ज्ञान जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. जिसका स्वभाव, जिसका स्वभाव। जिसका स्वभाव है, वह त्रिकाल है। त्रिकाल जो स्वभाव है, वह परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा, वह आत्मा है;... उसे यहाँ आत्मा कहा गया है। आहाहा!

आत्मा किसी का भला कर दे और किसी से भला करावे या किसी से भला हो, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो क्षायिकभाव भी आत्मा नहीं है, ऐसा कहा, वहाँ (दूसरी बात कहाँ रही)? आहाहा! आत्मा दूसरे का भला कर दे, भला कराओ, ऐसा करना, समन्वय करना, इकट्ठा करके एक-दूसरे को सहायता करना, मदद करना, तब यह सब शोभा देगा, तो मनुष्यपना शोभा देगा। मनुष्यपने को यह योग्य, मनुष्यपने की मेल

करके बराबर एकता यदि होवे तो मनुष्यपना शोभे, ऐसा कहते हैं लो। यहाँ कहते हैं कि ऐसा कारणपरमात्मा है, वह आत्मा शोभे। आहाहा! ऐसी जो दृष्टि करे, वह शोभे। आहाहा! एकान्त लगे... एकान्त लगे... बेचारे को लगे।

मुमुक्षु : ऐसा सुनने की उसमें योग्यता ही नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! योग्यता नहीं होती। बात सच्ची है। अरे! प्रभु! ऐसा कहाँ है? आहाहा!

निज कारणपरमात्मा, वह आत्मा है। यह कैसा लिया? त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है... दो। निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप... निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप ऐसा कारणपरमात्मा... आहाहा! वह आत्मा है;... आहाहा! यह तो कहे, जीव किसे कहते हैं? कि दया पाले, हिले-चले, पर का हित करे, अहित करे, सुखी-दुःखी हो, वह जीव। आहाहा! यह तो इतना अधिक अन्तर पड़ा। यशपालजी! आहाहा! यह आत्मा किसे कहते हैं? त्रस किसे कहते हैं? जो हिले-चले वह त्रस। स्थावर किसे कहते हैं?—कि जो स्थिर रहे, वह स्थावर। आहाहा! यहाँ कहते हैं आत्मा किसे कहते हैं? स्थावर का या त्रस का या कोई भी (गतिरहित)... आहाहा! नित्य निरंजन निराकार एक नित्य लक्षण आनन्द जिसका एक ही लक्षण है, आनन्द जिसका एक लक्षण है, ऐसा निरंजन निज... परमात्मा परमपारिणामिकभावस्वरूप... परमपारिणामिकभावस्वरूप... आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा वह आत्मा है;... आहाहा!

उसके स्वरूप के श्रद्धान... उसके स्वरूप के श्रद्धान। इसमें नौ तत्त्व या वह कुछ लिया नहीं। आहाहा! एक भगवान निरंजन निराकार नित्य लक्षण, आनन्द लक्षण, परमपारिणामिकभावस्वरूप ऐसा कारण प्रभु, उसका-स्वरूप का श्रद्धान। उसके स्वरूप के श्रद्धान... अभी कारणपरमात्मा कौन है, यह सुना नहीं होगा। आहाहा! उसके स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण का रूप वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है;... आहाहा! ऐसा परमात्मस्वरूप कारणपरमात्मा, जिसमें अकेला निर्मल अनन्त गुण का पिण्ड... आहाहा! असंख्य प्रदेशी क्षेत्र, त्रिकाल निरावरण नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण, वह निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा... आहाहा! वह आत्मा है; उसके स्वरूप के श्रद्धान... उसके स्वरूप का श्रद्धान, वह समकित है। आहाहा! यहाँ तो अभी

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, वह समकित; नवतत्त्व की श्रद्धा करो, वह समकित— (ऐसा लोग कहते हैं)। आहाहा! भेदभाव है। अनेक प्रकार हैं।

उसके स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण का रूप, वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है;... आहाहा! वह सच्चा रत्नत्रय है। दर्शन-ज्ञान और चारित्र रत्नत्रय। रत्न, वह रत्नत्रय सच्चा है। पर्याय, हों! वह पर्याय है। द्रव्य की बात कठिन पड़ी है। वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है; इसप्रकार भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी... आहाहा! इस प्रकार जो कोई आत्मा भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी। ऊपर कहा था न? कि नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है। इससे परमात्मा का आनन्द, उसका अभिलाषी। पर में कहीं सुख है, यह कल्पना छोड़कर। आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख एक दिन में (मिलते हों) एक दिन में पच्चीस लाख की आमदनी (होवे तो) अन्दर से प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। अन्दर रोंगटे खड़े हो जाएँ। आहाहा! आज तो बहुत कमाया। यह... आये सट्टा में रसिकभाई। रसिकभाई का लड़का। लॉटरी। लॉटरी में पाँच लाख (मिले)। रसिकभाई आते हैं न? वाँचनकार। उनका छोटा लड़का। बड़ा रहता है। छोटा वहाँ रहता है। पाँच लाख। वहाँ सब कुटुम्ब-बुटुम्ब सब ऐसा कहे, आहाहा! पाँच लाख एक दिन में! धूल में (कुछ नहीं)। आहाहा! यहाँ एक हजार रुपये भेजे थे। पाँच लाख आये तो हजार रुपये भेजे। यहाँ ज्ञान खाते में। परन्तु पाँच लाख क्या, अरब रुपयें हों तो भी क्या? उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

मुमुक्षु : वह त्याग ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ त्यागी की तो बात चलती है। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का त्याग। यहाँ कुछ बाहर के त्याग की बात नहीं है। अमुक स्त्री, पुत्र का त्याग, धन्धे का त्याग, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण का त्याग तथा सम्यगश्रद्धा, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का स्वीकार - आचरण। आहाहा! श्लोक तो बहुत अच्छा श्लोक आया। आहाहा!

इसप्रकार भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी, ऐसा जो परम पुरुषार्थपरायण... परम पुरुषार्थपरायण। आहाहा! अपने कारणपरमात्मा की ओर के पुरुषार्थ में परायण। परम पुरुषार्थपरायण... भाषा जरा सूक्ष्म। अकेला पुरुषार्थपरायण

नहीं। परम पुरुषार्थपरायण... मुनि लेना है न? परम पुरुषार्थपरायण। आहाहा! आनन्द का नाथ अन्दर, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द जिसका लक्षण एक ही है। एक ही लक्षण है, उसमें जो अन्दर रमता है। ऐसा जो (परम तपोधन)... यह परम पुरुषार्थपरायण (परम तपोधन) शुद्धरत्नत्रयात्मक... अभिलाषी। आहाहा! परमात्मा के सुख का अभिलाषी। निज परमात्मा के सुख का अभिलाषी। आहा!

ऐसा जो परम पुरुषार्थपरायण (परम तपोधन) शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है,... शुद्धरत्नत्रयस्वरूप, शुद्धरत्नत्रयस्वरूप - निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उस शुद्धरत्नत्रयस्वरूप ऐसे आत्मा को भाता है, उसके द्वारा आत्मा को भाता है। आहाहा! उस परम तपोधन को ही (शास्त्र में) निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। लो। शास्त्र में उसे निश्चयप्रतिक्रमण कहा है। उसे सच्चा प्रतिक्रमण है। बाकी सब खोटा प्रतिक्रमण है। आहाहा! ऐसी बात है। निश्चय... निश्चय... निश्चय, परन्तु व्यवहार है या नहीं? है न? व्यवहार बीच में होता है परन्तु वह बन्ध का कारण है। विकल्प आता है, व्यवहार होता है परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

भगवान! आहाहा! शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है,... अन्दर भाता है। आत्मा की भावना अन्दर करता है। उस परम तपोधन को ही (शास्त्र में) निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। आहाहा! यह सच्चा प्रतिक्रमण है। अब इसकी तो गन्ध की भी खबर नहीं होती और शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे, प्रतिक्रमण किया और यह... आहाहा! एक व्यक्ति कहता था। गारियाधार गये थे तब। गारियाधार में तो सब सगे-सम्बन्धी बहुत। कानजीस्वामी तो ऐसा कहते हैं कि यह... छोड़ दो। यह छोड़ दो। यह व्यवहार करना छोड़ दो। ऐसा कहते थे... प्रतिक्रमण करने मन्दिर जाते। आहाहा! छोड़ दो, छोड़ दो अर्थात्? स्वरूप में रमण करने से वह छूट जाता है, उसे छोड़ दो। उसे छोड़कर अशुभ में आना, यह यहाँ कहना है? शुभ छोड़कर अशुभ में आना, ऐसा कहना है? आहाहा! यह शुभभाव है, वह धर्म नहीं, मोक्ष का मार्ग नहीं, वह कल्याण का पन्थ नहीं, वह मार्ग ही नहीं, वह मार्ग ही नहीं। आहाहा! ऐसा कहना है। इसलिए (उसे) छोड़कर अशुभ में आना, ऐसा कहने का आशय नहीं है। विशेष कहेंगे.... गाथा कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्लोक-१२२

[अब इस ९१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(वसंततिलका)

त्यक्त्वा विभावमखिलं व्यवहारमार्ग-
रत्नत्रयं च मति-मान्निज-तत्त्व-वेदी ।
शुद्धात्म-तत्त्व-नियतं निज-बोध-मेकं,
श्रद्धान-मन्य-दपरं चरणं प्रपेदे ॥१२२॥

(हरिगीतिका)

तजकर समस्त विभाव या व्यवहार रत्नत्रय अहो ।
निज आत्मा को जानने वाला पुरुष मतिमान जो ॥
शुद्धात्मा में नियत ऐसे एक ही निजज्ञान का ।
और फिर श्रद्धान का, आश्रय करे चारित्र का ॥१२२ ॥

[श्लोकार्थ :] समस्त विभाव को तथा व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर निजतत्त्ववेदी (निज आत्मतत्त्व को जाननेवाला-अनुभव करनेवाला) मतिमान पुरुष शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत (-शुद्धात्मतत्त्वपरायण) ऐसा जो एक निजज्ञान, दूसरा श्रद्धान और फिर दूसरा चारित्र उसका आश्रय करता है ॥१२२ ॥

प्रवचन-९४, श्लोक-१२२, गाथा-९२, रविवार, मागशर शुक्ल १४, दिनांक ०२-१२-१९७९

नियमसार, १२२ वाँ कलश है ।

त्यक्त्वा विभावमखिलं व्यवहारमार्ग-
रत्नत्रयं च मति-मान्निज-तत्त्व-वेदी ।
शुद्धात्म-तत्त्व-नियतं निज-बोध-मेकं,
श्रद्धान-मन्य-दपरं चरणं प्रपेदे ॥१२२॥

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव का श्लोक है। कहते हैं कि,

[श्लोकार्थ :] समस्त विभाव को... आहाहा! आत्मा का ध्यान करना हो और सम्यग्दर्शन करना हो, उसे समस्त विभाव—हिंसा, झूठ, सत्य-असत्य आदि समस्त जो विकल्प हैं, उन्हें छोड़कर। तदुपरान्त व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर... आहाहा! वे यह कहते हैं कि व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होता है। यहाँ कहते हैं कि छोड़कर होता है। इतना अन्तर है। रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, वह व्यवहाररत्नत्रय के त्याग से होता है। उसकी रुचि और उसका आश्रय छोड़े तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निज द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! कठिन काम।

चैतन्य पूरा तत्त्व है, जिसकी अनन्त शक्ति है। प्रत्येक शक्ति की एक पर्याय है। पर्याय में विकल्प उठे, उन्हें तो छोड़; परन्तु व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम, शास्त्र की ओर का ज्ञान, विकल्पज्ञान... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर। व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है - ऐसा नहीं कहा। आहाहा! अभी पहले व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे निश्चयश्रद्धा किस प्रकार होगी? व्यवहार से निश्चय होता है (-ऐसा माने), उसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय और विभाव। पहले साधारण विभाव कहा। संसार सम्बन्धी विकल्प; पश्चात् मोक्षमार्ग का रत्नत्रय व्यवहार, जिसे मोक्षमार्ग व्यवहार कहते हैं, उसे भी छोड़कर। आहाहा!

अकेला भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर निज तत्त्ववेदी... छोड़कर करना क्या? निज तत्त्ववेदी... निज आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, ऐसा जो तत्त्व, उसका वेदी—अनुभव करनेवाला, उसका अनुभव करनेवाला-जाननेवाला। आहाहा! यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्राप्त करने की पद्धति है। आहाहा! अभी व्यवहार से होता है.. व्यवहार से होता है—ऐसे लेख आते हैं। जयसेनाचार्य में बहुत आते हैं; इसलिए वह टीका पसंद करते हैं। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, निश्चय साध्य है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग से भिन्न पड़कर अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे, तब उसे राग से भिन्न पड़ा, तब उसके राग को व्यवहारसाधन का आरोप दिया जाता है। व्यवहारसाधन का ज्ञान करने के लिए है। आहाहा! जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा!

(समयसार की) १२वीं गाथा में यह कहा। व्यवहाररत्नत्रय आता है - होता है, परन्तु वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं। अब ऐसे निचली श्रेणी में रहे हुए, उन्हें यह बात कहो, उसकी अपेक्षा पहले रीतिसर मार्ग में चढ़ावे। परन्तु (भाई!) दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। व्यवहार की चाहे जितनी शुद्धि करे; व्यवहार श्रद्धा की, ज्ञान की, चारित्र की चाहे जितनी सन्धि करे, परन्तु वह तो बन्ध का ही कारण है। वह शुद्धि है ही नहीं और उस अशुद्धि के कारण से आत्मा का आश्रय (होता है-ऐसा बनता नहीं)। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय का आश्रय पर है और निश्चयरत्नत्रय का आश्रय स्व है। दोनों के आश्रय में अन्तर है। आहाहा! व्यवहार पराश्रय है; निश्चय स्वाश्रय है। - यह तो सिद्धान्त है न? व्यवहार पर-आश्रय है; निश्चय स्व-आश्रय है, यह पहला सिद्धान्त है। व्यवहाररत्नत्रय में पर का आश्रय है। पर के आश्रय में तो बन्ध का कारण है। भले पुण्य बन्ध न हो, परन्तु वह बन्धन ही है। आहाहा! यह बात कठिन पड़ती है।

सोनगढ़ के नाम से (लोग) निश्चयाभास एकान्त है-ऐसा कहते हैं। यह तो आ गया, ऐसे व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर। परन्तु व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चय होता है, सीधे निश्चय हो जाता होगा? आहाहा! सीधे क्या, वह सीधे ही है। पूरा सत् पड़ा है। पूर्णानन्द का नाथ है, उसके सन्मुख होना है। पाधरो.. पाधरो समझे? सीधा, सीधा। अन्दर आत्मा आनन्द-सच्चिदानन्द प्रभु, अकेला ज्ञान और आनन्द का दल, सदा, सर्वदा एकरूप रहनेवाला है। उस तत्त्व को कुछ आँच नहीं; उसे आवरण नहीं, अल्पता नहीं, विपरीतता नहीं, उसे व्यवहार का सम्बन्ध नहीं। ऐसा जो तत्त्व भगवान आत्मा है, उसका सीधा आश्रय लेने की बात है। पाधरो अर्थात् सीधा। आहाहा! कठिन पड़े यह। यह अमृतचन्द्राचार्य नहीं (कहते), यह तो पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं परन्तु यह तो मुनि भी ऐसा कहते हैं कि भाई! विभाव को छोड़कर, स्वभाव से विरुद्ध विकल्पों को छोड़कर, व्यवहाररत्नत्रय को भी छोड़कर। आहाहा!

देव-गुरु और शास्त्र ऐसा कहे, देव-गुरु और शास्त्र ऐसा कहे - हमारी ओर का भी आश्रय छोड़कर। आहाहा! वस्तु तो देखो! उपदेश कहनेवाला ऐसा कहे - हमारा भी आश्रय छोड़कर; तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव दिव्यध्वनि में ऐसा कहते हैं कि हमारा भी आश्रय है, तब तक तुझे राग-दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! मोक्षपाहुड़

१६वीं गाथा। 'परदव्वादो दुग्गई' - ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं। आहाहा! मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा में स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! 'परदव्वादो दुग्गई' - यह व्यवहाररत्नत्रय है, वह परद्रव्य के आश्रय से है। वास्तव में वह परद्रव्य है। निश्चय से तो वह परद्रव्य है। आहाहा!

नियमसार में तो ज्ञान की निर्मल समकित पर्याय को भी परद्रव्य कहा है, क्योंकि उसके आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती, तो यह तो (रागादि तो) बन्ध का कारण है। जो अबन्ध का कारण और मोक्षमार्ग (है), उसे भी परद्रव्य कहकर उसका आश्रय छुड़ाया है। पर्याय का आश्रय छुड़ाया है और द्रव्य का आश्रय कराया है; तो यह तो व्यवहाररत्नत्रय है, इसे तो छोड़। आहाहा! समेट दे। लम्बा होकर एकपना छोड़कर अनेकपने में पड़ा है। एकरूप वस्तु है, उसे छोड़कर अनेकपने में ऐसे चौड़ा होकर पड़ा है। यह विकल्प... यह विकल्प... यह और यह... आहाहा! गजब!

उसमें पैसेवाले का मुँह देखा। आहाहा! तब मुम्बई। आहाहा! उसे मानो कि ऐसा आहा! हम पैसेवाले। करोड़ों रुपये, २०-२० लाख की मोटरें। आहाहा! लोगों को क्या हो? दूसरे को कहे परन्तु कुछ धर्म करो न! करते हैं एक घण्टे पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं। ऐसा उत्तर दिया। किसी ने पूछा था तो कहे, हम भगवान की पूजा करते हैं, माला करते हैं, भक्ति करते हैं। अरे..! बापू! एक घण्टे करता है, वह तो पराश्रितभाव है। तेईस घण्टे पराश्रितभाव पाप और एक घण्टे पराश्रित पुण्य, वह तेरा कहाँ तुलना में आयेगा? आहाहा! ऐरन की चोरी और सुई का दान। कठिन काम, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, मूल में से सब उखाड़ दे। गुण-गुणी के भेद का विकल्प, विभाव छोड़, क्योंकि वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर। यह शब्द कोई गजब है! कम बात है? बेधड़क मुनियों को - दिगम्बर सन्तों को समाज की दरकार नहीं कि समाज इसमें क्या मानेगी? पुण्य-पाप के अधिकार में अन्त में तो व्यवहाररत्नत्रय के पुण्य को भी पाप कहा है। व्यवहाररत्नत्रय के पुण्य को पाप कहा है, क्योंकि स्वरूप जो आनन्दस्वरूप वीतराग, उसमें से पतित होता है, च्युत हो जाता है। भले शुभ हो, परन्तु स्वरूप में से च्युत हो जाता है, वह पाप है। व्यवहाररत्नत्रय पाप है। ऐसा कठिन काम। आहाहा!

निचली श्रेणी के लोगों को कुछ चढ़ने का रास्ता, कुछ सीढ़ी होना चाहिए। ऊँचे-

ऊँचे सोपान चढ़ने की अपेक्षा धीरे-धीरे (आगे बढ़ें) । वह धीरे कहो या उतावल से कहो या जो कुछ वह यह एक ही है । व्यवहाररत्नत्रय और विभाव के विकल्प छोड़ना, यह एक ही शुरुआत है । इसकी शुरुआत ही यह है । इससे दूसरी कुछ भी किसी बात का सहारा ले, वह सब उसमें मिथ्यात्व है । उससे लाभ होगा, ऐसा माने, वह मिथ्यात्व है । पर के सहारे से, व्यवहाररत्नत्रय से, देव-गुरु की भक्ति के भाव से, देव-गुरु की उत्तम उल्लसित भक्ति के वीर्य से आत्मा को कुछ भी लाभ होगा, (ऐसा मानना) वह भी मिथ्यात्व है । आहाहा ! ऐसा मार्ग है ।

इसलिए कहा, व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर निजतत्त्ववेदी... वह सब पर था । व्यवहाररत्नत्रय और व्यवहार, वह सब पर था । आहाहा ! निजतत्त्ववेदी... निज अर्थात् अपना तत्त्व जो ज्ञान और आनन्द, उसका वेदन करनेवाला... आहाहा ! (निज आत्मतत्त्व को जाननेवाला-अनुभव करनेवाला) मतिमान... उसे मतिमान कहा है । वह बुद्धिवाला है, वह पण्डित है, वह प्रवीण है । आहाहा ! विचक्षण कहा है । आहाहा ! जिसने चैतन्यस्वरूप को पकड़ा है, विकल्प को छोड़कर (स्वरूप को पकड़ा है), उसे विचक्षण और पण्डित कहा है । भले ज्ञान थोड़ा हो । आहाहा ! मूल पहले श्रद्धा में आगे बढ़ना । शुद्धि श्रद्धा, दर्शनशुद्धि की यहाँ बात है । दर्शनशुद्धि बिना ज्ञान की और चारित्र की शुद्धि नहीं हो सकती । आहाहा !

ऐसा निजतत्त्ववेदी मतिमान पुरुष... मतिमान पुरुष । व्यवहार में रुकता था, वह कुबुद्धि थी । आहाहा ! वह मतिमान नहीं । उस व्यवहार को छोड़कर अन्तर में निजवेदन में आवे, वह मतिमान है । वह भले बुद्धि थोड़ी हो, ज्ञान थोड़ा हो तो भी वह मतिमान है । आहाहा ! ऐसा कठिन काम है । मतिमान पुरुष शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत... शुद्ध आत्मतत्त्व जो निर्मलानन्द त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, त्रिकाली निर्मल निरावरण, अखण्ड एक स्वरूप प्रभु, शुद्धपारिणामिक परमभाव तत्त्व, ऐसा निजद्रव्य । ऐसे आत्मतत्त्व में नियत... वह शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत है । निश्चय अर्थात् परायण.. आहाहा ! व्यवहार को छोड़कर निश्चय में परायण, निजतत्त्व में परायण । यहाँ से पर को छोड़कर निजतत्त्व में परायण । आहाहा ! विधि की खबर नहीं होती । पहले क्रिया करो, पहले यह करो, फिर समकित होगा । कहो, शीरा (हलुवा) बनाना हो, शीरा समझते हो ? हलुवा । उसे पहले पानी में आटे को सेंको,

फिर उसमें घी डालो। तेरे तीनों जाएँगे। पानी, आटा और गुड़ सब तीनों जाएँगे, हलुवा-बलुवा नहीं होगा। उसकी यह विधि ही नहीं है। पहले आटे को घी में सेंकना चाहिए। भले आटा घी पी जाए। उसके लिए तो हलुवा है। आटा घी पी जाए, पश्चात् गुड़ और शक्कर का पानी डाले तो हलुवा होता है। इसी प्रकार प्रथम सम्यग्दर्शन ज्ञान करे, पश्चात् चारित्र करे तो रमणता होती है। आहाहा! ऐसा काम है।

अस्ति तत्त्व है या नहीं? प्रभु! तू है, ऐसा मान रहा है। यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. परन्तु वह 'यह है... यह है... यह है... यह है...' उसे मान रहा है, वह माननेवाला है या नहीं? और यह है... यह है.. उससे माननेवाला भिन्न है या नहीं? आहाहा! स्पर्श किये बिना, उसे छुए बिना उसे जानता है। आहाहा! परद्रव्य को स्पर्श नहीं करता और वह वस्तु है, घी है, गुड़ है, शक्कर है, पकवान है, कपड़े हैं, वस्त्र हैं, गहने हैं, पैसे हैं, (उन्हें मानता है परन्तु जाननेवाले को नहीं मानता।)। आहाहा!

ऐसा चैतन्य हीरा जो मुख्यरूप से विराजता है, उसे जाननेवाला शुद्धात्मवेदी, **ऐसा जो एक निजज्ञान,...** क्या कहते हैं? तीन बोल लेना है न? ऐसा जो आत्मा तत्त्ववेदी, आत्मतत्त्व में नियत अर्थात् परायण **ऐसा जो एक निजज्ञान,...** निजज्ञान। शास्त्रज्ञान या उस (परलक्ष्यी) ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! एक निजज्ञान... निजज्ञान। दूसरा (निज) श्रद्धान... यह निज श्रद्धान-अपना श्रद्धान। आहाहा! और फिर दूसरा चारित्र, उसका आश्रय करता है। श्रद्धा को यहाँ साथ में डाला है। निजज्ञान, दूसरा श्रद्धान और फिर दूसरा चारित्र... ऐसे तीन कहे न। एक निजज्ञान, दूसरा श्रद्धान और फिर दूसरा चारित्र... आहाहा! पूर्ण तत्त्वस्वरूप की वेदन से श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र। उस व्यवहाररत्नत्रय के सामने तीन रखे हैं। उसका आश्रय करता है। यह चारित्र उसका-पर्याय का आश्रय करता है। उसका (राग का) आश्रय नहीं करता, इसलिए आश्रय करता है (ऐसा कहा है)। करता है द्रव्य का आश्रय, परन्तु द्रव्य का आश्रय करने पर, पर का आश्रय नहीं करता, इसलिए इसका आश्रय करता है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

पूरे आत्मा को बाहर से समेट लिया। आहाहा! ऐसा नहीं कहा? हे प्रभु! तेरे नयजाल इन्द्रजाल है। आहाहा! एक ओर अनेक विकल्पों की बातें करे, दूसरी ओर आत्मा नय और निक्षेप तथा व्यवहार और नय के विकल्प की बातें करे, तीसरी बात ध्यानावली—

ध्यान की श्रेणी-धारा निर्मल धारा... आहाहा! जो निश्चय को पकड़कर धारा जो निश्चय हो वह। प्रभु! ये तीनों में अन्दर में कहाँ है? आहाहा! प्रभु! तेरे नय इन्द्रजाल हैं। विस्तार करने लगे, तब यहाँ तक (करे)। आहाहा! दूसरी वस्तु का, नय का, दूसरे द्रव्य के आश्रय के विकल्प का, नय का और ध्यानावलि को समेटने लगे तो सबमें से समेटकर अकेला आत्मा। एक ही आत्मा आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा!

यह संसार के रस में चढ़ गये हों उन्हें कठिन पड़ता है। जिसे एक दूसरा रस चढ़ गया, उसे यह रस चढ़ना बहुत कठिन। आहाहा! जिसे राग के विकल्प का भी रस चढ़ा है, बाहर की चीज़ की विस्मयता और अधिकता... आहाहा! पचास-पचास लाख की मोटरें, उनमें ऐसे बैठा हो। और... आहाहा! ...आहाहा! मान चढ़ जाता है या नहीं वहाँ? हम कैसे वैभववाले हैं! कितने साधन, कैसे साधन पैसे से प्राप्त किये हैं! आहाहा! उस मोटर में काँच को ऐसा करना पड़े, उस मोटर में ऐसा न करना पड़े। एक ऐसे दबावे वहाँ तो काँच ऊँचा हो जाए। सब प्रकार ही अलग। आहाहा! इस बाहर की चमक में, वैभव में मोहित होकर पड़ा है। अर र! उसका योगफल क्या आयेगा? बापू! करने का फल तो आयेगा या नहीं? आहाहा! बाहर में दुनिया सर्वत्र महिमा करे, ओहो! ऐसा किया, गजब किया, ऐसा किया, वैसा किया।

एक भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका चारित्र, एक ही बात है। उसका आश्रय करे, बस। आहाहा! यह करना है।

गाथा-९२

उत्तमअट्टं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं ।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्टस्स पडिकमणं ॥९२॥

उत्तमार्थ आत्मा तस्मिन् स्थिता घ्नन्ति मुनिवराः कर्म ।
तस्मात्तु ध्यान-मेव हि उत्तमार्थस्य प्रतिक्रमणम् ॥९२॥

अत्र निश्चयोत्तमार्थप्रतिक्रमणस्वरूपमुक्तम् । इह हि जिनेश्वरमार्गे मुनीनां सल्लेखनासमये हि द्विचत्वारिंशद्विराचार्यैर्दत्तोत्तमार्थप्रतिक्रमणाभिधानेन देहत्यागो धर्मो व्यवहारेण । निश्चयेन नवार्थेषूत्तमार्थो ह्यात्मा ; तस्मिन् सच्चिदानन्दमयकारणसमयसारस्वरूपे तिष्ठन्ति ये तपोधनास्ते नित्यमरणभीरवः, अत एव कर्मविनाशं कुर्वन्ति ।

तस्मादध्यात्मभाषयोक्तभेदकरणध्यानध्येयविकल्पविरहितनिरवशेषेणान्तर्मुखाकार-सकलेन्द्रियागोचरनिश्चयपरमशुक्लध्यानमेव निश्चयोत्तमार्थप्रतिक्रमणमित्यवबोद्धव्यम् ।

किञ्च, निश्चयोत्तमार्थप्रतिक्रमणं स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मशुक्लध्यानमयत्वादमृत-कुम्भस्वरूपं भवति, व्यवहारोत्तमार्थप्रतिक्रमणं व्यवहारधर्मध्यानमयत्वाद्विषकुम्भस्वरूपं भवति ।

तथा चोक्तं समयसारे ह

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरहा सोही अट्टविहो होदि विसकुंभो ॥

तथा चोक्तं समयसारव्याख्यायां ह

(वसंततिलका)

यत्र प्रतिक्रमण-मेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥

तथाहि ह

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।

अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का ॥९२ ॥

अन्वयार्थ :—[उत्तमार्थः] उत्तमार्थ (-उत्तम पदार्थ) [आत्मा] आत्मा है; [तस्मिन् स्थिताः] उसमें स्थित [मुनिवराः] मुनिवर [कर्मघ्नन्ति] कर्म का घात करते हैं। [तस्मात् तु] इसलिए [ध्यानम् एव] ध्यान ही [हि] वास्तव में [उत्तमार्थस्य] उत्तमार्थ का [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण है।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है।

जिनेश्वर के मार्ग में मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण, देहत्याग व्यवहार से धर्म है। निश्चय से-नव अर्थों में उत्तम अर्थ आत्मा है; सच्चिदानन्दमय कारणसमयसारस्वरूप ऐसे उस आत्मा में जो तपोधन स्थित रहते हैं, वे तपोधन नित्य मरणभीरु हैं; इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं। इसलिए अध्यात्मभाषा में, पूर्वोक्त *भेदकरण रहित, ध्यान और ध्येय के विकल्प रहित, निरवशेषरूप से अंतर्मुख जिसका आकार है, ऐसा और सकल इन्द्रियों से अगोचर निश्चय-परमशुक्लध्यान ही निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, ऐसा जानना।

और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानमय होने से अमृतकुम्भस्वरूप है; व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री समयसार में (३०६ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण जो परिहार निन्दा शुद्धि है।

निवृत्ति गर्हा धारणा ये अष्टविध विषकुम्भ हैं ॥

[गाथार्थः] ^१प्रतिक्रमण, ^२प्रतिसरण, ^३परिहार, ^४धारणा, ^५निवृत्ति, ^६निन्दा, ^७गर्हा और ^८शुद्धि—इन आठ प्रकार का विषकुम्भ है।

* भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना, वह।

१. प्रतिक्रमण=क्रिये हुए दोषों का निराकरण करना। २. प्रतिसरण=सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा।

३. परिहार=मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण। ४. धारणा=पंच नमस्कारादि मन्त्र, प्रतिभा आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना। ५. निवृत्ति=बाह्य विषयकषायादि इच्छा में वर्तते हुए चित्त को मोड़ना। ६. निन्दा=आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। ७. गर्हा=गुरुसाक्षी से दोषों का प्रगट करना।

८. शुद्धि=दोष हो जाने पर प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि करना।

और इसी प्रकार श्री समयसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में (१८९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:

(हरिगीतिका)

प्रतिक्रमण को विषरूप में करते प्ररूपित है जहाँ ।
अप्रतिक्रमण किस तरह अमृत हो सकेगा तब वहाँ ॥
फिर क्यों प्रमादी हो रहे जन अधोमुख गिरते हुए ।
क्यों निष्प्रमादी नहीं होते ऊर्ध्वमुख चढ़ते हुए ॥

[श्लोकार्थ :] (अरे! भाई,) जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है, वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँ से होगा ? (अर्थात् नहीं हो सकता ।) तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं ? अप्रमादी होते हुए ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते ?

गाथा-९२ पर प्रवचन

९२ गाथा ।

उत्तमअट्टं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं ।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्टस्स पडिकमणं ॥९२॥

आहाहा! यह उत्तम प्रतिक्रमण ।

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का ।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का ॥९२ ॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में), निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है । सच्चा उत्तम पदार्थ का प्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है । जिनेश्वर के मार्ग में... आहाहा! त्रिलोकनाथ वीतराग के मार्ग में मुनियों की सल्लेखना के समय,... आहाहा! सल्लेखना की बात ली है । अन्त में । मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा,... उनके द्वारा जैसे उत्तमार्थप्रतिक्रमण है । ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थप्रतिक्रमण है,... ब्यालीस आचार्यों ने यह स्वीकारा है । उनके पास जाकर अब मुझे... सल्लेखना करनी है । कि मैं योग्य हूँ ।... आहाहा !

मुमुक्षु : वह काल कैसा होगा कि जब ब्यालीस आचार्य थे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अच्छा । आचार्य भी अच्छे-सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी । उस समय की बात करते हैं न ? कुन्दकुन्दाचार्य के समय की बात है न ? स्वयं थे, तब बहुत आचार्य थे, मुनि थे, सच्चे सन्त थे ।

मुमुक्षु : पद्मप्रभमलधारिदेव के समय भी ब्यालीस आचार्य थे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह टीका की है ।

उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण,... अर्थात् क्या ? कि जिस मुनि को संथारा करना हो, देह छोड़ने का प्रसंग (हो), वह स्वयं छद्मस्थ है, अकेला है, कदाचित् उतावली हो जाए तो ब्यालीस आचार्य, गम्भीर आचार्य, गहरे रहस्य के जाननेवालों के पास जाकर, जैसे डॉक्टर के पास जाकर शरीर की जाँच करते हैं न ? कि भाई ! शरीर की स्थिति कैसी है ? कहे, बराबर अच्छी है, जाओ । ऐसे आचार्य कहते हैं, बराबर है । तुम्हारा सल्लेखना लेने का समय तुम्हें आ गया है । तुम्हारी योग्यता है । आहाहा ! ब्यालीस आचार्य । भाव कैसा होगा ? महा-आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य के समय में और इन पद्मप्रभमलधारिदेव के समय में ।

मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थ-प्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण,... वह आचार्यों ने दिया । दिया अर्थात् कहा, बराबर है तुम्हें । तुम्हारे संथारा का समय है, बापू ! समाधिमरण होगा । तुम्हारा समाधिमरण होगा । तुम्हारे योग्यता बराबर आ गयी है । ऐसा ब्यालीस सन्तों ने कहा । आहाहा ! वह काल कैसा होगा ? ब्यालीस आचार्य और साधु सल्लेखना के करनेवाले... आहाहा ! वे वापस ब्यालीस के पास जाए, इतनी शक्ति भी सही । आहाहा ! ऐसी शक्ति में पूछे कि मुझे अब अन्तिम स्थिति करनी है, संथारा करना है, देह छोड़नेवाला हूँ । प्रभु ! मेरा बराबर है ? तो ब्यालीस आचार्य स्वीकार करे कि बराबर है । आहाहा ! उसका तो समाधिमरण होगा ही । आहाहा ! उसका आत्मा स्वीकार करता हो और मुनि-आचार्यों के निकट स्वीकार कराया कि टाइम है-काल है, बापू ! तेरा देह छूटने का समय ही है । वह समाधिमरण से छूटने का समय है । आहाहा !

उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण, देहत्याग व्यवहार से धर्म है ।

देह का त्याग, वह तो व्यवहारधर्म है। देह तो पर है, जड़ है। आहाहा! निर्विकल्प ध्यान, वह निश्चयप्रतिक्रमण है। निश्चय सल्लेखना... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में झूले, देह छूटे, कदाचित न हो सके और विकल्प भी हो कि यह होता है, ऐसा जान, तथापि एकावतारी हो जाए। समाधिमरण हो जाए। आहाहा! व्यवहार से देह का त्याग व्यवहार से धर्म है।

निश्चय से-नव अर्थों में... नवतत्त्वों-पदार्थों में उत्तम अर्थ आत्मा है;... नव पदार्थ, नवतत्त्व में उत्तम अर्थ तो आत्मा है। देखा? संवर, निर्जरा, मोक्षपर्याय से भी उत्तम तो आत्मा है। आहाहा! आस्रव और बन्ध, पुण्य-पाप की तो बात कहीं रह गयी! परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष सच्चा, उनमें भी उत्तम अर्थ आत्मा है;... नवपदार्थों में उत्तम अर्थ आत्मा है;... आहाहा!

सच्चिदानन्दमय कारणसमयसारस्वरूप... प्रभु कैसा है? आहाहा! सच्चिदानन्द। सत् अर्थात् शाश्वत् रहनेवाला, चिदानन्द (अर्थात्) ज्ञान और आनन्द का जिसका त्रिकाल स्वरूप है। सत् भी त्रिकाल और ज्ञान और आनन्द उसका लक्षण भी त्रिकाल, ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! सभी आत्मायें सच्चिदानन्दमय प्रभु है। आहाहा! है-सत्। ज्ञान और आनन्द है। ध्रुव ज्ञान, ध्रुव और आनन्द ध्रुव, वह उसका लक्षण है। आहाहा! त्रिकाल आत्मा और त्रिकाल ज्ञान और आनन्द, यह जिसका लक्षण, वह उत्तम पदार्थ है। लो, आहाहा!

ऐसे **कारणसमयसारस्वरूप... यहाँ यह लिया। ऐसे उस आत्मा में...** कारणसमयसारस्वरूप त्रिकाल। कारणपरमात्मा कहो, कारणसमयसार कहो। मोक्षमार्ग नहीं, त्रिकाली। **कारणसमयसारस्वरूप ऐसे उस आत्मा में...** आहाहा! सच्चिदानन्दमय प्रभु, जिसे अन्दर श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र हुए हैं तथा देह छूटने की तैयारी, समाधिमरण से देह छूटने की तैयारी हो गयी है। आहाहा! उसे यह **सच्चिदानन्दमय... प्रभु! जो तपोधन स्थित रहते हैं,...** ऐसे कारणसमयसार प्रभु कारणपरमात्मा त्रिकाली में जो मुनि स्थिर रहते हैं। आहाहा! यह टीका तो मुनि ने की है। उसमें यह ९०० वर्ष (हुए)। अमृतचन्द्राचार्य के बाद। वस्तु तो एक ही है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' परमार्थ का पन्थ कोई दो-तीन होंगे?

समयसारस्वरूप, **कारणसमयसारस्वरूप, ऐसे उस आत्मा...** त्रिकाली कारणस्वरूप

ऐसा जो आत्मा ध्रुव । उस आत्मा में जो तपोधन स्थित रहते हैं,... जिन्हें तपरूपी धन है । आहाहा ! इच्छानिरोधरूपी 'तपयन्ते इति तपः' तपरूपी लक्ष्मी है । यह धूल की नहीं । आहाहा ! शोभता आत्मा, तपरूपी लक्ष्मी से शोभता अन्दर आत्मा । चकचकाहट करता ऐसा आत्मा अन्दर से प्रगट होता है । मुनि को धर्मध्यान-तपोधन... आहाहा !

जो तपोधन स्थित रहते हैं, वे तपोधन नित्य मरणभीरु हैं;... देखा ? मरणभीरु हैं;... मरण से डरते हैं । कोई भी देह छूटने में मेरा यह नहीं । आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. भवभ्रमण से डरते हैं । आहाहा ! एक भी भव करना, देह छोड़कर भव करना, उससे वे डरते हैं । आहाहा ! इसलिए आत्मा में समाते हैं । आहाहा ! नित्य मरणभीरु हैं; इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं । भवभ्रमण करने से डरते हैं । स्वरूप में रमणता करते हैं । आहाहा ! इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं । आहाहा !

इसलिए अध्यात्मभाषा में,... आहाहा ! पूर्वोक्त भेदकरण रहित,... अध्यात्मभाषा में उस भेदकरणरहित ध्यान है, जिसमें भेद नहीं है । व्यवहार तो नहीं परन्तु जिसमें भेद नहीं । आहाहा ! ऐसे वचन, दिगम्बर सन्तों के वचन गजब है । तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है, ऐसा श्रीमद् में कहा है । आहाहा ! ऐसा जो भगवान आत्मा, पूर्वोक्त भेदकरण रहित,... नीचे (फुटनोट में अर्थ) भेद करना वह; भेद डालना वह । भेद ही नहीं मिलता । अखण्ड आत्मा के अन्दर अनुभव में, अनुभव करता हूँ और अनुभव करनेवाला आत्मा, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है । आहाहा ! अन्दर में एकमेक । अनुभव करनेवाला और अनुभव सब अन्दर एकमेक हो गया है । जरा भी भेद नहीं । आहाहा ! देखो ! यह निश्चयप्रतिक्रमण ! यह निश्चय समाधिमरण ! देह छूटने का काल तो आयेगा, देह छूटेगी । आहाहा ! इस प्रकार से छूटेगी, तब छोड़ा कहलायेगा; नहीं तो छूटा नहीं । छूटेगी और दूसरी मिलेगी । यह छोड़कर फिर दूसरी मिलेगी । छूटा वह कि जिसे फिर से भव नहीं मिले । आहाहा ! कठिन काम । देह छूटा उसे कहते हैं कि फिर से देह नहीं मिले— भव ही नहीं मिले, उसे देह छूटा कहा जाता है ।

अध्यात्मभाषा में, पूर्वोक्त भेदकरण रहित, ध्यान और ध्येय के विकल्प रहित,... आहाहा ! ध्येय आत्मा, ध्यान करनेवाली पर्याय । ध्यान वह पर्याय है और उसका ध्येय, वह द्रव्य है, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं अब । आहाहा ! कहा न ? ध्यान और ध्येय के विकल्प

रहित, निरवशेषरूप से... कुछ बाकी रखे बिना अंतर्मुख जिसका आकार है... आहाहा! बाहर का कुछ रखे बिना अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द में, अनुभव में मस्त हो गया है। बाहर का कोई भी विकल्प उसे है नहीं। आहाहा! यह पंचम काल के मुनि कहते हैं। पंचम काल के श्रोता को ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा हो सकता है तो ऐसा कहते हैं। भले कोई एक-दो भी निकले परन्तु हो सकता है, उसे यह कहते हैं। यह पंचम काल है तो यह नहीं हो सकता, यह हल्का काल है तो नहीं हो सकता, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा तो देखो! कठिन।

अवशेष निरवशेषरूप से अंतर्मुख जिसका आकार है... स्वरूप। कुछ भी भेद, पर के विकल्परहित अकेला अन्तर्मुख में आनन्द में एकाकार है। ऐसा और सकल इन्द्रियों से अगोचर... सकल इन्द्रियों से अगम्य, अतीन्द्रिय ज्ञान के ध्यान में मस्त है। सकल इन्द्रियों से अगोचर निश्चय-परमशुक्लध्यान ही... आहाहा! पंचम काल के जीव को भी शुक्लध्यान की बात करते हैं। देखा? शुक्लध्यान ऐसा होता है। निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण है,... उसे निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण होता है। आहाहा! पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रोता को भी ऐसी स्थिति (कहते हैं)। भले शुक्लध्यान हो नहीं सकता। परन्तु शुक्लध्यान ऐसा होता है, ऐसा ध्यान हो सकता है। आहाहा! वह शुक्लध्यान ऐसा होता है, ऐसी ध्यान की दशा हो सकती है, ऐसी यहाँ श्रोता से बात करते हैं। आहाहा! बहुत उग्र वचन! दिगम्बर सन्तों की उग्र वाणी! एक-एक वाणी में... आहाहा! अन्दर उग्रपना भरा है। और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण... पहले शुक्लध्यान की बात की। पहले उत्कृष्ट बात की। पश्चात् और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान... अब धर्मध्यान लिया। पहला शुक्लध्यान लिया था। उसे ध्येय बनाया। आहाहा! शुक्लध्यान से केवलज्ञान पाना है, करना तो यह है। आहाहा! यह न बन सके तो निश्चय उत्तमार्थ-प्रतिक्रमण-निश्चय उत्तमपदार्थ का प्रतिक्रमण स्वात्माश्रित... अपने आत्मा के ही आधार से, ऐसे निश्चयधर्मध्यान... लो। देखो! यह निश्चयधर्मध्यान। सवेरे शुद्धपरिणाम आया था न? शुद्धपरिणामरूपी धर्मध्यान। नहीं आया था? आहाहा! बन्ध का विचार किया करे, बन्ध के प्रकार का विचार किया करे, वह सब शुभधर्मध्यान है। शुभधर्मध्यान अर्थात् व्यवहारधर्मध्यान अर्थात् बन्ध का कारण। वह बन्ध का कारण है। शुभ है, वह पुण्य है और

बन्ध का कारण है। यह निश्चयधर्मध्यान निर्जरा का कारण है। आहाहा! धर्मध्यान तो उसे कहा और इसे भी कहा।

यह तो स्वात्माश्रित... निश्चय स्वात्माश्रित। आहाहा! पूर्ण आत्मस्वरूप का आश्रय। ऐसे निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानमय होने से... आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में सब विकल्प छोड़कर निर्विकल्प ध्यान में मस्त रहे। वे दोनों शुक्लध्यान और धर्मध्यान होने से, वे अमृतकुम्भस्वरूप है;... वह अमृतकुम्भस्वरूप है – अमृत का घड़ा है। आहाहा! पर्याय में अमृत बरसता है। आहाहा! अमृत का सागर पर्याय में उफन जाता है। उसका ध्यान करने से, पर के सब विकल्प छोड़ने से, त्रिकाली स्वआश्रय लेने से वहाँ अमृत का कुम्भ उछलता है। पर्याय में वह अमृतकुम्भ हुआ है। वस्तु तो अमृतकुम्भ है परन्तु पर्याय में अमृतकुम्भ हुआ है। आहाहा! ऐसी बातें।

छह काय की दया पालना, व्रत पालना, ऐसा तो कुछ आया नहीं इसमें। यह आया न (कि) ये सब विभाव-विकल्प छोड़ना। आहाहा! कठिन काम है, भाई! अनजाने को अकेला पकड़ा हो, उसे कठिन लगता है कि यह क्या कहते हैं? अभी तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं होती, आत्मा किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती। दया, दान के विकल्प हैं, वह पुण्य है, राग है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! जितने व्यवहार प्रतिक्रमण कहलाते हैं, वह तो मात्र राग है। शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करते हैं, शाम-सवेरे सामायिक करते हैं, बस हो गया। बाईस-तेईस घण्टे अन्यत्र व्यतीत करते हैं। आहाहा!

एक को पूछने में आया कि तुम्हारे पास इतने सब पैसे हैं और तुम धर्मध्यान तो कुछ करते नहीं। कहे, एक घण्टे भक्ति करते हैं, भगवान की पूजा करते हैं। करते क्यों नहीं हैं? अब एक घण्टे जहाँ शुभभाव करे, उसे धर्मध्यान माने... आहाहा! वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं होती। वस्तु क्या है? आत्मा किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती। यह पूजा-भक्ति में घण्टाभर व्यतीत करे तो मानो हो गया धर्म। हम धर्म करते हैं न, एक घण्टे तो धर्म करते हैं न। आहाहा! एक घण्टे पाप करते हो। शुभभाव में एकत्वबुद्धि, कर्ताबुद्धि है। आहाहा! ऐसा काम कठिन पड़ता है।

अमृतकुम्भस्वरूप है; व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है। व्यवहारप्रतिक्रमण ज़हर है। आहाहा! जो शुभविकल्प उठे कि

यह मिच्छामि दुक्कडं, यह इच्छामि पडिक्कमणां यह सब विकल्प है, वह व्यवहार ज़हर है। अन्दर निर्विल्पता प्रगटे, वह अमृत है। आहाहा! निर्विकारी स्वरूप ही ऐसा अमृत का भण्डार, उसमें एकाग्र होने से अमृत का अनुभव होता है, यह निश्चयप्रतिक्रमण है। और राग का अनुभव होता है, वह ज़हर का प्रतिक्रमण है। ज़हर, ज़हररूप है। आहाहा! कठिन पड़े न?

व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण... शब्द ऐसा लिया है व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण... आरोप है न? निश्चय है, वहाँ व्यवहार का आरोप दिया। निश्चय उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वहाँ व्यवहार है, वह व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय... व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है। उसे ज़हर कहा गया है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९५, श्लोक-१२३, गाथा-९३, सोमवार, मागशर शुक्ल १५, दिनांक ०३-१२-१९७९

नियमसार, गाथार्थ है न? समयसार की गाथा।

[गाथार्थ :] प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गहाँ और शुद्धि—इन आठ प्रकार का विषकुम्भ है। क्या कहते हैं? किये हुए दोषों का निराकरण करना। दोष हुए हों, उनका निराकरण (करना), वह शुभभाव है और शुभभाव, वह जहर का घड़ा है। कठिन बात है। व्यवहारकारण कहा न यह? कथनमात्र है, कहनेमात्र है। वस्तु-राग है। व्यवहार प्रतिक्रमण, वह तो राग है। कथनमात्र व्यवहार कहने में आता है। वास्तविक कारण, मोक्ष का वास्तविक कारण तो त्रिकाल कारणपरमात्मा वस्तु जो कारणद्रव्य त्रिकाल, वह कारण और उसमें से होनेवाली निर्मल पर्याय, वह मोक्ष का कारण है और यह व्यवहार तो कथनमात्र, जाननेयोग्य ऐसा भाव आता है; इसलिए यह जाननेमात्र, कहनेमात्र है। प्रतिक्रमण=किये हुए दोषों का निराकरण करना। शुभभाव है, वह जहर है, जहर का घड़ा है। अर..र..! पूरी दुनिया पाप में पड़ी है, उसे इस पुण्य को जहर कहना!

मुमुक्षु : ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि.. अनादि से भूला है। भटकते-भटकते अनादि से चौरासी के अवतार में अनन्त-अनन्त भव किये, परन्तु इसने व्यवहार का पक्ष नहीं छोड़ा। व्यवहार है, वह भी कारण है। यहाँ कथनमात्र कारण कहा; वास्तविक कारण नहीं। आहाहा! वास्तविक कारण तो त्रिकाली आत्मा कारणपरमात्मा, वह वास्तविक कारण मोक्ष का और उसके कारण से हुई मोक्ष के मार्ग की दशा, वह मोक्षमार्ग की निर्मल वीतरागी दशा, वह मोक्ष का कारण है। वह वास्तविक कारण है। आहाहा!

द्रव्य कारण। शक्ति में तो ऐसा लिया है न? द्रव्य जो वस्तु है, उसकी शक्ति कारण है। जीवत्वशक्ति, वह जीवद्रव्य का कारण है। यह व्यवहार कहीं जीवद्रव्य का कारण नहीं है। आहाहा! क्या कहा? सैंतालीस शक्ति का जहाँ वर्णन किया, वहाँ जीवत्वशक्ति जीवद्रव्य का कारण है - ऐसा कहा और वे शक्तियाँ तथा द्रव्य, परद्रव्य के लिए कारण नहीं है ऐसा कहा। परद्रव्य के लिए कारण नहीं है। अकारणकार्यशक्ति आयी न? आहाहा! परद्रव्य के लिए कारण नहीं, स्वद्रव्य के लिए कारण शक्तियाँ हैं। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि वह सब कारण है और मोक्ष का कारण, उस कारणपरमात्मा का आश्रय लेकर जो वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वह पर्याय मोक्ष का कारण है। ऐसा लम्बा-लम्बा याद रखे। पाप के धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। शान्तिभाई! पूरे दिन पाप का धन्धा। यह किया... यह किया... यह किया... अब उसमें ऐसी बात, वीतराग की बात कान में सुनना मुश्किल पड़े। वह समझे कब और उसके भव का अन्त कब आवे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रतिक्रमण जो व्यवहार है, उसे हम जहर का घड़ा कहते हैं। जहर है। आहाहा! व्यवहार को कथनमात्र कारण कहते हैं। वास्तविक कारण है नहीं। फिर दूसरा। **प्रतिसरण= सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा**। समकित आदि की प्रेरणा करना, वह भी विकल्प है, वह भी जहर है। विकल्प उठता है, समकित की प्रेरणा की वृत्ति उठे, वह विकल्प है, वह भी जहर है। आहाहा! **परिहार=मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण**। मिथ्याश्रद्धा आदि का त्याग, उसमें भी शुभभाव है। शुभभाव है, वह भी जहर का घड़ा है, विषकुम्भ है। कठिन काम, बापू! दुनिया को मिलना मुश्किल। पूरी

दुनिया व्यवहार में पड़ी है। व्यवहार में पड़ी, गले डूब जहर में डूब गयी है। आहाहा! उसे ऐसी बातें (कहना)। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा का यह फरमान है। गुलाबचन्दभाई!

धारणा=पंच नमस्कारादि... पाँच नमस्कार धारण करना, वह शुभभाव है, जहर है। आहाहा! जगत को कठिन पड़ता है। अभी पाप के कारण निवृत्त नहीं होता, उसमें फिर शुभभाव आवे। एक घड़ी आवे, एक घण्टे पूजा, भक्ति करने आवे, देव-दर्शन करने आवे, उसमें एक शुभभाव आवे, तो यह कहते हैं कि वह जहर है; वह धर्म नहीं। उस शुभभाव से भिन्न अन्दर आत्मा का आनन्द का अनुभव करे, उसका नाम धर्म है। आहाहा! ऐसी बात है। दुनिया को जँचना कठिन पड़े। बाहर की हूफ में, बाहर की प्रवृत्ति की हूफ में, उसमें फिर पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हुए हों, पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हुए हों, करोड़-दो करोड़ हो गये तो आँख फिर जायें। आहाहा! यह कहा न परसों? बीस लाख की एक मोटर। बीस लाख की एक मोटर। इसलिए उसे ऐसा मानो... आहाहा! मानो हम क्या बादशाह!

मुमुक्षु : ऐसी मोटर में बैठकर लड़का विवाह करने जाए तो कितना सुख हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में, अकेला पाप है। यह बीस लाख की मोटर, मुम्बई स्टेशन पर छोड़ने आयी थी। कितने पैसे की है, कहा यह? - कि बीस लाख की। परदेश में से लाये हैं। पचास लाख की एक मोटर है। एक मोटर पचास लाख की। यह धूल इकट्ठी करके मर जानेवाला है बेचारा। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), शुभभाव, वह सब पाप है परन्तु शुभभाव यहाँ करे... आहाहा! है ?

पंच नमस्कारादि मन्त्र,... जपे। **प्रतिभा...** को वन्दन करे। **आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना।** सब शुभभाव जहर है। कठिन बात, प्रभु! क्या हो? बेचारे साधारण लोगों को तो सुनने को मिला नहीं। आहाहा! **निवृत्ति=बाह्य विषयकषायादि इच्छा में वर्तते हुए चित्त को मोड़ना।** विषय-कषाय में जाते हुए चित्त को वापस मोड़ना, वह भी एक शुभभाव है, वह भी राग और जहर है। शुभभाव है न? आहाहा! वह धर्म नहीं है। धर्म तो शुभ और अशुभभाव से भिन्न पड़कर चैतन्य का दर्शन करे, चैतन्य की दृष्टि निर्मल ज्ञान करे, उसका नाम धर्म है। जैनधर्म वीतराग परमेश्वर का जिनेश्वर का

कथन यह है। इसे कितने ही बेचारों ने तो सुना भी नहीं होगा। यह किस प्रकार का धर्म होगा? आहाहा!

निन्दा=आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना, वह भी शुभभाव है। वह व्यवहारकारण निमित्त कथनमात्र व्यवहार है, वह धर्म नहीं है। जहर है। आहाहा! सुना जाए नहीं, जगत को कठिन पड़े, क्या हो? संसार में धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन स्त्री, पुत्र और इज्जत-कीर्ति का आग्रह, पैसा खर्च किया हो न और यह किया, लिया और दिया और यह किया... ओहोहो! वहाँ तो मानो हम कहाँ चढ़ गये बड़े। उसमें करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हो तो हो गया। यह कहा न दो लड़के नहीं? अपने पूनमचन्द और न्यालचन्द। आज लड़के का विवाह है न? पाँच करोड़ रुपये। बीस लाख की मोटर लाया है, उसमें बैठकर विवाह करने जाएगा। आज का विवाह है न? दो भाई के पास। एक के पास पाँच करोड़, दूसरे भाई के पास पाँच करोड़। एक को एक लड़की ही है, लड़का नहीं। दर्शन करने आये थे। परन्तु सब हूफ... हूफ... पैसे की ऐसी हूफ मानो... आहाहा! पैसा अर्थात् क्या? धूल। मिट्टी की धूल है। उसकी हूफ में...

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मसाक्षी से; पाप लगे हों, उनकी निन्दा करना, वह भी शुभभाव है और **गुरुसाक्षी से दोषों का प्रगट करना।** शुभभाव है और दोष हो जाने पर **प्रायश्चित्त...** लेना, वह भी शुभभाव है। आहाहा! यह व्यवहार है, वह जहर है। वीतराग परमात्मा, वीतराग देव त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव महाविदेह में सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, वहाँ से यह बात आयी है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा कहते थे, वह बात कुन्दकुन्दाचार्यदेव (ने) आकर यहाँ रखी है। आहाहा! यशपालजी! ऐसी कठिन बात पड़े। क्या हो? बस, उड़ जाए व्यवहार, तब व्यवहार नहीं? खोटा? व्यवहार खोटा क्या, लाख बार खोटा। ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया है। वह व्यवहार अभी कहाँ तेरे पास है? ऐसा व्यवहार तो अनन्त बार किया है कि चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे और नग्न मुनि होकर दिगम्बर अनन्त बार हुआ, परन्तु सम्यग्दर्शन आत्मज्ञान नहीं। यह क्रियाकाण्ड करके उसमें धर्म माना। आहाहा! ये आठ बोल कहे। **आठ प्रकार का विषकुम्भ है। है न?**

अब अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं।

यत्र प्रतिक्रमण-मेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥

श्लोकाथ (अरे, भाई!) जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है,... जहाँ प्रतिक्रमण के शुभभाव को जहर कहा, वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँ से होगा? वहाँ तेरे व्यापार और धन्धे के परिणाम -अकेला पाप हो, वह अमृत कहाँ से होगा? वह तो अकेला महा जहर है। आहाहा! प्रतिक्रमण के परिणाम को जहर कहा तो तेरा व्यापार-धन्धा, स्त्री, पुत्र को प्रसन्न रखना, पाँच-पच्चीस लाख कमाये हो, वहाँ ओहोहो! मानो क्या किया और हम क्या आगे बढ़ गये! उसमें प्रसन्न हो, वह तो अकेला जहर है। जहर का प्याला पीता है। आहाहा! ऐसा काम है।

जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है,... जहाँ, प्रतिक्रमण शुभ व्यवहार जो है, उसे जहर कहा, वहाँ अप्रतिक्रमण... संसार के पाप के परिणाम अमृत कहाँ से होगा? संसार के कमाने के, विषयभोग के, धन्धे के पैसे प्राप्त करना, ब्याज उगाहना, पूरे दिन धन्धा करना, यह दिया, यह लिया, यह किया, यह किया। मानों पागल, मानो देख लो पागल। शान्तिभाई! उसमें मुम्बई और कलकत्ता। ये दो देखे हैं न? तीनों में देखा है। दिल्ली, मुम्बई और कलकत्ता। आहाहा! मानो पागल देख लो, पागल जैसे। आहाहा!

बहुत वर्ष पहले पालेज में हमारी दुकान थी न, तो माल लेने गये थे। कैसा? 'कोलाबा' कोलाबा। देखने गये थे। इसे भी बहुत वर्ष हुए लगभग ७२ वर्ष हुए। ७२ वर्ष पहले की बात है। एक मारवाड़ी ऐसे... लिया.. दिया.. लिया... दिया...। ऐसे करता था। यह तो ७२ वर्ष पहले की बात है। दुकान का माल लेने गये थे। पालेज में दुकान है न? भरूच और बड़ोदरा के बीच पालेज है। अभी दुकान चलती है, बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। तब माल लेने गये थे। मानो पागल लगे। कहा, यह क्या करता है? मारवाड़ी। लिया.. दिया.. लिया... दिया...। किया करे। वह क्या कहलाता है? (क्या) कहा? कोलाबा। कोलाबा, फोन आवे न? लन्दन से फोन आवे, इसलिए

फिर सिर घुम जाए। आहाहा! यह क्या है? प्रभु! जहाँ जिसे भगवान ने प्रतिक्रमण करने के परिणाम को जहर कहा, वहाँ तेरे ऐसे अप्रतिक्रमण के पाप हैं, वह तो जहर, जहर और जहर है। आहाहा! दुनिया महिमा करे, पागल। पागल की महिमा करे, पागल को कहे कि अहो! इसके पास तो पचास लाख हुए, इसके पास करोड़ हुए, इसके पास दो करोड़ हुए।

यहाँ कहते हैं अमृत कहाँ से होगा? (अर्थात् नहीं हो सकता।) तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए... हम तो पुण्य को जहर कहकर ऊँचा चढ़ाते हैं। शुभ को पुण्य कहकर, जहर कहकर ऊँचे अन्तर आत्मा में जा, ऐसा कहते हैं, धर्म वहाँ है। अन्दर आत्मा में जा, वहाँ धर्म है—ऐसा हम कहते हैं, वहाँ तू ऐसे नीचे-नीचे क्यों उतर जाता है? शुभ छोड़कर फिर वहाँ अशुभ में कहाँ चला जाता है? आहाहा! ऐसा कहाँ है?

प्रमादी क्यों होते हैं? अप्रमादी होते हुए ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते? आहाहा! हमने प्रतिक्रमण आदि शुभभाव को जहर कहा, इससे उन्हें छोड़कर तू संसार के अशुभभाव में जाए, वह तो नीचे-नीचे अधो में उतरा। शुभभाव को छोड़कर अन्दर शुद्ध आत्मा में जा, तो वहाँ शान्ति है। ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु अन्दर वीतरागदेव ने देखा, जिनेश्वरदेव, जिन्होंने आत्मा देखा, वह अन्तर अमृत का सागर है। अमृत का समुद्र भगवान है। उसके सन्मुख तुझे देखना आया नहीं। उसके सन्मुख देखना आया नहीं, परन्तु तूने सुना नहीं। सुना, इतना सब बाहर का जहर का सुना है। आहाहा!

कहते हैं कि हम ऐसी ऊँची बात कहते हैं। प्रतिक्रमण आदि को जहर कहा, इसलिए उन्हें छोड़कर अशुभ में कहाँ जाता है? उन्हें छोड़कर अन्दर में जा न! शुद्ध आत्मा में जा न! आहाहा! चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है। परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। परमात्मस्वरूप न हो तो परमात्मा होगा कहाँ से? अरिहन्त हुए, वे कहाँ से हुए? वे कहीं बाहर से आते हैं? वह अन्दर में स्वरूप भरा है, उसमें से आते हैं। इसलिए कहते हैं कि जहाँ है, वहाँ जा न! हमने राग को जहर कहा, इसलिए नीचे उतरकर अशुभराग में जाता है, यह कहीं ठीक कहलायेगा? आहाहा! कठिन बात है।

श्लोक-१२३

और (इसी १२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

(मंदाक्रांता)

आत्मध्याना-दपर-मखिलं घोरसन्सारमूलं,
ध्यानध्येयप्रमुखसुतपः कल्पनामात्ररम्यम् ।
बुद्ध्वा धीमान् सहज-परमानन्द-पीयूषपूरे,
निर्मज्जन्तं सहज-परमात्मान-मेकं प्रपेदे ॥१२३॥

(हरिगीतिका)

निज आत्मा के ध्यान बिन सब घोर भव कारण अहो ।
ये ध्यान-ध्येयादिक सुतप भी कल्पना में रम्य है ॥
यह जानकर धीमान जन इस एक ही परमात्म का ।
पीयूष परमानन्द में ही डूबकर आश्रय करें ॥१२३॥

[श्लोकार्थ :] आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल है, (और) ध्यान-ध्येयादिक सुतप (अर्थात् ध्यान, ध्येय आदि के विकल्पवाला शुभ तप भी) कल्पनामात्र रम्य है;—ऐसा जानकर धीमान (बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का आश्रय करते हैं ॥१२३॥

श्लोक-१२३ पर प्रवचन

और (इसी १२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

वह समयसार का श्लोक था ।

आत्मध्याना-दपर-मखिलं घोरसन्सारमूलं,
ध्यानध्येयप्रमुखसुतपः कल्पनामात्ररम्यम् ।

बुद्ध्वा धीमान् सहज-परमानन्द-पीयूषपूरे,
निर्मज्जन्तं सहज-परमात्मान-मेकं प्रपेदे ॥१२३॥

आहाहा! यह तो शान्ति से सुने तब हो। वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने तो बाहर से जरा एक घण्टे पूजा की, भक्ति की, दान किया, कहीं पाँच-पच्चीस हजार दान दिया (और मान लिया कि) हो गया धर्म। मान करके बैठे। अरे! तेरे करोड़ दे न! वहाँ कहाँ धर्म था? वह शुभभाव होवे तो पुण्य होगा। यह पुण्य है, वह जहर है। आहाहा! भभूतमल ने आठ लाख खर्च किये। बैंगलोर। आठ लाख का मन्दिर बनाया। वह श्वेताम्बर है, बनाया दिगम्बर मन्दिर। चार लाख स्थानकवासी मारवाड़ी ने दिये। जुगराजजी। है न? महावीर मार्केट, महावीर मार्केट है न? अभी गुजर गये हैं। लड़का आया था। यहाँ सब आते थे। वे स्थानकवासी थे, उनके पास एक करोड़ रुपये हैं, इनके पास दो करोड़ रुपये हैं। दो करोड़वाले ने आठ लाख दिये, एक करोड़वाले ने चार लाख दिये और बारह लाख का मन्दिर बनाया। अभी हम गये थे, तब तीन लाख बढ़ाये। पन्द्रह लाख का बनाया। बैंगलोर। आहाहा! परन्तु भाई! यह सब तेरे पन्द्रह लाख, कहे कि चाहे जो कहे, वह धर्म नहीं है, शुभभाव है, पुण्य है। स्पष्ट बात है। एक रकम से आठ लाख दिये। दो करोड़ की पूँजी है। स्टील का धन्धा है।

मुमुक्षु : कमाये कितने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह फिर कमाये चालीस लाख। हमारे में (कार्यक्रम में) रुक गये न। हम वहाँ थे, तब मन्दिर की बड़ी धूमधाम की, उसमें रुके, तब दो करोड़ का स्टील पड़ा हुआ था, उसमें आठ लाख खर्च किये, चालीस लाख आये। स्टील में भाव बढ़ गये, तो चालीस लाख आये। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण आते हैं। उसका कुछ नहीं।

मुमुक्षु : आपके चरण हों, वहाँ रुपये.... रुपये हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें। पूर्व के पुण्य के बिना कुछ नहीं आता। पुण्य से आता है परन्तु आता है, वह पाप है। परिग्रह, वह पाप है। करोड़ और दो करोड़ रुपये हैं, वे स्वयं पाप हैं। क्योंकि भगवान ने परिग्रह को पाप कहा है। अभ्यन्तर परिग्रह और बाह्य परिग्रह को पाप कहा है। आवे पुण्य से, परन्तु परिग्रह स्वयं पाप है और उसका करनेवाला पापी है। उसे लोग पुण्यशाली कहते हैं। दुनिया पागल है। आहाहा! वह तो आया नहीं ?

अभी भभूतमल आया था न ? यहाँ सवा लाख दिये न । यहाँ मकान बनाया है, उसमें सवा लाख दिये । अभी सवा लाख दूसरे दिये । ऐसे पैसे देता है । उदार व्यक्ति है परन्तु शुभभाव है, कहा, भाई ! उसमें से कुछ धर्म हो जाए और कल्याण हो जाए और जन्म-मरण मिट जाए... तेरे आठ लाख और दस लाख धूल में, इस बात में कोई दम नहीं है । आहाहा !

मुमुक्षु : पैसा देना या नहीं देना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दे कौन सकता है ? इसे भाव होता है । सूक्ष्म बात है, भाई ! पैसा तो जड़ है, अजीव-मिट्टी-धूल है । वह तो पुद्गल है । वह पुद्गल जाना-आना, वह तो उसके कारण से आता-जाता है । आत्मा ऐसा मानता है कि मैं देता हूँ, वह तो जड़ का स्वामी होता है । राग की मन्दता का भाव करे, पैसा जाना हो तो जाए । आहाहा ! बात-बात में अन्तर पड़ता है । दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है । आहाहा ! प्रयोग करने में भी पैसा मेरा है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है, क्योंकि वह तो जड़ है, पैसा मिट्टी-धूल है । आहाहा ! आत्मा चैतन्य अरूपी अन्दर भिन्न है । यह तो शरीर मिट्टी-धूल है । यह कहाँ था । यह तो मिट्टी है । यह मेरा है, ऐसा माने वह मिथ्यात्व है । आहाहा ! कठिन काम है ।

यहाँ कहते हैं **आत्मध्यान के अतिरिक्त... है.. ?** आहाहा ! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप है । आहाहा ! जैसे नारियल में गोला भिन्न है; वैसे इस शरीर में और राग से आत्मा अन्दर अत्यन्त भिन्न है । आहाहा ! ऐसे आत्मा का ध्यान, इसके अतिरिक्त **अन्य सब घोर संसार का मूल है,...** आहाहा !

मुमुक्षु : आचार्य बहुत कठोर हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है वह है । आचार्य को जगत की कहाँ पड़ी है । जगत माने, न माने, वह उसके घर में रहा । अनादिकाल से जगत स्वच्छन्दता से चलता है । इसने-जगत ने सत्य माना कब है ? एक तो संसार से निवृत्त नहीं होता । पूरे दिन धन्धा पाप, निवृत्त होवे तो छह-सात घण्टे नींद में और छह-सात घण्टे स्त्री-पुत्र को प्रसन्न करना, एक घण्टे कदाचित् सुनने को मिले तो ऐसा सुने—पूजा करो, भक्ति करो तो धर्म होगा । यह मिथ्यात्व है । मिथ्यात्व का पोषण है । आहाहा ! बहुत कठिन काम, बापू ! यहाँ कहते हैं **आत्मध्यान के अतिरिक्त... है ?** आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु है, उसका ध्येय बनाकर ध्यान (होता है)...

आहाहा! उसके अतिरिक्त अन्य सब... यह शुभ और अशुभभाव दोनों घोर संसार का मूल है,... आहाहा! इसमें है या नहीं ?

मुमुक्षु : मुनिराज तो ऐसा ही कहे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जैसा हो, वैसा कहे न ? केवली परमात्मा ने कहा, वह मुनि कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजमान हैं। उनके मुख में से निकला है, उसे यह कहते हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य... अर र र! कठिन बात। आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप, वह राग के दया, दान के विकल्प से, राग से भी अन्दर भिन्न है, ऐसे आत्मा का ध्यान, उस आत्मा का ज्ञान, उसके अतिरिक्त जितना शुभ और अशुभभाव करे, वह घोर संसार का मूल है,... आहाहा! शुभ-अशुभ दोनों को घोर संसार का मूल कहा। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो या अशुभ हो, दोनों घोर संसार है। आहाहा! है ? आज कठोर बात आयी। बात तो यह है 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' दुनिया को मिले, न मिले, इससे कहीं दूसरा बदल जाए ऐसा है ? आहाहा!

आत्मध्यान के अतिरिक्त... आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप अन्दर ज्ञानस्वरूप आत्मा, आनन्दस्वरूप आत्मा है। उसका ध्यान, उसे ध्येय बनाकर ध्यान। इसके अतिरिक्त... जितने शुभ-अशुभभाव सब घोर संसार का मूल है,... चार गति भटकने की मिले, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। है ? इसमें है या नहीं ? आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य... एक ओर आत्मध्यान तथा एक ओर दूसरा सब। आहाहा! शास्त्र श्रवण, शास्त्र कथन, वाँचन, यह सब शुभभाव है। यह शुभभाव और संसार का पापभाव, दुकान और घर का भाव अकेला पाप। ये दोनों घोर संसार का मूल है,... आहाहा!

कहाँ जाएगा यह ? चौरासी लाख योनि में कहाँ अवतरित होगा ? आहाहा! आत्मा तो अनादि-अनन्त है, नित्य है। शरीर छूट जाएगा। शरीर वह तो थोड़े काल रहनेवाला है। पचास-साठ निकल गये, उसे कुछ ५०-६० (वर्ष) रहनेवाला नहीं है। थोड़ा समय है, यह छूटकर जाएगा कहीं। धर्म है नहीं, पुण्य की खबर नहीं। पुण्य किसे कहना और कैसे हो, इसका समय निकालता नहीं। एक घण्टे का समय निकाले तो भक्ति करे, एक घण्टे

पूजा करे तो हो गया, जाओ धर्म हो गया। यह किसी ने पूछा था। इन भाई को... लोग... न्यालचन्द के पास चार करोड़ रुपये हैं। लड़का नहीं है। चार करोड़-पाँच करोड़ रुपये हैं। किसी ने कहा। ऐसा सुना। कोई कहता था। किसी ने कहा कि कुछ करो। करते हैं न। भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। सामने मूर्ति-फोटो रखकर एक घण्टे भक्ति और पूजा करे, यह किया वह हमने किया। आहाहा! वहाँ कहा था, किसी ने पूछा था। किसी ने पूछा और फिर कहा कि हम धर्म करते हैं। भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। यह धर्म, लो। सवेरे फोटो रखे, प्रतिमा तो कहाँ थी वहाँ उसे। फोटो रखे और पूजा करे, भक्ति करे, एक घण्टे गाये। रिकार्डिंग अब उतारे। रिकार्डिंग ले जाएँगे परन्तु उसमें वस्तु क्या है, इसकी समझ करना, इसका निर्णय करना, उसके लिए समय निकालना। पूरे दिन पाप के लिए समय निकालता है। आहाहा! गजब कठिन काम। वापस कोई लड़का नहीं। एक ही लड़की विवाह कर दिया। चार करोड़-पाँच करोड़ रुपये होंगे। बड़े बाग-बगीचे... बाग... बाग। वहाँ अभी मुम्बई आये थे। आहाहा! किसी ने पूछा तो ऐसा जवाब दिया। भगवान का फोटो रखते हैं न। फोटो रखते हैं, उसकी पूजा करते हैं और गाते हैं। गायन-वायन गाते हैं, एक घण्टा व्यतीत करते हैं। लो, हो गया धर्म। कहाँ बापू! वह तो शुभभाव है, जहर है, घोर संसार का मूल है।

ध्यान-ध्येयादिक सुतप (अर्थात् ध्यान, ध्येय आदि के विकल्पवाला शुभ तप)... शुभ तप। यह ध्यान करता हूँ, ध्येय और यह करता हूँ, ऐसा जो विकल्प है वह शुभतप कल्पनामात्र रम्य है... अर र र! अन्दर ध्यान में भी कल्पनामात्र कल्पनाएँ करे कि यह आत्मा यह है, ऐसा है। आत्मा ध्यान करनेयोग्य है और मैं ध्यान करता हूँ। यह कल्पनामात्र, यह शुभ तप कहलाता है। शुभ तप ध्यान में (होता है) वह भी कल्पनामात्र रम्य है... आहाहा! कहाँ जाना इसमें? बाबा हो जाए तो हो। बाबा ही है। कौन, कब वस्तु तेरी है कहाँ? शरीर तेरा नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। यह तो श्मशान की राख होगी। यह तो श्मशान की राख है। तेरा तत्त्व अन्दर आत्मा अत्यन्त भिन्न चीज़ है। उसे लेना और देना, आत्मा तो शरीर को स्पर्श भी नहीं करता। शरीर आत्मा को अन्दर स्पर्श नहीं करता। अरे रे! किसे खबर पड़े? इसमें ऐसे ध्यान आदि के विकल्प कहते हैं। ध्यान के विकल्प भी वह सुतप भी एक... आहाहा! कल्पनामात्र रम्य है... कल्पनामात्र अच्छा कहलाये कि

ध्यान में कल्पना की या ऐसा किया, ऐसा ध्यान किया, ऐसा ध्यान और ऐसा आत्मा। ऐसी कल्पनायें की थी। आहाहा! गजब बात है।

क्रियाकाण्ड को तो निकाल दिया परन्तु अब ध्यान में कल्पना में कल्पना लगायी कि ऐसा ध्यान... ऐसा ध्यान... ऐसा ध्यान... यह ध्यान... ऐसी कल्पना में रुका, वह कल्पनामात्र तप है। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिए यह बनाया है। कुन्दकुन्द आचार्य दिगम्बर मुनि कहते हैं कि मेरे लिए यह बनाया है। तुम्हें समझना हो तो समझो, कहते हैं। आहाहा! उन्हें समाज की पड़ी नहीं कि समाज मानेगा या नहीं? समाज उसके घर में रहा। वस्तु यह है। मानना होवे वह माने। आहाहा!

ध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल है,... यह एक ओर रखा। अब इस ध्यान में आया। ध्यान और ध्येय और ऐसा सुतप। ध्यान यह और ध्येय यह, ऐसा जो विकल्प। ध्यान की पर्याय और ध्येय, वह द्रव्य का, ऐसा जो विकल्प वह सुतप। आहाहा! वह (विकल्पवाला शुभ तप भी) कल्पनामात्र रम्य है;... आहाहा! गजब बात है न? उन्हें दुनिया की कहाँ पड़ी है। आहाहा! आत्मा में ध्यान के अतिरिक्त... अभी आत्मा कौन, इसकी भी खबर नहीं होती। अन्दर आत्मा क्या चीज़ है? आत्मा तो पुण्य, पाप, दया, दान के रागरहित भिन्न अन्दर तत्त्व है। वह तो शरीर से अत्यन्त भिन्न तत्त्व है। अब उसका ध्यानादि कहते हैं, उसके अतिरिक्त सब घोर संसार है और ध्यान में भी ध्यान की कल्पना में रुका कि यह ध्येय है और यह ध्यान है और ध्यान करनेयोग्य है। ध्यान में न जाकर ध्यान की कल्पना में रुका... आहाहा! वह कल्पनामात्र रम्य है;... कल्पनामात्र ठीक कहने में आता है। आहाहा! ठेठ ले गये। आहाहा! कठिन काम है, बापू!

वीतराग जिनेश्वरदेव का मार्ग, प्रभु! बहुत सूक्ष्म है। अभी तो सब गड़बड़ चली है। बाहर से सब मनवाकर जिन्दगी चली जाती है। प्ररूपणा भी ऐसी ही करते हैं। यह करो, यह करो, व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो, जाओ (हो गया) धर्म। आहाहा! यहाँ तो ध्यान और ध्येय में भी रुका कल्पना में (तो) अन्दर ध्यान जमा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप है, उसमें एकाग्र नहीं हो सका और उसकी कल्पना में रुका। आहाहा! वह सुतप भी कल्पना रम्य है। कल्पनामात्र अच्छा कहने में आता है। हैं ?

ऐसा जानकर... ऐसा जानकर... आहाहा! धीमान (बुद्धिमान पुरुष)... बुद्धिमान उसे कहते हैं... आहाहा! जो आत्मा में अन्दर झुके, उसे बुद्धिमान कहते हैं। आहाहा! बाकी सब कुबुद्धि है। संसार की चतुराई और व्यापार की कुशलता और वकालात का धन्धा, डॉक्टर का बड़ा-बड़ा धन्धा। महीने में पाँच-पाँच, दस-दस हजार कमावे। बेचारे दुःखी हैं। आहाहा! ऐसा जानकर धीमान (बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए... आहाहा! स्वाभाविक परमानन्दरूपी पीयूष का अमृत। स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृत आत्मा। अन्दर सहज परमानन्दरूपी अमृत भरा है। आत्मा में अतीन्द्रिय अमृत भरा है। आहाहा! वह अनन्त शक्तियों का सागर है, ऐसा जो भगवान आत्मा, वह सहज परमानन्दरूपी पीयूष... अर्थात् अमृत। उसके पूर में डूबते हुए... अन्दर एकाग्र हुआ। आहाहा! आनन्द की धारा बहती है। आत्मा आनन्दस्वरूप है - अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में डूबते हुए, अन्दर जाते हुए... आहाहा! (-निमग्न होते हुए)... डूबते का अर्थ किया।

सहज परमानन्दरूपी पीयूष... अमृत के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का एक का आश्रय करते हैं। ऐसे सहज परमात्मा का एक का... भाषा देखो! ध्यान और ध्येय की कल्पना भी नहीं। शुभभाव तो नहीं... आहाहा! अशुभभाव तो नहीं परन्तु ध्यान और ध्येय की कल्पना भी नहीं। आहाहा! सहज परमात्मा का एक का... एक का आश्रय करते हैं। वस्तु सहजात्मस्वरूप परमात्मा, निजानन्द प्रभु का-एक का आश्रय करे, उसे धर्म होता है। आहाहा! एक का आश्रय करते हैं। भेद का भी नहीं। गुण-गुणी भेद का नहीं। शुभराग, अशुभराग की तो बात ही क्या करना? आहाहा! ध्यान-ध्येय की कल्पना भी नहीं। एक अमृत से भरपूर भगवान आत्मा अन्दर, उसमें डुबकी मारे अर्थात् एकाग्र होते हैं। आहाहा! वह एक ही आश्रय करने के योग्य है। बात तो बहुत अच्छी आयी है। टोच है, टोच। आहाहा!

एक परमात्मा स्वयं। परमात्मा दूसरे नहीं। ऐसा कहा न? अपने को जानकर। धीमान (बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा एक का... स्वयं एक आत्मा, हों! परमात्मा अर्थात् भगवान वीतराग सर्वज्ञ नहीं। वीतराग सर्वज्ञ पर लक्ष्य जाने से राग होगा। आहाहा! एक

सहजात्म परमानन्दस्वरूप आत्मा, उसमें एक का आश्रय, एक का आश्रय। गुण-गुणीभेद भी नहीं। ओहोहो! कहाँ से कहाँ निकाल डाला। शुभाशुभभाव घोर संसार, ध्यान-ध्येय की कल्पनामात्र रम्य, सुतप रम्य... आहाहा! उसे छोड़कर अकेला अन्दर सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का एक का आश्रय करते हैं। उन्हें धर्म होकर मुक्ति का कारण होता है। उन्हें धर्म होता है। आहाहा! ऐसा कठिन है। कहाँ तक निकाल डाला। शुभभाव तो निकाल डाला। जहर। ध्यान, ध्येय और ध्याता की कल्पना रम्य, वह नहीं, उसे छोड़ दे। आहाहा!

अकेला सहज परमात्मा अमृत से भरपूर एक का आश्रय करे। गुण-गुणी भेद का भी नहीं, पर्याय का भी नहीं। एक गुणी का आश्रय करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म है। ऐसा धर्म वीतराग का है। आहाहा! है या नहीं? यह यहाँ का सूत्र है? यह कुछ सोनगढ़ का नहीं है। भगवान का कहा हुआ, मुनिराज ने बनाया हुआ है। आहाहा!

एक स्वद्रव्य, जिसमें अकेला अमृत और आनन्द भरा है। एक आया था। जिसका आनन्द एक लक्षण है, ऐसा आया था। आनन्द एक लक्षण है। अतीन्द्रिय आनन्द एक जिसका लक्षण है। ऐसे आत्मा को अनुभव करे, उसका नाम धर्म है। वीतरागमार्ग में उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! बात बहुत आगे गयी। यहाँ तो अभी यह व्यवहार करो तो होगा और यह व्यवहार करो तो होगा और यह करो तो होगा। व्यवहार करना चाहिए, करना चाहिए। भक्ति करने से होगा, परमात्मा की पूजा करने से होगा। आहाहा! साधु को आहार-पानी देने से होगा। इन सब शुभभावों को तो यहाँ घोर संसार का मूल कहा है। ध्यान में अन्दर आया तो कल्पना में खड़ा रहा तो भी कहते हैं कि यह नहीं। आहाहा! अकेला परमानन्दस्वरूप आत्मा है, एक का आश्रय करे, उसे धर्म होता है। यह ९२ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-९३

ज्ञाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं ।
 तम्हा दु ज्ञाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं ॥९३॥
 ध्याननिलीनः साधुः परित्यागं करोति सर्वदोषाणाम् ।
 तस्मात्तु ध्यान-मेव हि सर्वातिचारस्य प्रतिक्रमणम् ॥९३॥

अत्र ध्यानमेकमुपादेयमित्युक्तम् । कश्चित् परमजिनयोगीश्वरः साधुः अत्यासन्न-भव्यजीवः अध्यात्मभाषयोक्तस्वात्माश्रितनिश्चयधर्मध्याननिलीनः निर्भेदरूपेण स्थितः, अथवा सकलक्रियाकाण्डाडम्बरव्यवहारनयात्मकभेदकरणध्यानध्येयविकल्पनिर्मुक्त-निखिलकरणग्रामा-गोचरपरमतत्त्वशुद्धान्तस्तत्त्वविषयभेदकल्पना निरपेक्षनिश्चयशुक्ल-ध्यानस्वरूपे तिष्ठति च, स च निरवशेषेणान्तर्मुखतया प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तमोहरागद्वेषाणां परित्यागं करोति, तस्मात् स्वात्माश्रितनिश्चयधर्मशुक्लध्यानद्वितयमेव सर्वातिचाराणां प्रतिक्रमणमिति ।

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है ।
 अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है ॥९३॥

अन्वयार्थः—[ध्याननिलीनः] ध्यान में लीन [साधुः] साधु [सर्वदोषाणाम्] सर्व दोषों का [परित्यागं] परित्याग [करोति] करते हैं; [तस्मात् तु] इसलिए [ध्यानम् एव] ध्यान ही [हि] वास्तव में [सर्वातिचारस्य] सर्व अतिचार का [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण है ।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है ऐसा कहा है ।

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु—अति-आसन्नभव्य जीव, अध्यात्म भाषा में पूर्वोक्त स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित और व्यवहारनयात्मक भेदकरण तथा

१. भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना वह । [समस्त भेदकरण—ध्यान-ध्येय के विकल्प भी व्यवहारनयस्वरूप है ।]

ध्यानध्येय के विकल्प रहित, समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर ऐसा जो परम तत्त्व— शुद्ध अन्तःतत्त्व, तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से ^१निरपेक्ष निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप से स्थित रहता है, वह (साधु) निरवशेषरूप से अन्तर्मुख होने से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है; इसलिए (ऐसा सिद्ध हुआ कि) स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है।

गाथा-९३ पर प्रवचन

९३ गाथा।

झाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं ।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं ॥९३॥

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।

अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है ॥९३॥

यह ध्यान समस्त पाप को मिटाने का कारण है। पुण्य और पाप दोनों। आहाहा! ध्यान में भी वापस किसका ध्यान? आत्मा का। वापस वह आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है, ऐसी कल्पना करके वहाँ खड़ा रखे, वह ध्यान नहीं। आहाहा! अभी यह चला है। आत्मा के ध्यान की बातें (चली है) परन्तु वह ध्यान नहीं है। आहाहा!

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।

अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है ॥९३॥

ओहोहो! मुनिराज कहते हैं, मैंने तो मेरे लिए यह बनाया है। मेरी भावना के लिए (बनाया है)। आहाहा! दुनिया सुने, समझे और ले तो ले। बाकी मैंने तो मेरी भावना के लिए बनाया है। सत्य तो ऐसा है। सत्य जैसा वीतरागमार्ग में कहा, ऐसा सत्य यह है। इसके अतिरिक्त वीतरागमार्ग के नाम से, पुण्य के नाम से धर्म और व्रत करो, तप करो, अपवास

१. निरपेक्ष=उदासीन; निस्पृह; अपेक्षारहित। [निश्चयशुक्लध्यान शुद्ध अन्तःतत्त्व सम्बन्धी भेदों की कल्पना से भी निरपेक्ष है।]

करो, भक्ति करो, पूजा करो, यह धर्म मनवावे, वह जैनमार्ग नहीं है, वह जैनधर्म नहीं है। यह मोक्षपाहुड़ की ८३ गाथा में आ गया न? पूजा आदि जैनधर्म नहीं। पूजा, व्रत, वैयावृत्य आदि सब शुभभाव है। वह कोई जैनधर्म नहीं है। अष्टपाहुड़ में आ गया है।

ध्यान अकेला, आत्मा उससे रहित... उसका नाम यहाँ धर्मध्यान कहने में आता है। वह इस गाथा में विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९६, श्लोक-१२४, गाथा-९३, मंगलवार, मागशर कृष्ण १, दिनांक ०४-१२-१९७९

नियमसार, ९३ गाथा।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है। पहले बात कर गये हैं। आत्मा में जो कुछ शुभ और अशुभभाव होते हैं, वह घोर संसार का मूल है। आहाहा! संसारी को कहाँ जाना? हिन्दी है? हिन्दी है? हिन्दी में लेना है। क्या कहा? - कि यह आत्मा जो है, वह देह से तो भिन्न है, कर्म से भी भिन्न है, इसकी पर्याय में; द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है, परन्तु एक समय की पर्याय में भी कर्म और शरीर नहीं है। इसकी पर्याय में पुण्य और पाप के भाव अनादि से है। ये पुण्य और पाप के भाव घोर संसार का कारण है, क्योंकि यदि इनसे भव घटते हों तो शुभ-अशुभभाव अनन्त बार किये हैं। आहाहा! और इस शुभभाव (को) ज़हर कहा है। दो बातें आ गयी हैं। आहाहा! कठिन काम है, भाई! वीतराग का धर्म अपूर्व, अलौकिक, अचिन्त्य है।

आत्मा में शुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह भी घोर संसार का कारण है, क्योंकि वह स्वयं संसार है, आहाहा! और वह शुभभाव... आत्मा अमृतसागर है, अमृतस्वरूप प्रभु है, उससे (विरुद्ध) शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह ज़हर है। सूक्ष्म बात पड़े, भाई! देवीलालजी! यह तो कठिन पड़े। क्या हो? मार्ग कोई अलग प्रकार का है, भाई! अनन्त काल से परिभ्रमण करते... करते... करते अनन्त... अनन्त... अनन्त भव किये हैं। इसकी सत्ता का - अस्तित्व का इसने विचार कहाँ किया है? कि

अभी तक मैं रहा कहाँ? मैं एक तत्त्व हूँ। अस्ति है, सत्ता है, अस्तिवाला पदार्थ है, तो अस्तिवाला रहा कहाँ? आहाहा! यह चौरासी की योनि में शुभ-अशुभभाव से रहा। शुभ-अशुभभाव, वह घोर संसार है। आहाहा! और शुभभाव; इस आत्मा अमृतस्वरूप से विरुद्ध स्वरूप - जहरस्वरूप है। कठिन पड़े, भाई! व्यवहार और बाह्य की क्रियाकाण्ड के रसिक और आग्रही; व्यवहार करते-करते धर्म होगा, धीरे-धीरे करेंगे। दया, व्रत, भक्ति, पूजा (करते-करते) धीरे-धीरे होगा—ऐसा माननेवालों को यह कठिन लगता है। मार्ग तो यह है। कठिन लगे, पचे, न पचे, परन्तु मार्ग तो यह है। यहाँ कहते हैं न? देखो!

ध्यान एक उपादेय है... आहाहा! स्वरूप-चिदानन्द प्रभु का विकल्परहित ध्यान, विकल्प की कल्पना रहित। ध्यानावली की कल्पना का आया था न? वह कल्पना भी नहीं। आया था? ध्यान-ध्येयादिक सुतप। पहले आया था। उसे सुतप कहा। ध्यान-ध्येयादिक सुतप। वह भी विकल्पवाला होने से कल्पनामात्र रम्य है। इसके पहले आया था। आहाहा! जगत को कठिन पड़ता है। क्या हो? एकदम यह मार्ग? आता है न, पहले व्यवहार करते-करते परम्परा पाक होकर निश्चय होगा। ऐसा आता है न? पीछे। वह तो एक निमित्त से कथन है। निश्चय का भान है, उसमें ऐसा व्यवहार होता है। उसकी परम्परा तोड़कर अन्दर स्थिर होता है। आहाहा! है? अन्दर आ गया है। परम्परा से निश्चय होता है। आहाहा! उसका अर्थ यह कि निमित्त का ज्ञान कराया।

यहाँ तो एक ही बात 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' चैतन्य भगवान् अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, वह पुण्य और पाप के विकल्प से रहित है। उस आत्मा का ध्येय बनाकर और उसका निर्विकल्प ध्यान, एक ध्यान ही उपादेय है। आहाहा! वही करनेयोग्य और आदरणीय वह एक ही है। शुभभाव आदि करनेयोग्य और आदरणीय नहीं है। आते हैं, होते हैं, परन्तु वे जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है।

यहाँ तो पहले बाँधा है कि यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है। अन्तर स्वरूप चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्त, पूर्ण वीतराग, पूर्ण प्रभुता आदि पूर्ण गुणों का पिण्ड प्रभु - ऐसा जो एकरूप आत्मा, उसका एक का ही ध्यान, वह आदरणीय है। उसका ध्यान एक ही आदरणीय है। परमात्मा का ध्यान, वीतराग का ध्यान, वह भी नहीं।

समाधिशतक में कहा है न? समाधिशतक में। दीपक से दीपक होता है। वृक्ष (बाँस) की रगड़ से अग्नि होती है। आता है न? आहाहा! वह तो निमित्त से कथन है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, उनका ज्ञान जिसने लक्ष्य में लिया, उसे लक्ष्य में लेकर 'मैं परमात्मा हूँ'—ऐसी दृष्टि करता है, उसे सर्वज्ञपना प्रगट होता है। और दूसरा, सीधे 'मैं सर्वज्ञ हूँ'—ऐसा ध्यान करे, उसे सर्वज्ञपना प्रगट होता है। समाधिशतक में दो बोल आते हैं न? आहाहा! लोगों को उलझन करे, ऐसी बात है।

इस प्रकार ऐसा कहा कि एक ही आत्मा जो निर्मल पूर्ण ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप वही दोरूप से परिणमता है—उपाय और उपेय। उसमें राग और व्यवहार, उपाय और उसका फल, उपोय-मोक्ष—ऐसा है नहीं। आहाहा! एक ही आत्मस्वभाव। विकार, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है। आत्मा तो अकेला चिदानन्द अनन्त गुण का पिण्ड निर्मल स्वभाव, वह अपूर्णरूप से परिणमे, वह साधक है, उपाय है, वही कारण है और पूर्णरूप से परिणमे, वह कार्य और वह उपेय है और वह उसका फल है। उसमें कहीं बीच में व्यवहार आया, वह जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। पूरे दिन पाप करना, पूरे दिन धन्धे में (रुकना), स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा, घानी की तरह पूरे दिन पाप में रुकना और उसे ऐसा कहना कि तेरा पाप तो पाप है ही... आहाहा! परन्तु कदाचित् तू दया, दान, और व्रत, भक्ति, पूजा, दान में आवे, वह भी विकार और घोर संसार का कारण है। कठिन पड़े। आहाहा! यह आ गया है न? घोर संसार का कारण और जहर है। आठ बोल आ गये न? प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, पंच नवकार का स्मरण और उसके आधार से अशुभ का त्याग; वह शुभभाव भी जहर है।

'प्रभु का मारग है शूरो का, ये कायर का यहाँ काम नहीं।' आहाहा! इसे किसी व्यक्ति की संख्या की कुछ जरूरत नहीं। बहुत माने तो यह सत्य कहलाये और कम माने-थोड़े माने, वह असत्य—ऐसा कुछ नहीं है। सत्य तो सत्य ही है।

एक ही आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु! आहाहा! अनाकुल शान्त वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा, अनादि-अनन्त सदा ही निर्मलानन्द प्रभु है। उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा का ध्यान, वह एक ही उपाय है, एक ही आदरणीय है। यहाँ पर्याय को उपादेय कहा। उपादेय तो वास्तविक आत्मा है, परन्तु इन आचरण के उपायों में उपाय कौन साधन है? - कि यह ध्यान, वह एक उपादेय है। आहाहा!

वैसे तो एक कारणपरमात्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु त्रिकाल कारण द्रव्यस्वभाव अनन्त गुण का धाम, अकेला अतीन्द्रिय सुख का, शान्ति का धाम, शान्ति और सुख का, अनन्त शान्ति और सुख का फल, वही आदरणीय है; परन्तु यहाँ कहते हैं कि वह आदरणीय होकर जो कुछ पर्याय में शुभाशुभ हो, वे आदरणीय नहीं हैं, ऐसा बताने के लिए ध्यान को उपादेय कहा है। आहाहा! अब यहाँ अभी चौबीस घण्टे में दो घड़ी सुनने का समय मिले नहीं, देवदर्शन करने का समय मिले नहीं, वाँचन करना-श्रवण करने का समय मिले नहीं। अब उसे ऐसा कहना कि प्रभु! मार्ग तो यह है। आहाहा! तू श्रवण कर, या भक्ति कर या पूजा कर या एक घण्टे हमेशा भगवान की भक्ति कर; तो भी वह सब शुभराग, वह जहर है। आहाहा! घोर संसार का मूल है। अर र र!

मुमुक्षु : पुण्य-पाप में भेद करे, वह भी घोर संसार का कारण ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद ही नहीं है। भेद करे, वह घोर संसार का कारण है। प्रवचनसार की ७७वीं गाथा (में कहा है)। पुण्य और पाप में भेद करे कि पुण्य ठीक और पाप अठीक। 'हिंडदि घोरमपारं संसारं' प्रवचनसार की ७७वीं गाथा। यहाँ है प्रवचनसार ? 'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।' कोई ऐसा न माने कि पुण्य-पाप में विशेष नहीं; अन्तर है - पुण्य ठीक और पाप अठीक। ऐसे पुण्य-पाप में कुछ अन्तर है—ऐसा जो माने 'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो' कुछ विशेष नहीं। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ दोनों भाव में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! अब ऐसा सुनना। व्यपार करना या यह धन्धा करना या यह (करना) ? आहाहा! अरे, प्रभु! मार्ग बहुत अलग, भाई! भवभ्रमण रहित होने का रास्ता कोई अलौकिक है।

यहाँ कहते हैं, पुण्य-पाप में कुछ विशेष नहीं है। यहाँ परमात्मप्रकाश में कहा है। गाथा वहाँ भी है। शुभ-अशुभ दो भाव हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, ये दो भाव हैं। इन दो भावों में विशेषता माने कि पुण्य ठीक है और पाप अठीक है। दोनों समान हैं, दोनों एक जाति के घोर संसार के कारण हैं। उन्हें एक न मानकर, विशेष माने 'हिंडदि घोरमपारं संसारं' 'हिंडदि घोरमपारं संसारं' प्रवचनसार में यह पाठ है। 'मोहसंछण्णो' आहाहा! वह मिथ्यात्व से ढंक गया है। आहाहा! पुण्य और पाप दोनों शुभ-अशुभभाव, उनमें निश्चय से कुछ अन्तर है, ऐसा माने (अर्थात्) पुण्य

ठीक है और पाप अठीक है। 'हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो' मिथ्यात्व से ढँका हुआ, मिथ्यात्व से आच्छादन हुआ, घोर संसार में 'हिंडदि' अर्थात् भटकेगा। आहाहा! ऐसा काम। प्रवचनसार की ७७ गाथा है। यह कहते हैं।

(इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है। आहाहा! जितने असंख्य प्रकार के शुभ और असंख्य अशुभ, इन सबको छोड़कर एक स्वरूप का ध्यान, स्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान, वह ध्यान एक ही आदरणीय है। शुभ-अशुभभाव आदरणीय नहीं है। आहाहा! काँप उठे न? एकान्त ही माने न? सोनगढ़वाले एकान्त मानते हैं परन्तु यह शास्त्र क्या कहता है? आहाहा! व्यवहार से कुछ (मानते नहीं)। चरणानुयोग में व्यवहार की बात बहुत आती है। ऐसे व्रत पालना, ऐसे अतिचार पालना, उसका ऐसा करना, उसका ऐसा करना। प्रायश्चित्त लेना, परन्तु वह सब भाव शुभ है और ज़हर है, कहते हैं। आहाहा!

जो कोई परमजिनयोगीश्वर... उत्कृष्ट बात ली है न? जो कोई परमजिनयोगीश्वर... जिनयोगीश्वर। यह अन्यमत में नहीं होता। परमेश्वर वीतराग जैन परमेश्वर के पन्थ के अतिरिक्त कहीं सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होता। किसी पन्थ में वह नहीं है। आहाहा! इसलिए परमजिन (कहा है)। परमजिन में भी योगीश्वर। योगीश्वर मुनि लिए हैं। आहाहा! स्वरूप में जुड़ान में भी ईश्वर हैं। स्वरूप के ध्यान में ईश्वर हैं। साधु—अति-आसन्नभव्य जीव,... अति आसन्नभव्य जीव। अब संसार का किनारा है। किनारा आ गया है। मोक्ष सादि-अनन्त। आहाहा! संसार अनादि-सान्त, उसका सान्तपना निकट आ गया है और सादि-अनन्त मोक्ष अब नजदीक है। आहाहा! हाथ बैत में नहीं कहते? यह बात हाथ बैत में है। ऐसी नजदीक जिन्हें है, कहते हैं। आहाहा! जिनका आत्मा अन्दर से स्वीकार करके अन्दर स्वरूप में जुड़ान में चढ़ गया है।

परमजिनयोगीश्वर... यह परमजिन क्यों लिया है? परमजिन के अतिरिक्त कहीं दूसरा मार्ग है नहीं। जैन में भी अभी गड़बड़ उठी है। जैन सम्प्रदाय के नाम से घोटाला उठा है। यह धर्मध्यान, यह प्रतिक्रमण करो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, यह करो, इससे कल्याण होगा। आहाहा! यह सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, चौदिशंतु (करो)। समकित के बिना सामायिक कैसी? वह तो सब शुभभाव है, राग है, संसार है, घोर संसार है।

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु—अति-आसन्नभव्य जीव,... जिसे अब संसार

का एकदम अन्त आया है ऐसा, अध्यात्मभाषा में पूर्वोक्त स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ... आहाहा! पूर्वोक्त कहा वैसा आत्मा... आहाहा! उस आत्मा में-स्व आत्मा में; पर आत्मा में नहीं। तीर्थकर या अरिहन्त या सिद्ध या पंच परमेष्ठी, वे पर हैं। पर के ध्यान में तो राग होता है, विकल्प होता है। आहाहा! यह तो सन्त बाहर प्रसिद्ध करते हैं। जिन्हें दुनिया की दरकार नहीं है। दिगम्बर मुनि जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! हमें भी स्मरण करने से तुझे राग (होगा) और राग, वह घोर संसार का कारण है। यह तो दिगम्बर सन्त कहते हैं। आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ... स्वात्माश्रित, देखा? धर्मध्यान। वह निश्चयधर्मध्यान। व्यवहार से शुभभाव आया था। यह निश्चयधर्मध्यान (की बात है)। आहाहा! ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान है। उसमें जिसका आश्रय है, आत्मा का आश्रय है। राग और पुण्य और विकल्प का आश्रय छोड़ दिया है। जिसे निश्चय स्व-आत्मा आश्रय निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ... आहाहा! अन्तर आत्मा में शुद्ध में-पवित्र में। पूरा आत्मा पवित्र का पिण्ड है। विकार और संसार है, वह तो एक समय की पर्याय ऊपर विकार है। वह ऊपर-ऊपर है। वह द्रव्यस्वभाव में है नहीं। द्रव्यस्वभाव तो परमात्मा पूर्ण है। वहाँ अपूर्णता और विपरीतता जरा भी नहीं है। ऐसा जो स्वात्माश्रित धर्मध्यान। आहाहा!

निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ अभेदरूप से स्थित रहता है,... आहाहा! उस स्वरूप में अभेदरूप। ध्याता, ध्यान और ध्येय - ऐसे भेद के विकल्प को भी नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात है। अभेदरूप से... चिदानन्द चिद्घन प्रभु, चैतन्य के प्रकाश का पूर, नूर ध्रुव में अभेदरूप से स्थिर रहा हुआ। जिसमें भेद भी नहीं कि मैं ध्यान करता हूँ और यह ध्याता हूँ। आत्मा ध्याता है और ध्यान करनेयोग्य है, यह भेद जिसमें नहीं। आहाहा! कठिन पड़े। गृहस्थाश्रम के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं होगा? मार्ग है, वह हल्का आत्मा का आश्रय लेता है। मुनि हैं, वे उग्ररूप से आश्रय लेते हैं। इतना अन्तर है। बाकी आत्मा के आश्रय का दोनों का मार्ग तो एक ही है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित... आहाहा! सकल क्रियाकाण्ड। ऐसे भक्ति करना, ऐसे पूजा करना, यह व्रत करना, यह

करना, वह करना - ऐसे जो विकल्प / राग हैं, उन सकल क्रियाकाण्ड से रहित। आहाहा! सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर... उन्हें आडम्बर कहा। आहाहा! बाहर में दिखाव। दस-दस लाख खर्च करे, गजरथ निकाले, बड़े हाथी के रथ निकाले और लाखों लोग इकट्ठे हों। लो! बाहुबलीजी में हजार वर्ष का है न और लाखों लोग इकट्ठे होंगे। और हो-हा, हो-हा, पानी से अभिषेक करेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे, बोली करेंगे। फिर पाँच-दस-बीस लाख इकट्ठे करेंगे। यह सब बातें बाहर की हैं, ये धर्म नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात है, भाई! बात झेलना कठिन है। बाहर में इतने उलझ गये हैं। राग और द्वेष और विकार-मिथ्यात्व में इतने गहरे फँस गये हैं। उनसे यह रहित सुनने की बात कठिन पड़े ऐसी है।

अकेला अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित... यह क्रियाकाण्ड, वह आडम्बर है। आहाहा! यह व्रत पालन किये, क्रियाएँ कीं, दस अपवास किये, चतुर्विध आहार (त्याग) अपवास किये, शोभायात्रा निकाली और दस-दस उपवास में घर-घर में २५-२५, ५०-५० रुपये की प्रभावना की। हजार घर हों तो पाँच हजार (खर्च करे)। यह सब बातें बाहर की हैं, बापू! आहाहा! ये सब क्रिया तो पर की है परन्तु कदाचित् उसमें भाव होता होवे तो शुभभाव है। जिस शुभभाव को यहाँ घोर संसार का मूल कहा। आहाहा! कठिन लगे। वाड़ा में तो रहने न दे। वाड़ा में ऐसी बात! आहाहा!

मुमुक्षु : वाड़ावाले यहाँ आते हैं। वाड़ा तोड़कर आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं न बेचारे। उसे छोड़कर, आग्रह छोड़कर आते हैं। वाड़ा के आग्रही होवें वे कहें, नहीं... नहीं... छोड़ दो.. छोड़ दो.. कहा न? जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है, (ऐसा हमने) कहा, वह अधर्म है। (संवत्) १९८५ के वर्ष में, पौष महीना, बोटद में हजारों लोग व्याख्यान में थे। उपाश्रय में समाते नहीं थे। पीछे गली भर जाती थी। बहुत लोग। तीन सौ घर। सब लोग सुनने आवे। उसमें यह बात आयी कि जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है; अधर्म है। हाय.. हाय.. काँप उठे। और पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं। आहाहा! वह धर्म नहीं, संवर नहीं। सभा तो सुनती थी। बहुत लोग थे। पूरी सभा भरी थी। सेठ, गृहस्थ सब

५०-५० हजार की आमदनीवाले सेठ। तब... तब... कितने वर्ष हुए? ५१ वर्ष पहले की बात है। 'कानजीस्वामी' व्याख्यान पढ़ने बैठे हैं, इसलिए लोग समाते नहीं। चींटी की तरह भर जाते हैं। यह बात आयी, वहाँ लोग कुछ नहीं बोले परन्तु एक साधु बैठे थे, वे कहने लगे वोसरे... वोसरे—यह हमारे नहीं चाहिए। यह बात चाहिए (नहीं), यह चाहिए (नहीं)। वोसरे (का अर्थ) समझ में आया? आहाहा! यह बात हमें सुनना नहीं चाहिए, श्रद्धा नहीं करना चाहिए। बड़ी सभा थी। मैं समझा था कि यह बोलता है। फिर मैंने कहा, तुम्हें मौन रहना था न! नहीं मानना था। तुम्हारा सभा में किसने सुना? सभा में मान था, तब कहा। सम्प्रदाय में भी मान था। जहाँ जाएँ वहाँ हजारों लोग (आवें)। १९७४ के वर्ष से। ६१-६२ वर्ष हुए। सभा भरती, सम्प्रदाय में थे न, मुँहपत्ती, रजोणु अपने महाराज हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं क्रियाकाण्ड के आडम्बररहित... एक बात। क्या? ध्यान। आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। अतीन्द्रिय वीतरागस्वरूप है, ऐसा जो आत्मा अन्दर है, उसे क्रियाकाण्ड के आडम्बररहित... ध्यान। क्रियाकाण्ड का ध्यान, वह ध्यान नहीं है, वह तो राग है, आर्तध्यान है। आहाहा! और व्यवहारनयात्मक भेदकरण... आहाहा! है? भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना वह। [समस्त भेदकरण— ध्यान-ध्येय के विकल्प भी व्यवहारनयस्वरूप है।] ऐसा आत्मा का ध्यान करूँ, ध्याता आत्मा, ध्यान—ऐसे भेद करना, ऐसा विकल्प राग उठे, वह भी दुःखदायक है, कल्पनामात्र है। आहाहा! बहुत कठिन बातें, बापू! आहाहा!

विकल्परहित.. आडम्बररहित, विकल्परहित, व्यवहारनय के भेदरहित और समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर... पाँचों इन्द्रियाँ और मन से अगम्य ऐसा भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ और मन से अन्दर (आत्मा) भिन्न है। चैतन्यसत्ता आत्मतत्त्व अनन्त गुण का पिण्ड, वह इन्द्रियों से अगोचर है। इन्द्रियों से गम्य नहीं, इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। यह सुनकर इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! आया या नहीं इसमें इन्द्रिय? इन्द्रिय से सुना और सुनने से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम, भाई!

किसे पड़ी है? आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकने के कारण कहीं... आहाहा! बड़ा व्यक्ति, करोड़ाधिपति, अरबोंपति हो, मरकर सुअर जाए। आहाहा! छिपकली की

कूँख में अवतरित हो। आहाहा! ऐसा संसार है। घोर संसार का आर्तध्यान। उसमें से सुगति, पुण्य, दो-चार-पाँच घण्टे शुभभाव करना, वाँचन (करना), वह समय कहाँ है? एकाध घण्टा मिले तो कर आवे कहीं सामायिक या भक्ति और या पूजा (करे), उसमें जरा कोई शुभभाव होवे। बाकी तेईस घण्टे का आर्तध्यान। ऐरण की चोरी और सुई का दान। आहाहा! उसका पुण्य भी कहाँ है? आहाहा! बहुत कठिन काम है, बापू! वीतराग तो जैसा सत्य हो, वैसा कहते हैं। उन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं है। ओहोहो!

कहते हैं ध्यान-ध्येय के विकल्परहित, समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर ऐसा जो परम तत्त्व... परम तत्त्व। भगवान आत्मा परम चैतन्य हीरा अन्दर है। चैतन्य हीरा अन्दर अनन्त गुण की खान है, जिसमें अनन्त हीरा-गुण भरे हैं। आहाहा! कैसे जँचे? लाख-दो लाख का एक मणिरत्न जहाँ मिल जाए, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! यह तो अनन्त-अनन्त गुण के मणिरत्न से भरपूर भगवान है। एक-एक आत्मा ऐसा भरपूर भगवान है, ऐसा परमात्मा ने फरमाया है। उसके सन्मुख देखने की तुझे फुरसत नहीं है। आहाहा! और पामर के सामने देखने में तल्लीन हो गया है। प्रभु के सामने देखता नहीं और पामर के सामने तल्लीन हो गया है। आहाहा!

इन्द्रियसमूह से अगोचर ऐसा जो परम तत्त्व—शुद्ध अन्तःतत्त्व,... देखा? इसका अर्थ किया? शुद्ध अन्तःतत्त्व,... अन्तःतत्त्व आत्मा परमात्मस्वरूप आनन्दकन्द, शान्त की मूर्ति, अविचल ज्ञान, अविचल आनन्द, अविचल वीतरागता, ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर भगवान-ऐसा परम तत्त्व, अन्तःतत्त्व तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से निरपेक्ष... ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्व, तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से निरपेक्ष... आहाहा! उसमें भेद भी नहीं। शुक्लध्यान लेना है न? निरपेक्ष=उदासीन; निस्पृह; अपेक्षारहित। [निश्चयशुक्लध्यान शुद्ध अन्तःतत्त्व सम्बन्धी भेदों की कल्पना से भी निरपेक्ष है।] ऐसे निश्चयशुक्ल-ध्यानस्वरूप... आहाहा! स्थित रहता है,... आहाहा! पंचम काल में भी सन्त ऐसा उपदेश करते हैं। ध्येय ऊँचा है न! ऐसे शुक्लध्यान में स्थित रहते हैं। स्वयं को उग्ररूप से भले धर्मध्यान है, परन्तु अन्दर शुक्लध्यान में आगे बढ़ने का ध्येय है। आहाहा! पंचम काल में शुक्लध्यान का अभाव (होने) पर भी शुक्लध्यान में स्थित रहे, ऐसी भावना बतलाते हैं। आहाहा!

वह (साधु) निरवशेषरूप से... कुछ बाकी रखे बिना अन्तर्मुख होने से... अन्तर्मुख

में कुछ भी बाकी भेदकल्पना, विकल्प से बाकी रखे बिना... आहाहा! ऐसा जो भगवान अन्दर विराजता है, परम अतीन्द्रिय आनन्द का (नाथ) प्रभु, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर विराजता है। कैसे जँचे? पूरे दिन आत्मा.. आत्मा.. आत्मा के साथ ही बातें करना, उसे भूलकर यह पर के साथ बातें करना, वह किस प्रकार जँचे? आहाहा! ऐसा जो आत्मा अन्दर अनन्त-अनन्त गुण के रत्न का हीरा भरपूर है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। सिद्ध का स्वरूप है, वैसा इस आत्मा का स्वरूप अन्दर है। आहाहा!

उसमें स्थित रहता है, वह (साधु) निरवशेषरूप से अन्तर्मुख होने से... वे साधु पर की कुछ भी अपेक्षा रखे बिना अन्तर्मुख होने से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है;... आहाहा! प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह... प्रशस्त अर्थात् शुभराग। मोह-शुभ मोह, अशुभ मोह का सर्वथा त्याग करते हैं। आहाहा! इसकी दृष्टि में तो पहले यह बात बैठनी चाहिए कि यह इस प्रकार हो, तब उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। ऐसा दृष्टि में तो इसे पहले बैठना चाहिए। आहाहा!

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है;... परित्याग करता है, ऐसा कहा। परि—समस्त प्रकार से अन्दर छोड़ता है। आहाहा! अन्तर आनन्द का सागर भगवान डोलता है, उसमें लीन होता है। आहाहा!

इसलिए (ऐसा सिद्ध हुआ कि) स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान... स्व आत्मा के आश्रय से निश्चयधर्मध्यान। और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है। लो, सब पापों का, अतिचारों का प्रतिक्रमण यह ध्यान है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। आहाहा! कठिन बात। अभी व्यवहार का ठिकाना नहीं होता, व्यवहार की निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धे के कारण पूरे दिन पाप। सवेरे से दुकान खोलकर ऐई... बराबर साफ करके ध्यान रखे, ग्राहक को देखे, कौन आया और कौन आता है? क्या आता है? आहाहा! अब इसे यह आत्मा ऐसा, कब बैठे? और जन्म-मरण कब टले? परिभ्रमण-चार गति के दुःख... आहाहा! उन्हें मिटाने का उपाय यह एक है।

निश्चय स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही... दो ध्यान ही। इसके अतिरिक्त कोई बात नहीं। अन्दर.. आहाहा! अन्दर... शुभराग का विकल्प (उठे) वह भी नहीं। सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण... सब पापों का

प्रतिक्रमण यह (आत्माश्रित ध्यान) है। अन्तर में ध्यान में स्थिर हो जाना, वह सब पापों का -अतिचारों का त्याग है। वहाँ पाप का त्याग हो जाता है। आहाहा! बाहर से पाप का त्याग करके बैठा, वह धर्म है नहीं। आहाहा! हिंसा नहीं की, झूठ नहीं बोला, बाहर में शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! कठिन काम। सुनना कठिन पड़े। यह वे वीतराग ऐसा कहते होंगे? जैन परमेश्वर, वीतराग जैन परमेश्वर ने ऐसा कहा, उसे सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है।

श्लोक-१२४

[अब इस ९३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]:—

(अनुष्टुप्)

शुक्लध्यानप्रदीपोऽयं यस्य चित्तालये बभौ ।
स योगी तस्य शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति स्वयम् ॥१२४॥

(हरिगीतिका)

जिस मनोमन्दिर में प्रकाशित शुक्लध्यान प्रदीप यह ।
योगी वही, शुद्धात्मा उसको स्वयं प्रत्यक्ष है ॥१२४॥

[श्लोकार्थः] शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ, वह योगी है; उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है ॥१२४॥

श्लोक-१२४ पर प्रवचन

[अब इस ९३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]:—

शुक्लध्यानप्रदीपोऽयं यस्य चित्तालये बभौ ।

स योगी तस्य शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति स्वयम् ॥१२४॥

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, ९०० वर्ष पहले हुए। वे यह बात करते हैं। भगवान की कही हुई यह बात है। यह नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, (कि) मैंने मेरे लिए बनाया है। यह नियमसार तो मैंने मेरे लिए बनाया है। तुम सुनो और समझो, बाकी मैंने तो मेरे आत्मा के लिए बनाया है। आहाहा!

[श्लोकार्थः] शुक्लध्यानरूपी दीपक... शुक्लध्यान लिया। देखा? उत्कृष्ट। जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ,... शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ, वह योगी है;... आहाहा! वह योगी। परन्तु अन्यमति का योगी नहीं, हों! भगवान ने जो आत्मा का आनन्दस्वरूप कहा, उसमें योगी अर्थात् जुड़ जाता है, वह योगी। योग अर्थात् उसमें जुड़ जाए तो योगी। योगी अर्थात् वे बाबा योगी होते हैं, वह नहीं। वह तो सब अज्ञानी को कुछ भान नहीं होता। आहाहा! ऐसे वह योगी है; उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! पंचम काल के मुनि यह बात जोर से करते हैं। जिन्हें दुनिया की पड़ी नहीं है। ऐसी बात करने से समाज सुगठित रहेगी या नहीं? साधारण प्राणी इसे कैसे स्वीकार करेंगे? आहाहा! उछलक हो जाएँगे। आहाहा! होओ, दुनिया तो उछलक अनादि से अज्ञान से पड़ी ही है। अज्ञान में भटकाये हैं। आहाहा!

ऐसे जो शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ, वह योगी है;... आहाहा! उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है। शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! उसे शुद्ध आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन होता है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का वेदन होता है। वह प्रत्यक्ष है। कोई विकल्प और राग तथा मन का आश्रय वहाँ नहीं है। आहाहा! कल था, वैसा आज आया। ऐसी बात है। आहाहा!

ऐसे मुनि को शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है। तब कोई कहे, इतनी अधिक बड़ी बात करे, (वह) हमसे नहीं हो सकती। (तो उससे कहते हैं) परन्तु पहले प्रतीति तो कर। श्रद्धा तो कर कि मार्ग यह है, इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। आहाहा! अन्दर स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन प्रकाश चैतन्य की चमत्कारी मूर्ति पड़ी है। ऐसा जो वीतरागस्वरूप, उसके ध्यान में रहे... आहाहा! उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है। उसे अन्दर स्वयं प्रत्यक्ष

होता है। प्रत्यक्ष आत्मा, इसलिए पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। उसे परोक्ष होता नहीं। देखा? केवलज्ञान के पहले शुद्धध्यान ने प्रत्यक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी यहाँ नीचे धर्मध्यान में प्रतीति कराते हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं, तू उलझ नहीं। ऐसी वस्तु हो सकती है। शुक्लध्यान ऐसी स्थिति है और ऐसा हो सकता है, ऐसा प्रतीति में ला, प्रतीति में ला और स्व का आश्रय कर। इसके बिना दूसरा कोई उपाय तिरने का है नहीं।

चौरासी के अवतार में से निकलने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। बाकी अनन्त काल से परिभ्रमण में कचूमर निकल गया है। जैसे तिल को घाणी में पेले, वैसे चौरासी के अवतार में पिल गया है। आहाहा! एक के बाद एक, एक के बाद एक मरा, वहाँ अन्यत्र अवतरित हो। निगोद में तो एक श्वास में अठारह भव। आहाहा! कैसे होंगे? वहाँ क्या हुआ होगा? एक श्वास में अठारह भव करे। यह लहसुन, प्याज, बटाटा-आलू नहीं कहते अभी। मूली का कान्दा, आलू में जरा यह प्रश्न उठता है। कोई प्रत्यक्ष कहे वह प्रश्न उठा है परन्तु यह लहसुन, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त आनन्द का स्वामी है। आहाहा! कैसे जँचे? बाहर बड़ा वैभव हो, वह जँचे कि इसे पचास लाख मिले, करोड़ मिले, पाँच करोड़ मिले, धूल मिली, राजा हुआ, रूपवान शरीर मिला, दस-पच्चीस रनियाँ मिली, लड़के पचास हुए, वे सब कमाऊ हुए, पच्चीस-पचास लाख के आसामी कमाऊ-कमाऊ। जगत को यह सब पाप की चमक जँचती है। आहाहा! यह अन्दर के चमक की बात नहीं जँचती। इसे जँचाने के लिए यह बात करते हैं। भले शुक्लध्यान (अभी) होता नहीं। आहाहा!

शुक्लध्यान की दशा ऐसी होती है, जिसमें आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! स्वयं प्रत्यक्ष होता है, ऐसी प्रतीति तो कर, श्रद्धा में तो ले। न हो सके, ऐसा न मान। ऐसा नहीं हो सकता और ऐसा नहीं हो सकेगा, ऐसा मत मान। आहाहा! है? शुद्ध आत्मा स्वयं... स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९४

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं ।
 तह णच्चा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिक्कमणं ॥९४॥
 प्रतिक्रमण-नामधेये सूत्रे यथा वर्णितं प्रतिक्रमणम् ।
 तथा ज्ञात्वा यो भावयति तस्य तदा भवति प्रतिक्रमणम् ॥९४॥

अत्र व्यवहारप्रतिक्रमणस्य सफलत्वमुक्तम् । यथा हि निर्यापकाचार्यैः समस्तागम-
 सारासारविचारचारुचातुर्यगुणकदम्बकैः प्रतिक्रमणाभिधानसूत्रे द्रव्यश्रुतरूपे व्यावर्णित-मतिविस्तरेण
 प्रतिक्रमणं, तथा ज्ञात्वा जिननीतिमलङ्घयन् चारुचरित्रमूर्तिः सकलसंयम-भावनां करोति, तस्य
 महामुनेर्बाह्यप्रपञ्चविमुखस्य पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहस्य परमगुरुचरणस्मरणासक्तचित्तस्य
 तदा प्रतिक्रमणं भवतीति ।

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण वर्णित है यथा ।
 होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा ॥९४॥

अन्वयार्थ : [प्रतिक्रमणनामधेये] प्रतिक्रमण नामक [सूत्रे] सूत्र में [यथा]
 जिस प्रकार [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [वर्णितं] कहा गया है [तथा ज्ञात्वा]
 तदनुसार जानकर [यः] जो [भावयति] भाता है, [तस्य] उसे [तदा] तब
 [प्रतिक्रमणम् भवति] प्रतिक्रमण है ।

टीका : यहाँ, व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता कही है (अर्थात् द्रव्यश्रुतात्मक
 प्रतिक्रमण सूत्र में वर्णित प्रतिक्रमण को सुनकर—जानकर, सकल संयम की भावना
 करना वही व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता—सार्थकता है ऐसा इस गाथा में कहा
 है) ।

समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के
 धारण करनेवाले निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप प्रतिक्रमणनामक सूत्र

में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है, तदनुसार जानकर जिननीति को अनुल्लंघता हुआ जो सुन्दरचारित्रमूर्ति महामुनि सकल संयम की भावना करता है, उस महामुनि को कि जो (महामुनि) बाह्य प्रपंच से विमुख है, पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित देहमात्र जिसे परिग्रह है और परम गुरु के चरणों के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त है, उसे—तब (उस काल) प्रतिक्रमण है।

प्रवचन-९७, श्लोक-१२५, गाथा-९४, बुधवार, मागशर कृष्ण २, दिनांक ०५-१२-१९७९

नियमसार, गाथा ९४।

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं ।

तह णच्चा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिक्कमणं ॥९४॥

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण वर्णित है यथा ।

होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा ॥९४॥

टीका : यहाँ, व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता कही है... व्यवहारप्रतिक्रमण जो आता है, वह तो शुभराग है। सामायिक, प्रतिक्रमण, शुभराग आवे परन्तु उसका सफलपना कहा है। (अर्थात् द्रव्यश्रुतात्मक प्रतिक्रमण सूत्र में वर्णित प्रतिक्रमण को सुनकर...) वह द्रव्यप्रतिक्रमण सुनकर और उसका विकल्प आवे, उसे (जानकर, सकल संयम की भावना करना...) आहाहा ! यह व्यवहार है, उसमें रुकना नहीं। सकल संयम, निर्विकल्प आनन्द शान्ति आत्मा, उसकी (भावना करना, वही व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता...) नहीं तो अफलपना है। निश्चय अन्तर आत्मा, आनन्दस्वरूप आत्मा के अनुभव बिना अकेला व्यवहारप्रतिक्रमण निष्फल है। सफल है, पुण्यबन्ध का कारण है। संसार में भटकने का कारण है। आहाहा !

जितनी व्यवहार क्रिया कही—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, प्रतिक्रमण, सामायिक, वन्दन, प्रत्याख्यान, वे सब शुभभाव होते हैं परन्तु उस शुभभाव का फल कब आवे ? उसे छोड़कर अन्तर शुद्ध में जाए। अन्तर आनन्दस्वरूप में जाए, उसे व्यवहारप्रतिक्रमण का सफलपना, निमित्तपना कहने में आता है। आहाहा ! यह व्यवहारक्रियाकाण्ड जो कहलाता

है, उसका सफलपना कब कहलाये ? कि उसे छोड़कर अन्तर भावना आनन्दस्वरूप, शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्द निर्विकल्प आनन्द में रमे, उसकी भावना करे, वह व्यवहार का फल अथवा तो उसे निमित्त कहा जाता है ।

यदि अन्तर में निश्चयप्रतिक्रमण में न जाए, निश्चयप्रतिक्रमण आनन्दस्वरूप निर्विकल्प आनन्द के अनुभव में न जाए और व्यवहार प्रतिक्रमण दया, दान, विकल्प में रुके तो उसका फल संसार है । ऐसा काम है । सफलपना कहा, परन्तु वह व्यवहार छोड़कर अन्दर जाए तो व्यवहार निमित्त कहलाये । आहाहा ! व्यवहार के जितने क्रियाकाण्ड किये जाते हैं—दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, वह सब शुभभाव सफल कब कहलाये ? कि उसे छोड़कर अन्तर निर्विकल्प आनन्द में जाए, शुद्धस्वरूप अनुभव में जाए, शुद्ध की भावना करे तो व्यवहार का फल आया कहलाये । फल अर्थात् उसे छोड़कर आना, वह करना है । व्यवहार करने का अकेला व्यवहार करने का नहीं । आहाहा !

यहाँ तो अभी व्यवहार का-निवृत्ति का ठिकाना नहीं है । पूरे दिन धन्धा-पानी, यह धन्धा, यह पाप, यह व्यापार, यह पैसा, यह दिया और यह लिया, यह खर्च किया, यह पैसा इतना कमाया, इतना माल आया, इतना नया आया, इतना पुराना था । आहाहा ! अरे रे ! यह तो पूरी जिन्दगी पाप है । अकेला पाप । धर्म तो नहीं, पुण्य भी नहीं ।

यहाँ तो कहते हैं कि उस पाप से हटकर पुण्य में-शुभभाव में आया, व्यवहारप्रतिक्रमण में आया, अशुभ छोड़कर शुभ में, अशुभ को छोड़कर शुभ में आया तो भी उस शुभ का फल उसे छोड़कर निश्चय शुद्ध का अनुभव करे तो व्यवहार को व्यवहार कहा जाए और व्यवहार में ही अकेला रहे, अन्तर आत्मा के आनन्द के अनुभव में न जाए तो वह व्यवहार संसार का कारण, भटकने का कारण है । है ? आहाहा ! पूरे दिन निवृत्ति (नहीं मिलती) । शुभभाव करने का समय नहीं मिलता, धन्धा-पानी के कारण । ऐसा होगा या नहीं ? ...हमारे भी दुकान में ऐसा था । सवेरे से शाम तक एक ही बात । गाँव में साधु आवे तो सामने देखे नहीं । रात्रि को आठ बजे आकर जाए । आठ बजे जाए । निवृत्त होकर घण्टे भर सुनने जाए । अरे रे ! शुभभाव का भी अवसर नहीं ।

यहाँ तो कहते हैं कि शुभभाव का अवसर प्रतिक्रमण, सामायिक, प्रौषध और यह किया परन्तु वह शुभभाव है । उस शुभभाव को शुभभाव के फलरूप से इसे छोड़कर

निश्चय में जाए तो शुभ को शुभरूप से व्यवहाररूप से कहा जाए और शुभ को छोड़कर अन्दर में न जाए और शुभ में ही रहे तो संसार में भटकता रहे। आहाहा! ऐसा काम है। कठिन काम है। है ?

(व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता...) है। द्रव्यश्रुत शास्त्र जो है, उसमें जो प्रतिक्रमण सूत्र का वर्णन किया हो, उस प्रतिक्रमण को सुनकर... (वह) विकल्प है, वह शुभराग है। (जानकर, सकल संयम की भावना करना...) अन्तरनिर्विकल्प आनन्दस्वरूप भगवान में सकल संयम। (प्रतिक्रमण का शुभविकल्प) वह तो व्यवहार क्रिया है, उसे छोड़कर अन्तर सकल संयम। निर्विकल्प वीतरागस्वरूप आत्मा की अन्तर में एकाग्रता करना, उसकी भावना करना, वह व्यवहार का फल है।

मुमुक्षु : व्यवहार से निश्चय हुआ तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय हुआ किस प्रकार? व्यवहार है, उसे छोड़कर यदि यहाँ जाए तो उसको व्यवहार से व्यवहार कहा जाए। वहीं का वहीं रुके तो निश्चय भी नहीं और व्यवहार भी नहीं, दोनों नहीं - ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार का सफलपना कब कहते हैं? - कि व्यवहार का विकल्प आवे—प्रतिक्रमण का, सामायिक का, भगवान की स्तुति, भगवान की भक्ति, आदि का भाव आवे, परन्तु वह भाव शुभ है। उसे छोड़कर शुद्धस्वरूप में जाए, वह स्वरूप करना है। भावना वह करनी है तो उस शुभ को निमित्त कहने में आता है। निमित्त अर्थात् उसने कुछ किया नहीं है और उससे कुछ कराया नहीं है। आहाहा! है कोई? सब व्यवहार का स्पष्टीकरण है न?

पहले ऐसा कह गये थे कि व्यवहार है, वह घोर संसार का मूल है। वह पुण्यभाव और पापभाव दोनों, शुभ और अशुभभाव दोनों घोर संसार का मूल है और वह पुण्य और पाप दोनों जहर है। आहाहा! भगवान अन्दर अमृतस्वरूप है, वीतरागमूर्ति है, उसकी अन्दर भावना प्रगटे नहीं और उसका अनुभव न करे और मात्र इस क्रियाकाण्ड में, शुभराग में रुके, वह घोर संसार है। चार गति में—संसार में भटकनेवाला है। आहाहा! उसमें है न?

(व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता—सार्थकता है...) कब? कि (सकल संयम की भावना करना वही...) वही। सकल संयम अर्थात् पूर्ण निर्विकल्पदशा। अन्तर जरा भी व्यवहार का विकल्प नहीं। निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प वीतराग, निर्विकल्प आनन्द,

निर्विकल्प स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता, ऐसी वीतराग परिणति प्रगट करना, उसकी भावना करना, अर्थात् एकाग्रता करना, वह सफलपना है। वही... ऐसा कहा न ? (सकल संयम की भावना करना, वही व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता...) है। तो ही व्यवहार-प्रतिक्रमण को व्यवहाररूप से कहा जाता है। नहीं तो व्यवहार भी नहीं कहलाता। आहाहा! इसमें क्या करना ? कहो, देवीलालजी ! पूरे दिन उसमें फँस गया। आहाहा !

अभी तो व्यवहार करने को निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन धन्धा-पानी, व्यापार में से निवृत्त हो तो छह-सात घण्टे सोवे, स्त्री-पुत्र को सम्हाले, प्रसन्न करे। शुभभाव का तो समय भी नहीं मिलता। आहाहा! उस प्राणी की तो क्या बात करना ? वह तो घोर संसार में भटकनेवाला है। आहाहा! नरक और निगोद में परिभ्रमण करनेवाले हैं, भाई ! आहाहा! यहाँ तो शुभभाव करे, शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे, बराबर प्रतिक्रमण करे, शाम-सवेरे सामायिक करे, उसकी बाहर की मानी हुई (करे)। णमो अरिहन्ताणं... प्रतिक्रमण करे, रात्रिभोजन त्याग करे, वह भाव राग है। उसे छोड़कर वीतरागी भावना करना, वही वीतरागी भावना करना, वही उसका फल है। वीतरागी भावना न करे तो व्यवहार, व्यवहार से (भी) व्यवहार नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

सफलपने का अर्थ ? व्यवहार से हुआ - ऐसा नहीं। सफलपने का अर्थ यह नहीं कि व्यवहार से निश्चय हुआ। व्यवहार का सफलपना कब कहलाता है ? निमित्तरूप से उसे छोड़कर अन्दर संयमी निश्चय वीतरागी भावना रुके - एकाग्र हो, तब उसे निमित्तरूप से, व्यवहाररूप से कहा जाता है। आहाहा! लो, ऐसा समय कब मिले ? स्त्री-पुत्र को डालना कहाँ ?क्या करना ? आहाहा! इसकी तो यहाँ बात ही नहीं। यहाँ तो उनसे निवृत्ति और शुभभाव करता है। समझ में आया ?

कल एक आया था। खत्री-खत्री 'जसदण' का लड़का आया था। उसके पिता ने पुछवाया था, वृद्ध होंगे। पुछवाया था, हजार बार-लाख बार ॐ करते हैं, उसका फल क्या ? कहा, लाख बार ॐ कर, करोड़ बार ॐ ॐ कर, वह शुभ है। वह धर्म-बर्म नहीं। लड़का आया था। जसदण का खत्री था।आया था। हम मेरे पिता को... दिखाया। उसमें दिगम्बर मुनि दिखते हैं - ऐसा बेचारे ने पूछा। कोई कल्पना में आ गया। दिगम्बर मुनि दिखते हैं... हैं दिगम्बर मुनि। ॐ करते-करते दिखते हैं। दिखते हैं, कल्पना हो। वह सब

शुभभाव है। सच्चे मुनि के दर्शन हों तो भी वह शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। तीर्थंकर के दर्शन हों, वह भी कुछ धर्म नहीं। प्रतिमा के दर्शन, प्रतिमा की पूजा, भगवान का मन्दिर, देवदर्शन, वह कुछ धर्म नहीं है। वह तो शुभभाव है। आहाहा! उस शुभभाव का निमित्तपना तब सफल कहलाता है कि उसे छोड़कर अन्दर संयम अर्थात् वीतरागभाव से भावना भावे, वीतरागभाव प्रगट करे। उस रागभाव को छोड़कर वीतरागभाव प्रगट करे तो व्यवहार का निमित्तपना कहलाता है। ऐसा काम है, बापू! है। अभी तो व्यवहार से होता है, व्यवहार करो, यह करो, यह करो, प्रतिक्रमण, सामायिक करो, एक-दूसरे को मदद करो, भक्ति करो, मन्दिर बनाओ, ऊँचे मन्दिर बनाओ (ऐसी बातें चलती हैं)।

मुमुक्षु : मन्दिर होवे तो साधु उतरे और लाभ होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ क्या होगा ? यह शुभ है। साधु उतरे और सुनने का मिले, वह शुभ है। ऐसा कठिन काम है। आज नैरोबी से पत्र आया है। नैरोबी-नैरोबी, अफ्रीका। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया है न ? पन्द्रह लाख दूसरे खर्च करनेवाले हैं। तीस लाख खर्च करनेवाले हैं। इससे अधिक खर्च करेंगे। वहाँ करोड़पति हैं। सात-आठ व्यक्ति तो करोड़पति, दूसरे सब बहुत पच्चीस-पचास, साठ लाखवाले हैं। एक भाई ने पूछा है। लक्ष्मीचन्दभाई नहीं आये थे ? लक्ष्मीचन्दभाई, उन्होंने पूछा है, महाराज ! आप यहाँ आओ तो हमारे घर में, घर में जीमने का रखूँगा या एक जगह रखूँगा ? और चरण कराने का भाव है, उसका क्या ? ऐसा पत्र आया है। माता-पिता करने में आपकी सलाह क्या है ? भाई ! उसमें हमारा क्या काम है ? भगवान के माता-पिता बनाते हैं न ? लोगों को उत्साह बहुत है। पैसेवाले हैं। साठ घर श्वेताम्बर के, (अब) सब दिगम्बर हो गये हैं। तीस वर्ष से, और सब पैसेवाले हैं। उन लोगों को मन्दिर का उत्साह बहुत है। बहुत उत्साह है। महाराज यहाँ आते हैं तो बहुत उत्साह से करना है। यह सब शुभभाव है। आहाहा !

मुमुक्षु : अशुभ से तो बचे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ से बचा नहीं। निश्चय से तो अशुभ मिथ्यात्व होता है। अशुभ, वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व से बचे, तब अशुभ से बचा कहलाये। आहाहा ! ऐसा है। सूक्ष्म काम है, भाई !

अनन्त काल से भवभ्रमण कर रहा है। आहाहा ! ऐसे भव किये हैं, सुने नहीं जाँँ।

उनके दुःख भोगे हैं। उस नरक के एक क्षण का दुःख, ऐसे-ऐसे तैंतीस-तैंतीस सागर अनन्त बार गया। एक क्षण में करोड़ों जीभ और करोड़ों भव में न कहे जा सकें, ऐसे दुःख की पीड़ा वहाँ है, बापू! ऐसे भव अनन्त कर-करके मुश्किल से मनुष्यपना मिला। आहाहा! यह भव, भव का अभाव करने के लिए मिला है। भव के अभाव की बात के लिए है। यह भव और भव ऐसा का ऐसा रहे, वह तो अनादि से परिभ्रमण करता है। आहाहा! अरबोंपति व्यक्ति हो, सेठ हो, मरकर सूअर होता है। आहाहा! माँस-शराब आदि न खाता (पीता) होवे।

मुमुक्षु : आज तो आपने नरक में भेजा।

पूज्य गुरुदेवश्री :कोई शुभभाव करे तो स्वर्ग में भी जाए परन्तु वह संसार है। वह संसार है। शुभभाव करके स्वर्ग में जाए, वह संसार है; वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! यह कहा न? द्रव्य चतुष्टय में? द्रव्य प्रतिक्रमण, द्रव्य सामायिक, द्रव्य प्रत्याख्यान बाहर से करते हैं न? अन्दर कहाँ भान है? अन्दर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध ज्ञानानन्द आनन्दमूर्ति प्रभु है। उसकी तो खबर नहीं होती। उससे ऊँची चीज़ इस जगत में कोई है ही नहीं। ऐसा आत्मा भगवान है, वीतराग है, परमात्मा है, परमेश्वर है, वह प्रत्येक आत्मा प्रभु है, भगवान! शरीर मन्दिर में विराजमान। विराजमान भगवान पूर्ण स्वरूप है। आहाहा! ऐसा सुनने को मिले तो भी ध्यान कहाँ है? आहाहा! बहुत बार सुना है।

यहाँ यह कहते हैं, अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड शुभभाव करे, उसमें से हटकर यदि शुद्ध में न जाए, अन्तर की भावना जो वीतरागी भाव, उसमें न जाए तो यह सब व्यर्थ है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसे लोगों को प्रसन्न रखे, ऐसा करो, ऐसा करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, करते-करते आगे होगा, समकित होगा और धर्म होगा।

मुमुक्षु : इसमें तो राग का कर्तापना आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान तो राग का कर्ता ही है। समाज को ठीक पड़े। समाज को आगे बढ़ा जा सके ऐसा नहीं। अभी शुभ में आ सके नहीं, उसे बेचारे को शुभ की बातें करे तो ठीक लगे। समाज प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। आहाहा! ऐसे तेरे जितने प्रतिक्रमण और सामायिक और व्यवहार, उन सबका फल बन्ध और बन्धन है। आहाहा! उसका सफलपना

तो तब कहलाये कि उससे छोड़कर वीतरागभाव में जाए तो। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। क्या हो ?

जिनेश्वरदेव परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ का यह फरमान है। यह उनका हुकम है, यह उनकी आज्ञा है। तेरे व्यवहार के फल कब कहलायें ? उन्हें छोड़कर अन्दर शुद्ध में जाए तो उसे व्यवहार कहा जाए। बाकी तो व्यवहार संसार है। आहाहा! है ?

समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर... अब द्रव्य प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हैं। द्रव्य प्रतिक्रमण बनाया किसने ? किन आचार्यों ने बनाया ? कि समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले... गुणसमूह के धारण करनेवाले, ऐसे निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप... द्रव्य शास्त्र बनाये। उनमें प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है,... प्रतिक्रमण का वर्णन किया है। आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय... मिच्छामी दुक्कडं। यह सब व्यवहार प्रतिक्रमण वर्णन किया है। आहाहा! सारासार का विचार करनेवाले ऐसे निर्यापक सच्चे सन्तों ने जो द्रव्य प्रतिक्रमण रचा है। है ?

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है, तदनुसार जानकर... जैसा मुनियों ने द्रव्य प्रतिक्रमण कहा, वैसा उस प्रकार जानकर। व्यवहार भी जिस प्रकार से है, उस प्रकार से जानकर। वीतराग ने कहे हुए व्यवहार से दूसरा, कम, अधिक, विपरीत नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में विराजते हैं, उन्होंने यह कहा है। आहाहा! वहाँ से ये कुन्दकुन्दाचार्य वाणी लाये हैं और यह वापस स्वयं अपने लिए बनाया है। यह शास्त्र स्वयं के लिए बनाया है। आहाहा!

तदनुसार जानकर जिननीति को अनुल्लंघता हुआ... अर्थात् क्या कहते हैं ? व्यवहार प्रतिक्रमण है सही, आवे अवश्य। व्यवहारनीति है। 'जिन' की यह व्यवहारनीति है। व्यवहार यह जिन (जिनदेव) की नीति है। उसे अनुल्लंघता हुआ... उसे उल्लंघन किये बिना। आहाहा! सुन्दरचारित्रमूर्ति महामुनि... ऐसे अन्दर व्यवहार के शुभभाव, प्रतिक्रमण आदि, सामायिक आदि के आवे, उन्हें अनुल्लंघता हुआ... उन्हें छोड़कर अशुभ में न जाए। उन्हें छोड़े नहीं, परन्तु सुन्दरचारित्रमूर्ति महामुनि सकल संयम की

भावना करता है,... उस भाव में नहीं रुकते। प्रतिक्रमण रचा, रचा हुआ प्रतिक्रमण। रचा शास्त्रों में सन्तों ने, मुनियों ने, परन्तु वे महामुनि उसकी रचना के विकल्प में रुकते नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम है।

सकल संयम की भावना करता है, उस महामुनि को कि जो (महामुनि) बाह्य प्रपंच से विमुख है,... आहाहा! यह व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प है, वह प्रपंच है। आहाहा! अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा विराजता है। आहाहा! बाह्य प्रपंच से विमुख है,... जो विकल्प है, वह सब प्रपंच है। आहाहा! आता है, व्यवहार होता है, आचार्य ने भी व्यवहार रचा है – व्यवहारप्रतिक्रमण रचा है और तदनुसार प्रतिक्रमण का विकल्प भी आता है, परन्तु वह विकल्प प्रपंच है, उसे छोड़कर अन्तर वीतरागभाव कर। आहाहा! यहाँ तो यह व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो... यह करते-करते निश्चय होगा। समाज को निवृत्ति नहीं मिलती, इसलिए यह बात बहुत अच्छी लगती है। उसमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते हैं। विपरीत प्ररूपणा है, वह तो मिथ्यात्व की प्ररूपणा है। वह तो मिथ्यादृष्टि की प्ररूपणा है।

यहाँ तो यह कहते हैं... आहाहा! बाह्य प्रपंच से विमुख है,... बीच में व्यवहार आवे अवश्य, परन्तु उससे विमुख होते हैं। आहाहा! उसमें रहते नहीं। व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है। व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारसामायिक, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारवन्दन, देव-गुरु-शास्त्र को वन्दन, यात्रा, भक्ति, वह सब शुभभाव है। वह स्वभाव की अपेक्षा से प्रपंच है। आहाहा! कठिन काम है।

बाह्य प्रपंच से विमुख है,... आहाहा! महामुनि ऐसे व्यवहार के विकल्प से भी विमुख है। अन्दर में निश्चय आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसमें रमणता में रमते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हैं। आहाहा! वह निश्चय प्रतिक्रमण है। तब उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। कठिन पड़े, क्या हो? लोगों को अभी व्यवहार की भी खबर नहीं है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जो प्रतिक्रमण रचा, वह प्रतिक्रमण है, ऐसा कहते हैं।

समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप... रचा। आहाहा! उनके रचे हुए प्रतिक्रमण। यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी के रचे हुए जो हैं, वह द्रव्यश्रुत

भी नहीं है, वह तो कल्पित रचित है। वे शास्त्र कल्पित हैं। आचार्यों के रचे हुए नहीं। सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा के रचे हुए नहीं। आहाहा! ऐसा अन्तर, बहुत अन्तर पड़ता है।

इसलिए यह कहा कि समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है,.... विकल्प है और सूत्र रचा है। प्रतिक्रमण सूत्र रचा है। तदनुसार जानकर... आहाहा! जिस प्रकार प्रतिक्रमण कहा, तदनुसार व्यवहार से जानकर, जिननीति को अनुल्लंघता हुआ... उस व्यवहार की नीति को छोड़े नहीं। छोड़कर अशुभ में न जाए। उसे छोड़कर शुद्ध में जाए। आहाहा! जिननीति को अनुल्लंघता... वह जिननीति है। लौकिक व्यवहार प्रतिक्रमण आदि वह 'जिन' की नीति है। उसे अनुल्लंघता हुआ जो सुन्दरचारित्रमूर्ति... आहाहा! सुन्दरचारित्रमूर्ति। आत्मा के आनन्द में रमणता। चारित्र अर्थात् सुन्दर आनन्द में रमणता। चारित्र अर्थात् वीतरागस्वरूप में रमणता, वह चारित्र है। आहाहा! चारित्र की यह व्याख्या है। वस्त्र छोड़ दिये और पंच महाव्रत लिए, इसलिए चारित्र हो गया - ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : परीषह तो सहन करना पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परीषह सहन तो अनन्त बार किये हैं। अभव्य और भव्य दोनों ने। उसमें क्या हुआ? अन्दर ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हुए बिना जो कुछ परीषह सहन किये, उतना शुभभाव होता है। संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु :होवे तोनहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :जाए तो भी संसार है। नग्नपना, वह संसार है। शरीर, वह संसार है। अन्दर शुभभाव हो, वह संसार है, कहो। आहाहा! वस्त्र रखना, वह तो संसार है परन्तु वस्त्र छोड़ना, नग्नपना (अंगीकार करना), वह संसार है और अन्दर शुभभाव होना, वह संसार है, घोर संसार है। शुभराग, वह घोर संसार है। आहाहा! कठिन काम, भाई! जैनधर्म सुना नहीं। लोगों ने जैनधर्म क्या है (वह सुना नहीं)।

मुमुक्षु : ऐसी कठोर बात अन्यत्र कहीं लिखी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है न? ४५ वर्ष से यह चलता है। यहाँ ४५ वर्ष होने को आये। ४५ वर्ष से तो यह बात चलती है। ४५ दूसरे हुए।

मुमुक्षु : हम उस समय तैयार नहीं थे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार नहीं थे, परन्तु ४५ वर्षों से चलता तो है न ? ४५ दूसरे और ४५ दूसरे । शरीर को ९० वर्ष हुए । शरीर को । आत्मा तो अनादि-अनन्त है । आहाहा ! यह कोई पहला-पहला नहीं चलता, बहुत बार पढ़ा गया है । नये लोग हों, उन्हें लगे । नये आये हों ।

मुमुक्षु : पुराने हों, उन्हें भी नया लगता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराने हों, उन्हें सुना हुआ भूल गये हों तो नया लगे । सुनकर भूल गया हो तो नया लगे । आहाहा !

अमृत जैसी वाणी है । वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा अरिहन्तदेव की यह वाणी है । गणधर और इन्द्रों के समक्ष में प्रभु ऐसा कहते थे कि हे जीवों ! हमारे सन्तों ने, आचार्यों ने भी जो द्रव्यप्रतिक्रमण की रचना की, सच्चे सन्तों ने यह रचना की, उसे जानकर भी, वहाँ से छोड़कर अन्दर वीतरागता में जा । आहाहा ! वहाँ न रुक । आता है, विकल्प आता अवश्य है, परन्तु वहाँ रुकना नहीं । राग से रहित वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर चैतन्य हीरा है । उसमें अनन्त गुण के मणिरत्न भरे हैं । अनन्त गुणमणिरत्न से भरपूर भगवान है । आहाहा ! कैसे जँचे ? दो बीड़ी पीवे, वहाँ तलप चढ़ जाए । सवेरे प्याला चाय न पीवे पाव सेर, सवा सेर (न पीवे) तो मस्तिष्क चढ़ जाए । आहाहा ! सुनने में मस्तिष्क ठीक रहे । चाय पीये बिना आये होंगे तो मस्तिष्क ठीक रहे नहीं । आहाहा ! ऐसे अपलक्षण । उसे यह बताना कि शुभभाव भी बन्ध का कारण है, वह घोर संसार । आहाहा ! मार्ग ऐसा है, प्रभु ! अभी तो सुनना मुश्किल पड़े । ऐसी प्ररूपणा सब चली है (कि) व्यवहार करो... यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... और करो... छोड़ो, छोड़ो और छोड़ो ।

निहालचन्दभाई ने तो द्रव्यदृष्टि प्रकाश में कहा है - करना, करना, यह करना, वह मरना है । राग को करना, अरे ! दया, दान और व्रत का राग करूँ, वहाँ शान्ति का मरना है । आत्मा की शान्ति वहाँ सुलगती-जलती है । आहाहा ! कठिन बात है । एकान्त लगता है । अज्ञानी को अध्यात्म का एकान्त लगे, ऐसा है । आहाहा !

यहाँ तो आचार्य क्या कहते हैं ? - कि बाह्य प्रपंच से विमुक्त है, ... आहाहा ! अन्तर

में स्वरूप की रमणता में रम रहे हैं। सन्त तो यह प्रतिक्रमण कह रहे हैं। आहाहा! वाणी का नहीं, विकल्प का प्रतिक्रमण नहीं; वीतराग निर्विकल्पभाव का प्रतिक्रमण कर रहे हैं। आहाहा! पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित देहमात्र जिसे परिग्रह है... मुनि को तो एक शरीरमात्र होता है, दूसरा (कुछ) होता नहीं। वस्त्र का टुकड़ा रखकर भी मुनि माने, वह निगोद में जाता है, ऐसा सिद्धान्त पाठ है। सूत्रपाहुड़। सूत्रपाहुड़ में यह पाठ है। एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि कहे, मुनि माने, मुनि मनावे और माननेवाले को भला जाने, वे सब निगोदगामी हैं। लहसुन में और प्याज में जानेवाले हैं। आहाहा! ऐसे कठिन वचन हैं। अष्टपाहुड़ में है। अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ में है।

सवरे कहा नहीं? प्रवचनसार। पुण्य और पाप में दोनों में अन्तर मानेगा, वह घोर संसार में भटकेगा। शुभभाव और अशुभभाव; दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव और हिंसा, झूठ का अशुभभाव, इन दो में अन्तर मानेगा कि यह शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, इन दोनों की विशेषता मानेगा... ये दोनों एक ही जाति है, (फिर भी) विशेष मानेगा, वह घोर 'हिडंदि'। मिथ्यादृष्टि घोर संसार में, निगोद में, नरक में भटकेगा। आहाहा! कठिन काम।

मुमुक्षु : कठोर सजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर सजा नहीं। इसमें नव तत्त्व की भूल है। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने, वह (तत्त्व की भूल है)। अभी सब साथ में गाड़ी... क्या कहलाता है? ट्रक। अरे रे! उसके लिए आहार बनावे। उसके लिए आहार बनाकर चौका करे और दे, (उसे लेनेवाला) वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। भाव (लिंग) तो नहीं, द्रव्यलिंग भी नहीं है। उसे मुनिपना माने, मनावे... भगवान तो ऐसा कहते हैं कि निगोद में जाएगा। आहाहा! सूत्रपाहुड़ में है। कठिन काम है, भाई! वीतरागमार्ग अपूर्व है। अभी तो बहुत फेरफार कर डाला है। सुननेवाले शिथिल, विपरीत दृष्टिवाले सुनानेवाले ऐसे मिले, इसलिए हाँ, यह हाँ की। व्यवहार से ऐसा होता है, उसे करते-करते होता है। उसमें हाँ करनेवाले मिले। यहाँ ना करते हैं। व्यवहार करते-करते (धर्म) नहीं होता। व्यवहार छोड़कर होता है। आहाहा! कठिन काम है।

मुमुक्षु : ऐसे तो व्यवहारधर्म का सफलपना आया।

पूज्य गुरुदेवश्री :करते हैं न! इसमें यह कहाँ आया? उसे (व्यवहार को)

छोड़कर अन्दर में जाए, तब व्यवहार को निमित्तरूप से कहा जाता है, ऐसा कहते हैं, तो व्यवहार, व्यवहाररूप से सफल है। उसे छोड़कर निश्चय में जाए तो व्यवहार को व्यवहाररूप से सफल है - ऐसा आया। उसे छोड़कर व्यवहार में खड़ा रहे तो नीचे निगोद में जाएगा। आहाहा! ऐसा कठिन काम।

मुमुक्षु : अभी तो स्वर्ग में जाए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी क्या स्वर्ग में जाए ? एकाध कदाचित् कोई शुभभाव होवे और एकाध भव जाए, उस भव की स्थिति कितनी ? भविष्य में अनन्त काल रहना है। आत्मा अनन्त काल रहनेवाला है। अनादि का है, अनन्त काल रहनेवाला है। अनन्त-अनन्त की आदि क्या ? उसमें एकाध भव देव का मिले, फिर जाएगा पशु में, वहाँ से मरकर फिर निगोद में (जाएगा)। आहाहा! कठिन काम है, बापू!

पंचेन्द्रिय के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है... मुनि इन्हें कहते हैं। एक शरीरमात्र है; दूसरा कुछ होता नहीं। आहाहा! वह द्रव्य प्रतिक्रमण में से निकलकर भाव प्रतिक्रमण में जाता है, ऐसा कहना है। और परम गुरु के चरणों के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त है,... कैसे हैं मुनि ? परम गुरु परमात्मा के चरणों के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त है,... आहाहा! उसे—तब (उस काल) प्रतिक्रमण है। आहाहा! भाववीतरागता है और विकल्प उठता है, वे परम गुरु के चरणों के स्मरण में आसक्त है,... आहाहा! वह भी पुण्यबन्ध का कारण है।

श्लोक-१२५-१२६

[अब इस परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं]:—

(इन्द्रवज्रा)

निर्यापकाचार्यनिरुक्तियुक्ता-

मुक्तिं सदाकर्ण्य च यस्य चित्तम् ।

समस्त-चारित्र-निकेतनं स्यात्,

तस्मै नमः संयम-धारिणेऽस्मै ॥१२५॥

(वसंततिलका)

यस्य प्रतिक्रमण-मेव सदा मुमुक्षो-

र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः ।

तस्मै नमः सकल-संयम-भूषणाय,

श्रीवीरनन्दि-मुनि-नामधराय नित्यम् ॥१२६॥

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-
विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ परमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः पञ्चमः श्रुतस्कन्धः ।

(हरिगीतिका)

निर्यापकों की व्याख्या युत सदा सुनकर के कथन ।

हो चित्त चारित्रधाम जिसका, संयमी को हो नमन ॥१२५॥

जिनको सदा ही प्रतिक्रमण अणुमात्र नहीं अप्रतिक्रमण ।

भूषित सकल संयम मुनि उन वीरनन्दि को नमन ॥१२६॥

[श्लोकार्थः] निर्यापक आचार्यों की निरुक्ति (-व्याख्या) सहित (प्रतिक्रमणादि सम्बन्धी) कथन सदा सुनकर जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है, ऐसे उस संयमधारी को नमस्कार हो ॥१२५॥

[श्लोकार्थः] मुमुक्षु ऐसे जिन्हें (-मोक्षार्थी) ऐसे जिन वीरनन्दि मुनि को) सदा

प्रतिक्रमण ही है और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण नहीं है, उन सकलसंयमरूपी भूषण के धारण करनेवाले श्री वीरनन्दि नाम के मुनि को नित्य नमस्कार हो ॥१२६ ॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार नाम का पाँचवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ ।

श्लोक-१२५-१२६ पर प्रवचन

[अब इस परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं]:—

निर्यापकाचार्यनिरुक्तियुक्ता-

मुक्तिं सदाकर्ण्य च यस्य चित्तम् ।

समस्त-चारित्र-निकेतनं स्यात्,

तस्मै नमः संयम-धारिणेऽस्मै ॥१२५ ॥

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि आनन्द में आ गये हैं। आनन्द में आकर... आहाहा! पंचम काल के सन्त हैं। पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि ऐसी बातें चौथे काल में होती है। ये तो पंचम काल के साधु हैं, अभी नौ सौ वर्ष पहले हुए हैं और पंचम काल के श्रोता को कहते हैं, प्रभु! तू आत्मा है न! आत्मा को काल-फाल लागू नहीं पड़ता। प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं। तू अन्दर हीरा, अनन्त गुण के मणिरत्न से भरपूर, ऐसे हीरा को कोई काल बाधक नहीं है। आहाहा! वह प्रभु स्वयं कभी शुभरागरूप हुआ नहीं। आहाहा! वह प्रभु, दया-दान के विकल्परूप हुआ नहीं। ऐसा आत्मा अन्दर है, भगवान है, परमेश्वर है, प्रभु है, वीतराग है, परमेश्वर है। आहाहा! ऐसे आत्मा को.. आहाहा!

निर्यापक कहा न? निर्यापक आचार्यों की निरुक्ति... जो आचार्यों ने प्रतिक्रमण... उनकी (-व्याख्या) सहित (प्रतिक्रमणादि...) प्रतिक्रमणादि। प्रतिक्रमण की, सामायिक

की, व्यवहार की सब... है न? व्यवहार होता है। कथन सदा सुनकर... ऐसे आचार्यों का कथन सुनकर करना क्या? जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है,... आहाहा! भगवान आत्मा चारित्रधाम है। स्वयं ज्योतिसुखधाम। श्रीमद् में आता है न? स्वयं ज्योतिसुखधाम... चैतन्य ज्योति... सुखधाम, वह आनन्द का फल है। अन्तर आनन्द पकता है। आनन्द के अंकुर फूटते हैं, ऐसा यह भगवान है। इसमें दुःख और पुण्य और पाप फूटे, ऐसा यह भगवान आत्मा नहीं है। आहाहा! कब जँचे? यहाँ उड़द की दाल ठीक से सीझी न हो तो ढींचणीयुं उछले। आज ऐसी किसने बनायी है? अब उसे ऐसा बैठाना... आहाहा! बापू! यह बैठने से ही छुटकारा है।

भाई! अनन्त काल से दुःखी है। अनन्त काल से परिभ्रमण करता है, भाई! अनन्त भव में इसे कहीं शान्ति नहीं मिली। मिथ्यात्व के भाव में भटकते हुए महादुःखों से पीड़ित हो गया है। जैसे घाणी में तिल पिलता है, वैसे पिल रहा है परन्तु इसे भान नहीं है कि मैं दुःखी हूँ या सुखी हूँ। कुछ पाँच-पच्चीस लाख रुपये मिले, लड़के अच्छे हुए तो हम सुखी हैं, ऐसा अज्ञानी-मूढ़ मानता है। आहाहा! हम दुःखी हैं, बापू! आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त दुःखी हैं, ऐसा मान तो अन्दर आनन्द में जाया जाएगा। सुख तो आत्मा में है, सुख कहीं बाहर में नहीं है। आहाहा!

जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन... आहाहा! व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार सामायिक आदि सुनकर, ऐसा विकल्प आया परन्तु तो भी उससे हटकर और समस्त चारित्र का निकेतन... चित्त। निर्मल वीतरागभाव में जिसका चित्त चिपट गया है। आहाहा! वीतरागमूर्ति चैतन्य प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है, जिसमें अतीन्द्रिय शान्ति भरपूर भरी है। ऐसा यह भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें चारित्र का निकेतन... स्वरूप में रमणता का वह धाम है। स्वरूप में रमणता, यह उसका धाम है, यह उसका स्थान है, यह उसका क्षेत्र है। आहाहा!

समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है,... यह सुनकर अन्दर जाता है, वह समस्त चारित्र की शान्ति को प्राप्त करता है। ऐसे उस संयमधारी को... जो ऐसा संयमधारी है... आहाहा! ये पंचम काल के मुनि, पंचम काल के शिष्यों को ऐसा समझाते हैं। ऐसा नहीं कि यह पंचम काल है, इसलिए यह बात नहीं होती। बापू! अवसर-मौका मिला है,

यह अवसर यदि चला गया तो फिर से मनुष्यपना कब मिलेगा ? आहाहा ! यह जानकर मनुष्य को सुनाते हैं ।

इस संयमधारी को... ऐसे अन्तर में रमणता करता है । आहाहा ! शुद्ध चैतन्य के घर में, आनन्द में रमणता करे, ऐसा जो संयम । आहाहा ! ऐसे **संयमधारी को नमस्कार हो** । स्वयं आनन्द में आ गये हैं । ऐसे संयमधारी को नमस्कार करते हैं । आहाहा ! स्वयं संयमधारी हैं । संयम परन्तु यह । अन्तर आनन्दस्वरूप में रमणता करे, वह संयम है । इन्द्रियों का दमन करके बाहर के विषयों को भोगे नहीं, इसलिए इन्द्रियदमन और संयम हुआ, ऐसा नहीं है । आहाहा ! अन्तर में संयमधारी को संयम का धाम बनता है । **उस संयमधारी को नमस्कार हो** । टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव उसे नमस्कार करते हैं । इतने प्रमोद में आ गये हैं । विशेष कहेंगे... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-९८, श्लोक-१२६, गाथा-९५, गुरुवार, मागशर कृष्ण ३, दिनांक ०६-१२-१९७९

नियमसार, १२६ कलश । प्रतिक्रमण का अन्तिम कलश ।

यस्य प्रतिक्रमण-मेव सदा मुमुक्षो-

नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः ।

तस्मै नमः सकल-संयम-भूषणाय,

श्रीवीरनन्दि-मुनि-नामधराय नित्यम् ॥१२६॥

अपने गुरु को वन्दन करते हैं । गुरु कैसे होते हैं ? निर्ग्रन्थ मुनि ।

[श्लोकार्थः] मुमुक्षु ऐसे जिन्हें (-मोक्षार्थी ऐसे जिन वीरनन्दि मुनि को)... ये एकदम मोक्षार्थी कहते हैं । आहाहा ! महाव्रतधारी मुनि स्वयं मुनि हैं, वे दूसरे मुनि के लिए ऐसा पहिचानकर कहते हैं । दोनों छद्मस्थ हैं, दोनों पंचम काल के जीव हैं । आहाहा ! अपने जो गुरु हैं, वे कैसे हैं ? मोक्षार्थी । **सदा प्रतिक्रमण ही है...** उन्हें तो सदा प्रतिक्रमण ही है । आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में सदा उनकी रमणता ही है । यह प्रतिक्रमण । राग के विकल्प से निवृत्ति, कल्पनामात्र से निवृत्ति; निष्कर्म, निर्विकल्प, चैतन्यस्वरूप में-अतीन्द्रिय

आनन्द में रमणता, इसका नाम निश्चय-सच्चा प्रतिक्रमण है। यहाँ तो प्रतिक्रमण की यह व्याख्या है। मुनिराज ऐसा प्रतिक्रमण करते हैं। आहाहा!

सदा प्रतिक्रमण ही है... आहाहा! ये अपने गुरु जो ऐसे हैं, यह इनके ख्याल में है। छद्मस्थ भी दूसरे जीव को अपने ज्ञान में जान लेता है। जान न ले, दूसरे को न पहिचान ले - ऐसा नहीं है। आहाहा! कहाँ तक? कि वह तो **सदा प्रतिक्रमण ही है...** वहाँ तक। आहाहा! वीरनन्दि मुनि को सदा (प्रतिक्रमण ही) है। नग्न दिगम्बर अन्दर में में आत्मा अत्यन्त आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसमें जिनकी रमत-रमणता है, एकाग्रता है, उन्हें सदा प्रतिक्रमण ही है। आहाहा! मुनिराज दूसरे मुनि को इस प्रकार से पहिचानकर उन्हें नमस्कार करते हैं। आहाहा! नमस्कार करनेयोग्य मुनि कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या है। आहाहा!

और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण बिल्कुल नहीं है... आहाहा! वीरनन्दि मुनि महाराज दिगम्बर सन्त हैं उस समय, उनकी उपस्थिति में **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण...** है नहीं। आहाहा! जिन्हें एक विकल्प का कण भी नहीं है। निर्विकल्प आनन्द में रमण करते हुए सदा उन्हें प्रतिक्रमण ही है। आहाहा! गजब बात है। छद्मस्थ मुनि, छद्मस्थ मुनि को पंच महाव्रतधारी इस प्रकार से कहे, इस प्रकार से बोले, वह सत्य है। इसमें झूठ का जरा भी अंश नहीं है। आहाहा! ऐसे उन मुनि को **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण...** नहीं है। विकल्पमात्र उठे, वह अप्रतिक्रमण है। आहाहा! चाहे तो पाप का मिच्छामि दुक्कडम् विकल्प उठे, वह भी अप्रतिक्रमण है। वह प्रतिक्रमण नहीं है। वह अणुमात्र भी जिन्हें अप्रतिक्रमण नहीं है और सदा प्रतिक्रमण अस्ति है। अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण नहीं है। आहाहा!

देखो, मुनि की दशा! एक मुनि, दूसरे मुनि को किस प्रकार पहिचानकर वन्दन करते हैं। आहाहा! पाँचवाँ काल है, ऐसे निश्चय पहिचाना नहीं जाता, अपने तो व्यवहार करें, उससे आचरण होगा—इस व्रत की तो इसमें गन्ध भी नहीं ली। आहाहा! अन्दर भगवान विराजता है। अत्यन्त विकल्प की वृत्तिरहित तत्त्व अन्दर है। परमेश्वर भगवानस्वरूप आत्मा में जिनका हमेशा.. सदा.. ऐसा कहा न? सदा उसमें रमणता है। आहाहा! देखो! यह योगफल। प्रतिक्रमण के योगफल का श्लोक। कितनी इनके ज्ञान में दूसरे की बात (आती है)! दूसरे मुनि को जान लिया है और दूसरे मुनि किस प्रकार के कैसे हैं, (यह

पहिचान लिया है)। आहाहा! यह हो सकता है, जाना जा सकता है और यह स्थिति भी हो सकती है—ऐसी दो बातें सिद्ध करते हैं। पंचम काल में भी सदा प्रतिक्रमण हो सकता है। आहाहा! सदा यह प्रतिक्रमण, हों! मन्द (राग) वह नहीं।

अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान्, ज्ञान का पिण्ड, अकेला ज्ञानस्वभाव, अनादि-अनन्त ध्रुव, उस ज्ञानस्वभाव में जिसकी हमेशा कायम रमणता है, जिसमें अन्दर रमणता कायम है, सदा उसमें ही रमते हैं। अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण... नहीं है। आहाहा! धन्य अवतार! मुनिपना ऐसा होता है। मुनिपना कैसा होता है? भाई! आहाहा!

जिन्हें सदा प्रतिक्रमण ही है... आहाहा! प्रतिक्रमण ही है... प्रभु! परन्तु वे छद्मस्थ हैं न। भले छद्मस्थ हों, परन्तु वे आनन्द में रमते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द की घूटें पीते हैं। वह निर्विकल्प आनन्द के रस का रसीला अतीन्द्रिय आनन्द लेते हैं। आहाहा! उन्हें यहाँ सदा प्रतिक्रमण कहा जाता है। सवेरे भी सूक्ष्म था, यह भी वापस और सूक्ष्म आया। आहाहा! सवेरे नहीं थे, नहीं? अभी आये? सवेरे बहुत सरस था। आहाहा!

पूरा संसार उथला डाले और भगवान् पूर्णानन्द के नाथ का विकास करके विलास रमे, विलास। विकास करके विलास में रमे। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय वीतरागता, अतीन्द्रिय शान्ति में जिनकी रमणता जम गयी है, वे सदा प्रतिक्रमणमय हैं। यह प्रतिक्रमण कहलाता है। और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,... आहाहा! है? अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,... आहाहा! यह पंचम काल के साधु, पंचम काल के दिग्म्बर सन्त। आहाहा! परमेश्वर के जैसे, परमेश्वर तुल्य (हैं)। आहाहा!

जिन्हें अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,... आहाहा! धन्य अवतार!! वीतरागस्वरूप से भगवान् विराजता है। वीतरागमूर्ति परमात्मा स्वयं है। उसमें जिसकी अन्तर एकाग्रता जमी है। और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण (बिल्कुल) नहीं है,... सदा प्रतिक्रमण में ही जिनकी रमणता है। आहाहा! उनकी पर्याय को देख-जान ली है। छद्मस्थ मुनि ने उनकी पर्याय को देख लिया। आहाहा! ज्ञान क्या काम न करे? ज्ञान क्या काम न करे? आहाहा! मुनि की निर्विकल्प दशा, सदा प्रतिक्रमणमय दशा है, उसे परख लिया है। ऐसी जिनकी ज्ञान की विचिक्षणता प्रगट हुई है और सामनेवाले को परख लिया है। आहाहा! ओहोहो! पंचम काल वहाँ बाधक नहीं है कि पंचम काल है, ऐसा मुनिपना अभी

नहीं होता। अभी दूसरे का निश्चय जाना नहीं जा सकता – अभी ऐसा (लोग) कहते हैं। निश्चय जाना नहीं जा सकता। व्यवहार करो। अरे! प्रभु! क्या हो?

मुनिराज तो पुकार करते हैं कि मेरे गुरु जो वीरनन्दि आचार्य हैं, उन्हें मैं सदा प्रतिक्रमणमय देखता हूँ। उनमें अप्रतिक्रमण बिल्कुल नहीं देखता। आहाहा! प्रभु! वे छद्मस्थ है न! पंचम काल के प्राणी (है), भगवान के बाद तो हजार वर्ष बाद हुए हैं न? भले हुए हों। आहाहा! आत्मा को वर्ष कहाँ लागू पड़ते हैं? भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण से विराजमान चैतन्य-चमत्कारी वस्तु, वह चमत्कारी वस्तु है। वह क्षण में चमत्कार होने से पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा! ऐसी दशा प्राप्त को...

कहते हैं, **सकलसंयमरूपी भूषण के धारण करनेवाले...** आहाहा! वे गुरु वीरनन्दि **सकलसंयमरूपी भूषण...** अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में रमणतारूपी संयम। सं अर्थात् सम्यक्पूर्वक, सम्यग्दर्शनपूर्वक; यम अर्थात् जिनकी रमणता है। आहाहा! ऐसे **धारण करनेवाले श्री वीरनन्दि नाम के मुनि को नित्य नमस्कार हो**। आहाहा! प्रमोद आया है। मुनिराज को भी प्रमोद आया है। आहाहा! वीरनन्दि गुरु को पहिचानकर (कहते हैं) ऐसे हैं, ऐसे हैं। आहाहा! उन्हें **नित्य नमस्कार हो**। उन्हें हमेशा नमस्कार ही है। आहाहा! यह अधिकार पूरा किया। यह प्रतिक्रमण का अधिकार पूरा हुआ।

इस प्रकार, **सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) निश्चयप्रतिक्रमणाधिकार नाम का पाँचवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ। आहाहा! ऐसा तो सुना भी नहीं होगा। आहाहा!**

(संवत्) १९८० के वर्ष में बोटद में चातुर्मास था न? ५६ वर्ष हुए। वहाँ ठाकरसीभाई थे। बीसाश्रीमाली ठाकरसीभाई। उनका लड़का वहाँ है। अहमदाबाद में दुकान है और उसके छोटे भाई का लड़का अमृतलाल बड़ा पण्डित है। तब ऐसी बात होने पर कहा, भाई! आत्मा का अनुभव ऐसी चीज़ है। तब (वह) कहता है – और अनुभव कैसा? यह कहाँ से लाए? ऐसा कहता था।

मुमुक्षु : वह तो ऐसा कहता था कि अनुभव जैन में कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और मूलचन्दजी कहते थे। वह तो ठाकरसीभाई थे, उनका लड़का भूरोभाई है। वहाँ अपना मन्दिर है न ? अहमदाबाद में खाडिया मन्दिर के सामने दुकान है। वह कहता था। ऐसा यह कहाँ से लाये ? आहाहा ! अनुभव कहाँ से ? यह उसके पिता कहते थे और यह तो मूलचन्दजी कहते, अनुभव और आत्मा में कैसा ? आत्मा को और अनुभव, यह क्या ? और कहलाये बड़े जैन के बैरिस्टर। जैन के बैरिस्टर कहलाये और आत्मा के अनुभव की खबर नहीं। वे इन हिम्मतभाई के गुरु कहलाये। इनके गाँव के। नागनेश।

(संवत्) १९७१ के वर्ष एक बार मैंने धर्मास्तिकाय का प्रश्न किया। कहा, धर्मास्तिकाय के गुण कितने ? दो, गति और अरूपी। आहाहा ! अरे रे ! सब अन्ध खाते हो गया। कहलाये जैन के बैरिस्टर। धर्मास्तिकाय के दो गुण !

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि धर्मास्ति एक द्रव्य के अनन्त गुण हैं। आहाहा ! प्रत्येक द्रव्य में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पार नहीं, इतने गुण हैं। लोगों को आगे उच्च श्रेणी में जरा भी जाना नहीं। अपने को धर्म मानना है, मनवाना है और उसमें कल्याण जानते हैं। आहाहा !

यह मुनिराज ऐसा कहते हैं... आहाहा ! अब प्रत्याख्यान की बात आयी। सच्चा प्रत्याख्यान किसे कहना ? ऐसे हाथ जोड़कर प्रत्याख्यान करते हैं न ? प्रत्याख्यान कराओ। हमारे यह खाया नहीं जाता, हमारे रस नहीं लिया जाता, यह प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा ! प्रत्याख्यान का प्रकार ही अलग है। वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ? यह निश्चय प्रत्याख्यान का अधिकार है।

— ६ —

निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार

गाथा-९५

अथेदानीं सकलप्रव्रज्यासाम्राज्यविजयवैजयन्तीपृथुलदण्डमण्डनायमानसकल-कर्मनिर्जरा-
हेतुभूतनिःश्रेयसनिःश्रेणीभूतमुक्तिभामिनीप्रथमदर्शनोपायनीभूतनिश्चय-प्रत्याख्यानाधिकारः कथ्यते ।
तद्यथा ह्य अत्र सूत्रावतारः ह्य

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा ।

अप्पाणं जो ज्ञायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स ॥९५॥

मुक्त्वा सकलजल्पमनागतशुभाशुभनिवारणं कृत्वा ।

आत्मानं यो ध्यायति प्रत्याख्यानं भवेत्तस्य ॥९५॥

निश्चयनयप्रत्याख्यानस्वरूपाख्यानमेतत् । अत्र व्यवहारनयादेशात् मुनयो भुक्त्वा दैनं
दैनं पुनर्योग्यकालपर्यन्तं प्रत्यादिष्टान्नपानखाद्यलेह्यरुचयः, एतद् व्यवहारप्रत्याख्यान-स्वरूपम् ।

निश्चयनयतः प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तवचनरचनाप्रपञ्चपरिहारेण शुद्धज्ञानभावनासेवा -
प्रसादादभिनवशुभाशुभद्रव्यभावकर्मणां सम्भारः प्रत्याख्यानम् । यः सदान्तर्मुखपरिणत्या
परमकलाधारमत्यपूर्वमात्मानं ध्यायति तस्य नित्यं प्रत्याख्यानं भवतीति ।

तथा चोक्तं समयसारे ह्य

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं ।

तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥

तथा समयसारव्याख्यायां च ह्य

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्त-सम्मोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥

तथाहि ह

अब निम्नानुसार निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार कहा जाता है—कि जो निश्चयप्रत्याख्यान सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य की विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड की शोभा समान है, समस्त कर्मों की निर्जरा के हेतुभूत है, मोक्ष की सीढ़ी है और मुक्तिरूपी स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट है।

यहाँ गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है:—

भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे ।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥१५ ॥

अन्वयार्थ : [सकलजल्पम्] समस्त जल्प को (-वचनविस्तार को) [मुक्त्वा] छोड़कर और [अनागतशुभाशुभनिवारणं] अनागत शुभ-अशुभ का निवारण [कृत्वा] करके [यः] जो [आत्मानं] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [प्रत्याख्यानं] प्रत्याख्यान [भवेत्] है।

टीका : यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है।

यहाँ ऐसा कहा है कि—व्यवहारनय के कथन से, मुनि दिन-दिन में भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त अन्न, पान, खाद्य और लेह्य की रुचि छोड़ते हैं; यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है। निश्चयनय से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के *प्रपंच के परिहार द्वारा शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना सो प्रत्याख्यान है। जो सदा अन्तर्मुख परिणामन से परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है, उसे नित्य प्रत्याख्यान है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

* प्रपंच=विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से—उस भावना के सेवन की कृपा से—भावकर्मों का तथा द्रव्यकर्मों का संवर होता है।)

(वीरछन्द)

मुझसे भिन्न भाव सब पर हैं - ऐसा जब जाने जो ज्ञान ।
 उनको त्याग करे वह तब ही अतः वही है प्रत्याख्यान ॥

[गाथार्थ :] 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'—ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है (अर्थात् अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है) ऐसा नियम से जानना ।

इसी प्रकार समयसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में भी (२२८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

जिसका मोह विनष्ट हुआ भावी कर्मों को तजने से ।
 चेतनमय निष्कर्म आत्मा में, वरतूँ नित आत्मा से ॥

[श्लोकार्थ :] (प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहता है कि—) भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके (-त्यागकर), जिसका मोह नष्ट हुआ है ऐसा मैं निष्कर्म (अर्थात् सर्व कर्मों से रहित) चैतन्यस्वरूप आत्मा में आत्मा से ही (-स्वयं से ही) निरन्तर वर्तता हूँ ।

गाथा-९५ पर प्रवचन

अब निम्नानुसार निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार कहा जाता है—कि जो निश्चयप्रत्याख्यान... आहाहा! आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप में रमे, वह प्रत्याख्यान है । उसका नाम प्रत्याख्यान । ज्ञान, ज्ञानरूप से रहे; जो उसके गुण हैं; वह गुण, गुण की पर्याय में गुणरूप से रहे और अवगुणरूप से न हो, वह इसका प्रत्याख्यान है । विकाररूप न हो, मिच्छामि दुक्कडम् विकल्प, इसरूप भी न हो । तब इसे राग का त्याग और ज्ञान का स्थिर होना, ऐसा प्रत्याख्यान तब कहने में आता है । अरे! एक-एक बात में अन्तर है । प्रतिक्रमण अलग, प्रत्याख्यान अलग, पच्चक्खाण... यह तो सवेरे लड़कियाँ प्रत्याख्यान करे । पंच रंगी सामायिक । पाँच सामायिक एक आसन से करे । लो, अष्टमी का उपवास करे । तीन दिन और तीन रात । जागते हुए, सोना नहीं और उपवास करे । बड़ी तपस्या । आहाहा! बापू!

यह सब तो क्रियाकाण्डरूप है। यह धर्म में नहीं है। यह सब शुभभाव की क्रिया है। वह शुभभाव तो घोर संसार का मूल है। आहाहा! ऐसा कठिन काम।

यह कहते हैं कि **निश्चयप्रत्याख्यान...** सच्चा प्रत्याख्यान **सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य की...** पूर्ण प्रव्रज्या अर्थात् चारित्रदशा, चारित्र प्रव्रज्या, दीक्षा चारित्र। उसमें साम्राज्य वह पूर्ण संयम का साम्राज्य है, उसकी **विजय-ध्वजा...** विजय पताका। मेरी विजय हुई। आहाहा! अब मोक्ष में जाने के लिए तैयारी हुई। जिसे प्रत्याख्यान प्रगट हुआ, उसे मोक्ष जाने की तैयारी हो गयी। विजय ध्वजा फहरायी। **विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड...** विजय-ध्वजा का विशाल दण्ड बड़ा होता है न... आहाहा! उसकी **शोभा समान है,...** प्रत्याख्यान। आहाहा!

सकल प्रव्रज्यारूप... चारित्र की **विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड की शोभा समान है, समस्त कर्मों की निर्जरा के हेतुभूत है,...** आहाहा! प्रत्याख्यान तो कर्म की निर्जरा करता है। उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। **मोक्ष की सीढ़ी है...** वह प्रत्याख्यान मोक्ष की सीढ़ी, श्रेणी है, निसरणी है। मोक्ष की निसरणी प्रत्याख्यान है। आहाहा! वस्तु जो पूर्ण भरी हुई है, ज्ञान आनन्द आदि अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड भरा है, उसमें एकाग्रतारूपी धारा बहती है। वह पूर्ण विजय की धारा है। आहाहा! वह **मोक्ष की सीढ़ी है और मुक्तिरूपी स्त्री के...** आहाहा! मुक्ति में अतीन्द्रिय आनन्द है। मोक्ष में क्या है? अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द है। तो संयम में क्या है? कि वह अतीन्द्रिय आनन्दरूपी स्त्री की पहली भेंट है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दरूपी स्त्री की पहली भेंट है। संयम में अतीन्द्रिय आनन्द विशेष आता है।

प्रत्याख्यान में राग का अभाव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव विशेष आता है, वह मोक्ष में जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका कारण जो यह मोक्षमार्ग, वह मोक्षरूपी स्त्री की पहली भेंट है। आहाहा! आचार्य के शब्द भी कैसे हैं! **स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट है।** देखा? आहाहा! प्रथम दर्शन की भेंट है। जैसे लोग विवाह करे और पहली रात्रि को उसके दर्शन करें और भेंट करें भेंट; उसी प्रकार यहाँ कहते हैं। अन्दर में संयम, प्रत्याख्यान आनन्दस्वरूप भगवान की खिलावट करके वह अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, वह मोक्षरूपी स्त्री की भेंट है। अतीन्द्रिय आनन्द का वहाँ साक्षात्कार आता है। मोक्ष में पूर्ण आनन्द प्रगट होगा। आहाहा! इसका नाम प्रत्याख्यान कहते हैं। यह तो सुना भी न हो।

यह करो.. यह करो.. यह प्रत्याख्यान करो। कन्दमूल नहीं खाना, हरितकाय प्रत्येक में मर्यादा करो। पाँच ही खाना... नहीं खाना, अमुक नहीं खाना, यह नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, छह परबी कन्दमूल नहीं खाना। करो प्रत्याख्यान। यह प्रत्याख्यान मानता है। यह तो राग है। आहाहा! प्रत्याख्यान तो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की भेंट हो। तो अतीन्द्रिय आनन्द कब आवे? कि राग का विकल्प जहाँ न हो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द ऐसी जो स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट। यह प्रथम आनन्द की भेंट होती है। आहाहा! उसे यहाँ प्रव्रज्यारूप प्रत्याख्यान कहते हैं। अब ऐसी व्याख्या। प्रतिक्रमण अलग, प्रत्याख्यान अलग। आहाहा! दुनिया से अलग बात है।

पहली गाथा

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा ।

अप्पाणं जो ज्ञायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स ॥९५॥

भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे।

जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥९५॥

आहाहा! इसकी टीका यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है। सच्चे प्रत्याख्यान में स्वरूप का कथन। खोटे प्रत्याख्यान तो अनन्त बार किये हैं। आहाहा! और माना कि हम प्रत्याख्यानी हैं और प्रत्याख्यान किया है। चौविहार है—चार प्रकार का आहार रात्रि में नहीं करना। इसका प्रत्याख्यान है। कन्दमूल नहीं खाना, इसका प्रत्याख्यान है। छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, यह इसका प्रत्याख्यान है। ये सब प्रत्याख्यान नहीं, ये तो सब विकल्प हैं। आहाहा! राग है। आहाहा! शरीर, वह स्त्री के संसर्ग में नहीं आया, वह तो जड़ की पर्याय में आया। उसमें ब्रह्मचर्य कहाँ आया? शरीर स्त्री के संसर्ग में आया, वह विषयभाव है। नहीं आया, उसमें शुभभाव है। संसर्ग में शरीर नहीं आया, वह तो शुभभाव है। वह कोई प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है।

यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है। यहाँ ऐसा कहा है कि—व्यवहारनय के कथन से, मुनि दिन-दिन में भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त... हमेशा आहार करके। दिन-दिन में भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त अन्न, पान, खाद्य और लेह्य... कोई भी चीज़। सब चीज़ की रुचि छोड़ते हैं;... आहार करके, फिर

सब आहार की रुचि छोड़ते हैं। रुचि छोड़ते हैं;... ऐसा कहा। आहाहा! यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है। वह तो शुभभाव है। मूल प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! वह शुभभाव है। ऐसा आता अवश्य है। निश्चय नहीं, सच्चा प्रत्याख्यान नहीं। आहाहा!

यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है। निश्चयनय से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के प्रपंच के परिहार द्वारा... शुभ और अशुभ, वचन और भाव दोनों के प्रपंच के परिहार द्वारा... प्रपंच=विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से—उस भावना के सेवन की कृपा से—भावकर्मों का तथा द्रव्यकर्मों का संवर होता है।) आहाहा! वह ज्ञानस्वभाव वस्तु चिद्घन प्रभु है। अनाकुल ज्ञान और आनन्द का समुद्र है। उसमें रमणता करना, एकाकार करना... आहाहा! शुद्धज्ञान को भाना, उस शुद्धज्ञान को भाना, उस शुद्धज्ञान में एकाग्रता करना और पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़ना, उस शुद्धज्ञान में एकाग्रता की भावना वह प्रत्याख्यान है। आहाहा!

यहाँ तो कहे, बाहर का यह किया, छोड़ा। दो-पाँच सामायिक की, सवेरे-शाम प्रतिक्रमण किया। फिर एक-दूसरे को क्षमा करे। जिसके साथ क्षमा योग्य हो, उसे क्षमा करे। क्षमा के विरुद्ध हो उनके सामने देखे नहीं। आहाहा! यह सब शुभभाव है। यह कहीं प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! प्रत्याख्यान तो यह है। भले-प्रशस्त और अप्रशस्त। समस्त वचनरचना के... आहाहा! भाषा से प्ररूपणा करना, वह भी एक शुभभाव है। भाषा तो भाषा से होती है। भाषा आत्मा से नहीं होती। भाषा की रचना आत्मा से नहीं होती। भाषा की रचना परमाणु के उस काल में उस पर्याय होने का काल-स्वकाल है, इसलिए भाषावर्गणा में से भाषा होती है। आत्मा से नहीं। आत्मा में कुछ बोलो, इसलिए भाषा होती है, ऐसा नहीं है।

भाषावर्गणा, वह जड़ परमाणु है। उनकी पर्याय होने के काल में भाषावर्गणा (से) होती है, आत्मा से नहीं। इस उपदेश के वाक्य आत्मा से नहीं। आहाहा! लिखने के वाक्य आत्मा से नहीं। वह तो शब्द की रचना है। भाषा परमाणु की रचना है। आत्मा उसकी (भाषा की) रचना नहीं कर सकता। आत्मा बोल नहीं सकता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह फिर कहा न, भला या बुरा समस्त वचनरचना... भली प्ररूपणा की रचना हो या दूसरी कोई हो,

वह सब रचना छोड़कर... आहाहा! प्रत्याख्यान-प्रशस्त बोलना, वह प्रशस्त शुभभाव, वह कोई प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम। अपूर्व बात है, भाई! वीतराग के घर की बात अपूर्व है। सम्प्रदाय में भी सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह करो... यह करो... यह करो... इसमें सेठ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। हमने किया, इसने किया, इसने उपवास किये, इसने यह किया। आहाहा! आंकड़िया में कहीं हुआ था न? एक बार बहुत वर्ष पहले। किसी ने किया होगा। अपवास, अट्टम को कुछ। बहुत वर्ष की बात है। अपवास और तपस्या करे, इसलिए.. ओहोहो! भारी तपस्या की, भारी उपवास किये। बहुत वर्ष पहले की बात है। लगभग ७०-७१ वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? इतने वर्ष हुए। किसी ने आंकड़िया में अपवास किये थे। बहुत वर्ष की बात है। (विक्रम संवत्) ७० में आंकड़िया गये थे न? ७० के वर्ष में मागसर महीने में पहले आंकड़िया गये थे। यह मागसर है न? मागसर शुक्ल ९। यह दीक्षा को ६७वाँ वर्ष लगा। वह दीक्षा लेकर तुरन्त ही उस दामनगर होकर आंकड़िया आये थे। इतने वर्ष हुए। उस गाँव में किसी ने पच्चीस उपवास किये थे। पर्यूषण में किसी ने पच्चीस उपवास किये। फिर उसने धाम-धूम की थी।... ओहोहो! आहाहा! किसे कौन करे? बापू! एक विकल्प उठाना, तीर्थकरगोत्र बाँधने का विकल्प उठाना, वह भी आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के प्रपंच... यह प्रपंच कहा, देखा? विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से...) आहाहा! भावना के सेवन से कषाय... शुद्धज्ञान... शुद्धज्ञान... शुद्ध चैतन्य। पुण्य-पाप के रागरहित शुद्ध चैतन्यद्रव्य, शुद्ध चैतन्यद्रव्य वस्तु है, उसकी सेवना, उसकी एकाग्रता, उससे द्रव्यकर्म और भावकर्म का नाश होता है। आहाहा! यहाँ तो अपवास किया, इसलिए निर्जरा कहलाये। अपवास अर्थात् तप, तप अर्थात् निर्जरा। तपस्या से निर्जरा होती है। धूल में भी नहीं। वह तपस्या नहीं है। यह तपस्या तो 'तपन्ते इति तपः' अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान... जैसे सोने को गेरु लगाकर सोना शोभता ओपता है, इसी प्रकार अन्दर शान्ति से आनन्द से पर्याय में ओपे। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति से पर्याय में ओपे-शोभे, उसे प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐसी बातें हैं। सब बात में अन्तर। आहाहा!

शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा... आहाहा! शुद्धज्ञानभावना की। भावना

शब्द से (आशय) एकाग्रता है, हों! यहाँ। शुद्धज्ञान जो अकेला चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह शुद्धज्ञान का अवतार प्रभु भगवान अनादि-अनन्त शुद्धज्ञानस्वरूप, ऐसे शुद्धज्ञान की भावना अर्थात् एकाग्रता की सेवा के प्रसाद द्वारा... उसकी सेवा के। देखो! सेवा तो आयी। आत्मा की सेवा। पर की सेवा तो कोई कर नहीं सकता। देव-गुरु-धर्म की सेवा का भाव, वह सब शुभभाव है। वह कहीं धर्म और निर्जरा नहीं है। आहाहा! आत्मा की सेवा। आत्मा को जाने बिना सेवा किसकी करे? आहाहा! अन्दर आत्मा कौन है? इस चीज में यह सब ज्ञात होता है। जाननेवाला स्वयं ही ज्ञेय है, ज्ञाता है और ज्ञान है। आहाहा!

सवेरे आया नहीं था? जाननेवाला स्वयं भगवान आत्मा, स्वयं को जानता है, स्वयं ही ज्ञेय है, स्वयं ही ज्ञान है और स्वयं ज्ञाता है। ऐसी जो अभेद आत्मा की रमणता, उसका नाम आत्मा की सेवा है। आहाहा! पर की सेवा तो कर नहीं सकता। भगवान आदि की सेवा करे, वह शुभराग है। आहाहा! बहुत कठिन काम। कठिन अर्थात् अपूर्व। पूर्व में नहीं किया हुआ। पूर्व में वास्तव में नहीं सुना हुआ, रुचिपूर्वक सुना हुआ नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, शुद्ध चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का पाट (शिला) है। जैसे पचास मण की बर्फ की शिला होती है, वैसे यह अरूपी अनन्त गुण की शिला है। उसे अन्दर सेवा करना, एकाग्रता करना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! व्यवहारवालों को कठिन लगता है। व्यवहार में पकड़नेवाले को यह और निश्चय... निश्चय... .. करे। व्यवहार करते-करते निश्चय आयेगा या सीधे ...निश्चय आ जाता होगा? यह तो कहा था व्यवहार का फल। प्रतिक्रमण का विकल्प आवे परन्तु उसे छोड़कर अन्दर में जाना, यह उसका परिणाम है। प्रतिक्रमण का व्यवहार विकल्प आवे अवश्य; व्यवहार का प्रतिक्रमण का विकल्प आवे परन्तु छोड़कर अन्दर में निर्विकल्प में जाना, इसका नाम प्रतिक्रमण है तो उस व्यवहार को व्यवहार कहने में आता है; नहीं तो व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहाहा!

सेवा के प्रसाद द्वारा... शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा। शब्द बहुत संक्षिप्त। शुद्धज्ञान त्रिकाली स्वभाव, ध्रुवस्वभाव भगवान की सेवा, उसकी भावना की सेवा के प्रसाद द्वारा... उसकी एकाग्रता की सेवा के प्रसाद द्वारा... आहाहा! जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना, सो प्रत्याख्यान है। आहाहा! यहाँ तो यह जरा त्याग किया तो संवर हो गया, जाओ। त्याग किया तो संवर हुआ। आहाहा! यहाँ तो

कहते हैं, द्रव्यकर्म और भावकर्म का संवर सेवना के भाव अर्थात् प्रसाद द्वारा हुआ। आहाहा! संवर हुआ, तब उसे विकल्प रुक गया।

निर्विकल्प वस्तु वीतरागी आत्मा है। उसमें अटका, उसकी सेवा में एकाकार रहा, तब उसे विकल्प और कर्म का नाश हुआ। इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! ऐसा प्रत्याख्यान है, ऐसा सुना नहीं होगा। प्रत्याख्यान सीधासट ऐसा था। बाहर से यह प्रत्याख्यान किया। आहाहा! **सो प्रत्याख्यान है।** संवर होना, वह प्रत्याख्यान है। शुद्धज्ञान, आनन्द, अतीन्द्रिय शुद्धस्वभाव की एकाग्रतारूपी भाव के प्रसाद द्वारा द्रव्यकर्म और भावकर्म का रुकना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। इसमें राग भी नहीं आता, शुभभाव भी इसमें नहीं आता। शुभभाव, वह अप्रत्याख्यान है। आहाहा! राग है। यह तो यहाँ का कुछ ग्रन्थ नहीं है यह।

यह सोनगढ़ का शास्त्र नहीं है। यह तो पहले का अनादि का है। मुनिराज का बनाया हुआ है, और मुनि तो ऐसा कहते हैं कि इसकी टीका मैं नहीं करता। इसकी टीका तो गणधरों ने की है, वह टीका यह होती है। मैं करनेवाला कौन? यह टीका की, वह तो गणधरों-सन्तों ने की है। परम्परा वीतराग से तीर्थकर के वजीर जो गणधर हैं, दीवान-केवलज्ञानी के दीवान हैं। आहाहा! उन्होंने टीका की है। हम यह टीका करनेवाले कौन? ऐसा कहते हैं, देखो! आहाहा! इसीलिए यह सब अभी का बनाया हुआ है और उनका बनाया हुआ है, ऐसा नहीं। ठेठ गणधरदेव से इसकी टीका चली आती है। आहाहा! सुनने में पहले-पहले आया हो, इससे वस्तु कहीं नयी है, ऐसा नहीं है। यह गणधर से चली आती है। आहाहा!

पहले शब्द में है न? पहली गाथाएँ हैं न? शुरुआत की गाथाएँ—पाँचवाँ बोल (कलश) है। तीसरा पृष्ठ पाँचवाँ बोल। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित...** यह सब टीका गणधर से रचित है। आहाहा! तुम्हें ऐसा कि नयी लगे और अभी के पंचम काल के साधु का बनायी हुई है, ऐसा नहीं। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** और गणधर के पश्चात् भी आचार्य हुए, उन्होंने भलीभाँति व्यक्त / प्रगट की है। इसकी टीका स्पष्ट की है। आहाहा! परम्परा से गणधरों से लेकर आचार्य हुए। आहाहा! है?

श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये.... जैसा है, उस प्रकार से

प्रगट की गयी टीका है। आहाहा! जरा भी कुछ फेरफार नहीं है। आहाहा! इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में... ऐसे परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन? टीकाकार मुनि स्वयं कहते हैं। हम मन्दबुद्धि तो कौन? आहाहा! इसकी टीका तो ठेठ से चली आती है। गणधरों से, परम्परा आचार्यों से चली आती है। तुम्हें ऐसा लगे कि यह नया है और यह है। कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि मैंने मेरे लिए बनाया है। एक तो इसके अर्थ गणधर से चले आते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, मैंने मेरे लिए बनाया है। आहाहा! यह वह शास्त्र है। आहाहा!

जो सदा अन्तर्मुख परिणमन से... आहाहा! प्रत्याख्यान तब होता है कि जो सदा अन्तर्मुख परिणमन... अन्तर्मुख परिणमन। अन्तर आत्मा जो द्रव्य आत्मा वस्तु पड़ी है, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार भगवान, वह अन्तर्मुख हुई परिणति से... आहाहा! है? अन्तर्मुख परिणमन से परम कला के आधाररूप... आहाहा! केवलज्ञान की कला के आधाररूप यह। परम कला केवलज्ञान। वह इससे इस कला से केवलज्ञान मिलता है। आहाहा!

परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है,... आहाहा! परम कला का आधार ऐसा अति-अपूर्व आत्मा, उसे जो ध्याता है, ध्यान करता है। उसे नित्य प्रत्याख्यान है। है? आहाहा! एक-एक लाइन कठिन। सुनने का मिले नहीं। अकेली बाहर की बातें, उसमें प्रभु एक ओर अन्दर रह गया। अकेले विकल्प की, शरीर की, वाणी की, यह छोड़ा, लिया, छोड़ा... अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, भगवत्स्वरूप विराजता है। उसके सन्मुख तो कभी देखा नहीं। उसका आदर कभी किया नहीं, उसे लक्ष्य में लिया नहीं। उसके बिना विकल्प की बातें, वह सब संसार है। चार गति में भटकने का साधन है। आहाहा!

परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा... आहाहा! अति-अपूर्व। पूर्व में कभी भाया नहीं। ऐसा जो अति-अपूर्व आत्मा... उसे जो ध्यावे-ध्यान करता है। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश का पूर, चैतन्य चमत्कार से भरपूर भगवान आत्मा को उस परम कला का आधार है वह... आहाहा! सब परम कला वहाँ से प्रगट होती है। दुनिया की कला तो सब अज्ञान की है। यह आत्मा की कला अन्दर जो ज्ञान की, आनन्द की सब, उस परम

कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है,... ध्यान करता है। उसे नित्य प्रत्याख्यान है। आहाहा! उसे हमेशा प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐसा तो कितनों ने सुना नहीं होगा। वाड़ा के बन्धन में बाहर की बातें करे, यह करे। अन्दर भगवान अपूर्व आनन्द का नाथ... आहाहा! उसकी सेवा, उसके आधार से आत्मा का ध्यान, वह नित्य प्रत्याख्यान है। आहाहा!

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— गाथा है न?

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं ।

तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥

आहाहा! क्या कहते हैं? 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'... दया, दान आदि रागादि का विकल्प, वह सब परद्रव्य है, पर है; स्वद्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसा 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'—ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है... यह राग का त्याग... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। अनन्त गुण का पिण्ड, उस गुणरूप रहना, वह आत्मा है, वह प्रत्याख्यान है। गुण है, उसरूप रहे, वह प्रत्याख्यान है। राग का त्याग तो नाममात्र है। आहाहा! राग का त्याग करना वह भी नाममात्र है। है?

(अर्थात् अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था...) ज्ञान अर्थात् आत्मा में निर्मल अवस्था, वीतरागी अवस्था (ही प्रत्याख्यान है), ऐसा नियम से जानना। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)